नयी तालीम

सर्व सेवा संघ की मासिकी

वर्ष : २१-२२
अंक : १२-१
जुलाई, अगस्त १९७३
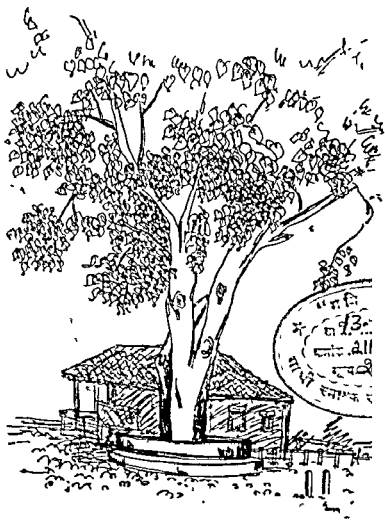
बापू कुटी : सेवाग्राम

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २१-२२
अंक : १२-१

"नयी तालीम" फिर सेवाग्राम से

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि कई वर्षों तक सर्व सेवा संघ के वाराणसी केन्द्र से प्रकाशित होने के बाद अब "नयी तालीम" फिर सेवाग्राम से प्रकाशित हो रही है। भविष्य में यह सर्व सेवा संघ के अन्तर्गत 'नयी तालीम समिति' की मुख-पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती रहेगी। हम पूरा प्रयत्न करेंगे कि "नयी तालीम" के प्रत्येक अंक में पूज्य विनोबाजी के शिक्षा सम्बन्धी नये विचार प्रकाशित होते रहें।

इस अवसर पर हम भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन, श्री आर्यनायकमजी और आशाबहन का आदर व कृतज्ञता सहित स्मरण करते हैं, जिनके मार्गदर्शन में "नयी तालीम" का सम्पादन सेवाग्राम से बहुत वर्षों तक होता रहा। हम आशा करते हैं कि सभी के सहयोग से अब यह काम सेवाग्राम से व्यवस्थित रूप में सचालित होता रहेगा।

हमें सन्तोष है कि "नयी तालीम" के नये सम्पादक मण्डल में आचार्य राममूर्ति और श्री बंशीधर श्रीवास्तव ने शामिल रहना स्वीकार कर लिया है। इसके प्रबंध सम्पादक श्री ग्रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा रहेंगे।

महात्मा गांधी

मौजूदा शिक्षा

शिक्षा शब्द आजकल सब की जबान से सुनते हैं। स्कूल सरकारी हो या खानगी विद्यार्थियों से भरे रहते हैं। कालेजों में जगह नहीं होती। शिक्षा के लिए इतना मोह होने पर भी इस बात का शायद ही विचार किया जाता होगा कि शिक्षा क्या चीज है? आज तक मिली हुई शिक्षा से हमें लाभ हुआ है या नुकसान या जितनी मेहनत की गई उतना लाभ हुआ है या नहीं। जैसे शिक्षा के अर्थ के बारे में थोड़ा ही विचार होते देखा जाता है वैसे ही उसके हेतु के बारे में भी कहा जा सकता है। मुख्य हेतु तो यही पाया जाता है कि शिक्षा पाकर हम एक खास तरह की नौकरी पाने लायक हो जायें। अलग अलग धंधेवाले लोग शिक्षा पाने के बाद अपना धंधा छोड़कर नौकरी ढूंढने लग जाते हैं और नौकरी मिलते ही ऐसा समझ जाते हैं कि हम आगे बढ़ गये। हमारे स्कूलों में राज लुहार बढ़ई दर्जी मोची वगैरह जातियों के लड़के पढ़ते देखे जाते हैं। पर पढ़कर वे अपने बाप दादे के धंधे को आगे बढ़ाने के बजाय उसे बिलकुल नीचा समझकर छोड़ देते हैं और क्लर्क की नौकरी पाने में इज्जत समझते हैं। माँ-बाप भी इसी विचार का अनुकरण करते हैं और इस प्रकार हम जाति और कर्म दोनों से गिरकर गुलामी में फँसते जा रहे हैं। ऐसी हालत मैंने हिंदुस्तान के सफर में चारों तरफ देखी है और इस पर मेरा दिल बहुत बार रोया है।

शिक्षा कोई साध्य वस्तु नहीं, बल्कि साधन है और जिस शिक्षा से हम चरित्रवान बन सकें, वही सच्ची शिक्षा मानी जा सकती है। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है, उससे ऐसा नतीजा निकला है। स्कूल में जाकर चरित्र खो बैठने के तो बहुत से उदाहरण नजर आयेंगे। घर में माँ-बाप से और हमारे आसपास के वायुमण्डल से हमारे नौजवानों को एक तरह का ज्ञान मिलता है और स्कूलों में उसके विरुद्ध ज्ञान मिलता है। स्कूलों का रहन-सहन अक्सर घर के रहन-सहन से उल्टा पाया जाता है। हमारी पाठ्य-पुस्तकों में दी गयी शिक्षा से . . . कुछ भी हम अपनी घर-गृहस्थी के काम में लागू नहीं कर सकते। हम क्या सीखते हैं इस बारे में माँ-बाप को कोई परवाह नहीं होती। ज्यादातर पढ़ाई परीक्षा देने के लिए की हुई बेगार ही मानी जाती है और परीक्षा देने के बाद उसे जल्दी-से-जल्दी भूल जाने की कोशिश की जाती है। हम पर कुछ अँग्रेजों ने जो यह आरोप लगाया है कि हम नकल करनेवाले लोग हैं, वह निरा अर्थ रहित नहीं है। उनमें से एक ने तो हमें सुधार के स्याहीसोख कागज की बेलगाम उपमा दी है।

हमारे और हमारे घर द्वार के बीच रुकावट पैदा हो गयी है। माँ बाप और दूसरे कुटुम्बी लोग, हमारी स्त्रियाँ, हमारे नौकर-चाकर जिनके साथ हमें बहुत समय रहना है, सबके लिए हमारी स्कूली शिक्षा एक गुप्त धन जैसी है। यह शिक्षा उनके काम भी नहीं आती। हमें अब आप यह समझ लेना चाहिए कि जहाँ ऐसी उल्टी दशा हो वहाँ जनता कभी उठ नहीं सकती। अगर हम स्याहीसोख कागज नहीं होते, तो ५०[1] साल से मिलनेवाली शिक्षा के बाद आम लोगों में कोई नयी प्रवृत्ति देखने में आयी होती। जनता को हम पहचानते नहीं। जनता हमें सुधरे हुए समझ कर अलग कर देती है। हम आम लोगों को जंगली समझ कर नीची निगाह से देखते हैं।

हिन्दुस्तान की कम-से कम ८५ फीसदी आबादी का धन्धा खेती है। १० फीसदी का धन्धा कारीगरी है, जिनमें ज्यादातर बुनाई का काम करनेवाले लोग हैं। बाकी ५ फीसदी पढ़े लिखे राजनीतिज्ञ, वकील डॉक्टर वगैरह लोग हैं। यह आखिरी वर्ग अगर सचमुच लोगों की सेवा करना चाहे, तो उसे ९५ फीसदी आदमियों के धंधे की कुछ न कुछ जानकारी हासिल करनी ही चाहिए। ९५ फीसदी लोगों का यह फर्ज माना जाना चाहिए कि उनके माँ-बाप जो धन्धा करते हैं उसका ज्ञान वे प्राप्त

---

१ गांधीजी ने यह लेख १९१६ में लिखा था और उनसे ५० साल पहले की शिक्षा के नतीजों का वे जिक्र कर रहे हैं। तब से आज ५७ साल और बीत गये, (२५ साल आजादी के भी गुजर गये) किन्तु क्या हालात में जरा भी सुधार हुआ है? आज तो हालात और भी खराब है। फिर भी राष्ट्रपिता के इन विचारों पर हमने गम्भीरता से विचार करना भी आरम्भ किया है? —सम्पादक।

उपयोग कैसे करें यह मुख्य बात है। इसमें बच्चे पुस्तकों के साथ यदि चाहें तो परस्पर राय मशविरा (कन्सल्ट) भी कर सकते हैं। पास हुए तो पास। किन्तु पास होनेवाले को नौकरी हो ही यह आवश्यक नहीं। परीक्षा का नौकरी से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। नौकरी देनेवाले अपनी स्वतंत्र परीक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। मैंने यह बात कई बार कह दी है। मेरा ख्याल है— शिक्षा के बारे में बाबा को अब कुछ कहना तो बाकी नहीं रहा। केवल आपके करने का काम बाकी है।

प्रश्न —देश में ग्रामस्वराज्य के लगभग ३५ सघन क्षेत्र है और कुछ में तो काम कुछ आगे भी बढ़ा है। इस सन्दर्भ में नयी तालीम समिति से आपकी क्या अपेक्षा है?

उत्तर —जिन गावों में ग्रामदान हो गया है वहाँ नयी तालीम वाले जायें और गाँववालों से कहें कि हम आपके गाँव में स्कूल खोलेंगे। किन्तु उस स्कूल की पढ़ाई नौकरी में जाने के लिए नहीं होगी। वहाँ खेती उद्योग आध्यात्मिक ज्ञान और ग्राम विकास के अन्य कामों के लिए शिक्षण की व्यवस्था करेंगे। यदि गाँव में ऐसी शालाएँ खुल तो उसके लिए गाँव के लोग तैयार हो जायेंगे।

जो ज्ञान मुट्ठीभर लोगों के पास ही हो वह मेरे काम का नहीं। अब सवाल यह है कि सब को यह सब ज्ञान कैसे मिले? इस विचार में से नयी तालीम का जन्म हुआ है। मैं जो कहता हूँ कि नयी तालीम सात साल के बच्चे से नहीं, माँ के गर्भ से आरम्भ होनी चाहिए—इसका रहस्य तुम समझ लो। अगर माँ परिश्रमी होगी विचारवान होगी व्यवस्थित होगी, संयमी होगी, तो बच्चे पर इसका संस्कार माँ के गर्भ में ही पड़ेगा।

—महात्मा गांधी

श्रीमन्नारायण

'सा विद्या या विमुक्तये'

एक बार महात्मा गांधी ने सेवाग्राम में तालीमी संघ के कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए कहा था, "मैंने भारत को कई चीज देने का प्रयत्न किया है। किन्तु मेरी दृष्टि से बुनियादी शिक्षा उनमें सबसे कीमती है।"

सन् १९३७ में वर्धा के शिक्षा मण्डल की रजत-जयन्ती मनायी जानेवाली थी। मैं कुछ समय पहले ही मण्डल का मंत्री चुना गया था। उन्हीं दिनों गांधीजी ने 'हरिजन' के कई लेखों में शिक्षा-सम्बन्धी अपने मौलिक विचार व्यक्त किये थे। उनकी धारणा थी कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण काफी हद तक स्वावलम्बी होना चाहिए और स्कूलों का कम-से-कम चालू खर्च विद्यार्थियों व शिक्षकों के सामूहिक व उत्पादक श्रम द्वारा निकल आना चाहिए। यह योजना व्यावहारिक साबित हो सकती है यदि विद्यार्थियों को कृषि व लघु उद्योगों द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान दिया जाय और हमारी शिक्षा-प्रणाली 'किताबी' होने के बजाय श्रम-आधारित हो।

एक दिन मैंने पूज्य बापूजी के सामने सुझाव रखा कि मण्डल की रजत-जयन्ती के अवसर पर उनके शिक्षा-सम्बन्धी सुझावों पर विचार करने के लिए एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया जाय। इसमें कांग्रेस के नये मन्त्रिमण्डलों के शिक्षा-मंत्री भी आमंत्रित किये जायें और कुछ चुने हुए देश के शिक्षा-शास्त्री भी। गांधी जी को मेरा सुझाव पसन्द आया और उन्होंने स्वयं उन व्यक्तियों की सूची तैयार की जिन्हें इस राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में बुलाया जाय। बाद में मेरे आग्रह पर गांधीजी ने इस सम्मेलन का अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया।

करें।० अगर यह ख्याल सही हो तो हमारे स्कूलों में इन दो पेशों का जानकारी बचपन से ही कराय जाने की सहूलियत होनी चाहिए। खेती और बुनाई वगैरह का सुन्दर ज्ञान देने लायक हालत पैदा करने के लिए हमारे तमाम स्कूल गावों और शहरों के घनी बस्तीवाले हिस्सों में न होकर एसी जगह होने चाहिए जहां बड़े बड़े खेत तैयार किये जा सकते हों और शिक्षा लगभग खुली हवा में दी जा सके। एसे स्कूलों में लड़कों का खेलकूद उन स्कूलों के खेतों में हल चलाने का होगा। यह ख्याल झूठा है कि अगर बच्चों और नौजवानों के लिए फुटबॉल क्रिकेट वगैरह न हों तो उनकी जिंदगी शुष्क बन जाय। हमारे किसानों के लड़कों का क्रिकेट वगैरह नसीब नहीं होते फिर भी उनमें आनंद या निर्दोष मस्ती की कमी नहीं पायी जाती।

लोकमत की अनिवार्यता

इस तरह शिक्षा का क्रम बदलना कोई मुश्किल बात नहीं। लोकमत इस तरह के विचार रखनेवाला होना चाहिए। फिर तो सरकार का काम फेरबदल किये बिना चल नहीं सकता। लोकमत तैयार होने से पहले जिन लोगों को ऊपर बतायी शिक्षा पसंद हो उन्हें प्रयोग करना चाहिए। और अगर जनता उनकी कोशिश का अच्छा नतीजा देखेगी तो १० अपने आप वैसा ही करना चाहेंगे। मुझे एसा लगता है कि इस तरह के प्रयोग के लिए ज्यादा खर्च की आवश्यकता नहीं है। लेकिन यह लेख व्यापार के विचार से नहीं लिखा गया है। लिखने का हेतु मुख्य यह है कि इस लेख के पढ़नेवाले इस बात की खोज करें कि सच्ची शिक्षा क्या है?

नोट — यह लेख सन १९१६ में एक गुजराती पत्रिका 'समालोचक' के अक्टूबर के अंक में छपा था। किंतु आज के संदर्भ में भी यह कितना ताजा है यह पाठक स्वयं देखेंगे। —सम्पादक।

---

० ये आंकड़े आज भी लगभग ज्यों-के-त्यों हैं।

विनोबा

पाँचवी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा—निरर्थक, निरुपयोगी

[अभी गत ९ अगस्त को पवनार में पूज्य विनोबाजी से शिक्षा-सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा हुई। सेवाग्राम में गतवर्ष अक्टूबर में हुए राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन, जिसका उद्‌घाटन स्वयं प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी ने किया, के बाद से भारत सरकार शिक्षा में बुनियादी परिवर्तनों की बात कहने लगी है। प्रधान मन्त्री ने स्वयं इस पर कई बार बल दिया है। किन्तु अब पाँचवी पंचवर्षीय योजना में सरकार ने शिक्षा की जो रूपरेखा तैयार की है, उससे सारे देश को निराशा होना स्वाभाविक है। इस प्रश्न के साथ अन्य प्रश्नों पर विनोबाजी की राय पाठकों की जानकारी हेतु नीचे दी जा रही है। —सम्पादक]

प्रश्न —सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने देश की शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन के लिए कुछ मुद्दे तय किये थे। उस प्रारूप को अनेक राज्य सरकारों ने काफी हद तक स्वीकार भी किया है। किन्तु अभी भारत सरकार ने पाँचवी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा का जो प्रारूप सोचा है उसमें सम्मेलन की सिफारिशों का कोई स्थान नहीं दिया गया है। वह प्रारूप आपने देखा होगा। उस पर आपकी क्या राय है ?

उत्तर —वह प्रारूप मैंने देखा है। मैंने उस पर लिख दिया है—निरर्थक, निरुपयोगी।

प्रश्न —देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति की बड़ी-बड़ी त्रुटियों में से परीक्षा प्रणाली भी एक बड़ी त्रुटि है। उसमें आपकी राय में क्या-क्या परिवर्तन होने चाहिए ?

उत्तर —परीक्षा के बारे में मेरा अपना विचार है कि उसमें बच्चों के साल भर के काम की रिपोर्ट मुख्य है। साल भर तक जो ज्ञान बच्चा ने पाया उसका सतत् अवलोकन होना चाहिए। इस दृष्टि से ही हर माह परीक्षा ली जा सकती है। आखिरी परीक्षा में बच्चों को पुस्तकें दी जा सकती हैं। लेकिन उसके प्रश्न-पत्र ऐसे हों जिनका उत्तर देना पुस्तकों को पाँच सात जगह देखे बगैर सम्भव न हो। इसमें पुस्तक का

उपयोग कैसे करें यह मुख्य बात है। इसमें बच्चे पुस्तकों के साथ यही चाहे तो परस्पर राय मशविरा (कंसल्ट) भी कर सकते हैं। पास हुए तो पास। किन्तु पास होनेवाले को नौकरी हो ही यह आवश्यक नहीं। परीक्षा का नौकरी से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। नौकरी देनेवाले अपनी स्वतन्त्र परीक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। मैंने यह बात कई बार कह दी है। मेरा ख्याल है— शिक्षा के बारे में बाबा को अब कुछ कहने को बाकी नहीं रहा। केवल आपके करने का काम बाकी है।

प्रश्न —देश में ग्रामस्वराज्य के लगभग ३५ सघन क्षेत्र हैं और कुछ में तो काम कुछ आगे भी बढ़ा है। इस सम्बन्ध में नयी तालीम समिति से आपकी क्या अपेक्षा है?

उत्तर —जिन गाँवों में ग्रामदान हो गया है वहाँ नयी तालीम वाले जायँ और गाँववालों से कहें कि हम आपके गाँव में स्कूल खोलेंगे। किन्तु उस स्कूल की पढ़ाई नौकरी में जाने के लिए नहीं होगी। वहाँ खेती, उद्योग, आध्यात्मिक ज्ञान और ग्राम विकास के अन्य कामों के लिए शिक्षण की व्यवस्था करेंगे। यदि गाँव में ऐसी शालाएँ खुलें तो उनके लिए गाँव के लोग तैयार हो जायेंगे।

> जो ज्ञान मुट्ठीभर लोगों के पास ही हो वह मेरे काम का नहीं। अब सवाल यह है कि सब को यह सब ज्ञान कैसे मिले? इस चिन्तन में से नयी तालीम का जन्म हुआ है। मैं जो कहता हूँ कि नयी तालीम सात साल के बच्चे से नहीं, माँ के गर्भ से आरम्भ होनी चाहिए—इसका रहस्य तुम समझ लो। अगर माँ परिश्रमी होगी विचारवान होगी व्यवस्थित होगी, संयमी होगी, तो बच्चे पर इसका संस्कार माँ के गर्भ में ही पड़ेगा।
>
> —महात्मा गांधी

श्रीमन्नारायण

'सा विद्या या विमुक्तये'

एक बार महात्मा गाधी न सेवाग्राम में तालीमी संघ के कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए कहा था, "मैंने भारत को कई चीजें देने का प्रयत्न किया है। किन्तु मेरी दृष्टि में बुनियादी शिक्षा उनमें सबसे कीमती है।"

सन् १९३७ में वर्धा के शिक्षा मण्डल की रजत-जयन्ती मनायी जानेवाली थी। मैं कुछ समय पहले ही मण्डल का मंत्री चुना गया था। उन्ही दिनो गांधीजी ने 'हरिजन' के कई लेखों में शिक्षा-सम्बन्धी अपने मौलिक विचार व्यक्त किये थे। उनकी धारणा थी कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षण काफी हद तक स्वावलम्बी होना चाहिए और स्कूलों का कम-से-कम चालू खर्च विद्यार्थियों व शिक्षकों के सामूहिक व उत्पादक श्रम द्वारा निकल आना चाहिए। यह योजना व्यावहारिक साबित हो सकती है यदि विद्यार्थियों का कृषि व लघु उद्योगों द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान दिया जाय और हमारी शिक्षा प्रणाली 'किताबी' होने के बजाय श्रम-आधारित हो।

एक दिन मैंने पूज्य बापूजी के सामने सुझाव रखा कि मण्डल की रजत-जयन्ती के अवसर पर उनके शिक्षा-सम्बन्धी सुझावों पर विचार करने के लिए एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया जाय। इसमें कांग्रेस के नये मंत्रिमण्डलों के शिक्षा मंत्री भी आमंत्रित किये जायें और कुछ चुने हुए देश के शिक्षा शास्त्री भी। गांधीजी को मेरा सुझाव पसन्द आया और उन्होंने स्वयं उन व्यक्तियों की सूची तैयार की जिन्हें इस राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में बुलाया जाय। बाद में मेरे आग्रह पर गांधीजी ने इस सम्मेलन का अध्यक्ष बनना भी स्वीकार कर लिया।

सूची देखकर मैंने कहा, "बापूजी इसमें किसी मुस्लिम शिक्षा-शास्त्री का नाम नहीं है। जामिया मिलिया, दिल्ली के प्रिंसिपल डॉ० जाकिर हुसैन को बुलाना शायद ठीक रहेगा।"

"हाँ, उन्हें जरूर निमंत्रण भेजो। और देखो, डॉ० हुसैन को अपने हाथ से उर्दू में खत लिखना।"

मैंने वैसा ही किया और चौथे दिन डॉ० जाकिर हुसैन की स्वीकृति का पत्र भी मेरे पास आ गया।

किन्तु जब सम्मेलन शुरू हुआ तो डॉ० हुसैन ने गांधीजी के सुझावों के एक पहलू का घोर विरोध किया। उन्हें इस बात का डर था कि अगर विद्यार्थियों से शिक्षकों के वेतन का खर्च निकालने के लिए स्कूलों में काम कराया जायगा तो शिक्षक एक प्रकार से बच्चों को गुलाम समझकर उनसे मेहनत करायेंगे। दुर्भाग्यवश मैं उन्हीं दिनों बीमार पड़ गया और सम्मेलन में शामिल न हो सका। किन्तु जब मैंने सुना कि डॉ० जाकिर हुसैन बापूजी के विचारों की कड़ी टीका कर रहे हैं तो मुझे काफी परेशानी महसूस हुई, क्योंकि मैंने ही सूची में उनका नाम जुड़वाया था।

लेकिन बापूजी ने इस विरोध का पूरा फायदा उठाया और अपनी योजना का विस्तार से समझाया। उन्होंने बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि उद्योग द्वारा शिक्षा देने का यह हेतु नहीं है कि विद्यालयों का चालू खर्च कमाया जाय। मुख्य उद्देश्य तो यह है कि बच्चों को उत्पादक श्रम द्वारा अधिक उपयोगी व वैज्ञानिक शिक्षण दिया जाय। सिर्फ किताबी पढ़ाई से विद्यार्थियों का न तो शारीरिक विकास होता है और न बौद्धिक व आध्यात्मिक ही। अगर उन्हें उपयोगी काम करते हुए विभिन्न विषयों की जानकारी दी जायगी तो उनका सर्वांगीण विकास हो सकेगा। फिर बापू ने कहा, "हाँ, अगर शिक्षक इस नयी योजना के अन्तर्गत अपना कार्य कुशलतापूर्वक करेंगे तो उत्पादन से स्कूलों का खर्च भी काफी अंश में सहज ही चलाया जा सकेगा। भारत जैसे गरीब देश के लिए यह कोई साधारण लाभ नहीं है।"

अपने विचारों की समीक्षा करते हुए गांधीजी ने दोहराया, "मैं कांग्रेस सरकारों का शिक्षा-खर्च घटाने के लिए अपना सुझाव पेश नहीं कर रहा हूँ। शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने के लिए मैं इसलिए आतुर हूँ कि हमारे बच्चे पुरुषार्थी बनें, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें, और सरकारी नौकरियों के पीछे न दौड़ें। हमारे ऋषियों ने कहा था कि सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियों को मुक्ति प्रदान करे—'सा विद्या या विमुक्तये।' लेकिन वर्तमान प्रणाली तो हमारे बच्चों को अपंग व परावलम्बी बना रही है। इसलिए इस व्यवस्था को बुनियाद से बदलना बिलकुल जरूरी है।"

दो दिन की बहस के बाद सम्मेलन ने बापूजी के प्रस्ताव को एक राय से स्वीकार किया। डा० जाकिर हुसैन जो शुरु में गांधीजी की बुनियादी शिक्षा-योजना के खिलाफ थे, उसके सबसे उत्साही प्रचारक बने। बापूजी ने पाठ्यक्रम समिति का अध्यक्ष भी डॉ० हुसैन को ही बनाया। यह थी खूबी महात्मा गांधी के काम करने की।

× × ×

कांग्रेस की सरकारों ने 'वर्धा-योजना' को— जिसे बाद में 'बुनियादी तालीम' के नाम से पुकारा जाने लगा— अपने क्षेत्रों में लागू किया। शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए कई 'ट्रेनिंग कॉलेज' खोले गये। लेकिन दो वर्ष बाद ही द्वितीय विश्व-युद्ध के शुरु हो जाने के कारण कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' और फिर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की वजह से सभी राष्ट्रीय नेता जेलों में नजरबन्द हो गये। शिक्षा की नयी योजना भी करीब सभी प्रान्तों में बन्द की गयी। अंग्रेजों को उसमें कोई दिलचस्पी थी ही नहीं वे तो उसे बगावत का एक खतरनाक प्रोग्राम समझते थे।

लेकिन यह अफसोस का विषय है कि आजादी मिलने के बाद भी केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने बुनियादी शिक्षा को गम्भीरता से आगे बढ़ाने में योगदान नहीं दिया। यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में उसका उल्लेख किया गया और मंत्रियों के भाषणों में 'नयी तालीम' की प्रशंसा की गयी किन्तु आज भी हमारे अधिकतर स्कूल उसी पुराने ढर्रे पर संचालित किये जा रहे हैं। गुजरात में फिर भी बुनियादी तालीम का अच्छा विकास हुआ है और सरकारी मान्यता व्यवस्थित ढंग से दी गयी है। लेकिन अन्य राज्यों में तो गांधीजी की यह योजना लगभग खतम ही हो गयी है।

× × ×

ऐसा क्यों हुआ? एक तो 'बुनियादी तालीम' की योजना को जरूरत से ज्यादा जकड़ दिया गया और उसमें लचकीलेपन की गुंजाइश नहीं रखी गयी। दूसरे, बुनियादी स्कूलों को अधिकतर गांवों में शुरु किया गया, शहरों में नहीं। इसकी वजह से देहाती जनता में एक भावना फैल गयी कि गांधीजी की योजना द्वारा कुछ घटिया ढंग की शिक्षा सिर्फ गांवों के बच्चों को दी जा रही है, ताकि वे शहरी विद्यार्थियों से सरकारी नौकरियों के लिए होड़ न कर सकें। नतीजा यह हुआ कि देहाती क्षेत्रों में बुनियादी तालीम का विरोध होने लगा और सरकारों को एक आसान बहाना मिल गया।

सच बात तो यह है कि शिक्षकों का काफी सहयोग नहीं मिला। किसी भी नयी योजना को लागू करने में शिक्षकों को बड़ी मेहनत उठानी पड़ती है और अपना पुराना ढर्रा बदलना पड़ता है। शिक्षा विभाग के अफसर भी यह परिश्रम उठाने को

तैयार नही थे। उन्होंने प्रोत्साहन देने के बजाय इस योजना पर ठंडा पानी ही डाला ताकि उनकी परेशानी समाप्त हो जाय। बुनियादी स्कूलों में जो सूत विद्यार्थियों द्वारा काता गया वह वर्षों तक गोदामों मे ही पड़ा सड़ता रहा।

शहरो मे नेताओ के बच्चे पुराने ढंग के विद्यालयो मे ही पढते रहे। बल्कि अंग्रेजी 'कन्वण्टा' का दरजा और भी ऊँचा हो गया। अंग्रेजी पढे विद्यार्थियों का अखिल भारतीय शासकीय परीक्षाओं मे सफल होना ज्यादा आसान है। इसलिए शहरों की कुछ 'बुनियादी' शालाओं मे सिर्फ गरीब व चपरासी वर्ग के बच्चे जाते रहे। इसकी भी जो प्रतिक्रिया होनी थी वह होकर रही। राज्य सरकारों की ओर से उचित मान्यता भी प्रदान नहीं की गयी। 'बुनियादी स्कूल' एक विशिष्ट प्रकार की संस्थाएँ बनी रही, उन्हे शिक्षा के सामान्य प्रवाह मे शामिल नही किया गया।

× × ×

सन् १९६६ मे कोठारी शिक्षा आयोग ने बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो को स्वीकार किया और उनके महत्त्व पर जोर दिया। लेकिन 'बुनियादी' शब्द से झिझकते हुए उन्होंने एक नया शब्द गढा— 'Work experience" यानी 'कार्य-अनुभव।' यह एक रूसी शब्द का अंग्रेजी अनुवाद है। किसी ने ठीक ही कहा है कि हमारे देश से अंग्रेज गये, लेकिन अंग्रेजियत नही गयी। हमारी कुछ आदत ही पड़ गयी है कि हरेक बात में विदेशों की ओर देखते हैं, अपने देश की संस्कृति, परम्परा और महापुरुषों की तरफ नहीं। चूंकि महात्मा गांधी ने 'बुनियादी' शब्द इस्तेमाल किया इसलिए वह 'फैशन' मे कैसे दाखिल किया जाय ?

बहरहाल, मुझे तनिक भी दिलचस्पी नही है सिर्फ नामो मे। अगर हमारे शिक्षा शास्त्रियों एवं अधिकारियों को 'बुनियादी' शब्द से कुछ चिढ़ हो गई है तो जो दूसरा नाम देना हो खुशी से दे। लेकिन इस चिढ़ की वजह से बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तो को न फेंक दे।

× × ×

आखिर, गांधीजी के बुनियादी विचार क्या थे ? वे स्वतंत्र भारत के बच्चो मे स्वावलम्बी भावना जाग्रत करना चाहते थे। उनकी आकांक्षा थी कि आजाद हिन्दुस्तान के नौजवान सरकारी नौकरियों के चक्कर में पड़ने के बजाय उत्पादक पुरुषार्थ के आधार पर अपना व राष्ट्र का उत्थान करें। यदि ऐसा न हुआ तो शिक्षित नौजवानों में बेकारी फैलेगी और वे समाज में अशान्ति व उपद्रवों के कारण बनेंगे। राष्ट्रपिता की यह कितनी दूरदृष्टि थी ? आज हम किताबी शिक्षा के दुष्परिणाम देख ही रहे हैं। देश मे जो हिंसक प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ रही हैं उनके पीछे काफी संख्या मे हमारे नौजवान ही रहते हैं। पढ़े लिखे हों और फिर बेकार भी, तो साम्यवाद स्वाभाविक ही है।

आचार्य विनोबा ने एक दिन शिक्षा-सम्बन्धी चर्चा करते हुए विनोद में कहा, "पुराने जमाने में हमारे पूर्वजों ने विचार व्यक्त किया था कि असन्तुष्ट ब्राह्मण नष्ट हो जाता है—'असन्तुष्टा द्विजा नष्टा।' लेकिन मैंने एक नयी शब्दावलि बनाई—'असन्तुष्ट द्विज कम्युनिस्ट' अर्थात् असन्तुष्ट शिक्षित वर्ग साम्यवादी बन जाता है। यह विनोद नहीं हमारे लिए गम्भीर चेतावनी है।

× × ×

व्यावहारिक दृष्टि से भी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बेकार साबित हो रही है। हमारे संविधान में लिखा गया था कि दस वर्ष के अन्दर ७ वर्ष से १४ वर्ष की उम्र के बच्चों को मुफ्त व लाजिमी प्रारम्भिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय। लेकिन २३ वर्ष के बाद भी यह शक्य नहीं हो सका है। एक तो सैकड़ों करोड़ रुपयों का खर्च कहाँ से उपलब्ध हो? और दूसरे, गाँव की जनता का इस तरह की किताबी शिक्षा के लिए उत्साह नहीं है।

जब मैं योजना आयोग का सदस्य था तब अपने भ्रमणों में अक्सर सड़क के किनारे प्राथमिक शालाओं को देखने के लिए बिना किसी पूर्व प्रोग्राम के रुक जाता था। एक दिन किसी प्राइमरी स्कूल में जाकर देखा कि विद्यार्थियों की संख्या काफी कम थी। मैंने शिक्षक से पूछा —

"इस शाला में गाँवों के बच्चों की संख्या का कितना प्रतिशत भरती हुआ है?"

"मुश्किल से ५० प्रतिशत होगा।"

"इसकी क्या वजह है?"

"माँ-बाप अपने बच्चों को स्कूल में भेजना पसन्द नहीं करते।"

"ऐसा क्यों?"

इतने में गाँवों के कुछ बुजुर्ग किसान भी मेरे पास एकत्र हो गये। मैंने उन्हीं से पूछा कि बच्चे स्कूल में क्यों नहीं भेजे जाते। सहज उत्तर मिला —

"हमारे बच्चे घर में रहकर काफी काम करते हैं। जानवरों को चराने के लिए ले जाते हैं, पिता के लिए खेत पर रोटी ले जाते हैं, और बड़ा लड़का घर में अपने छोटे भाइयों की देखभाल भी कर लेता है।"

"लेकिन विद्यालय में पढ़कर बच्चे गाँव की अधिक सेवा नहीं करेंगे?"

"साहब, हमारा तजुर्बा तो यही है कि स्कूल में भरती होते ही विद्यार्थी 'बाबू' बन जाते हैं। वे फिर हमारे काम के नहीं रहते। वे तो गाँव में भी रहना पसन्द नहीं करते। शहरों में जाकर नौकरी ढूँढ़ते हैं और दर-दर मारे-फिरते हैं।"

कितना सही विश्लेषण था उन अपढ गाँववालो का ! इस प्रकार की साधारण प्राइमरी शिक्षा का देश मे फैलाने से किसको फायदा होगा ? लाभ के बजाय बेकारी फैलेगी, कृषि व उद्योगों का उत्पादन घटेगा और अशान्ति के कारण हमारी लोकशाही की नीव ही हिलने लगेगी।

× × ×

कुछ समय पहले मैं गुजरात राज्य के डाँग आदिवासी क्षेत्र में भ्रमण के लिए गया था। वहाँ कई 'आश्रम-शालाओं' का निरीक्षण किया। इन शालाओं मे आदिवासी बच्चों को अपेक्षाकृत अच्छी तालीम दी जाती है। उन्हे छात्रालयो में रखा जाता है ताकि उनके शारीरिक व नैतिक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जा सके।

एक 'आश्रम शाला' मे आसपास के आदिवासी किसान एकत्र हुए थे। बहनें भी काफी सख्या मे उपस्थित थीं। अपने भाषण के अन्त में मैंने कहा, "इस शाला की शिक्षा के बारे मे किसी भाई या बहन को कुछ कहना हो तो जरूर कहे, सकोच न करें। गवर्नर के सामने उन्हें बोलने के लिए मौका देना एक नयी बात थी। साधारण सभाओं मे जिला अधिकारियो की हाजिरी मे भी ये भोले भाले आदिवासी अपनी जबान नही खोलते हैं, चुप बैठकर सब बात सुनना पसन्द करते हैं। लेकिन मेरे आग्रह पर एक अधेड उम्र की बहन उठकर सामने आयी और नम्रतापूर्वक लाउड-स्पीकर के पास खड़ी होकर कहने लगी —

'सरकार, इस शाला मे पढाई तो ठीक ही होती है। शिक्षक बच्चों की ओर काफी ध्यान देते है। मेरा लडका जो यहाँ बैठा है इसी स्कूल मे पढा है। उसे पढाने के लिए मैंने घर के कुछ बरतन, मुर्गियाँ वगैरह भी बेच दी थीं। लेकिन अब पढने के बाद क्या ? लडका बेकार है। आखिर हारकर मेरे ही साथ मजदूरी करने लगा है। इसी मजदूरी को करने के लिए पढाई की क्या जरूरत थी ? वह तो बिना पढे मैं भी कर लेती हूँ और इस उम्र में अपने पढे लिखे लडके से ज्यादा कमा लेती हूँ।"

उस भोली भाली आदिवासी बहन के इन शब्दों से सारी सभा में सन्नाटा छा गया। शिक्षक व उपस्थित अधिकारी चुप बैठे रहे। किसी के पास कोई सन्तोष-जनक उत्तर नही था।

मेरे साथ राज्य के एक मिनिस्टर भी थे। हमने चर्चा करके यह निश्चय किया कि इस आदिवासी क्षेत्र मे कम-से-कम एक उत्तर-बुनियादी स्कूल शुरू किया जाय जिसमे बच्चो को वन-आधारित उद्योगों व सुधारी कृषि का शिक्षण दिया जाय। मुझे खुशी है कि यह कार्य डाँग मे शुरू भी हो गया है।

× × ×

कई साल हुए मैं केरल गया था। एक दिन सुबह त्रिवेन्द्रम् में राज्य के सचिवालय की ओर जाते हुए मैंने रास्ते में भीड़ एकत्र देखी। पूछने पर मालूम हुआ कि मोटर और साइकिल की टक्कर हो गई है। तीन-चार घंटे बाद जब मैं उधर से वापस लौटा तो उतनी ही भीड़ जमा थी। पुलिसवाले जांच-पड़ताल कर रहे थे। मैंने अपनी मोटर थोड़ी धीमी कराई और पास खड़े लोगों से पूछा —

"भाई क्या बात है?"

"कुछ नहीं, एक 'एक्सीडेण्ट' हो गया है।"

"पर इतनी देर से यह भीड़ क्यों खड़ी है?"

"साहब, इनका और काम ही क्या है।"

"क्या, यह कुछ काम काज नहीं करते?

"नहीं, यह सब पढ़-लिखे बेकार हैं। इसी तरह रोज कहीं न कहीं घूमते फिरते अपना वक्त गुजारते हैं।

मैं यह सुनकर बिलकुल ठंडा हो गया। मुझे लगा कि बस यही सिलसिला धीरे धीरे सारे भारत में फैलनेवाला है। केरल राज्य शिक्षा में बहुत आगे माना जाता है, क्योंकि वहाँ की साक्षरता लगभग ९० प्रतिशत है। वहाँ की शिक्षित जनता का जब यह हाल है तो फिर दूसरे राज्यों की बढ़ती साक्षरता और शिक्षा के बाद दूसरा नतीजा क्या निकलेगा?

त्रिवेन्द्रम् का वह दृश्य मेरी आंखों के सामने आज भी नाचता रहता है सचमुच बड़ा भयंकर दृश्य था वह!

× × ×

एक बार गुजरात में मित्र बाल के आमंत्रण पर किसान-सम्मेलन को सम्बोधित करने गया। आसपास के हजारों अनुभवी किसान उपस्थित थे। मैंने अधिक अन्न उपजाने के बारे में जोर दिया और समझाया कि अन्न-स्वावलम्बन के बिना देश की स्वतंत्रता भी खतरे में पड़ सकती है। जैसे ही मेरा व्याख्यान पूरा हुआ, एक बुजुर्ग किसान हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और कहने लगा —

"आपने जो कुछ कहा सब ठीक है। हम भी चाहते हैं कि अधिक अन्न उपजायें। हममें जब तक जान है, खेती का कठिन काम करते ही रहेंगे। लेकिन हमारी पीढ़ी के बाद खेती कौन करेगा?"

"आपके कहने का क्या मतलब है?"

"अर्थ तो बिलकुल साफ है। यह देखिए ये हैं हमारे दो नौजवान लड़के। ये दोनों सामनेवाले हाईस्कूल में पढ़ते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में होते हुए भी इस विद्यालय में

कृषि का शिक्षण नहीं दिया जाता है। केवल मामूली किताबी पढ़ाई चल रही है। इसलिए मेरे लड़के खेती करनेवाले नहीं है। वे तो शहरों में चले जायेंगे।"

"आपका कहना ठीक है। शिक्षा-पद्धति में सुधार होना बिलकुल जरूरी है।"

"हाँ, शिक्षा को पहले बदल दीजिए, फिर हमें भी समझाइए कि उन्नति किस प्रकार की जाय "

मुझे उन लम्बे, मजबूत किसानों के चेहरे अब भी याद हैं। उनकी आँखों में चमक थी, तेज था। वे दिन रात खेती के काम में जुटे हुए थे। किन्तु उन्हें चिन्ता यही थी कि उनके बाद पढ़े लिखे लेकिन कमजोर और परिश्रम से दूर भागनेवाले नौजवान उस खेती को कैसे सम्भालेंगे?

स्कूलों का ही क्या, कृषि महाविद्यालयों का भी अजीब हाल है। खेतों के इन कालेजों मे अधिकतर किताबी पढ़ाई होती है। थोड़ी-बहुत व्यावहारिक खेती की शिक्षा भी दी जाती है। एक बार विनोबाजी ने बड़े मार्के की बात कही— "हमारे खेती के कालेजों मे जो शिक्षण दिया जाता है वह विद्यार्थियों को कृषि के लिए तो निकम्मा बनाता ही है, उनमें धूप व सर्दी बरदाश्त करने की शक्ति भी नहीं रहती। बूट-मोजा पहनकर घूमते फिरते हैं। फिर भला वे वर्षा मे नंगे पैर खेतों में हल कैसे चलायेंगे?"

और जो नौजवान मामूली 'आर्टस् कालेजो' में पढ़ते हैं उनका तो खुदा ही मालिक है। कुछ बेकार ग्रेजुएट्स मिलकर अपनी बेकारी दूर करने के लिए एक कालेज खोल देते हैं और दौड़ धूप करके उसे विश्वविद्यालय की ओर से मान्य भी करा लेते हैं। पर विनोबाजी के शब्दों मे ये 'आर्ट्स' महाविद्यालय ऐसी फैक्टरियाँ हैं जहाँ 'निकम्मे' (Unemployables) स्नातक बड़ी तेजी से तैयार किये जाते हैं।

× × ×

डा० जाकिर हुसैन राष्ट्रपति बनने के बाद ऋषि विनोबा से मिलने बिहार के एक गाँव मे गये। स्वभावत वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर बातचीत होने लगी। विनोबा ने कहा —

"आजकल शिक्षा का तेजी से फैलाव हो रहा है और देश में बेकारी बढ़ती जा रही है।"

"जी हाँ, शिक्षा ही बेकारी की वजह है न?"

"हम गांधीजी की 'बुनियादी तालीम' को भूल गये। फिर यही हाल होना लाजिमी है।" राष्ट्रपति ने उत्तर दिया।

"इसके लिए क्या किया जा रहा है ?"

"मैंने तो बहुत चाहा है कि कम-से-कम दिल्ली में अच्छे बुनियादी स्कूल शुरू किये जायें। अगर हम दिल्ली में कामयाब हो सके तो वहाँ की रोशनी सारे देश में फैल सकेगी। लेकिन अफसोस है कि अभी तक दिल्लीवालों ने मेरे सुझाव पर कोई खास ध्यान नहीं दिया है।"

और अब तो जाकिर साहब इस दुनिया से चले भी गये। उनकी याद में कई स्मारक बनाने की योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। लेकिन क्या 'बुनियादी तालीम' को भारत में ईमानदारी व व्यापक ढंग से फैलाना ही उनका सर्वोत्तम स्मारक नहीं होगा ?

'सा विद्या या विमुक्तये' केवल आध्यात्मिक विचार नहीं है। मुक्ति का अर्थ सिर्फ 'निर्वाण' या स्वर्ग प्राप्ति न लगाया जाय। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो इहलोक और परलोक दोनों में हमें बन्धनों से मुक्त कर सके। वर्तमान शिक्षा तो दोनों ही दृष्टि से उपयुक्त नहीं है, न इस जीवन में हमारे नौजवानों को स्वतन्त्र स्वाश्रयी और स्वाभिमानी बनाती है और न उन आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है जो परलोक में कुछ काम आ सकें।

'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम!'

> जो ज्ञान मस्तिष्क तक ही सीमित रहता है, हृदय के भीतर प्रवेश नहीं कर पाता, वह जीवन के संकटपूर्ण अनुभव के क्षणों में किसी काम का नहीं होता।
>
> —महात्मा गांधी

धीरेन्द्र मजूमदार

सामाजिक मान्यता बदले बिना बुनियादी तालीम संभव नहीं

(बुनियादी शिक्षा के ख्यात् चितक और नयी तालीम के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक श्री धीरेन्द्र मजूमदार पिछले तीन वर्षों से बिहार प्रान्त के सहरसा जिले में ग्रामदान-प्राप्ति-पुष्टि के सिलसिले में लोक-गंगा-यात्रा द्वारा लोक-शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। सहरसा में बरसात का मौसम धीरेनदा के लिए अनुकूल नहीं पडता। अत बरसात के चार महीने वे महाराष्ट्र एव मध्यप्रदेश में बितायेंगे। इस यात्रा के दौरान धीरेनदा हाल ही में सेवाग्राम आये थे। श्री बद्रीनाथ महाय ने धीरेनदा से कुछ प्रश्न पूछे जिनका उत्तर धीरेनदा के शब्दों में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। — सम्पादक)

प्रश्न – क्या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नयी तालीम के द्वारा गाँव का स्वरूप बदला जा सकता है ? अगर वह बदलने में समर्थ है तो उसका स्वरूप क्या हो सकता है ?

उत्तर – नयी तालीम के द्वारा गाँव का स्वरूप बदला जा सकता है और अवश्य बदला जा सकता है, बशर्ते तालीम का माध्यम गाँव के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जो कार्यक्रम गाँव में चल रहे हैं वे सब कार्यक्रम तालीम का माध्यम बनाये जायें। आज नयी तालीम का अर्थ समझा जाता है कि शिक्षण-शाला के अन्दर कुछ खेती आदि उत्पादक कार्यक्रम चलाना। इस तरह शाला की चहारदीवारी के अन्दर बैठकर समाज निरपेक्ष कार्यक्रमो से समाज का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। तालीम द्वारा अगर समाज-परिवर्तन करना है तो समाज को ही तालीम का माध्यम बनाना पडेगा।

प्रश्न – आज बुनियादी शिक्षा का जो स्वरुप है जिसका प्रयोग विभिन्न बुनियादी शालाओ मे देश के अन्दर होता रहा है, उससे लगता नही है कि वह भावी समाज के निर्माण में सहायक हो सकती है।

आपको लगता हो तो यह बतायें कि वह भूल कहाँ हुई है जिसके कारण उसका क्रान्तिकारी स्वरुप नही निखर सका ?

उत्तर – यह तो मैंने कह ही दिया है कि आज की शाला समाज-निर्माण में सहायक नही हो सकती है। समाज में आम बच्चे क्या काम करते हैं उसका अध्ययन करना होगा। अध्ययन से स्पष्ट होगा कि वे गाय भैंस, बकरी भेड चराते हैं, घास छीलते हैं और इसी तरह की घर गृहस्थी की बहुत सारी जिम्मेदारी के काम करते हैं। शिक्षा शास्त्रियो को इस बिन्दु पर अध्ययन करना होगा और ग्रामीण समाज के सारे बच्चे किस किस काम में स्वाभाविक रूप से लग रहते हैं, उसकी सूची बनानी होगी और गांव के वे सब काम शिक्षा का माध्यम कैसे बन सके उसका टेकनिक निकालना होगा। शुरू से ही बुनियादी शिक्षा म इस दिशा में कोई काम नही किया गया। यही नयी तालीम की असफलता का मूल कारण है।

प्रश्न – अभी हमारी शिक्षा केवल पुस्तकीय या ज्ञान-केन्द्रित है। शिक्षा में दस्तकारी व व्यावहारिक काय का स्थान मिले इसके सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

उत्तर – यह सही है कि आज देश की शिक्षा केवल पुस्तकीय या ज्ञान-केन्द्रित है। लेकिन शिक्षा म दस्तकारी व दूसरे व्यावहारिक काय को स्थान मिलन पर शिक्षित व्यक्ति को कोई लाभ नही होगा क्योंकि देश की सामाजिक मान्यता यह है कि शिक्षित व्यक्ति के लिए हाथ से काम करना अप्रतिष्ठित है। इसलिए वह उस काम को नही करेगा। फिर दस्तकारी व दूसरे व्यावहारिक काय के शिक्षण म सरकारी तौर-तरीके मे जो खच होता है उसका दुरुपयोग होगा और देश के गरीब लोगो के लिए कमर तोड बोझ होगा। इसलिए बिना सामाजिक मान्यता बदले व्यावसायिक शिक्षा देना उचित नही होगा, ऐसी मेरी राय है। सामाजिक मान्यता तब बदलेगी जब प्रधानमंत्री से लेकर सारे शिक्षित लोग हाथ से काम करने का सिलसिला शुरू करेंगे। मुझे तो निकट भविष्य मे ऐसा कुछ होगा, उसका लक्षण नही दिखाई देता है।

आचार्य राममूर्ति

शिक्षा में अनोखी सूझ

भारत के शिक्षा-मंत्रालय ने सोचा है कि अगले सत्र से पब्लिक स्कूलों में एक चौथाई जगहें गरीब बच्चों के लिए, खास तौर पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों के लिए सुरक्षित रखी जायेंगी। देश भर में पहले साल ऐसे पाँच सौ बच्चों को छात्रवृत्ति मिलेगी, दूसरे साल बारह सौ को। इस पर दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक टाइम्स ऑव इण्डिया ने सम्पादकीय टिप्पणी लिखी है। वह पूछता है, "सार्वजनिक पैसे को इस तरह खुले हाथ खर्च कर सरकार क्या हासिल करना चाहती है?" आगे चल कर वह लिखता है, "थोड़े-से लड़के-लड़कियों को समाज के विशिष्ट वर्ग में प्रवेश मिल जायेगा, इससे अधिक क्या होगा? लेकिन इन गरीब छात्र-छात्राओं को ऐसे छात्र-छात्राओं के साथ रहना पड़ेगा जिनके माता-पिता एक महीने में उतने रुपये की शराब पी जाते होंगे जितनी उनके घर की साल भर की कुल कमाई होगी। ये छात्र एक ओर अपने घर के वातावरण से कट जायेंगे, और दूसरी ओर नये समाज में भी, जिसमें ऐंठ और दिखावा भरा हुआ है, पूरे तौर पर स्वीकार नहीं किये जायेंगे। पब्लिक स्कूल में वे थोथे पाश्चात्य मूल्यों को सीखेंगे जिन्हें सिखाना ही इन स्कूलों की विशेषता है और सीखकर वे अपने जीवन में क्या करेंगे सिवाय इसके कि किसी बड़ी कम्पनी, खास तौर पर विदेशी कम्पनी में 'बड़ा साहब' बन जायें, और क्लब में जाना शुरू कर दें जो गुलामी के दिनों के सबसे घृणित अवशेष हैं। क्या टैक्स से वसूल किया हुआ पैसा ऐसे ही कामों में खर्च करने के लिए है?"

"ऐसे समाज की, जो समाजवाद का दम भरता है, शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें योग्यता और अवसर की समानता की मान्यता हो, न कि अब और विशेषाधिकार को। हमारे पब्लिक स्कूल विशिष्ट वर्गों के लिए चलाये जाते हैं। सरकार को चाहिए कि समाज पर पड़नेवाले इन स्थानों के बुरे असर को दूर करे न कि उन वर्गों के बच्चों को भी उनमें भेजे जो अब तक उनसे अलग रहे हैं। पब्लिक स्कूलों का इतना ही दोष नहीं है कि वे धनियों के लिए हैं। उनका इससे बड़ा दोष यह है कि वे उस समाज-रचना के विरोधी हैं जिसे हम अपने देश में लाना चाहते हैं। जिन मूल्यों पर वे चल रहे हैं वे हमारे देश के लिए सर्वथा त्याज्य हैं। सरकार को चाहिए कि स्कूलों में ऐसी शिक्षा चलाये जो छात्र और देश, दोनों के लिए सार्थक हो, जो छात्र को उत्पादक बनाए और जो उसके और वातावरण के बीच सहकारी सम्बन्ध स्थापित करे। यदि ऐसा होता है तो पब्लिक स्कूलों को जानबूझकर तोड़ना नहीं पड़ेगा। वे अपने आप खत्म हो जायेंगे।"

सरला बहन

नयी शिक्षा की आत्मा

आधुनिक शिक्षा खुद अपने में ही असन्तुष्ट है और यह असन्तोष निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस बात का सबूत भारत तथा अन्य देशो में निरन्तर चलनेवाले विद्यार्थी-आन्दोलन से होता है। आज के कुछ उद्दड विद्यार्थी विश्वविद्यालयो को जलाते हैं, उपकुलपतियो का घेराव करते हैं, शिक्षको को धमकी देते हैं, उनकी मारपीट भी करते हैं।

फिलस्तीन के एक महान शिक्षक ने कहा है, "पेड की जाँच उसके फल से ही होती है।" हम आधुनिक शिक्षा के फल को देखकर यह कह सकते हैं कि आज की शिक्षा बिलकुल बेकार है। नये प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है—उस शिक्षा का सम्बन्ध वास्तविक जीवन में होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ बौद्धिक या मानसिक सीमाओ तक ही सीमित नही रहना चाहिए। उसका लक्ष्य विद्यार्थी में जड पोथियो से लिए हुए तत्व या बाह्य नैतिक मूल्यो तथा छिछले विचारो को बढाना ही नही हो सकता है। सही शिक्षा को विद्यार्थी को जीवन की समस्याओ का सामना करने के लिए तैयार करना चाहिए। उसकी शिक्षा ऐसी हो जो जीवन की घटनाओ का सफलता से सामना कर सके। इसलिए आज सही प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता है। मुझे शका है कि हमारे बहुत से शिक्षक पोथियो पर ही पले हुए हैं— जीवन पर नही। पुरातन भारत में शिक्षको को 'आचार्य' कहते थे। वह ठीक ही था। उन दिनो शिक्षा में पोथी नही, जीवन ही प्रधान था। पाठशाला जीवन का प्रशिक्षण देने की एक निश्चित जगह थी।

जब से छापेखाने का निर्माण हुआ तब से पोथियों की सख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। आजकल विद्यार्थियो के लिए इतनी पोथियाँ तैयार हैं कि उन्हे उन तथ्यों को दुहरानेवाले *भाषणो में उपस्थित होने की आवश्यकता महसूस नही* होती है। बहुत-से शिक्षक वर्ग में सिर्फ उन्हीं बातो को दुहराते हैं जो उन्होने पोथियों में पढ़ी हैं। पोथियो के ज्ञान में काफी विद्यार्थी अपने शिक्षको से भी आगे बढे हुए होते हैं। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विद्यार्थी पाठशाला में पाये हुए ज्ञान से ज्यादा-से ज्यादा असन्तुष्ट होते जा रहे हैं।

अब विद्यार्थी ऐसी पोथियों से सन्तुष्ट नहीं हैं जिनका सम्बन्ध उनके वास्तविक जीवन से नहीं है। न उन्हें ऐसी परीक्षाओं में दिलचस्पी है जो पाठ्यपुस्तकों को धर्मग्रन्थ मानती हैं। वे अपने जीवन मे आनेवाली समस्याओं का उत्तर चाहते हैं। वे ऐसे मार्ग की खोज करना चाहते हैं जिससे दुनिया श्रेष्ठ और सुखी बन सके। यह उनकी अपनी गलती नहीं है कि उन्हें अन्याय और शोषण की दुनिया मे रहना पड रहा है, जिसमें क्रूरता और अमानवीय स्पर्द्धा गर्व और पीड़ा सब प्रचलित है। जब वे देखते हैं कि बुजुर्ग लोग इस परिस्थिति को बदलने के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं तो उन्हें बहुत दुख होता है।

नयी शिक्षा-पद्धति के लिए कुछ लोग सरकार की ओर देखते हैं। आजकल शिक्षा के 'राष्ट्रीयकरण' की बात चल रही है। हम लोगों के लिए जो व्यक्ति के अधिकार और अमर मूल्य मे विश्वास करते हैं, इससे ज्यादा चिन्ताजनक बात क्या हो सकती है? हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि सरकार का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है, न कि व्यक्ति का अस्तित्व सरकार के लिए। सर्वप्रथम व्यक्ति है, सरकार बाद का सवाल है। लेकिन भारत में तथा कुछ अन्य देशों मे भी यह विचार फैलता हुआ मालूम होता है कि सरकार को छोडकर व्यक्ति का कोई मतलब ही नहीं है। जिस दिशा में सरकार का हुक्म हो, उस दिशा में ही व्यक्ति का जीवन मोडना चाहिए। इससे सरकार सर्वशक्तिमान बनती है, व्यक्ति शून्य रह जाता है। ऐसी योजना का एक ही नतीजा हो सकता है— विभाजन (डिस-इंटीग्रेशन) और पतन (डिके)। हमारे युवकों और युवतियों को समझना चाहिए कि यह बिलकुल गलत विचार है। उन्हें व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्त्व समझना चाहिए। बुनियादी इकाई तो व्यक्ति ही है तथा सरकार और अन्य सभी संस्थाएँ उसकी सेवा के लिए होती हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों में, धर्म और तत्व विचार मे, विज्ञान और कला मे, व्यक्ति ने ही मानवता की समृद्धि को बढाया है।

इस बात का ख्याल करना आवश्यक है कि व्यक्तित्व की प्रधानता में हर एक व्यक्ति अन्य सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का आदर करे, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या परिस्थिति के क्यों न हों। हमारे समाज की परिस्थिति में हर एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों पर ही आधारित है। कोई व्यक्ति "टापू" नहीं है। अकेला रहना असम्भव है। हम सब लोग परस्परावलम्बी हैं। कोई भी व्यक्ति अपने को औरों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं समझ सकता है। वह शिक्षा, जिसकी वजह से हमें लगता है कि हमारा अपना महत्त्व बढ गया है, विष से भी ज्यादा हानिकारक है। यह वर्तमान शिक्षा की एक बडी बुराई है कि शिक्षित व्यक्ति का अहकार बढ जाता है। पुराने जमाने में भारत के ऋषियों ने सिखाया था कि सच्चा ज्ञान नम्रता में ही पाया जाता है। जो सच्चे अर्थ में शिक्षित व्यक्ति है वह कभी अहकारी नहीं हो सकता है।

उन दिनों में आचार्य (यानी ऋषि) समझते थे कि विद्यार्थी केवल दो टांगों पर चलनेवाला दिमाग नहीं है, वह मूल में आध्यात्मिक व्यक्ति ही है, इसलिए शिक्षा बौद्धिक प्रक्रिया में सीमित नहीं रह सकती है। सच्ची शिक्षा में त्रिविध प्रशिक्षण होता है— बुद्धि का, हृदय का और हाथ का। वर्तमान शिक्षा पोथियों की शिक्षा पर जो महत्त्व देती है, इससे न विद्यार्थी की कल्पना-शक्ति का मौका मिलता है न उसकी इच्छा-शक्ति को ही। सच्ची शिक्षा से सम्पूर्ण विद्यार्थी को प्रशिक्षण मिलता है न कि उसके एक ही अंग को।

साधु भास्वानी को गहरा विश्वास था कि आज भारत को नयी शिक्षा-पद्धति की आवश्यकता है। ऐसी शिक्षा जिससे विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण हो, जिससे वे भारत के तथा मानवमात्र के सेवक बनने को तैयार हो सकें। ऐसी शिक्षा की प्रेरणा तथा दिशादर्शन दार्शनिक स्त्री-पुरुषों के द्वारा ही मिल सकता है। दादा (साधु भास्वानी) को विश्वास था कि स्वतंत्र भारत में नयी व्यवस्था करने के लिए पक्के चरित्र के स्त्री-पुरुषों की आवश्यकता होगी, जो धन अथवा सत्ता के लोभ में न भटक सकें। जो नम्र भाव से अपनी पूरी शक्ति को जनता की सेवा में समर्पित करेंगे। वे कहा करते थे कि नव भारत का निर्माण विधान सभाओं में नहीं, पाठशालाओं में ही होगा। बचपन की कोमल अवस्था में भारतीय आदर्शों की छाप विद्यार्थियों पर पड़नी चाहिए। शिक्षा के कार्यक्रम में खुले वायुमंडल, व्यायाम, सामाजिक सेवा तथा भावनाओं का विकास, बौद्धिक शिक्षा तथा ब्रह्मविद्या, सब बराबर महत्त्व रखते हैं।

भारत में विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की संख्या लगातार बहुत तेजी से बढ़ रही है। स्नातकों तथा डाक्टरों की संख्या बढ़ रही है। 'ज्ञान' फैल रहा है। लेकिन क्या हमारे राष्ट्र में ताजगी (फ्रशनेस) जीवनी शक्ति (विटलिटी) या शक्ति बढ़ गई है? क्या हमारे युवक ज्यादा अच्छी तरह से इन गहरे मूल्यों को समझने लगे हैं जिनसे जीवन अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण बनता है? या क्या वे उदास होकर अपने को महान आदर्शों से दूर पथ-शून्य पाते हैं?

पथ की साधना तो हृदय में उत्पन्न होती है इसलिए हृदय के खिलने की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा बुद्धि के विकास पर जोर देती है इसलिए एक हद तक विद्यार्थियों की बुद्धि का विकास होता है। हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों से कई चतुर पुरुष निकले हैं लेकिन उनमें से कितने निस्वार्थ होते हैं? प्रिय दादा ने कहा, "शिक्षित लोगों में से कितने अहंकारी हो गये हैं। बुद्धि तेज तो हुई है, लेकिन हृदय की कोमलता इससे भी ज्यादा आवश्यक है।" हमारे बुद्धिवादियों में बहुत-से लोग स्वार्थी हैं। वर्तमान शिक्षा से शक्ति अवश्य पैदा होती है लेकिन ज्यादातर उस शक्ति का दुरुपयोग होता है। उसका सदुपयोग तब होगा जब हृदय में गरीबों, अपाहिजों एवं

जरूरतमंदों के लिए सहानुभूति पैदा होगी। वह युवकों को आकांक्षा के स्थान पर त्याग की भावना बढ़ाने का आवाहन करते हैं, सादा रहने का आवाहन करते हैं; क्योंकि सादगी में ही शक्ति है और एक नयी सादी सभ्यता में ही मानव-जाति के लिए आशा दीखती है। वे सब लोगों के साथ सहयोग करने का आवाहन करते हैं और कहते हैं कि धर्म-भेद या राजनीतिक भेद हमारे संगठन में बाधक नहीं होने चाहिए। वह ग्राम्य-जीवन के नवनिर्माण में सहायक होने तथा उस सृजनात्मक आदर्श में शामिल होने का आवाहन करते हैं जो मानवमात्र की एकता समझकर उसकी सेवा को समस्त ज्ञान का लक्ष्य समझता है। ऐसे विद्यार्थियों की टोलियों में फूटे भारत तथा घायल मानवता की आशा है।

श्रीनिवास शर्मा

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा की नयी संकल्पनाएँ और प्रयोग

उत्तर प्रदेश शासन ने जुलाई १९७२ में प्रदेश के ५४ जिला परिषदों और १४७ नगरपालिकाओं द्वारा संचालित बेसिक स्कूलों को अपने नियंत्रण में लेने का निश्चय किया। सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों के एक दस सदस्यीय निगम के रूप में स्वायत्तशासी बेसिक शिक्षा परिषद का गठन किया गया। उसके माध्यम से प्राथमिक और लघु-माध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं को एक अध्यादेश द्वारा शासकीय नियंत्रण में लाया गया। बेसिक शिक्षा की देखभाल के लिए प्रदेश के ५४ जिलों में बेसिक शिक्षाधिकारी नियुक्त किये गये। बाद में अध्यादेश को बेसिक शिक्षा अधिनियम १९७२ द्वारा प्रतिस्थापित किया गया।

व्यवस्था की संरचना

जनपद के स्तर पर जिला बेसिक शिक्षाधिकारियों की सहायता और उनके परामर्श के लिए जिला बेसिक शिक्षा समिति नामक एक जनपदीय स्तर की समिति का गठन किया गया है। ग्राम के स्तर पर ग्राम-शिक्षा-समिति प्राथमिक और लघु-माध्यमिक स्कूलों की सीधे देखभाल करती है। नगरपालिका के स्कूलों की देखभाल के लिए मुहल्ला समितियाँ गठित करने की चेष्टा की जा रही है।

यह नियंत्रण क्यों ?

यह परिवर्तन इसलिए आवश्यक हो गया था, क्योंकि स्वाधीनता-प्राप्ति के पचीस वर्ष बाद भी स्थानीय निकायों के नियंत्रण में समस्त शिक्षा की मूलाधार—बेसिक शिक्षा में कोई सुधार नहीं हो पा रहा था। स्थानीय निकायों से उत्पन्न अवरोधों के कारण नयी योजनाओं, नये विचारों और नयी सक्रियताओं का द्रुतगति से क्रियान्वयन करना सम्भव नहीं हो रहा था। उपकरण की आपूर्ति और नये भवनों के निर्माण के लिए स्थानीय निकायों के अधीन जो धनराशियाँ रखी जाती थीं, उनका भी उचित उपयोग नहीं हो पाता था। अध्यापकों की नियुक्तियाँ शैक्षिक अपेक्षाओं को दृष्टि में रखकर नहीं, अपितु राजनैतिक आवश्यकताओं के आधार पर की जाती थीं, जिससे

प्रति वर्ष शिक्षा का स्तर नीचे गिरता ज। रहा था। अध्यापक राजनीति में अतर्ग्रस्त हो जाते थे, क्योंकि जिला परिषद और नगरपालिकाओं के उनके अधिकारी उनकी सेवाओं का प्रयोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए करते थे। स्थानान्तरण, नियुक्तियों और प्रान्नतियों के आदेश भी राजनैतिक और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से किये जाते थे। निरीक्षक वर्ग का मुँह भी बन्द कर दिया गया था, और इन परिस्थितियों में बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई सुधार सम्भव प्रतीत नहीं होता था। शासन को बेसिक शिक्षा को अपने नियंत्रण में लेने और सुदृढ़तर हाथों में सौंप देने का निर्णय करना पड़ा जिससे नीतियों और कार्यक्रमों का अधिक निपुणता और द्रुत गति से क्रियान्वयन करना सम्भव हो। नवीन बेसिक शिक्षा परिषद का उद्घाटन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्म-दिवस २ अक्तूबर १९७२ को मुख्य मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी द्वारा किया गया।

कठिनाइयाँ

जैसी कि आशंका थी इस परिवर्तन का मार्ग बड़ा कंटकाकीर्ण पाया गया। जिला परिषद और नगरपालिकाओं के अधिकारियों को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनसे शक्ति छीन ली गई और उनकी प्रतिक्रिया इस सीमा तक हुई कि उन्होंने शिक्षा-कार्यालयों को जिला परिषदों और नगरपालिकाओं के कार्यालयों से रातों-रात विस्थापित कर दिया जिससे शिक्षा कार्यालयों को पुनर्वास देने की समस्या उठ गई।। स्वाओं, सेवा सम्बन्धी अभिलेखों विगत लेख और जीवन निर्वाह निधि तथा अन्य लेखा सम्बन्धी प्रपत्रों के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में भी अनेक बाधाएँ उत्पन्न की गयी।

संकल्पनाओं में परिवर्तन

जैसे ही नवीन स्वायत्तशासी परिषद ने बेसिक शिक्षा के नवीन अध्यक्ष और शिक्षा निदेशक के साथ बेसिक शिक्षा का कार्यभार ग्रहण किया, पुरानी परम्पराओं, शैक्षिक विकास और नियोजन के दृष्टिकोणों में महान परिवर्तन होने लगा। बेसिक शिक्षा परिषद ने यह निश्चय किया कि बेसिक शिक्षा में, जो अभी भी पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित थी, तत्काल परिवर्तन किया जाय और बेसिक स्तर पर काम को शैक्षिक कार्यक्रमों का अभिनव अंग बनाया जाय। शिक्षा को नया स्वरूप देने के लिए यह आवश्यक था कि कक्षागत शिल्पों को अधिक उपयोगी सक्रियताओं से अथवा ऐसे काम से प्रतिस्थापित किया जाय जिसको बच्चों के बड़े-बड़े दल सामूहिक रूप से एक साथ कर सकें। इस सम्बन्ध में जो अध्ययन और शोध कार्य किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हुआ है कि सामूहिक शिक्षा के लिए हमें ऐसे कार्य चुनने चाहिए जो कक्षा कार्य न होकर सामूहिक और स्थायी महत्त्व के कार्य हों। यह काम ऐसा होना चाहिए जिसके लिए बहुत-से कच्चे माल की आवश्यकता न हो जैसे बेसिक शिल्पों के लिए होती थी।

बेसिक शिक्षा के आदि काल मे जिन शिल्पो को प्रारम्भ किया गया वे इसलिए सफल नहीं हुए कि उनके अन्तर्गत बच्चो की बनाई हुई वस्तुएँ बाजार में रखने योग्य सिद्ध नहीं हुईं।

गम्भीर विचार-विमर्श के बाद बेसिक शिक्षा परिषद ने यह निश्चय किया कि अब भविष्य में शिक्षा में काम के ऐसे कार्यक्रम अपनाये जायें जिनमें बच्चो की बनाई हुई सामग्री को बाह्य बाजार मे बिक्री के लिए भेजने की आवश्यकता न रह।

शिल्प के काम मे अध्यापक के निर्देशन और सहायता की निरन्तर आवश्यकता बनी रहती थी। बेसिक शिक्षा के कार्यक्रमो की असफलता का एक कारण वांछित योग्यता के शिक्षकों का सुलभ न होना भी था। यथार्थ शिल्पी का अपने शिल्प को छोड़कर अध्यापक के पद पर जाना रुचिकर न था। सिद्धान्त का जानकार अध्यापक पूर्ण आत्मविश्वास और कौशल के साथ सम्बन्धित शिल्प को सिखाने के लिए सक्षम न था। सिद्धान्त के जानकार अध्यापक यदि अभीष्ट संख्या मे नियुक्ति के लिए सुलभ भी हो जाते तब भी वे केवल एक दूसरे शिल्प अध्यापक को ही तैयार कर सकते थ, न कि एक शिल्पी को। शिल्प का ऐसा शिक्षार्थी अपने शिक्षा कार्य को पूर्ण कर लेने के बाद शिक्षक के कार्य को ही ढूढने के लिए सतत प्रयास मे लगा रहता था न कि अपने सीखे हुए शिल्प को अपने व्यवसाय के रूप मे स्वीकार करने के लिए। यह भी निश्चय किया गया कि नया कार्य ऐसा हो जिसमे अध्यापक के निर्देशन और सहायता की तब अधिक आवश्यकता न हो और बहुत-सा वास्तविक कार्य जो आत्म-शिक्षा की ओर प्रेरित करनेवाला हो, बच्चा स्वय करने में समर्थ हो जाय।

यह भी अनुभूति हुई कि काम का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो प्रतिस्पर्द्धा की भावना को खेल में परिणित कर सके। काम बच्चे के लिए यथार्थ आह्लादमय सत्क्रियता होना चाहिए जिसमें वह पूर्णतया आत्मविभोर हो जाय कि उस कार्यबाह्य उद्देश्य की सुधि ही न रह।

परिषद द्वारा इस विषय पर भी विचार किया गया कि आधुनिक समाज में धन की बहुत मान्यता है। बच्चा और अध्यापकों को बिना आर्थिक पुरस्कार दिये शारीरिक श्रम का काम करने के लिए अनुप्रेरित नहीं किया जा सकता है और आर्थिक पुरस्कार उनको वह प्रेरणा प्रदान कर सकता है जिसमें वे निरन्तर काम में लगे रह सकते हैं। अतएव काम ऐसा होना चाहिए जिससे तत्काल आर्थिक पुरस्कार मिल सके। काम का स्वरूप ऐसा भी होना चाहिए जो बच्चो को समाज-सेवा एव राष्ट्र निर्माण के लिए अनुप्राणित कर सके। परिषद का यह भी मत था कि विद्यालयो और स्वय बच्चों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अत, बच्चो के बैठने के लिए टाट-पट्टियाँ और सामने रखकर लिखने के लिए प्रत्येक बालक

के सामने डेस्क का निर्माण आगामी वर्ष के लिए काम का न्यूनतम कार्यक्रम निर्धारित किया गया।

टाट-पट्टियो और डेस्कों का निर्माण तथा स्कूल की वर्दी तैयार करना आगामी सत्र के लिए छात्रो के काम के तात्कालिक कार्यक्रम के रूप मे स्वीकार किया गया है। आजकल की बिजली की कटौती से प्रभावित होकर स्कूलों में मोमबत्तियों के बनाने का कार्यक्रम भी निर्धारित किया गया है और कुछ स्कूलो ने इस निर्णय के फलस्वरूप बडी सस्ती दर पर मोमबत्तियाँ तैयार करना प्रारम्भ भी कर दिया है। ग्रामीण शहरी क्षेत्रो मे १०–१० बच्चो के श्रमिक दल बनाये जा रहे हैं। प्रत्येक श्रमिक दल या तो खेत मे जाकर काम करेगा या उन प्रयोजनाओं में काम करेगा, जहाँ श्रम की आवश्यकता होगी, और यह स्वाभाविक है कि बच्चो के ८ ऐसे दलो मे लगे हुए ८० बच्चो को १० श्रमिकों के पारिश्रमिक का लाभ होगा। इस प्रकार एक ओर श्रमिको की कमी की समस्या का निराकरण हो जायेगा और दूसरी ओर बच्चे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी यथार्थ उत्पादक काम में लग जायेंगे जिससे सामान्यतया समाज को और विशेषतया बच्चो को लाभ होगा।

बेसिक शिक्षा के क्षेत्र मे इस समय ये हमारे निर्देशक तत्व हैं और यह आशा की जाती है कि जैसे-जैसे योजना आगे बढेगी उसकी प्रगति होती जायेगी। बच्चों को वाछित प्रेरणा मिलेगी और जैसे-जैसे वे उपयोगी नागरिक में परिणत होते जायेंगे वैसे-वैसे लोगो के मन मे परिवर्तित शिक्षा-पद्धति के प्रति निष्ठा उत्पन्न होगी।

बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाले लगभग तीन लाख अध्यापकों का सामूहिक जीवन-बीमा

यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक अध्यापक का जीवन-बीमा होना चाहिए; क्योकि उसको वेतन कम मिलता है और उसकी असामयिक मृत्यु होने की दशा में उसके परिवार को घोर आर्थिक कष्ट सहन करना पड़ता है। किन्तु कठिनाई यह थी कि अध्यापक वर्ग एक विशाल ग्रामीण क्षेत्र मे फैला हुआ था जिसके अधिकाश में रेल और सड़क की सुविधा नहीं थी और न किसी अन्य प्रकार का यातायात ही सम्भव था। ऐसी दशा मे जीवन-बीमा की ऐसी पद्धति ही अपनाई जा सकती थी जिसमें जीवन-बीमा निगम के सामने समस्त सूचना प्रस्तुत करने तथा प्रतिमास प्रीमियम इकट्ठा करके उसे निगम को भेजने का उत्तरदायित्व कोई संस्था स्वीकार कर लेती। यह भी आवश्यक था कि कोई विश्वसनीय संस्था अध्यापक की मृत्यु हो जाने की दशा में भुगतान के सम्बन्ध में विश्वसनीय सूचना एकत्रित करने का उत्तरदायित्व भी स्वीकार करती। इस कार्य को बेसिक शिक्षा परिषद और शिक्षा निदेशालय ने करना स्वीकार किया। जीवन-बीमा निगम के अधिकारियो ने इस प्रतिबन्ध के साथ प्रस्ताव को स्वीकार

गुन्नार मिर्डाल

शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन अनिवार्य

आर्थिक विकास से सम्बन्धित आँकडो मे अन्य किसी भी क्षेत्र के मुकाबले शिक्षा सम्बन्धी आँकडे ज्यादा दोषपूर्ण हैं। अविकसित देशो में साक्षरता के आँकडे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाये जाते हैं जबकि वास्तविक साक्षरता बहुत कम होती है। स्कूलों के रजिस्टर तो राई का पर्वत बनाने का काम करते हैं। विशषकर प्राइमरी स्कूलो में और उसमे भी लडकियो की सख्या के आँकड ज्यादा दोषपूर्ण मिलते हैं। स्कूली रजिस्टरो में ग्रामीण प्राइमरी स्कूलो के छात्रो और लडकियो की सख्या बहुत बढा-चढा कर दिखाई जाती हैं। अगर हम आर्थिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में छात्रो की सख्या देखें तो इन बढ हुए आँकडो के बावजूद निम्न वग के छात्रो की सख्या उच्च-वग के अनुपात में बहुत कम मिलेगी।

मेरे मतानुसार अविकसित देशो की शिक्षा पद्धति म अगर सही परिवर्तन लाना है तो सबस पहले कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नो को ध्यान में रखकर सही सर्वेक्षण करना होगा। महत्त्वपूर्ण मसलों पर सही-सही आँकड इकट्ठ करन होंग।

पश्चिम की नकल करना गलत है

हाल म कुछ अर्थशास्त्रियो का ध्यान इस ओर गया है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे शिक्षा एक महत्त्वपूण भूमिका अदा करती है। पर वे इस विचार को भी अपनी उसी घिसी पिटी आर्थिक कसौटी पर कसते हैं— मनुष्य मे लगायी गयी पूंजी।" इस प्रकार अब उनकी आर्थिक योजना म कहा जायगा, "शिक्षा के लिए इतने करोड रुपये खर्च किये जायेंगे।" आर्थिक क्षेत्र म लगायी गयी पूंजी के अलावा अब शिक्षा मे लगायी गयी पूंजी भी जोड दी गयी। "रुपयो की लागत का परिमाण भी रुपये ही है"— इसके आधार पर शिक्षा के लिए भी सोचा जाने लगा। यही सिद्धान्त अब पश्चिमी अर्थशास्त्रियो से अविकसित देशो के अर्थशास्त्रियो ने जैसा-का-तैसा ले लिया है। यद्यपि दोनो की परिस्थितियो में पर्याप्त अन्तर है।

शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन

आज अविकसित देशा की शिक्षा-पद्धति में गुणात्मक परिवर्तन होना चाहिए न कि इस क्षेत्र मे लगायी गयी पूंजी में मात्र सख्यात्मक परिवर्तन। ज्यादा जोर इस बात पर देना चाहिए कि शिक्षा किस प्रकार समाज के हर तबके के लोगो को समान रूप

से मिल सके। शिक्षा सर्वव्यापी कैसे हो? शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन पर विचार करते हुए इन बातों पर ध्यान देना चाहिए कि शिक्षा का उद्देश्य क्या हो? वह किस माध्यम से दी जाय? उसका क्या परिणाम हो? उदाहरण के लिए विद्यार्थियों में श्रम करने की कितनी तैयारी है, यह देखना होगा। दुर्भाग्यवश आज अविकसित देशों की शिक्षा कुशिक्षा है जो विकास में निःसंशय बाधक है।

विरासत

औपनिवेशिक काल की समाप्ति तक अविकसित देशों का बहुजन किसी भी प्रकार की औपचारिक शिक्षा से अछूता रहा। कुछ औपनिवेशिक राष्ट्रों ने उपनिवेशों की शिक्षा में अपना योगदान दिया है। पर उनका मुख्य उद्देश्य जन समुदाय को शिक्षित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य था अपने उपनिवेश के संचालन के लिए क्लर्क बनाना, अपनी नौकरशाही के लिए अफसर तैयार करना और कुछ हद तक विशिष्ट पेशे के अफसर तैयार करना। यहाँ यह कहना बहुत जरूरी हो जाता है कि इस शिक्षा प्रणाली में अविकसित देशों के सवर्णों और ऊँचे वर्ग का हित भी निहित था। इस वर्ग ने इस शिक्षा का अपने हाकिमों की सेवा के लिए उपयोग किया और स्वयं भी हाकिम बने। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राथमिक और सेकेण्डरी स्कूल खोले गये। ये क्लर्क बनानेवाले स्कूल साधारणतया 'साहित्यिक' और 'अकादमिक' थे। इनमें विज्ञान और तकनीकी ज्ञान पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। जब कुछ तकनिकी और मेडिकल कालेज खुले तो वे भी इन अकादमी स्कूलों से ज्यादा भिन्नता नहीं रखते थे।

विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे मुंशीगिरी करें। वे स्वयं भी यही चाहते थे। कागज-कलम से काम करें और अपने हाथों को मिट्टी से बचायें। विद्यार्थियों को इस प्रकार की 'किताबी' शिक्षा देने में औपनिवेशिक सत्ताओं का बहुत बड़ा स्वार्थ सिद्ध होता था— स्वदेशी ग्रामोद्योगों की जड़ काटने का। पुनः ध्यान में रखना होगा कि इस प्रकार की शिक्षा पद्धति अविकसित देशों के उस उच्च वर्ग के स्थापित हितों का भी रक्षण करती थी जो शताब्दियों से केवल पुरोहिती किया करता था। औपनिवेशिक सत्ता की इस प्रकार की शिक्षा-नीति ने प्रबुद्ध वर्ग को जन-साधारण से काटकर रख दिया और इनके बीच एक लम्बी खाई खोद दी। जैसा कि स्वाभाविक था यह धतक कुलीन वर्ग और समाज का उच्च वर्ग ही अपने बच्चों को इस शिक्षा पद्धति में भेजता था और भेज सकता था।

औपनिवेशिक काल की शिक्षा-पद्धति में मुख्य हिस्सा उन कालेजों का था जो पेशेवर सरकारी नौकर बनाने का काम करते थे। इनमें शिक्षा का केन्द्र बिन्दु परीक्षा पास करना होता था जो समाज में प्रतिष्ठा का मुद्दा समझा जाता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी शिक्षा का वही स्वरूप टिका हुआ है। भारतीय शिक्षा समिति ने

इस ओर इंगित करते हुए लिखा है, "भारतीय शिक्षा-पद्धति परीक्षा-मूलक है और प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक परीक्षाओं से लदे होने की वजह से शिक्षकों की शक्ति कुंठित हो जाती है और पाठ्यक्रम एक हुई लकीर या फकीर बनकर रह जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग होने के गुंजाइश नहीं रहते। अनावश्यक और गलत बातों पर विशेष जोर दिया जाता है।'

इस प्रकार कई अन्य कारणों के अतिरिक्त शिक्षा के स्तर में गिरावट का एक प्रमुख कारण परीक्षा-पद्धति भी है। वस्तुतः यह शिक्षा-पद्धति के मूल स्वभाव से सम्बन्धित है जिसमें शिक्षक, अभिभावक, शिक्षाविद और विद्यार्थियों ने शिक्षा पद्धति में प्रस्तावित परिवर्तनों का विरोध किया है। खासकर प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा को इन लोगों ने कदापि स्वीकार नहीं किया।

शिक्षा की मांग समाज का वह उच्च वर्ग करता है जिसका स्थानीय प्रान्त और राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव रहता है। परीक्षाओं का भूत न केवल प्राथमिक शिक्षा पर अपना अनावश्यक प्रभाव छोड़ता है, बल्कि एक रूढ़िग्रस्त, असमान समाज में प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है।

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रयोग उस समय जरूर आरम्भ हुए थे जब ब्रिटिश साम्राज्य ने प्रान्तीय राज्य संचालन भारतीय लोगों को सौंपना शुरू किया। तब उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करने की छूट दे रखी थी। जब आजादी मिली तब नेहरूजी ने शिक्षा में आमूल परिवर्तन की बात पर जोर दिया, पर हुआ ठीक इसके उल्टा। इसका मुख्य कारण यह है कि आजादी ने समाज और लोगों में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं किया। शिक्षा-पद्धति भी उस विशाल तंत्र का एक भाग है जिसमें सामाजिक और आर्थिक स्तर, सम्पत्ति का वितरण और सरकारी शक्ति आदि बहुत से पहलू शामिल होते हैं। इसलिए अगर शिक्षा में आमूल परिवर्तन होता है तो इस बृहत्-तंत्र के विभिन्न अंगों में भी आमूल परिवर्तन होंगे। शिक्षा में क्रान्ति अन्ततः सामाजिक क्रान्ति में ही परिणत होगी।

शिक्षा में सुधार का एक पहलू है साक्षरता का प्रसार करना। सब ने समर्थन किया और सब इस पर सहमत भी हैं। लोग इस पर भी सहमत होते हैं कि चालू शिक्षा का ज्यादा-से-ज्यादा प्रसार हो और निरक्षरता दूर हो। व्यवसाय और कृषि के ढंग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आये, राज्य-संचालन में लोग ज्यादा-से-ज्यादा भाग ले सकें इन सबके लिए साक्षरता का बहुत उपयोग है। यह भी सत्य है कि तथाकथित साक्षरता इतनी उपयोगी नहीं होगी। जैसा यूनस्को का कहना है कि "मूलभूत शिक्षा" और "सामाजिक शिक्षा" ही विकास के लिए ज्यादा उपयोगी है। राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र में जनता की सक्रिय साझेदारी के लिए साक्षरता बहुत आवश्यक है। प्रौढ़ शिक्षा अपने में विशेष महत्व रखती है। वास्तव में प्रौढ़ शिक्षण का काम आज

कालेजों और विश्वविद्यालयों को उठा लेना चाहिए। एक बात सदा ध्यान में रखनी होगी कि शिक्षा-प्रणाली में पश्चिम की अन्धी नकल करना हितकर नहीं होगा।

स्कूल-प्रणाली

प्रौढ़ शिक्षण के प्रयासों को भी अन्य योजनाओं की भाँति एक ओर ढकेल दिया गया। साक्षरता के प्रयासों को प्राथमिक स्कूलों की प्रसार-योजना में परिणत कर दिया गया। प्राइमरी कक्षाओं में बच्चों की संख्या किस प्रकार बढ़े इस पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाने लगा।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में बच्चों को प्राइमरी शिक्षा देना एक कठिन समस्या है। वहाँ जनसंख्या का काफी बड़ा भाग उन बच्चों का है जो स्कूल जाने की उम्र के हैं।

इन देशों में माध्यमिक और प्राइमरी स्कूलों की संख्या काफी तेजी से बढ़ रही है।

पाकिस्तान, भारत, बर्मा और हिन्देशिया जैसे गरीब देशों के लिए प्राथमिक शिक्षा बहुत आवश्यक है जबकि ये देश प्राथमिक शिक्षा पर सबसे कम ध्यान देते हैं। योजनाओं में दिखाये गये प्राथमिक शिक्षा के आँकड़ों से वास्तविक संख्या बहुत कम है।

दूसरी ओर प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली में भी आर्थिक वर्ग-भेद की भाँति बहुत असमानता है। ऊँचे दर्जे के स्कूल में अमीर या प्रबुद्ध वर्ग के माँ-बाप के बच्चे ही पढ़ने जा पाते हैं। यह असमानता गरीब राष्ट्रों में सबसे ज्यादा मिलती है।

प्राथमिक स्कूलों में नाम लिखानेवाले बच्चों में से आधे ही प्राइमरी शिक्षा पूरी करते हैं जो केवल प्राइमरी शिक्षा पाये रहते हैं, उन्हें साक्षर नहीं कहा जा सकता।

भारत में प्राइमरी शिक्षा ज्यादातर प्रभावहीन और अनुपयोगी है। जो बच्चे इस शिक्षा को पाते हैं उनमें अधिकांश निरक्षर ही माने जायेंगे या फिर कुछ वर्षों के बाद वे उस शिक्षा को भूल जायेंगे। अगर हम निरक्षरता के खिलाफ इसी गति से चलेंगे तो इस योजना की गति को देखते हुए २००० ई० तक भी निरक्षरता दूर नहीं कर पायेंगे।

अनियमित उपस्थिति, असफल होना, बीच में छोड़ देना— कुल मिलाकर राष्ट्र-शक्ति का ज्यादा नुकसान ही होता है। दुःख की बात तो यह है कि नुकसान वहाँ सबसे ज्यादा होता है— जहाँ आर्थिक स्रोत सबसे कम है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के पास स्कूली इमारत, पाठ्यपुस्तकें, कागज और अन्य शिक्षण-सामग्रियाँ बहुत कम हैं। गरीब देशों में परिस्थिति सबसे खराब है। उन ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्थिति बदतर है जहाँ ज्यादातर बच्चे ही पलते हैं।

प्राइमरी शिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा और आय बहुत ही कम है। गरीब राष्ट्रों में शिक्षकों के प्रशिक्षण और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं वेतन में

वृद्धि की आवश्यकता है ताकि ज्यादा-से-ज्यादा काबिल शिक्षक प्राइमरी शिक्षा के कार्य में लग सकें। ये शिक्षक समाज और बच्चो के शिक्षण में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भाषाओ की विविधता की वजह से प्राइमरी शिक्षण पर गम्भीर प्रभाव पडता है। बच्चो पर भाषाओ का बोझ इतना ज्यादा हो जाता है कि अन्य जरूरी बातो को सीखने की उन्हे फुर्सत नहीं मिलती। इस वजह से और अन्य एतिहासिक एव राजनैतिक कारणों से यहाँ के स्कूल बहुत ज्यादा "किताबी" बन गय है, जबकि इन्ही देशो मे किताब-कागज इत्यादि को भयकर कमी है। भाषा में प्रवीणता शिक्षा का मापदण्ड माना जान लगा है। यह एक कारण है जिसकी वजह से शिक्षण के चालू ढांचे को समाजोपयोगी शिक्षा मे बदलने में दिक्कत होती है।

माध्यमिक स्कूलों मे शिक्षण का स्तर बहुत निम्न है। यह बात गरीब राष्ट्र पर ज्यादा लागू होती है।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद शिक्षण को जीवनोपयोगी और व्यावहारिक बनाने के लिए तकनिकी शिक्षा देने के बहुत प्रयास किये गय। उसके बावजूद आज दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो में शिक्षण का वही "किताबी" ढाँचा बना हुआ है जो औपनिवेशिक काल में "प्रबुद्ध" लोगों के लिए निर्मित किया गया था। किसी भी देश में, शिक्षण मे आमूल परिवर्तन के चिह्न नही दिखाई पडते हैं।

एक बडी दिक्कत यह भी है कि तकनिकी शिक्षा देनेवाले शिक्षक नही मिलते है, क्योकि उन्हे बड कारखाना और सरकारी नौकरी मे स्कूल अध्यापको से ज्यादा वेतन और प्रतिष्ठा मिलती है। फिर यह भी कि विज्ञान और तकनिकी शिक्षा के लिए ज्यादा आर्थिक स्रोत की आवश्यकता पडती है।

इन सारी दिक्कतो के अलावा, सबसे बडी बाधा तो औपनिवेशिक और प्राक्-औपनिवेशिक काल स चली आ रही जड मान्यताओ और रूढ़ियो द्वारा खडी होती है। रूढ़ियो को कुछ स्थापित हितो का बल मिल जाता है, जिनका इस शिक्षण मे निहित स्वार्थ होता है। स्थापित हित का यह वर्ग है इस शिक्षण प्रणाली के कर्मचारियों का। किसी भी परिवर्तन का ये विरोध करते हैं; क्योकि इन परिवर्तनों के कारण उनकी तमाम डिग्रियों और प्रतिष्ठिओ का कोई अर्थ नही रह जाता है। इस स्थापित हित के मूल मे तो वे "ब्राह्मणवादी" लोग हैं जो यह चाहते हैं कि "पढ़े-लिखे" और "जन-साधारण" में हमेशा के लिए असमानता बनी रहे। व्यावहारिक शिक्षा में श्रम की महत्ता और हाथ स काम करन की जरूरत इस शिक्षा को प्रचलित होन से रोकती है।

आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओ और शिक्षा के बीच की खाई अब और ज्यादा बढ गयी है। फलस्वरूप एक तरफ शिक्षित बेकारो की संख्या बढ़ी है तो दूसरी ओर प्रशिक्षित शिक्षको की कमी बढ रही है।

शिक्षा और जमीन-मालिकी का केन्द्रीकरण असमानता की बुनियाद है जो गरीब देशों में जड़ जमा कर बैठ गयी है।

शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर ही चुनाव का इतना जटिल तंत्र होता है जो बड़े समुदाय को छाँटकर अपने से अलग कर देता है। कमनसीब लोग चुन चुन कर हटा दिये जाते हैं। अमीर और नसीबदार परिवार ही अपने बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा दे पाते हैं जो समाज में उनके लिए प्रतिष्ठा और सम्मान की गारण्टी प्रदान करती है। समाज के ऊपरी स्तर पर बैठे लोग न केवल अपनी सत्ता और सम्पत्ति टिकाये रखते हैं बल्कि और मजबूत बनाते जाते हैं। फलस्वरूप आज एक ऐसा प्रभावशाली समुदाय खड़ा हो गया है जो अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा को टिकाये रखने की कोई भी कीमत अदा कर सकता है। आज की शिक्षा-पद्धति में सबसे ज्यादा लाभ मिला है— लड़कों को, शहरी लोगों को और उच्च वर्ग के लोगों को। शिक्षा के प्रसार का लाभ सम्पन्न वर्ग को मिला है और गरीब दबाये गये हैं। यह सामाजिक न्याय से विद्रोह है और सही आयोजन को अन्धकार में रखना है।

अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ी है। इस खाई को बढ़ाने में आज की शिक्षा ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की है।

गरीबों के पास सत्ता नहीं है, वे इतने सगठित नहीं हैं कि शिक्षा की अपनी माँग समाज के सामने रख सके। वे शोषित हैं, कमजोर हैं। उनसे ताकत छीन ली गयी है।

आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है शिक्षण में आमूल परिवर्तन की। शिक्षा समाज का एक अंग है जिसमें गुणात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है न कि संख्यात्मक परिवर्तन की। किसी भी हालत में फालतू और अहितकर शिक्षा को फैलाने से रोकना होगा जो सामाजिक स्तर गिराती है। प्रौढ़ शिक्षण को बढ़ाना होगा। उन्हें समाज के प्रति जागरूक बनाना होगा। ऐसे शिक्षक तैयार करने पड़ेंगे जो बच्चों के मूल्यों को बदल सकें और समाज को नया मोड़ दे सकें। ये ऐसे शिक्षक होंगे जिन्हें पैसे, सत्ता और प्रतिष्ठा की भूख नहीं होगी और जो समाज-परिवर्तन के वृहत् कार्य के प्रति समर्पित होंगे। ऐसे शिक्षक तैयार करने होंगे जो व्यावहारिक शिक्षा दे सकें, उद्योगों की शिक्षा दे सकें। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय खोलने होंगे जो नैतिक और बौद्धिक शक्ति के पुंज होंगे। ये शक्तिपुंज समाज में जागरूकता फैलाने का काम करेंगे।

शिक्षा में ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता है जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रान्ति को जन्म दे।

शिक्षा में परिवर्तन की इस लड़ाई को अविकसित राष्ट्र स्वयं अपने आप लड़ें, किसी बाहरी मदद के बिना, बिलकुल आत्मनिर्भर होकर। ●

मैलकम एस० आदिशेसिया

ढाँचे का पुनर्निर्माण

१९७२ के बड़े दिन मैंने अपने देश के विश्वविद्यालयों में व्याप्त गड़बड़ी के सम्बन्ध में कुछ तालिकाएँ बनायी, जिनका विवरण इस लेख में ही आगे दिया है। बड़े दिनों में किसी भी एक मौके पर दो सौ तथा तीन सौ के बीच की कोई-न-कोई संख्या यानी विश्वविद्यालय स्तर की ३२९७ संस्थाओं के १० प्रतिशत के आसपास की संख्या नित्य ही हड़ताल व सार्वजनिक सम्पत्ति के विनाश में लगी रही। हड़ताल व विनाश प्रमुख रहे लेकिन इनके साथ ही राजनीतिक हस्तक्षेप व परीक्षा न देने की इच्छा से निकले हुए घेराव व हत्याएँ हुईं जिनके पीछे-पीछे लगे शिक्षा-सम्बन्धी, रोजगारी, यातायात या भाषाई समस्याओं से उत्पन्न अतिक्रमण या तोड़फोड़ के अन्य मौके गिनाये जा सकते हैं। यह चिन्ता की बात है। लेकिन इससे भी अधिक चिन्ता की बात तो १९ दिसम्बर को केन्द्रीय सरकार द्वारा लोकसभा में की गई यह घोषणा है कि १९७२ के जून व नवम्बर के बीच देश की शिक्षा-संस्थाओं में अशान्ति पैदा करनेवाले ४३१६ मामले हुए। इसका अर्थ यह है कि इस छः मास के बीच या तो देश के सभी विश्वविद्यालय कम-से-कम एक बार अशान्ति-ग्रस्त हुए, जिनमें से एक तिहाई दो-दो बार अशान्ति के शिकार हुए या हमारी ऐसी संस्थाओं के करीब करीब आधे इस छः मास के बीच तीन-तीन बार अव्यवस्थित हुए। सरकारी विज्ञप्ति यह भी प्रदर्शित करती है कि इस अव्यवस्था की एक तिहाई से भी अधिक संख्या यानी १३९५ मामले पढ़ाई-लिखाई या वातावरण सम्बन्धी संकीर्ण बातों के कारण हुए और इनका विश्वविद्यालय के परिवेश और उनके बौद्धिक जीवन से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं था। अगर परीक्षा से बचने की भावना के लिए "संकीर्ण मामला" उक्ति का इस्तेमाल बात को कहने का एक अच्छा तरीका है, तो नीचे दी गयी तालिका से यहाँ कही गयी बात और स्पष्ट हो जायगी।

माह	राज्यो की सख्या	सस्थाओ की सख्या	प्रकार हडताल	आराप	सम्पत्ति विनाश	हत्याएँ
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
सितम्बर	६	२२८	२२५	१	१	१
अक्तूबर	१०	२४२	२३०	१	६२	४
नवम्बर	११	३२२	२९०	३	८३	३
दिसम्बर	८	२३०	१२०	ञ	९२	२

मौके राजनीतिक	भापाइ	रोजगारा	पढाई लिखाई	इम्तहान की निक टता	छात्र सघ के आपसा मतभद	पुलिस	अन्य कारण यातायात सिनमा आदि
(८)	(९)	(१०)	(११)	(१२)	(१३)	(१४)	(१५)
१२२	–	१	१८०	४२	१	–	–
१२०	२२	१२	८०	८२	२	४	३२
२२०	२८	८२	६०	१२०	–	३	१२
१८०	३०	–	३२	१६२	–	२	७१

[इन सस्थाओ में विश्वविद्यालय व कालेज दोनो शामिल हैं। यहाँ दी गयी सस्थाओ का जोड नही दिया गया ह क्याकि एक हा सस्था म एक स अधिक कारणो स एक स अधिक प्रकार का अशान्ति हो सकती ह।]

विश्वविद्यालय स्तर की हमारी संस्थाओं की गडबड़ी अनेक कारणों से बड़ी ही गम्भीर है। मेरी दृष्टि में पहला कारण नैतिक है। अपने देश में विश्व-विद्यालयीन शिक्षा अब भी सुविधा सम्पन्न कुछ थोडे-से लोगों तक ही सीमित है। अगर हम ऐसे लडके-लडकियों की उम्र १७ से २४ के बीच रखें, जिन्हे विश्वविद्यालय मे पढने का मौका मिलना चाहिए तो इस उम्र के लडके-लडकियो का सिर्फ ३ २ प्रतिशत ही हमारे विश्वविद्यालयों व कालेजों में शिक्षा पा रहा है। विश्वविद्यालय में पढ सकनेवाले हमारे लडके-लडकियो का ९६ ८ प्रतिशत ऐच्छिक या अनैच्छिक रूप से विश्वविद्यालयीन शिक्षा से वंचित रखा जा रहा है। विश्वविद्यालयीन शिक्षा की इस अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त हो सकनेवाली सीमित सुविधा का दुरुपयोग गम्भीर चिन्ता का विषय जरूर है। दूसरा कारण है विकास की हमारी चेष्टा से पैदा होनेवाली माँग। हमारी इस चेष्टा की मासपेशियाँ हमारे विश्वविद्यालय रूपी शरीर से प्राप्त होनी चाहिए। यदि यह शरीर ही रुग्ण है और यदि उसकी आत्मा व सद्-असद् विवेक कुंठित है तो उसकी मासपेशियाँ भी रोगग्रस्त व विनाशोन्मुख होगी। अपनी पांचवी पचवर्षीय योजना में हमने जिस चीज को प्राथमिकता दी है, यानी जनता की गरीबी पर सीधा आक्रमण, उसके लिए ऐसे विश्वविद्यालयीन स्त्री पुरुषों की जरूरत है जो वृत्ति से सर्वोत्तम हैं और वैयक्तिक रूप से भी अतीत व वर्तमान दोनो अन्यायों को मिटा देने की तीव्र भावना से परिपूर्ण हैं। इस तरह के स्त्री-पुरुषों की हमें सख्त जरूरत है। हमारे विश्वविद्यालय ऐसे लोगों को पैदा करने की दशा मे नहीं रह गये हैं।

और अन्ततः सभी देशो व सभी कालो मे विश्वविद्यालय बौद्धिक और आत्मिक उत्कृष्टता का प्रतिनिधित्व करते है। वे हमारे समाज की बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत के सरक्षक हैं और हमारी नवोदित सभ्यता के प्रवर्तक व मार्ग-दर्शक भी। यही विश्वविद्यालय समाज के वह स्थान हैं जो ज्ञान के सम्मिलित स्थल हैं और वही समाज व आज की दुनिया की बढती हुई विभिन्न विशषज्ञता का भी सामजस्य बैठाते हैं। यह भी एक कारण है कि इन्हें मनुष्य, साधन और पुस्तकालयों की दृष्टि से विशेष सुविधाएँ दी जाती है और इन्हे देश की दैनिक राजनीतिक चहल-पहल और लोगो के व्यस्त जीवन की भीडभाड से अलग रखा जाता है ताकि ये सच्चे मानववाद की दृष्टि से अपना योगदान कर सके। आज हमारे विश्वविद्यालय हमारी मानववादी परम्पराओं को जीवित रखने और उन्हे समृद्ध करने का यह मूलभूत व दूरगामी कार्य नही कर रहे हैं। यदि हमारे विश्वविद्यालय मनुष्य के तरीको, उसकी बुद्धि तथा मानववादी संस्कृति की ओर नही लौटते तो मुझे मनुष्य के भविष्य के सम्बन्ध मे डर है।

हमारे विश्वविद्यालयो की इस संकटपूर्ण अवस्था के कई कारण है। इस खराब दशा के खास व सहायक कारणों में मैं थोडा फर्क करूँगा। मुख्य कारण योग्यता

३,९३००० थी। इसका अर्थ यही है कि देश में कुल ग्रेजुएटों की सख्या का २० प्रतिशत वहर वर्ष निकलनेवाले ग्रेजुएटों का १०० प्रतिशत बेरोजगार है। आज हमारे देश में पांच लाख स्त्री-पुरुष बडी मेहनत व काफी पैसा लगाकर पाये हुए वे साधन लेकर घूम रहे हैं जिन्हें कोई पूछता नजर नहीं आता, जो उन्हे अपनी रोजी-रोटी पैदा करने में सहायक नही होता और जिसके द्वारा मनुष्य के रूप में उपयोगी जीवन बिताने की दृष्टि से कोई मदद नही मिलती।

समाजहित की दृष्टि से हमारे विश्वविद्यालयों के फिट न बैठने और उनकी अनुपयुक्तता के छोटे-छोटे और कई कारण भी हैं। वैज्ञानिक व तकनीकी क्रान्ति जो हमारे उद्योगो व कृषि के ढाँचे, उनकी गत्वरता और उनके विकास की गति में परिवर्तन लाती जा रही है, हमारे विश्वविद्यालयो को अभी स्पर्श नही कर सकी है। ऐसे परिवर्तनो के प्रभाव को हमने कृषि विश्वविद्यालयो और इण्डियन इस्टीटयूट्स आव टेकनालॉजी की स्थापना कर अलग और एकान्तिक कर दिया है। और यह भी एक कारण हो सकता है कि इन सस्थाओ से निकले विद्यार्थियो की मांग बडी रहती है और उन्हे बरोजगारी का भी सामना नही करना पडता। तेजी से बदलती हमारी आज की दुनिया ने ज्ञान विज्ञान के नये-नये क्षेत्र पैदा किये हैं जिनको हमारे विकास स्थानो को मुश्किल से स्पर्श होता है। इन नये क्षेत्रों ने वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान तेजी से बढाने में बडा योगदान किया है। इन नव ज्ञान ने हमारे विश्वविद्यालयो के अधिकतर ज्ञान को अप्रचलित श्रेणी मे पहुँचा दिया है।

यूनस्को द्वारा किये गये अभी हाल के एक सर्वेक्षण व शोध द्वारा प्राप्त परिणामो का एक ब्योरा दिया है और यह देखना कि उनमें से कितनो का समावेश हमारे विश्वविद्यालयो में है या कितनो का हमारे सस्थानो पर असर पडा है, स्वय मूल्यांकन के लिए उपयोगी होगा। मस्तिष्क सम्बन्धी अनुसधान जो यह बताते हैं कि हमारी ९० प्रतिशत बौद्धिक शक्ति शिक्षा के क्षेत्र में जैविक-रासायनिक सहायता-सामग्री के अभाव म अभी बेकार पडी है, वहीं व पर्याप्त पोषण का अभाव और मस्तिष्क पर पडनेवाला उसका खराब असर व सामाजिक व शैक्षणिक नीति के प्रति इसका सकेत, मनोविज्ञान, व्यवहारवाद, आनुवंशिक ज्ञानशास्त्र, विधि विशेष, सरचना और प्रशिक्षण पर इन विषयो का पडनेवाला असर, मनोविश्लेषण, मानव विज्ञान और समाज शास्त्र का अतिक्रमण करनेवाले सामान्य व व्यावहारिक भाषा शास्त्र यानी, दूसरे शब्दो में कहा जाय तो सीमालोजी (सकेतो का अध्ययन) साइबरनेटिक्स और समूह-तकनीक से लेकर टेलीविजन का समावेश करनेवाला सचार तकनीक के तारतम्य में सूचना का सिद्धान्त, कार्य का विज्ञान (अरगोनामी) और उसका शिक्षण शास्त्र व प्रबोधक तकनीको के प्रति प्रयोग और व्यवहार सम्बन्धी अनुसधान व प्रणाली-विश्लेषण के इसी प्रकार के इस्तेमाल। इसी तरह कितनी ही चीजें गिनाई जा सकती

है और तब हमें पता चलेगा कि जो परिवर्तन हमारे चारों ओर इतनी तेजी से हो रहा है उसकी दृष्टि से हम कितने पीछे छूटते जा रहे हैं।

शिक्षा के ढाँचे सम्बन्धी और नैतिक भी, कई सहायक कारण हैं। ढाँचे की दृष्टि से देखा जाय तो हमारे विश्वविद्यालय एक विपरीत व विरोधी दशा में फंस गये हैं। आजादी के बाद से हमारे विश्वविद्यालयों में जैसे जनसंख्या विस्फोट हो गया है। रजिस्टरों पर विद्यार्थियों के दर्ज नामों की संख्या २ ५ लाख से २५ लाख हो गयी। मेरे अपने ही राज्य (तमिलनाडु) में यह संख्या २६००० से बढ़कर २,५०,००० हो गई। शिक्षा का ढाँचा नहीं बदलता तो पाँचवी पंचवर्षीय योजना में यह भीड़ और बढ़ने ही वाली है। लेकिन इसके साथ विश्वविद्यालय की सुविधाओं यानी शिक्षकों की संख्या, पुस्तकालय व अनुसंधान कक्षों, कक्षाओं व छात्रावासों तथा अन्य आवासीय स्थानों में वृद्धि नहीं हुई है। आश्चर्य है पढ़ाई का खर्च एशियाई, अफ्रीकी व लैटिन अमरिकी देशों में जहाँ ८० प्रतिशत पर रुका रहा वहाँ वह हिंदुस्तान में ६० प्रतिशत तक आ गया। इसके अलावा, अपने देश में शिक्षा पर किया गया खर्च सारी मदों पर किये गये कुल खर्च का २ २ प्रतिशत है जिसे कि आनेवाले १० वर्षों में २ ५ प्रतिशत तक बढ़ाने की योजना बनायी गयी है।

इस तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि जहाँ तक वर्ग भेद का प्रश्न है हमारे विश्वविद्यालय सम्भ्रान्त व सुविधा सम्पन्न लोगों की संस्थाएँ हैं। भारतीय शिक्षा के समाज शास्त्र सम्बन्धी नसंट (नेशनल काउन्सिल फार एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण) द्वारा सम्पन्न सर्वेक्षण यह बताता है कि विश्वविद्यालयों से निकले हुए स्नातक व अन्य लोगों का ८० प्रतिशत हमारे समाज के ऊपर के २० प्रतिशत तबके से आता है। विश्वविद्यालयीन भर्ती ने अलग विश्वविद्यालयीन योग्यता की दृष्टि से भी देखिए तो देश का गरीब तबका जो संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक है इन ऊँची शिक्षा-संस्थानों में स्थान नहीं पाता। विश्वविद्यालयीन सामान्य शिक्षा की ५० प्रतिशत और पेशे सम्बन्धी शिक्षा का २० प्रतिशत बर्बादी मिलकर गरीब तबके की ५० प्रतिशत बर्बादी के समानान्तर बैठती है। सहायक कारणों को इसी तरह और भी गिनाया जा सकता है।

नैतिक कारणों पर कुछ शब्द कहकर मैं खत्म करूँगा। समाज का यह नैतिक संकट जो भ्रष्टाचार, पक्षपात और सद्गुणों के अभाव के रूप में प्रकट हो रहा है और जिसे हम पुरानी पीढ़ी के लोग रोज अपने व्यक्तिगत व पेशे सम्बन्धी जीवन में व्यवहृत कर रहे हैं, विश्वविद्यालय की दुनिया पर भी अपना असर डाल रहा है। विश्वविद्यालय और शिक्षा सत्य, वस्तु-निष्ठा, सहनशीलता और ईमानदारी के मूल्य समाज के श्रेष्ठ व बुजुर्ग लोगों द्वारा भी अनैतिक मूल्यों के शिकार बन जाने के कारण खोखले व पिछड़े लगने लगते हैं। मिसाल के लिए, परीक्षाओं में धोखा देने के ये

सर्वव्यापी विभिन्न तरीके न केवल एक घिसे-पिटे व व्यर्थ तरीके के प्रति सही प्रतिक्रिया स्वरूप हैं बल्कि प्रचलित मूल्यों के भी निदर्शन हैं। हमारे आज के विश्वविद्यालयों के सामाजिक संकट से ही उद्भूत होनेवाला यह नैतिक पराभव भी उनकी अस्तव्यस्तता का एक सहायक कारण है।

मैं यह मानता हूँ कि पिछले अनुच्छेदों से मुझे कुछ उबाहट-सी हुई है। अपने विश्वविद्यालयों की बीमारी और उसका निदान अब जाना जा चुका है और उन्हें अब प्रमाणिक रूप में पुस्तकों, लेखों, परिसंवादों, सम्मेलनों व बैठकों में लिपिबद्ध भी किया जा चुका है। मैंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा है जो अब तक कहा नहीं जा चुका है या जो जाना नहीं गया है। जरूरत इस बात की है कि हम शिक्षकों, विद्यार्थियों, प्रोफेसरों, माँ-बाप व अभिभावकों तथा राजनैतिक नेताओं के बीच बीमारी के सम्बन्ध में जो यह सर्वानुभूति बनी है उसमें आग अब चिकित्सा-कार्य की ओर बढ़ा जाय जिसमें थोड़े और अधिक दिनोंवाली, थोड़ा-थोड़ा करके और विभिन्न स्तरों में बंटी हुई तथा सम्पूर्ण रूप से या अलग-अलग अंशों का पूर्ण रूप से लागू करनेवाली क्रियाओं का समावेश है। इस उपसंहार में मैं अपने को तुरन्त की जानेवाली व थोड़ी अवधि की क्रियाओं के सुझाव तक ही सीमित रखूँगा।

अपने राष्ट्रीय विकास की आज की स्थिति में मैं देश की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अपने विश्वविद्यालयों की उपयुक्तता और उनकी योग्यता के साथ मुद्दे को ही वरीयता दूँगा, यह अच्छी तरह जानते हुए कि ये उनकी उन दूरगामी सांस्कृतिक व नैतिक उपयुक्तता के ही अंग हैं जिन पर उनका आगे का पूर्ण विकास निर्भर है। मैं आज विश्वविद्यालयों के फलोत्पादक दायित्वों पर जोर दूँगा, यह अच्छी तरह जानते हुए कि ये फल अन्ततोगत्वा उनके प्रकाश देने के कर्तृत्व के ही अन्तर्गत आते हैं। इसका अर्थ है कि हमारे विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय विकास के उस नितान्त आवश्यक कार्य में हिस्सा लेना पड़ेगा जिसे हमने अपनी पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में अपने निम्न विकास के प्रति सशक्त आक्रमण के रूप में माना है। राष्ट्रीय विकास में इस हिस्सेदारी का विश्वविद्यालयों के लिए अर्थ है उनके लिए आज और आनेवाले कल का काम। ये दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते और आपस में मिलकर पूर्णता की संज्ञा प्राप्त करते हैं। इसका अर्थ है विश्वविद्यालयों का दो रूपों में जीविका-शिक्षण स्थान बन जाना।

पहली बात तो यह है कि ३,२९७ संलग्न कालेजों में प्रदान की जा रही स्नातकीय स्तर से नीचे की हमारी सारी शिक्षा खेत, जंगल, समुद्र, जानवर, कारखाना, दफ्तर और घर सम्बन्धी किसी-न-किसी विशेष हुनर के ही चारों ओर केन्द्रित होनी चाहिए। इसके लिए (अ) पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में चुनाव के काफी अवसर होने चाहिए जहाँ वैकल्पिक विषयों की काफी बहुतायत हो, और (ब) शिक्षकों को खेत,

कारखाना, दफ्तर और कालेज में जाने व काम करने की पूरी सुविधा हो। साथ ही साथ, प्रत्येक पाठ्यक्रम की पूर्ति के लिए प्रत्येक विद्यार्थी व उस यूनिट के प्रत्येक शिक्षक को तीन महीने (गर्मी की छुट्टियां) से लगाकर एक वर्ष के बीच का वह निश्चित समय दिया जाय जो किसी अमुक पेशे सम्बन्धी हुनर के लिए आवश्यक हो। एथियोपिया में विश्वविद्यालय के शिक्षकों व विद्यार्थियों ने १९६८ में बिना किसी सरकारी या कानूनी सुझाव के स्वयं अपने आप बी. ए., बी. एस सी. व बी. काम का चार वर्ष के बदले पाँच वर्ष का कर दिया, जिस में से तीसरा वर्ष विद्यार्थी द्वारा अनिवार्यतः किसी खेत या कारखाने में वहाँ प्राप्त मजदूरी पर काम करने का काल तय कर दिया। इस तरह स्नातकीय स्तर से नीचे की शिक्षा आनेवाले कल के काम के लिए हुनर प्राप्त करने पर केन्द्रित होगी। लेकिन यह हुनर प्रत्यक्ष काम व आज के विकास-कार्यक्रमों की पूर्ति द्वारा प्राप्त किया जायगा।

दूसरे, स्नातकीय स्तर से नीचे की शिक्षा के बौद्धिक व प्रशासनिक भार से मुक्त होकर विश्वविद्यालय शैक्षिक व वैज्ञानिक कुशलता के स्नातकोत्तर केन्द्रों के रूप में विकसित हों, जो स्पष्टतः उपयुक्त व व्यावहारिक शोध की ओर उन्मुख हों, ताकि गरीबी हटाने की पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकता पर अधिकाधिक ध्यान दिया जा सके। देश के विश्वविद्यालय तब दुनिया में हो रहे अनुसंधान के साथ-साथ चल सकेंगे और उसका इस्तेमाल भी कर सकेंगे।

इस अल्प अवधि कार्यक्रम के आज के अपने समाज के उपयुक्त और उसके लिए उपयोगी बनने की कुछ अनिवार्यताएँ हैं। स्नातक स्तर से नीचे की शिक्षा का प्रत्येक राज्य की एक राज्य समिति द्वारा संचालित होना चाहिए जिसके विकेन्द्रित क्षेत्रीय केन्द्र होंगे जो स्थानीय रोजगारों की एक चुनी हुई संख्या चलाने, पेशा सम्बन्धी पाठ्यक्रम के मार्गदर्शन व परिवीक्षण, उपयुक्त व सारे सत्रीय कार्य व मूल्यांकन के लिए उत्तरदायी होंगे। एक ऐसी नीति निर्धारण की भी आवश्यकता है जो माध्यमिक शिक्षा को भी जीविका सम्बन्धी शिक्षण का वाहन बनाये ताकि केवल ऊँची शिक्षा के लिए माध्यम बनने या पढ़ाई बीच में ही खत्म कर देने का अवसर देने के बजाय वह स्वयं रोजगार व रोजगार देनेवाली बन जाय।

इस तरह, पाँचवी पंचवर्षीय योजना में कला और विज्ञान की स्नातक स्तर से नीचे की कक्षाओं में भर्ती को सुनिश्चित कर देना सम्भव हो सकता है, उसी तरह जैसा कि हमने इन कक्षाओं में डाक्टरी, इंजीनियरी व कृषि शिक्षा के सम्बन्ध में किया है। लेकिन फर्क यह होना चाहिए कि कला व विज्ञान की इन कक्षाओं के लिए प्रत्येक कालेज में कालेज के बाहर के श्रम कर सकनेवाले स्वस्थ युवकों की भर्ती की जाय तथा ऐसे युवकों को भी भर्ती की जाय जो अधिक हुनर प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। मेरा सुझाव यह है कि पाँचवी पंचवर्षीय योजना में इन दोनों प्रकार के युवकों की

भर्ती की योजना को छठी पचवर्षीय योजना मे भी चालू रखा जाय। इन दोनो प्रकार की श्रेणियो में श्रमिक युवकों की बराबर सख्या यानी छठी योजना के अन्त तक प्रत्येक मे २५ लाख की भर्ती की जाय।

इसका परिणाम यह होगा कि विश्वविद्यालयीन जीवन मे समृद्धि आयेगी जो कि श्रमिक लडकों के अधिकाधिक कुशलता प्राप्त करने की भावना से ही उद्भूत होगी। इन्ही लडकों के जरिये औद्योगिक मजदूरा, सेना व पुलिस, प्रशासकीय लागा, राजनीतिज्ञो, गृहणियो व कृषका तथा अन्य लागा का स्पर्श करनेवाली जीवन की अन्य वास्तविक समस्याएँ कालेज की कक्षाओ और परिसवाद कक्षा तक पहुँचेगी। विश्वविद्यालय भी तब वर्ग विशेष की ही सम्पा नही रहेगा, क्योकि तब वह उस वग के युवको को भी शिक्षित कर उनकी शिक्षा सम्बन्धी क्षतिपूर्ति कर देगा जिसे अनेक पीढियो से शिक्षा से वचित रखा गया है। और तब समानता का कुछ आभास हो सकेगा और तभी केवल मौखिक रूप से शैक्षिक अवसर की बात नही बल्कि शैक्षिक रूप से कुछ वास्तविक प्राप्ति की स्थिति भी होगी।

छोटी अवधि के इस ढाँचे सम्बन्धी पुनर्निर्माण का सुझाव देते समय मैं दो वास्तविकताओं पर निर्भर कर रहा हूँ। प्रथम, मैंने यह सुझाव अपने राज्य तमिलनाडु की शिक्षा क्षेत्र की पांचवी व छठी पचवर्षीय योजना के लिए दिया है जिसके प्रति विद्यार्थियो, शिक्षाविदो, माता-पिताओ और राजनीतिक नताओ की सामान्य सहमति है। दूसरे, मैं यह मान रहा हूँ कि विश्वविद्यालयीन शिक्षा के ढाँचे का यह पुनर्निर्माण उस विस्तृत विकास का छोटा ही सही लेकिन एक महत्त्वपूर्ण अग होगा जो रोजगारी पैदा कर समानतामूलक अर्थ-व्यवस्था तथा राजनीतिक एव जनजीवन दोनो स्तरो पर वह स्थिति पैदा करेगा जिसमे सामाजिक लोकतत्र और सामूहिक एव वैयक्तिक नैतिकता की ओर मनुष्य कुछ तो लौटेगा।

"सेमिनार" जून १९७३ से साभार
भावानुवाद रामभूषण

बुनियादी तालीम की दिशा में व्यावहारिक कदम

[आज की शिक्षा-पद्धति समाज निरपेक्ष है। विश्वविद्यालयों से शिक्षा पाकर निकला हुआ विद्यार्थी अपनी एकांगी शिक्षा के कारण समाज के साथ अपना मेल नहीं बैठा पाता। वह शिक्षकों तथा अभिभावकों में डिग्रियों का नहीं, तात्कालिक समस्याओं के समाधान की शक्ति देखना चाहता है। पर, दुर्भाग्यवश वर्तमान शिक्षा-पद्धति उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पा रही है। यह जागतिक समस्या पूरे राष्ट्र में व्याप्त है। इस परिप्रेक्ष्य में यह लाजिमी है कि विद्यार्थियों के शिक्षण के साथ कोई ऐसा उत्पादक उद्योग हो, जो उनकी रोजी रोटी की समस्याओं को हल कर सके। आज इस जागतिक समस्या का समाधान कैसे हो, इस विषय पर गत ५ जुलाई ७३ को सेवाग्राम में नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में समिति के सदस्यों एवं आमन्त्रितों की एक बैठक बुलायी गयी। अतः समिति द्वारा पारित प्रस्ताव एवं श्री श्रीमनजी तथा पूज्य विनोबा के बीच हुए प्रश्नोत्तर नयी तालीम के पाठकों की जानकारी हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। —सम्पादक]

नयी तालीम की बैठक कार्यवाही

दिनांक ५ जुलाई १९७३ को नयी तालीम समिति की मीटिंग बुलायी गयी थी। किन्तु कोरम के अभाव में अनौपचारिक चर्चा के बाद यह बैठक स्थगित कर दी गयी। अध्यक्षजी ने कहा कि समिति की अगली बैठक १५ सितम्बर ७३ को ३ बजे से सेवाग्राम में रखी जाय, आवश्यकता पड़ने पर १६ तारीख को भी मीटिंग चालू रहेगी। १६ सितम्बर ७३ को राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम की फालोअप

कमिटी (कार्यान्वियन समिति) की बैठक भी बुलायी गयी है। इसलिए उसी के साथ समिति की बैठक का आयोजन भी उपयुक्त रहगा।

मीटिंग के लिए एजेण्डा निम्न प्रकार रहेगा

१५ सितम्बर की बैठक का एजेण्डा

१. पिछली बैठक की कार्यवाही की पुष्टि।
२ श्री आर्यनायकजी की अस्वस्थता के कारण समिति के मंत्री पद से दिये गये त्याग-पत्र पर विचार।
३ नयी तालीम समिति के विधानानुसार ३ वर्ष बाद १/३ सदस्यों की निवृत्ति एवं उनके स्थान पर नये सदस्यों की नियुक्ति।
४ समिति के नये पदाधिकारियों का चुनाव।
५ 'नयी तालीम' पत्रिका के सेवाग्राम में प्रकाशन सम्बन्धी व्यवस्था।
६ सेवाग्राम में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों के सम्बन्ध में अब तक की गयी कार्रवाई की जानकारी।
७ नयी तालीम सम्मेलन आयोजित करने के बारे में विचार।
८ नयी तालीम समिति के भविष्य के कार्य की योजना।
९ नयी तालीम समिति का बजट।
१० अध्यक्ष की अनुमति से अन्य विषय।

सदस्यों की उपस्थिति इस प्रकार थी

सर्वश्री श्रीमन्नारायण अध्यक्ष, पूर्णचन्द्र जैन, बजू भाई पटेल, ग० उ० पाटणकर।

विशेष आमंत्रित

सर्वश्री वी० आर० मेहता, अण्णा साहब सहस्रबुद्धे, हातेकरजी, श्रीमती मणिमाला चौधरी, श्रीमती निर्मला गांधी, प्रभाकरजी, माधवराव गोडसे।

बैठक का कार्य विवरण

श्री देवेन्द्र कुमार गुप्ता यहाँ आकर फिर विनोबाजी से महत्त्वपूर्ण कार्य के निमित्त इजाजत लेकर पवनार चले गये।

(१) काफी समय पूर्व मीटिंग की सूचना देने के बावजूद कई सदस्यों ने अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण मीटिंग में उपस्थित रहने के लिए अपनी असमर्थता के बारे में सूचना भेजी।

(२) संविधान के अनुसार सात सदस्यों से कोरम पूरा होता है, किन्तु पाँच ही सदस्य उपस्थित थे। इसलिए औपचारिक मीटिंग न करके अनौपचारिक रूप से चर्चा हुई।

(३) सेवाग्राम में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर गठित की गई कार्यान्वयन समिति की अब तक की दो बैठकों में लिये गये निर्णयों की जानकारी व उसके भावी कार्यक्रम की रूपरेखा के बारे में उसके संयोजक श्री वी० आर० मेहता ने सदस्यों को तफसील से बतायी। अध्यक्षजी ने बताया कि कुछ राज्यों में राजनैतिक अस्थिरता के कारण समिति के तीन सदस्यों का अपने राज्य में पद पर न रहते हुए भी इस समिति का कार्य कुल मिलाकर उत्साहजनक रहा। इसकी अगली बैठक १६ सितम्बर '७३ को सेवाग्राम में आयोजित करने के बारे में जानकारी देते हुए सुझाया कि नयी तालीम समिति की भी अगली बैठक इसी के साथ १५ सितम्बर को दोपहर ३ बजे से बुलाना उपयुक्त रहेगा और यदि आवश्यकता हुई तो यह मीटिंग १६ ता० को भी चालू रहेगी।

श्री आचार्लूजी की लम्बी अस्वस्थता के कारण उनके त्याग पत्र पर नयी तालीम समिति के भावी मंत्री के बारे में काफी विचार-विनिमय हुआ। सदस्यों से विनती की गयी कि अगली बैठक तक कोई उपयुक्त मंत्री का नाम वे अध्यक्षजी को सुझाये। समिति के गठन से लेकर अभी तक जो काम श्री आचार्लूजी ने किया, उसकी अध्यक्षजी तथा अन्य सदस्यों ने सराहना करते हुए उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की कामना की।

'नयी तालीम' पत्रिका के वाराणसी के बजाय अब सेवाग्राम से प्रकाशन के सम्बन्ध में अध्यक्षजी ने सदस्यों को जानकारी दी। इस पत्रिका के प्रकाशन आदि के लिए कानूनी कार्रवाई मुद्रक और प्रकाशक के तौर पर करने का अधिकार श्री प्रभाकरजी, मंत्री, आश्रम प्रतिष्ठान को सौंपी गयी। नयी तालीम समिति की ओर से अब भविष्य में नयीतालीम पत्रिका का प्रकाशन सेवाग्राम से किया जायेगा। नयी तालीम समिति का केन्द्रीय कार्यालय सेवाग्राम में मध्यवर्ती स्थान होने के कारण यहीं रहेगा।

सेवाग्राम में बुनियादी शिक्षा का क्या स्वरूप हो, इसके बारे में विस्तृत चर्चा हुई। उसका सारांश एवं पूज्य विनोबाजी के इस विषय पर दिये गये विचार की संक्षिप्त जानकारी भी आगे दी जा रही है।

श्री अध्यक्षजी ने सदस्यों से अनुरोध किया कि नयी तालीम समिति के सदस्य अपने-अपने प्रदेश में नयी तालीम के काम को संगठित करने हेतु शिविर-सम्मेलन आदि का आयोजन करें, राज्य सरकार के साथ सम्पर्क करें व नयी तालीम पत्रिका की ग्राहक संख्या बढ़ाने में मदद करें।

अध्यक्षजी को धन्यवाद के साथ यह अनौपचारिक सभा १२॥ बजे समाप्त हुई।

श्रीमन्‌जी के प्रश्न : विनोबाजी के उत्तर

विनोबाजी का प्रवचन नयी तालीम के सम्बन्ध मे एक मुख्य निर्णय जो लिया गया है कि सरकारी मान्यता न ली जाय, उसके लिए बाबा का धन्यवाद। इसमें आपकी अक्ल साबित रहेगी। मेरा सुझाव है कि अगर हो सके तो सेवाग्राम की नयी तालीम सारे भारत के लिए चलाया जाय, सारे भारत से विद्यार्थी आ सकते हों तो आये, केवल आसपास के क्षेत्रों के ही, नहीं। तुकाराम ने आप लोगो का इस बारे मे सावधान किया है। सेवाग्रामवासी यानी सेवाग्राम मे रहनेवाला। यह एक शब्द है इसको संस्कृत मे सामासिक शब्द कहते हैं। वह समास जो कभी-कभी मध्यम पद लोपी होता है। 'शाकप्रिय भोज राजा' भोज राजा जिसको भाजा प्रिय है। तो तुकाराम कहते हैं सेवाग्रामवासी यह जो समास है वह मध्यम पद लोपी है। वह कौन-सा है— सेवा भक्ति-शून्य ग्रामवासी यानी सेवाग्रामवासी। इस वास्ते आस पास के लोगों की चिन्ता छोड़कर सारे भारत का स्थान है ऐसा समझकर सरकारी मान्यता के बिना जो वहाँ तालीम लेने के लिए आ जायेंगे १०–२० भी हों तो भी आप चलायें एसी मेरी सलाह है।

श्रीमन्‌जी शिक्षण का माध्यम क्या रहेगा ?

विनोबाजी अखिल भारत काम के लिए माध्यम हिन्दी रहेगा।

श्रीमनजी आपने सुझाया है कि सेवाग्राम मे बुनियादी शिक्षा सारे देश के बच्चों के लिए हिन्दी माध्यम द्वारा हो। लेकिन यह बुनियादी शिक्षा १५ से २५ वष तक के नवयुवकों के लिए हो (एडल्ट एजूकेशन) या बेसिक और पोस्ट बेसिक भी रहे (७ से १४ वष तक की उम्र के बच्चों के लिए)। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम उत्तर बुनियादी (१४–१८) स्तर का ही विद्यालय चलायें बुनियादी (७ से १४) का नहीं ?

विनोबाजी नवयुवकों के स्वावलम्बन के लिए हो। शाला चलायी जाय जिसमें उम्र की मर्यादा १५ से २५ साल की हो पाठ्यक्रम जिसकी जैसी आवश्यकता हो उसके अनुसार हो। जो पहले आयगा वह अधिक दिन तक रहेगा, जो बाद मे आयगा वह कम दिन तक रहेगा।

यह हुआ नयी तालीम के बारे मे।

विनोबाजी के लिए श्रीमन्‌जी का नोट

कल नयी तालीम समिति की बैठक मे काफी देर तक चर्चा हुई कि अब सेवाग्राम में बुनियादी शिक्षा का क्या रूप हो।

एक राय यह थी कि सेवाग्राम मे बुनियादी और उत्तर बुनियादी विद्यालय सचालित किया जाय जो एक आदर्श शाला हो। किन्तु वह महाराष्ट्र शासन द्वारा मान्य हो। इसका अर्थ यह हुआ कि सरकारी पाठ्यक्रम के अनुसार पढाई हो, किन्तु खेती स्वावलम्बन, उद्योग, सफाई आदि पर विशेष ध्यान दिया जाय। परीक्षा भी हाईस्कूल की रहे ताकि छात्रो को कालेजो मे प्रवेश की सुविधा रहे। शाला आवासीय हो।

दूसरा सुझाव यह भी रहा कि पाठ्यक्रम हमारा हो, और उसके लिए सरकार से मान्यता प्राप्त करने की कोशिश की जाय, एक प्रयोग के रूप में। किन्तु महाराष्ट्र सरकार इस प्रकार की मान्यता देगी ऐसा कहना कठिन है। उसमें अच्छे विद्यार्थी पढने आयेंगे यह भी एक प्रश्न ही है।

यह भी सुझाया गया कि बेसिक स्कूल का पाठ्यक्रम स्वतत्र हो, किन्तु जो विद्यार्थी हाईस्कूल की परीक्षा मे बैठना चाहें उन्हें आवश्यक सुविधा व इजाजत दी जाय। किन्तु शायद अब महाराष्ट्र शासन भविष्य मे विद्यार्थियो को मैट्रिक परीक्षा मे स्वतत्र रूप से बैठने की इजाजत नही देगा, क्योकि विज्ञान और गणित अनिवार्य रूप मे पढाये जायगे।

बाद मे मैंने सुझाव दिया कि सेवाग्राम मे बेसिक या पोस्ट बेसिक स्कूल सरकार मान्य ढंग से चलाने का कोई अर्थ नहीं होगा। सरकारी पाठ्यक्रम इतना भारी है कि उसे पूरा करने के लिए सारी शक्ति उन्ही परम्परागत विषयो को पढ़ाने में लग जायगी और बुनियादी तालीम के स्वावलम्बन, श्रम आदि को प्रधानता नही दी जा सकेगी। सरकारी मान्यता के बिना भी बेसिक स्कूल चलाना व्यावहारिक नही होगा, क्योकि विद्यार्थी बहुत कम आयेगे। वे ही हमारे यहाँ भर्ती होगे जिन्हें दूसरे सरकार-मान्य स्कूलों में प्रवेश नही मिलेगा।

अत १५ और २५ वर्ष के बीच की उम्र के ऐसे नवयुवको को शिक्षित किया जाय जिनके पास कुछ जमीन है और जो कृषि, गोपालन, खादी व आवास निर्माण (हाउसिंग) आदि के काम में अपनी कुशलता (स्किल्स) बढाना चाहते है। बिजली, पम्प, कृषि-औजार आदि की दुरुस्ती का काम भी उन्हें सिखाया जाय।

संक्षेप में किसानो की जो अनुभूत आवश्यकताएँ है उनकी पूर्ति के लिए सेवाग्राम में शिक्षा दी जाय। सरकारी नौकरी या डिप्लोमा व सर्टिफिकेट के लिए नही। प्रयोग करके साल भर देखा जाय कि इस तरह को पढाई के लिए विद्यार्थी मिलते है या नही, और जो आते है वे टिकते है या नही।

मेरा ख्याल है कि अगर सेवाग्राम के नजदीक के २०–२५ गावो के लोगो से सम्पर्क स्थापित किया जाय तो इस तरह की शाला के लिए काफी नवयुवक प्राप्त हो सकेंगे। उन्हे ३, ६, ९ महीने, एक वर्ष, दो वर्ष तक की विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाय ताकि वे सेल्फ इम्पलायमण्ट के द्वारा स्वावलम्बी भी बन सके और आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताएँ भी पूरी हो सके। गांवो की स्किल्स् भी अप-ग्रेड हो और लोगो को लगे कि सेवाग्राम की शिक्षा से बेकारी नही फैलती बल्कि जरूरतो की पूर्ति होती है।

यह सुझाव सदस्यो को ठीक लगा। इस सम्बन्ध मे आपका मार्गदर्शन चाहिए।

क्षमा याचना

[नयी तालीम, माह मई '७३ अंक १० की सूचनानुसार आपको मालूम हुआ होगा कि अब नयी तालीम पत्रिका का प्रकाशन सेवाग्राम से हो रहा है। स्थान-परिवर्तन एवं नयी व्यवस्था के कारण जुलाई '७३ के अंक के प्रकाशन में विलम्ब होने से अब माह जुलाई एवं अगस्त का अंक संयुक्त प्रकाशित हो रहा है। इसकी सूचना पूर्व प्रकाशित जून '७३ के अंक में नही दी जा सकी इसके लिए कृपालु पाठक हमारी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए क्षमा करेंगे। आगे का अंक निश्चित समय पर मिलता रहे, ऐसा प्रयास हम करेंगे। —सम्पादक]

सेवाग्राम में बुनियादी तालीम का नया रूप

१९३८ में सेवाग्राम में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की स्थापना पूज्य महात्मा गांधी द्वारा की गयी। तालीमी संघ द्वारा पूरे देश में शिक्षण-प्रशिक्षण-कार्य में एक नया सिलसिला शुरू हुआ। १९३८ से १९६६ तक सेवाग्राम में शिक्षण का काम बाल मन्दिर (नर्सरी) से लेकर उत्तम बुनियादी (स्नातक स्तर) तक काफी अच्छी तरह चला। खेती, गोपालन, कताई-बुनाई, ग्राम-संघटन और सर्वोदय विचार— इन सारी प्रवृत्तियों द्वारा शिक्षण का कार्य चलता रहा।

आजादी के बाद विनोबाजी के मार्गदर्शन में भूदान, ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन देश भर में काफी आगे बढ़ चुका था। अब यह महसूस किया जाने लगा कि नयी तालीम को पूज्य बापू की कल्पना के अनुसार समग्र नयी तालीम में परिवर्तित करने का समय आ गया है। तदोपरान्त विनोबाजी की सलाह पर हिन्दुस्तानी तालीमी संघ को सर्व सेवा संघ में विलयन कर दिया गया।

शुरू में सेवाग्राम में उत्तम बुनियादी शिक्षा के साथ-साथ शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय भी चलता था। लेकिन अधिकांश राज्य सरकारों के अपने खुद के शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय हो जाने से यह महाविद्यालय बन्द कर देना पड़ा। बाद में कुछ अन्य परिस्थितियों के कारण उत्तर बुनियादी एवं उत्तम बुनियादी भी बन्द कर देना पड़ा। आन्दोलन की दृष्टि से इन सारी घटनाओं का असर बहुत ही खराब हुआ। तब सर्व सेवा संघ ने अनुभव किया कि नयी तालीम के समुचित विकास के

लिए पहले की तरह ही एक स्वतंत्र संगठन का होना अति आवश्यक है। उस दृष्टि से सर्व सेवा संघ के अन्तर्गत एक 'स्वायत्त नयी तालीम समिति' इस काम को देख रही है। किन्तु अब अनुभव हो रहा है कि आज नय बदलते हुए सन्दर्भ में जो काम करने का हमारा तरीका है वह असरदायी नहीं है। आज के गाँव पहले के गाँव जैसे नहीं रह गये हैं। उनकी आवश्यकताओं, परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हो जाने से हमारे काम का मेल नहीं बैठ पा रहा है। अतः हमारे लिए आवश्यक हो गया है कि हम नयी परिस्थिति से मेल खानेवाली शिक्षा-योजना चलायें।

इन सारी बातों के उपर ध्यान देते हुए गत् ५ जुलाई '७३ को नयी तालीम समिति की बैठक में यह निश्चय हुआ कि सेवाग्राम में नयी तालीम को एसा रूप दिया जाय जो आज के बदलते हुए मूल्यों के साथ अपना तालमेल बैठा सके।

इस दृष्टि से एक प्रस्ताव आया कि २ अक्टूबर '७३ से सेवाग्राम में एक नया प्रयोग शुरू किया जाय। लेकिन इस प्रयोग को अमली रूप देने के पूर्व सेवाग्राम आश्रम के कार्यकर्ताओं एवं शिक्षा में रुचि रखनेवाले आसपास के गाँवों के लोगों की बैठक २० जून और ३० जून '७३ को की गयी। बैठक में योजना के सम्बन्ध में जो विचार-विमर्श हुए वे निम्न प्रकार हैं —

(१) प्रौढ़ शिक्षा के तौर पर कुछ युवक बुलाये जायें। प्रौढ़ शिक्षा के साथ-साथ, खेती, गोपालन, यंत्रविद्या, गृह-निर्माण, औजार-दुरुस्ती तथा अम्बर चरखा आदि में स्वावलम्बन का प्रयोग चले।

(२) यहाँ एक एसी शाला चलायी जाय जो नवयुवकों के अन्न-वस्त्र तथा गृह निर्माण के स्वावलम्बन के लिए उपयोगी हो सके। इसमें आनेवाले युवकों के लिए उम्र की मर्यादा १५ से २५ साल तक की हो। पाठ्यक्रम का चयन आवश्यकतानुसार ही किया जाय। जो पहले आयगा वह अधिक दिन रहेगा, और जो बाद में आयगा वह कम दिन रहेगा।

(३) प्रशिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जिससे सारे देश के नवयुवक उसका लाभ उठा सकें। प्रशिक्षणार्थी सभी राज्यों के हो सकते हैं। अगर रचनात्मक संस्थाओं के हों तो और अच्छा रहेगा। सेवाग्राम के पड़ोस के गाँवों के ८–१० विद्यार्थी यहाँ प्रशिक्षण लें, इस सम्बन्ध में आसपास के गाँवों से सम्बन्ध स्थापित किये जायें।

वैज्ञानिक खेती, गोपालन, औजारों की दुरुस्ती, बिजली एवं मोटर-मरम्मत करने के लिए आज देहातों में विशेषज्ञ नहीं हैं। आज विज्ञान के युग में भी यह समस्या देहातों में बनी हुई है। किन्तु इन कामों में सेवाग्राम से प्रशिक्षण प्राप्त किया हुआ युवक नौकरी की तलाश में न जाकर देहातों में अपना स्वतंत्र उद्योग शुरू कर उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है।

(४) चर्चा के दौरान यह भी निश्चय किया गया कि २ अक्टूबर से चलनेवाला प्रौढ़ विद्यालय में कुल २० प्रशिक्षणार्थी हों। उनकी शैक्षणिक योग्यता चौथी से माध्यमिक स्तर तक होगी। यदि कोई स्नातक आना चाहे तो उनके प्रशिक्षण की भी योजना रखी गयी है। प्रौढ़ो की उम्र की मर्यादा ३० वर्ष तक भी रखी जा सकती है।

(५) पाठ्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी विभागीय प्रमुखों पर दी गयी। पाठ्यक्रम का क्या स्वरूप हो इस विषय पर चर्चा करके इस माह के अन्त तक उसका एक ढांचा तैयार कर लेना उचित होगा। प्रशिक्षण की अवधि अनिश्चित रहेगी। प्रशिक्षणार्थियों की योग्यता के अनुसार यह अवधि ६ माह से दो साल तक भी हो सकती है। जिन विषयों के प्रति विद्यार्थी की विशेष रुचि होगी उन्हे उसका पूरा मौका दिया जायेगा।

प्रशिक्षण-काल में स्वावलम्बन के उपर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा। विद्यार्थी ४ घण्टे या ६ घण्टे तक भी काम कर सकते है। प्रारम्भ में अगर विद्यार्थी की कमाई ५० रुपये प्रति माह होगी तो प्रशिक्षण के अन्त तक प्रति माह १०० रुपये तक कमाने की क्षमता हो सकती है। यह प्रौढ़ शिक्षा की कसौटी होगी। चार घण्टा काम करने पर विद्यार्थी अपना भोजन-खर्च खुद निकाल सकते हैं। आवास, बिजली-खर्च तथा स्वास्थ्य-उपचार मुफ्त रहेगा।

(६) प्रशिक्षण समाप्ति के बाद आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष तथा मंत्री एक प्रशस्ती पत्र प्रदान करेंगे जो नौकरी ढूढ़ने के काम नही आयगा, बल्कि स्वयं स्वतंत्र उद्योग खड़ा करने की दृष्टि से उपयोगी माना जायेगा।

बैठक में यह भी तय किया गया कि खेती, गोपालन, अम्बर चरखा, यंत्र-विद्या, गृह-निर्माण आदि प्रमुख अपने विभाग का पाठ्यक्रम १ सितम्बर तक प्रस्तुत करेंगे।

इस योजना की जानकारी अन्य लोगों को मिले इस दृष्टि से अखबार एवं पत्र-पत्रिकाओं में इसका प्रकाशन कराया जाय। अगर सम्भव हो सके तो अन्य प्रचार-तंत्र का लाभ भी लिया जा सकता है।

पाठ्यक्रम का पूरा ढांचा तैयार कर लेने के बाद उस पर पूज्य विनोबा की राय ली जाय विशेष ज्ञान हासिल करने के लिए प्रशिक्षणार्थियो को पिपरी, दत्तपुर एवं गोपुरी आदि संस्थाओं में भी भेजा जायेगा।

---माधवराव गोडसे,
प्राध्यापक, नयी तालीम विद्यालय, सेवाग्राम

श्रीमती मदालसा नारायण

नयी तालीम 'उद्योग, योग और प्रयोगमय' हो

प्रश्न — विनोबाजी क सान्निध्य में रहते समय आपके जीवन का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ ?

उत्तर — १९३२ में उनका निकट सान्निध्य गुरु के रूप में प्राप्त हुआ। श्रद्धा के सहारे बढती हुई जिज्ञासा के द्वारा मेरा विकास होता गया। उसके फलस्वरूप जीवन और जगत की गतिविधियों के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा बढती गई जिसमें प्रकृति और परमेश्वर का प्रभाव किस तरह से जीवन में समाविष्ट हुआ यह जानने और समझने में आन्तरिक आनन्द मिलने लगा।

प्रश्न — उनके द्वारा दी जानवाली शिक्षा-पद्धति के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर — पूज्य विनोबाजी द्वारा दी जानवाली शिक्षा पद्धति का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। सेवा व्यक्ति की और भक्ति समष्टि की यह उसका रूप है। अध्ययन और अध्यापन को उन्होंने तीर्थ स्थान की उपमा दी है। विद्यार्थी या शिक्षार्थी के पास आत्म भावना या समरसता की सीमा नहीं रहती है। उसको उन्होंने चन्द्र-चकोर या चातक की उपमा दी है। उनकी दृष्टि से शिक्षा का मतलब जो मैं समझती हूँ वह जीवनोपयोगी जीवन शास्त्र है। उसको जानने और समझने में विद्यार्थियों के मन में तरह-तरह का खूब अभिरुचियाँ पैदा करते जाना और विद्यार्थी की उस

बढ़ती हुई अभिरुचि के अनुरूप अधिक-से-अधिक ज्ञान देते जाना, जिसे जीवनोपयोगी शाश्वत स्वरूप की जानकारी कहा जा सकता है। उसी को तत्व चिन्तन की अभिलाषा भी कहते हैं, और पर्याय से उसे ही जीवनोपयोगी बुनियादी तालीम भी कहा जा सकता है। ऐसी तालीम जिससे जीवन की बुनियाद हर प्रकार से खूब मजबूत हो सके। वही तो नित्य नयी तालीम है। जैसे अरुणोदय से सूर्योदय के दर्शन में नित्य नया आनन्द और नित्य नया उल्लास है उसी तरह "प्रात: स्मरामि हृदि सस्फुरदात्म तत्वम् . . ." के नित्य नूतन चिन्तन और अध्ययन-अध्यापन में नित्य नया आनन्द और उल्लास का अनुभव होता है। यही पूज्य विनोबा द्वारा दी जानेवाली शिक्षा-पद्धति का स्वरूप है, जो मैं समझी हूँ।

प्रश्न — विनोबाजी ने अपने कर्मयोग के साथ नयी तालीम का किस प्रकार विकास किया ?

उत्तर — जैसे बापूजी के जीवन का स्वरूप उनके अपने शब्दों में "सत्य के प्रयोगमय" रहा वैसा ही १९३१ से १९५१ तक बाबा के जीवन का स्वरूप उनके अपने शब्दों में "उद्योग, योग और प्रयोगमय" रहा है। १९५०–५१ में परमधाम पवनार में जो काचन-मुक्ति का प्रयोग चला उसमें तो ज्ञान, कर्म और भक्ति का ऐसा त्रिवेणी-संगम हुआ कि उसके स्मरण मात्र से मन अनेक प्रकार से सम्पन्न हो जाता है। उसे नयी तालीम का उज्ज्वलतम अप्रतिम दृष्टान्त के रूप में समझने और सोचने में भी कितना आनन्द मिलता है वह सब जानने के लिए उस समय बाबा के 'उद्योग, योग और प्रयोगमय' जीवन का दर्शन जितनी तरह से जाना जा सके वह जानने की जिज्ञासा की जाय, तो अपने आप में सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। और कर्मयोग के साथ नयी तालीम का किस प्रकार विकास हुआ, इसकी जानकारी भी मिल जायेगी।

प्रश्न — शिक्षण और राजनीतिक क्षेत्र के अनेकविध पदों पर रहने पर भी श्री श्रीमन्जी की नयी तालीम के प्रति श्रद्धा के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर — इसके पीछे बहुत भारी रहस्य है। इसमें मेरे पति श्री श्रीमन्जी की नयी तालीम के प्रति श्रद्धा के पीछे क्या रहस्य है यह आपने पूछा है। इस सवाल में 'नयी तालीम' यह जो दो शब्द हैं पहले उसी को समझ लेना होगा कि उसका भावार्थ क्या है ? नयी तालीम यानी नित्य नयी तालीम, यह तो स्पष्ट ही है और जो तालीम नित्य नयी होगी उसमें इतनी नवीनता और व्यापकता होगी कि सामान्य रूप से जिसे शिक्षण कहा जाता है या जिसे राजनीति कहा जाता है ये चीजें बहुत सारी तात्कालिक कही जाती हैं; जबकि नित्य नयी तालीम तो चिरस्थायी है और प्राणीमात्र के जीवन में एवं जगत के कण-कण में से निरन्तर प्रस्फुटित ही होती रहती है। वह जिस तरह से और जिन तरीकों से जाना जा सकता है उसीका नाम तो नयी तालीम है न ! तो किसी भी पद पर रहे या किसी भी क्षेत्र में— 'व्यापकतम' नयी तालीम

के बारे में एक बार अभिरुचि पैदा होने के बाद उसके प्रति श्रद्धा अपने आप बढती ही रहती है। उसके प्रति दिन-प्रतिदिन श्रद्धा बढते रहना, यह तो सहज स्वाभाविक है। उसके पीछे रहस्य की बात ही क्या है?

प्रश्न — श्रीमनजी ने नयी तालीम-क्षत्र में क्या कुछ प्रयोगात्मक कार्य किया है? यदि किये हैं तो उनका उसमें कैसा योगदान है?

उत्तर — आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं बहुत अच्छी तरह से कैसे दे सकती हूँ। लेकिन इतना जरूर कह सकती हूँ कि प्रत्यक्ष व्यक्तिगत रूप से प्रयोगात्मक कार्य इन्होंने क्या किया यह कहना कठिन है। फिर भी इनकी दैनिक जीवनचर्या जो मैं देख रही हूँ शुरू से अब तक, वह भी नयी तालीम का ही नमूना है। इसका सिर्फ एक ही उदाहरण मैं आपके सामने रखूँगी कि जब गुजरात राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हुआ उस समय भी इनका नियमित रूप से चक्की पीसना और चर्खा चलाना कभी नहीं छूटा। इतना ही नहीं, राष्ट्रपति शासन का सचालन भी जो उन्होंने किया वह चर्खा चलाते-चलाते ही किया। यह भी कहा जा सकता है कि रात को १ बजे तक फाइलों को निपटा कर सोने का इनका नियम था और सुबह उठकर नित्य क्रिया के बाद प्रार्थना-स्थल में चर्खा चलाने बैठते थे। वही पर राजभवन के सचिव आते थे और दिनभर क्या-क्या काम करना है इस सबका चर्चा चर्खा चलाते हुए ही होती थी, और कार्य की रूपरेखा भी वही पर बन जाती थी। उस समय के अपने अनुभवों को उन्होंने कई बार व्यक्त किया है कि चर्खा चलाते समय विचारों की जो एकाग्रता होती थी और जो निर्णय लिये जाते थे, वह इतने स्थाई रूप के होते थे कि उनमें कभी फर्क करने की जरूरत नहीं पडती थी। कहने का मतलब यह है कि उद्योगमय चिन्तन एवं चर्खा के द्वारा ही राष्ट्रपति शासन का सचालन अधिक सफल हुआ।

प्रस्तुतकर्ता बद्रीनाथ सहाय

भूल-सुधार

[नयी तालीम, अंक ११, माह जून १९७३, पृष्ठ ५११ के कालम तीन में नीचे से तीसरी लाइन "मैं कहता हूँ और लोगों को साक्षर होना चाहिए।" इस वाक्य में साक्षर की जगह "सार्थक" होगा। जब यह अंक पूज्य विनोबा को भेंट किया तो बाबा ने बड़े ध्यान से पढ़ा और यह भूल बताई। कृपया उस वाक्य को इस प्रकार पढ़ें—"मैं कहता हूँ और लोगों को सार्थक होना चाहिए।" —सम्पादक]

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

मुक्ति के लिए शिक्षा की अनिवार्यताएँ

[गत मई में बगलोर में ब्राजील के प्रख्यात शिक्षाशास्त्री श्री पाओलो फ्रेरे के शिक्षण विचार पर उन्हीं की अध्यक्षता में एक गोष्ठी हुई थी। यह लेख उस गोष्ठी के लिए श्री बहुगुणाजी द्वारा लिखे गये लेख का सक्षिप्त है। — सम्पादक]

शिक्षा का उद्देश्य : मुक्ति

शिक्षा का उद्देश्य मानव का आत्म विकास करना है। यह आत्म विकास आत्म प्रत्यक्षीकरण' की एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे मनुष्य को बिना किसी बाहरी आरोपण के स्वात्म' का विकास करने में सहायता मिले। मनुष्य स्वत चेतन तत्व होने के कारण स्वत विकासमान है और शिक्षा को उसे इस कार्य में सहायता मात्र करना है। भारत में मनु ने आज से हजारो साल पहले शिक्षा के दो उद्देश्य—'स्वाहा और 'स्वधा'— की घोषणा की थी और यही बात आज के मनोविज्ञ जैसे रास और मन भी कहते है। ये लोग मन की दो शक्तियों एक, 'सचयी-शक्ति' (Mneme) और दो 'जीवनी शक्ति (Horme) की बात कहते हैं। मनुष्य की इन शक्तियो का विकास ही मनुष्य का 'बनना' है। मनुष्य जैसा है उसको वैसा 'होने' अथवा 'बनने' का 'नैसर्गिक अधिकार है। मनुष्य के इस अधिकार की स्वीकृति ही शिक्षा का सही आधार है। इसलिए शिक्षण 'दिया' नहीं जाता, 'होता' है। इसलिए 'सिखाने' का नहीं 'सीखने' का नाम शिक्षण है। श्री विनोबा ने इसीलिए किसी सन्दर्भ में एक बार कहा था कि प्राचीन भारतीय शिक्षा शास्त्र में सिखाना शब्द ही नही है सीखना है। सिखाना कृत्रिम है सीखना स्वाभाविक है। हमारा शिक्षण कृत्रिम नही स्वाभाविक होना चाहिए। इसलिए उस सिखाने के बजाय सीखने की प्रक्रिया और पद्धति होनी चाहिए। यही पुन मानव-स्वातन्त्र्य की भी गारण्टी है। इस दृष्टि से शिक्षा केवल साक्षरता से कही अधिक व्यापक प्रत्यय है। गाधीजी ने इसी दृष्टि से शिक्षा को 'गर्भ से लेकर मृत्यु तक' की प्रक्रिया का नाम दिया था। शिक्षा उस परिवेश का नाम है जिसमें रहकर मनुष्य

सामान्य प्राणी से मानव बनने का अवसर, सामग्री और प्ररणा प्राप्त करता है। प्राचीन भारतीय परिभाषा में कह ता जहाँ वह 'व्यक्ति' स 'पुरुष' बनन की कला प्राप्त करता है, वहाँ भारतीय ज्ञान शास्त्र में व्यक्ति और पुरुष में तात्विक फर्क है। अत इस बात को ही ध्यान में रखकर कहा गया कि जो मनुष्य को व्यक्ति से पुरुष बनने में आनवाली बाधाओ स मुक्त करे वही शिक्षा है। 'सा विद्या या विमुक्तय।' मनुष्य की यह मुक्ति बिना शत होनी चाहिए जैस श्री ज० कृष्णमूर्ति भी कहत है। मनुष्य की मुक्ति ही व्यक्ति और समाज के लिए एक मात्र साध्य है।

मौजूदा शिक्षा दासता की संस्कृति

अब तक शिक्षा यह काम करन में असफल रही है। अभी तक तो वह मनुष्य को मुक्त करन के बजाय उस बन्धन में रख हुए है, जैसा रूसो न भी कहा था। आज तो य बन्धन मनुष्य की सस्कृति ही बन गय हैं। चूँकि सस्कृति दासता की है किन्तु मानव-आकाक्षा स्वतन्त्रता की है अत यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति और समाज के समग्र जीवन में तीव्र असन्तोष और अराजकता व्याप्त हो। आज हम सब इस प्रकार की सम्पूण अराजकता स ग्रस्त हैं।

दो बडे कारण

इसक दो बड कारण हैं। एक कारण तो यह है कि शिक्षा न अब तक जो सबस बडा दोषपूर्ण काय किया वह यह था कि उसन मनुष्य की क्षमता में कोई भी साथक वृद्धि किय बिना उसकी आकाक्षाएँ बढा दी है। अब विज्ञान भी शिक्षा के इस दोष को बढा रहा है। शिक्षा के इस दोष के कारण मनुष्य का आन्तरिक विघटन हुआ और उसस उत्पन्न सकट आज विज्ञान के कारण और घनीभूत हो गया है। आज के मानव न धरती और अतरिक्ष की दूरियाँ तो पार की हैं किन्तु पडोस की दूरियाँ पार करन में वह आज भी सफल नही हो सका है। आज शिक्षा और विज्ञान दोना मिलकर 'प्राचुर्य' के लिए काम कर रह है जबकि हमें प्राचुर्य क बजाय 'सम्पन्नता' की आवश्यकता थी। नतीजा यह है कि आज का ससार 'प्राचुय' की 'कगाली' स भयानक रूप स ग्रस्त है। आज राष्ट्र तो धनी है किन्तु मनुष्य कगाल है।

इसका दूसरा कारण यह है कि यद्यपि मनुष्य और समाज 'परस्पर' और 'इतर' सम्बन्धो के माध्यम स बनत या बिगडत हैं किन्तु आज की शिक्षा-प्रणालियो का इन सम्बन्धो स कोई वास्ता नही रह गया है। इसस व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का परस्पर तथा इतर सन्तुलन बिगड गया है। आज हम शिक्षा के ज्यो-ज्यो ऊच स्तरों पर आते हैं यह असन्तुलन अधिकतर बढता ही जाता है। हमारे विश्वविद्यालय और शोध-सस्थान इस प्रकार का असन्तुलन पैदा करन और उसे बढान में सलग्न हैं। वे हिंसा, दमन, शोषण और भ्रष्टाचार के निकृष्ट अड्ड

बने हैं जहाँ जीवन 'पनपने' के बजाय 'घटता' है, क्योंकि 'उकताहट' ही उनका एकमात्र कार्य रह गया है।

सत्ता बनाम स्वतंत्रता का प्रश्न

इस समस्त परिस्थिति से मानव समाज की असीम हानि हो रही है। किन्तु वही एक अल्पसंख्यक वर्ग ऐसा भी है जो इससे खूब लाभ उठाता है। वह इस कारण इसे बनाये रखने और बढ़ाने में पूरी ताकत के साथ लगा है। यह वर्ग सत्ताधीशों का है। यह वर्ग धन, कानून अथवा शस्त्र चाहे जिस सहारे समाज को दास बनाये रखने के लिए कटिबद्ध है। किन्तु जनता और सत्ता का परस्पर नैसर्गिक विरोध जितना मुखर आज है उतना यह पहले कभी नहीं रहा। आज जहाँ तानाशाही है वहाँ तो 'लोकतंत्र' के लिए संघर्ष हो रहा है किन्तु जहाँ पर लोकतंत्र है वहाँ भी 'लोक-स्वातंत्र्य' के लिए संघर्ष चल रहा है। अतः अब समय आ गया है जबकि शिक्षा को यह निश्चय करना होगा कि वह सत्ता और स्वतंत्रता के इस बुनियादी संघर्ष में किसका साथ देगी। गांधीजी ने इस सन्दर्भ में स्पष्टतः स्वतंत्रता के पक्ष में अपनी राय दी था। उनकी 'नयी तालीम' मुक्त मानव समाज की रचना की ही व्यूह-रचना थी। नयी तालीम जिसे बुनियादी शिक्षा भी कहा जाता है, को प्रख्यात् अमरीकी शिक्षा शास्त्री जान उयुवी ने शिक्षा शास्त्र में अब तक की महानतम खोज कहा था। आज विनोबाजी भी ऐसी मुक्त शिक्षा की बात भारत के सामने रख रहे हैं। 'मुक्त शिक्षण' ही आज की आवश्यकता है।

मुक्त शिक्षण की अनिवार्यताएँ

इस प्रकार के मुक्त शिक्षण की तीन मुख्य अनिवार्यताएँ हैं। पहली बात तो यह है कि यह मान्य किया जाना चाहिए कि यदि हम मुक्त समाज की रचना करना चाहते हों, और यही आज के विश्व की आकांक्षा और भावी विश्व की योजना है, तो ऐसा मुक्त समाज केवल मुक्त मनुष्यों से ही निर्मित हो सकता है। ऐसा मुक्त मनुष्य तब तक नहीं बन सकेगा जब तक कि शिक्षण मुक्त न हो। आज का शिक्षण या तो बाजार के कब्जे में है या फिर सरकार के कब्जे में है। विज्ञान की भी यही हालत है। पहले कभी धर्म इन पर हावी था। किन्तु तब या आज भी शिक्षा और विज्ञान धर्म, धन, सत्ता चाहे जिसके कब्जे में हो वह दासता, भय, नीचता, दमन, शोषण और पाखंड को ही पनपायेगा। 'यथा दृष्टि तथा सृष्टि' कहावत ही है। आज तो एक और भी विचित्र स्थिति खड़ी हो गई है। आज, धर्म धन या सत्ता एक ही व्यक्ति या समूह के हाथ में केन्द्रित हो गई है और अब एक नयी निरकुंश 'अबाध सत्ता' (Absolute power) का सृजन हुआ है जो सर्वग्रासी बनकर मानव का सब कुछ हड़पने को आतुर है। हर बात में राष्ट्रीयकरण यानी सरकारीकरण इसका

त्मक रूप हैं। अतः हम प्रो० पाओलो फ्रेरे* से सहमत हैं कि आज की सारी शिक्षा दासता के लिए है और सर्व सत्तावाद को पोषण देनेवाली है। इसमें साम्यवादी या ग़ैर साम्यवादी सब एक हैं। अभी जहाँ संघर्ष के नाम पर जो कुछ चल रहा है वह मनुष्य की मुक्ति के लिए नहीं अपितु इस 'दासता के स्वामित्व' के लिए हो रहे हैं।। इन संघर्षकारियों में, जिन्हें लोग बिना समझे ही कभी कभी क्रान्तिकारी भी कह देते हैं, स्वयं दासता के मूल्य को नकारा नहीं है। वे तो दासों के स्वामी बनने के लिए लड़ रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो फ्रान्स की क्रान्ति नेपोलियन को या फिर रूस की क्रान्ति स्टैलिन को जन्म कैसे देती? एशिया, लैटिन अमरीका, अफ्रीका, चीन या अन्यत्र कहीं भी होनेवाली तथाकथित क्रान्ति की घटनाओं से भी मानव दासता ही मजबूत हुई है और पनपी है। चीन में सन १९४९ में कहा जाता है एक क्रान्ति हुई। यदि वह क्रान्ति थी तो फिर उसके बाद सांस्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता क्या हुई? यह सब इस बात का सबूत है कि ये सारी घटनाएँ स्वतन्त्रता के लिए, मुक्त मानव समाज की रचना के लिए होनेवाली घटनाएँ नहीं थीं। क्रान्ति तो मूलतः सांस्कृतिक ही होती है और इसलिए शैक्षणिक ही होती है। अतः यह स्पष्ट है कि कोई भी क्रान्ति अशैक्षणिक तरीके से हो ही नहीं सकती। इसलिए मुक्ति के लिए शिक्षण की यह **दूसरी** अनिवार्यता है कि सामाजिक परिवर्तन धन, शस्त्र अथवा सत्ता के माध्यम से कभी सम्पन्न नहीं हो सकता है। वह काम शिक्षण से ही होगा।

तीसरी बात यह है कि जैसा पहले कहा गया है सत्ता और शिक्षण का नैसर्गिक विरोध है जिनमें कभी किसी तरह का समझौता सम्भव ही नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की मुक्ति है जबकि सत्ता का उद्देश्य हमेशा ही मनुष्य को 'अनुगामी' बनाना होता है। सत्ता मानव को स्वतन्त्रता 'प्रदान' करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानती है जबकि सचाई यह है कि स्वतन्त्रता प्रदत्त नहीं 'नैसर्गिक (यानी निसर्ग से प्राप्त) अधिकार है। इस विरोध के कारण ही सत्ता हमेशा स्वतन्त्रता के मूल्य से बेहद घबराती है और नागरिकों को उसी हद तक स्वतन्त्रता प्रदान करती है जहाँ तक वे सत्ता के लिए कोई चुनौती नहीं बनते। और जैसे ही ऐसी कोई चुनौती आती है सत्ता अपनी पूरी ताकत से उसे कुचल डालती है। सेना का जन्म ही इसलिए हुआ है। और अब तो सेना का बाहरी हमले से रक्षा का काम धीरे धीरे समाप्त हो रहा है क्योंकि अब युद्ध व्यर्थ, अनार्थिक और असम्भव भी होते जा रहे हैं। अब सेना का काम 'भीतरी हमले' से सत्ता की रक्षा करना मात्र होगा। यही काम वह कर

---

*पाओलो फ्रेरे के शिक्षण विचार इसी अंक में दी गई उनकी पुस्तक की समीक्षा से ज्ञात होंगे।

भी रही है और यद्यपि सर्वत्र निशस्त्रीकरण की बातें हो रही हैं किन्तु इससे सैन्यवाद कम नहीं हो रहा है। उस भाषा में कोई निशस्त्रीकरण की बात करता भी नहीं। इस प्रकार से अब एक नया खतरा मानव स्वतन्त्रता के लिए आ गया है कि ज्यों ज्यों बाहरी युद्ध कम या समाप्त होते जायेंगे त्यों त्यों सरकारें अपनी ही प्रजा पर अधिक उत्पीडन, दमन और शोषण का चक्र चलायेंगी। यह प्रक्रिया आरम्भ हो गई है और हम देख सकते हैं कि सर्वत्र ही यदि कहीं थोडा बहुत लोकतन्त्र है भी तो वह तेजी से लोप होता जा रहा है और सर्वसत्तावाद दृढ़ हो रहा है। इसलिए इस घातक परिस्थिति से रक्षाका एक ही उपाय है कि हम समुदाय को इस स्थिति से अवगत करायें और यह काम तो शिक्षण से ही सम्भव है। शस्त्र, धन अथवा सरकार जो वास्तवमें आज तो एक गुट मात्र होता है, के आधार पर यह काम नहीं हो सकता। इन आधारों पर हम सगठित 'गिरोहों' का विकास तो कर सकते हैं किन्तु इनसे 'समुदाय' सगठित नहीं हो सकते हैं। इसलिए सगठित सामुदायिकता का विकास मुक्ति के लिए शिक्षण की एक और अनिवार्यता है।

अन्य आधार

थोडी देर के लिएहम जनक जैसे किसी निर्लिप्त शासक की कल्पना भी करें (जनक को 'विदेह' कहा गया है, अर्थात् जिसे अपनी देह की आशक्ति नहीं, उसे शासन की क्या आशक्ति हो सकती है) तो भी आज मानवता चेतना के जिस स्तर पर पहुँच गई है वहाँ से उसे पीछे नहीं ले जाया जा सकता। अतः शिक्षण को सरकार के हाथ में न देने के पीछे यह भी एक और बडा आधार है। अब मानवता पुरातन 'सरक्षक-पिता' के मूल्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। दूसरी बात यह है कि अब सरकार या शासक की चमक दमक (ग्लैमर) मिट गई है। अब कोई शासक देवता या उसका प्रतिनिधि नहीं है जो मानव-जाति को निर्देश दे या उसे चलाये। अब शासकों के चित्रों पर धर्म-गुरुओं अथवा अवतारों के चित्रों जैसे 'विम्ब-घरे' नहीं लगाये जा सकते हैं। अब तो मामूली रिक्शा खींचनेवाला सामान्य नागरिक भी देश के सर्वोच्च शासक की गहरी आलोचना या निंदा करता है और शासक भी जनता से मत 'माँग' कर ही शासक बनते हैं। अब शासक सामान्यजन के स्तर पर आ गये हैं बल्कि कहना होगा कि उससे भी नीचे आ गये हैं। इसलिए शिक्षण को शासकों की अलौकिकता का बखान करने का माध्यम नहीं बनाया जा सकता। आज शिक्षा वही काम कर रही है जिसका आधार ही गायब हो गया है। फिर यह भी बात है कि आज का शासन भी समग्र समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता। आज की सरकारें तो चन्द व्यक्तियों या समूहों का प्रतिनिधित्व करती हैं और इसलिए शिक्षा को भी अपने अपने गिरोह के हित की दृष्टि से चलाने का प्रयास करती हैं। इसलिए भी शिक्षा को सरकार के हाथ से मुक्त करना

आवश्यक है, यही युग क अनुकूल है। केवल एसी मुक्त शिक्षा ही समग्र और सार्वभौम हो सकती है जो आज की आवश्यकता है।

जो बात सरकार पर लागू होती है, वही बात बाजार पर भी लागू होती है। आज शिक्षा पर इन्ही दो का कब्जा है। अत शिक्षा को इन्ही कारणों स बाजार से भी मुक्त करना आवश्यक है। यदि हम पिछले केवल २५ सालो पर ही निगाह डाल तो स्पष्ट होगा कि आज की शिक्षा स केवल सरकार या फिर बड बड उद्योग-पतियों व्यापारियो और बिचौलियो का ही हित-साधन होता है। हमारे विश्व विद्यालयो और अन्य सभी प्रकार के शोध सस्थानो में तथाकथित शोध विज्ञापन और प्रचार को अनक प्रविधियों, सम्प्रेषण और सचार की एसी तकनोको और स्वास्थ्य के नाम पर एसी औषधियो तथा चिकित्सा प्रणालियो का विकास किया जा रहा ह जिसस मनुष्य की बुद्धि के साथ ही उसके अवचेतन पर भी 'कब्जा' कर लिया जाय और उस एक प्रकार की 'वृत्ति' से बाध दिया जाय ताकि वह सरकार अथवा व्यापार क हितो के ही 'अनुकूल' आचरण करे। आज सरकार और बाजार दोनो इस काम में एक हो गय है। जैस पहले मनुष्य धम के लिए 'जजमान' था वैसे ही वह आज सरकार के लिए 'मतदाता' और बाजार के लिए 'ग्राहक' मात्र है। किन्तु इन सभी स्थितियो में वह मनुष्य के रूप में गायब हो जाता है। इसलिए भी शिक्षण को सरकार के साथ ही बाजार से भी मुक्त करना आवश्यक है।

इस सबसे एक चौथी बात यह पैदा होती है कि अब एसे ज्ञानियो की आवश्यकता है जो यह नारा दे सके— सत्ताधीशो शिक्षा को मत छुओ 'धन कुबरो शिक्षा पर अपनी छाया मत डालो। इस प्रकार के उदघोष के लिए दुनिया के शिक्षको को एक होना होगा। भारत में विनोबाजी न आचायकुल का जो विचार दिया है उसका यही उद्देश्य है कि व्यक्ति अथवा समाज की समस्याएँ केवल शैक्षणिक तरीक स ही हल हो इसके लिए सतत चिन्तन और मनन करन, समस्याओ के शैक्षणिक हल के लिए तकनीको का विकास करन और निर्भीकतापूवक अपनी तटस्थ राय समाज के सामन रखन के लिए ज्ञानियो का एक मच खडा किया जाय। आज विश्व-भर के विचारक यह अनुभव कर रहे है कि ज्ञान और विज्ञान को सरकार और बाजार से मुक्त रखना आवश्यक है और इसके लिए ज्ञानियों और वैज्ञानिको को तटस्थ किन्तु सगठित होकर ज्ञान विज्ञान का दुरुपयोग न हो इसके लिए समाज को हमेशा आगाह करते रहना होगा। आज दुर्भाग्य से हमारे अधिकाश अध्यापक अपन 'स्वधर्म' (ज्ञान की खोज) और अपन 'व्यवसाय (अध्यापन) दोनो मे विश्वास खो चुके है और वे धनसत्ता या राजसत्ता के दास बनकर उनके 'चारणो' का रोल अदा कर रहे है। किन्तु आज का समाज तो सत्ता अथवा शस्त्र से सचालित होता है जिसका आधार शस्त्र और साधन सैनिक होता है। किन्तु भावी समाज तो मुक्त मनुष्यों का

समुदाय होगा जिसका आधार सम्मति और साधन शिक्षक होगा। इसलिए विनोबाजी ने एस शिक्षकों को सलाह दी है कि वे स्वधर्म में निष्ठा रखें वे दल-सत्य या गुट सत्य के बजाय पूर्ण सत्य के उपासक बनें और शिक्षा को समाज के जीवन के साथ जोड़ने की तकनीकों का विकास करें। उनका सुझाव है कि शिक्षकों के एस समुदाय को न्याय पालिका का जैसी मान्यता मिलनी आवश्यक है जो शिक्षा का सबसे पहला अधिकार है। उनका 'आचार्यकुल' का आन्दोलन इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए है। यह मुक्ति के लिए शिक्षण की चिंता में से निकला विचार और कार्यक्रम है।

अब सामाजिक लक्ष्यों का निर्धारण और प्राप्ति न तो धर्म करेगा क्योंकि उसने यह शक्ति खो दी है न यह काम शस्त्र से ही होगा क्योंकि शस्त्र मनुष्य का नकार है और न यह काम सत्ता से ही होगा क्योंकि वह मूलत जन विरोधी होती है। यह काम केवल शिक्षण से ही होगा जो मानव की परिभाषा और आकांक्षा का निर्माण करती है। एस शिक्षण के लिए एक विश्व-व्यापी आन्दोलन की आवश्यकता है जो शिक्षा को इस नये रचनात्मक विद्रोह के लिए जगा सके। अब शिक्षा को मार्ग निर्धारण नहीं करना है यह तो मनुष्य के नैसर्गिक अधिकार का हनन है। अब तो उसे केवल मार्ग-खोजन में मनुष्य की मदद मात्र करनी है। और इसके लिए शिक्षा की अपनी स्वयं की एक दृष्टि होनी आवश्यक है। विनोबाजी का आचार्य-कुल आन्दोलन इसी उद्देश्य के लिए समर्पित है।

शुभचिंतन : दृढ सकल्प

[१३ अगस्त को शिक्षा मन्त्रालय के आदेशानुसार सारे देश में प्रति वर्ष तरुण नागरिक दिवस मनाया जाता है। इस वर्ष वर्धा की शिक्षण-संस्थाओं में यह दिन बड़े उत्साह से मनाया गया। इस सम्बन्ध में जो पत्रक प्रकाशित किया गया, वह पाठकों की जानकारी के लिए दिया जा रहा है।

— सम्पादक]

गांधीजी को भारत के तरुणों में सहज श्रद्धा थी वे उनकी देश भक्ति और राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति बड़े आशावान थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि देश के तरुण, जो कल के नेता बननेवाले है सच्चे अर्थ में 'राष्ट्र का सलोना सत्व' बनें।

अपनी स्वर्णिम आयु के २१ वर्ष पूर्ण करके २२ वें वर्ष में पदार्पण करनेवाले अपने देश के नवयुवक और नवयुवतियाँ सहज रूप में अपने लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के मौलिक अधिकारों से विभूषित हो जाते हैं।

संविधान की भूमिका में भारत का 'एक सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' के रूप में वर्णन किया गया है और उसके समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनेवाली बन्धुता बढ़ाने का दृढ संकल्प व्यक्त किया है।

-श्रीमन्नारायण

" अनुशासन और विवेकयुक्त जनतंत्र
दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।"

—राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

राष्ट्र देवो भव

हमारा राष्ट्र	एशिया महाद्वीप में प्रतिष्ठित पुण्यभूमि भारतवर्ष।
हमारा राष्ट्रगीत	'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता।'
हमारा राष्ट्र ध्वज	'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'
हमारा राष्ट्रीय ध्येय	'हर व्यक्ति का स्वराज्य।'
हमारी राष्ट्रीय निष्ठा	'सत्यमेव जयते।'
हमारी राष्ट्रीय साधना	'अहिंसा परमोधर्म।'
हमारा राष्ट्रीय धर्म	'सर्वधर्म समभाव।'
हमारा राष्ट्रीय मंत्र	'मानव संरक्षण मानव-मात्र का स्वयं-सिद्ध अधिकार है।'
हमारा राष्ट्रीय संकल्प	जनसेवार्थ 'जीवेम शरद: शतम्।'
हमारी राष्ट्रीय अभिलाषा	'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया।'
हमारी राष्ट्रीय भूमिका	'सार्वभौम प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य।'
हमारी राष्ट्रीय नीति	जीवन के शाश्वत मूल्यों पर आधारित पंचशील।
हमारी राष्ट्रीय भावना	मन मन मन्दिर, घर घर गुरुकुल, गाँव गाँव गोकुल।
हमारा राष्ट्रीय भजन	'वैष्णव जन तो तेन कहिए ज पीर पराई जाण रे।'
हमारी राष्ट्रीय सेवा	'स्वदेशी – स्वावलम्बी – स्वयंसेवा।'
हमारी राष्ट्रभाषा	हिन्दी है, और राष्ट्रलिपि देवनागरी।
हमारा राष्ट्रीय गणवेश	'खादी हमारे स्वराज्य की पोशाक है।'
हमारा राष्ट्र-जीवनाधार	कृषि, गोसवर्धन, उन्नत उद्योग और बुनियादी शिक्षा।
हमारा राष्ट्रीय वनचर	प्रियदर्शी वनराज सिंह।
हमारा राष्ट्रीय पक्षी	मनमोहर प्यारा मयूर।
हमारा राष्ट्रीय पुष्प	'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कमल।
हमारा राष्ट्रीय फल	सुमधुर सुरभित आम।
हमारा राष्ट्र चिन्ह	नवयुग प्रवर्तक अशोक-चक्र।
हमारी राष्ट्रीयता	'वसुधैव कुटुंबकम्।'
हमारे राष्ट्र देवता	योगेश्वर विवस्वान सूर्यदेव।
हमारी राष्ट्र माता	स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि भारतमाता।

हमारे राष्ट्र पिता	सत्य-अहिंसा के पुजारी विश्ववन्द्य महात्मा गांधी।
हमारे राष्ट्रीय उत्तराधिकारी	राष्ट्र पिता-माता के वारसदार, हमारे जन्मदाता माता पिता की जय हो।
हमारे राष्ट्र का उज्वल भविष्य	हमारे होनहार प्यारे बालक, उनकी सदा विजय हो।
हमारे राष्ट्रनिर्माता	'नवयुवक राष्ट्र का सलोना सत्व है' उनका अभ्युदय हो।
हमारा राष्ट्रीय नारा	'जय जवान ! जय किसान ! जय हिन्द ! जय जगत् !'
हमारा राष्ट्रीय जयनाद	स्वतंत्र भारत की जय, प्रजाजनों की जय।
हमारी राष्ट्रीय धारणा	जनतंत्र विजयते।
हमारी राष्ट्रीय वन्दना	वन्दे मातरम् ! वन्दे मातरम् !! वन्दे मातरम् !!!

स्वराज्य रजत-जयंती राष्ट्रजनों को मुबारक ! —मदालसा नारायण

'तरुणोदय' से 'सर्वोदय' स्वरूप

हमारी संवैधानिक प्रतिज्ञा

स्वतंत्र भारत में जन्म पाकर, प्रजातंत्र के अनुरूप, मौलिक अधिकार प्राप्त करते हुए हमें धन्यता महसूस होती है और हम प्रतिज्ञा करते हैं कि —

भारत के प्रति और कानून द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति हम वफादार और निष्ठावान रहेंगे।

राष्ट्र के स्वातंत्र्य तथा उसकी एकता की रक्षा करने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए हम समर्पण भावना से कार्य करते रहेंगे।

किसी भी कार्य सिद्धि के लिए हम कभी हिंसा का आश्रय नहीं लेंगे।

प्रदेश, भाषा, धर्म और जाति सम्बन्धी सभी मतभेदों को तथा आर्थिक व राजकीय कठिनाइयों को हम शांतिमय तरीकों से सुलझाने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

सत्यमेव जयते !

आत्म ज्ञान और विज्ञान के संयोग से सामूहिक अहिंसा का जन्म हुआ। उसे गांधी-ज्ञान कहते हैं। जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है वैसे आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर 'सर्वोदय' या 'साम्ययोग' बनता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसीसे दुनिया का भला होनेवाला है। इतना ही नहीं उससे हम अपनी इस दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं। —विनोबा

शुभ स्मरण

"आनन्द लोके मगला लोके विराजो सत्य सुदर !"

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शुभ चितन :

यह देश हमारा, 'राज' हमारा
हम भारत के वासी,
वरदायक जनतत्र हमारा
शिव सुदर सुख-राशी !

शुभ सकल्प :

विश्वशाति है लक्ष्य हमारा
प्रजातत्र प्रिय पक्ष हमारा
'सरक्षण' शुभ मत्र हमारा
सबका हो कल्याण
विश्व में सत्य स्वधर्म प्रमाण
सिद्ध सकल्प प्रतिष्ठित प्राण !—वन्दे मातरम्

शुभ अभिनदन

रक्षाबधन मुबारक !
सकल्प, साधना, सिद्धिस्वरूप अनेकानेक शुभकामनाएँ !

जीवन कुटीर, वर्धा (महाराष्ट्र)
७ अगस्त १९७३

शम्सुद्दीन

गांधीजी की शिक्षा-पद्धति में धर्म का स्थान

बापू की जागरूक आत्मा ने भी उपर्युक्त कथन का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि देश की शिक्षा-प्रणाली ही कुछ ऐसी दूषित है कि यहाँ धर्म का तो अभाव है ही, साथ ही शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त भी ऐसे हैं कि उनसे धार्मिकता को कोई प्रोत्साहन नही मिलता। उन्होंने देखा कि विदेशी शासकों द्वारा शिक्षा के जिन उद्देश्यो और आदर्शों के बीज भारत में बोये गये और जो अब पल्लवित और पुष्पित हो रहे हैं। वे यहाँ की जनता की रोटी-कपडे की शारीरिक क्षुधा तक तृप्त करने में असमर्थ हैं, फिर आत्मा की भूख को शान्त करना तो दूर की बात है। अत गाधीजी ने बुनियादी तालीम की नयी योजना का निर्माण किया। यह शिक्षा के क्षेत्र में महान क्रान्तिकारी कदम है, किन्तु इसका अस्त्र हिंसा नही वरन् सत्य और अहिंसा के द्वारा हृदय-परिवर्तन है। इसका ध्येय न केवल मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक उन्नति कर उनकी रोटी-कपडे की समस्या का हल करना है, वरन् उनकी आत्मिक उन्नति कर उन्हे सच्चे अर्थ में मानव बनाना भी है।

भारत में शिक्षा की समस्या बहुत हद तक यहाँ की आर्थिक समस्या है, अत इस समस्या को हल करने के लिए महात्मा गाधी ने शिक्षा को 'स्वय निर्भर' बनाने का प्रयत्न किया। यही बुनियादी तालीम की मूल भावना है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि इसमें शिक्षा का केन्द्र कोई उद्योग रहता है। इसका चुनाव बालक के आसपास के वातावरण और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा सम्पूर्ण ज्ञान इसी की सहायता से दिया जाता है। यथार्थ में इसका उद्देश्य बालक की शारीरिक, मानसिक व नैतिक क्रियाओं का सामूहिक विकास करना है। भारत में अधिकाश लोग ऐसे हैं, जिनकी दैनिक जीवन की मूल आवश्यकताओं की भी पूर्ति नही होती। उन्हे न तो दोनों समय पर्याप्त भोजन मिलता है और न तन ढँकने के लिए वस्त्र ही। रहने के लिए उन्हे झोंपडी भी मयस्सर नही है। बुनियादी तालीम कृषि, बागवानी, कताई-बुनाई, लकडी के काम आदि के द्वारा ऐसे उद्योगों का शिक्षा की व्यवस्था करती है, जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में मदद करते हैं। इस प्रकार यह शिक्षा उन्हे जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से परिचित कराती हुई उन्हे 'स्वय-पूर्ण' बनाने का प्रयत्न करती है। इसमें बालक न केवल बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ बनता है, वरन् अपने पवित्र आचरण और उत्तम सामाजिक जीवन के द्वारा देश का एक सफल नागरिक भी बनता है।

भारतीय संस्कृति सर्व धर्म से अनुप्राणित है—'धर्म' अपने संकुचित अर्थ में नही वरन् व्यापक व सच्चे अर्थ में। संस्कृत शब्द 'धर्म' "धृ" धातु से निकला है,

जिसका अर्थ धारण करना या अपनाना होता है। जीवन में जो कुछ भी अच्छा और अपनाने योग्य है, वह सब धर्म है और जो कुछ बुरा और ग्रहण करने योग्य नहीं है वह सब अधर्म है। यही धर्म का सच्चा अर्थ है। बुनियादी तालीम हमें धर्म के इसी रूप को अपनाने की शिक्षा देती है। सकुचित अर्थ में किसी समुदाय-विशेष की धार्मिक किताबो की शिक्षा की इसमें व्यवस्था न देख कुछ लोगो ने आक्षप किया कि बुनियादी तालीम धर्म की अवहेलना करती है। इस सम्बन्ध में डा० जाकिर हुसैन ने उत्तर दिया—"भारत में कोई राज-धर्म नही है, यहाँ सभी धर्मों के माननेवाले रहते है। अत. यहाँ किसी धर्म की किताबो की शिक्षा नही दी जा सकती। सिवाय इसके कि बुनियादी तालीम सभी धर्मों का समान रूप से आदर करती है।" यह लोगो को ऐसे व्यापक नैतिक आदर्श की शिक्षा देती है जो सभी धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, सत्य बोलना, हिंसा न करना इत्यादि बातें सभी धर्मों में सिखायी जाती है। यथार्थ में बुनियादी तालीम हाथ, हृदय और मस्तिष्क के सभी गुणों का इस प्रकार समन्वय करती है कि बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास होता है और आगे चलकर वह एक सच्चा, ईमानदार, पवित्र और धार्मिक व्यक्ति बनता है। इस रूप में बुनियादी तालीम और धर्म में अनन्य और घनिष्ट सम्बन्ध है।

बुनियादी तालीम अपने सम्पूर्ण सिद्धान्तो व कार्य-प्रणाली में धर्म के व्यापक रूप को प्रोत्साहन देती है। इससे न केवल धार्मिक व नैतिक उन्नति होती है, वरन् सस्कृति और सभ्यता का भी पोषण होता है और राष्ट्रीयता की वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, बुनियादी तालीम मातृभाषा के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था करती है, इससे लोगो में देश की सस्कृति व राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना बढती है। आज हमारा देश पाश्चात्य सभ्यता के रग में रगा हुआ शरीर और मन से विदेशी हो रहा है, केवल उसकी आत्मा स्वदेशी रह गयी है। इसका कारण है— विदेशी भाषा। लार्ड मेकाले ने भारत की शिक्षा-प्रणाली में अँग्रेजी माध्यम का प्रारम्भ इसी ध्येय से किया था कि यहाँ के लोग अपनी सस्कृति और सभ्यता को भूल जाये और पूरी तरह से उनके गुलाम हो जायें। उर्दू के प्रसिद्ध कवि डा० इकबाल ने कहा था— "अगर किसी कौम को खत्म करना है तो उसकी जबान बदल दो, वह कौम खुद-ब-खुद खत्म हो जायेगी।" महात्मा गाधी ने भी इस बात को महसूस किया और अँग्रेजी भाषा के स्थान पर मातृ-भाषा को प्रधानता दी। मातृ-भाषा के प्रेम के कारण लोग अपने प्राचीन ग्रन्थों को महत्त्व देंगे। इस प्रकार न केवल लोग अपनी भूली हुई सस्कृति को पहचानेंगे, वरन् उनमें देश-प्रेम के साथ-साथ नैतिकता की भी वृद्धि होगी।

बुनियादी तालीम का दूसरा ध्येय छोटे-छोटे गृह-उद्योगों की शिक्षा देकर उन्हे गाँव-गाँव में फैला देना है। आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से भारत भी औद्योगीकरण और पूँजीवाद के दलदल में फँसता जा रहा है। बड़ी-बड़ी मशीनो व कल-

कारखानों के कारण एक ओर मिल-मालिकों का रईस-वर्ग तैयार हो रहा है तो दूसरी ओर असख्य मजदूर थोडी-सी मजदूरी पर उनकी गुलामी कर कीडे-मकोडे की जिन्दगी बिता रहे हैं। उनके बच्चों के लिए न शिक्षा की व्यवस्था है और न पर्याप्त भोजन व वस्त्र की ही। इसी प्रकार गाँवो में कृषक मेहनत करके अन्न पैदा करता है, पर उसका अधिकाश हिस्सा गाँव के साहूकार, बनिया आदि का कर्ज चुकाकर खुद भूखा मरता है। शहरो की स्थिति यह है कि लोग पढ लिखकर भी बकार रहते हैं। उनकी शिक्षा उन्हे इस योग्य नही बनाती कि शिक्षा समाप्त होते ही वे किसी कार्य में लग जायें और अपनी जीविका का उपार्जन कर सके। बुनियादी तालीम उपर्युक्त सभी समस्याओ को हल करन का प्रयत्न करती है। वह बड-बड उद्योगों को बन्द करके छोट-छोट गृह-उद्योगो को प्रोत्साहित करती है। इससे यह लाभ होगा कि अभी मिलो मे जो असख्य स्त्री-पुरुष एक साथ काम करते हैं और वातावरण की अस्वस्थता के कारण उनका जो नैतिक पतन होता है वह बन्द होगा। विभिन्न उद्योगों की शिक्षा प्राप्त कर प्रत्यक व्यक्ति अपनी सुविधा और प्रवृत्ति के अनुकूल अपन ही घर में कोई-न-कोई धन्धा करेगा। घर के ही सब सदस्य मिलकर काम करेंग। इससे वातावरण पवित्र रहेगा और लोगो का नैतिक स्तर भी ऊँचा होगा। लोगो में अमीरी-गरीबी और ऊँच नीच का भद भाव दूर होगा। कृषि की शिक्षा प्राप्त कर हर-एक किसान स्वय अपनी जमीन जोत सकेगा और शष खाली समय में बकार न बैठकर बागबानी, कताई, बुनाई आदि उद्योग करेगा जिससे न केवल उनकी आर्थिक उन्नति होगी वरन् नैतिक सुधार भी होगा। इसी प्रकार शहरो में 'शिक्षित बकारो' के बढ़ जान से लागो के खाली दिमाग शैतान के घर हो रहे हैं। व मेहनत कर रोजी-रोटी कमाना नही चाहते, तथा श्रम का महत्त्व भी नही समझते। इससे भी नैतिकता का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है। बुनियादी तालीम इसके लिए रोक है। जब सब लोग काम में लग जायेंग, तो यह पतन अपन आप रुक जायगा।

आज का वैज्ञानिक युग भौतिकवाद को लेकर मानव को दानव बनान पर तुला है। मनुष्य अपनी शक्ति के घमड में एसा अन्धा हो रहा है कि उसे ईश्वरीय शक्ति पर भी विश्वास नही रहा। आज के मशीन युग में लोग स्वय मशीन के कलपुर्जे मात्र बनकर रह गय है। सासारिक सुखो की पूर्ति ही उनका एकमात्र ध्यय है। इसके लिए मनुष्य मनुष्य की हत्या करन से भी नही चूकता। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ समय बाद नैतिकता और आध्यात्मिकता सरीखी चीज ही नही रह जायेगी। बुनियादी तालीम इसका हल प्रस्तुत करती है। वह मनुष्य को यह अनुभव कराती है कि उसका जीवन केवल भौतिक ही नही है वरन् इसके भी ऊपर नैतिक जीवन है, जिसे उन्नत कर वह अपना लोक और परलोक दोनों सुधार सकता है।

नारायण देसाई

दलितों का शिक्षा-शास्त्र

पेडागॉजी ऑव द ऑप्रेस्ड :— लेखक :— पाओलो फ्रेरे— हर्डर एण्ड हर्डर,
मूल्य :— २.९५ डालर।

[पाओलो फ्रेरे दक्षिण अमरीका के एक विद्वान क्रान्तिकारी शिक्षा-शास्त्री हैं। उनकी सुप्रसिद्ध किताब "पेडागॉजी ऑव द ऑप्रेस्ड" में कुछ मार्क्सवादी क्रान्तिशास्त्र तथा कुछ आधुनिक समाज विज्ञान की तकनीकी भाषा की जटिलता है। मूल पुर्तगाली का अंग्रेजी भाषान्तर होने के कारण भाषा शायद और भी क्लिष्ट बनी होगी। नयी तालीम के पाठकों के लिए उक्त पुस्तक का सरल साराश नीचे दिया है। भारत के सर्वोदय आन्दोलन व साम्यवादी आन्दोलन को समझने में पाओलो फ्रेरे का विश्लेषण उपयोगी होगा, ऐसी आशा है।

— सम्पादक]

१८६ पृष्ठ की यह छोटी-सी पुस्तक चार अध्यायों में बटी है। प्रथम अध्याय में दलितों के शिक्षा-शास्त्र की जरूरत क्यों है, यह समझाया गया है। चूंकि दमनशील समाज में शिक्षा-विज्ञान का उपयोग भी अन्त में जाकर दमन के लिए ही किया जाता है, अत दलितों की मुक्ति के लिए स्वतत्र शिक्षा-शास्त्र की आवश्यकता है। दूसरे अध्याय में दमन के शिक्षा-शास्त्र तथा मुक्ति के शिक्षा-शास्त्र का मुख्य भेद स्पष्ट किया गया है। दमन का शिक्षा-शास्त्र यह मानता है कि ज्ञान एक वस्तु है जो गुरु की रुचि के अनुसार शिष्य के दिमाग पर थोपनी है। इस विचार के कारण वह ज्ञान शिष्यों पर थोपा जाता है, जिसे दमनकारी उचित समझे और जिसके कारण मौजूदा परिस्थिति 'स्टटस क्वो' टिकी रहे। मुक्ति का शिक्षा-शास्त्र ज्ञान को एक नित्य विकासशील प्रक्रिया मानता है जिसके कारण गुरु और शिष्य परस्पर के सवाद से मुक्ति के समाज की ओर प्रगति करते हैं। तीसरा अध्याय पुस्तक का मुख्य अध्याय है। उसमें मुक्ति के शिक्षा-शास्त्र की पद्धति या कला का सविस्तार वर्णन एव भाष्य किया गया है। अन्तिम अध्याय में दमन और मुक्ति की सस्कृतियो के विशेष लक्षणो का वर्णन कर दोनो के साधनों की छानबीन की गयी है। इसी अध्याय में मुक्ति की सस्कृति चाहनेवाले क्रान्तिकारी की राह में आनेवाले रोडो का भी जिक्र किया गया है।

उक्त पुस्तक के प्राक्कथन में रिचार्ड शालन यह बताया है कि पाओलो फ्रेरे ने एक ऐसी शिक्षा-पद्धति ईजाद की है जिसके कारण दक्षिण अमरीका

के अशिक्षित दलितों को अपनी अस्मिता (आइडेंटिटी) का भान हुआ। उन्हें यह भी भान हुआ कि दुनिया कोई पहले से नियति-निर्मित स्थिर वस्तु नहीं है, बल्कि वह बदली जा सकती है। मानव अपना इतिहास बनाने के लिए जिस सामग्री को इस्तेमाल करता है उसी का नाम दुनिया है। फ्रेरे को यह विश्वास है कि परस्पर सम्भाषण (डायलाग) की पद्धति से चाहे जैसा दलित आदमी भी दुनिया को समीक्षा की दृष्टि से देख सकता है और वह यह विश्वास कर सकता है कि मैं दुनिया बना सकता हूँ। उसने यह भी माना है कि दुनिया में तटस्थ शिक्षा जैसी कोई चीज ही नहीं है, या तो दमनकारी शिक्षा है, या मुक्ति की शिक्षा।

पुस्तक में उसने जो आशा व्यक्त की है वह पाओलो फ्रेरे के समग्र चरित्र का दर्शन करानेवाली है। उसने कहा है "मुझे आशा है कि इस किताब से और कोई चीज बचे चाहे न बचे कम-से-कम नीचे लिखी चीजें तो अवश्य बच जायेंगी। लोगों में मेरा विश्वास मानव में मेरी श्रद्धा और एसी दुनिया में मेरी आस्था, जिसमें एक दूसरे से प्रेम करना अधिक आसान होगा।

अब हम चारों अध्यायों को जरा निकट से देखें।

प्रथम अध्याय

मानव एक असम्पूर्ण प्राणी है किन्तु वह अपने अधूरेपन के बारे में सजग है। इसलिए वह आगे चलकर पूर्ण बनता है। वह मानवीय भी हो सकता है, अमानवीय भी। किन्तु मानवीय बनना उसका स्वधर्म है। मानव को मानवीय बनने में विघ्न डालनेवाले तत्व हैं— अन्याय, शोषण, उत्पीडन और हिंसा।

पीडित लोगों को अपना मानवीय सत्व खोजना चाहिए, किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वैसा करने में वे स्वयं कहीं उत्पीडक न बन जायें। इतिहास ने उन्हें कर्तव्य ही यह दिया है कि स्वयं मुक्त हों और साथ-साथ अपने उत्पीडकों को भी मुक्त करें।

दलितों का शिक्षा-शास्त्र दलितों के लिए नहीं दलितों को साथ लेकर बनेगा। अत्याचार का स्वरूप, उसके कारण आदि के बारे में पीडितों के साथ सहचिन्तन करना होगा। उससे दलित स्वयं मुक्ति के संघर्ष में शामिल होते जायेंगे। इस शास्त्र से यह समझ में आयेगा कि न वे स्वयं मानवीय रहे हैं न उनके उत्पीडक ही। उनको इस बात का भी भान होना चाहिए कि आखिर यह अत्याचार कोई नहीं टलनेवाला हकीकत नहीं है, वह तो उनकी शक्तियों को मर्यादित करनेवाली चीज है, जिसे वे स्वयं बदल सकते हैं।

किन्तु केवल इस बात का भान करा देने भर से दलितों के साथ की एकरसता नहीं पैदा होगी। वह तो आयेगी उनके जैसा जीवन जीने से और उनके साथ रह कर संघर्ष करने से।

उत्पीडक दलितो को वस्तुओं के नाते देखता है। उसकी दुनिया में मानव नही है। सघर्ष में पड़े हुए आदमी के लिए मानव के बगैर दुनिया नही है।

जो अन्याय व अत्याचार करता है वही हिंसा का आरम्भ करता है। किन्तु अत्याचारी लोग केवल दलितो की प्रतिक्रिया को ही हिंसा कहते हैं। दलितों की बगावत वास्तव में प्रेम का आरम्भ कर सकती है, क्योंकि इस बगावत के फलस्वरूप अत्याचारी भी सम्पूर्ण मानवीय बन सकता है। अत्याचारी दूसरो का दमन करने में अमानुषीकरण करता है। क्रान्ति से यह क्रिया रुक जाती है। जब कोई कर्म मानव को पूरा मानव बनने में बाधक बनता है तभी उस कर्म को अत्याचार कहा जाता है।

क्रान्ति से मानुषीकरण को प्रक्रिया में सहायता मिलती है। किन्तु जिस क्षण क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रशासन-तत्र, नौकरशाही बन जाता है, उसी क्षण से उसका मानवीय आयाम समाप्त हो जाता है।

शोषणकारी के अनुसार वह इनसान स्वय ही है। अगर उनके अधिकारो में कही बाधा पहुँचती है तो वे तुरन्त कहते है कि मानवीय अधिकारो में बाधा आ रही है। अपने अधिकार-भाव के कारण वे तमाम चीजो को खरीदने लायक समझने लगते हैं। उनके लिए हर चीज का नाप पैसा, हर कर्म का उद्देश्य मुनाफा है। उनके लिए होने का अर्थ पाना होता है। अगर उनके साथ कोई न हो तो उसमें उनको अपना नही दूसरों का ही कसूर दिखता है। इसीलिए वे दलितो को सावधानी से देखते रहने की चीज मानते हैं।

हाँ, शोषक वर्ग से कुछ लोग दलितों के पक्ष के बन जाते हैं। किन्तु उन पर सस्कार वही पुराने ही रहते हैं। वे मानते है कि परिस्थिति को वे ही स्वय बदल सकते है। वे लोक के विषय में बात जरूर करते है, लेकिन उन्हे उनपर विश्वास नहीं होता। सच्चा मानववादी वह है जिसे लोक में विश्वास हो। वह विश्वास उन्हे अपने लिए सघर्ष करने को प्रवृत्त करता है। इस प्रकार की लोक-निष्ठा के लिए तो वास्तव में एक गम्भीर पुनर्जन्म की ही आवश्यकता होती है। कई बार दलित लोग स्वय परिस्थिति के कारण नही समझते है, इसलिए आपसी हिंसा में गुथ जाते है।

दलित लोग जब मुक्ति के सघर्ष में शामिल होते है तभी अपने आप पर विश्वास करने लगते हैं। यह प्रक्रिया न केवल बौद्धिक होती है, न केवल कर्म जन्य। उसमें गम्भीर चिन्तन व कर्म एक साथ होते है।

दलितों के साथ हमेशा समीक्षात्मक सवाद चलना चाहिए, वही उसे मुक्ति दिलायगा। जो आदमी दलितों को चिन्तन का मौका दिये बिना उन्हे मुक्त करने का प्रयास करता है वह उनको आदमी नही बल्कि वस्तु मानता है। यह व्यवहार तो शोषक-सा ही हो गया।

चालू शिक्षा-पद्धति में एक ओर से बताया जाता है और दूसरी ओर से रटा जाता है। छात्र इसमें केवल जानकारी संग्रह करनेवाले पात्र जैसे बन जाते हैं। यह है शिक्षा सम्बन्धी "बैंकिंग" जैसी धारणा। असली शिक्षा बैंकिंग में नहीं, पुनः पुनः खोज में है। मुक्ति के शिक्षण में शिक्षक और छात्र दोनों ही शिक्षक बन जाते हैं।

"बैंकिंग-शिक्षा" इनसान को हथियाने लायक उपकरण मानती है। दमनकारी का हित लोगों का विचार बदलकर उन्हें अपने पक्ष में कर लेने में है, परिस्थिति बदलने में नहीं। इसीलिए उस पद्धति के शिक्षण में इस क्रिया चिंतन को कुंठित बनाने में सहायक होती है।

"बैंकिंग-पद्धति" की शिक्षा वास्तविकता को धुंधला बनाकर काल्पनिक कहानी बना देती है। उपस्थापक शिक्षा इन काल्पनिक कहानियों को वास्तविकता की भूमिका पर लाती है। इस पद्धति में यह माना गया है कि मानव अभी पूर्ण बन रहा है। शिक्षा का कर्म और चिन्तन के सहयोग से पुनः पुनः सर्जन होता रहता है।

कोई भी ऐसी परिस्थिति जिसमें कुछ लोग दूसरों की खोज और चिन्तन करने में बाधा डालते हैं, हिंसा है। मानव को निर्णय-क्षमता से दूर ले जाना, उनका मानव मिटाकर वस्तु बनाना है। जो दूसरों का मानवीय बनने में बाधा डालता है, वह वास्तव में मानव नहीं है। कुछ लोग क्रान्ति की उतावली में यह मानने की गलती कर बैठते हैं कि पहले हम स्वयं क्रान्ति कर लें फिर लोग अपना मनचाहा समाज बनायेंगे। किन्तु क्रान्ति पहले "बैंकिंग-पद्धति" और क्रान्ति हो जाने के बाद समस्या का हल उपस्थापक-पद्धति से होगा ऐसा मानना गलत है।

तृतीय अध्याय

किसी शब्द के उच्चारण के साथ-साथ ही उसके विषय में चिन्तन एवं कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया होती है। इसलिए वास्तव में एक सही शब्द बोलने का अर्थ है उतने अंश में दुनिया का परिवर्तन करना। जिस शब्द के साथ चिन्तन एवं क्रिया नहीं होती वह शब्द नहीं निरी शाब्दिकता होती है।

जो दूसरे को बोलने देना न चाहता हो उससे संवाद करना अशक्य है। संवाद-पद्धति का उपयोग दूसरे पर अधिकार प्राप्त कर लेने के लिए भी नहीं होना चाहिए। प्रश्न उपस्थापक-पद्धति या संवाद-पद्धति तो मानव-मुक्ति के लिए ही है।

चे ग्वेवारा का एक उदाहरण देते हुए पाओलो फ्रेरे कहते हैं कि "सही क्रान्ति तो गहरे प्रेम के लिए ही होती है। गहरे प्रेम के बिना संवाद-पद्धति अशक्य है। संवाद अहंकार से शक्य नहीं है। नम्रता के बिना संवाद अशक्य है।" संवाद-पद्धति के लिए आवश्यक गुणों की सूची पाओलो फ्रेरे देता है—प्रेम, नम्रता, परस्पर विश्वास, आशा और समीक्षात्मक चिन्तन, ये गुण संवाद-पद्धति के लिए आवश्यक हैं।'

संवाद-पद्धति से काम करनेवाला कार्यकर्ता लोगों के पास पहुँचने से यह तय करके नहीं जाता कि वह उनसे क्या बातें करेगा। वह यही तय करता है कि किस विषय पर बात होगी। सही शिक्षण एक के द्वारा दूसरे के लिए नहीं होता न एक के द्वारा दूसरे के बारे में होता है, बल्कि एक के द्वारा दूसरे के साथ होता है। शिक्षा का उद्देश्य लोगों को अपने पक्ष का बनाना नहीं है, बल्कि उन्हें मुक्त करके स्वयं मुक्त होने का है। शिक्षक इनके पास कोई मोक्ष का संदेश लेकर नहीं जाता। सिर्फ उन्हें परिस्थिति का भान कराता है।

इस शिक्षा-पद्धति का आरम्भ परिस्थिति एवं लोगों की आकांक्षा से होता है। ये दोनों लोगों के सम्मुख उन्हें चुनौती देनेवाली समस्या के रूप में रख जाने चाहिए।

इसके लिए लोगों की भाषा समझनी चाहिए और यह भी समझना चाहिए कि उनका मन किस प्रकार काम करता है। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि दुनिया के बारे में लोगों का खयाल क्या है।

मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अपने कर्म तथा अपने आपके बारे में तटस्थता से चिंतन कर सकता है। अन्य प्राणी सिर्फ जीते हैं। मानव अस्तित्व रखता है। अन्य प्राणी केवल उसी स्थान और काल विशेष के बारे में सोच सकते हैं जिसमें वे होते हैं। किन्तु मानव इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सोच सकता है। इसलिए वह उन तत्वों को भी समझ सकता है जो उसके और मुक्ति के बीच में बाधक बने हुए होते हैं। इन्हीं तत्वों का विचार यह संवाद-पद्धति का विचार विषय बनता है।

आज के युग का सबसे बड़ा विषय दमन और मुक्ति का है। जिन तत्वों के कारण मानव मिटकर वस्तु बन जाता है उन तत्वों पर विजय पाना यह परम आवश्यक है।

हर युग में विचार विषय होता है। हर परिस्थिति के अनुसार इसमें उप विषय होते हैं। पूरी परिस्थिति को समूह (कोडिंग) और उसके विश्लेषण को व्यूह (डीकोडिंग) कहते हैं। इस प्रकार हर परिस्थिति का व्यूह और समूह करना यह संवाद पद्धति का काम है। इस पद्धति में शिक्षक और छात्र दोनों ही समूह व वेधक बन जाते हैं।

जो समूहगत परिस्थिति (समन्वित समग्र रूप) होती है वह गूढ़ होती है। उसको व्यूह-पद्धति (पृथक्करण डीकोडिंग) से सुस्पष्ट बनाना यह संवाद-पद्धति का काम है। जब इस प्रकार का विश्लेषण किया जाता है तब मनुष्य समालोचनात्मक चिंतन करने लगता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक दल विशेष कोई विषय ही नहीं सुझा पाता। इसका अर्थ इतना ही है कि वहाँ शोषण का विचार विषय वर्तमान है। यानी वे इतने दबे हुए हैं कि अपने शोषण के बारे में वे विरोध भी नहीं कर पाते।

क्रांतिकारी के लिए जरूरी यह है कि इस प्रकार अनेक विचार विषयों के बीच का सम्बन्ध समझ सकें और उनका समवाय मुक्ति के विचार से कर सकें।

अन्वेषक अपने कार्यक्रम की सूची पहले से नही बनाये रखता। उसका कार्यक्रम लोगो के प्रति उसकी सहानुभूति में से सहज स्फूर्त निकलना चाहिए। मैं किसी दूसरे के लिए विचार नही कर सकता, दूसरे के साथ सहचिन्तन कर सकता हूँ। लोगो का चिंतन भले ही अन्धश्रद्धा पर स्थित हो, मुझ आरम्भ तो वहीं से करना चाहिए। लोग दमनकारी संस्कृति के सागर में डूबे होते हैं, उसमें से बाहर निकलते ही वे परिस्थिति पर असर करने योग्य बन जाते हैं। परिस्थिति पर असर करना यह क्रान्ति की दिशा में एक कदम आगे है। जो अन्वेषण जागृति को गहरा बनाता है वह शिक्षणात्मक है।

अन्वेषण के लिए लोगों का जो दल जायेगा उसमे भिन्न-भिन्न शास्त्रों के जानकार होंगे। वे अपने अपने विषय पर भाषण नही देंगे, बल्कि अपने विषय के अनुरूप प्रश्न उपस्थित करेंगे।

पहले तो वे लोग को अपना उद्देश्य समझायेंगे। फिर स्थानीय लोगों में से कइयों को स्वयंसेवक के नाते अपने साथ लेंगे। अन्वेषक लोग अपने मूल्यों को लोगो पर लादेंगे नही, केवल परिस्थिति का समीक्षात्मक दृष्टि से देखना सिखायेंगे। हर क्षेत्र, हर मुहल्ले या इस प्रकार अन्वेषण होगा। अनेक बार वहाँ जाकर विश्लेषण होगा। लोगों की बोलने की तथा विचार करने की पद्धति की हर छोटी छोटी तफसील नोट की जायगी। हर बार की भेंट के बाद उनके संक्षिप्त रपट की चर्चा होगी। इस प्रकार हर बार शिक्षण आगे बढ़ता रहेगा।

यह जरूरी है कि विषय वस्तु बहुत स्पष्ट या बहुत ज्यादा अस्पष्ट न हो। अगर विषय वस्तु अतिस्पष्ट होगी तो वह सिर्फ प्रचार होकर रह जायेगी, अगर वह अत्यन्त अस्पष्ट होगी तो वह पहेली या गुत्थी बन कर रह जायगी। विषय वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें पंख की पत्तियों की तरह एक में से दूसरा विषय निकलता चला जाय। अलग-अलग विषय वस्तु से समग्र परिस्थिति का भान होगा।

चतुर्थ अध्याय

मनुष्य की क्रिया में कर्म और ज्ञान दोनो समन्वित होता है। जो नेता लोगों को चिन्तन करने का मौका नही देता वह सही नेता नही है। जो लोग अपने शब्द या विचार लोगों पर थापते हैं वे क्रान्ति के उद्देश्य और क्रान्ति की पद्धति के बीच विरोधाभास खड़ा करते हैं। जो संवाद-पद्धति को स्वीकार नही करता वह वास्तव में क्रान्ति का नाम लेता हो तो भी दमन की पद्धति ही इस्तेमाल कर रहा है।

सच्चे क्रान्तिकारी बनने का एक ही तरीका है— अपने वर्ग-हिता को मिटा कर "मृत्यु" पाना और लोगों के हिता के साथ चलकर "पुनर्जन्म" पाकर द्विज बनना। एक दूसरे के साथ बिरादरी के भाव से रहनेवाले लोग ही एक दूसरे को मुक्त कर सकते हैं।

वैज्ञानिक क्रान्ति न गा के सामने नारायाजी नहा करेगा। नपिन उन। सवाद एव सहजावन करेगे। इसस लागा का वास्तविकता का ज्ञान और नताजा का समक्षात्मक बुद्धि का योग हागा और दोना को वास्तविकता का सहा भान और ज्ञान होगा।

इसके बा पाओलो फ्रेरे क्रान्ति विरोधी तथा क्रान्तिकारा विचार-पद्धति को समाक्षा करत हैं। वे कहते हैं कि क्रान्ति विरोधा पद्धतिम विजय जरूरा है। उसस लाग चुपचाप एव निष्क्रिय रहत हैं। अलग-अलग स्थान पर विजय का पद्धति म अन्तर होता ह। लेकिन एक बात हर जगह समान होता है— वह है मरणासक्ति। व जावन का विकास नहीं चाहत मानवो पर विजय प्राप्त कर उनका मानव मिटाना चाहते हैं।

क्रान्ति विरोधी पद्धति का दूसरा साधन है लोगा मे भद पदा करना। लोगा को सारा परिस्थिति का भान न हो इसलिए वे उनका ध्यान कुछ स्थानाय समस्याओं पर चिपका हुआ रखना चाहत हैं।

उनका तीसरा तरका है अपना चतुराई स लोगो को चलना। वे लागो को अपन उद्देश्यो स सहमत करान का प्रयत्न करते हैं।

कई बार क्रान्तिकारा लोग सवाद-पद्धति के लिए आवश्यक धीरज नहो रखते और वे भी लागा को अपना इच्छा के अनुसार चलाना चाहत हैं। किन्तु यह उनको क्रान्ति स ठीक उल्टा दिशा म ले जाता है। क्रान्तिकारा नताओ को ता चाहिए कि क्रान्ति विरोधियो के विरोधाभासो को सुलाकर लोगो का समीक्षात्मक बुद्धि को जगायें।

क्रान्ति विरोधिया का एक साधन सास्कृतिक आक्रमण भी है। वे अपन मूल्यो को लोगों पर थापने हैं। लोग जितना अधिक उनका अनुकरण करते हैं, उतना क्रान्ति विरोधियो का हेतु सिद्ध होता ह। सास्कृतिक आक्रमण एक ओर स दमन का उपकरण है तो दूसरा ओर वह दमन का परिणाम भी होता है।

कोई समाज विकासशील है या नही यह उसको फी व्यक्ति आय पर निभर नही ह। उसके लिए असली कसौटी तो यह ह कि वह समाज अपनी अस्मिता पा सका या नहीं। क्रान्ति विरोधी तत्व अकसर यह कहते हैं कि लोग क्रान्ति कर इसस पहले ही हमें कुछ सुधार दाखिल कर उस क्रान्ति को टाल लेन दो। क्रान्तिकारियो को दमनकारियो की सवाद विरोधी पद्धतियाँ इस्तेमाल नही करनी चाहिए। क्रान्तिकारी अकसर दमनकारियो में स ही पदा होते हैं। किन्तु एक अवस्था पर आकर वे अपन वग का त्याग करते हैं। यह परम प्रम का और सही निष्ठा का कृत्य होता है।

क्रान्तिकारी नतृत्व को इस बात का सतत भान रखना चाहिए कि लागो को उसम अविश्वास पैदा न हो। लोगो से बिरादरी भाव का अनुभव बनाय रखन के लिए उस नय नय रास्ते ढूढते रहना चाहिए। क्रान्तिकारी और

दमनकारी नेताओं का भेद केवल उनके उद्देश्य ही में नहीं अपितु उनके साधन में भी होता है। अगर उनके साधन वही हों तो उनकी सिद्धि भी वही बन जाती है।

क्रान्तिकारियों का दूसरा साधन मुक्ति के लिए एकता है। यह एकता नारेबाजी से सम्भव नहीं। एकता प्रस्थापित करने के लिए प्रथम तो उन्हें दमनकारी दुनिया के मायाजाल की नाल को काट डालना चाहिए। क्रान्ति का और एक उपकरण है संगठन। यह एकता का स्वाभाविक परिणाम है। मुक्ति का संघर्ष यह नेता और लोगों का सर्वसामान्य कार्य होना चाहिए। इस बात का साक्षात्कार होगा—करनी और कथनी के अभेद से, साहस से, मूलगामी परिवर्तनशीलता से, प्रेम करने की हिम्मत से और लोगों में आस्था से।

क्रान्तिकारियों के लिए संगठन का अर्थ होता है अपने आपको लोगों के साथ संगठित करना। संवाद-पद्धति अधिकारवाद और स्वेच्छाचार दोनों की विरोधी है। उसमें अधिकार और स्वातन्त्र्य होगा। संगठन एक शिक्षणात्मक प्रक्रिया है, जिसमें नेता और लोक साथ मिलकर अधिकार और स्वातन्त्र्य दोनों का अनुभव करते हैं और फिर वे उन्हें परिस्थिति को बदल कर समाज में दाखिल करने का प्रयत्न करते हैं।

क्रान्ति का और एक साधन सांस्कृतिक-समन्वय का है। यह समाज के वर्तमान विरोधाभासों का निराकरण करने का प्रयत्न करता है। क्रान्तिकारी सिखाने नहीं आते। लेकिन वे लोगों के साथ लोगों की दुनिया के विषय में सीखने को आते हैं। क्रान्तिकारी दुनिया के सम्बन्ध में लोगों के खयालों को ध्यान में न रखकर कई बार गलती करते हैं। इसका ज्ञान हो तो सांस्कृतिक समन्वय के लिए आवश्यक होता है।

जैसे दमनकारी को अपने कृत्य के लिए एक सैद्धान्तिक भूमिका की जरूरत होती है उसी प्रकार दलितों को भी अपने आन्दोलन के लिए एक सिद्धान्त की जरूरत होती है। दमनकारी अपने सिद्धान्त का विस्तार लोगों के बिना ही करता है, क्योंकि वह तो लोगों के खिलाफ खड़ा है। लेकिन न क्रान्तिकारी न लोक अपने आप में अलग होकर मुक्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित कर सकते। जब लोग क्रान्तिकारी नेताओं के सम्पर्क में आते हैं तब उनके सहजीवन में—उनके सहचिन्तन और सहयज्ञ में ही यह सिद्धान्त बन सकता है।

('तरुणमन' से साभार)

वर्ष : २१-२२
अंक : १२-१
मूल्य : ७० पैसे

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण १ श्रीमन्नारायण
मौजूदा शिक्षा ४ महात्मा गांधी
पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा—
निरर्थक, निरुपयोगी ७ विनोबा
'सा विद्या या विमुक्तये' ९ श्रीमन्नारायण
सामाजिक मान्यता बदले बिना
बुनियादी तालीम सम्भव नहीं १८ धीरेन्द्र मजूमदार
शिक्षा में अनोखी सूझ २० आचार्य राममूर्ति
नयी शिक्षा की आत्मा २१ सरला बहन
उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा की नयी
संकल्पनाएँ और प्रयोग २५ श्रीनिवास शर्मा
शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन अनिवार्य ३१ गुन्नार मिर्डाल
ढांचे का पुनर्निर्माण ३७ मैलकम एस० आदिशसिया
बुनियादी तालीम की दिशा में
व्यावहारिक कदम ४६
सेवाग्राम में बुनियादी तालीम का नया रूप ५२ माधवराव गोडस
नयी तालीम उद्योग, योग और प्रयोगमय हो ५५ श्रीमती मदालसा नारायण
मुक्ति के लिए शिक्षा की अनिवार्यताएँ ५८ कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा
गांधीजी की शिक्षा-पद्धति में धर्म का स्थान ६९ शम्सुद्दीन
दलितों का शिक्षा शास्त्र ७२ नारायण देसाई

जुलाई, अगस्त '७३

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा आठ रुपये है और एक अंक के ७० पैसे।
* पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
* रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा नयी तालीम समिति के लिए प्रकाशित,
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित।

मुख पृष्ठपर : बापू-कुटिया

यह वही झोंपड़ी है जहां गांधीजी रहा करते थे और जहां बैठकर उन्होंने स्वतंत्र भारत के साथ-साथ मानवता के लिए एक भविष्य का निर्माण किया। गांधीजी के जीवन-काल तक यह कुटी विश्व को प्रभावित कर सकनेवाली राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का केन्द्र रही और अब यह पूज्य बापू की स्मृति के चिन्ह-रूप में मौजूद है।

नयी तालीम : जुलाई, अगस्त, '७३
पहिले स डाक-व्यय दिय बिना भजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

"विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में जो बोझ दिमाग पर पडता है, वह असह्य है। यह बोझ केवल हमार बच्चे उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी ही पडती है। व दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे ग्रेजुएट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमे खोज की शक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नयी योजनाएँ नहीं बना सकते। बनाते हैं तो उन्हें पूरा नहीं कर सकते।"

—गाधीजी

मुद्रक शकरराव लोंढ, राष्ट्रभाषा प्रस वर्धा

नयी तालीम

सर्व सेवा संघ की मासिकी

वर्ष : २२

अंक : २

सितम्बर, १९७३

'जीवेम शरद शतम्'

ऋषि विनोबा ७९ व वर्ष में पदार्पण–११ सितम्बर

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक : २
मूल्य ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण ८१ श्रीमन्नारायण
ग्राम संस्कृति बनाम शहरी सभ्यता ८४ महात्मा गांधी
अपना एक आदर्श विद्यालय बने ८६ विनोबा
भविष्य की शिक्षा ८८ श्रीमन्नारायण
शिक्षा में विषमता रही तो ९८ बंशीधर श्रीवास्तव
ऋषि विनोबा और उनका शिक्षा दर्शन १०४ कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा
नयी तालीम के प्रयोग
वर्धा ग्रामीण महाविद्यालय में
शिक्षा की योजना ११२ दे ज हातेकर
सेवाग्राम की नयी दिशा ११६ माधव गोडसे
शिक्षामें विश्वचिंतन
पढाई कम काम अधिक १२१ जेम्स कोलमन
आचार्यकुल गतिविधि
सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की
नियुक्ति पर आचार्यकुल का अभिमत १२३ केन्द्रीय आचार्यकुल समिति

सितम्बर, '७३

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अंक का मूल्य ७० पैसे है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित।

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : २

भारत-पाकिस्तान समझौता

अगस्त के अन्त में भारत व पाकिस्तान के बीच दिसम्बर सन् १९७१ में भारत-पाक युद्ध के बाद उत्पन्न हुई मानवीय समस्यायो को हल करने के लिये जो समझौता हुआ उसका भारत व ससार के अन्य देशो मे समुचित स्वागत होना स्वाभाविक है। इस समझौते की विशेषता यही है कि शिमला सधि की भावना के अनुरूप यह बिना किसी तीसरे राष्ट्रकी सहायता के आपसी बातचीत द्वारा सम्पन्न किया गया है। विश्व में स्थाई शान्ति स्थापित करने के लिये यह बहुत जरूरी है कि विभिन्न राष्ट्र अपनी समस्यायें इसी प्रकार सद्भावना के वातावरण में पारस्परिक चर्चा से हल करें और दुनिया के दोनो प्रबल गुटोंकी कूटनीति से अलग रहें। पिछले युद्धो ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी मसला हिंसा से हल नही हो पाता है, उल्टे नई व जटिल समस्यायें पैदा हो जाती हैं। इसीलिये भारत व पाकिस्तान के नेताओ न जिस धीरज व दूरदर्शिता से यह समझौता किया उसके लिये दोनो राष्ट्रो का हार्दिक अभिनन्दन।

हम आशा करते है कि इस समझौते की सभी धारायें समझदारी व ईमानदारी से शीघ्र लागू की जायगी और किसी प्रकार की आपसी कटुता पैदा न होने दी जायगी। अब यह भी जरूरी है कि

शिमला संधि के अनुसार दूसरी समस्यायें भी जल्द सुलझाने की कोशिश की जाय और दोनो देशो में राजकीय सम्बन्ध पुनः स्थापित हो जाय।

ऋषि विनोबा :

इसी मास की ग्यारह तारीख को ऋषि विनोबा अपनी आयु के ७८ वर्ष पूरे कर चुके हैं। इस पुण्य अवसर पर उन्हें हमारे सादर सविनय प्रणाम !

यह हम सभी का सौभाग्य है कि इस समय देश और दुनिया को ऋषि विनोबा जैसे मौलिक व गहन चिन्तक और जीवन-दर्शी युग-पुरुष का मार्ग-दर्शन प्राप्त हो रहा है। विनोबा कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के अपूर्व संगम हैं। उन्होने भारत के प्राचीन ऋषियो व मनीषियो की उज्ज्वल परम्परा को प्रखरतापूर्वक जीवित रखा है। हम भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि वे शतायु हो और उनके मार्मिक कार्यो व विचारो का लाभ हम सभी को बहुत वर्षो तक मिलता रहे।

चरित्र का संकट :

इस वक्त देश में कई संकटो से आम जनता बेहद परेशान है। रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुओ की और विशेषकर अन्न की कीमतें दिन-दिन बढती जाती हैं और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। व्यापारी व सरकारी सभी कर्मचारी 'बहती गंगा' में अपने-अपने हाथ धोने में मशगूल हैं। यह सचमुच बडे दुःख व शर्म की बात है।

दरअसल भारत के सामने इस समय सबसे बडा और भयंकर संकट है नैतिक पतन व चरित्र-हीनता का। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने हमें सदैव यही चेतावनी दी थी कि यदि हमें शुद्ध उद्देश्यो को साधना है तो हमारे साधन भी शुद्ध व पवित्र होने चाहिये। हिंसा व असत्य से भरे आचरण से हम कभी भी सुख व संतोष प्राप्त नहीं कर सकेंगे। आज हम सभी इस सनातन सत्य को तेजी से भूलते जा रहे हैं और अपनी ओर पैनी नजर डालने के बजाय दूसरो के दोषो को ही देखने व

उनकी कटु आलोचना करने में व्यस्त हैं। जिस समय बापू नगे पैर नवाखली क्षेत्र के गाँवो में पद्यात्रा कर रहे थे, किसी पत्रकार ने उनसे एक सदेश की माँग की। गाँधीजी ने बडी शान्ति से उत्तर दिया था : 'अन्तरमुख होनेकी कोशिश कीजिये'—'Turn the searchlight inwards' यही सदेश इस समय हम सब के सामने जगाने की जरूरत है।

शिक्षण संस्थाओ में भ्रष्टाचार :

और बडे दु ख की बात तो यह है कि देश की शिक्षण-सस्थाओ में भी भ्रष्टाचार का घुन बडी गहराई से लग गया है। अधिकतर स्कूलों व कॉलिजो में प्राध्यापको को मजबूर किया जा रहा है कि वे वेतन व महगाई भत्ते की अधिक रकम पर हस्ताक्षर करें और उसकी आधी या उससे भी कम राशि पाने में सतोष मानें। शिक्षक भी विद्यार्थियो से रुपये लेकर उनके परीक्षा-फलों को निर्धारित करने में सकोच नही करते और निजी ट्यूशनो द्वारा अपनी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाते हैं।

अब यह सब बन्द होना चाहिए। इस कार्य की ओर आचार्य-कुल विशेष ध्यान देगा ऐसी आशा है। यह सही है कि शिक्षको को अपने कर्तव्यो के पालन पर अधिक जोर देना चाहिए। किन्तु उनके अधिकारो पर शिक्षण सस्थाओ के सचालको द्वारा कुठाराघात न हो यह भी बिलकुल जरूरी है। इसके लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक वर्ग दलगत राजनीति के चक्कर में पडे बिना मजबूती से सगठित हो। इस दृष्टि से आचार्यकुल बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

—श्रीमन्नारायण

महात्मा गांधी

ग्राम संस्कृति बनाम शहरी सभ्यता

[नोट — गांधी जी का यह लेख द्वितीय विश्वयुद्ध के समय का है। जिन लोगों ने गांधी जी का हिन्द स्वराज्य पढ़ा है वे जानते हैं कि सभ्यता और संस्कृति के बारे में गांधी जी के विचार मौलिक थे। अत्याधुनिक समाजशास्त्रीय विश्व चिंतक भी गांधी जी से सहमत हैं और आज अत्यधिक शहरीकरण की बुराइयों से परेशान हैं। गांधी जी ने यह लेख लिखा तब से विश्व की परिस्थिति में कोई सुधार होने के बजाय बिगाड़ ही हुआ है। आज शहरी सभ्यता के रोग ने संसार को और भी गहराई और मजबूती के साथ ग्रस लिया है। जब तक हम इस बुराई से मुक्त नहीं होंगे तब तक संसार को युद्धहीन नहीं बनाया जा सकता है। क्या हम, कम से कम भारत, इसके लिये तैयार हैं? क्या हम इस दिशा में विचारते भी हैं या सिर्फ संसार की अंधी दौड़ में कदम मिलाने के उद्देश्यहीन फेर में पड़े रहकर इस प्राचीन और महान् देश को भी सभ्यताओं की कब्र शहरीकरण की सभ्यताओं में जाने देंगे? गांधीजी के विचारों पर इसी सन्दर्भ में विचार करना होगा। — सम्पादक।]

विश्व में आज दो विचार धारायें प्रचलित हैं। एक उसे शहरों में विभक्त करना चाहती है और दूसरी देहातों में। ग्राम संस्कृति और शहरी सभ्यता ये दो भिन्न हैं। शहरी सभ्यता यान्त्रिक औद्योगीकरण पर निर्भर है तो ग्रामीण सभ्यता हस्त-उद्योग पर स्थित है। ग्राम संस्कृति को हमने पसन्द किया है। बड़े पैमाने पर उत्पत्ति

का यह काम और औद्योगीकरण, आखिर अभी अभी ही तो बढा है इससे हमारा कितना विकास हुआ है या हमारे सुख में इसने वृद्धि की है इसका खुद हमें पता नही लकिन हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसी ने इन वतमान विश्व युद्धो को जन्म दिया है। यह दूसरा महायुद्ध अभी चालू ही है और वह समाप्त होने के पहले तीसरे महायुद्ध की बातें हम अभी से सुन रहे हैं। आज जिस तरह हमारा राष्ट्र दीन है और दुख से आहत हुआ है उस तरह वह पहले कभी नही था। शहरा में लोगो, को अच्छा वतन और प्रचुर मुनाफा भले ही मिल रहा हो लेकिन यह सब देहातो का खून चूसकर ही हो सका है।

हम एक ग्रामीण सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। इस देश की विशाल जनसख्या, परिस्थिति और जलवायु ने, मेरी राय में, इस ग्राम संस्कृतिमय ही रहने के लिये बनाया है। इसके दोष अनगिनत हैं किन्तु उनमें स एक भी एसा नही जो दूर न किया जा सके। इस संस्कृतिको तब तक नष्ट नही किया जा सकता या इसके स्थान पर तब तक कोई अन्य संस्कृति नही लाई जा सकती जब तक कि हम इसकी विशाल जनसख्या को तीस करोड से घटाकर तीस लाख या यहाँ तक कि एक करोड न कर दें। इसलिए मैं अपने हृल इस विश्वास के साथ साथ सुझाता हूँ कि हमें इसकी वर्तमान ग्राम संस्कृति को प्रोत्साहन देना चाहिये और उस अपनी सब विदित कमजोरियों को दूर करने में मदद करनी चाहिए।

यह केवल तभी किया जा सकता है जब कि देश के युवक-युवतियाँ ग्रामीण जीवन अपना लें। यदि व ऐसा करेंगें तो उन्हे अपने जीवन के पुन निर्माण के साथ ही अपने अवकाश का हर दिन अपन कालेजो और हाई स्कूलो के चारो तरफ फैले गाँवो में लगाना चाहिए और जिन्होंने अपनी पढाई पूरी कर ली है या जिन्होने और आगे पढने का विचार छोड दिया है वे गाँवो में जाकर बस जाएँ। उन्हे गाँवों में पैठ जाना चाहिए जहाँ सही ज्ञान शोध और सेवा का असीमित क्षेत्र पडा है। प्रोफेसर लोग अवकाश के दिनो के लिए भी युवक-युवतियों को साहित्यिक अध्ययन के बोझ स हल्का रखकर उन्हे गाँवो में शैक्षिक यात्राओ के लिए सुझाव और प्रोत्साहन देगें तो उससे वे छात्रो का हित ही करेग।

विनोबा

अपना एक आदर्श विद्यालय चले

[कुछ दिन पहले अ० भा० नयी तालीम समिति के अध्यक्ष डा श्रीमन्नारायण ने आचार्य विनोबाजी से शिक्षा सुधार के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे थे। वे प्रश्न व पूज्य विनोबाजी के उत्तर पाठकों की जानकारी के लिये नीचे दिए जा रहे हैं। —सम्पादक।]

प्रश्न — सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की कार्यान्वित (फोलो-अप) कमेटी की तीसरी बैठक तारीख १६ सितम्बर को सेवाग्राम में बुलाई गई है। कई राज्यो के शिक्षा मंत्री व विश्वविद्यालयो के उपकुलपति बैठक में शामिल होंगे। इसके पहले दो मीटिंगें हो चुकी हैं— पहली ३ दिसम्बर '७२ को नयी दिल्ली में और दूसरी ११ मार्च '७३ को अहमदाबाद में।

हमने वर्धा शिक्षा मंडल द्वारा संचालित कॉलेजो में भी सेवाग्राम सम्मेलन की सिफारिशो को लागू करना शुरू कर दिया है। सेवाग्राम में नयी तालीम का रूप भी आपके आदेश के अनुसार परिवर्तित किया जा रहा है।

किन्तु केन्द्र व राज्यो में शिक्षा-पद्धति करीब-करीब पुराने ढर्रे पर ही चल रही है। इस ओर राज्य सरकारें विशेष ध्यान नहीं दे रही है, यद्यपि सभी मानते हैं कि शिक्षा के ढाँचे में आमूल परिवर्तन होने चाहिए।

इस सम्बन्ध में नयी तालीम समिति की तरफ से और क्या किया जाय ?

उत्तर —अपना एक आदर्श विद्यालय चले इतना काफी है, जिससे कि उसकी मिसाल लोग ले सकें। सेवाग्राम भारत के मध्य का स्थान है, गांधी जी का स्थान है। तो लोग बराबर आते ही रहेंगे।

प्रश्न —सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन ने अपनी सिफारिशो में कई विषयों का जिक्र किया है। किन्तु आपकी दृष्टि से वे कौन से सुधार हैं जिनके लागू हो जाने पर आप फिलहाल संतोष मान लेंगे ?

उत्तर —कम-से-कम बात है कि डिग्रियो का नौकरी से सम्बन्ध टूट जाय।

प्रश्न —अभी तक बुनियादी तालीम के प्रयोग अधिकतर गाँवो में ही हुए हैं। शहरो में इस तरह का बहुत ही कम कार्य हो सका है। शहरी इलाको में बुनियादी स्कूलो को किस प्रकार संचालित करना चाहिए ? किन प्रवृत्तियो से शिक्षा का सम्बन्ध जोड़ा जाय ताकि उनके द्वारा बच्चो को शिक्षा प्राप्त हो सके ?

उत्तर—शहर में जिसकी जरूरत है और जिसका सामान शहर में मिल सकता है वे उद्योग शहर के विद्यालयो में चलें। किन्तु खेती का प्लाट तो वहाँ भी होना ही चाहिए, भले छोटा ही क्या न हो। मान लिजिए पाव एकड ही हो जिससे थोडा काम खेती में भी चले। मकान-निर्माण व दुरुस्ती आदि का भी शिक्षण दिया जा सकता है।

प्रश्न—आपने कई बार कहा है कि देश की शिक्षा-पद्धति सरकार के दखल से मुक्त होनी चाहिए और उसका सचालन विद्वान शिक्षा शास्त्रियों के हाथ में रहना चाहिए। लेकिन हम देखते हैं कि जिन विश्वविद्यालयो या हाईस्कूल बोर्डों को काफी स्वायत्तता दी गई है वे बडे दकियानूसी साबित हो रहे हैं और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में मूलाग्र परिवर्तन के लिए तैयार नही हैं। हम भी राज्य सरकारो पर ही जोर डालते हैं कि कई सुधार तेजी से लागू किए जायें। यदि शिक्षा का सचालन राज्य सरकारो के हाथ में न रहे तो वे भी फिर क्या कर सकेंगी?

उत्तर—शिक्षा का सचालन, नियमन इत्यादि यूनिवर्सिटियो को करना चाहिए। मैंने सुझाव दिया था कि युनिवर्सिटियो के प्रमुख लोग इकट्ठा हो कर आदेश दें। सरकार का नियत्रण यह एक बात बिल्कुल नियत्रण न हो य० दूसरी बात। बीच की बात है आचार्यों याने युनिवर्सिटियो के प्रमुख लोगो द्वारा नियत्रण।

प्रश्न—क्या युनिवर्सिटियों के उपकुलपति प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षण के बारे में भी मार्गदर्शन दे?

उत्तर—हाँ, पूरा मार्गदर्शन— प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षण के बारे में भी।

प्रश्न—लेकिन विश्वविद्यालयो के उपकुलपति अक्सर बहुत कन्जरवेटिव मनोवृत्ति वाले प्रतीत होते हैं। वे बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धातो के अधिकतर विरुद्ध ही हैं। अन्य सुधारो के पक्ष में भी बहुत कम हैं। फिर शिक्षा सुधार का काय तेजी स कैसे चलेगा?

उत्तर—जो भी अपने देशमें चिन्तन कर सकते हैं उसके वे लोग केन्द्र हैं ऐसा माना जाएगा। किन्तु उपकुलपतियो के अलावा दूसरे भी जो विद्वान हैं उनको एकत्र कर के इनके साथ जोडा जाय। जैसे जैनेन्द्र जी और दादा धर्माधिकारी। ऐसे १०–१५ लोग उपकुलपतियों के साथ जोड दिय जायें। वे मिलकर चर्चा करते रहेंगे और अपना निणय सवसम्मत्ति से देंगे।

अन्तमें हमें यह समझना होगा कि किसी एक शिक्षण सस्था में जितनी तीव्रता स हम प्रगति कर सकते हैं उतनी तीव्रता स देश भर में काम नही होगा, थोडा आहिस्ता होगा।

श्रीमन्नारायण

भविष्य की शिक्षा

(नोट :— यह लेख श्री श्रीमन् जी की हाल ही में प्रकाशित होने वाली अँग्रेजी पुस्तक "Education of the future" के अंतिम अध्याय का अनुवाद है।)

आज की दुनिया में अपरिमित प्रकार की उपभोग्य वस्तुओं और भौतिक सम्पत्ति के संग्रह की पागलपूर्ण दौड लगी है। 'महज प्राचुर्य' की इस विपत्ति ने अधिकांश विकासमान देशो में प्रथम दर्जे के संकट को प्रोत्साहन दिया है। यह संकट अभूतपूर्व हिंसा, जातीय संघर्ष तथा पारस्परिक अविश्वास का संकट है। छात्रा और युवकों में समार-व्यापी असंतोष और उपद्रव की भावना है। वे परम्परागत मूल्यों के विरुद्ध बगावत का झंड़ा उठा रहे हैं और ऐसे कुछ मूल्यों की खोज में है जिनके बारे में वे अपने दिमागों में जरा भी स्पष्ट नहीं हैं। वे लगभग सनकी जैसे बनकर मृगतृष्णा की भाँति शांति की खोज में विश्व के कोने-कोने में भटक रहे हैं। उन्हें अब इस कठोर सत्य का अनुभव हो रहा है कि 'समाज' को बनाने से पहले स्वयं को बनाना होता है।"

'मानवीय स्पर्श' की आवश्यकता

अभी मानवता अनेक प्रकार के घातक विरोधाभासों का सामना कर रही है,[1] जैसे स्वतंत्रता का विरोधाभास, संपत्ति तथा सत्ता का विरोधाभास। धनी और गरीब राष्ट्रों के बीच खाई दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। अमरीका जैसे सम्पन्न राष्ट्रों में भी लगभग दो करोड २० लाख लोग सम्यक् जीवन की सामान्य आवश्यकताओं से भी वंचित हैं और गरीबी तथा बेकारी मुँहबाये खडी है। लोग वहाँ 'तकनीकी समाज' के 'गैर-मानवीय' (डीह्यूमेनाइज्ड) भावों से ग्रस्त हैं और एक प्राकृतिक सरल वातावरण में 'मानवीय स्पर्श' युक्त सामुदायिकता के लिए तरस रहे हैं। अभी हाल में ही अपने एक भाषण में राष्ट्रपति निक्सन ने वर्तमान

१. 'लाइफ' एशिया संस्करण, अगस्त १९६८ पृष्ठ ९९१
२. 'टाइम' जनवरी २४, १९६९

अमरीकी राजनीतिक मनोभाव (मूड) को 'उक्ताहटका विचार-दर्शन' कहा है।[3] चन्द्रयात्रा तक, जो कि निश्चित ही एक समूह कार्य, मानव प्रतिमा तथा शानदार साहस का चमत्कारपूर्ण कार्य है, नयी युवा पीढ़ी को प्रेरित नहीं कर पा रही है। कल्पनातीत धन खर्च करनेपर भी इसके अन्तिम लक्ष्य अब भी एक गूढ पहेली और संकटपूर्ण अवसर बने हुए हैं। "अपोलो ' ११ की भयानक और खर्चीली चंद्र यात्रा नये विश्व की यात्रा का आरम्भ हो सकती है किन्तु यह इस पर निर्भर करता है कि वजाय वैज्ञानिकों के राजनीतिज्ञ इस बारे में क्या सोचते हैं।" चंद्र प्राप्ति मनुष्य के साहस की आश्चर्यजनक उपलब्धि बन सकती है, मानव-हृदय को संतोष भरी उडान दे सकती है किन्तु दूसरे लोगों के लिए तो यह केवल समय की बरबादी मात्र है।[4]

चंद्रतल पर अवतरण

इसके अलावा आधुनिक आंतरिक शोधों की सहायता से चन्द्रमा तक की उडानों ने विश्व की वर्द्धमान विशालता और असीमता ही प्रकट की है जिसे नापना यों मनुष्य के लिए कभी भी संभव नहीं है। अभी तक प्राप्त अंतिम गणना के अनुसार प्रकाश की १८६,००० मील प्रति सैकेंड अथवा ६ हजार करोड मील प्रति वर्ष की गतिके हिसाब से पृथ्वी के सबसे निकट के बड़े तारे की दूरी चार प्रकाश वर्ष है और सुदूरतम तारे की दूरी २१ प्रकाश वर्ष है। साथ ही वैज्ञानिक कुछ नई वस्तुओं जिन्हें 'पलसार' (Pulsars) कहते हैं का पता लगाने में भी सफल हुए हैं। वर्तमान हिसाब से ये पलसार हमसे ५० से ३०० प्रकाश वर्ष दूर तक समझे जाते हैं। अपोलो ८ के चंद्रयात्रियों ने जब चंद्रमा के निकट से चक्कर लगाये तो वहाँ से उन्हें यह पृथ्वी छोटी-सी टेनिस की गेंद की तरह दिखाई दी जब कि सूर्य तथा तारों का नभ मण्डल उन्हें ठीक वैसा ही दिखाई दिया जैसा वह यहां से दिखाई देता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच २,४०,००० मील की दूरी से भी विश्व के दिव्य सौन्दर्य में कोई फर्क नहीं प्रतीत हुआ। उन्हें चन्द्रमा जहाँ उजाड़, निर्जन, अनाकर्षक और जीवन से पूरी तरह से शून्य लगा, वहीं यह सुन्दर धरती सारी सृष्टि में देखने योग्य सुन्दर वस्तु लगी।[5] एक चन्द्र यात्री को तो वहाँ भी ईसा और सांताक्लाज (Santa Claus) का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण हुआ और उसने वहाँ से धरती के सभी मनुष्यों के बीच शांति और सद्भाव का सन्देश पढ़ा।

साम्यवाद की दुनिया

साम्यवादी विश्व भी मानव-सम्बन्धों और आंतरिक तनावों की अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा है। दिन व दिन यह अनुभव किया जा

---

३ 'टाइम', जून २७, १९६९

४ दि इकानामिस्ट, लंदन, मई ३१, १९६९

५ लाइफ, फरवरी ३, १९६९

रहा है कि "मानव-मस्तिक के ऊपर किया गया अत्याचार अत्याचार का सबसे मजबूत और निर्मम रूप है।"[५] कुछ साल पहले मास्को में ७५ साम्यवादी दलो के नेताओं के सम्मेलन ने जो वक्तव्य प्रसारित किया था उसे उन्ही नेताओ में से कई ने चुनौती दी थी। "साम्यवाद को स्वय उसकी असत्यता-शून्यता-का पिशाच सता रहा है" और एक समय का क्रातिकारी आदोलन अब "केवल अपने को अच्छी तरह से कायम रखनेवाली अपरिवर्तनवादी सस्था बन गया है।"[७]

जब कि लोगो के रहन-सहन के स्तर को उठाने के सारे प्रयत्न किये जा रहे है सोवियत यूनियन में भी श्रमिको और पार्टी कार्यकर्ताओ में अवसरवादिता (opportunism) की कोई कमी नही है। इसलिए इस बातपर अब भी जोर दिया जा रहा है कि "अपने ही कार्यकर्ताओ में इस तरह का अवसरवादिता को समाप्त किए बिना पूंजीवाद पर विजय पाना असम्भव है।"[८] स्पष्ट है कि अवसर-वादिता भ्रष्टाचार, स्वार्थ का ही दूसरा नाम है और साम्यवादी व्यवस्था तक इन बुराइयों पर काबू नही पा सकी है।

हिंसा का दैत्य

इस सबमे ऊपर हिंसा का भूत ससार को बढ़ती जा रही क्रूरता से ग्रसता जा रहा है। सयुक्त राष्ट्र अमरीका में ही केवल ७ साल मे हिंसात्मक अपराध ५७% बढे है। अकेले लदन में १९५७ में डकैती के २५० मामला के मुकाबिले १९६७ में वे २००० हो गए है।[९] बडे बडे प्रमुख राजनैतिक नेताओं की सडको पर हत्यायें हो रही है और वहाँ की साधन-सम्पन्न खुफिया पुलिस भी अब इन अपराधियों को पकडपाने में असमर्थ हो गई है। सोवियत सघ तक में अपराध सूचिका बढती जा रही है और भ्रष्टाचार जन-जीवन को घेरता जा रहा है। न्यूयार्क और दिल्ली से लेकर पेरिस, मास्को लदन बेलग्रेड बर्लिन आदि तक सबमें छात्रो में हिंसात्मक और तोड-फोड की प्रवृत्तियाँ बढती जा रही है। सयुक्तराष्ट्र अमरीका में "काले विद्रोह" ने तो भयानक रूप ग्रहण कर लिया है। हिंसा के कारणो और रोकथाम के प्रभावकारी उपायों की जाँच करने के लिए एक राष्ट्रपति आयोग की स्थापना की गई है। आयोग की एक प्राथमिक सिफारिश यह है कि "अति भीड, भौतिकवाद और तकनीकी" के कारण वर्तमान समाजमें हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। प्रख्यात इतिहासज्ञ प्रो टायनबी इससे सहमति व्यक्त करते हुए कहते है कि 'मानवताको नुकसान पहुँचाने

---

६ 'ए न्यू क्लास'—ने० मिलावान दिजलास
७ 'न्यू स्टेटसमैन', लदन जून २७, १९६९
८ 'सोवियट रिव्यू', फरवरी २३ १९७१
९ 'दि स्टटसमैन, नई दिल्ली के १७-५-१९६९ के अक में निकोलस हवर्ट का लेख

वाले ऐसे प्रभावो के कारण ही भ्रमित लोग हिसा करनेके लिए प्रोत्साहित होते हैं। शत्रुकी सभावित अजेय सेनाओके विरुद्ध अर्नेस्टो चे ग्वारा (Ernesto(che) Guevara) के 'सशस्त्र सघर्ष' के मार्ग पर भी प्रश्नचिन्ह लग गया है।[10] इस तरह से आज मानवता एक चौराह पर खडी है और स्थायित्व तथा शातिके लिए किस रास्ते जानाहै यह नही जान पा रही है।

आत्मज्ञान और विज्ञान का समन्वय

सन् १८०२ ई में इग्लैंड के बारे में लिखते हुए कवि विलियम वर्ड्सवर्थ ने शिकायत की थी कि लोग अब "लुटेरेपन के मूर्तिपूजक, लालची, खर्चीले बन गये हैं" और "सादा जीवन तथा ऊँचे विचार अब तिरोहित हो गये हैं।" उपनिषदें, जो भारत की गौरवमयी सास्कृतिक विरासत का निर्माण करती हैं, सासारिक सुखभोग में त्याग तथा बलिदान के मूल्यों पर बारबार जोर देती है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा।', हमारे अपने समय में भी रोमा रोला स्वीकार करते हैं कि "मेरे पास जितना अधिक होता जाता है 'मै' उतना ही न्यून बनता जाता हूँ।" अल्बर्ट स्वीटजर यह डरावना सत्य कहते हैं कि "दुनिया के आर्थिक विकास और इतिहास के साथ-साथ सही सभ्यता का विकास करना सरल होने के बजाय कठिनतर बनता जा रहा है।'[11] महात्मा गाधी ने जोर देकर कहा है कि "सही अर्थों में सभ्यता आवश्यकताओ के बढ़ाते जाने में नही वरन् जानबूझकर स्वेच्छापूर्वक उनके कम करने में है।"[12] प्रो गालब्रेथ ने हमारा ध्यान "वस्तुओं के बजाय मनुष्यो में विनियोग'"[13] करनेकी ओर खीचा है। डा श्रानिग जैसे ख्यात् आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक भी इस अनिवार्य नतीजे पर पहुँचे है कि पूर्ण-सुख केवल 'आत्मानुशासन' से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनके शब्दो में —

"Man has conquered the ocean and the air and has tamed the beasts of the forest, but he will never know true freedom and happiness untill he has tamed himself"[14]

याने मनुष्य ने सागरो और हवा को जीता है उसने जगल के जानवरो को भी पालतू बनाया है किन्तु वह सच्ची स्वातत्रता तब तक नही जीत सकता जब तक उसने स्वय को पालतू नही बनायगा।

---

१० फ्रोम गाधी टु ग्वेवेरा, ले० सी आर हेन्समैन, पृ ९२४

११. दी डिके एण्ड दी रेस्टोरेसन आफ सिविलिजसन

१२. 'सेलेक्सन्स फ्रोम गाधी'—एन के बोस (नवजीवन) १०५७

१३. दी एफ्लूएण्ट सोसायटी, पृ २२७

१४ 'रीडर्स डाइजस्ट', अप्रैल १९६९ में डा ए जे श्रनिग का लेख 'अनलेस यू डिनाइ युवर सेल्फ'

आचार्य विनोबाजी ने अपनी विशिष्ट शैली में वर्तमान परिस्थिति का इस प्रकार विवेचन किया है. "आधुनिक विज्ञान में तेज, गति तथा क्रिया है किन्तु, वह दिशाहीन है।" यह स्पष्ट है कि विज्ञान को यह 'दिशा' तभी मिल सकती है जब कि केवल अणुबम बनानेवाला ही नही अपितु जैविक और रसायनिक लडाइयो के घातक हथियारो का नियोजन करने तथा उन्हे बनाने वाले वैज्ञानिको के मस्तिष्क को भी आध्यात्मिकता से मार्गदर्शन मिले। प्रगति और आध्यात्मिक शक्तिका सम्यक समन्वय ही रहने योग्य एक नई सुन्दर दुनिया के निर्माण तथा प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

आध्यात्मिकता का अर्थ

आध्यात्मिकता क्या है ? विभिन्न विचारको, दार्शनिको और धर्माचार्यों ने इसकी भिन्न ढग से व्याख्या की है। मेरे विचार में हिंदू धर्मग्रथो में आध्यात्मिकता को इगित करनेवाले सर्वोत्तम शब्द 'धर्म' का प्रयोग किया गया है। महाभारत के अन्त में महर्षि व्यास हाथ उठाकर पुकारते हुए कहते है —

'न जातु कामात् न भयात् न लोभात्
धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः।

धर्मो नित्यः सुख दु.खे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुर् अस्य त्वनित्यः॥

अर्थात् " किसी इच्छा की पूर्ति के लिए या भय अथवा लालच, यहाँ तक कि अपने जीवन की रक्षा, के लिए भी धर्म का त्याग नही करना चाहिए। क्योंकि धर्म शाश्वत है, नित्य है, जब कि सुख-दुख क्षणिक है। आत्मा अमर है, जब कि शरीर क्षणिक है, अस्थाई है।"

धर्म का तात्पर्य

धर्म का तात्पर्य केवल अपनी कुछ धार्मिक विधियो को सम्पन्न करना या कुछ दायित्वों का निभाना मात्र नही है। इसका तात्पर्य सेवा, प्रामाणिकता तथा सत्य के मूल्यों के लिए उच्चतर बलिदान से युक्त सम्यक् व्यवहार है। पडित नेहरू ने इस विचार को स्पष्ट करते हुए कहा है

" How amazing is this spirit of man; inspite of innumerable failings man throughout the ages, has sacrificed his life and all he held dear for an ideal, for truth, for faith, for county and honour. That ideal may change, but that capicity for self-sacrifice

continues . In the midst of disaster he has not lost his dignity or his faith in the values he cherished."[15]

याने मनुष्य की यह भावना कितनी विस्मयकारी है कि अगणित असफलताओं के बावजूद मनुष्य अपने प्रिय आदर्श सत्य, विश्वास, देश या सम्मान के लिए युगों से अपना सर्वस्व न्योछावर करता आया है। उसका आदर्श बदल सकता है किन्तु आत्म-बलिदान की उसकी क्षमता कायम रही है। विनाश के बीच में भी उसने अपने प्रिय मूल्यों के लिए अपना विश्वास या सम्मान नहीं खोया है।

कवि टेनिसन ने इस सार्वभौम आध्यात्मिक शक्ति को 'आत्मादर, आत्मज्ञान और आत्म-नियंत्रण' तथा 'सत्य को सत्य के कारण मानने' की भावना, वृत्ति के रूप में देखा है। महात्मा गांधी इस तरह के आध्यात्मिक प्रशिक्षण को 'हृदय का शिक्षण' और 'देवत्व के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण' के रूप में मानते हैं। यह उस सर्वव्यापक और वर्णनातीत रहस्यमय शक्ति में अविचल विश्वास के द्वारा ही संभव है।

"मेरे चारों तरफ, जब कि हर वस्तु हमेशा बदलती जाती है, हमेशा मर जाती है किन्तु समस्त परिवर्तन के बीच भी एक जीवन्त शक्ति है जो अपरिवर्तनशील है, जो सबका साथ पकड़े रहती है जो सृजन करती है संहार करती है और पुनः सृजन करती है।"[16] ईशावास्योपनिषद इस दैवी शक्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि "ईशावास्यम् इदम् सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।"

अनन्त की लय में

आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए दुनिया का त्याग करने और हिमालय की कन्दराओं में चले जाने की आवश्यकता नहीं है। गांधीजी के लिए आध्यात्मिकता का विकास करने का सर्वोत्तम मार्ग गरीबों और दलितों की सेवा करने का था। वास्तव में उनका 'रचनात्मक कार्यक्रम' आध्यात्मिक साधन और धर्म की प्राप्ति की ही प्रक्रिया था। इस प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा मनुष्य अपनी अपूर्णता में रहते हुए भी अपने पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम कर सकता है। गांधी जी के लिए सारा संसार ही उनका परिवार था। किन्तु मानवता के साथ इस एकात्मता को व्यक्त करने के लिए उन्हें दुनिया के दूसरे छोर तक दौड़ने की आवश्यकता नहीं थी। सेवाग्राम के छोटे से गांव में रहते हुए और दिन रात अनवरत अपने रचनात्मक कार्य में लगे रहते हुए भी वे न केवल सारी दुनिया वरन् समस्त विश्व के साथ अपनी तादात्म्यता

---

१५ दी डिस्कवरी आफ इंडिया जवाहरलाल नेहरू (मेनडियन बुक्स लि.) १९६० पृ. ११

१६ दी माइंड आफ महात्मा (नव जीवन) १९६७, पृ. ४७–४८

साधने और अपने वैश्विक दृष्टिकोण का विकास करने में समर्थ हुए थे। जब कि एक बार एक भक्त ने आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उसे अपना शिष्य बनाने की प्रार्थना की तो महास्वामी ने उसे घर जाकर एकाग्रचित्त से अपनी बीमार माँ की सेवा करने कहा।

दीप से दीप जले

तात्पर्यत यह है कि आध्यात्मिकता मन की एक वृत्ति और समर्पण, सेवा तथा त्याग के आवश्यक नैतिक गुणों के पोषण का प्रयास है। इन बुनियादी सद्गुणों से अलग रहकर ज्ञान, विज्ञान तथा तकनीकी मनुष्य जाति को गलत दिशा में ले जा सकती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अभाव में आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान दूषित और भ्रष्ट होने और मानव जाति को भ्रम तथा विनाश के गर्त में गले तक डुबो देने की वृत्ति रखता है। भगवान् बुद्ध ने मनुष्यके आध्यात्मिक गुणों की तुलना उस दीपक से की है जो 'अपनी लौ अथवा प्रकाश खोये बिना भी दूसरे दीपकों को जला देने की विशिष्ट क्षमता रखता है।" इस अर्थ में आध्यात्मिकता मृत्यु और अंधकार के बीच जीवन और प्रकाश के फैलाव का नाम है।

विकेंद्रित समाज

अर्थशास्त्रीय शब्दावली में किसी मनुष्य के व्यक्तिगत आध्यात्मिक और नैतिक गुणों का उचित विकास केवल एक ऐसे समाज में ही हो सकता है जो कि मानव के प्रति समादर की भावना पर आधारित हो और जो मनुष्य को सर्वग्राही राज्य के पहिये में न बदलता हो। इसी कारण से गांधी जी ने लोकतन्त्र, विकेन्द्रीकरण तथा सामुदायिक संगठन पर आधारित एक 'सर्वोदय समाज' की स्थापना के लिए उत्साहपूर्ण वकालत की है। तथाकथित बुद्धिवादियों के द्वारा इसे 'एक काल्पनिक स्वप्न' कहा जा सकता है। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री, जैसे प्रो गुन्नार मिडल तक ने एक ऐसे 'काल्पनिक, विकेन्द्रित और लोकतान्त्रिक राज्य की सामयिकता' पर जोर दिया है जहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र समुदाय के लिए अधिक प्रभावकारी नीतियों के अन्तर्गत स्थानीय और विभागीय सहयोग के माध्यम से स्वयं नागरिक ही अपने कार्यों को संगठित करने के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं। "यह स्वप्नलोक" प्रो मिडल कहते हैं "मेरे विश्वास के अनुसार हमारा वास्तविक उद्देश्य है।"[१७] विकासमान देशों में अति नागरीकरण अब भद्दे स्तर तक पहुँच गया है। अब तो महानगरियों के स्थान पर विशाल नगरीय आवासों से युक्त 'महानगरीय राज्य' (Megalopolises) पनप रहे हैं। काफी गहरी शोध और अध्ययन के बाद आधुनिक समाजशास्त्री इस

---

१७ 'बियोंड दा वेलफेयर स्टेट' १९६०, पृष्ठ ७०

निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि " आज की नगरीय बुराईयों का कारण सामुदायिक भावना का अभाव ही है।'[18]

विश्व नागरिकता की ओर

राजनैतिक क्षेत्र में भी आध्यात्मिकता न केवल अपने देशके प्रति ही गहरा सम्मान और भक्ति रखने वाले वरन् साथ ही दूसरे देश के लोगों से भी अपने रक्त बधुओं के ही समान स्नेह रखनेवाले विश्व नागरिक के विचार के रूप में व्यक्त हो सकती है। गांधीजी चाहते थे कि हम अपने देश तथा उसकी संस्कृति के प्रति गर्व करनेके साथ-साथ सभी दूसरे देशों की उत्तम और सुन्दर बातों को ग्रहण करने के लिए अपने दिल दिमाग हमेशा खुला रखें। वेद ने भी एक ऐसे विश्व नागरिक (विश्वमानुष) की कल्पना की है जो अपने छोटेसे आश्रम अथवा गांव में रहता हुआ भी विश्व-भ्रातृत्व और वैश्विक मानव के गीत गा सके। * लार्ड टेनिसन की दृष्टि भी 'मानव संसद' और 'विश्व -संघ' तक गई थी। संयुक्त राष्ट्र संघ भी यद्यपि अभी तक अपूर्ण साधन ही है किन्तु फिर भी उसी दिशा में एक कदम है जिसे हमारे समर्थन और सहयोगकी अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे कि कुछ साल पहले यू. एन. ओ. में अपने एक स्मरणीय भाषण में डा. राधाकृष्णन ने कहा था कि " हर देश का विश्व-संगठन को मजबूत बनाने के लिए अपनी सार्वभौमता का कुछ भाग त्यागने के लिए तैयार होना चाहिए। अभाव, डर, और लालच से मुक्त दुनिया ही स्नेह, सहयोग तथा सद्भाव पर टिके समाज के लिए मार्ग प्रशस्त कर सकेगी।"

नये मस्तिष्कको आवश्यकता

अभी पिछले दिनों जापान के वसेडा विश्वविद्यालय में भाषण देते प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने विश्व के युवकों का आवाहन करते हुए कहा है कि उन्हें अब ' नये मूल्यों ' की खोज करने की आवश्यकता है क्योंकि ' नयी दुनिया नये चिंतन, नये हल और नयी संस्थाओं की मांग करती है। ' यह केवल युवकोंकी शक्ति को सही दिशा देने के लिए सही शिक्षा-पद्धति के द्वारा ही सम्भव है। इस सन्दर्भ में श्री जे. कृष्णमूर्ति भी बराबर ' सही शिक्षा और मानव के समग्र विकास के द्वारा मनुष्य में बुनियादी क्रांतिकारी परिवर्तन '[19] पर जोर देते रहे हैं। प्रो. अल्विन टफ्लर भी तेजी से बदलते जा रहे समाज में द्रुत गति से सम्बन्ध कायम करने तथा अपने स्वस्थ

---

१८ 'न्यूजवीक' मार्च १७, १९६९।

१९ 'लाइफ अहेड' जे० कृष्णमूर्ति (विक्टर गोलोन्ज लंदन) १९६३, पृष्ठ ७१

* कहा ही गया है— 'विश्व पुष्टं अस्मिन् ग्रामे अनातुरम्'— इस गांव में हम परिपुष्ट विश्व का दर्शन करें। —सम्पादक।

वातावरण के द्वारा अपना मार्ग निर्धारित करले और विवेचनात्मक निर्णय कर सकने वाले मनुष्य के निर्माण के लिए एक 'अधि-औद्योगिक' शिक्षा-पद्धति के विकास पर जोर दे रहे हैं।[20]

वर्तमान शिक्षा-पद्धति में बुनियादी परिवर्तन किये बिना व्यक्ति तथा उसके माध्यमसे समाज-परिवर्तनके सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे। इसके अलावा शिक्षा को अब विद्यालय की चहार दीवारी से बाहर आकर आने वाले वर्षों की शिक्षा नीतियों के मुख्य विचार के रूप में 'जीवन भर की शिक्षा' बनना होगा।[21] प्रो. हुसेन ने भी 'सीखना' 'सीखने' की कला विकसित करने पर बल दिया है।[22] इसी अर्थ में अब दुनिया के शिक्षकों को एक होकर दुनियाँ को मनुष्य के प्रति मनुष्य की अमानवता, दिल की सकीर्णता और निम्न विचारो से मुक्त करना होगा।

भविष्य का दर्शन

हम चन्द्रमा पर उतर सकते हैं, तारे भी तोड़ सकते हैं और असख्य सौर पद्धतियों तक की विजय पूर्वक उड़ानें भर सकते हैं। किन्तु जब तक आध्यात्मिक पुन.-सृजन की शक्तिशाली किरणो के द्वारा मनुष्य का मन नही बदलता तब तक एक न्यायपूर्ण, शातिपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना की सभावनाएँ अत्यन्त क्षीण और आपदाजन्य ही रहेगी। डा राधाकृष्णन ने हमें आग्रह करते हुए कहा है कि हमारी 'वैज्ञानिक उपलब्धियो से हमारे विनाश का खतरा उपस्थित हो गया है।" उन्होंने कहा है कि "हम निर्णायक घड़ियों में रह रहे हैं। यह दुनियाँ या तो ज्वालाओं में भस्म हो जायेगी या फिर शाति से स्थित हो जायेगी। यह इस पर भी निर्भर करेगा कि हम इस युगमें अपने सामने पडे कार्य को किस प्रकार सम्पन्न करते हैं।"[23] गुरुदेव टैगोर अत तक यह स्वप्न सजोये ही रहे कि जहाँ से सूर्योदय होता है उस पूर्व से ही प्रभात की किरणें प्रकट होगी और "अपनी खोई हुई विरासत को पुन., प्राप्त करने कि लिए तमाम बाधाओं के बावजूद अपराजित मनुष्य अपने विजय पथ की खोज कर लेगा।[24] महात्मा गाधी 'माँ की छाती पर एक बालक की भाँति' भारत से चिपके रहे क्योकि उन्हे लगा कि वह उन्हे आध्यात्मिक पोषण देगा। वे इस विश्वास पर दृढ थे कि भारत अपनी अहिंसा और आध्यात्मिकता के माध्यम से इस थकी दुनिया

---

२०. 'फ्यूचर शॉक' एल्विन टफ्लर (पान बुक्स लि० लदन) १९७१, पृ. ३६४
२१. 'लर्निंग टू बी' (यूनेस्को) १९७२, पृ० १८२–३
२२ एजूकेशन इन इयर २००० (स्वीडेन)
२३. ओकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स डा. एस राधाकृष्णन् (पब्लिकेशन्स डिवीजन)
२४. टुवर्डस यूनीवर्सल मैन, रवीन्द्रनाथ टैगोर (एशिया) पृ. ३५९

को एक नया रस्ता बता सकेगा। इसलिए भारत के युवक-युवतियों को गाधी जी की आशा ओं के अनुरूप बनने का प्रयास करना चाहिए। वे सस्कृति और सम्यता को सफलता को नई ऊँचाइयो और नये आयाम प्रदान करने में समर्थ हैं।

हमारे छात्र जीवन में गुरुदेव टैगोर की 'गीताजलि' हम सबके लिए प्रेरणा की एक बडी श्रोत रही थी। उसने हममें स्वतत्रता प्राप्त करनेके बाद भारत के एक आदर्श राष्ट्र बन जाने की आशाएँ जागृत की। भविष्य की शिक्षा को गुरुदेव टैगोर के अभी तक अप्राप्त इस स्वप्न को सिद्ध करने का प्रयास करना होगा

"Where the mind is without fear and the head is held high;

Where knowledge is free;

Where the world has not been broken up into fragments by narrow domestic walls;

Where words come out from the depth of truth;

Where tireless striving stretches its arms towards perfection,

Where the clear stream of reason has not lost its way into the dreary desert sand of dead habit;

Where the mind is led forward by Thee into ever-widening thought and action—

Into that heaven of freedom, my Father, let my country awake"

(अनु०—कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा)

वंशीधर श्रीवास्तव

शिक्षा में विषमता रही तो....विषमता और बढ़ेगी

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त सेन समिति ने अपनी रिपोर्ट दे दी है। विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजो के प्राध्यापकों की एक माग रही है कि इस समय शिक्षा की इन उच्च सस्थाओ में जो त्रिस्तरीय वेतनक्रम (लेक्चरर-रीडर-प्रोफसर) चल रहा है उसे हटाकर सभी प्राध्यापकों को एक ही अनुक्रमिक वेतनक्रम (रनिंग ग्रेड) में रखा जाय। सेन कमेटी ने इस माग को मजूर नहीं किया है और उसने त्रिस्तरीय वेतनक्रम-व्यवस्था को बनाये रखने का सुझाव देते हुए प्रवक्ताओ (लेक्चररो) के लिए ७०० से १५०० रुपये तक, रीडरों के लिये ११०० से १७०० रुपये तक और प्रोफेसरो के लिये १५०० से २२५० रुपये तक वेतनक्रम की सस्तुति की है। ये वेतनक्रम विश्वविद्यालयो पर ही नहीं उनसे सबद्ध समस्त डिग्री कालेजो पर लागू होंगे।

सेन समिति की सिफारिशें मजूर हो गयी और कोई कारण नहीं है कि मजूर न हो तो आज प्रारंभिक और माध्यमिक विद्यालय के अध्यापको और डिग्री कालेजों के प्राध्यापको के वेतनक्रम में जो बहुत बडा अन्तराल है वह और भी बढ़ जाएगा। समाजवादी ' कहे जानेवाले देश के गरीब अध्यापकों के साथ (और अध्यापकों की बिरादरी में प्रारम्भिक शिक्षा का अध्यापक गरीब रिश्तेदार है) इससे और बडा अन्याय क्या होगा ? हमें भूलना नहीं चाहिए कि इन गरीब रिश्तेदारो का वेतनक्रम १०० से १५० रुपये तक से अधिक शायद ही कहीं हो।

जो भी हो यह सुझाव शिक्षा क्षेत्र की आज की विषमता को और भी बढायेगा और एक बात निश्चित है कि शिक्षा के क्षेत्र में विषमता रखकर आप आर्थिक और

सामाजिक समता नही ला सकते,। शिक्षा की विषमता अन्ततोगत्वा आर्थिक और सामाजिक विषमता को जन्म देती है। सिर्फ अर्थ ही समाज में वर्गभेद नहीं पैदा करता शिक्षा भी वर्गभेद पैदा करती है। सिर्फ अर्थ ही शक्ति नही है—शिक्षा भी शक्ति है—शायद अर्थ से भी बडी शक्ति है। इसीलिए जब तक शिक्षाकी विषमता बनी रहेगी समाज में समता की अथवा समाजवाद की बात करना नारा मात्र रहेगा।

मै यह कोई "गोपन मन" नही बोल रहा हूँ और न किसी प्रकार की रहस्य की बात ही कह रहा हूँ। तो फिर सेन समिति ने यह समाजवाद विरोधी सुझाव क्यो दे दिया—ऐसा सुझाव जिससे देशमें विषमता का क्षेत्र बढेगा? लगता है सेन समिति ने यह सस्तुति कोठारी कमीशन को इस सस्तुति को ध्यान में रखकर की है, जिसमें आयोग ने सुझाव दिया है कि 'विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापको के वेतन की तुलना मोटे तौर पर सरकार की वरिष्ठ सेवा में मिलने वाले वेतन से की जा सके ताकि देश की प्रतिभा का अच्छा भाग अध्यापन और अनुसधान् कार्य की ओर आकर्षित हो विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का अधिकतम वेतन वही होना चाहिए जो वरिष्ठ वेतनक्रम में आई ए एस अधिकारी का होता है।' (कोठारी आयोग ३ १० (१)। लेकिन इसी अनुच्छेद में आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि "चूँकि अध्यापन एक ऐसी वृत्ति है जिसमें निष्ठा और समपण की भावना समान होती है और सभी स्तरो पर नयी पीढी को शिक्षित करने के उत्तरदायित्व का मूल्य समान है इसलिए प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक अध्यापको के वेतनमान का अतर न्यूनतम कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर मिलने वाला वेतन १ २ ३ के अनुपात में होना चाहिए। आज तो प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक का वेतन ६०–८० रुपये से शुरु होता है। यह प्रोफेसर के प्रारम्भिक वेतन का १२ वां से १६ वां भाग बनता है।" (कोठारी आयोग –३–१०–(३०)।

आयोग आगे फिर लिखता है—'अधिक योग्य अध्यापको को नीचे के स्तर की कक्षाओ में अध्यापक कार्य की प्रेरणा देने के लिए—क्योकि अन्ततोगत्वा शिक्षा का ऊँचा स्तर इसी पर आधारित है—एक ऐसी नीति तय करना अनिवार्य है जिसके अन्तर्गत स्कूल के अध्यापको का वेतन केवल उनकी योग्यता पर निर्भर हो। इस नीति को पूर्व प्रारम्भिक से उच्चतर माध्यमिक अवस्था तक लागू किया जाय यद्यपि हम स्वीकार करते है कि वित्तीय कारणो से इस नीति को पूरी तरह मानना भी सभव नही होगा। फिर भी हम इस विचार को सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर ले।" (कोठारी आयोग ३–१०–(४)।

मुझे केवल इतना कहना है कि अगर कोठारी कमीशन नीति के रूप में इस सुझाव को विद्यालयी शिक्षा तक सीमित न करके विश्वविद्यालयी शिक्षा तक

ले जाता (और जब केवल नीति की ही बात करनी थी तो अध्यापन का कार्य तो सर्वत्र समान है—शायद प्रारम्भिक स्तर पर निश्चय ही अधिक कठिन और महत्वपूर्ण है।) तो सेन समिति को इस तरह की संस्तुति करने का साहस नही होता। प्रारम्भिक स्तर और माध्यमिक स्तरकी शिक्षा का काम विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के कामसे कम महत्वपूर्ण नही है इसको उन शिक्षा विशारदो से जो सेन समिति में बैठे हुये थे, अधिक अच्छी तरह दूसरा कौन जानेगा। अगर इन भले आदमियों के सामने समाजवाद का परिप्रेक्ष्य होता और वे बुरी तरह 'यथास्थितिवाद' के बोझ से दबे न होते तो जब उन्होंने विश्वविद्यालयो और उनसे सबद्ध डिग्री कालेजो के अध्यापको के वेतन में वृद्धि की सस्तुति की थी वे इतनी सिफारिश तो कर ही सकते थे कि उच्च शिक्षा के इन प्राध्यापकों के वेतनमानमें तब तक वृद्धि न की जाय जब तक इसी प्रकार की समानुपातिक वृद्धि नीचे स्तर के अध्यापको के वेतनमान में न की जाय। बल्कि उन्हे तो साफ-साफ यह कहना चाहिये था कि पहले प्रारम्भिक स्तर के अध्यापकों की तनख्वाह बढ़ायी जाय फिर ऊँची शिक्षावालो के वेतन बढाने की बात की जाय क्योकि इनका वेतन तो पहले से ही बढा है। परन्तु सेन समिति ने ऐसा न करके उन लोगो के तक को बल दिया है जो कहते है कि हमारे विश्वविद्यालय केवल कुछ अल्पसख्यक सुविधा-सम्पन्न विशिष्टजनों को सफलता के स्वर्ण शिखर तक पहुँचाने की सीढी मात्र है और केवल इन्ही थोड़े से आदमियो की सुविधाओ पर एकाधिकार दिलाने में मदद करते है और इन विश्वविद्यालयो से निकले हुए लोग जब आयोगो और समितियो में बैठते हैं तो अपनी सस्तुतियो से इन सुविधा-सपन्न लोगो की स्थिति को और भी दृढ बनाने की कोशिश करते हैं। अधा जब रेवडी बाँटने बैठेगा तो यदि वह बार बार अपने को ही देता जाय तो किसी को बहुत अचरज नही करना चाहिए।

"सुविधा सपन्न कोई भी समाज मूलत हिंसक होता है क्योकि वह अल्प सख्यकों द्वारा बहुतो के शोषण पर ही आधारित होता है। हमारी उच्च शिक्षा इसी प्रकार की एक सुविधा सम्पन्न सामाजिक और आर्थिक प्रणाली को बनाये रखने में सहायता करती है। वह शोषक के और शोषित के टुकडो में बटे हुए समाज में शोषक के प्रच्छन्न हिंसक कृत्यो को स्वीकृति प्रदान करती है और इस प्रकार हिंसक और प्रतिस्पर्धात्मक समाज-व्यवस्था को कायम रखनेमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सच पूछिये तो शोषण का एकाधिकार प्रदान करनेवाली यह शिक्षा असमानता और बौद्धिक सकीर्णता को बढाने का सबसे मजबूत साधन है। (सुगत दासगुप्ता के 'सेमिनार' के 'डेड हार्स' लेख से) इसीलिए साम्यवादी चीन की सास्कृतिक क्राति की सफलता के लिए चेयरमैन माओ को चीन के विश्वविद्यालयो को बद कर देना पडा। वे यथास्थितिवाद के सबसे सुदृढ गढ़ सिद्ध हो रहे थे और उन्हे बद कर देने में ही उसने साम्यवाद का हित देखा। और इसमें तनिक भी सन्देह नही कि हमारे विश्वविद्यालय

भी इस देश में यथास्थिति वाद को बनाये रखने के सबसे बडे साधन हैं— पूंजीवादी कारखानों और दकियानूसी कानूनी-व्यवस्था से भी बडे।

आज हम अपने विश्वविद्यालयी शिक्षा के इतिहास में ऐसे बिन्दु पर पहुँच गये हैं जहाँ सुधार का कोई भी प्रयास स्थिति को बदल नही सकता। अधिक वेतन देने से ये सामन्तवादी किले और भी मजबूत होंगे और विश्वविद्यालयो के शीशमहल में रहने वालो के मानस में इससे किसी भी प्रकारका परिवर्तन नही आयेगा बल्कि उनकी सुरक्षा सर्व साधारण को हीन समझने के उनके बौद्धिक दभ को और भी पनपायेगी और उनकी अनुत्पादक सडी-गली शिक्षा प्रणाली और भी तेजी के साथ परमुखापेक्षी शोषको और बेकारों की सख्या बढ़ायेगी।

अभी हाल ही में लोकसभा में बयान दिया गया था कि सन् १९७१ में इन विश्वविद्यालयो और उनसे सम्बद्ध डिग्री कालेजो से निकले हुए ३,९४,००० (तीन लाख चौरानब्बे हजार) ग्रेजुएट बेकार थे और १९७२ में यह सख्या बढ़कर ६,०३,००० को गई थी— बकारी और बेरोजगारी बढ़ाने वाले इन कारखानो को बद कर देने से देश का किसी प्रकार का अनहित नही होगा। बल्कि सामन्तवाद और साम्राज्यवाद की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उच्च शिक्षा के जो ये संस्थान स्थापित किये गये थे उन्हे एकदम बद कर देना ही हितकर होगा क्योकि उनसे वे अपेक्षाएँ कभी भी पूरी नही होगी जो एक लोकतत्रीय समाजवादी समाज शिक्षा से करता है।

आज के युग में, जो वैज्ञानिक तकनीकी और लोकतात्रिक समाजवाद के ताने-बाने से बुना गया है, जब शिक्षा की सकल्पना बदल रही है तो शिक्षा की सरचना (स्ट्रक्चर) में भी बुनियादी परिवर्तन करना होगा। शिक्षा का पुराना शोषणमूलक सामतवादी ढांचा लोकतात्रिक समाजवाद की मांगों के बोझ को सभाल नहीं पाएगा। आज सवत्र यह ढांचा गिर रहा है। वतन की टकनी (थुन्नी) लगाकर आप इस सभाल नहीं पाएँगे। जीर्ण-शीर्ण के मोह को छोडना ही होगा।

विज्ञान और टक्नालोजी मूलक लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज को जिस शिक्षा की आवश्यकता है विश्व के शिक्षाशास्त्री उसकी खुलकर चर्चा करने लगे हैं। नये युग के अनुरूप शिक्षा की एक नयी सकल्पना और तदनुरूप एक नयी सरचना की वकालत उन्होंने की है। पुराने का एक नया विकल्प उन्होंने प्रस्तुत किया है।

लैटिन अमेरिका का प्रसिद्ध विचारक इवान एलिच अपनी 'पोस्ट इडस्ट्रियल सोसाइटी' (उत्तर औद्योगिक समाज) नामकी अपनी पुस्तक में लिखता है— 'आज की विद्यालयी शिक्षा (इन्स्टीट्यूशनल एज्युकेशन) उत्तर औद्योगिक युग के लिए अपर्याप्त ही नही हानिप्रद भी है। मै विद्यालयी शिक्षा से व्यक्ति की मुक्ति चाहता

हूँ। आज "शिक्षा" संस्थागत शिक्षा का पर्याय हो गई है। यह ठीक नहीं है। इस समय जो काम संस्थाएँ करती हैं उनमें अधिकांश काम अगर उद्योग केन्द्र और फार्म नही करेंगे तो व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व विकसित नही होगा जो लोकतन्त्र की सफलता की सबसे बडी शर्त है। अत. हमें विद्यालयो की चहारदीवारी से बाहर निकलना होगा। इसीलिए मैं शिक्षा के अविद्यालयीकरण (डी-स्कूलिंग) का हिमायती हूँ।"

एक दूसरा विचारक एलविन टफ्लर "फ्युचर शाक" नाम की अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखता है— "पूँजीवादी युग के कारखानो के पैटर्न पर निर्मित विद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षा कल के सुपर टेकनालाजिकल युग के लिये बेकार सिद्ध होगी। इस नये युग में अधिकाश शिक्षा रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर और दूसरे उन्नतशील सचरण साधनोंसे प्राप्त हो जायगी और ये 'शिक्षा के अविद्यालयीकरण' में सहायक होंगे। यह ठीक है कि इस युग की शिक्षा का पाठ्यक्रम आज से भिन्न होगा परन्तु उतना ही जरूरी शिक्षा के (विशेषत उच्च शिक्षा के) ढाँचे में परिवर्तन भी होगा। विद्यार्थियों को विद्यालयो के बाहर समुदाय में केवल निरीक्षण के लिये नही समुदाय की उत्पादक क्रियाओ में सहकार के लिये जाना होगा। यह परिवर्तन शुरू भी हो गया है। आज भी न्यूयार्क के बैडफोर्ड स्टीवेन्ट जिले के विद्यालयोंमें पढाये जानेवाले विभिन्न विषयो को दूकानो, कार्यालयो, दफ्तरो, पैंतालीस-ब्लाक के घरो में इस प्रकार वितरित कर दिया गया है कि विद्यार्थी के लिये यह जानना कठिन हो जाता है कि विद्यालय कहाँ खतम हुआ है और समुदाय कहाँ प्रारम्भ हुआ है।"

स्वीडन के राष्ट्रीय बोर्डने २००० ईस्वी में शिक्षा के विषयपर एक शोध योजना आयोजित की थी। बोर्ड कहता है— "चूँकि लोकतन्त्र और समाजवादमें सार्वभौमिक शिक्षा (मास एज्युकेशन) की सकल्पना को सार्थक बनाना होगा। अत. सस्थाएँ विद्यार्थियो के बढते हुए बोझ को सभाल नही पायेंगी और शिक्षा का बहुत-सा काम विद्यालयो के बाहर करना होगा। क्योकि विद्यालयों के लिये आनेवाले कल के लिए पर्याप्त टेकनिक व्यावसायिक ज्ञान और उत्पादन-क्षमता का प्रशिक्षण असम्भव होगा।"

यही बात थियोडर सियेनशान अपनी "कान्टेम्पोरेरी चाइना" नाम की पुस्तक में इस तरह लिखता है— "आज चीन में औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में कोई भेद नही रह गया है। घर-खेत-खलिहान, सरकारी दफ्तर, खदानें-कारखानें सभी शिक्षा लेने-देने के साधन हैं। शिक्षा को सार्वजनिक बना देने का कोई दूसरा मार्ग नही है शिक्षा को उत्पादन से सयुक्त कर दिया गया है जिससे व्यक्ति कुशल-से-कुशल तर उत्पादक होता जाय।"

रूसकी शिक्षा प्रणाली में कक्षा के भीतर पाया हुआ अद्यतन तकनीकी ज्ञान भी पर्याप्त नही माना जाता है। कक्षा के बाहर जो उत्पादन की क्रियाओं—

प्रतिक्रियाओं में लगे हैं, उनके साथ काम किये बिना उत्पादन की पद्धतियो के रहस्यो को प्रायोगिक ढग से समझा नही जा सकता आज सोवियत रूस की उच्च कक्षाओ में लगभग ६ लाख विद्यार्थी है। इनमें से एक चौथाई उत्पादन-पद्धतियो में सशोधन करने के लिए उत्पादन केन्द्रों पर काम करते हैं। विद्यालय से बाहर निकलकर यह समुदाय के साथ एक होने की बात है।

और अभी-अभी अपने देश के केन्द्रीय शिक्षा मत्री ने केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थायी समिति की बैठक में १३ जून को कहा है कि "पाँचवी शिक्षा योजना में जो बडा शैक्षणिक सुधार करने का विचार किया जा रहा है वह यह है कि अनौपचारिक शिक्षा शिक्षण-प्रणाली के अभिन्न अग के रूप में चलाई जाय। शिक्षा के विभिन्न स्तरा पर, प्रारम्भिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर पर, यह सुधार विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमो से प्रारम्भ किया जाएगा विश्वविद्यालय स्तर पर राष्ट्रीय [illegible] खुला [illegible]विद्यालय होगा और प्रत्येक राज्य में कम से कम एक विश्वविद्यालय में [illegible] पत्राचार-प्रणाली आरम्भ की जायगी।"

अनौपचारिक शिक्षा की यह विचारधारा युग के अनुकूल है और उसका समर्थन यूनेस्को द्वारा नियुक्त अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा आयोग अपनी रिपोर्ट "आज और आनेवाले कल की शिक्षा" में करता है। तो फिर "'एक' खुला विश्वविद्यालय, 'एक' विश्वविद्यालय में पत्राचार प्रणाली का आरभ" ऐसी लचर समझौते की भाषा न बोलकर शिक्षामत्री इस गतिशील विचार के कार्यान्वियन के लिये मजबूत कदम क्यो नही उठाते ? और यह कदम तब तक मजबूत नही होगा जब तक "**बेकारों की फौज बढ़ानेवाले यथास्थितिवादके पोषक विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा के कालेजोंको बंद नहीं कर दिया जाएगा।**" अब इन विश्वविद्यालयो के अध्यापको का वेतन बढाना एक प्रकार का समाजवाद विरोधी कदम होगा और हमें दृढ़तापूर्वक सेन समिति के सुझावो को अस्वीकार कर देना चाहिये।

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

ऋषि विनोबा का शिक्षा दर्शन :

विख्यात् अमरीकी दार्शनिक इमर्सन ने एक बार किसी सन्दर्भ में कहा कि महापुरुष तीन प्रकार के होते हैं— ज्ञानी, विचारक और कर्मयोगी। विनोबा में इन तीनो ही गुणो का समिश्रण हुआ है यह कहना उचित है। आज भारत ही नही सम्भवत समस्त ससार में उनके जैसा साकार ज्ञान क्या कोई होगा ? नेहरू ने एक बार कहा कि— " मैं थोड़ा बहुत दुनिया के अन्य सभी देशों से भी परिचित हूं। मैं उन तमाम लोगों से भी मिला हूं जो बड़े कहे जाते हैं। किन्तु जब कभी सोचता हूं कि किसी और देश में विनोबा जैसा आदमी है या नही तो बहुत मुश्किल है। इसलिये मैं कहता हूं कि अगर कभी किसी सच्चे इतिहास की सृष्टि हुई तो उसमें विनोबा की जगह बड़ी होगी।" पंडित जी ने यह बात विनोबा के 'भूदान' आन्दोलन के सन्दर्भ में कही थी किन्तु विनोबा अपने किसी भी आन्दोलन से कहीं बड़े हैं। गांधी जी का महत्व क्या केवल इस कारण है कि उन्होने भारत को आजादी दिलाई ? यह काम तो अपने अपने देशों के लिये ससार के अनेक महापुरुषो ने भी किया है। किन्तु उन सबका ससार पर गांधी जी जैसा व्यापक प्रभाव तो नही कहा जा सकता है। 'मेरे मरने के बाद भी मेरा विकास जारी रहेगा' यह घोषणा करने का साहस केवल गांधी ही दिखा सके थे और आज यह स्पष्ट है कि सन् १९४८ के गांधी के मुकाबिले आज सन् १९७३ का गांधी कहीं अधिक प्रखर और प्रभावशाली है। ठीक यही बात विनोबा जी के लिये भी कही जा सकती है। उनका कोई भी आन्दोलन उनकी ऊँचाई के शतांश तक भी नही जा सकता। जैसे सन् १९४१ में महादेव भाई ने कहा था कि— 'विनोबा का प्रभाव लोग वर्षों बाद जानेंगे।' तो आज यह बात और भी दृढ़ता से कही जा सकती है। विनोबा को सही समझने के लिये अभी कुछ दशक या सम्भवत: सदियाँ और लगेंगी। विनोबा ने कई बातें ऐसी कही है जिन्हें आने वाला ससार ही सही सही समझ पायेगा। हम लोग जो एवरेस्ट के पास ही रहते है एवरेस्ट की गरिमा के प्रति एकदम बेखबर रहते है जब कि सुदूर देश के लोगो के लिये वह उत्तम काव्य और साहस का प्रेरणा श्रोत है। महापुरुषो के लिये भी यही बात है। विनोबा अभी हमारे अत्यन्त निकट है इससे भी उन्हे समझना हमारे लिये कठिन है।

मनुष्य की पहचान करने वाला भी विरला ही मनुष्य होता है। विनोबा को केवल गाधी ही पहचान सके थे और गाधी जी ने ही विनोबा को ऋषि मान लिया था। ऋषि दृष्टा होता है। आज विनोबा भी 'देख' रहे है। पिछले साल एक बार एक कार्यकर्ता से बात करते हुए विनोबा ने कहा था कि अब 'मैने सूक्ष्म में प्रवेश किया है याने अब मै अपने मरने का दृश्य देखना चाहता हूँ।' भारत की जो कुछ भी सर्वोत्तम निधि है वह विनोबा के हस्तामलकवत् है। भारत के सभी धर्मों का श्रद्धा के साथ जैसा अध्ययन और मनन-चिंतन विनोबा ने किया है इधर भारत के ज्ञात इतिहास में वैसा और कोई नही कर सका है। महर्षि व्यास के बाद भारत में इतना व्यापक 'ज्ञान-यज्ञ' विनोबा को छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति ने नही किया है। उनसे जो बात करने में समर्थ है वे जानते है कि वे ज्ञान का अथाह भड़ार है। विनोबा के इस 'ज्ञानयज्ञ' का प्रभाव भारत पर ही नही विश्व पर पड़े बिना नही रहेगा।

विनोबा को भारत का महान् सत माना जाता है किन्तु आज यह सत कहता है कि 'अब धर्म का जमाना चला गया और आध्यात्मिकताका जमाना आया है। क्योकि विज्ञान का यह युग है।' धर्म का विज्ञान के साथ मेल नही बैठ सकता जब कि विज्ञान अध्यात्म का ही एक पहलू है। विनोबा का यह कथन आज के युग का चमत्कार-पूर्ण कथन है जिसे कहने के लिये अपार साहस की आवश्यकता है। यह करना इतना सरल होता तो भारत के हजारों सतो में से किसी ने भी यह कर दिया होता। अध्यात्म का सरल अर्थ 'अनेको में एक' देखने की सचेतन और सक्रिय वृत्ति के रूप में किया जा सकता है। यही दिशा विज्ञान की भी है। जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रयासो के लिये चित्त की एकाग्रता और तटस्थता दोनों ही आवश्यक है वैसे ही आध्यात्मिक प्रयासो के लिये भी चाहिए। विज्ञान की ही तरह आध्यात्मिक चिंतन में भी सातत्य की, अभ्यास और प्रयोग की अत्यन्त आवश्यकता होती है। किन्तु साथ ही दोनो एक विश्वास पर खड़े है कि 'कोई सत्ता है जिसकी हमें खोज करनी है।' विनोबा का कहना है कि ज्यो ज्यो विज्ञान का विकास होगा त्यो त्यो अध्यात्म के लिये अनुकूलता और अनिवार्यता भी बढ़ती जायेगी। अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय आज के विश्व को विनोबा की उत्कृष्ट देन कही जायेगी।

सामान्यत विनोबा को गाधी का शिष्य माना जाता है किन्तु जब गाधी जी की मृत्यु के बाद पहली गाधीवादी कान्फ्रेन्स हुई तो सबके आश्चर्य के साथ विनोबा ने घोषणा की 'गाधी के नाम से कोई सगठन नही बनेगा।' यह पहला मौका था जब एक महापुरुष के सर्वोच्च शिष्य ने गुरु के नाम से सगठन बनाने के लिये इन्कार कर दिया हो। विनोबा विचार को 'अपौरुषेय' मानते है और उसे किसी भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बडा क्यो न हो, के नाम के साथ बाधना नही चाहते। 'विचार' के प्रति इतनी तटस्थता तो तथाकथित वैज्ञानिक समाजवाद के जनक मार्क्स और

उनके शिष्य तक नही दिखा सके और आज मार्क्सवाद भी एक धर्म पथ के जैसा बनकर रह गया है। विनोबा के इस दृष्टिकोण से 'गाधी-विचार' का बहुत बडा लाभ यह हुआ है कि आज गाधी जी के कुछ भक्तों और भारत की सरकार के द्वारा 'गाधी-कॅप्सूल' के धरती में आने वाले हजारो वर्षो तक के लिये सुरक्षित गाड देने के बावजूद गाधी विचार के नाम से कोई पथ या दल खडा होने के सभी लक्षण समाप्त हो गये हैं और इस प्रकार से गाधी विचार 'मुक्त' विचार रह सका है। यहाँ तक कि विनोबा ने गाधी के मूल विचार सत्याग्रह तक में तरमीमें की है और सत्याग्रह की अपनी नयी व्याख्या की है। यदि हमें लोकशाही चलानी हो तो इस तरह का मुक्त चिंतन आवश्यक है।

इसका अर्थ यह नही है कि विनोबा ने गाधी विचार को अलग कर कोई नया ही विचार रखा है। इसके विपरीत विनोबा ने गाधी को नये परिप्रेक्ष्य में पेश किया है और खासकर आज तो गाधी को ससार के सामने जिस साफ और प्रखरता के साथ रखा गया है उसका सारा श्रेय केवल विनोबा को है। 'ग्राम-स्वराज्य' का विचार जो गाधी जी मे एक धुंधला सा विचार था वह आज एक स्पष्ट दर्शन और कार्यक्रम के रूप में ससार के सामने है। उसके लिये काम करने वाले समर्पित लोगो का एक समूह है और वह समूह अपनी शक्ति भर प्रयास कर रहा है। आज जहाँ तक गाधी विचार का प्रश्न है देश में उस तरह का कोई अन्धकार नही जैसा वह गाधी जी की मृत्यु के समय था। यह अलग बात है कि गाधी के निकट रहने और उनके विचारो को समझने का दावा करने वाले बहुत से लोगो को अब तक विनोबा समझ नही आ सके हैं और वे निष्ठावान् विधवा की तरह गाधीजी के बताये कुछ कामों को, जिन्हें ये लोग रचनात्मक कार्य कहते है किन्तु जो गाधी के लिये समाज परिवर्तन के काम थे, करते आ रहे हैं। किन्तु गाधीजी का समाज परिवर्तन करने वाले क्रान्तिकारी के रूप में परिचय देने वाले नाम केवल विनोबा ही देश और दुनिया के सामने रख सके हैं। आज ससार गाधीजीको जो इतना स्पष्ट और प्रभावशाली ढग से समझने लगा है उसका श्रेय केवल विनोबा को जाता है। यद्यपि गाधी जी ने विनोबा को अपना उत्तराधिकारी तो नही बनाया था किन्तु जिन्हें इतिहास ने यह सुविधा दी थी वे विनोबा के मुकाबिले गाधी-विचार के लिये शताश भी नही कर सके हैं।

विनोबा की सबसे महत्वपूर्ण और उन्ही की भाषा में सर्वोत्कृष्ट देन तो शिक्षा के क्षेत्र में ही है। यहाँ शिक्षा का व्यापक अर्थ लेना चाहिये। उनका विशाल साहित्य निर्माण उसका एक पहलू है और उससे भी अधिक उन्होने देश को एक नवीन शिक्षा-दर्शन दिया है। इस दर्शन का मूल यह है कि शिक्षा जीवन की परिभाषा ही है। वह मनुष्य को एक तरफ तो उस ससार से तादात्म्य कायम करने में सहायक होनी चाहिए जिसमे मनुष्य रहता है और दूसरी तरफ उससे मनुष्य की उस

असीम सत्ता से भी तादात्म्य साधने में भी मदद होनी चाहिये जो समस्त विश्व की शक्ति है। इसके लिये विनोबा आरम्भ से ही बालको को गणित, खगोलशास्त्र और भूगोल पढ़ाने की सलाह देते हैं। गणित से वह निश्चित और तटस्थ चिंतन कर सकेगा, खगोलशास्त्र से उसे इस विश्व की व्यापकता और उसमें अपनी सही स्थिति का ज्ञान होगा जो मनुष्य के अहकार निरसन में मदद करेगा और भूगोल से उस उस दुनिया का ज्ञान होगा जिसमें वह रहता है। जीवन के प्रत्यक्ष काम के साथ शिक्षा को जोड देने का विनोबा का आग्रह ससार के सभी शिक्षा शास्त्रियो के समान है। गाधी जी ने जब 'बुनियादी शिक्षा' का विचार देश के सामने रखा तो विनोबा उसके सबसे पहले समर्थक और भाष्यकार बने।

अभी हाल ही में सवाग्राम में गतवर्ष हुये राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन को विनोबा ने जो प्रवचन किया था वह शिक्षाशास्त्र के भारतीय इतिहास में महत्व का है। उसमें पहली बार शिक्षा के एक ऐसे दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ है जो मनुष्य को विश्व और 'विश्व-नियता' से तादात्म्य तो करायेगा ही साथ ही जो विज्ञान की नवीनतम आवश्यकताओ की भी पूर्ति करेगा। उसमें विनोबा ने कहा कि 'शिक्षा के तीन उद्देश्य होने चाहिए — योग उद्योग और सहयोग।' विनोबा के ही शब्दो में 'योग का अर्थ आसन लगाना व्यायाम करना, यह नही है। योग यानी चित्त कैसे अकुश में रखना, इन्द्रियो पर कैसे सत्ता रखना मन पर कैसे काबू पाना जुबान पर कैसे अपनी सत्ता पाना यह योग का सच्चा अर्थ है। इन दिनो चित्त पर सत्ता रखना चित्त अकुश में रखना स्थिर रखना जिसको गीता में स्थितप्रज्ञता कहा गया है ऐसी स्थित प्रज्ञता की बहुत आवश्यकता है क्योकि आज रोजमर्रा की सैकडो घटनायें कान पर पडती हैं आँख पर पडती हैं। चारो ओर से विचारों का आक्रमण होता है। जितना आक्रमण मनुष्य के दिमाग पर आज होता है उतना पहले कभी नही होता था क्योकि साइन्स का जमाना आया है। ऐसी हालतमें चित्त को शात रखना स्थिर रखना काबू में रखना अत्यन्त महत्व का विषय है। तो स्थितप्रज्ञता की आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नही थी। अत प्रज्ञा स्थिर करना योग का मुख्य विषय है।' यह बात सभी जानते हैं कि पश्चिम में जब से अतरिक्ष की उडाने आरम्भ हुई है तब से वहाँ भी लोगो का ध्यान भारतीय योगदर्शन की ओर गया है यद्यपि वहाँ वह अभी 'प्राचुर्य से पीडित भ्रमित मनुष्य के लिये फिलहाल एक प्रकारका शरणालय का ही काम कर रहा है और उसके उस पहलू पर लोगो का ध्यान अभी नही है जिसका जिक्र विनोबा कर रहे हैं। किन्तु मनुष्य स्थिर मति हो यह तो विज्ञान की आरम्भ से ही माग रही है।

शिक्षा में उद्योग हो यह तो आज सवमान्य बात हो गई है। किन्तु अभी उसका अर्थ इतना ही लगाया जा रहा है कि स्कूलो में छात्रो को कुछ धध का प्रशिक्षण

दे दिया जाय ताकि वे बेरोजगारी से बच सकें और शासकों के सिर का दर्द न बनें। शिक्षा में कुछ काम जोड़ने के पीछे अभी सिवाय इसके और कोई हेतु नहीं है। किन्तु विनोबा ने उद्योग का जो अर्थ किया है वह नितान्त भिन्न है। वे उसका अर्थ 'विश्व और प्रकृति के साथ तादात्मय करना' करते हैं। उन्होंने इस सन्दर्भ में एक बार पंडित नेहरू जी के द्वारा कही गई बात का उदाहरण देते हुए कहा कि "जो समाज प्रकृति के साथ सम्पर्क तोड़ देता है उसका क्षय हो जाता है।" समाजशास्त्र के अध्येता जानते हैं कि समाज-इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रकृति से जो समाज जितना दूर होता गया वह उतनी जल्दी नष्ट हो गया। शहरी सभ्यता का यह सबसे बड़ा दुर्गुण है कि वह मनुष्य को प्रकृति से दूर कर देती है इसलिए ही समाजशास्त्रियों ने शहरों को 'सभ्यताओं की कब्र' कहा है। तो विनोबा कहते हैं कि शिक्षा के माध्यम से हमारा प्रकृति के साथ गहरा और साकारात्मक सम्बन्ध होना चाहिये और इसके लिये कृषि सबसे उत्तम माध्यम है। हर विद्यालय के पास कुछ न कुछ खेत होना चाहिए और हर छात्र और शिक्षक ही नहीं हर नागरिक को भी रोज कुछ न कुछ समय तक, चाहे वह कितने ही और बड़े कहे जाने वाले काम में क्यों न लगा हो, खेत में काम करना चाहिये। यहाँ तक कि देश की प्रधान मंत्री तक को भी रोज दो घंटा खेती करनी चाहिये। शिक्षा में उद्योग जोड़ने का यह भी अर्थ है, और यही अर्थ असल है, कि हम 'ग्रामीण कृषि-सभ्यता' का संरक्षण और पोषण करें और शहरीकरण से बचें यदि अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना चाहते हैं। क्या शिक्षा में उद्योग दाखिल करने वाले किसी शिक्षाशास्त्री को पहले से यह अर्थ मालूम था या किसी ने क्या शिक्षा में उद्योग को कभी इस अर्थ में लिया। भारत सरकार भी आज कल शिक्षा में उद्योग दाखिल करने पर बहुत जोर दे रही है और पाण्डित्य के भारी पोथे 'कोठारी कमीशन की रिपोर्ट' को तो उसके शिक्षा में कार्यानुभव के सुझाव पर भारी धन्यवाद दिया जा रहा है, किन्तु क्या इस कमीशन के किसी भी सदस्य को सचमुच शिक्षा में उद्योग दाखिल करने का तात्विक अर्थ मालूम है? क्या कमीशन यह जानकर कि इसके फलितार्थ यह भी हो सकते हैं कि इससे हमारी यह शहरी सभ्यता ही आमूल बदल सकती है अपनी सिफारिश कर रहा है। इसलिए शिक्षा में उद्योग दाखिल करने का साफ अर्थ है कि फिर देश की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक रचना में आमूल परिवर्तन करना। यह नहीं हो सकता कि हमारा देश का आर्थिक और राजनीतिक ढाँचा तो केन्द्रित व्यवस्था का रहे और देश की अर्थ व्यवस्था भारी उद्योग, जो हमेशा केन्द्रवाद को ही पनपाते हैं, पर आधारित रहे और तब हम छात्रों को कहें कि वे विद्यालयों में ऐसे उद्योग सीखें जिनके लिए फिर भारी और केन्द्रित संगठित उद्योगों के मुकाबिले कोई भविष्य नहीं है। यदि छात्र और अभिभावक इस दुरभिसंधि को समझ जायेंगे तो क्या शिक्षा में उद्योग की यह नीति चलने वाली है। अतः विनोबा ने जो कहा उसके सिवा इसका और कुछ अर्थ हो ही नहीं सकता है कि शिक्षा के अनुकूल

हो फिर हमें हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रचना भी करनी होगी नही तो आग चलकर फिर लेने के देने पड सकते है।

शिक्षा में 'सहयोग' का क्या अर्थ है। इसका अर्थ है कि हमारी वृत्ति और वृत्ति-निर्माण की पद्धति तथा साधन ऐसे हो कि हमें यह अनुभूति होती रहे कि दूसरे के बिना हमारा काम नही चल सकता है अत हमें दूसरे के साथ ही जाना है। शिक्षा में सहयोग दाखिल करने का अर्थ है 'मैं' के बजाय 'हम पन' का प्रोत्साहन देना। इसका मतलब तो यह हुआ कि तब हमारी सगठन प्रणाली बदलनी होगी क्योकि आज की प्रणाली तो 'होड' और 'निजी लाभ' पर आधारित हैं। साम्यवाद भी इसमें कोई फर्क नही कर पाया। इसलिए इसके लिए विद्यालय को पहले स्वय तब ऐसी 'सामुदायिक इकाई' बनना होगा जहाँ रहकर छात्र और शिक्षक सामुदायिक जीवन का प्रशिक्षण ले सके। मिलकर कैसे रहना यही तो हमारी आज की समस्या है और शिक्षा दुर्भाग्य से इसे हल करने के बजाय और उलझा रही है। इसका विनोबा ने एक और अर्थ भी किया है कि हमें न केवल मानव समाज के साथ रहना है अपितु मानवेतर प्राणियो के साथ भी रहना है यह अनुभूति होना चाहिए। आज के इकालाजिस्ट भी यही कह रहे है। तो इसका अर्थ यह है कि हमारे वे सारे व्यवहार और सगठन बदल जाने चाहिए जो मनुष्य मनुष्य से मिलने में बाधक है। विनोबा ने कहा ही है कि "सहयोग में मानना होगा कि सारी पृथ्वी एक है। पृथ्वी के सारे मानव एक हैं और केवल मानव ही नही आसपास के पशु, पक्षी प्राणी वनस्पति सब एक हैं। क्रौंच का वध देखा तो कविता स्फुरित हुई। तो आसपास की सृष्टि के साथ भी एक होना चाहिए। ये चिडियाँ हैं सुन्दर गाती हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिये। ये कौवे हैं, इनकी रक्षा होनी चाहिये। ये गायें है उनकी भी रक्षा होनी चाहिये वटवृक्ष की भी रक्षा होनी चाहिये। तुलसी की भी पूजा होनी चाहिये। यह भारत का पागलपन है। यह भारतीय पागलपन अत्यन्त महत्व का है कि कुल के कुल मानव हम एक हैं और इसके अलावा आसपास के जो प्राणी हैं वनस्पति हैं हम सब एक ही हैं सब हम ही हैं, यह एक रूपता हमको आसपास की सृष्टि के साथ होनी चाहिए। यह आज के जमाने की माँग है क्योकि विज्ञान सबको नजदीक नजदीक लाया है इसलिए सबका सहयोग, प्राणियो का, मानवो का, अपेक्षित है।"

यह शिक्षा का सम्पूर्ण दर्शन है जो विनोबा से हमें प्राप्त हुआ है। 'कर्मयोगी' के रूप में भी विनोबा का सौन्दर्य भव्य है। हड्डियों का एक ढाँचा मात्र है और भारत के कोने कोने में सालो तक पैदल घूम रहा है। 'यह कौन आया है', बच्चे, बूढे, स्त्री, पुरुष सब पूछते हैं तो जवाब मिलता है 'यह विनोबा है', और 'गरीब के लिये उसके हक के तौर पर जमीन मागता है।' इस तरह से विनोबा ने लाखो एकड भूमि प्राप्त की जो लाखो भूमिहीनो में बटी और उन्हे 'स्वत्व' प्राप्त हुआ।

गाधी जी ने एक बार विनोबा से पूछा— "इतना कमजोर स्वास्थ्य होने पर भी आप इतना काम कैसे कर लेते है' तो विनोबा का जवाब था कि 'अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर। विनोबा की जैसी इच्छाशक्ति क्या किसी को होगी ? घटो नही, दिना नही महीनो और साला तक एक काम में एकाग्रता साधन अद्भुत बात है किन्तु विनोबा का वह सहज गुण है। भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के माध्यम से विनोबा ने ससार के सामने एक नई सभावना प्रकट की है कि क्रान्ति के लिये इतिहास की कोई निश्चित लकीर नही है तो जसे मार्क्स का ख्याल था अपितु वह इस पर निभर करती है कि हम मानव के कितने निकट पहुँच सकते है। जैसे पहले कहा गया कि आज ग्राम स्वराज्य के रूपमें गाधी ससार के सामने चुनौती बनकर खडा है तो इसका श्रेय विनोबा को है।

क्या विनोबा को हमने सही समझा है ? क्या उसे हम कभी समझ सकेंगे ? यह दु ख की बात है कि विनोबा के निकट रहने और उनके साथ काम करनेवाले भी यह नही कर सके। सर्व सेवा सघ तो इसमें एकदम ही असफल रहा है यद्यपि वह हमेशा विनोबा का आश्रय खोजता है। किन्तु सर्व सेवा सघ ही क्या यह देश भी गाधीजी की तरह विनोबा के व्यक्तित्व से ससार में सम्मान तो पाना चाहता है, परन्तु उसके मार्गपर चलने की उसकी कम से कम अभी तो कोई मन्शा नही दिखती है। हाँ पश्चिम में आज गाधी विनोबा को कही अधिक समझा जा रहा है। यह शायद इस देश के माथ पर ही लिखा है कि जब तक पश्चिम से होकर कोई बात हमारे यहाँ नही पहुँचती तब तक हम उस पर ध्यान नही देते। किन्तु इससे विनोबा का नही इस देश का ही नुकसान होगा यह निश्चित है।

नयी तालीम के प्रयोग

इस अक में हम दो नये स्तभ आरम्भ कर रहे हैं। एक नयी तालीम के प्रयोग और दो शिक्षा में विश्व चिंतन।

बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम देश को गांधी जो की सर्वोत्तम देन है, यह गाधी जो ने ही स्वय कहा है। देश ने राष्ट्रपिता की इस देन का कितना सदुपयोग किया यह तो अब इतने वर्षों में स्पष्ट हो गया है, किन्तु फिर भी देश भर में कुछ लोग और क्षेत्र ऐसे अवश्य हैं जो उस दिशा में बावजूद सभी प्रकार की कठिनाइयों के कुछ प्रामाणिक चिंतन और प्रयास कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि नयी तालीम के माध्यम से हम अपने पाठकों को देश में चल रहे इस तरह के शैक्षणिक प्रयासों की बराबर जानकारी देते रहें। इससे यह तो स्पष्ट होगा ही कि हम राष्ट्रपिता के बुनियादी शिक्षा के विचारों को कितना समझ और अपना पाए हैं साथ ही यह भी स्पष्ट होगा कि अब भी देश में कुछ ऐसे क्षेत्र और लोग हैं जिन पर उस अधकार का कोई प्रभाव नहीं पड सका है, जो वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस देश में फलाने का प्रयास कर रही है। हमारा प्रयास होगा कि हम हर अक में अपने पाठकों को इस तरह के प्रयोगों की जानकारी देते रहें। हम इसका आरम्भ वर्धा के ग्रामीण महाविद्यालय और सेवाग्राम में होने वाले नये प्रयोग से कर रहे हैं।

दूसरा स्तभ हम आज ससार में चल रहे शक्षिक चिंतन की ओर नयी तालीम के पाठकों का ध्यान दिलाने की दृष्टि से आरम्भ कर रहे हैं। इससे भी यह स्पष्ट होगा कि राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी ने ठेठ १९०८ में ही अपने 'हिन्द स्वराज्य' में शिक्षा और समाज की जो कल्पना की है आज का विश्व चिंतन भी तेजी से उसी ओर बढ रहा है। यह अलग बात है कि हमारे देश को अभी उसकी खबर नहीं है। इसका आरम्भ भी हम इसी अक से अमरीका के राष्ट्रपति श्री निक्सन के द्वारा नियुक्त 'विज्ञान सलाहकार समिति' में युवकों के पैनल के अध्यक्ष श्री जम्स कोलमन, जिन्होंने सन् १९६६ में अमरीकी अल्पसख्यकों पर अपनी रिपोर्ट से उस देश में एक भारी बौद्धिक आलोडन कर पैदा दिया था, तथा समिति में उनके अन्य नो शिक्षा शास्त्रियों की इस रिपोर्ट के साथ कर रहे हैं कि अमरीका में १४ से २४ साल के युवक-युवतियों के लिए अब 'पढ़ाई कम और काम अधिक' की शिक्षा योजना की आवश्यकता है। श्री कोलमन की उस रिपोर्ट का यह अश हम टाइम मैगजीन के अगस्त २७ के अक के आधार पर दे रहे हैं।

पाठकों और खासकर शिक्षकों, शिक्षा शास्त्रियो और छात्रों से हमारा अनुरोध है कि वे इन दोनों स्तभो के लिये इस तरह की सामग्री और लेख हमें भेजने की कृपा करें। —सम्पादक।

दे. ज. हातेकर

वर्धा ग्रामीण महाविद्यालय में बुनियादी शिक्षा की योजना

"जनतत्र में व्यक्तिमात्र की प्रतिष्ठा एव मानवो मनुष्यो के प्रति आदर अतर्भूत होने की वजह से जनतान्त्रिक राष्ट्रों में शिक्षा का स्वरूप व्यापक एव राष्ट्रोपयोगी होना अनिवाय हो जाता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के सुप्त गुण विशेषों के प्रगटाकरण के साथ-साथ राष्ट्र का सामाजिक एव आर्थिक विकास कराना आवश्यक ह। दूसरे शब्दों में राष्ट्र के विकास काय में हिस्सा लेकर व्यक्ति के गुण विशेषो का विकास कराना शिक्षा का प्रमुख कार्य बन गया है।"

—डॉ राधाकृष्णन्

आयोग अहवाल

पचीस वप पूव जब कि भारत में सावभौम प्रजासत्ताक गणराज्य की स्थापना हुयी डा राधाकृष्णन आयोग ने इस ओर सकेत कराते हुए कहा कि भारत की शिक्षा भारतीय परिस्थितियों को घ्यान में रखकर होनी चाहिय, यानें ग्रामीण भारत के आर्थिक विकास के साथ शिक्षा प्रणाली जोडने स भारत की आर्थिक एव सास्कृतिक उन्नति हो सकेगी। इसी उद्देश से भारत में ग्रामीण विद्यापीठ खोल्ने का सुझाव भी उस समय आया। परिणामत डा श्रीमाली समिति द्वारा ग्रामीण उच्च शिक्षा के हेतु ग्रामीण महाविद्यालयोंका निर्माण हुआ। इस तरह के चौदह ग्रामीण महाविद्यालय भिन्न भिन्न राज्यो में स्थापित हुय। वर्धा ग्रामीण महाविद्यालय १५ अगस्त १९६१ के स्वातत्र्य दिवसपर डा श्रीमाली के कर कमलो द्वारा उदघाटित हुआ।

उदघाटन भाषण करते हुए डॉ श्रीमाली न कहा था कि स्वतत्र भारत में ग्रामीण उच्च शिक्षा का सर्वोत्तम प्रयोग राष्ट्रीय आकाक्षाओ की पूर्ति कराने हेतु हम करन जा रहे हैं। इसी दृष्टिस इस महाविद्यालय का पाठ्यक्रम केंद्रीय कृषि सहकार मत्रालय एव सामुदायिक विकास योजना विभाग द्वारा बनाया गया। इस महाविद्यालयकी अध्यापन पद्धति भी अन्य महाविद्यालयो की पद्धति स भिन्न रही है। अध्यापन विस्तार सेवा और क्रियाशील सशोधन (Teaching, Extension and Research) तीनो को मिलाकर समवाय पद्धति द्वारा शिक्षा दी जा सकती है। हम आशा करते हैं कि इस तरह के ग्रामीण महाविद्यालय आग चलकर ग्रामीण विद्यापीठ का रूप ल सकग।

ग्रामीण जीवन के आर्थिक विकास के लिये प्रारम्भिक अवस्था में तीन भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम चलाये गये। (१) दो वर्ष का कृषिशास्त्र पाठ्यक्रम, (२) तीन वर्ष का ग्रामीण अभियांत्रिकी पाठ्यक्रम और (३) चार वर्ष का ग्रामीण सेवा पाठ्यक्रम।

दो वर्ष का कृषिशास्त्र पाठ्यक्रम

इस पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश यह है कि भिन्न भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा कृषिशास्त्र की सैद्धान्तिक जानकारी एवं व्यावसायिक कुशलता प्राप्त करा देना जिससे कि आगे चलकर वह अपना निजी खेतीका व्यवसाय सुचारू रूपसे चला सके। कृषिशास्त्र के साथ साथ मवेशी पालन और संवर्धन, कुटीर उद्योग, बागवानी ग्रामीण आरोग्य, कृषि अर्थशास्त्र आदि विषयोंका अध्ययन व्यावसायिक तरीकोंसे कराने के लिये इस विभाग के पास १५० एकड उपजाऊ भूमि, ८० मवेशियों की गाशाला, सागसब्जी की खेती, सतरे अमरूद का बाग तथा कीट-शास्त्र एवं कृषि रसायन शास्त्र की प्रयोग शालायें उपलब्ध हैं। कृषि विभाग के विद्यार्थियों को प्रयोग के लिये उपजाऊ भूमि के पर्याप्त टुकडे दिये जाते है। विद्यार्थी प्रात्यक्षिका (Practicals) के द्वारा जो ज्ञान हासिल करते हैं, उसकी सैद्धान्तिक चर्चा कक्षाओं में प्राध्यापकों की अध्यक्षता में की जाती है। इस तरह जो नया ज्ञान विद्यार्थियों ने प्राप्त किया उसकी जानकारी आस पास के गाँवों के किसानों तक ले जाने के लिये विस्तार सेवा का आयोजन किया जाता है। पास-पडोस के किसानोंका 'कृषक मित्र मंडल' स्थापित करके कृषि उत्पादन के आधुनिक तौर तरीकोंका चर्चासत्र चलाना इस विभाग के विस्तार सेवा का कार्य होता है। सुधारे कृषि औजार बीज के नमूने, कीट नाशक दवाइयों के फुवारे देने का नयी पद्धतियाँ, खेतो की सिंचाई कराने की गतिविधि आदि, भिन्न विषयों के बारे में नये संसाधन किसानों तक पहुँचाने का कार्य विस्तार सेवा द्वारा किया जाता है।

इस पाठ्यक्रम के लिये अंग्रेजी सहित विज्ञान तथा गणित लेकर मॅट्रिक उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी या अंग्रेजी सहित उत्तर बुनियादी परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी प्रवेश-पात्र माने जाते हैं। इस पाठ्यक्रम को पंजाबराव कृषि विद्यापीठ से संलग्न कराने के बारे में विचार विनिमय जारी है। सम्भवतः यह पाठ्यक्रम निकट भविष्य में कृषिशास्त्र का तांत्रिक विद्यालय (Agricultural Polytechnic) का रूप लेगा ऐसी आशा है।

त्रिवर्षीय ग्रामीण अभियांत्रिकी पाठ्यक्रम

इस पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश यह है कि ग्रामीण युवकों को ग्रामीण स्थापत्य शास्त्र, जिसमें ग्रामीण गृह रचना आरोग्य, जल सिंचन योजना आदि आ जाते हैं, विद्युत अभियांत्रिकी, जिसमें विद्युत उपकरणोंकी तथा मोटर पंप आदि की दुरुस्ती आ जाती है, और कृषि अभियांत्रिकी, जिसमें औजार दुरुस्ती आदि विषय हैं,

आदि विषयो की प्रात्यक्षिक (Practical) जानकारी देकर ग्रामीण विभागो की तात्रिक आवश्यकताओं को शिक्षाके माफत पूरी हो सके। यह पाठ्यक्रम पहले तीन साल का था। किंतु पिछले वर्ष से विद्यार्थियो को नियमित समय के पश्चात कल कारखानो में प्रात्यक्षिक काय के लिये जाना अनिवाय किये जाने से यह पाठ्यक्रम अब चार वर्ष का हो गया है। इस पाठ्यक्रम में अंग्रेजी गणित और विज्ञान लेकर मट्रिक परीक्षा पास हुये विद्यार्थियो को प्रवेश दिया जाता है। यात्रिक कमशाला में बढईगीरी लुहारी जुडाई (Welding) ढलाई काम (Moulding) आदि कार्यों का भी प्रात्यक्षिक (Practical) पहले वर्ष में हर रोज दो घंटे करना आवश्यक माना है। इसके अलावा पास पडोसके देहातोंमे अपने पाठ क्रमो के विषयो से सबधित विस्तार सेवा काय करना भी अनिवार्य है। इस तरह प्रात्यक्षिक कार्यों द्वारा सभी उपयुक्त तात्रिक विषयो की जानकारी पूरे चार वर्षों मे विद्यार्थी हासिल करते है। यह पाठ्यक्रम महाराष्ट्र शासन के तात्रिक बोर्ड से सलग्न है और उत्तीर्ण विद्यार्थी शासनमान्य प्रमाणपत्र प्राप्त कर सकते है।

त्रिवर्षीय ग्रामीण सेवा पाठ्यक्रम

इस पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण युवक युवतियोका ग्रामीण क्षेत्र का आर्थिक एव सामाजिक विकास करने की दृष्टिसे ग्रामीण युवकोको नेतृत्व के लिये तैयार करना है। इस उद्देश्यसे यह पाठ्यक्रम सिर्फ पदवी-पाठ्यक्रमो की बराबरी का ही नही रखा। इसके अलावा हरएक युवकको अपनी पसन्द के एक विशेष अभ्यास-ग्रूप का गहन अध्ययन करना आवश्यक है। सहकारिता पचायती राज्य सामाजिक सेवायें ग्रामीण गृहशास्त्र ग्रामीण उद्योग सामाजिक शिक्षा इत्यादि अभ्यास ग्रूपमें से किसी एक का गहन अध्ययन और उस ग्रूप का विस्तारसेवा काय करना आवश्यक रखा गया है। सपूर्ण पाठ्यक्रम का सम्बन्ध सामुदायिक विकास योजना के साथ इस तरह जोडा है कि आसपास के देहातोंमे चल रहे ग्राम विकास कार्यों में युवक कुछ प्रत्यक्ष हिस्सा ले सके। सामुदायिक विकास योजना के दो प्रश्नपत्र हर एक विद्यार्थी के लिये अनिवाय है। पहले प्रश्नपत्र में ग्रामीण पुनरुज्जीवन के प्रयास विकास काय की योजना विस्तार सेवा के साधन दृश्य श्रव्य सेवाओं का परिचय सफल विस्तार सेवा अधिकारी के गुणविशेष आदि अध्ययन की व्यवस्था की गई है। दूसरे प्रश्नपत्र में लिखित परीक्षा नही होती। प्रत्यक्ष देहातोंमें तीन साल तक भिन्न भिन्न विषयो की जितनी भी विस्तार सेवा की होगी उसका विवरण वार लेखा जोखा तैयार करना पडता है। विद्यार्थी ने तीन साल मे क्या किया उसके इस सत्रीय रिकार्ड को (Sessional rocord) अतिम पदवी-परीक्षक के पास भेजना आवश्यक माना है। इसके अलावा इस विद्यार्थी का अपने विशेष अध्ययन के ग्रूप के किसी भाग पर अध्यापकों के मार्गदर्शन में (Project Report) प्रबन्ध लिखना आवश्यक है। इस प्रबध को भी अतिम

पदवी परीक्षा में शामिल किया जाता है। विद्यार्थियो ने वास्तविक कितनी सेवा की है उसकी जाँच पडताल के लिय इस दूसरे प्रश्नपत्र के अंको का वर्गीकरण इस प्रकार सत्रीय रिकार्ड रखा है। (Sessional Record) के लिय ५० अंक (Project Report) प्रबध के लिय २५ अक और मुखाग्र जाँच पडताल के लिय २५ अंक, इस तरह प्रात्यक्षिक (Practical) काय की भी परीक्षा ली जाती है।

इस पाठ्यक्रम में अंग्रजी मराठी या हिन्दी कथा साहित्य सामुदायिक विकास काय इनन विषय अनिवाय होत है। एच्छिक विषयोंमें म सहकारिता के ग्रूप में अथशास्त्र के तीन प्रश्न पत्र और सहकारिता क तीन प्रश्न पत्र होत है। पचायती राज्य ग्रूप में राज्यशास्त्र के तीन और समाज शास्त्र या इतिहास या अथशास्त्र के तीन प्रश्न पत्र होते है। उसी प्रकार प्रत्यक ग्रूप के छह प्रश्न पत्र हात है। इस पाठ्यक्रम की विशेषता यह है कि विद्यार्थियोंकी परीक्षा साल भर चलती रहती है। उसकी दैनदिन अभ्यास की प्रगति पर २० प्रतिशत अंक और अतिम परीक्षामें ८० प्रतिशत अंक रख गय है। अतगत मूल्यमापन (Internal Assesment) म विद्यार्थियो की नियमितता कक्षा परीक्षामें प्रगति उसका सब सामान्य बर्ताव सामाजिक कार्यों के प्रति उसकी रुचि आदि बातो का ध्यान रखकर २० प्रतिशत अंक प्रत्यक विषय के अंतिम अंकों में जोड दिय जाते हैं।

यह पाठ्यक्रम १९७० स नागपुर विद्यापीठ से सबद्ध है और इस पाठ्यक्रम को नागपुर विद्यापीठ ने जैसा का तैसा स्वीकार कर इस महाविद्यालय की विशिष्टता कायम रखने में बड़ी सहायता की है।

इस पाठ्यक्रम में उच्च माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी या उत्तर बुनियादी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी प्रवेश पा सकते है। इन विद्यार्थियो का तीन साल की पढ़ाई सफलतापूवक समाप्त करन पर नागपुर विद्यापीठ की स्नातक (ग्रामीण सेवा) या B A (Rural Services) पदवी प्राप्त होती है। यदि विद्यार्थी एम एस सी उत्तीर्ण या बुनियादी परीक्षा उत्तीर्ण है तो उस पूव विद्यापीठ (Pre-university) कक्षा में प्रवेश दिया जाता है। इस तरह बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिय भी इस महाविद्यालय न उच्च शिक्षा के द्वार खोल दिये है।

यह महाविद्यालय वर्धा स तीन मील दूरी पर उत्तर की ओर पिपरी नाम के देहात में बसा हुआ है। देहाती जीवन के निकट सम्पर्क में आकर सामुदायिक विकास के विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा ग्रामीण युवक-युवतियों को पिछले बारह वर्षों से यह महाविद्यालय शिक्षा प्रदान करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग चला रहा है।

माधव गोडसे

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की ओर से दो अक्टूबर को शुरू होनेवाली बुनियादी-शिक्षा की रूपरेखा

"आज भी देहात में बच्चे किसी हद तक अपने माँ-बाप की मदद करते ही है। खेती किसानी की बातो में तो हमारे बच्चे मुझसे कहीं ज्यादा जानते है क्योंकि उन्हे अपने मा बाप के साथ खेतों में काम करना पडता है। लेकिन जहा बच्चों को इस बात का बढावा दिया जाएगा कि वे कातें और खेती के काम में अपने माँ बाप की मदद करें, वहाँ उन्हे महसूस करने का मौका भी दिया जायगा कि उनका सम्बन्ध सिर्फ उनके माँ-बाप से ही नहीं बल्कि अपने गाव और देश से भी है और उन्हे इसकी भी कुछ सेवा करनी है। उनकी शिक्षा के लिये उनसे खुद मेहनत कराकर वे उन्हें बहादुर और आत्मविश्वासी बना सकेंगे।"

(वर्धा शिक्षण परिषद– २२ अक्टूबर, १९३७–महात्मा गाधी जी के भाषण से।)

प्रशिक्षणार्थी–सख्या

२ अक्टूबर से शुरु होने वाली बुनियादी शिक्षा के लिये सेवाग्राम और पवनार आश्रम में १० तरुणों को प्रवेश मिलेगा। अन्य प्रान्तों से विशेष रचनात्मक संस्थाओं से भी १० तरुणो को प्रवेश दिया जायगा। इस प्रयोग में उत्साही तरुणों को ही प्रवेश मिलेगा। शुरू में कुल प्रवेशार्थी २० रहेंगे।

उम्र की मर्यादा

प्रवेशार्थियों की उम्र मर्यादा १५ से २५ वर्ष तक की रहेगी। विशेष कारण वश ३० साल के विद्यार्थी भी प्रवेश पा सकेंगे।

शैक्षणिक पात्रता

पाँचवी कक्षा से मैट्रिक्युलेशन तक के विद्यार्थी प्रशिक्षण पायेंगे। विशेष स्थिति में स्नातकों को भी प्रवेश दिया जायगा।

शिक्षा का माध्यम हिन्दी होगा ताकि सारे देश के नवयुवक इसका लाभ उठा सकें।

प्रशिक्षण अवधि

शिक्षण की अवधि ६ माह से २ साल तक की रहेगी।

योजना का उद्देश्य–स्वावलम्बन द्वारा शिक्षा

इस योजना का मुख्य लक्ष्य हमारे देश की परिस्थिति और ग्रामीण जीवन के अनुकूल स्वावलम्बी शिक्षण के माध्यम से युवकों को जीवन के उत्तरदायित्व के

लिये तैयार करना है ताकि प्रशिक्षण के बाद न तो वे बेकारी के शिकार बनें और न कहीं नौकरी के लिये उन्हें भटकना पड़े। अपेक्षा यह है कि इस तरह प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद वे अपने परिवार अथवा गांव में अपने ज्ञान का उपयोग करेंगे। इस प्रशिक्षण के बाद विद्यार्थियों को संस्था की ओर से एक प्रमाण पत्र दिया जायगा। किन्तु इस योजना के लिये सरकार से मान्यता प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है और न करने का इरादा है।

संक्षेप में योजना इस प्रकार है

प्रशिक्षणार्थियों के लिये नीचे लिखी प्रवृत्तियाँ चलेंगी —

(अ) खेती और बागवानी।
(आ) गोशाला, कम्पोस्ट खाद बनाना।
(इ) कमशाला (वर्कशॉप) खेती के पम्प आदि (औजार) सुधारना।
(ई) मकान निर्माण व दुरुस्ती का कार्य।
(उ) बेकरी-ब्रेड, बिस्किट बनाना तथा पाकशास्त्र की जानकारी।
(ऊ) वस्त्र विद्या, अम्बर चरखा, कताई व बुनाई।
उपरोक्त काम से सम्बन्धित बौद्धिक वर्ग —
(अ) विज्ञान, गणित (हिसाब) और राष्ट्रभाषा।
(आ) शरीर विज्ञान, योगासन, खेलकूद सफाई विज्ञान।

योजना का मुख्य उद्देश्य स्वावलम्बन होने से उपरोक्त कामों में प्रशिक्षणार्थी ४ से ५ घण्टे तक काम करेंगे और मासिक ५० रुपये भोजन खर्च अपने श्रम द्वारा प्राप्त करेंगे।

आय		व्यय
खेती में से मजदूरी	५०००—००	२० तरुणों के लिये ५० रु महा
गोशाला में से	१०००—००	वार के हिसाब से १० माह में
कमशाला में से	१०००—००	रु १००००—००
बेकरी से	१०००—००	
मकान मरम्मत से	१०००—००	
वस्त्र विद्या से	१०००—००	
	१०००० ००	

विद्यार्थियों से वसूली
व्यवस्था खर्च
प्रति विद्यार्थी ५ रु × २० × १० = १०००-००

विद्यार्थियों का हाथ खर्च प्रति
विद्यार्थी १० रु × २० × १०
= २०००-००

आय		व्यय
आश्रम से	१०००-००	
	कुल — १२०००-००	कुल — १२०००-००

नोट — विद्यार्थियो के पालको से ५ रुपये अनाज के रूप में भी जमा किये जा सकेंगे।

काम की योजना

२० प्रतिक्षणार्थियों की चार टोलिया बनाई जायेंगी। हर एक टोली में ५ युवक और विभागीय प्रमुख रहेंगे। प्रशिक्षणार्थियो की अभिरुचि के अनुसार और अन्न स्वावलम्बन का लक्ष्य ध्यान में रखते हुये, काम करने का अवसर मिलेगा।

हर एक काम का अनुभव मिले, इसलियें दो-दो माह में टोलियाँ बदलती रहेंगी। यदि कोई तरुण एक ही प्रवृत्ति में अधिक समय देना चाहता है तो उसे सुविधा दी जायगी।

समय का विभाजन निम्न प्रकार होगा

सुबह ५ से ७ तक प्रार्थना, सफाई, नास्ता।
सुबह ७ से ११ तक काम (उद्योग)।
सुबह ११ से २ तक स्नान, भोजन, विश्राम।
सुबह २ से ३-३० तक वर्ग (बौद्धिक)।
सुबह ३-३० से ५ तक वस्त्र उद्योग या अन्य उद्योग।
सुबह ५ से ६ तक खेल-कूद।
सुबह ६ से ८ तक प्रार्थना, भोजन।
रात्रि ८ से ९ तक स्वाध्याय-निद्रा।

प्रशिक्षणार्थियों के लिये समय-समय पर उचित व्यक्तियो के बौद्धिक वर्ग भी रखे जायेंगे। विशेषत — गाधी-विचार, ग्राम-स्वराज्य, ग्राम-निर्माण, विश्व-शान्ति, भारतीय इतिहास, सविधान, सर्व-धर्म-सम-भाव आदि विषयो की जानकारी दी जायगी।

— प्रशिक्षणार्थियों को रोजनिशी (डायरी) लिखना अनिवार्य होगा।
— उद्योगों की रूपरेखा अनुभव के अनुसार बदलती रहेगी।

खेती

प्रत्यक्ष नियोजन (प्लानिंग) और कार्यान्वियन करने की पद्धति, प्रबन्ध (एडमिनिस्ट्रेशन) और व्यवस्थापन (मैनेजमेंट) हाट व्यवस्था (मार्केटिंग) आदि की प्रत्यक्ष जानकारी।

प्रत्यक्ष काम

(१) मिट्टी परीक्षा, जमीन समतल बनाना बांध बांधना, जमीन तैयार करना, खाद देना, पौधों को लगाना पानी देना प्राकृतिक शत्रु और उनसे संरक्षण, फसलों की हिफाजत, अनाज सुरक्षित रखना आदि।

(२) सूखी खेती में उत्पादन क्षमता किस तरह बढ़ेगी। इसका प्रयोगात्मक अनुभव।

(३) सिंचन–खेती के प्रयोग।

एक साल में हर मौसम में निकलने वाली सब्जियां बीज खाद पानी, संरक्षण देखभाल।

(४) खेती संबंधी औजारों का निर्माण और उनमें सुधार तथा मरम्मत।

(५) फल और फूल के बारे में प्रत्यक्ष काम। ऋतु के अनुरूप वृक्षारोपण का कार्यक्रम।

गो-पालन और खाद बनाना

(१) गोशाला में एक टोली काम करेगी। दूध देने वाली गायों की परीक्षा गायों का रहने का स्थान गायों की खुराक— हरी घास अन्य खुराक जानवरों की देखभाल बछड़ों का वध्याकरण (कैस्ट्रेशन)

(२) दूध का विश्लेषण। (लेक्टोमीटर)।

(३) जानवरों के सामान्य रोगों की जानकारी तथा उनका इलाज।

(४) पशुओं का नस्ल-सुधार।

(५) गोबर का उपयोग गैसप्लांट में प्रत्यक्ष काम करना गैस का उपयोग।

(६) खाद प्रत्यक्ष कंपोस्ट वैज्ञानिक ढंग से बनाना (उष्णतामान आर्द्रता आदि)।

(१) यंत्रशाला (वर्कशाप) औजारों की जानकारी उपयोग चिपींग फायलिंग हैमरींग मार्किंग का प्रत्यक्ष अनुभव।

(२) मशीनों की जानकारी— टर्नींग मशीन ड्रीलिंग मशीन हैक्सो मशीन थोड़ा काम करने का अभ्यास।

(३) लोहारी काम (स्मिथी) गरम करना उष्णतामान देखना पीटना आकार बनाना आदि।

(४) वेल्डिंग-गैस वेल्डिंग इलेक्ट्रिक तथा उपयोग।

(५) दुरुस्ती पम्प फीटिंग बिजली मोटर की फिटिंग (रिवाइंडिंग करना) आदि सब पंप की दुरुस्ती। खेती के औजारों की दुरुस्ती और आवश्यक सुधार।

मकानों की साधारण दुरुस्ती

(१) बढई के औजारो की जानकारी और औजार चलाना (बसूला पटासी, गीरमीट, आरी)।

(२) विभिन्न प्रकारकी लकडियो की जानकारी, बरखड, डवरा आदि की दुरुस्ती।

(३) मकान की छवाई।

(४) हिसाब किताब रखना। (एकाउन्टिंग)।

बेकरी व पाकशास्त्र

भट्टी-तापमान इन्धन आदि की जानकारी।

ब्रेड – फ्रूट ब्रेड सादी ब्रेड, मिल्क ब्रेड, टोस्ट आदि।

बिस्किट – प्रमाण – पकाना।

गोरसपाक – प्रमाण – पाकशास्त्र का सामान्य ज्ञान।

प्रत्यक्ष काम कर जानकारी हासिल करना, उत्पादित माल का बटवारा हिसाब, स्वावलम्बन की दृष्टि।

अम्बर चरखा, वस्त्र-विद्या

तरुणो के लिये १० अम्बर चरखे उपलब्ध रहेंगे। पूनी की व्यवस्था विभाग प्रमुख करेंग। दोपहर में डेढ घटा अम्बर चरखे पर १० विद्यार्थी काम करेंगे और कते हुये सूत का कपडा बुनकर प्रशिक्षणार्थिया को कपडा देने का प्रयत्न होगा।

चरखो की दुरुस्ती— तेल देना— सरक्षण उत्पादन की व्यवस्था आदि की जानकारी। इन उद्योगा के अलावा — सामाजिक जीवन का परिचय हो इसका प्रयास किया जायगा।

सामाजिक सफाई, अतिथि सेवा, सामाजिक भाजनोत्तर काम, सहकारी दुकान, हिसाब किताब की जानकारी।

इस सेवाग्राम विद्यालय में प्रवेश के लिये आवेदन-पत्र ता २५ सितम्बर तक कार्यालय में पहुँच जाने चाहियें।

माधव गोडसे
अध्यापक, नयी तालीम
विद्यालय, सेवाग्राम
जिला–वर्धा
(महाराष्ट्र)

जेम्स कोलमन.

पढ़ाई कम : काम अधिक ।

राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति के लिए बने पैनल के अध्यक्ष श्री जेम्स कोलमन (James Coleman) ने यह प्रश्न उठाया है कि हर दशक के बाद स्कूली पढ़ाई की अवधि बढ़ती गई है किन्तु कोई भी विचारवान यह सवाल उठा सकता है कि क्या समाज के पास युवकों को प्रौढ़ता प्रदान करने का इसके अलावा और कोई मार्ग नहीं है। ४७ वर्षीय कोलमन जो कि अमरीकी अल्पसंख्यकों की पढ़ाई पर १९६६ में अपनी अत्यन्त विवादास्पद रिपोर्ट के लिये प्रसिद्ध हैं ने वर्षों तक अमरीकी युवकों से सम्बंधित अध्ययन किये हैं। अपनी एक ताजा रिपोर्ट में वे अपने अन्य नौ शिक्षाशास्त्री मित्रों के साथ १४ साल से २४ साल तक के अमरीकी युवकों के लिए पढ़ाई कम काम अधिक (Less school, More work) की सिफारिश करते हैं।

कोलमन कहते हैं कि स्कूलों के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उनका दृष्टि बिन्दु (Focus) अत्यन्त ही संकुचित है। वे युवकों में अधिक से अधिक कुछ मौलिक कुशलतायें उनकी परम्परा का कुछ ज्ञान और सीखने की कुछ रुचि पैदा कर सकते हैं किन्तु अब वे युवकों की किसी क्रिया से अत्यन्त एकाग्रता से संलग्न होने या अपने मामलों की स्वयं व्यवस्था करने की क्षमता जैसी प्रौढ़ आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते हैं। न वे अब दूसरों के साथ और दूसरों के लिए जिम्मेदारी कैसे उठाना यह सीखने के ही स्थान रह गये हैं।

कोलमन पैनल कहता है कि स्कूल न केवल इस प्रकार की क्षमताओं का विकास करने में असफल रहे हैं अपितु उन्होंने युवकों के अधिकांश समय पर एकाधिकार कायम करके उन्हें कहीं अन्यत्र भी कुछ हुनर सीखने से वंचित कर कर दिया है। लगभग ५० साल पहले तक एक बालक स्कूल से बाहर ही, और

खासकर अपने परिवार में ही प्रौढ़ बनने की कला सीख जाता था, किन्तु अब परिवार भी यह काम नहीं कर पा रहे हैं। "अब तो स्कूलों ने उसके बदले कुछ किये बिना ही दूसरे कामों के लिये लगने वाले समय को भी हड़प लिया है।" उम्र के कारण से अलग हुये आज के युवक 'अनुभव शून्य सूचनाओं' से भर दिये जाते हैं।

पैनल का कहना है कि यद्यपि स्कूलों में कुछ परिवर्तन, जैसे कि कुछ विशिष्टीकृत स्कूलों की व्यवस्था कर उनमें छात्रों का शिक्षकों के रूप में उपयोग करके उनके दायरे का विस्तृत किया जा सकता है, किन्तु इसका सर्वोत्तम उपाय तो *यही है कि स्कूली पढ़ाई का समय कम करके छात्रों को काम के साथ अध्ययन करने* के अवसर प्रदान किये जायें। विभिन्न उम्र और भूमिका वाले प्रौढ़ों के साथ गम्भीर और उत्तरदायित्व पूर्ण काम में भागीदारी से छात्रों में प्रौढ़ क्षमताओं के प्रोत्साहन के साथ साथ स्कूलों की उदासीनता और संकुचन भी कम होगा।

पैनल की सबसे अधिक विचारोत्तजक सिफारिस तो यह है कि छात्रों को स्कूलों से शीघ्र ही बाहर करके दूसरे संगठनों में रख देना चाहिये। पैनल ने अस्पतालों, संगीत शालाओं, विभागीय भंडारों और कारखानों से आग्रह किया है कि वे इन योजना के अन्तर्गत १६ साल से युवकों को उनकी औपचारिक शिक्षा पर कोई ध्यान दिये बिना ही जो कुछ वे कर सकें उनसे वह काम कराते हुए उन्हें आगे का हुनर सिखाने का काम करें। इसका अर्थ यह है कि अब अमरीका को 'लौकिक-मोक्ष के रूप में शिक्षा' के अपने दृष्टिकोण को आमूल बदलना होगा। इसका अर्थ 'नौ सिखुए प्रशिक्षण' (Apprenticeship) की पुरानी परिपाटी की ओर लौटना भी हो सकता है।

स्वयं कोलमन तो पैनल से भी आगे बढ़कर सभी उम्र वालों के कार्यकारी समुदायों (Working Communities) के विकास का प्रस्ताव करते हैं। एक हजार लोगों के एक ऐसे समुदाय में चार या उससे कम उम्र के ९० बच्चे, पाँच से लेकर तेरह साल की उम्र तक के १८० बालक और ६५ साल से अधिक के १०० वृद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार की ये काल्पनिक इकाइयाँ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के साथ साथ बालक और वृद्ध की सेवा और सुरक्षा के "मानवीय स्तर" तक भी आ सकती हैं। कोलमन इस सन्दर्भ में न्यूयार्क अ.स्टेट में 'सोसायटी आफ ब्रादर्स' नामक एक आवासीय समुदाय का उदाहरण देते हैं जो खिलौनों का व्यापारिक उत्पादन करता है। किन्तु कोलमन का यह समुदाय इसके विपरीत केवल सामान्य कार्यकारी दिन में ही काम करेगा।

[टाइम पत्रिका, २७ अगस्त १९७३, पृ. ४० से साभार]

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति पर 'आचार्यकुल' का अभिमत

(केन्द्रीय सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति को लेकर देश में एक विवाद उठ खड़ा हुआ है। हमारी लोकतान्त्रिक पद्धति और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की दृष्टि से इस विषय का अत्यन्त महत्व है। केन्द्रीय आचार्यकुल समिति ने २० मई, ७३ को पवनार (वर्धा) में विनोबा जी के सानिध्य में इस प्रश्न पर विचार किया और चर्चा के बाद एक ड्राफ्टिंग कमेटी, इस विषय पर विस्तृत नोट तैयार करने के लिए, नियुक्त की। जिसने १५ जून को वाराणसी की अपनी बैठक में इस ड्राफ्ट को अंतिम रूप दिया और केन्द्रीय आचार्यकुल समिति ने पुनः १५ जुलाई को अपनी वाराणसी बैठक में इसे स्वीकृत किया।

अब यह ड्राफ्ट उपर्युक्त विषय पर आचार्यकुल के अभिमत के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

— सम्पादक)

१ सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की हाल की नियुक्ति और तीन वरिष्ठ न्यायमूर्तियों की वरीयताक्रम के उल्लंघन से देश में एक अभूतपूर्व विवाद उठ खड़ा हुआ है। इस घटना से विवाद में भाग लेनेवाले कुछ लोगों के मन में लोकतन्त्र के भविष्य और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के विषय में जो गम्भीर आशंका उत्पन्न हो गई है, वह उचित ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जिन मुद्दों का सम्बन्ध इस विवाद से है, भारत

के लोकजीवन के स्वस्थ विकास के लिए उनका अत्यधिक महत्व है। चूंकि आचायकुल शिक्षको और विचारको का एक अराजनैतिक सगठन है और चूकि पहले भी उसने राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नो पर अपने विचार व्यक्त किये हैं अत वह महसूस करता है कि इस विवाद पर भी उसे अपना निष्पक्ष और स्वतन्त्र मत व्यक्त करना चाहिए।

२ ध्यान रहे कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति ने सविधान की धारा १२४ (२) के अन्तगत की है जो निम्नाकित है —

"सर्वोच्च न्यायालयके प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से राय लेने के बाद, जिन्हें राष्ट्रपति इस काम के लिये उचित समझें, अपने हस्ताक्षर और मुहर-युक्त आदेश द्वारा नियुक्त करेंगे और जो पैंसठ वर्ष की आयु तक इस पद पर काम करेंगे।

लेकिन मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति को छोड कर अन्य दूसरे न्यायाधीशो की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश की हमेशा राय ली जायेगी।"

इस प्रकार इस नियुक्ति में सविधान के प्राविधान का पालन हुआ है।

३ इस सम्बन्ध में विधि आयोग की १४ वी रिपोट की निम्नाकित सस्तुति की ओर ध्यान आकर्षित करना भी अप्रासगिक नही होगा —

"मुख्य न्यायाधीश के कर्तव्यो के पालन के लिए केवल योग्य और अनुभवी न्यायाधीश की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि एक सुयोग्य प्रशासक की आवश्यकता है जो समय समय पर उठने वाली जटिल समस्याओं का समाधान कर सके— ऐसे न्यायाधीश की जो मनुष्यों और व्यक्तियों का कुशल जानकार हो और इस सबसे बढकर सुदृढ-स्वतत्र विचारों वाला, एक ऐसा उच्च व्यक्तित्व हो जो आवश्यकता पडने पर स्वतत्र न्यायपालिका का सजग प्रहरी बन सके।

इसलिए यह आवश्यक है कि एक स्वस्थ परम्परा आरम्भ की जाय कि मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति विशेष कारणों पर निर्भर करे और उस पर सबसे वरिष्ठ प्यूसन जज की ही नियुक्ति स्वाभाविक ढग से न हो। अगर ऐसी परपरा कायम की जाती है तो प्यूसन जज का वरीयता-क्रम से मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त न होना उस न्यायमूर्ति की योग्यता पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं माना जायगा।"

४ आचार्यकुल की राय है कि वर्तमान वाद विवाद में जो सबसे महत्व का प्रश्न है, वह है भारतीय सविधान के दो प्रमुख विभागो, मूलभूत अधिकारो और निदेशक सिद्धान्तो वाले विभागो का सामजस्य। पालियामेन्ट और न्यायपालिका का सघर्ष, जो उस दिन से स्पष्ट परिलक्षित हुआ जिस दिन सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ के मामले में अपना फैसला दिया, इसी प्रश्न से सम्बन्धित है कि जब मूलभूत अधिकारो और निदेशक सिद्धान्तो में सामजस्य न हो तो किसे प्रधानता दी जाय। क्या मूलभूत अधिकारो को समाप्त किया जाय, अथवा क्या निदेशक सिद्धान्तो की उपेक्षा की जाय? इस वर्तमान विवाद का प्रमुख मुद्दा यही है।

५ आचार्यकुल इस सम्बन्ध में श्री जयप्रकाश नारायण के प्रेस में दिये गये निम्नांकित वक्तव्य से पूर्णत सहमत है — (१५-५-७३)

"दुर्भाग्य की बात है कि सविधान ने सपत्ति के अधिकार को वाणी, अभिव्यक्ति तथा सघ बनाने और गमनागमन की स्वतत्रता के मूल अधिकारो के साथ मिला दिया है। न्यायपालिका और ससद में अब तक हुआ तथाकथित सघर्ष हर मामले में सपत्ति के अधिकार से सबधित रहा है। सपत्ति एक सामाजिक सस्था है और लोकतत्र में उसे लोक की आकाक्षा द्वारा निर्धारित सकल्पना के अनुसार सामाजिक कल्याण का काम करना चाहिए और उसे लोकतात्रिक ढग से अर्जित करना चाहिए। अत कुछ प्रकार की सपत्ति का निजी स्वामित्व सीमित, नियमित और यदि आवश्यक हो तो समाप्त भी किया जा सकता है।"

६ सपत्ति के अधिकार को परिसीमित नियमित और समाप्त करने के सम्बन्ध में ही ससद और न्यायपालिका का तथाकथित सघर्ष हुआ है। हमको ध्यान रखना चाहिए कि जब न्यायपालिका ने सम्पत्ति को सीमित नियमित और समाप्त करने के मामलो में प्रतिकूल निर्णय लिये उदाहरणार्थ महाराजाओ के प्रिवीपर्स के सम्बन्ध में तब प्रधान मत्री (इदिरा गाधी) ने पालियामेन्ट को विसर्जित कर दिया और निर्वाचको से नया आदेश (मेन्डेट) चाहा और जनता ने कांग्रेस को बहुत बडे बहुमत से ससद में भेजा तथा इस प्रकार सम्पत्ति को सीमित और समाप्त करने के प्रश्न पर स्पष्ट आदेश दिया। हमको इसी पृष्ठभूमि में ससद से पारित सशोधन २४ और २५ को देखना चाहिए।

७ और इसी एतिहासिक और सवैधानिक पृष्ठभूमि में आचार्यकुल देश के सामने वर्तमान विवाद के सम्बन्ध में अपना स्पष्ट अभिमत व्यक्त करना चाहता है

८ भारत के राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति का पूर्ण अधिकार है और इस सम्बन्ध में उसके लिए निवर्तमान मुख्य न्यायाधीश की राय लेना आवश्यक नही है। (धारा १२४ (२)। इस धारा में राष्ट्रपति के लिए वरिष्ठतम न्यायमूर्ति को ही मुख्य न्यायाधीश बनाने का उल्लेख नही है। वस्तुत. संविधान में कही भी वरीयताक्रम की कोई चर्चा नही है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की वर्तमान नियुक्ति में संविधान की इस विधि का अक्षरश. पालन हुआ है। लेकिन इस तरह के महत्वपूर्ण मामले में विधि का अक्षरश. पालन ही पर्याप्त नही है। प्रश्न को अधिक व्यापक परिपेक्ष्य में, भारत के लोकतन्त्र के भविष्य को दिमाग में रखते हुए, देखने की आवश्यकता है।

९ फिर भी यह सच है कि वर्तमान मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में भारत सरकार ने सुप्रीमकोर्ट के वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही सुप्रीम कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करने की चली आती हुई परम्परा का अतिक्रमण किया है और यह ठीक है क्योंकि वरिष्ठता को ही मुख्य न्यायाधीश के इस उच्च पद पर नियुक्त करने की एकमात्र कसौटी नही बनाया जा सकता।

१० किन्तु फिर भी वर्तमान वाद-विवाद में सलग्न कुछ लोगों ने परम्परा के इस अतिक्रमण में सरकार की बुद्धिमानी पर शका प्रकट की है। अतिक्रमण से अधिक आघात इसलिये लगता है कि सर्वोच्च न्यायाधीश की नियुक्ति में सर्वोच्च न्यायालय के तीन-तीन न्यायाधीशो की वरीयताक्रम का उल्लघन किया गया है। इसी कारण विवाद में इतनी उत्तेजना आ गयी है और कहा जाने लगा है कि वर्तमान नियुक्ति में सरकार राजनैतिक कारणो से प्रेरित हुई है, वह एक प्रतिबद्ध न्यायपालिका चाहती है और स्वतन्त्र न्यायपालिका के मूल पर ही कुठाराघात करना चाहती है।

११ प्रतिबद्धता के प्रश्न पर बिना उत्तेजना के तटस्थ दृष्टि से विचार करना चाहिए। यद्यपि एक न्यायाधीश से वस्तुनिष्ठ रहने की अपेक्षा की जाती है फिर भी वह भी तो मनुष्य ही है। उसकी राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है, जो जाने-अनजाने उसके विभिन्न निर्णयों में प्रक्षिप्त (प्रोजेक्ट) हो सकती है। चेतन स्तर पर वह इस तरह के प्रक्षेपण को रोकने की चेष्टा कर सकता है, परन्तु अचेतन का प्रक्षेपण तो बिना उसके जाने ही आ सकता है। अत. यह कहना कि कोई भी न्यायाधीश अपनी मानसिक पृष्ठभूमि के प्रभाव से सर्वथा मुक्त होता है, वस्तुस्थिति की ओर से आँखें बन्द करना है। अन्य मनुष्यो की भांति एक न्यायाधीश भी अपने सामाजिक दर्शन और दृष्टिकोण से बंधा रहता है और

उसके प्रति वह स्वभावत ही प्रतिबद्ध होता है। जीवन के प्रति उसका यह दृष्टिकोण उसके निर्णयों और चिंतन में प्रतिम्बिबित हो सकता है।

१२ हमारे राष्ट्र का सामाजिक दर्शन हमारे संविधान की प्रस्तावना (प्रीअम्बुल) मौलिक अधिकारों और संविधान के निदेशक सिद्धान्तों में प्रतिपादित है। जब तक न्यायाधीश के सामाजिक दृष्टिकोण और संविधान के सामाजिक दर्शन में सामंजस्य रहता है कोई संघर्ष नहीं होता। लेकिन जब इन दोनों में सामंजस्य नहीं हो पाता और वह संघर्ष का कारण बन जाता है, तब निश्चय ही राष्ट्रपति का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह देखें कि वही व्यक्ति जो संविधान के सामाजिक दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध है देश की सर्वोच्च न्यायपालिका के उच्चतम पद पर नियुक्त किया जाय। यह प्रतिबद्धता संविधान के प्रति होनी चाहिए सत्तारूढ़ दल की सरकार के प्रति नहीं। इस प्रकार की प्रतिबद्धता नियुक्त न्यायाधीश के चिंतन और निर्णय में प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। राष्ट्रपति नियुक्ति-अधिकारी की हैसियत से यदि आवश्यक हो तो वरिष्ठतम अथवा दूसरे न्यायाधीशों की वरीयताक्रम का उल्लंघन कर सकते हैं किन्तु ऐसा करते समय उन्हें निम्नांकित प्रावधानों से निर्देशित होना चाहिए —

(अ) जब राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों की वरीयताक्रम का उल्लंघन करके मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करें, तो वे एक स्टैंडिंग जूडिसियल कमीशन (स्थायी न्याय आयोग) जिसमें देश के सुप्रसिद्ध न्यायविद् हों की राय लें। यह आयोग राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त स्टेटयूटरी (विधिक) संस्था होगी और इसकी राय मानना नियुक्ति-अधिकारी के लिए अनिवार्य होगा।

(ब) या विकल्प के रूप में संसद भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में एक उचित पद्धति विकसित करने के लिए एक संसदीय समिति की नियुक्ति करे।

१३ हम यह सुझाव इसलिए दे रहे हैं कि अगर कार्यपालिका को निर्बाध होकर इस अधिकार के प्रयोग की छूट दी जाती है तो कार्यपालिका के अत्यनुवर्तित (सबसर्विएंट) होने का खतरा है। इससे लोकतन्त्र के सभी सिद्धान्त और प्रक्रियायें छिन्न हो जायेंगी।

१४ आचार्य कुल का मत है कि १२ (अ) और १२ (ब) के दोनों अनुच्छेदों *में उल्लिखित किसी भी पद्धति के अवलम्बन से न्यायपालिका की स्वतंत्रता* और प्रतिष्ठा की निश्चित रक्षा होगी और साथ ही साथ वह राज्य के सभी

अगों में स्थायी और निर्विघ्न सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगी और भारतीय लोकतन्त्र के विकास का सुदृढ आधार प्रदान कर सकेगी।

१५ अन्त में आचार्यकुल निम्नांकित मुद्दों की ओर, जिनका यद्यपि चर्चित विषय से तात्कालिक सम्बन्ध नही हैं, फिर भी जिनका मूल अधिकारो और सविधान के निदेशित सिद्धान्तो में सामजस्य के लिए किये गये प्रयासो से उत्पन्न सभी प्रश्नो की दृष्टि स अत्यन्त दूरगामी महत्व है, ध्यान आकर्षित करना चाहता है —

(क) लोकतत्र के सम्यक् कार्यान्वयन के लिए अधिकारो को कर्तव्यो अथवा सामाजिक दायित्वों से सतुलित करना चाहिए। लोक-जीवन में शिक्षण की प्रक्रियाओं एव स्वैच्छिक सगठनों के द्वारा इस बात पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।

(ख) देश में न्याय सबको सुलभ होना चाहिए। आज की न्याय-प्रणाली इतनी जटिल और मँहगी है कि देश के बहुसख्यक लोग इससे कोई लाभ नहीं उठा पाते हैं। अत पूरी न्याय-व्यवस्था को इस प्रकार सरल और विकेन्द्रित कर देना चाहिए जिससे देश के गरीब आदमी को भी इस न्याय-प्रणाली से लाभ प्राप्त हो सके और वह कानून की खर्चीली और लम्बी प्रक्रियाओ से बच सके।

नयी तालीम . सितम्बर, '७३
पहिले स डाक-व्यय दिय बिना भजन की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

यह मानना कि किताबों से ही, मेज कुर्सी पर बैठने से ही ज्ञान मिलता है, बुद्धि का विकास होता है, भारी वहम है । हमें तो इसमे से निकल जाना चाहिये । जीवन म वाचन के लिये स्थान जरूर है, मगर वह अपनी जगह पर ही शोभा देता है । शरीर श्रम को हानि पहुँचाकर उसे बढाया जाय तो उसके खिलाफ विद्रोह करना फर्ज हो जाता है । शरीर-श्रम के लिये दिन का ज्यादा समय देना चाहिये और वाचन वगैरह के लिये थोडा । आजकल इस देश म जहाँ अमीर लोग या ऊँचे वर्ग के माने जाने वाले लोग शरीर-श्रम का अनादर करते हैं शरीर-श्रम को ऊँचा दरजा देने की बडी जरूरत है । और बुद्धि-शक्ति को भी सच्चा वेग देन के लिये भी शरीर-श्रम की यानी किसी मा उपयोगी शारिरिक धधे में शरीर को लगाने की जरूरत है ।

—मो क गाधी

मुद्रक "प" राज लॉंद राष्ट्रभाषा प्रम वर्धा

वर्ष : २२

अंक : ३

अक्टूबर, १९७३
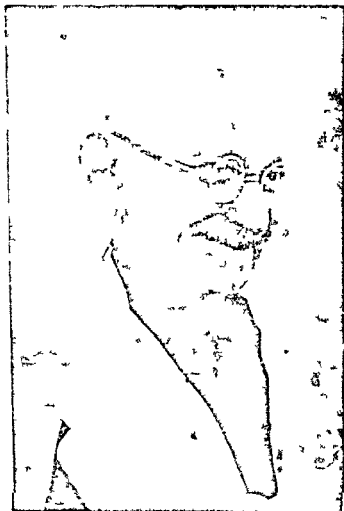
विश्ववंद्य बापू

सम्पादक मण्डल
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक . ३
मूल्य : ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण १२९
लोक-सेवा उद्देश्य और पद्धति १३४ महात्मा गाधी
शक्ति और भक्ति का समन्वय ही सही शिक्षा है १३५ विनोबा
नयी तालीम का प्रारम्भ कैसे हुआ १४१ काका कालेलकर
बुनियादी क्रान्ति के लिए युवक आगे आवें १४४ जयप्रकाश नारायण
अति औद्योगिक युग और शिक्षा १४९ बशीधर श्रीवास्तव
मिश्राधिकार से मताधिकार नयी तालीम का नया पहलू १५३ मदालसा नारायण
उच्च शिक्षा की दिशा १६० डा सुगतदास गुप्त
समग्र शिक्षा १६९ प्रिंस क्रोपाटकिन
पुस्तक परिचय
एज्युकेशन फार सेल्फ हल्प १७२ कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा

अक्टूबर, '७३

* नयी तालीम का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अक का मूल्य ७० पैसे है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित।

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ३

बापू का अमर संदेश

हम गांधीजी की जन्म-जयंती प्रतिवर्ष मनाते आये हैं। किन्तु इस साल उसका विशेष महत्व रहा है। पिछले वर्ष समूचे देश ने स्वराज्य की रजत जयंती उत्साह पूर्वक मनाई। किन्तु इस वर्ष देशको कई कठिन और जटिल समस्याओं का सामना करना पड रहा है। अन्न की कमी, सभी चीजों की निरन्तर बढती हुई महंगाई, हिंसा की ऊँची उठती हुई ज्वालायें, ये सभी बातें हमें चिंतित और दुखी कर रही हैं। लेकिन सबसे भयंकर मसला है हमारे नैतिक मूल्यों के पतन का।

बापू की ओर आज देश और दुनियाँ की नजरें फिर मुड रही हैं। सभीको यह लगने लगा है कि वर्तमान कठिनाइयों का सही इलाज गाँधीजी के द्वारा बताया गया मार्ग ही है। जो लोग पहले गांधीजी के आदर्शों के प्रति कोई श्रद्धा नही रखते थे वे भी आज यह अनुभव करने लगे हैं कि गाँधीजी का मार्ग ही एक मार्ग है और अब वे भी श्रद्धा के साथ गांधीजी के नाम का उच्चारण करने लगे हैं।

बापू का अमर संदेश क्या था ? अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने एक पत्रकार के एक सवाल का जवाब देते हुये कहा था कि 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है'। इसका यही अर्थ हुआ कि हमारी कथनी और करनी एक होनी चाहिए। यदि उन दोनों में कोई भेद रहा तो फिर हम

असत्य और दगा का वातावरण निर्माण करेगें और हमारे चारो ओर प्रकाश की जगह अन्धकार फैलता जायगा। इस समय हम सभी एक-दूसरे की बुराई और टीका करते रहते हैं। अपने दोषो की ओर देखने की कोशिश नही करत। किन्तु जब तक हमारा जीवन ही एक उज्वल आदर्श पश नही करना तब तक आदमी का असतोष और निराशा ही बढती जायगी और अँधरा और अधिक गहरा बनता जायगा। यदि हममें स प्रत्यक व्यक्ति गभीरतापूवक यह निश्चय कर ले कि वह उन बातो को नही करगा जिस वह खुद बुरा समझता है तो फिर वर्तमान अधकार धीर धीर हटता जायगा और आशा की किरणें फूटन लगेंगी।

हमारी शिक्षा का ढाँचा :

१६ सितम्बर को सेवाग्राम में पिछल वर्ष अक्टूबर में हुए शिक्षा सम्मलन की कार्यान्वयन समिति की एक महत्वपूर्ण बठक हुई। उसमें अखिल भारत नयी तालीम समिति क कई प्रमुख सदस्य भी सम्मिलित हुए। समिति न शिक्षा मत्रालय द्वारा पाँचवी पचवर्षीय योजना म शिक्षा क ढाँचे क बार में विस्तृत विचार किया। सभी सदस्यो को यह दखकर निराशा हुई कि अपना प्रारूप तैयार करत समय केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय ने सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मलन की सिफारिशो पर समुचित ध्यान नही दिया है। इस रूपरखा में इस बात पर जोर दिया गया है कि पाँचवी योजना क अन्त तक ६ से ११ वर्ष क सभी बालक प्राथमिक शालाओ में भर्ती हो जायें और ११ वर्ष से १४ वर्ष के कम से कम ७५ फी सदी बालक इन्ही प्राइमरी स्कूलो में प्रवेश पा सकें। बाल मन्दिर शिक्षण और प्रौढ शिक्षाकी ओर भी ध्यान खीचा गया है। युनिवर्सिटी शिक्षा सीमित विद्यार्थियो के लिये ही खुली रहे ताकि बेकारी न फैले। प्रत्येक क्षेत्र में कुछ मॉडल या कम्युनिटी स्कूल प्रारम्भ किये जाय ताकि अन्य शालायें अपना स्तर सुधार सकें।

ये सभी बात उचित है और करनी चाहिये। किन्तु सेवाग्राम सम्मेलन की सबसे प्रमुख सिफारिशो का कोई खास जिक्र शिक्षा मत्रालय की पुस्तिका में नही किया गया है। उदाहरण के लिये सेवाग्राम सम्मेलन ने यह बहुत बलपूर्वक कहा था कि सभी स्तरो की शिक्षा समाज

उपयोगी और उत्पादक श्रम द्वारा दी जानी चाहिये ताकि शिक्षा और देश की विकास योजनाओ का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो सके। यह भी कहा गया था कि प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तरो के पाठ्यक्रमो में तीन मूल तत्वो पर बल दिया जाय

(१) आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास तथा शैक्षणिक कार्यक्रम के अविभाज्य अग के रूप में कार्यो द्वारा श्रम-प्रतिष्ठा।

(२) सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमो में छात्रो और शिक्षको के सहयोग द्वारा राष्ट्रीयता एवं सामाजिक दायित्व की भावना और

(३) नैतिक मूल्यो का सिचन, तथा सर्व-धर्म समभाव और उसके मूलभून सिद्धान्तो की एकता।

इन पाठ्यक्रमो में हमारी समन्वय की सास्कृतिक परम्परा की जानकारी, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सक्षिप्त इतिहास, राष्ट्रीय एकता पर बल, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा अहिसा, लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय और हमारे सविधान में निहित सर्व धर्म-समन्वय क मूल तत्वो का समावेश होना चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शिक्षा मत्रालय का प्रारूप सवाग्राम सम्मेलन की सिफारिशो के अनुरूप तैयार नही किया गया है। यह सचमुच वडे दु ख व आश्चर्य का विषय है। हमने इस ओर प्रधान-मत्री श्रीमती इदिरा गाधी का भी ध्यान आकर्षित किया है। हम आशा करते है कि पाँचवी पचवर्षीय योजना में शिक्षा के वर्तमान ढाँचे का आमूलाग्र परिवर्तन किया जायगा ताकि भविष्य में पढे-लिखो की वेकारी और न फैले तथा शिक्षा और राष्ट्र के विकास के सभी कामो में पारस्परिक तालमेल हो। यदि ऐसा न किया गया तो देश का भविष्य ही खतरे में पड जायगा और हमारे प्रजातत्र की नीव हिल जायगी।

ट्रस्टीशिप सम्मेलन :

ट्रस्टीशिप सम्बन्धी एक सम्मेलन तारीख ७, ८ और ९ सितम्बर को वर्धा के पास ऋषि विनोबा के पवनार आश्रम में सम्पन्न हुआ।

इस सम्मेलन में सर्वश्री नवल टाटा, मदनमोहन मंगलदास, गोदरेज, गरवारे व रामकृष्ण बजाज जैसे प्रमुख उद्योगपति और व्यापारी शामिल हुए। भारत सरकार के उद्योग मंत्री श्री सुब्रमणियमजी ने भी चर्चा में भाग लिया। यूँ तो सरकार और उद्योगपतियों के बीच में दिल्ली के वातानुकूलित कक्षों में बहुत-सी बैठकें होती ही रहती हैं। किन्तु पूज्य विनोबाजी के आश्रम के शान्त व सरल वातावरण में इस प्रकार का सम्मेलन पहली बार ही हुआ और सबसे बड़ी महत्व की बात तो यह हुई कि इस सम्मेलन को स्वयं विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। उनके भाषण का प्रभाव श्री सुब्रमणियम व सभी उद्योगपतियों पर बहुत गहरा पड़ा और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सभी के हृदयों में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

सम्मेलन के अन्त में जो वक्तव्य प्रकाशित किया गया वह एक प्रकार से पहला कदम ही मानना चाहिए। उसमें न्यूनतम प्रोग्राम का ही संकेत किया गया है जो सर्वानुमति से निश्चित किया गया। उसके आगे जो उद्योगपति जितना बढ़ना चाहे उसे ऐसा करने का पूरा अवकाश है। महात्मा गांधी ने ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के बारे में काफी लिखा और कहा। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि अभी तक देश के उद्योगपतियों और व्यापारियों ने इसकी ओर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। यह सभी का सद्भाग्य है कि ऋषि विनोबा इस समय इस बारे में हमें मार्ग दिखाने के लिये विद्यमान हैं। यदि उनके विचारों के अनुकूल ट्रस्टीशिप विचारधारा को आगे बढ़ाया जा सका तो यह भारत के लिये ही नहीं, किन्तु सभी विकासशील राष्ट्रों के लिये बहुत उपयोगी साबित होगा।

सेवाग्राम की राष्ट्रीय परिषद

एक दूसरी प्रमुख घटना सेवाग्राम में १८, १९ और २० सितम्बर को राष्ट्रीय परिषद का आयोजन था। सर्व सेवा संघ के निमंत्रण पर आचार्य कृपलानी, श्री एस० एम० जोशी, श्री कृष्ण कान्त जैसे प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ताओं के अलावा डा० ब्रह्मानन्द व प्रो० पारिख जैसे कुछ प्रख्यात अर्थशास्त्री भी उसमें शामिल थे। रचनात्मक

कार्यकर्ताओं का प्रतिनिधित्व तो उसमें था ही। इस परिषद को भी पूज्य विनोबाजी का विस्तृत मार्गदर्शन प्राप्त हो सका।

सेवाग्राम राष्ट्रीय परिषद ने जो अष्ट-सूत्री कार्यक्रम देश के सामने रखा है, वह सचमुच बहुत महत्व का है। इसमें जोर दिया गया है कि भारतीय प्रजातंत्र को ग्राम और मोहल्ला सभाओं का व्यापक संगठन करके मजबूत बनाया जाय। साथ ही पूर्ण रोजगार, अन्न उत्पादन और वितरण, भूमि सुधार, मद्य निषेध, शिक्षा-प्रणाली में आमूल क्रांति आदि के कार्यक्रमों को सगठित ढग से आगे बढाया जाय। इन राष्ट्रीय कार्यों में सभी राजनैतिक दलो, सामाजिक व शिक्षण संस्थाओं का सहयोग भी प्राप्त किया जाय।

परिषद में साधन-शुद्धि के बुनियादी सिद्धान्तों पर बहुत जोर दिया गया। इस समय देश के सभी विभागों में अनीति और भ्रष्टाचार फैला हुआ है। उसका मूल कारण यह है कि हम राष्ट्रपिता गांधीजी के साधन शुद्धि के मौलिक विचार को तेजी से भूल रहे हैं। यह विचार कोई ऊँची फिलॉसाफी नहीं है, किन्तु एक व्यावहारिक जीवनदर्शन है। यदि हम उसकी ओर समुचित ध्यान नहीं देंगे तो हमारा देश बहुत बडे खतरे में पड जायगा। हम आशा करते हैं कि इस ओर सभी वर्गों का गहरा चिन्तन होगा ताकि भारत गांधीजी के सपनों के अनुरूप अग्रसर हो सके।

—श्रीमन्नारायण

गांधीजी

लोक-सेवा : उद्देश्य और पद्धति

(३० अप्रैल सन् १९३६ को प्रायः ५ बजे गाधी जी सेवाग्राम के लिये, जो तब तक सेगांव के नाम से जाना जाता था, रवाना हुये। उनसे पहले वहाँ मीराबहन आ गई थी और एक झोपडी में रह रही थी। जब गाधीजी ने भी सेवाग्राम आने का निश्चय कर लिया तो उनके लिये भी एक झोपडी तैयार कर ली गई। फिर १५ जून, १९३६ को बापू स्थाई रूप से सेवाग्राम आ गये। गाधी जी ने ३० अप्रैल की साय को प्रार्थना सभा में गांव वालो के सामने अपने आने के बारे में जो कुछ कहा उसका कुछ अश नीचे दिया जा रहा है। समाज सेवा के उद्देश्य और पद्धति दोनो पर ही यहाँ गाधी जी ने बहुत ही सक्षिप्त किन्तु समग्र रूप से कह दिया है।

— सपादक)

मेरे बचपन से ही यह मेरे लिये जीवन का एक सिद्धान्त रहा है कि मै उन लोगो पर जरा भी बोझ न बनूँ जो मुझे अविश्वास, सदेह या भय की निगाह से देखते है। मुझसे भय का कारण यह है कि मैंने अस्पृश्यता को मिटाने का सकल्प लिया है। आपको मीरा बहन से पता लगा होगा कि मैंने तो अपने मस्तिष्क से अस्पृश्यता को पूरी तरह से निकाल दिया है। मैं तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, महार और चमार आदि सब को भगवान् की नजर में समान ही मानता हूँ और केवल जन्म के आधार पर किसी को ऊँचा या नीचा समझकर उनमें भेद करने को पाप समझता हूँ।

फिर भी मैं अपनी राय आप पर लादूंगा नही। मै अपनी दलीलो से या आपको समझाबुझा कर और इससे भी अधिक अपने स्वय के उदाहरण स अस्पृश्यता और किसी भी प्रकार से ऊँच-नीच के भेद को समाप्त करने का प्रयास करूँगा।

मैं आपके मकानो के आसपास की सडको की सफाई करके, अपनी क्षमता के अनुसार बीमारो की सेवा करके और छोटे मोटे ग्रामोद्योगों का, जो आज तो गाँवों से पूरी तरह से नष्ट ही हो गये हैं, पुन जीवित करने में आपकी सहायता करके आपकी सेवा करने का प्रयास करूँगा। यदि आप इस कार्य में मेरी मदद कर सकेंगे तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

विनोबा

शक्ति और भक्ति का समन्वय ही सही शिक्षा है

(गत १६ सितम्बर को सेवाग्राम में अ भा नयी तालीम समिति तथा राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की कार्यान्वयन समिति की एक सम्मिलित बैठक पूज्य विनोबा जी के सानिध्य में पवनार में हुई। उसमें विनोबा जी ने जो प्रवचन किया उसके नोट्स के आधार पर उसे नयी तालीम के पाठकों के लिये यहाँ दे रहे हैं। — सपादक)

हमारा देश बहुत बडा देश है। इतने बडे देश में इस तरह के किसी प्रश्न पर एक या दो बैठके कर देने मात्र से कोई चिंतन नही होता। इस तरह की कई बैठक करनी होता है और इस तरह फिर चर्चा में माहा निव न जाते है। बस चर्चा ही होती रहती है, 'अर्चा' का आरम्भ ही नहीं हो पाता है। यह स्वाभाविक भी है। अब यूरोप आदि देश हैं उन्हें तो बस दो या तीन करोड के लिये सोचना होता है, किन्तु यहाँ तो ५५ करोड है। हमें तो इन ५५ करोड के लिये सोचना होता है। फिर अपने देश में १५–१६ भाषाएँ हैं। उनका अपना साहित्य का प्रचुर भडार है। वे सभी बहुत प्राचीन हैं। उन सबकी अपनी अलग-अलग संस्कृति है, अपनी अलग-अलग परम्परायें हैं। जैसे बिहार में ही उत्तर और दक्षिण में फर्क है। उ प्र तो इतना बडा है कि उसके बराबर के तो दुनिया में बहुत ही कम देश है। चीन, रूस, जापान, शायद ब्राजील, अमरीका और इन्डोनेशिया जैसे कुछ ही देश उससे बडे होंगे। मैंने तो उ प्र को 'प्रश्न-प्रदेश' ही कहा है। क्योकि वहाँ हमेशा ही कोई न कोई प्रश्न छिडता ही रहता है और वे बहस में लगे ही रहते हैं। किन्तु किसी प्रश्न का वे उत्तर नही दे पाते। और आज तो प्रश्न भी समाप्त हो गये हैं तो फिर उत्तर भी

कहाँ से आयेगा। तो दुनियाँ में जो राष्ट्र हैं उनसे भी वडे वडे हमारे यहाँ प्रान्त हैं। जब दरभगा का जिला दान हुआ तो उस समय मेरी पदयात्रा में डेनमार्क के एक भाई घूम रहे थे। उन्होंने पूछा कि दरभगा की आबादी कितनी है। मैंने बताया कि ५५ लाख है तो वे बोले कि डेनमार्क का दान हो गया है, क्योंकि डेनमार्क की जनसख्या भी इतनी ही है। अब डेनमार्क तो एक राष्ट्र है किन्तु भारत का वह एक जिला मात्र है। इसलिए ऐसे देश में चर्चा का कभी अत नही हो सकता है और हमारी समस्याओं का हल किसी एक की चर्चा या एक ही स्थान से नही हो सकता है।

सौम्यता ही शिक्षाशास्त्र का सार है

इसलिये इस तरह की परिषदें देश में जगह जगह पर होनी चाहिये। हर प्रदेश में आप एक या दो ऐसी शिक्षण सस्थाये चलायें जो शासन से मुक्त हो और नौकरी के लिये शिक्षा से भी मुक्त हो। उ प्र में ऐसा तीन, बिहार में दो, इस तरह से सस्थाये चल सकती है। ये सस्थायें उत्तम ढग से चले और उत्तम कार्यकर्ता तैयार करें। फिर ये सारे उत्तम कार्यकर्ता सारे भारत में फैल जाये। ये लेविल का काम करें। ये लोग क्राइस्ट के बारह शिष्यों की तरह फिर आपका सदेश देश भर में ले जायेंगे। क्राइस्ट का 'सरमन आन द माउट' कितने लोगों ने सुना था। मुश्किल से उसमें २०० या २५० रह होगे। किन्तु वे एकाग्र थे। अत में उनमें से १२ शिष्य बने और फिर यद्यपि कभी कभी वे आपस में लडे भी किन्तु अत में वे सारे ससार में फैल गये। पिछले साल मेरे पास केरल के लोग आये थे। वहाँ सेंट थामस की १९५० वी सवत्सरी है। सेंट थामस ईसा के बारह शिष्यों में से है। वे क्राइस्ट के बारह तेरह साल बाद भारत आये थे। उन्होने शाति से लोगों को समझाया और भारत में ईसा का सदेश फैलाया। आज लोग उनकी सवत्सरी मना रहे हैं। यह कितनी बडी घटना है। इतनी दूर का एक व्यक्ति यहाँ आया और लोगों में अपने प्रेम और शाति के सदेश के कारण लोकप्रिय हो गया। उसने अत्यन्त सौम्यतापूर्ण ढग से अपनी बात लोगों के सामने रखी और लोगों ने वह कबूल की। यही सौम्यता शिक्षा शास्त्र का सर्वोत्तम सार है। समझाने की यह मिसाल इसी तरह से शकर में मिलती है। ईसा को पूछा गया कि सामने वाला यदि एक बार समझाने पर न माने तो क्या करना? ईसा ने जवाब दिया कि दुबारा समझाऊँगा। फिर पूछा गया कि वह इस पर भी न समझे तो क्या करना। तो ईसा ने कहा कि तीसरी बार समझाऊँगा। फिर पूछा कि इस पर भी न समझे तो जवाब आया कि ७० बार समझाऊँगा। बस उस समय इतने ही तक गणित था इसलिये ७० बार कहा। किन्तु जब शकर से भी यही प्रश्न पूछा गया तो शकर ने कहा कि जब तक नही समझता तब तक मैं समझाता ही जाऊँगा। मेरे पास सिवाय 'शब्द-शक्ति' के और कोई शक्ति नही है। इसलिये उन्होंने कहा कि शास्त्र का काम ही केवल दिशा देना है, क्रिया करना या क्रिया के लिये आदेश देना

नही। 'शास्त्र ज्ञापक न तु कारक।' वह तो साइनपोस्ट की तरह है जो आगे के खतरे से आगाह करता है और उसके बावजूद भी यदि किसी को उसमें जाना है तो वह जाय, शास्त्र उसको रोकेगा नही। यही शिक्षा का काम है। मेरा काम सिर्फ समझाना है। 'शब्दशक्ति अचिन्त्य' यही शकर का वाक्य है। वे स्वय १६ साल तक देश भरमें घूमे और आज तक देश पर उनका प्रभाव है।

हृदय और बुद्धि का समन्वय ही शिक्षको का काम है

विवेकानन्द से पूछा गया था कि भगवान् की परिभाषा करो तो उन्होंने कहा कि बुद्ध का हृदय और शकर की बुद्धि मिलकर भगवान् बनता है। हृदय और बुद्धि को एक करना आपका काम है। मैं बगाल में घूम रहा था तो पाया कि वहाँ रवीन्द्रनाथ, रामकृष्ण और विवेकानद आदि के नाम तक लोगो को मालूम नही हैं। मुझे बडा आश्चर्य हुआ कि जो नाम सारी दुनियाँ में फैल गये है वे ही नाम उस बगाल के लोगो को भी मालूम नही हैं जहाँ वे पैदा हुये थे। किन्तु वहाँ केवल एक नाम है जो घर घर में याद किया जाता है और वह नाम है चैतन्य महाप्रभु का। मैंने अपनी यात्रा में पूर्वी बगाल (अब बगला देश) के लोगो से पूछा कि वे किस किस नाम को याद करते है तो उन्होंने कहा कि वे तीन नाम जानते और याद करते है। ये तीन नाम है बुद्ध, मुहम्मद और चैतन्य के। अब वहाँ के मुसलमानो पर यह बुद्ध और चैतन्य का इस तरह का प्रभाव है। इनके अलावा और कोई नाम वे जानते नही।

मुख्य प्रश्न . शक्ति और भक्ति के मेल का है

आज हमारे देश में कभी कभी कुछ अलगाव का जैसी बातें भी लोग करते है किन्तु हमारी असल समस्या यह नही है कि हमारा विभाजन हो गया। असल समस्या यह है कि शक्तिवत और भक्तिवत आपस में मिलते नही। यह बडा प्रश्न आपके सामने खडा है कि इस देश में शक्तिवतो और भक्तिवतो को कैसे मिलायें। अत मैंने थोडे में कहा कि आप अपने काम का नमूना खडा करो, कार्यकर्ता बनाने का काम हाथ में लो और उन्हें भारत भर में भेज दो। मैंने क्राइस्ट की मिसाल दी है। बाबा की भी छोटी सी मिसाल दे सकते है। मैंने भी कई साल तक कुछ शिष्यो को शिक्षा दी है और आज वे भारत भर में फैल कर काम कर रहे हैं। कृष्णराज गाधी, वल्लभस्वामी के उदाहरण मैं दे सकता हूँ। आप भी १०-१० छात्र पाँच साल में पैदा करो और ऐसे २० केन्द्र देश में खडे करो तो इस प्रकार से जो कार्यकर्ता बनेंगे उन्हें भारत भर में भेज दो। वे भारत में जीवन भर घूमें और सतो की तरह देश की सेवा करें। कबीर, तुलसी लगभग ५० साल देश में घूमें होंगे, नामदेव भी घूमते घूमते मरने के लिये पीर पजाल गये। वे नानक से २०० साल पहले हुये। पजाबी में

'विठ्ठल' का नाम है। नानक के १५० साल के बाद 'गुरुग्रंथ साहब' बना है तो उसमें नामदेव के कई भजन हैं। मैं तो हिन्दी वाला को कहता हूँ कि हिन्दी का पहला लेखक कौन है तो उन्हे स्वीकार करना पडता है कि हिन्दी के पहले लेखक नामदेव, नानक आदि है। ये सब लोग घूमते थे। क्राइस्ट के जन्म के समय बुद्ध के शिष्य भी हाजिर थे। उन्होने अमरकोष पढा। उसमें एक ही शब्द के कई अर्थ है। तो उसमें एक शब्द है 'माक्षिक पारिज'। तो मनें सोचा कि मक्खी से तो सोना बनता नही है तो इसका कोई दूसरा अर्थ होना चाहिये। विचार करने के बाद पता चला कि माक्षिक का अथ है मैक्सिको और पारिज का अथ है पेरु देश। वहाँ के लोग अपने देश को पारुदश कहते है पेरु नही। तो यह सब इसलिए हुआ कि वहा तक भारत के लोग फैले थे। वे सारे विश्व में गये।

नयी तालीम का पहला शिक्षक · उपवर्ष

नयी तालीम की एक पाठशाला मै बता सकता हूँ वह भगवान् उपवर्षकी पाठशाला थी। उन्हे इतना भगवान उपवर्ष ऐसा कहा गया है। उसमें उनके पांच शिष्य थे। उनमें स एक थे जैमिनी, दूसरे थे पाणिनी। उपवर्ष का यह विद्यापीठ विचित्र रहा होगा। बाबा ने कई भाषाओ का अध्ययन किया है किन्तु व्याकरण का बाबा को बडा शौक रहा है। मैने कई तरह क व्याकरण भी पढे ह तो पाया कि पाणिनी के जैसा व्याकरण किसी भी भाषा में नही है। पश्चिम के लोग भी यह मानते हैं। गफ्फारखाँ तो बडे गर्व से कहते थे कि पाणिनी उनके देश का रहनेवाला था। वह पेशावर का रहने वाला था। तो इस तरह के विद्यापीठ बनाओ जहाँ पाणिनी के जैसे शिष्य पैदा हो और उन्हे फिर भारत भर में फैलाओ। ५–२५ छात्रो के हिसाब से १०–१५ साल में ऐसे ५०० शिष्य बनाओ और उन्हे भारत में भेज दो।

प्रश्नोत्तर

श्री श्रीनिवास शर्मा (उ प्र के बुनियादी शिक्षा निदेशक)—आज समाज, सरकार और स्वय अध्यापक के मन में शिक्षा में सुधार करने के लिये कोई बहुत उत्साह नही है, बल्कि एक प्रकार का विरोध जैसा भी है। तो वह कैसे दूर किया जाय।

बाबा— सरकार सववार से बनी है। वह सब कुछ अपने हाथ में ही रखना चाहता है। किन्तु शिक्षा अब उसके लिये भी सिर का दर्द बन रही है। पढाती है तो लोग बेकार होते है और पढ लिख कर फिर उपद्रव करते है। नही पढाती है तो लोग मूर्ख रहते है और यह भी सरकार के लिये शोभा जनक नहीं है। अत वह दुविधा में पडी है। मैने कहा है कि शिक्षा को सरकार स मुक्त कर दो तो इसस सरकार को भी मुक्ति मिल जायेगी। दूसरी बात यह है कि शिक्षा को नौकरी स अलग कर दो।

आज तो शिक्षा का मतलब ही नौकरी हो गया है। किन्तु यह विचार ही गलत है। अभी शिक्षा में 'वर्क एक्सपीरियेन्स' या 'जाब ओरियन्टेसन' की कुछ बात चलती है किन्तु यह सब एक तरफा और अधूरी बात है। शिक्षा का नौकरी से सम्बन्ध ही समाप्त करना चाहिये। तब लोगों के ध्यान में आयेगा कि शिक्षा से जब नौकरी नहीं मिलती तो फिर उसमें क्या सुधार करना है। आज तो लोग उसके कारण से मृग-तृष्णा में फस गये हैं। इसस मुक्ति मिलेगी तो ही शिक्षा मे सही सुधार का चिंतन आरम्भ होगा।

श्रीमन् जी— पिछले ३६ वर्षों में बुनियादी तालीम की अनेक अच्छी सस्थायें देश में आरम्भ हुईं और आज भी चल रही हैं। उनमें काफी विद्यार्थी व कार्यकर्ता भी तैयार हुये हैं। फिर भी शिक्षा का करीब वही ढर्रा चल रहा है। ऐसा क्या है?

बाबा— क्योंकि उपवप की तरह काम नहीं किया। एक शिक्षक को कितने को पढाना होता है आज। शायद ४५ या ५० स भी अधिक। किन्तु एक माँ को कितने बच्चे चाहिये ताकि वह उनका और अपनी भी ठीक ढग स देखभाल कर सके। उसे अधिक-से-अधिक शायद दस बच्चे होते होंगे। किन्तु माँ का तो केवल प्रेम ही देना होता है जब कि शिक्षक को प्रेम के साथ ज्ञान भी देना होता है। तो शिक्षक के पास दस से अधिक शिष्य नहीं होने चाहिये। फिर शिष्य गुरु स भी उत्तम होंगे। किन्तु यह तो वहाँ हुआ नहीं। नयी तालीम का मैंने 'नित्य नयी तालीम' कहा है। उसका अर्थ यह है कि उसका रोज के जीवन की समस्याओं स सम्बन्ध रहना चाहिये। इसके साथ ही उसमें अध्यात्म और विज्ञान भी होना चाहिये। अध्यात्म रखने से हजारो साल स चले आ रहे उत्तम साहित्य स हमारा सीधा सम्बन्ध आयेगा जिसका 'पार्टि-सिपलिटी' बहुत बढा हुई है। फिर गणित भी उसम रहेगा ही। इस प्रकार स ब्रह्मविद्या और विज्ञान का समन्वय होता है, और गणित दोनो में शामिल है ही। तो इस तरह स शिक्षा पूर्ण बनती है। फिर भाषा, व्याकरण जिसे वदांग 'वेदाना वेद' भी कहा गया है, वह भी पढना चाहिये। यह नयी तालीम है। इसमें फिर खेती और गोपालन आदि तो आने ही चाहिये।

डा जाकिर हुसैन का प्रमाणपत्र

एक बार डॉ जाकिर हुसन मेरे पास आये और कहने लगे कि शिक्षा के बारे में मैं कुछ मार्ग बताऊँ। मैंने कहा कि आज तो पढायें तो भी मुसीबत और न पढ़े तो भी मुसीबत है। पढानेसे लोग बेकार बनते है और न पढाने से बेवकूफ रहते हैं। तो वे कहने लगे कि यह शिक्षा दोनो ही बनाती है। यह इस शिक्षा को डॉ जाकिर हुसैन जैसे व्यक्तिका प्रमाण पत्र है।

सह-शिक्षा हो : गृह्य वातावरण में

श्री मारुसिंह (हरियाणा के शिक्षा मंत्री)— सहशिक्षा पर बाबा के क्या विचार है?

बाबा— १०–१२ से अधिक शिष्य न हों तो सहशिक्षा दी जा सकती है। हमने तो घर पर भाई-बहनों ने साथ साथ ही शिक्षा पाई थी। मेरे पिता बहुत अच्छे रंगसाज और संगीतज्ञ एक साथ थे और हम भाई बहनों को उन्होंने ये चीजें सहज ही सिखाई थी। गार्गी की कहानी तो आप सबको मालूम ही है, जिसने जनक की भरी सभा में अपने ही पति याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था। तो सहशिक्षा गृह्य वातावरण में दी जानी चाहिये। मैंने 'कौटुम्बिक शाला' नाम की एक पुस्तक ही लिखी थी। महावीर इस काम में बुद्ध से आगे बढ गये थे। बुद्ध ने तो यह उपदेश किया कि 'भिक्षुओ! एक ही घूमो' किन्तु महावीर ने कहा 'तीन से बनकर घूमो।' तो इसमें फिर बिगडने का प्रश्न ही नहीं रहता। आज भी कैथोलिकों को छोडकर जैन स्त्रियाँ ही सबसे अधिक घूमती है। यह महावीर का पराक्रम है।

मनुष्य का मूल्य

इसलिए एक नौजवान को आजकल के प्रचलित अर्थों में उन्नति या सफलता ही जीवन का ध्येय है, इसके प्रति अत्यंत सावधान रहने की आवश्यकता है। क्योंकि आजकल सफल मनुष्य वह माना जाता है जो अपने सहजीवियों को जितनी सेवा करता है उसकी तुलना में कई गुना अधिक उनसे ले लेता है। किन्तु असल में मनुष्य का मूल्य वह जितना देता है इसमें है, इसमें नहीं कि वह कितना लेता है।

—आइन्स्टाइन

काका कालेलकर

नयी तालीम का प्रारम्भ कैसे हुआ ?

नयी तालीमके सिद्धान्त, उसकी विशेष पद्धति और उसका अंतिम उद्देश्य, इनकी बातें करने के पहले थोडा मूलभूत चिंतन कर लें।

हम जिस दुनिया में भगवान से मिला हुआ जीवन रूपी पूंजी लेकर आये हैं, उसको कृतार्थ करके हम अपने जीवन का विकास करें और अपने जीवन के पीछे आने वाली पीढ़ी को उसका लाभ दे दें यही हमारी शिक्षा-पद्धतिका उद्देश्य होता है।

हम जीवन जीते हैं। इसका अर्थ है कि हम शरीर, मन, बुद्धि, कल्पना, स्मृति आदि साधनों के द्वारा नित्य क्रियायें करते हैं। जीवन पूर्ण रूप से क्रियात्मक ही है। केवल शब्द और भाषा से बातें सुनना और उनकी कल्पना करना यह शुद्ध या ठोस जीवन नहीं है। शब्द सुनकर हम थोडा चिंतन कर सकते हैं, अपनी कल्पना को चला सकते हैं, शरीर और मन को प्रेरणा भी दे सकते हैं। लेकिन हर चीज का अनुभव तो क्रिया के द्वारा (करके देखने से) ही हो सकता है। विचार, कल्पना आदि बातें जीवन में कुछ करने के लिये ही हैं। उनमें से नयी चीज उत्पन्न करने के लिये तो 'क्रियात्मक अनुभव' ही जरूरी होता है। इसलिए 'जीवन जीने' का अर्थ ही होता है 'क्रियाओं के द्वारा प्राप्त किये हुये अनुभव के बल पर उन्नति करना।' क्रियाओं के अनुभव द्वारा ही हम अपने विचार और कल्पना की कसौटी कर सकते हैं और उस कसौटी के द्वारा ही हमें भविष्य के लिये प्रेरणा मिलती है।

समस्त जीवन में 'क्रिया' के इस महत्व को पहचान कर गांधीजी ने हम भारतीयों को और हमारे द्वारा मानव जातिको एक महत्व का सूत्र दिया कि जिसे हम शिक्षा कहते हैं, वह सचमुच अत्यन्त महत्व के जीवनोपयोगी क्रियाओं का वैज्ञानिक संगठन और विकास ही होना चाहिये।

नयी तालीम की परिभाषा :

जिसके पास जीने का उत्साह है किन्तु अनुभव नहीं है ऐसे प्राणवान किन्तु कच्चे आदमी को 'योग्य और समर्थ अनुभवी' के पास जाकर जीवन जीने की कला सीखने को ही आज कल 'नयी तालीम' कहते हैं।

इसे 'नयी' इसलिये कहते हैं कि आज तक शिक्षा देने की और शिक्षा पाने की कला में हम लोगों ने, याने मनुष्य जाति ने, अनेक गलतियां की हैं। गलत

पद्धति स हम शिक्षा दत लते रहे हैं। तरह-तरह की ऐसी भूलें टालकर हम शुद्ध ढग स निर्दोष और कौशल्य-युक्त पद्धति स शिक्षा लेने देने की पद्धति को काम में लावें।

जीवन म सब से प्रारम्भिक प्रधान बाते कौन कौन-सी है ?

हम जीते है याना सास लेते है, आसपास की दुनिया का निरीक्षण करत है, इसका थोडा-सा आनद भी लते है इतने में पट में भूख लगती है। माँ देखती है कि बच्चे को भूख लगी है। मा बच्चे का अपने स्तन के पास ल जाती है। प्रकृति यानी कुदरत ही बच्चे को स्तन चूसन की कला सिखाती है। चूसते चूसत मुह में दूध आता है। इस को पेट में उतारन की कला भी कुदरत ही सिखाती है। माँ का दूध पीने स बच्चे को सन्तोष होता है। उस उम्र में बच्चे के मन म कृतज्ञता उत्पन्न नही होती। कुदरत न ही उस भूख दी। कुदरत ने ही उसे दूध चूसने और निगल का कला सिखाई। अब उसके मन मे माँ क बारे में कृतज्ञता नही। वह तो बाद में आयगी। किन्तु आत्मीयता उसके मन में और सार शरीर में पैदा होता है। मा और हम एक है। माँ देती जायगी हम लत जायग और इसी में जीन का अनुभव मिलगा।

विद्वान लोगो ने जीने की इस स्वाभाविक इच्छा को 'जिजीविषा' का नाम दिया है। इस जिजीविषा की तृप्ति को हम 'जीवनानद' कहते है। भूख का अनुभव करना स्तन को चूसना दूध का निगल जाना उसका आनद मानना और माता के प्रति आत्मीयता का सूक्ष्म अनुभव करना—यह सब शिक्षा का ही अग है। इसी शिक्षा क अनुभव को हम जीवनानद कहत है। इन सारी क्रियाओ को व्यवस्थित करना, उसस पूरा लाभ उठाना और आज तक उसमें जो गलतिया हुइ उन्हे टालना, यही शिक्षा का व्यापार चलानेवाले लोगोका काम है।

भूख को हमने तृप्ति की उसके साथ सब इन्द्रियो के द्वारा सृष्टिका निरीक्षण तो चलता ही रहता है। इन्द्रिया अपना अपना अनुभव लेती है। अब थोडे ही समय में शरीर में आराम लेने की इच्छा उत्पन्न होनेसे, आप ही आप आँखें मुँद जाती है। बाकी की इन्द्रियाँ भी अपनी अपनी प्रवृत्ति छोड देती है और सारा शरीर सो जाता है। सोने के समय में पेट आराम नही करता। मिले हुये अन्न को हजम करने का काम उस करना पडता है। इसमें सारा शरीर नयी शक्ति पाना प्रारम्भ करता है।

सचमुच शिक्षा तो कुदरत से ही, प्रकृति से ही शुरू होती है। उसी क्रिया को व्यवस्थित करके गलतियाँ टालना और कुदरतके व्यापार को मदद पहुँचाना, यही काम माँ-बाप का और समाज का है। इसलिये गाधीजी ने शिक्षा शास्त्रियो को समझाया कि जिस तरह कुदरत के दिये हुए दूध का हम उपयोग करते है उसी तरह फल आदि खाने की चीजो का व्यवस्थित उपयोग करने का ज्ञान भी बच्चों को उसीके साथ सिखाना चाहिये। मानव जाति के जन्म कालस यह प्रवृत्ति चलती आयी है।

अब मानवी समाज उस प्राथमिक स्थिति में नहीं है। फल आदि चीजें खाने के बाद उसने धान्य खाना अधिक उपयोगी देखा। धान्य खाते खाते उसकी उत्पत्ति बढाने की कला भी उसे ढूँढनी पडी। उसमें प्रगति करते करते मनुष्य ने जमीन में हल चलाने की, जमीन की मिट्टी को सूर्य की उष्णता पहुँचाने की और धान्य बोकर उसमें से फसल प्राप्त करने की कला सीख ली।

इसलिये अन्न खाने की कला के साथ अन्नोत्पत्ति की यानी खेती की कला भी शिक्षा में स्थान पा गयी।

इसी तरह शरीर को बचाने के लिये प्रथम गुहा में रहना बाद में घर में रहना आदि कलायें आ गईं।

कुदरत की ही प्रेरणा से, समस्त प्राणी जगत में नर और मादा का सहयोगी जीवन जीने लगे। जब बच्चे पैदा हुए तब उनका पालन पोषण, रक्षण और विकास करने की प्रेरणा उनमें उत्पन्न हुई।

इस सारी क्रिया को उत्क्रांति यानी जीवन विकास का क्रम कहते हैं।

गांधीजी ने हमें सिखाया कि जीवन विकास के क्रम का निरीक्षण करके हम अपने शिक्षा क्रम को निश्चित करें। और समय बचाकर गलतियां टाल कर नयी पीढी में अपना जीवन अधिकाधिक उन्नत करने की शक्ति पैदा करें।

इस सारी कला में क्रिया और उनसे मिलनेवाले अनुभव का ही श्रेष्ठ हिस्सा है। इसी को ध्यान में रखकर सारे खानदान को समाज को सारे राष्ट्र को और मानवता को पूर्ण रूप से फायदा पहुँचाना ही गांधीजी की 'नयी तालीम' है। इस क्षेत्र में आज तक जितनी गलतियां हुईं उनको टालकर सारी प्रवृत्ति की बुनियाद ही मजबूत, कार्य कुशल और विकासशील बनाने की इस पद्धति को लोग 'बुनियादी तालीम' कहने लगे हैं। बुनियाद ही अगर ठीक हुई और बुनियाद ठीक करते जो अनुभव हम सीखें उसी की मदद से अगर हमने सारी शिक्षा पद्धतिमें सुधार किया, तो वह 'सब कल्याणकारी, सर्वोदयी शिक्षा पद्धति होगी। इसमें आज तक की गलतियां टालना और कला का कौशल्य बढाना यही मुख्य बात है। इस सुधारका विज्ञान हम अपने समाज में फैलायेंगे, और यहाँ का अनुभव और प्रेरणा सारी दुनिया को देंगे।

इसीलिये नयी तालीम की प्रवृत्ति शुरू हुई है।

'नयी तालीम' के कुछ बुनियादी विचार यहाँ साफ करने पडे। आगे के लिए हम तेजी से प्रगति कर सकेंगे। बुनियाद के विचार निर्दोष और प्राणप्रद होने चाहिये। क्योंकि प्राण ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ शक्ति है।

जयप्रकाश नारायण

बुनियादी क्रान्ति के लिए युवक आगे आवें

(११ अक्टूबर को श्री जयप्रकाश नारायणजी अपने जीवन के ७२ वें वय में पदार्पण कर रहे हैं। व भारत की उत्तम तरुणाई, त्याग बलिदान और सौंदय के प्रतीक हैं। नयी तालीम परिवार की ओरसे हम श्रद्धा विनत होकर उनकी दीर्घायु की मगल कामना करते ह। —सपादक)

मानव का लक्ष्य क्या है इस एक बात की ओर आज सारी दुनिया का ध्यान जाना चाहिए। मनुष्य केवल विज्ञान और उत्पादन वृद्धि के ही लिए जियेगा या उसके सामने कोई दूसरा उद्देश्य भी है। आज दुनिया विज्ञान के पीछे पागल है हमारे यहाँ भी सब यही कहते हैं कि यह तो औद्योगीकरण का जमाना है यदि हम विज्ञान को चुनौती स्वीकार नही करेंगे जमाने की हवा के रुख को नहीं पहचानेंगे तो हम पिछड जायेंगे। अब हम भी मानते हैं कि यह विज्ञान यत्र तथा औद्योगीकरण का जमाना है। हम भी इस युग का हृदय से स्वागत करते हैं। लेकिन हम उस पर विचार पूर्वक सोचना भी चाहते हैं। यन्त्रीकरण की एक बहुत बडी धारा बह रही हैं और उसमें हम भी सूखी लकडी के टुकडे की तरह होश हवाश खोकर बह जायें मनुष्य का भाग्य उस प्रवाह के अधीन हो जाय ऐसा हम हर्गिज नही चाहते। यत्र और विज्ञान को मनुष्य ने पैदा किया है तो किस बात के लिए। क्या उसकी चक्की में स्वय मानव पिस जाय इसके लिए। हम यत्र को ऐसी छूट नही देना चाहते हैं कि वह मनुष्य को ही छिन्न भिन्न कर डाले।

मनुष्य ही पैमाना है

मेरे लिए तो मनुष्य ही सभी वस्तुओं का पैमाना है। धर्म विचारधारा राज्य विज्ञान, यत्र विद्या कला सब कुछ मनुष्य के लिए ही है। इसलिए स्वय मनुष्य को

ही पुर्जों में, यंत्र मानव में परिवर्तित कर दिया जाय, तो फिर बाकी क्या रहा। पुराने जमाने की दास प्रथा में मनुष्य मनुष्य को दास बनाता था, इस नयी दासता में यंत्र मनुष्य को गुलाम बनाता है। हमें यंत्र का ऐसा गुलामी नही चाहिये। हम तो चाहते हैं कि यंत्र मनुष्य का सेवक बन कर काम करे। इसलिये हम नया मार्ग ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं।

आज हमें समाज के मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन करना है। यह छोटा-सा काम नहीं है। करोडो लोगों के मानस परिवर्तन का काम है। ऐसे महान् काम के वाहक बनने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से आज की युवा पीढी को उठानी है। हमारी पीढी के लोगों को जो काम करना था, वह कर चुके। आनेवाले जमाने की जिम्मेदारी आज की नयी पीढी की है, इस देश के तरुणों की है, युवकों की है।

क्रांति के नये वाहक :

एक बार सर्वहारा को समाज में क्रान्तिकारी वर्ग माना गया। किन्तु आज अब मजदूर वर्ग क्रांति का अग्रदूत नही बन सकता। अमेरिका, इग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में मजदूर वर्ग भी समाज का स्थापित हित बन गया है। और स्थापित हित बन जाने के बाद उसमें क्रांतिकारी शक्ति नही रहती। इसलिये यूरोप के युवा आज कह रहे है कि अब जो क्रांति होने वाला है, वह बुद्धिजीवियों का क्रान्ति होगा। विद्यार्थी उसमें सम्मिलित होंगे और क्रान्तिकारी विचारक उसका नेतृत्व करेंगे।

आज पश्चिम में यह देखने में आ रहा है कि विद्यार्थी और युवक वर्तमान समाज व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह कर रहे है। आज के प्रचलित मूल्य जैसे कि उनके यहाँ जो वैभव प्रचुर समाज विकसित हुआ है, उसके विरुद्ध उनका विद्रोह है। आज की जो टेकनॉलाजी है, जो औपचारिक लोकशाही है, उस सबकी क्षमता और उपादेयता को वे आज चुनौती दे रहे हैं।

भारत के विद्यार्थियो और युवको के लिये आज अभी ऐसा कुछ नही कहा जा सकता। बल्कि बहुत बार ऐसा भी देखने में आता है कि राजनैतिक दल तथा जातिवादी और कौमवादी संगठन उनका नाजायज फायदा उठाते है। हमारे यहाँ भी विद्यार्थियों में असन्तोष है। वर्तमान शिक्षण पद्धति की जो खराबियाँ हैं, जिस तरह आज हमारे विद्यार्थियो को शिक्षा दी जा रही है, शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनको जिन परिस्थितियों का सामना करना पडता है, उन सबके कारण उनमें एक विद्रोह की भावना जागती है। बावजूद इसके आज के सभी प्रचलित मूल्यों को वे चुनौती दे रहे है, ऐसा नही कहा जा सकता है। इसलिये हमारे युवको में एक क्रान्तिकारी शक्ति जागृत हो और वे रचनात्मक मार्ग की तरफ मुडें, ऐसा प्रयास करना है। व्यापक समाज परिवर्तन के काम में युवकों की शक्ति लगाकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन को एक मोड देना है।

आज कभी कभी हिंसक क्रान्ति की भी बात कही जाती है। बहुतों को इसका भारी आकर्षण भी होता है। जब लोकतन्त्र की संस्थायें और प्रक्रियायें दयनीय रूप से त्रुटिपूर्ण हों और उस रास्ते से समाज मे तीव्र गति से परिवर्तन होता हुआ न दीखता हो, तो क्या आश्चर्य है कि असन्ताप, निराशा, क्षोभ और अभाव कुछ लोगोंके दिमाग को हिंसा की तरफ मोड दे और वे उसको ही एकमात्र तारक शक्ति मान बैठें। यह सब तो हम समझ सकते हैं। फिर भी यह सवाल प्रासंगिक है कि क्या हिंसा तारक सिद्ध होगी। शांतिपूर्वक सोचें तो पता लगेगा कि इसके पूर्व भी इतिहास में अनेक हिंसक क्रान्तियाँ हो चुकी हैं और उनके परिणामों ने दुनिया के समझदार लोगों के मन में हिंसक मार्ग के प्रति विकर्षण की ही भावनायें पैदा की है।

हिंसक क्रांति की विफलता :

मैं अपनी बात कहूँ तो हिंसक क्रान्ति के लिये मुझे कोई नैतिक आपत्ति नही है। मुझे यदि कोई आपत्ति है तो वह व्यावहारिक है। पहली बात तो यह है कि हिंसक क्रान्ति के परिणाम जल्दी आते हैं, यह एक बडा भारी भ्रम है। कोई यह कह कि रक्त क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्दी होती है, तो दुनिया की क्रान्तियो का इतिहास देखने से ऐसा लगता नही है। बल्कि अनुभव तो यह है कि रक्त क्रान्ति से जो नया समाज बनता है, वह उस समाज स बहुत भिन्न होता है, जिसकी कल्पना क्रान्तिकारियो ने पहले स की होता है। जिन उद्देश्यो को लेकर रक्त क्रान्ति होती है वे उद्देश्य तो पूरे होते नही, बल्कि उसके विपरीत परिणाम ही आते हैं। समाज की रचना क्रान्ति के पहल जैसा क्रान्तिकारी सोचते थे, करना चाहते थे, क्रान्ति के बाद वैसी रचना नही हो पाती। फ्रान्स की क्रान्ति को सौ साल से अधिक हो गया, रूस की क्रान्ति को भी ५५ साल से अधिक हो गये किन्तु उनके लक्ष्यो का क्या हुआ यह आज सब स्पष्ट है। जब कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी दल की स्थापना हुई, तो उसके बाद उसके कार्य की रूपरेखा लेकर मै गाधी जी के पास गया। वे उस पढ गये। और फिर उसके एक मुद्दे पर अपनी उंगली रखकर कहा कि जय प्रकाश, तुम लोग यदि यह कर सको तो मैं सोलहो आने तुम लोगो के साथ हूँ। वह वाक्य था 'हर व्यक्ति को आवश्यकतानुसार मिलेगा और हर व्यक्ति शक्तिभर समाज को देगा।' रूस और चीन में जो हिंसक क्रान्तियाँ हुई, उनका लक्ष्य भी यही था। लेकिन इतने वर्षों बाद भी क्या अभी रूस या चीन में ऐसा हो सका है। इसके बदले वहाँ तो अभी भी 'काम बराबर दाम' का पूंजीवादी सिद्धान्त ही कायम है। आज भी उन लोगो के सामने यह एक बडा सवाल है कि किस तरह जनता को नये मूल्यों में प्रशिक्षित करें, किस तरह समाज में ऐसा मानस परिवर्तन लायें, ताकि जिन आदर्शों को सामने रखकर क्रान्ति हुई थी, वे आदर्श व्यवहार में लाये जा सकें। मैं नही कह सकता कि रूस वाले या चीन वाले कब तक इस आदर्श तक पहुँच सकेंगे।

मैं क्रान्तिशास्त्र के इस स्वयंसिद्ध सिद्धान्त को हमेशा याद रखना चाहिये कि जब तक समाज भीतर से तैयार नहीं होता तब तक क्रान्ति नहीं होती। पुराना समाज अन्दर से जर्जर हो जाता है तब परिस्थिति परिपक्व होती है और क्रान्ति होती है। किन्तु आज भारत की परिस्थिति हिंसक क्रान्ति के लिये उस तरह से अनुकूल नहीं है। इसलिये यहां हिंसक क्रान्ति वालों की बात कदापि आगे नहीं बढ़ेगी। इसलिये इस तरह हिंसक क्रान्ति की हिमायत करनेवाले को शान्ति से पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

दुहरी क्रांति की आवश्यकता :

आज के युग की मांग यह है कि आज मानव आत्मा स्वातंत्र्य चाहती है। आनन्द चाहता है आत्म-साक्षात्कार चाहती है। आज तक जो क्रान्तियाँ हुई हैं वह मानव आत्मा की तड़प का ही परिणाम है। समझने की बात यह है कि आज हम एक बहुत बुनियादी और भिन्न तरह की क्रान्ति की दहलीज पर आ पहुँचे हैं। गांधीजी बार बार एक बात कहते थे वह मुझे याद आती है। वह कहते थे कि दूसरी क्रान्तियाँ इकहरी हैं या कि वे ऐसी क्रान्तियाँ हैं जो मात्र समाज के बाह्य ढाँचे में ही परिवर्तन लाती हैं जब कि मेरी क्रान्ति दुहरी क्रान्ति होगी मानवीय क्रान्ति होगी जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अन्त में समाज के बाह्य ढाँचे में परिवर्तन लायगी। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर तो वास्तविक क्रान्तिकारी के लिये सत्ता पर कब्जा करने का कोई अर्थ नहीं ही होता। मैं गांधीजी के जीवन काल में उनके विचार अच्छी तरह समझ नहीं सका था किन्तु आज मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि गांधीजी के विचार हमारे लिये ही नहीं बल्कि सारी दुनिया के लिये हैं।

इसलिये हमारे देश के युवकों पर यह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि वे इस अहिंसक क्रान्ति को सफल बनाने के लिये जी जान से कोशिश करें। अंग्रेजी राज के जमाने में जोशीले नौजवान सरकारी नौकरियों में जाने से इन्कार कर देते थे। बड़ी बड़ी तनख्वाहों और ऊँचे ऊँचे पदों का मोह उन्हें नहीं होता था। किन्तु अब तो हमारे नवयुवकों के लिये नौकरी ही मुख्य आकर्षण है। इसमें कोई हर्ज भी नहीं है किन्तु उनमें जो अधिक भावनाशील और कम स्व-केन्द्रित हैं उन्हें यह समझना चाहिये कि दैनंदिन सरकारी काम जरूरी होने पर भी वे राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। जिन लोगों के मन में राजनैतिक महत्वाकांक्षाएँ हैं उन्हें यह समझना चाहिये कि विधान सभाएँ एवं सरकारें राष्ट्र निर्माण नहीं कर सकतीं। इसके लिये जनता को जगाना होगा। लोगों के पास पहुँचना उनके साथ रहना और स्वावलम्बी बनने में उनकी मदद करना सबसे अधिक महत्व का काम है।

५६ करोड की आबादी वाले इस देश में इस काम के लिये क्या अब कुछ हजार भाई वहन भी ऐसे नही निकलेंगे कि जो इतने निस्वार्थ, इतने साहसी और इतने दूरदर्शी हो कि अपने आपको इस ऐतिहासिक आन्दोलन में खपा दें। नव युवक अपना हृदय टटोलें।

अध्यात्म—तरुणाई की ही उड़ान है :

इस आह्वान को कौन सुनेगा। कौन आगे कदम बढायेगा। भारत का तरुण नही तो और कौन यह जिम्मेदारी निभायेगा। इस देश का अध्यात्म वूढों की वस्तु नही है। जब हृषीकेश ने जीवन के कुरुक्षेत्र में अपूर्व अध्यात्म का पाचजन्य फूका था, तब वह वृद्ध नही, युवा थे, और वह थे सारथी भारत की उत्कृत्ष्ट तरुणाई के रथ के। जब अपनी प्रिया की गोद में नवजात राहुल को सोया हुआ छोडकर सिद्धार्थ अपनी अद्वितीय सास्कृतिक क्रान्ति के पथ पर चल पडे थे, तो वे वृद्ध नही युवा थे। विवेकानन्द ने शिकागो के रगमच पर जब वेदान्त के सार्वभौम धर्म का उद्‌घोष किया था, तब वे वृद्ध नहीं , युवा थे। गाधी ने दक्षिण अफ्रीका में रगभेद के दावानल में कूद कर जब अध्यात्म का आग्नेय प्रयोग किया था, तब वे वृद्ध नही, युवा थे। अध्यात्म बुढ़ापे की बुढ़भस नही है, तरुणाई की उत्तुगतम उडान है।

इसलिये जिस अभिनव क्रान्ति की ओर, जिस सास्कृतिक क्रान्ति की ओर मैंने इगित किया है, उसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। इस सास्कृतिक क्रान्ति के बिना भारत का एव भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है। यह मानवीय क्रान्ति होगी, आन्तरिक क्रान्ति होगी, ऐसी क्रान्ति, जिसमें भारत का अध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतर जायेगा। तब व्यक्ति अपने हिता का दर्शन समूह के हितो में करने लगेगा और वैसा ही जीवन जीने लगेगा। उस क्रान्ति के बिना न समाजवाद आ सकेगा, न साम्यवाद। सर्वोदय तो उसी क्रान्ति का दूसरा नाम है।

(सर्व सेवा सघ द्वारा प्रकाशित श्री जयप्रकाश नारायण जी की पुस्तक 'मेरी विचार यात्रा' के आधार पर।)

वंशीधर श्रीवास्तव

अति औद्योगिक युग और शिक्षा

शीघ्रता से विकसित होती हुई टेकनालोजी

शिक्षा के नाम पर हमारे विद्यालयों में जो सिखाया जाता है वह बीते हुए कल की बात है। विद्यालय में बालक को भविष्य की तैयारी के लिये भेजा जाता है। भविष्य शिक्षा पर निर्भर है। लेकिन इस तथ्य की जानकारी के बावजूद हमारे विद्यालय मृत सामाजिक प्रणाली के प्रतिनिधि हैं, न कि आनेवाले समाज के। हम अपने विद्यार्थियों को एक ऐसे समाज के लिये तैयार करते हैं जो शीघ्र मर जायगा।

औद्योगिक क्रांति के पहले मनुष्य अपनी संतान को जिन अनुभवों को देता था व उनके लिये आवश्यक थे। क्योंकि उत्पादन की जो प्रवृत्तियाँ अतीत में चलती थीं उनका वर्तमान में भी मूल्य था। परन्तु औद्योगिक युग की टेकनालोजी ने विज्ञान की शीघ्र परिवर्तित दुनियाँ में सब बदल दिया। औद्योगिक युग ने मनुष्य से जो माँग की वह उसे कुटुम्ब में मिल नहीं सकता था। औद्योगिक युग ने मूल्यों में ही क्रांति की। इस मशीन युग ने "सामूहिक शिक्षा" नाम की एक ऐसी मशीन की कल्पना की जिसमें उस तरह के प्रौढ़ तैयार हो सकते थे, जिनकी उसे आवश्यकता थी। नयी दुनिया में, जो कारखानों के धुएँ, यंत्रों की आवाज और मनुष्यों की भीड़ से भरी थी और जिसमें समय का नियंत्रण सूरज और चांद से नहीं कारखाने के भोंपू से होता था, एक ऐसी विद्यालयी प्रणाली की कल्पना की गयी जो इस कारखाने के अनुरूप हो। विद्यार्थियों के समूह को (कारखाने के कच्चे माल की भांति) एक केन्द्रीय शिक्षा संस्था में (कारखाने की भांति) शिक्षकों द्वारा तैयार करने के लिये एकत्र किया गया। शिक्षा का पूरा संयंत्र कारखाने का अनुसरण कर बनाया गया। समय की सूचना के लिए कारखाने के भोंपू का स्थान स्कूल के घंटे ने लिया—स्कूल का पूरा प्रशासनिक ढाँचा कारखाने की "नौकरशाही" की नकल पर ढाला गया। स्कूलों में "अतीत" पर से ध्यान कम हुआ और वर्तमान पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा क्योंकि यंत्रयुग इसी प्रकार के ज्ञान की मांग करता था। ड्यूवी और उनके साथियों ने अमरिकन शिक्षा प्रणाली को प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया और "अतीत" के आग्रह को छोड़कर शिक्षा को वर्तमान जीवन के लिये तैयारी माना। शिक्षा किसी जीवन की तैयारी नहीं "जीवन" ही है। परन्तु परंपरावादियों ने इन प्रगतिशीलों को तुच्छ वर्तमानवादी कहकर तिरस्कृत किया। आज की शिक्षा में रेजिमेंटेशन, *व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अभाव, बैठने का जड़ प्रबन्ध, छात्रों की ग्रुपिंग और ग्रेडिंग, अध्यापक का* अधिकारपूर्ण रोल, विद्यालय के ये सारे तत्व कारखानों की नकल हैं, और ये आज की

शिक्षा को कारखानो के युग के अनुरूप बनाते है। हमारी शिक्षा पद्धति में अतीत की छाया मात्र शेष रह ही गयी है।

(लेकिन तथ्य यह है कि हमारे भारत के स्कूल तो आज के तकनीकी युग के भी अनुरूप नही बन पाये है और तभी एक अति-तकनीकी युग तेजी से पास आ रहा है। अत यदि हमारे स्कूल इस अति-यान्त्रिक युग के अनुरूप नही बने तो इन से हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति नही होगी।)

नयी शैक्षणिक क्रान्ति

कल की तकनीकी प्रणाली में यत्र मानव की अधिकाश भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति करेगे और मनुष्य बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास का काम करेगा। मनुष्य और यत्र दोनो बडे बडे कारखानो और कारखाने के नगरो में केन्द्रित होने के स्थानपर ससार भर मे बिखर जायगे और अत्यन्त सूक्ष्म सचार प्रणाली से जुडे रहेगे। मनुष्य एक बार फिर कारखानो और सामूहिक दफ्तरो से निकलकर समुदाय और कुटम्ब मे वापस जायगा। यह मनुष्य का भविष्य है।

एसे ससार मे आज के तकनीकी युग के अनेक गुण अवगुण हो जायगे। कल के मानव को आज के मानव से बहुत अधिक परिवर्तनो का सामना करना होगा। अत अब शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को इस परिवर्तन के अनुकूल बनने में सक्षम बनाना होना चाहिए। जितना शीघ्र परिवर्तन हो रहा है उतना ही अधिक ध्यान इस बात की ओर देने की आवश्यकता है कि भविष्य की घटनाओ का ढाचा क्या होगा। अब केवल अतीत की समझ से काम नही चलेगा। वर्तमान को समझना भी पर्याप्त नही होगा क्योकि आज का जो परिसर है वह तो शीघ्र बदल जायगा। अब हमको आवश्यकता इस बात की है कि हमारा विद्यार्थी परिवर्तन की दिशा और गति को समझे। दूसरे शब्दो मे वह भविष्य की सही कल्पना कर सके। और यही विद्यार्थी के अध्यापक को भी जानना होगा।

एक अति औद्योगिक शिक्षा प्रणाली का सृजन तब सम्भव होगा जब भविष्योन्मुख आदोलन का जन्म होगा। हम एक एसी परिषद की स्थापना करना चाहिये जो भविष्य पर दृष्टि रखे। इस भविष्य-परिषद का पेशेवर (प्राफेशनल) शिक्षक अथवा विशेषज्ञ हथिया न ले अत इसमे प्रारम्भ से ही विद्यार्थियो का सहभाग (इन्वाल्वमेंट) रहे। क्योकि भविष्य का सामना तो इन्ही को करना है। तरुण के प्रति सहकार मित्रता नही चाहिये और फिर इसमें समुदाय और अभिभावक का सहकार होना चाहिये।

शिक्षा की आज की सरचना भविष्य के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कारगर नही हो सकती। अत हमको तीन काम करने होगे —

(१) शिक्षा प्रणाली के सगठन की सरचना को बदलना होगा।

(२) पाठ्यक्रम में क्रातिकारी परिवर्तन करने होंगे और

(३) शिक्षा को अधिक भविष्योन्मुख दिशा (आरिएटेशन) देनी होगी।

(१) संगठन

आज के विद्यार्थियों की बुनियादी सरचना कारखानों की अनुरूपता पर निर्मित है। हम पीढियों से यही समझते रहे है कि शिक्षा का उचित स्थान स्कूल है। लेकिन नयी शिक्षा को नये समाज के अनुरूप बनना है तो उस स्कूल की चहार दीवारो में बंद करने से काम नही चलेगा। नये युग में बहुत-सी शिक्षा रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटरो और शिक्षण-यत्रो के माध्यम से होगी। प्रौढ भी ज्यो-ज्यो अधिक शिक्षित होते जायेंगे वे अपने बच्चो को पढाने का काम स्वय करेंगे। और सम्भव है कि एक बार घडी का पेन्डुलम फिर "घर" की ओर झुके। यह आज की प्रवृत्ति होती जा रही है कि छात्रो को स्कूल से बाहर ले जाया जाय केवल निरीक्षण के लिये नही समुदाय के काममें महत्वपूर्ण सहकार के लिये।

न्यूयार्क में नीग्रो लोगो के एक कस्बे में एक नियोजित प्रायोगिक शिक्षा सस्था ने शिक्षा के काम को ४५ नाको के स्टोरो दूकानो, भडारो और कार्यालयो में इस तरह बाँट रखा है कि यह कहना कठिन हो गया है कहाँ शिक्षालय समाप्त होता और कहाँ समुदाय प्रारम्भ होता है। विद्यार्थी को जीवन की ट्रेनिंग समुदाय से भी मिलता है और स्कूल के शिक्षकों से भी।

कुछ लोग समुदाय को स्कूल में लाने की बात कहकर प्रक्रिया को उलट देते हैं। सामुदायिक खेत-खलिहान, दूकान स्कूल में आये और विद्यार्थी इनका सचालन करें। स्कूल में और भिन्न प्रकार के इटर प्राइजेज जैसे स्थापत्य-कार्यालय चिकित्सा की प्रयोगशालाएँ, ब्राडकास्टिंग स्टेशन आदि भी आवें। लेकिन अब शिक्षा को सार्वजनिक बनाना होगा तो स्कूल का प्रांगण अपर्याप्त सिद्ध होगा और पूरे समुदाय को स्कूल बनना होगा।

ज्ञान का शीघ्र पुराना पडते जाना और जीवन-अवधि में वृद्धि यह सिद्ध करता है कि युवावस्था में प्राप्त किया ज्ञान और कौशल वृद्धावस्था तक काम का नही रह जायगा। अत अति औद्योगिक युग को 'जीवन-पर्यन्त चलनेवाली शिक्षा' का प्रबध करना चाहिये। तालीम नित नयी तालीम हो। अत अगर शिक्षा जीवन भर चलनेवाली होनी चाहिए तो लडको को पूरे समय तक स्कूल में हाजिर होना आवश्यक नही है। अधिकाश युवको के लिये कुछ समय तक विद्यालयी ज्ञान और कुछ समय तक समुदायमें काम करना और कौशल प्राप्त करना अधिक लाभप्रद होगा।

शिक्षा-विधि

इस प्रकार की नयी सरचना नयी शिक्षण विविध की माँग करती है। आज भी "भाषण प्रणाली' कक्षा का सर्वप्रिय टेकनिक है। जब कि भाषण पद्धति का महत्व अब कुछ दो अर्से तक बना रहेगा। प्रोग्राम्ड शिक्षण, कम्पूटर आधारित गोष्ठियाँ, माइक्रो टीचिंग, पूर्व नियोजित प्रयोग में छात्रोका सहकार, ब्रेन-ट्रेनिंग आदि अधिकाश क्षेत्रो में भाषण पद्धति का स्थान ले लगे।

एक शिक्षक और उसके सामने नियमित ढंग से बैठे हुये कुछ विद्यार्थी आज के औद्योगिक युग के स्कूल का यही चित्र है। भविष्य के स्कूल में इससे भिन्न सरचना का कल्पना करनी होगी—केन्द्रिय सगठन के स्थान पर विकेन्द्रित सगठन, केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण, समुदाय में पूर्ण प्रवेश और तदथ प्रशासन, और जड टाइम-टेबुल के स्थान पर लचीला टाइम टेबुल— यह होगा विकेन्द्रित पद्धति का चित्र।

(२) पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम में वह कुछ भी सम्मिलित न हो जिसका आज और भविष्य में उपयोग न हो। अगर इसका अर्थ आज के पाठ्यक्रम के अनेक अंशो को काट देना है तो वह भी करना चाहिये। इसका अर्थ 'अतीत' का सर्वथा परित्याग नहीं होना चाहिये और न इसका यह अर्थ है कि हम पढ़ने लिखने और गणित विज्ञान की अवहेलना करें। वे तो शिक्षण के बुनियादी तत्व हैं। तात्पर्य यह है कि आज लाखों करोड़ों छात्र उन ज्ञान कौशलों को कठस्थ करने और प्राप्त करनेमें समय व्यतीत करते हैं जिनका भविष्य में उनके लिये कोई प्रयोग नहीं है। क्या जितना समय वे संस्कृत, अथवा एक विदेशी भाषा को सीखनेमें लगाते हैं, वह लगाना चाहिये? क्या सब बालक बीजगणित पढ़ें? क्या वे प्रोग्रामड शिक्षण कला कौशल और सामूहिक सचरण आदि को अधिक समय न दें? पाठ्यक्रम अतीत का अविवेकपूर्ण बोझ न रहे। शिक्षा को भाषा गणित, अर्थशास्त्र अथवा जीवन विज्ञान के इर्द गिर्द क्या सगठित किया जाय? जीवन की प्रवृत्तियों के इर्द गिर्द क्या नहीं? मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ जन्म शैशव किशोरावस्था, विवाह नौकरी, अवकाश ग्रहण, मृत्यु आदि जीवन विकास के स्तरों के इर्द गिर्द क्यों नहीं? अथवा सामाजिक समस्याओं के इर्द गिर्द क्या नहीं? अथवा वर्तमान और भविष्य के महत्वपूर्ण तकनीकों के आधार पर क्या नहीं? आज का पाठ्यक्रम जीवन की आवश्यकताओं का ध्यान रखकर नहीं बनाया गया है और अति शीघ्रता से परिवर्तित होते हुए भविष्य को ध्यान में रखकर तो बिल्कुल ही नहीं बना। वह कुछ स्वार्थों को रक्षित रखने की दृष्टि से बनाया गया है। वह प्रमाद पर आधारित है भयंकर प्रतिस्पर्धा और अपना स्वार्थ इसके मूलमें है।

इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को यह जानने की छूट नहीं होती कि वे सीखना क्या चाहते हैं। एक स्कूल से दूसरे स्कूल में बहुत कम अन्तर होता है। स्कूल एक-से हैं और एक बीतते हुए समाज के प्रतीक हैं। आज गणित अथवा विज्ञान के पाठ्यक्रम में सुधार, अथवा अंग्रेजी शिक्षण की विधि में नये प्रयोग केवल कुछ छिटफुट सुधार कहे जा सकते हैं। ये आवश्यक हो सकते हैं। परन्तु हमें तो मूल्यों में परिवर्तन की आवश्यकता है। आज कोई स्थायी पाठ्यक्रम हो ही नहीं सकता।

मदालसा नारायण

मित्राधिकार से मताधिकार : नयी तालीम का नया पहलू

आज दुनिया में सत्ता का बड़ा बोलबाला है और मानव जीवन में अधिकार की बड़ी महत्ता भी है। पर जहाँ सत्ता है वहाँ कुछ सख्ती है, कुछ मनमानी है, परन्तु जहाँ अधिकार की सजगता है वहाँ केवल जिम्मेवारी है। उसीमें स्वधर्म की पहचान है और कर्तव्य का पालन है। उसी में व्यक्तिगत जीवन का विकास और समाज का कल्याण होता है। तथा नवयुवकों का अभ्युदय और राष्ट्र का उत्थान हो सकता है।

'वर्ल्ड इवोल्यूशन' याने विश्व की क्रमागत उत्क्रांति की यही प्रक्रिया है। प्रकृति और परमेश्वर की निगाहों में इस उत्क्रांति की प्रक्रिया को प्रमाणित करने के लिये अखिल ब्रह्माण्ड या यह सारा जगत एक विश्व-व्यापक सुविशाल प्रयोगशाला है।

राष्ट्रपिता बापूजी के शब्दों में 'क्रान्तयुगी' बाबा विनोबाजी का जीवन-साधना का पूर्वार्ध योग, उद्योग और प्रयोगमय था, जब कि भूदानी बाबा परम ऋषि स्वरूप पूज्य विनोबाजी की जीवन साधना का उत्तरार्ध है— योग, उद्योग और सहयोग रूप।

इस तरह की साधना से ही मानव की महानता सिद्ध होती है और 'शिशु-मंगल कल्याण' की भावना ऐसी साधना से ही परिपोषित हो सकती है। प्राणिमात्र के लिये इस सुविशाल जीवनधारा की धरती के धरातल पर 'जावेम शरद शतम्' के शुभाशीर्वाद लेकर ही अवतरित होता है और अपने 'जीजीवन' के लिये निमित्तमात्र होने वाले अपने जन्मदाता माता-पिता को मानव का श्रेष्ठतम मातृत्व और पितृत्व वही प्रदान करता है, जैसे सुयोग्य शिक्षक के द्वारा शिक्षक को गुरुत्व प्राप्त होता है।

बालक : प्रकृति और पुरुष की एकात्मकताका प्रतीक

बालक प्रकृति माता का सुन्दरतम प्रतीक है, तो साथ ही साथ वह प्रकृति और पुरुष स्वरूप परमेश्वर की पारस्परिक भावना का भी प्रतिफल है, इतना ही नहीं वह अपने जन्मदाता माता-पिता की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रगट होता है।

'पूर्ण है यह, पूर्ण है वह, पूर्ण से निष्पन्न होता पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण को यदि लें निकाल, शेष तब भी पूर्ण ही रहता सदा।' की भाँति वेदोपनिषदों में प्रतिपादित 'पूर्णात्पूर्णम्' के सिद्धान्त को नवजात शिशु बड़ी दिव्यता से प्रमाणित करता है। बुनियादी रूप में धरा रूप धरती माता का आधार बालक पाता है। जन्मदाता

माता के स्तनपान से वह वात्सल्यभरा पोषण पाता है तो गो माता के दूध से सवर्धन पाता है। उसके साथ ही साथ गगा माता के प्रभाव से माँ भारती की सस्कार परम्परा के अनुरूप भारतीय शिशुगणों का तन-मन-जीवन सर्वांगीण रूप से परिपोषित होता है और परम स्नेह मयी निसर्ग माँ की ममता तो वे दिन दूना रात चौगुना पाते हैं। उनका विकासक्रम बडा ही मनमोहक होता है। इस विकास क्रम को समझना आवश्यक है। शास्त्रों में उसका एक ही श्लोक में बडा रोचक वर्णन इस प्रकार आता है कि —

'लालयेत पचवर्षाणि दशवर्षाणि अनुशासयेत
प्राप्तेतु षोडशेवर्षे पुत्र (पुत्री) मित्रवदाचरेत्।'

अर्थात जन्म से लेकर पाच वर्ष तक बडे प्यार दुलार के साथ शिशु का लालन पालन किया जाय। बाद में पाँच से दस वर्ष तक बालक को खूब सख्ती और सावधानी से हर प्रकार के अनुशासन का प्रशिक्षण और सस्कार दिया जाय जिससे उसका आचार-व्यवहार और आदतें खूब अच्छी तरह सुधर जायें और वह बालक या बालिका सदाचारी सद्गुणी, सुसस्कारी और सुशील कहलाने लग जाय ताकि उनके घर परिवार के सब लोग बडा सुख सतोष और गौरव का अनुभव करने लगें। उसी में सबका मान है और उसी में सारी समाज-व्यवस्था की शान है।

शिक्षाशास्त्र का प्राचीनतम सिद्धान्त

इस तरह बचपन से खूब अच्छे सस्कार पानेवाले बालक दस वर्ष के होते हुए किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं और उनका व्यक्तित्व हर प्रकार से खिलने लग जाता है। उनमें सारासार विचार करने की शक्ति और सद्गुणों की स्पर्धा इसी समय जाग्रत हो सकती है अगर घरका वातावरण और सब का आचरण तदनुकूल हो तो बालक बचपन में ही अपने मानिव जीवन के महत्त्व को महसूस करने लग सकता है। इसी तरह ग्यारह बारह तरह और चौदह वर्ष तक बालक के अपने पूर्व-जन्म के सस्कार पूर्ण रूप से प्रफुल्लित होते हैं। पदरवें वर्ष के बाद इस जन्म की कमाई वह करने लगता है ऐसा माना जाता है। तभी प्रगति के पथ पर वह आगे बढता है। उस समय में हर बालक का शरीर खूब स्वस्थ हो उसका मन कलरव करते गगन विहारी पछी-गणों की तरह सदा प्रसन्न रहे और उसका समग्र जीवन सद्गुणों से सपन्न और प्रफुल्लित होता रहे तो उसके अत्यन्त मूल्यवान मानव जीवन की बुनियाद मजबूत हो सकती है।

राष्ट्रपिता बापूजी के आश्रम में विद्या मदिर की प्रार्थना का पहला मत्र उपनिषदों में से यह लिया गया है— 'ॐ सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्य करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै। ॐ शान्ति शान्ति शान्ति। शिक्षक और विद्यार्थी यह प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! हम सब हिलमिलकर रहे, सहभोजन करें, एक साथ पुरुषार्थ के काम करें और हमारा अध्ययन तेजस्वी हो जिसमें हमारे

जावन में तेजस्विता बढ़े। हम सब आपस में खूब प्रेम से रहें कि जिससे कोई हमसे किसी प्रकार का ईर्षा या द्वेष न करे। तभी समाज में सब तरह से शान्तता रह सकती है।' शिक्षकों और विद्यार्थियों की कैसी मंगलमय यह मनोकामना है।

इस तरह की अप्रतिम तेजस्विता से विद्याध्ययन करते हुए तन मन, बुद्धि से अत्यन्त सुचारू रूप से सुविकसित होते हुए बालक जब सोलह वर्ष में पदार्पण करता है, तब वह मानव जीवन का अत्यन्त मौलिक 'मित्राधिकार' प्राप्त कर लेता है। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्र (पुत्री) मित्रवदाचरेत' यह इसी से तो कहा गया है। सचमुच यह मानव के प्रगतिशील जीवन की बड़ी महत्व की मंजिल है और घर परिवार के सभी स्वजनों के लिये अपने घर के हर बालक का सोलहवां वर्ष यह अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार का सुअवसर है। बचपन में सब प्रकार से अपने आश्रित रहने वाला बालक अपना समान भूमिका पर खड़ा होकर अपना मित्र बनता है तो यह कितने बड़े सुख-संतोष की बात है।

पालक और सरक्षक नहीं—मित्र'

ऐसा महसूस करते हुए अविभावकों के लिए खास ध्यान देने की बात तो यही है कि जब अपने बच्चे अपने मित्र बनने की भूमिका पर आते हैं तो हमें भी उनका मित्र बनना है इतना गहरा विश्वास और स्नेह बच्चों का हमें पाना है। बस इतनी सावधानी पालक रखे तो घर स्वर्ग से बढ़कर सुखदायक बन जाय। जन्मदाता माता पिता को अपने राजदुलारे बच्चों के लिये कितना गहरा प्यार होता है। जैसे सृष्टि के रचयिता सृष्टा को अपनी यह सृजनात्मक सृष्टि प्यारी है उतना ही प्यार पालकों को बालकों पर होना सहज स्वाभाविक है। सृष्टि के सृष्टा को अपनी प्रतिकृति रूप सृष्टि के साथ कभी भी समान भूमिका पर मित्रता का अनुभव मिलता है या नहीं कहा नहीं जा सकता जब कि मानव जीवन में जन्मदाता माता पिता को अपने सोलहवें वर्ष में पदार्पण करने वाले बच्चों से मित्रता का घनिष्टता का सुखद अनुभव मिल सकता है। यह कैसा अनुपम शास्त्र विधान है। अपना बचपन और अपना तरुणाई का सुख गौरव महसूस करते हुए जब हम गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं तो मानव-समाज के महत्वपूर्ण अविभाज्य अंग बन जाते हैं। जब प्रथम बालक गोद में आता है तो वही हमें मातृत्व और पितृत्व प्रदान करके 'मातृदेवो भव' और 'पितृदेवो भव' के श्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित करता है। अतः हमारे लिये सबसे अधिक महत्व की बात यही है कि हम उस प्रतिष्ठित पद पर अपनी उच्चतम साधना से और परिपूर्ण सतर्कता से सदा प्रतिष्ठित बने रहें। यह तभी हो सकता है जब बालक की बढ़ती हुई उम्र और बालक के प्रगतिशील मनोविकास के साथ साथ पालक भी अपना आत्म विकास सतत साधते रहें। अन्यथा वे अपने विकासवान बालकों की नजरों में 'आऊट आफ डेट' हो जायेंगे। इसका

सरल सीधा सा कारण यही है कि अपने बालकों का जीवन विकास नसर्गिक रूप से आगे बढता है उसकी तुलना में पालकों की विकास-साधना आज कुंठित होती हुई-सी दीख पड रही है। अगर सचमुच ऐसा है तो यह पालकों की प्रतिष्ठा के लिये बडी खतरनाक बात है। अब 'नोक्सन में सरक्षकत्व का नहीं सखात्व' का मूल्य ही चलेगा यह ध्यान में रहे। अत इस भयानक खतर से हम सभी जल्दी स जल्दी पालकों को यानि तीन पीढी के गृहस्थजनों को तत्काल सभलना ही चाहिय। यह कोई कठिन बात नहीं ह। 'जहाँ चाह वहाँ राह सदा सुनी रहती है और 'जहाँ प्रम वहाँ पथ प्रकाशित होता ही है। तभी तो एक गुजराती कवि ने गाया है— प्रम ज्योति तारो दाखवी मुज जीवन पथ उजाल। यानि प्रेम की ज्योति तुम्हारी दिखला दो प्रभु जीवन पथ उजियाल। यह पालकों के लिये बडी ही सरल और सहज सबक जैसी बात है। क्योंकि उनका मानसरोवर स्नेह स सदा लहराता रहता है। आवश्यकता है केवल स्नान ध्यान की। जैसे दैहिक स्वच्छता और ताजगी के लिय हम प्रतिदिन स्नान करत हैं। इसी तरह मन की स्वच्छता तरावट ताजगी प्रसन्नता आनन्द और उत्साह के लिय मानसिक रूप स दिन में और रात में भी कई बार स्नान ध्यान करना अत्यन्त आवश्यक तो है ही बल्कि अनिवार्य ही समझना चाहिय। तभी जीवन में नित नया आनन्द और उत्साह बढता हुआ रह सकता है। अच्छे सुसंस्कारी घर परिवार और खानदानी म एसी कुछ न कुछ साधना परम्परागत रूप स चलती ही रहती ह। तभी उनका समाज जीवन प्रतिष्ठित कहलाता है। आज के प्रगतिशील ज्ञान विज्ञान की सामूहिक साधना के इस युग में बालकों के पालक स्वरूप माता पिता क जीवन में व्यक्तिगत रूप स आत्म साधना का प्रवाह अखण्ड रूप स मानव जीवन की सिद्धता की ओर प्रवाहित होते ही रहना चाहिए। तभी पालकों की ओर बालकों की श्रद्धा भक्ति दिनोंदिन दृढतर हो सकती है। फिर 'स्टुडेंट अनरस्ट' या जनरेशन गैप की भाषा और समस्या का कोई मतलब ही नहीं रह जायगा।

आत्मानुशासन ही मार्ग है

सोलहवें वर्ष में पदार्पण करते ही बालकों के साथ पालकों का व्यवहार मित्रता का होना चाहिय। यानि घर परिवार क सब इष्ट मित्रों को और माता पिता को भी अपने पुत्र या पुत्री को अपना परम प्यारा मित्र मानकर अत्यन्त मान सम्मान भरा व्यवहार उनके साथ करना ही चाहिय। इसी स शास्त्रों में कहा गया है 'अस्झायमलामता अतुठठन मला घरग' यानि जस घर को रोज साफ किया जाता है वैसे मन का भी रोज साफ सुथरा करते रहना चाहिय। इसस ही अध्ययन चिंतन, मनन की प्रतिदिन की साधना म बडा महत्व माना गया है।

वेदोपनिषदों में और कथा-पुराणों में तरह तरह से मानव मात्र के लिये आत्मानुशासन की साधना समझाई गई है। आद्य जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने 'वेदोनित्यमधीयताम् तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्' याने 'साधकों को वेदों का नित्य अध्ययन करना चाहिये और उसमें बताये गये कर्मों का ठीक से अनुष्ठान भी करते रहना चाहिये।' यह विधान समाज के सर्व सामान्य जनों के लिये किया है। जब कि राष्ट्र के नवोदित तरुणों के लिये विशेष रूप से ये शुभाशिर्वचन अभिव्यक्त हुए हैं :—

"युवास्यात्साधु युवाध्यायकः आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवी सर्ववित्तस्य पूर्णास्यात् ।"

अर्थात् नवयुवकों को सदाचारी, अध्ययन परायण, आशावान, दृढ निश्चयी और बलवान होना चाहिये। उनके लिये यह पृथ्वी सब प्रकार के धनधान्य से सम्पन्न हो उठती है।' ऐसा यह तरुणगणों के उत्साह और पुरुषार्थ को जगाने वाला प्रेरणादायी महामंत्र है। ऐसे अत्यन्त श्रद्धा भरे शुभाशिर्वाद माता-पिता के मानसरोवर में बालकों के लिये सतत तरंगित होते ही रहने चाहिये। तभी सोलहवें वर्ष में पदार्पण करने तक बालकों में मित्राधिकार का संस्कार सुदृढ हो सकेगा। पालकों के लिये यह कितने दर्द हुए आनंद और आश्वासन की बात होगी। सूर्य को मित्र कहा गया है। वह अखिल विश्व का विश्व-मित्र है, क्योंकि वह दुनिया को नित नये रूप में ज्ञान, आरोग्य, आनंदमय जीवन और पोषण देने वाला है। साक्षि रूप में वह विश्व का संरक्षण करने वाला भी है और वह प्राणिमात्र में सत्य-स्नेह की प्रेरणा जगाने वाला तो है ही। इसी तरह पालकों को बालकों का सच्चा मित्र याने सन्मित्र बनना है। इसका मतलब यह हुआ कि मानव जीवन में मित्र भावना का प्रकाशित होना ही श्रेष्ठतम सिद्धता है। उसमें भी अपने ही वराज स्वरूप बच्चों का मित्र बनना यह तो बडी भारी सुख-सौभाग्य की बात समझी जानी चाहिये। एक बार ऐसा अनमोल मित्रपद प्राप्त हो जाने के बाद फिर तो 'परस्पर भावयन्तः श्रेयः परमावास्यथः' के दालान अपने आप खुलने लग जाते हैं। तब सहचिंतन व सहभोजन का आनन्द लूटते हुए हम हर प्रकार से परस्पर सहयोगी बन जाते है। गृहस्थजनों को इससे अधिक और चाहिये ही क्या?

संतान-भक्ति का युग

इन सब बातों का गहराई से विचार करते हुए एक भारतीय नारी के नाते मेरे मातृ हृदय में एक नया सा विचार यह जाग्रत हो रहा है कि जैसे स्त्री जीवन में पति-भक्ति की बड़ी महत्ता मानी गई है वैसे ही अब माता-पिता के जीवन में सन्तान भक्ति की महत्ता सिद्ध होनी ही चाहिये। उसी में उनके मातृ-पितृत्व की सार्थकता

समझा जानी चाहिए। इसके लिये हमें समर्पण की साधना का गहरा चिंतन करना होगा। यह हुई मित्राधिकार के महत्वपूर्ण संस्कार की अप्रतिम महिमा। घर घर के उदीयमान तरुणों में मित्राधिकार की यह भावना शुद्ध हो जाने पर आगे मताधिकार का मंजिल की ओर वे आसानी से अग्रसर हो सकेंगे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में

अनुशासन और विवेकयुक्त जनतंत्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।' तो हमें उसे हासिल करना ही चाहिए। इस शुभ संकल्प के साथ दुनिया का इस सुन्दरतम वस्तु की प्राप्ति के लिए विशिष्ट साधना हमें अपने परम प्रिय मित्र रूप तरुणों के तरल चित्त में सदा जाग्रत रखना होगी। जैसे कि शास्त्रों में अथ गुरुकुलानुशासनम्' के रूप में विद्याध्ययन पूर्ण करने वाले स्नातकों के लिए कहा गया है— सत्यंवद' सदा सत्य बोलो धर्मंचर —सदा धर्माचरण करो स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यं — नित नया स्वाध्याय करने में गफलत मत करो। इतना कह कर आगे अपने परम्परागत समाज जीवन को प्रतिष्ठित रखने के लिये कहा है— मातृदेवो भव पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव अतिथि देवो भव।

इस शुभ संस्कारों का सिंचन हमारे होनहार नवयुवकों को घर में समाज में और विद्यालय महाविद्यालयों में निरन्तर मिलता रहे तो विद्या मंदिर की ॐ असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय। ॐ शान्ति शान्ति शान्ति — स्वरूप यह प्रार्थना अपने आप चरितार्थ हो सकेगी। तब मानव के लिये मन मन मंदिर घर घर गुरुकुल और गांव-गांव गोकुल का वातावरण बनने में देर क्या लगेगी।

ऐसा अप्रतिम जीवन साधनाके साथ राष्ट्र देवो भव की भावना राष्ट्र जनों के जीवन में सहज रूप से वृद्धिगत होगी। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी — का भाव बढ़ेगा।

> 'अय मातृभूमि तेरे चरणों में शीश नमाऊँ
> म भक्ति भेंट अपनी तेरी शरण में लाऊँ
> माथे पे तू हो चंदन छाती पे तू हो माला
> जिव्हा पे गीत तू हो मैं तेरा नाम गाऊँ
> अय मातृभूमि तेरे चरणों में शीश नमाऊँ।'

ऐसी भक्ति भावना दृढ़ होगी और राष्ट्रगगन की दिव्य ज्योति राष्ट्रीय पताका नमो नमो भारत जननी के गौरव की अविकल शाखा नमो नमो के स्वर दिग्दिगंत में अपने आप मुखरित हो उठेंगे।

जब चारों ओर घर घर में ऐसा श्रद्धा भक्तिमय उत्साहपूर्ण वातावरण बनेगा तब सत्यमेव जयते के साथ जनतन्त्र विजयते की भावना जनजीवन में

खिल उठेगा और भारत के अनेकानेक विश्वविद्यालयों के विशिष्ट ध्यान मंत्रों के चिंतन मनन के द्वारा उसका प्रकाश सब ओर फैलने लग जायगा। ऐसे तेजोमय वायुमण्डल में जब हमारे एशिया महाद्वीप में प्रतिष्ठित पुण्यभूमि भारतवर्ष के पुण्यवान विद्यार्थिगणों का शिक्षण और प्रशिक्षण जीवन की बुनियाद को सुदृढ़ करने वाली नित-नई तालीम के रूपमें होने लगेगा तब 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता' — की भावना जन मानस में जगती जायगी।

उत्तम अनुशासन और श्रेष्ठतम विवेक मताधिकार का आधार

इस प्रकार के उन्नततम प्रगतिशील वातावरण में फलने फूलने वाले हमारे नवयुवक जब अपनी स्वर्णिम आयु के २१ वर्ष पूर्ण करेंगे तब वे अपने आप अपने सुंदरतम— सत्यं शिवं सुंदरम— स्वरूप स्वतंत्र-सचालन के लिये हर प्रकार से सहयोग देने वाले सम्माननीय 'मताधिकारी' बनते जायेंगे। जो उत्तम अनुशासन और श्रेष्ठतम विवेक से युक्त होंगे तब स्वतंत्र भारत में संस्थापित यह गौरवमय गणतंत्र दुनिया को सब से सुंदर वस्तु के रूप में सहज सिद्ध हो सकेगा और जन जन के द्वारा जनतन्त्र सचालन का सिलसिला शुरू हो जायगा। तभी अपने सार्वभौम प्रभुत्वसंपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य का गुण गौरव जन जीवन में जग उठेगा। तभी समाज में या राष्ट्रजनों के जीवन में मताधिकार का महत्व उत्तमता से प्रमाणित हो सकेगा।

भारतीय संविधान में भारत के समस्त नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने का दृढ़ संकल्प व्यक्त किया है।

इक्कीस वर्ष के ऊपर की आयु के हम तीन पीढ़ी के भारतीय प्रजाजन सामूहिक रूप से इस संवैधानिक संकल्प से स्वयमेव बँधे हुए ही हैं। अतः अपने हर घर में इस संकल्प की चर्चा चिंतन और साधना सतत जागृत रहनी ही चाहिये।

यही मिताधिकार से मताधिकार की महत्तम महिमा है।

डा. सुगतदास गुप्त

उच्च शिक्षा की दिशा

वर्तमान शिक्षा : नकारात्मक भूमिका

आज तक शिक्षा का प्रमुख कार्य 'प्रणाली' का संरक्षण रहा है, यह सुविधा सम्पन्न व पिरामिड के आकार वाली एक ऐसी व्यवस्था का पोषण तथा संवर्द्धन करती रही है जो इस तथ्य से परिचालित रही है कि केवल थोड़े से लोग ही शिखर तक पहुँच सकते हैं। स्वभावतः ऐसी प्रणाली स्पर्धा व जोर जबरदस्ती पर आधारित रहती है, जिसका अर्थ है हावी रहने की शक्ति और 'प्रत्येक प्रकार की आर्थिक क्रिया में लाभ की प्रवृत्ति' जो इस प्रणाली की प्रमुख मान्यता होती है। **सुविधा सम्पन्न प्रकार का कोई भी समाज मूलतः हिंसक ही होता है।** वह जीवित भी इसीलिये रहता है क्योंकि उसमें सफल लोगों के मुकाबिले असफल लोगों की संख्या काफी अधिक होती है। सफल लोगों की यही अल्पसंख्या बाकी लोगों का नियमन करता है। केवल वही शासन करते हैं। राजनीतिक रूप में हावी रहकर, सारे सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों का नियमन करके निर्णय लेनेवालों की हैसियत से काम करके और लोगों की बड़ी संख्या के हितों का अपहरण निश्चित बनाकर वही इस व्यवस्था का परिचालन करते हैं जब कि अन्य दूसरे बाहर खड़े इन्तजार ही करते रहते हैं। जिस सीमा तक शोषण खुली हिंसा है, उस दृष्टि से इन तथाकथित सफल लोगों की विशिष्ट मंडली का ही सुविधाओं पर एकाधिकार रहता है और उसी से हिंसा का प्रशासन निःसृत होता है।

अल्प संख्यकों की हित-पोषक

शिक्षा, विशेषकर ऊँची शिक्षा इसी प्रणाली के हितों की दृष्टि से निर्मित हुई है। यह उसे संरक्षण भी देती है। यह निश्चित करती है कि कौन सुविधा सम्पन्न लोगों की कतार में शामिल हो और कौन अकिंचन बनकर पीछे खड़े रहें। सन्तुलन अमीर व सुविधा प्राप्त लोगों के पक्ष में अधिकाधिक है, क्योंकि धनिकों के ही लड़के अच्छे-से-अच्छे कालेजों में भर्ती होते हैं और उन्हीं पर अच्छे से अच्छा ध्यान भी दिया जाता है। आज भी ग्रेट ब्रिटेन में जो लोग ऊँची शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं उनका ८० प्रतिशत गैरश्रमिक वर्ग से ही आता है।* यह प्रणाली वैसे गरीब तबके की एक

(* भारत में भी तस्वीर भिन्न नहीं है। —संपादक)

छोटी संख्या को भी प्रवेश की गुंजाइश रखता है लेकिन यह चुनाव बड़ी सतर्कता के साथ किया जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि आज का शिक्षा न केवल सुविधा सम्पन्न प्रणाली बनाये रखने में मदद करता है क्योंकि यह स्वयं भी उसी प्रणाली की एक प्रतिकृति है बल्कि इसके लागू होने का ढंग भी वैसा ही है।

जिस दिन से कोई बच्चा स्कूल में घुसता है या बाद रहता विश्वविद्यालय में, उसके दिन में यह महत्वपूर्ण होता है कि वह जिन्दगी में ऊँचा उठे। धन व वास्तु पैदा करना, दूसरा का सरकता के रास्ते से भौतिक दूर रखना इस लड़ाई के दौरान अपने अन्य सुविधा को भरसक हराते रहना रास्ता पड़ाव के पूर्व के तिनके भी फिसलन भरा बन गया हो तो भी इस बात का तनिक भी पश्चात्ताप किये बिना सबसे ऊँचा जगह पर पहुँचने के लिये अन्य लोगों पर हावी रहना ये सभी इस शिक्षा में सफलता के प्रतीक हैं। इस तरह उच्च शिक्षा एक प्रमुख लाभ कर्मी के साथ रोजगार सम्बन्धी सफलता है और भरपूर समृद्धि के लिये मार्ग प्रशस्त कर देता है।

विघटन इसके मूल में ही है

जो उच्च शिक्षा यह सुविधा सम्पन्न ढाँचा कायम रखने में मदद करता है वही अपने साथ स्वभावतः मनुष्य समुदाय के विघटन का मध्य व कर (उत्पादन दंड) भी लाता है। सिर्फ धन ही समाज में वर्ग अथवा शक्ति नहीं पैदा करता शिक्षा भी यही करती है। समाज का शोषित व शोषक के टुकड़ों में बाँटकर और शोषक के हिंसक व दमनपूर्ण वृत्ति को एक नयी स्वीकृति प्रदान कर यह शिक्षा इस सुविधा सम्पन्न *विरोधमूलक तथा शोषक-प्रणाली को बरकरार बनाये रखता है।* इस तरह यह शिक्षा सामाजिक विकास के प्रति भी विक्रियात्मक रहा है।

स्वयं एक सुविधा सम्पन्न साँचे में ढला होने के कारण शिक्षा विश्वविद्यालय समाज में भी उसी तरह की चूहा दौड़ का वातावरण तैयार करता है। प्रतिस्पर्धा शोषण और हिंसा की सभी शक्तियों को जिनको यह बाहर समाज में प्रोत्साहन देता ही है शिक्षा-क्षेत्र में भी दाखिल करके यह उसके वातावरण को विघटित करता है। इस प्रकार जिस सीमा तक विश्वविद्यालय असफलता के मुकाबिले सफलता में ज्यादातर हिंसक चालबाज व प्रतिस्पर्धायुक्त व्यक्तियों का निर्माण करने में सहायक होते हैं, यह विश्वविद्यालयी भी शिक्षा मानवीय विकास के प्रति उसी सीमा तक विक्रियात्मक ही बनता है।

हिंसक समाज का निर्माण

इस प्रकार उच्च शिक्षा ने एक हिंसक व प्रतिस्पर्धात्मक समाज व्यवस्था के निर्माण में बड़ा खास भूमिका अदा की है। इसने एक विशेष मंडली को लोगों को शिक्षा का एकाधिकार देकर उसी को शक्ति और समृद्धि का पासपोर्ट भी दे दिया। लेकिन जैसे जैसे लोकतांत्रिक प्रक्रिया आगे बढ़ी और अधिकाधिक लोग शक्ति और संपत्ति के लिए सजग प्रतिस्पर्धी होने लगे उन्होंने भी स्वाभावतः विश्वविद्यालय में

घुसने की कोशिश की। फिर भी, किसी तरह परीक्षाओं से पार होकर भी सभी सर्वोच्च जगहों पर तो पहुँच नहीं सकते थे। परिणामतः निराशायें इकट्ठा हुई और आक्रोश की भी शुरुआत हुई और तब शिक्षा के संरक्षकों ने एक नया व्यवस्था शुरू की। यह व्यवस्था था 'शिक्षा का रोजगार से जोड़ने का'। अगर सभी शिखर तक नहीं पहुँच सकते तो उन्हें कम से कम दूसरों से कुछ अच्छा स्थिति हो लने दी जाय, यानी उन्हें नौकरी दी जाय और दूसरों को, जो प्रतिस्पर्धा में सफल होते हैं उन्हें अपना रास्ता बनाने दिया जाय। लेकिन जब यह हिकमत काम न आई और जब ऊँचा शिक्षा भी सफलता के साथ पूरा कर लेने पर लोग अपनी संस्थायें पूरा करने में असफल रहे तो विश्व-विद्यालयों का पतन शुरू हो गया। तब संस्था निर्माण की सुविधा सम्पन्न प्रणाली से उत्पन्न संगठन का हिंसा के विरुद्ध हिंसात्मक विरोध प्रदर्शित किये गये।

ऊँची शिक्षा का सही प्रकृति के एक संक्षिप्त सिंहावलोकन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि संस्थायें इस लिए नहीं उठती हैं कि वे अपनी योजनाओं की प्राप्ति में असफल रहे बल्कि इसलिये कि हम उन्हें 'जिस किसी तरह' पूरा कर सके हैं। क्योंकि स्वयं विश्वविद्यालय का ही यह उद्देश्य रहा है कि वह प्रतिस्पर्धा, चूहा-दौड़ और शोषण को प्रोत्साहित करे। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि सुविधा सम्पन्न लोगों के निर्माण का इस पास डालनेवाली प्रक्रिया को सिर्फ थोड़े ही लोग पार कर सके जब कि अधिकांश को ठोकर ही खानी पड़ा। शिक्षा का परिवेश कुण्ठा, तनाव और हिंसा से स्वभावतः परिपूर्ण हो उठा है।

निषेधक उद्देश्यों का परिपोषण

विश्वविद्यालय के दूसरे उद्देश्य क्या थे? निस्सन्देह इन में से एक था ज्ञान की सीमाओं का विकास और शिक्षा की दमनात्मक प्रणाली के बावजूद कुछ लोग निश्चित ही इसे प्राप्त कर जीवन की क्रांति में वृद्धि कर सके। फिर भी शिक्षा-प्रणाली ऐसों के विरुद्ध आग्रहपूर्वक लड़ती रही। ज्ञानार्जन की सुविधाओंका निर्माण तथा संवर्द्धन नहीं बल्कि छटनी को और कठोर बना देना ही उसकी योजना के अन्तर्गत था। शिक्षा स्तर में वृद्धि विशेष योग्यता के नये नये क्षेत्रों का निर्माण और साधारण जन से शिक्षितों के अलगाव में और वृद्धि तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन को और तीव्र बनाने के लिए समझ में न आने वाले अनगल शब्दों का निर्माण शिक्षा के अन्य उद्देश्य थे। विशिष्ट योग्यतायें जैसे जैसे बढ़ी और नये नये अनगल शब्द और मत गढ़े गये और योग्यता-सम्पन्न वर्ग के कुछ सफल हिस्सों ने ज्ञान पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया शिक्षा की इन लक्ष्य-उन्मुख योजनाओं ने स्थिति को और अधिक उलझन पूर्ण बना दिया। तदनुसार विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या विश्वविद्यालयों में भर्ती होने के लिये आमन्त्रित की गई और पहले से ही संघर्ष व हिंसा से भरी व बीमार ये विद्या संस्थायें ढहने लगीं।

मैं जो कहना चाह रहा हूं वह यह है कि ये विश्वविद्यालय समाज निर्माण में सहायक एक महत्वपूर्ण उपादान रहे हैं फिर भी जिस समाज का उन्होंने निर्माण किया है वह हिंसा व शोषण से भरा हुआ है। वह थोड़े से ही लोगों से नियन्त्रित होता है और तमाम लोगों का रक्त बहाता है। सुविधा सम्पन्न लोगों की वृद्धि, तथा उनके समावेश और अन्य लोगों के निराकरण की अपनी प्रक्रिया में विश्वविद्यालय ने हिंसात्मक समाज को बनाये रखने का अथक चेष्टा की है। इस प्रकार इसका लक्ष्य मानववाद व पुनर्जागरण के कन्द्र या सबलोका योजनाओं का विकीरण कभी नहीं रहा, असमानता, सकीर्णता और अधिकारवाद के विरुद्ध ताकत लगाने का तो बात ही क्या। इसके वहीं विपरीत, विश्वविद्यालय ने सचमुच ज्ञान का थोड़े से गिने चुने लोगों के एकाधिकार-का वस्तु बनाकर ज्ञान के विस्तार में बाधा ही डाला है। असमानता की अधिकाधिक ऊँचाइयों की ओर बढ़ने में हर कदम पर उन्होंने मनवत्तापूर्वक यह शिक्षा देते हुए कि ताकत से प्राप्त सुविधाओं को कैसे सुरक्षित किया जाय और सफलता की महानताओं का कैसे सुरक्षित रखा जाय उसने ऐसे लोगों का मदद की है। इसलिये हम लोगों के दिमाग में यह जरा भी सदेह नहीं रहना चाहिये जैसा कि "क्लब आफ रोम" कहता है कि समाज की समस्याएँ असफल लोगों द्वारा पैदा की जाती हैं बल्कि वे उनके द्वारा उदभूत होती हैं जो सफल हो चुके हैं।

सुधार के कोई भी उपाय अब स्थिति को बदल नहीं सकते। पुलिस को न बुलाने सम्बन्धी कोई भी निश्चय ऊच स्तर के साथ अच्छे विश्वविद्यालयों के निर्माण, के वादे रोजगारों के मौके बढ़ाकर या रोजगारों न पा सकने वालों तक शिक्षा-का प्रसार न करके पढ़े लिखे बेरोजगार लोगों की संख्या में कमी सम्बन्धी कोई भी योजना अब आगे काम नहीं देगी।

तब उपाय क्या है? क्या सभ्यता के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन का कोई बुद्धि सगत इस्तेमाल असम्भव है? क्या अब यह समाज निर्माण व मानवीय विकास के किसी काम का नहीं हो सकता? क्या अब आधे रास्ते आकर हम इसे छोड़ दें और अपनी शिक्षा संस्थाओं को उन्हीं के द्वारा निर्मित हिंसा के भार से विनष्ट हो जानें दें?

नवीन विकल्प

उत्तर कठिन नहीं है। शिक्षा सही ढग से काय सपादित कर इसका एक ही तरीका है कि उसके लक्ष्य की पुनर्व्याख्या और पुरानी की जगह एकदम नये शिक्षा संस्थान का निर्माण। ऐसा करने के लिये हमें सबसे पहले अपने समाज के लक्ष्य की पुनर्व्याख्या करनी होगी, क्योंकि शिक्षा सदैव समाज से जुड़ी रहती है। इसलिये नये सदर्भ में शिक्षा को लक्ष्यहीनता का क्षेत्र छोड़नी होगा। शिक्षा का न तो यह काम होगा कि वह उसे प्राप्त करनेवालों को चूहा-दौड़ में जीतने में या समृद्धि प्राप्त करने में मदद करे और न उसे किसी सुविधा सम्पन्न व्यक्ति का अपने एकाधिकार स्थापित

करने तथा कायम रखने में मदद करने की जरूरत है। इसके बदले शिक्षा को "नये समाज" की ओर उन्मुख होना चाहिये। ऐसा समाज जो शोषण, विकास और प्रतिस्पर्धा से बचता है। जो आत्म-नियंत्रण, सेवा और सहकार पर आधारित होता है। ऐसे समाज में सभी प्रकार के वर्गीकरण और संघर्ष समाप्त हो ही जाने चाहिये। अपने प्रकार में सुविधा सम्पन्न न होकर यह नया समाज स्वरूप व कार्य की दृष्टि से अहिंसक होता है।

समकालीन इतिहास के विद्यार्थियों के समक्ष अब तक यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि विकास और प्रचुरता न तो सम्भव है न वांछित ही। यह कठोर वास्तविकता कि प्रचुरता प्राप्त करना सम्भव नहीं है हमारे प्रयत्नों के परिणामों से भी भलीभाँति प्रकट हो जाती है। गरीबी की समस्याओं को सुलझाकर अपने लोगों के बडे समूह के लिये प्रचुरता लाने में हमारी असफलता हमारे साधनों की अनुपयुक्तता के कारण नहीं है। वास्तविक तथ्य यह है कि अब दुनिया में कहीं भी प्रचुरता लाना सम्भव नहीं है, अविकसित देशों में तो सम्भावना और भी कम है। इन राष्ट्रों में निर्णय लेने वाले लोग इस सरल सत्य को पहचान नहीं पा रहे हैं।

फिर भी यह तथ्य तो है ही कि हम विकास-कार्य की दृष्टि से सफल नहीं हुए हैं। वास्तवमें इतने बडे पैमाने और इतने व्यापक रूप में वर्तमान अर्थ में विकास सम्भव ही नहीं हैं। अगर अमेरिका आज समृद्ध है तो सिर्फ इसलिये कि उसे सिर्फ थोडे से लोगों का ही विकास करना है। (दुनिया की आबादी का केवल ५% प्रतिशत जिसके लिये वह एक विशाल लागत लगाता है, दुनिया के साधनों का ४५ प्रतिशत) इस प्रकार विकास तभी सम्भव है जब उसे चाहने वाले क्षेत्र में साधनों का असंतुलित एकत्रीकरण कर दिया जाय। इसलिये किसी एक स्थान के 'विकास' का अर्थ ही है किसी अन्य का निम्न-विकास।

दुनिया के सन्दर्भ में जो सही है वही भारत की आज की व्यवस्था के सन्दर्भ में भी सही है। इस प्रकार यह तो सम्भव है कि हिन्दुस्तान में "क्रैश प्रोग्राम" (त्वरित कार्यक्रम) "पैकेज एरिया' (सुनिश्चित क्षेत्र) जैसे सफलता के नमूने या समृद्धि के द्वीप कायम किये जाय। लेकिन सबके लिये "विकास" कर पाना सम्भव नहीं है। समृद्धि या विकास प्रकृतया असमानता की ओर उन्मुख होते हैं। इनकी उस समाजमें कल्पना सम्भव नहीं है जो जानबूझकर शोषण-व्यवस्था का चुनाव नहीं करता। किसी स्थान व किसी स्तर पर विकास तभी सम्भव है जब किसी अन्य जगह किसी विशेष बिन्दु पर गरीबीको अनिवार्य मान लिया जाय। इस प्रकार समृद्धि और गरीबी दोनों ही मनुष्य निर्मित हैं। एक की स्थिति दूसरे के कारण ही है।

दुनिया के किसी भी देश ने, सिवाय उनके जो वर्तमान सदी के प्रारम्भ में ही प्रचुरता प्राप्त कर चुके थे, द्वितीय महायुद्धके बाद समृद्धि की झलक भी प्राप्त नहीं की

है। पृथ्वी के ७० प्रतिशत को, जिसे 'तीसरी दुनिया' के रूप में जाना जाता है और जिस विकास के लिये पृथ्वी के सिर्फ १० प्रतिशत साधन उपलब्ध हैं, वास्तव में प्रचुरता नामक किसी चीज को प्राप्त करने की आशा नहीं रखनी चाहिये। अगर कोई आश्चर्य घट भी जाय और तीसरी दुनिया पृथ्वी के ७० प्रतिशत साधन प्राप्त कर लेती है, जो उसे करना भी चाहिये, तो भी प्रचुरता के सादृश्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं होगा।

प्रचुरता नहीं सम्पन्नता

इसलिये तीसरी दुनिया का आनेवाला समाज प्रचुरता का समाज नहीं होगा। जो कुछ वह कभी बन सकता है वह यही होगा कि इस समाज में न गरीबी रहेगी न प्रचुरता। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि प्रचुरता और गरीबी दोनों का एक दूसरे से अन्तरंग सम्बन्ध है और एक की स्थिति दूसरे के कारण होती है। लेकिन यदि प्रचुरता प्राप्त करना सम्भव नहीं है तो गरीबी दूर करना तो है ही। तथ्य तो यह है कि गरीबी दूर करना तभी सम्भव हो सकेगा जब प्रचुरता मिटेगी।

इस प्रकार नया समाज प्रचुरता पर आधारित नहीं रहेगा और इसलिए उसमें *किसी प्रतिस्पर्धा या चूहा-दौड़ की जरूरत नहीं रहेगी। 'लाभ कमाना' या,* लाभ की प्रवृत्ति तब सफलता की मापदंड नहीं रहेगी और तब नये सन्दर्भ में सेवा, न कि स्वामित्वहरण, सभी प्रकार के आर्थिक क्रिया-कलापों की एक मात्र प्रेरणा बन जाएगी। ऐसे समाज में प्रत्येक उपभोक्ता उत्पादक भी बनेगा। ऐसे समाज की राजनीतिक व्यवस्था प्रभुत्व पर आधारित नहीं होगी बल्कि सर्वानुमति से परिचालित होगी। कमजोर और गरीब ही उसका नियंत्रण करेंगे। नये समाज में जीवन का लक्ष्य व्यक्तिगत सफलता नहीं होगी। बल्कि दूसरों की सफलता, पड़ोसी की और पूरे समाज की सफलता जीवन का प्रमुख संचालक शक्ति बनेगी।

हम नये समाज के उद्देश्यों की गिनती करते रहे हैं क्योंकि उस समाज से अलग रहकर ऊँची शिक्षा का एक नया हितकर कार्यक्रम विकसित करना सम्भव नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को उस प्राप्तव्य व वरेण्य आदर्श-लोक के लायक बनाना होना चाहिये जो नये समाज की परिकल्पना में निहित है। और तब ऊँची शिक्षा का उद्देश्य भी भिन्न ही होगा। सादे जीवन व उच्च विचार के लिये ज्ञान और हुनर की खोज करते हुए ऊँची शिक्षा की नयी व्यवस्था मनुष्यों में प्रतिस्पर्धा नहीं बल्कि आत्मनिग्रह की भावना भरेगी। यह शिक्षा-व्यवस्था प्रतिभा को कुचलेगी नहीं क्योंकि गंतव्य की दृष्टि से वह गैर-सुविधा सम्पन्न व गुण निरपेक्ष होगी। इसके विपरीत वह प्रतिभावानों को गरीबी के मूल्यों को समझने व अपने साथी-सहयोगी को उठाने में समर्थ बनायेगी। इस नये समाज में विश्वविद्यालय एक दूसरे को शिक्षा के खेल में हराने के बजाय ज्ञान के विकीरण से सम्बद्ध रहेगा। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था

हिंसक नही होगी। वह चूहा-दौड व शोषण को भी प्रोत्साहन नही देगी और न वह सभी के हित की अवहेलना कर कुछ थोड़े से लोगा का सफलता के लिये वकालत करेगी।

यह नया समाज स्वभावत झगडा और शोषण की उपासना नही करगा। इस नयी व्यवस्था में कोई विजयी या कोई विजित, कोई खूनखराबी या कोई हिंसा नही होगी। किसी पद की छीना झपटी, प्रतिस्पर्धा, प्रभुत्व और सफलता के स्थान पर सेवा, सहकार व त्याग का प्रादुर्भाव होगा।

कुछ सुझाव

यदि उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाजका निर्माण करना है ता इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये कई उपाया का जरूर पडेगा। इनमें स कुछ नीचे दिये जा रहे हैं। सबसे पहले **नयी व्यवस्था में शिक्षा को रोजी से अलग करना ही पडेगा।** हालाकि शिक्षा उस प्राप्त करनेवाला को नाचे दा गइ बाता के लिये तैयार करगी, यानी (१) बौद्धिक एकान्तवास स बाहर आना। (२) धरती और लोगा की सस्कृति क और सन्निकट आना, (३) शिक्षित व्यक्ति का भी उत्पादक बनाना (वह केवल एक आलसी उपभोक्ता नही बना रहगा) तथा (४) राजी (रोजगारी) सम्बन्धी प्रशिक्षण सम्बन्धित विशिष्ट कुशलता प्राप्त सगठन की जिम्मेदारी रहगा।

१ से ४ तक दिये गये ऊपर के सदगुण ज्ञान के पाठ्यक्रम क साथ मिलकर शिक्षा की विषय-वस्तु प्रस्तुत करेंगे पशे सम्बन्धा प्रशिक्षण की नही। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति कोइ न कोइ विशिष्ट हुनर सीखेगा और उस तकनाकी का ऐसा प्रशिक्षण दिया जायगा जो असम्पन्न समाज के उपकरणों को परिचालित रखेगा, फिर भी सामान्य शिक्षा और विशेषत उच्च शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का व्यक्तित्व निर्माण होगा।

शिक्षा के अन्य उद्देश्य होंगे स्वय ज्ञान के लिये ज्ञान प्रदान करना और साथ ही गुणाभिमान के विरुद्व सघर्ष भी करना। इन प्रस्तावों को व्यवहार रूप देने के लिये अनेक सुनिश्चित उपायोकी आवश्यकता पडेगी। यह तो स्वाभाविक है कि शब्द के परम्परागत अर्थ में जो पिछडे कहे जाते है उन्हे मेधावी छात्र के मुकाबले सर्वोत्तम शिक्षा का सबसे अधिक लाभ मिलना चाहिये। इसलिए जो विद्यार्थी "फेल" कहे जाते है उन्हे ही सर्वोत्तम कालेजो में पढने के लिये भेजा जाना चाहिये। जिनमें अपनी प्राकृतिक प्रतिभा या शक्ति है वे अपने आप भी सीख सकते है। एक साधारण बुद्धि का शिक्षक भी उनके लिये पर्याप्त होगा। **विद्यार्थी की नैसर्गिक प्रतिभा जितनी ही कम होगी उसके शिक्षक की योग्यता उतनी अधिक होनी चाहिए।**

यदि हम वस्तुतः इस पिरैमिड आकार वाले समाज को उलटने के लिये और गरीबों, हरिजनों और पद-दलितों को आगे बढ़ने के नये मौके देने के लिये कृत-संकल्प हैं तो शिक्षा की सर्वोत्तम सुविधायें एकमात्र उन्हीं के लिये आरक्षित करने की आवश्यकता होगी। हमें इस समूह को एक विशिष्ट समय तक अंग्रेजी के माध्यम से सीखने की सुविधा देनी होगी जब कि अन्य सभी, जिनकी भाषायें काफी विकसित हैं अपनी अपनी मातृभाषा के जरिये सीख सकते हैं। हिन्दुस्तान के करीब ८ प्रतिशत लोग किसी भी क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग नहीं करते। कम-से-कम उन्हें तो अंग्रेजी के माध्यम से सीखने का मौका देना ही चाहिये। बजाय इसके कि उन्हें कोई माध्यम (स्थानीय व क्षेत्रीय भाषा) स्वीकार करने के लिये बाध्य किया जाय जो कि निश्चित उनके पिछले दमन कर्ताओं की भाषा रही है।

अब सुधार असम्भव

अव्यवस्थित शिक्षा विस्फोट के बारे में एक शब्द और। क्या संस्थाओं का आज जो वर्तमान ढांचा है शिक्षा के इस बोझ को सम्भाल सकता है? आनेवाले पांच वर्षों में जैसे ही २५ प्रतिशत से भी ऊपर भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिये उनके दरवाजे खटखटायेंगे स्पष्ट है कि वह दबाव बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। तब इस विषय पर गम्भीरता से सोचना ही पड़ेगा और यह तय करना पड़ेगा कि क्या इस व्यवस्था में सुधार करके भविष्य में इसका ही इस्तेमाल करना सम्भव हो सकेगा या इसके बदले कोई नया व्यवस्था करना पड़ेगा।

इन पंक्तियों के लेखक का यह मत है कि वर्तमान ढांचे में मरम्मत सम्भव ही नहीं हो सकता। कारण यह है कि विश्वविद्यालयों का एक इतिहास है और वे एक विशिष्ट उद्देश्य के साथ निर्मित भी हुये थे। पहले भी जिन विश्वविद्यालयों का विकास हुआ, जैसे तक्षशिला, नालंदा या आक्सफर्ड और कैम्ब्रिज वे एक सीमित संख्या तक के लोगों के लिये ही थे। हिन्दुस्तान में भी अंग्रेजों ने जिन विश्वविद्यालयों का प्रारम्भ किया वे सरकार के लिए नौकर तैयार करने के लिए कायम किये गये थे। उन्हें सरकारी नौकरियों के लिये लोगों की जो संख्या चाहिये था वह भी सीमित ही थी। इस प्रकार विश्वविद्यालय अपने मूलरूप में उसी समाज के लिये बने थे जिसमें कोई सुविधा सम्पन्न व्यक्ति ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आ सकता था।

हर नागरिक के द्वार तक उच्च शिक्षा

किसी लोकतान्त्रिक विस्फोट की स्थिति में जिसका हम आज सामना कर रहे हैं, यह अकल्पनीय है कि सुविधा सम्पन्न लोगों की एक सीमित संख्या ही विश्व-विद्यालय में घुसने पायेगी। इसलिये वर्तमान ढांचे में एक उग्र परिवर्तन की आवश्यकता है और इसलिये एक नये नमूने के साथ शुरुआत करना सरल होगा। शिक्षा से आज जो अपेक्षायें हैं उनके लिये उच्च शिक्षा की 'गैर-संस्थात्मक प्रणाली' की आवश्यकता

होगी। हमारे पास आज जो थोड़े विश्वविद्यालय हैं उनमें यदि सबको नहीं अटाया जा सकता हो तो हल यह नहीं है कि उनकी संख्या बढ़ा दी जाय— बल्कि इसके बदले प्रत्येक 'नागरिक के दरवाजे तक उच्च शिक्षा' को लाकर अपने लक्ष्य की सिद्धि सबसे अच्छी प्रकार हो सकेगी।

ऐसी स्थिति में संचार साधनों को आधुनिक बनाना होगा और प्रशिक्षण द्वारा शिक्षा लादने के बजाय उसे 'स्वयं प्राप्त करने' पर अधिक जोर देना होगा। ऐसी व्यवस्था में स्वभावतः संस्थागत व चलता फिरता दोनों प्रकार की पुस्तकालय सेवाओं के एवं बड़े जाल की व्यवस्था करनी होगी। विकेन्द्रित प्रयोगशाला व अनुसंधान की भी व्यवस्था करनी होगी। जहाँ विद्यार्थी संदर्भ व मार्गदर्शन के लिये जा सकें।

उच्च शिक्षा का इस प्रकार संक्षेप में एक नया पादचित्र प्रस्तुत हुआ। इसके उद्देश्य नये हैं। यह कहने के लिये किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान विश्वविद्यालय धराशायी हो रहे हैं और इसके एक विकल्प की आवश्यकता है। विद्यार्थियों की संख्या के बोझ उद्देश्यों की विक्रियता और ढाँचे की सड़ाँध— इन्हीं बातों ने विश्वविद्यालयों को दर्शनीय कगार तक पहुँचा दिया है। एक निर्जीव अश्व को जब और आगे पीटना और यह सोचना कि वह अब भी दौड़ सकता है व्यर्थ है।

(भावानुवाद : रामभूषण)

प्रिंस क्रोपाटकिन

समग्र-शिक्षा

पुराने समय में वैज्ञानिकों और खासकर प्रकृति दार्शनिकों ने शरीर श्रम और हस्तकौशल का तिरस्कार नहीं किया था। गैलीलियो ने अपना टेलिस्कोप अपने हाथ से बनाया था। न्यूटन ने बचपन में ही उपकरणों की व्यवस्था करना सीख लिया था, उसने बचपन में ही कुशल मशीनों का आविष्कार करने में अपने युवा मस्तिष्क को लगा दिया था और जब उसने दृष्टि विज्ञान में अपनी शोधें आरम्भ की तो वह अपने उपकरणों के लिये काच पालिश में तथा कारीगरों के उस समय के सर्वोत्तम नमूने, अपने टेलिस्कोप को स्वयं बनाने में समर्थ हो गया था। लाइबनिट्ज भी मशीनों का आविष्कार करने का शौकीन था तथा लिनास (Linnaeus) अपने बागवान पिता के साथ दैनिक काम करते हुये वनस्पतिशास्त्री बन गया। संक्षेप में प्रतिभाशाली लोगों के लिये दस्त शिल्प के कारण सूक्ष्म शोधों में कोई बाधा नहीं आई, उल्टे इससे उनको मदद ही मिली है।

किन्तु अब हमने यह प्रक्रिया बदल दी है। श्रम विभाजन के नाम पर हमने शरीर-श्रम को मानसिक श्रम से अलग कर दिया है। आज विज्ञान के लोग शरीर-श्रम को तिरस्कार की निगाह से देखते हैं। उनमें से अधिकांश तो अपने लिये आवश्यक वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण तो क्या उनका खाका तक तैयार करने में असमर्थ होते हैं और अपनी आवश्यकता के उपकरणों के लिये साधन ढूंढने का काम

उपकरण-निर्माता के ऊपर छोड देते हैं। इतना ही नही उन्होने शरीर-श्रम को घृणा का एक शास्त्र ही गढ डाला है। वे अपने बाप-दादा से अधिक वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त तो नही ही करते किन्तु साथ ही एक सामान्य कारखाने में काम करने लायक तक शिक्षा से वे वंचित रह जाते हैं। उनके बच्चे १३-१४ साल की उम्र से ही किसी खदान अथवा फैक्ट्री में काम करने के लिये धकेल दिये जाते है। जहाँ वे स्कूलो में पढा हुआ थोडा बहुत ज्ञान भी शीघ्र भूल जाते है।

औद्योगीकरण ने प्रारम्भ में कर्मियो (Workers) की तीन पीढियों का आविष्कार किया, किन्तु जब उन्होने यह करना भी बन्द कर दिया है। इंजीनियर और खासकर मशीनों के इंजीनियर अब प्रतिभा अथवा पर्याप्त व्यावहारिकता से वंचित हो गये है। वे लोग उन मामूली बातो की जानकारी से भी वंचित हो गये है जो केवल किसी वर्कशाप में ही सीखी जा सकती है और जो वाष्प के इंजिन बनाना सम्भव बनाती हैं। केवल वही लोग मशीनो में सुधार कर सकते है जो उसके बारे में केवल रेखा-चित्रों या नमूनों में ही नही वरन् अपनी सांसो और धडकनो में भी मशीन के पास खडे खडे अचेतन मन में भी उसके बारे में चिंतन करते रहते हैं। सीमिटन और न्यूकोमन वास्तव में उत्तम इंजीनियर थे किन्तु उनके इंजिनो में भी पिस्टन के हर आघात पर भाप के वाल्व को खोलने के लिये एक ऐसा लडका रहता था जिसने एक बार मशीन के सिलेन्डर के साथ वाल्व का ऐसा सम्पर्क कायम करना जान लिया ताकि वाल्व पुन स्वत खुल जाय और लडका अपने साथियो के साथ खेलने चला जाय।

जब कि उद्योग गत शताब्दि के अंत और खासकर इस सदी के प्रथम दशकों में धरती का चेहरा बदल सकने वाले क्रान्तिकारी आविष्कार करता रहे हैं विज्ञान अपनी आविष्कार करने की शक्ति खोता जा रहा है। अब वैज्ञानिक लगभग कोई आविष्कार नही करते या बहुत कम करते हैं। क्या यह बात वास्तव मे आश्चर्यजनक नही है कि वाष्प इंजिन, यहाँ तक कि उसके मुख्य सिद्धान्त रेलवे इंजिन, वाष्प नौका, टेलीविजन, फोनोग्राम, बुनाई मशीन, लेस मशीन, लाइट हाउस, गिट्टी की पक्की सडके, कालों तथा रंगीन फोटोग्राफी और ऐसी ही असंख्य न्यून महत्वकी वस्तुओ का आविष्कार किसी भी व्यावसायिक वैज्ञानिक ने नही किया, यद्यपि उक्त आविष्कारो के साथ अपना नाम जोडने में उन्हे कोई ऐतराज किसी को नही होता। एक वकील के क्लर्क सीमिटन, उपकरण निर्माता वाट, ब्रेकमैन स्टीवेन्सन, जौहरी के यहाँ काम करने वाला नौसिखुआ फल्टन, एक सामान्य राज टेलफार्ड और चक्की बनाने वाले रेने जैसे लोगो ने ही, जिन्होने शायद ही स्कूलो में सामान्य शिक्षा पाई और जिन्होने धनिकों की मेजो पर से ज्ञान के कुछ टुकडे पा लिये तथा जिन्हे अत्यन्त आदिम साधनो से काम करना पडा और जो अत्यन्त अज्ञात लोग थे, मि स्माइल के शब्दों में वास्तव में

'आधुनिक सभ्यता के निर्माता' थे, जब कि व्यावसायिक वैज्ञानिक, केवल रसायन विज्ञान को छोडकर, जिन्हें ज्ञान प्राप्त करने तथा उसका प्रयोग करने के सब साधन सहज उपलब्ध थे, प्रकृति की शक्तियों का उपयोग तथा व्यवस्था करने की कला, मनुष्य जाति को सिखानेवाली सामान्य प्राथमिक मोटर्स, मशीन अथवा उपकरणों में से अत्यन्त कम का ही आविष्कार कर सके हैं। यह तथ्य विस्मयकारी है किन्तु इसका कारण सरल है। वाट्स तथा स्टीवेन्सन जैसे लोग उन बातों के बारेमें, जो प्रसिद्ध या विद्वान पुरुषों को मालूम नहीं थी, कुछ न कुछ जानते थे। वे अपने हाथों का उपयोग करना जानते थे, उनके परिवेश ने उनकी आविष्कार करनेवाली प्रतिभा को उत्तेजन दिया, वे यन्त्रों और उनके प्रसिद्ध सिद्धान्तों तथा उनके कार्यों के बारेमें जानते थे, उन्होंने कारखाने की हवा में सांस ली थी।

हमारा मत यह है कि उद्योग और विज्ञान दोनों, और वास्तव में समग्र समाज, के हित के लियें प्रत्येक मनुष्य को बिना किसी जन्म आदि के भेदों के ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जो उसे विज्ञान तथा हस्तकला के गहन ज्ञान को संयुक्त करने में समर्थ बना सके। ज्ञान में विशेषीकरण की महत्ता को मैं पूरी तरह से मान्य करता हूँ किन्तु हमारी राय है कि विशेषीकरण विज्ञान तथा हस्तकलामें एक स्तर की सामान्य शिक्षा के बाद ही होना चाहिये। मानसिक और शारीरिक कार्यकर्ताओं में समाज के विभाजन की दृष्टि से हम दोनों तरह की क्रियाओं को मिलाने का विरोध करते हैं और वास्तव में बजाय टेक्नीकल शिक्षा के जिसका अर्थ मस्तिष्क और हाथ-श्रम के वर्तमान विभाजन को कायम रखना है, हम 'शैक्षिक समग्र' अथवा सम्पूर्ण शिक्षा का आग्रह करते हैं जिसका अर्थ है इस प्रकार के हानिकारक विभाजन की समाप्ति।

(नवजीवन प्रेस अहमदाबाद के द्वारा प्रकाशित श्री किशोरलाल मशरूवाला की पुस्तक 'टुवर्ड्स न्यू एज्युकेशनल पैटर्न्स' में 'क्रोपाटकिन आन कम्पलीट एज्युकेशन' के आधार पर।)

पुस्तक परिचय

कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा

एज्युकेशन फार सेल्प हेल्पः

आत्म सहयाग क लिये शिक्षा (Education for Self-Help) — लेखक – श्री ई वी कैसल प्रकाशक – आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लदन, पृष्ठ – १६३ मूल्य – १७ रु।

शिक्षा के बारे में आज क चिंतन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अब उस जोवन जाने के अथ के रूप में तेजा म ग्रहण किया जा रहा है। केवल तीन 'आर' को शिक्षा अब समय स पोछे पड गई है। पूर्वी दुनिया में सभवत गाधी जो ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने शिक्षा को जोवन निर्माण का कला के रूपमें रखा और इस बात पर जार दिया कि समाजा का विकास उनका शिक्षा का प्रति फल होना है। गाधा जा की 'बुनियादी शिक्षा' का विचार जिस अमरोका के प्रख्यात शिक्षा दार्शनिक श्री जानडयूवी ने 'शिक्षा में सर्वोत्तम आधुनिक विचार' कहा था, इसो सिद्धान्त की व्याख्या है। आज के भारत में गाधो जी के विचारो के लिये कोई जगह नही दोखती है किन्तु पश्चिम जा अभो हमारी प्रेरणा का श्रोत है तेजी से गाधाजी के विचारो की ओर जा रहा है। व लोग हमारी तरह हर बात में गाधो जी का नाम भले ही न लेत हो कि तु यदि हम वहाँ निकल पिछले दो हो तीन सालो के साहित्य और खास कर शिक्षा विज्ञान समाजशास्त्र अर्थशास्त्र आदि समाज विज्ञानो का साहित्य को ध्यान स दखें तो यह तथ्य स्पष्ट हा जायगा।

अभी हाल हो में आक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस स निकलो श्री ई वो कैसल की पुस्तक एजुकेशन फार सेल्फ हेल्प इस तरह के शिक्षा साहित्य मे एक और पुस्तक है। श्री कसल हल विश्वविद्यालय अमरीका में शिक्षा के प्रोफेसर रह चुके है और मकरेरे तथा अन्य उच्च शिक्षा सस्थाना में विजिटिंग प्रोफेसर' का काम भी कर चुके है। व चार वर्षों तक पूर्वी अफ्रीका के देशो में, जिन्होने भारत की ही तरह साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का जुआ फेंक कर हाल ही में आजादी प्राप्त की है और जो आज भारत की ही तरह अपने राष्ट्र निर्माण को समस्याओ से जूझ रह है सामाजिक विकास में शिक्षा के रोल का अध्ययन करते रहे है और

अपनी 'ग्रोइग इन ईस्ट आफ्रीका' नामक पुस्तक में उन्होंने इस विषय की अच्छी विवेचना की है। उनकी यह समीक्षित पुस्तक भी उनके उस अध्ययन और खासकर भारतीय उप महाद्वीप तथा भू पू ब्रिटिश अफ्रीका के देशो की शैक्षिक समस्याओ से सम्बन्धित है।

श्री कैंसल ने इस पुस्तक में इस बात पर जोर दिया है कि विकासशील देशो की समस्याओ का हल पश्चिमी देशो के उदाहरणो की नकल करके नही निकाला जा सकता है। विकासशील देश, जिन्हे लेखक 'तीसरी दुनिया' कहता है अपनी परम्परा और सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थिति के सन्दर्भ में ही अपनी समस्याओ का हल खोजें। यह तीसरी दुनिया मुख्यत 'देहाती' दुनिया है इसलिए यहाँ हमें देहातो की 'सुप्त उत्पादक शक्तियो' की उपेक्षा नही करना चाहिए। यह अत्यन्त ही खतरनाक बात होगी। लेखक कनाडा के भू पू प्रधान मन्त्री श्री पियरसन की रिपोर्ट 'पार्टनर्स इन डेवलपमेंट' में किये गये इस कथन से कि "यदि तीसरी दुनिया को अपनी आज की गरीबी और भुखमरी से मुक्त होना है तो उनकी विकास योजनाओ में आमूल क्रान्ति कारी परिवर्तन किये जाने बहुत आवश्यक हैं" सहमत होते हुए इस बात पर जोर देता है कि "इन देशो को अपने ग्रामीण समुदायो पर जहाँ उनकी ८० फीसदी से ना अधिक जनता निवास करती है ध्यान देना होगा और शिक्षा के क्षेत्र में भी इसी दृष्टि से प्राथमिकताओ का चयन करना होगा।" लेखक कहता है कि "मैंने इस सिद्धान्त को कि सही अथवा अच्छी शिक्षा व्यवस्था वही है जो सम्बन्धित समाज को विशिष्ट आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओ और उद्देश्यो के अनुकूल हो दूसरे शब्दो में शैक्षिक नियोजन 'अच्छी शिक्षा' क्या है इस अस्पष्ट और पूर्व निर्धारित सिद्धान्त के बजाय समाज की उन वास्तविक परिस्थितियो को जिनमें योजना का क्रियान्वयन होना है, जो शिक्षा व्यवस्था प्रोत्साहन दे— ध्यान में रखते हुये शिक्षा की विशिष्ट प्राथमिकताओ की चर्चा ही इस पुस्तक में की है। मैंने यह पुस्तक 'विकास के लिये शिक्षा' पर जोर देने के लिए लिखी है।"

पुस्तक दो भागो में विभाजित है। पहले भाग में इस तीसरी दुनिया की विकास सम्बन्धी क्रियाओ और समस्याओं की चर्चा की गई है। लेखक की राय में 'विकास स्वयं में इस दुनिया की एक परिस्थिति' है और उसे समझे बिना उसके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था का आयोजन नही किया जा सकता।' इसलिए इस भाग में लेखक इस क्षेत्र में काम कर रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि दबावो और प्रभावो की, जो क्षेत्र की प्रगति को प्रोत्साहन देने अथवा अवरुद्ध करने का काम करते हैं, और जिनके आधार पर आगे की प्राथमिकताओ का भी चयन होता है, चर्चा की है। इस दुनिया की विकास स्थिति की चर्चा करते हुए लेखक एक महत्व की बात यह कहता है कि "यद्यपि कुछ देशो में अभी भी शिक्षा, व्यापार, भाषा, सरकार

तथा प्रशासन आदि में पुराने साम्राज्यी अथवा औपनिवेशिक अवशेष मौजूद हैं किन्तु इन नव स्वतन्त्र देशों में अब अपने पुराने मालिकों के साथ स्थाई रूप से बंधे रहने की कोई इच्छा नहीं है। वे रूस, चीन, जापान, या अमरीका कहीं से भी मदद लेने को प्रसन्नता से इच्छुक हैं और इस प्रकार 'प्रभाव-क्षेत्र' के लिये पुराना संघर्ष जारी है किन्तु इन देशों की इस नव-उपनिवेशवाद अथवा पुराने शत्रु के नये नाम के प्रति पूरी सतर्क निगाह है।" यह आशाप्रद बात है किन्तु लेखक ने यह नहीं कहा कि इसका अर्थ यह है कि ये देश अपनी अस्मिता (आइडिंटोटी) को पहचान गये हैं। आज तो हम भारत के ही उदाहरण से कह सकते हैं कि भले ही हम अब किसी बाहरी देश के दबाव अथवा शोषण में रहना पसन्द न करते हों किन्तु अपने समाज में हमने उन मूल्यों को ठुकराया नहीं है। यही बात अन्य देशों की भी है। समस्त तीसरी दुनिया आज तक विकास को १९५१ में संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा दी गई इस परिभाषा को मान्य करती है कि "अमरीका, कानाडा, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी योरोपीय देशों के मुकाबिले कम प्रतिव्यक्ति आय वाले देश ही अविकसित देश हैं।" (मेजर्स फार दि इकोनामिक डेवलपमेंट फार अन्डर डेवलप्ड कंट्रीज, १९५१) यह परिभाषा पूर्णतया गलत है। इसलिए लेखक भी कहता है कि "हमें विकास को ऐसी स्थिति के रूप में देखना चाहिये जिसमें व्यक्ति ऊपर से लादी गई किसी प्रक्रिया का हथियार मात्र नहीं वरन् अपने 'वातावरण का कर्ता और कर्म' स्वयं बनता है। विकास समाज के हर वर्ग को गहराई से छू देने वाली सामुदायिक उद्देश्यपरकता की मांग करता है।" यह शिक्षा का काम है कि वह समुदाय को इस तरह की उद्देश्यपरकता प्रदान करे।

पुस्तक के दूसरे भाग में शैक्षिक-नियोजन और उसकी आवश्यकताओं और समस्याओं की चर्चा की गई है। पुस्तक को 'विकास' और 'शिक्षा' इन दो भागों में बाँटा ही गया है। विकासशील देशों की शैक्षिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में लेखक का मत है कि "इन देशों को अब आगे के लिये अपनी प्राथमिकतायें निश्चित कर लेनी होंगी और उन्हें इसमें अपनी 'हर वस्तु से अधिकतम लेने' की पुरानी औपनिवेशिक परिपाटी की विरासत छोड़ देनी होगी। आज जब सभी अनिवार्य सार्वभौम शिक्षा की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं तो हमें शिक्षा भी 'विनियोग' है और 'रद्दी शिक्षा से नितान्त अशिक्षित रहना बेहतर है' के बीच चुनाव कर लेना होगा।" अभी शिक्षा में सुधार के नाम पर सर्वत्र सही विद्यालयों की संख्या बढ़ाने, उनमें छात्र संख्या में वृद्धि करने और पाठ्यक्रमों में कुछ काम की व्यवस्था करने देने आदि पर जोर दिया जा रहा है। शिक्षा के नाम पर व्यय किए जानेवाले धन में वृद्धि करने को शिक्षा में सुधार का नाम दिया जा रहा है। किन्तु लेखक युनेस्को के श्री डा. माइकेल हूवरमनको उद्धृत करते हुए कहता है, कि "कोई शिक्षित जनसंख्या शिक्षा व्यवस्था पर लगाये गये धन को किसी रूप में वापस कर आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को हल कर देगी यह पश्चिम से लिया गया खतरनाक विचार है। वास्तव में केवल शिक्षा विस्तार

बुराइयों को घटाने के बजाय बढ़ायेगा ही।" इसलिए लेखक का सुझाव है कि "हमें शिक्षा में बजाय संख्यात्मक के गुणात्मक परिवर्तन करने चाहिये।" इस सम्बन्ध में लेखक कुछ देशों, जैसे तंजानिया में डा. न्यरेरे, के द्वारा किये जानेवाले शैक्षिक परिवर्तनों का भी चर्चा करता है और नियोजकों को आगाह करता है कि 'कुल राष्ट्रीय आय, जो शिक्षा-व्यय के मुकाबिले कम गति से बढ़ती और बढ़ रही है, के अधिकतम प्रतिशत का शिक्षा पर खर्च करने से भी कोई समस्या हल नहीं होगी जब तक कि शिक्षा को उत्पादकता के साथ नहीं जोड़ा जाता है।" १९५० के दशक में शिक्षा पर होने वाला कुल व्यय कुल राष्ट्रीय आय का २ से ४ प्रतिशत तक बढ़ा किन्तु अब यह व्यय बढ़कर १० से २० प्रतिशत तक हो गया है। लेखक चेत बना देता है कि आगे इस प्रकार का निरन्तर बढ़ता जा रहा शैक्षिक व्यय प्राप्त करना नितान्त कठिन होता जायगा। क्योंकि राष्ट्रीय आय या उत्पादन जो इस शिक्षा-व्यय का भी श्रोत है उस मात्रा में नहीं बढ़ रहा है न बढ़ ही सकता है। इस सन्दर्भ में लेखक ने उपकरणों और शाही इमारतों (विद्यालयों) पर होने वाले खर्च को भी आलोचना की है। इसके बजाय शिक्षा की विधियों में आमूल परिवर्तन करने, पाठ्यक्रमों में सामाजिक सन्दर्भ शामिल करने और राष्ट्रीय आय के बजाय मानव-सम्पत्ति पर ध्यान देने की लेखक सलाह देता है। उच्च शिक्षा यद्यपि नितान्त अनार्थिक होती जा रही है किन्तु उसके लिये भीड़ बराबर बढ़ रही है। लेखक का राय है कि इसे कम किया जाना चाहिये और यह काम हायर सेकन्डरी तक की शिक्षा को छात्रों में 'अपनी मदद स्वयं करने' की विधि बनाने से ही होगा और उसे ग्राम विकास के लिये कार्यकर्ता तैयार करने की दृष्टि से उप विभागों में बाँटना होगा। इस प्रकार के अंतवर्ती प्रावधान आधुनिक विश्व विद्यालयीन शिक्षा और शोध शिक्षा तथा नीचे मूलगामी शिक्षा-स्तर (ग्रास रूट लेवल) के बीच सम्यक् कड़ी का काम करेंगे। लेखक का यह विचार सेवाग्राम में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन को इस सिफारिश जैसा है कि स सम्पूर्ण शिक्षा का १०+२+३ के भागोंमें बाँट देना चाहिये।

लेखक ने इस बातपर काफी जोर दिया है कि विद्यालय की क्रियाओं का समुदाय के जीवन के साथ एकात्म होना चाहिये। इसके लिये लेखक ने दो मुख्य सुझाव दिये हैं। एक तो यह कि विद्यालय को अत्यन्त मितव्ययिता से चलाना चाहिये। जहाँ छात्र अपने कामोंके द्वारा अपनी मदद करेंगे। जैसे कि वे रसोई बनाने, खेतों में काम करने, सफाई करने, विद्यालय के खेत से अनाज की व्यवस्था करने आदि के काम करेंगे। कोई भी विद्यालय अपना पूरा व्यय नहीं उठा सकेगा किन्तु छात्र इस तरह से खर्चे का काफी बड़ा भाग वहन कर सकेंगे। यही कारण है कि 'स्कूलमें खेत' ही इसके बजाय 'खेत का ही स्कूल' होना अधिक सही है। दूसरी बात यह कि सामुदायिक-विकास की दृष्टि से विद्यालय में सामुदायिक वृत्तियों के प्रोत्साहन के लिये शिक्षकों का इन्वाल्मेंट होना आवश्यक है। उनमें सहकार की स्वैच्छिक वृत्ति, व्यक्तिगत

पहल का भाव, और निजी जिम्मेदारी की भावना का होना आवश्यक है। हर अध्यापक को समझना चाहिये कि वह जो कुछ कहता है उसके बजाय वह जो कुछ करता है उसका मूल्य ही सबकुछ है। उसके कर्तव्यों में से एक बडा कर्तव्य यह है कि वह छात्रों को 'निर्णय लेने' की क्रिया मे भाग लेने के लिये प्रोत्साहन दे और इसके लिये वह स्वशासन की ऐसी सरल विधियो का निर्माण करे ताकि छात्र अपने निजी सामाजिक जीवन की उचित व्यवस्था के लिये सही जिम्मेदारी उठा सकें। लेखक १९७० में हुई 'कामनवेल्थ कान्फ्रेन्स' की इस सिफारिश से सहमत है कि "खासकर प्राथमिक शिक्षा में प्राप्त होने वाले लाभों में सबसे महत्व की बात शिक्षकों का चरित्र और मनोवृत्ति है।"

किन्तु इस क्षेत्र में तब तक कोई सुधार नही हो सकता जब तक कि शिक्षा महाविद्यालयों, निरीक्षको और प्रशासको में अपने निजी उदाहरण के व्यवहार से शिक्षकों में विश्वास पैदा करने की योग्यता नहीं आती। इसलिए शिक्षको को न केवल कक्षा में ही वरन् उससे बाहर भी अनौपचारिक स्थितियो में अपने छात्रो के 'साथ' काम करना होगा।

पुस्तक आद्योपान्त गभीरता से पढने लायक है। हमारे देश में आज शिक्षा में 'कार्यानुभव' प्राप्त करने पर बहुत जोर दिया जा रहा है। किन्तु उसके लिये जो योजना बनती है, उदाहरण के लिये हम पाचवी योजना में शिक्षा को हा ले, उससे यह नही लगता कि हमने सचमुच इस विषयपर पूरी गभीरता और स्पष्टता के साथ विचार किया है। शिक्षा का काम न केवल व्यक्ति को 'सार्थक' मनुष्य बनाना है अपितु उसे समुदाय का 'निर्माता' भी बनाना है। शिक्षा और समुदाय एक ही सिक्के के दो पहलू है और इन्हे अलग अलग नही रखा जा सकता। जहाँ तक हमने समझा है अभी तक 'कार्यानुभव' का अर्थ 'शिक्षा में कुछ कार्य' जोड देना मात्र माना गया है किन्तु असल काम 'शिक्षा में कार्य' जोडना नही है अपितु 'कार्य को शिक्षा' बनाने का है। श्री बंसल की यह पुस्तक इस विषय को बहुत ही सुन्दर ढग से रखती है। शिक्षा में रुचि लेने वाले सभी पाठको से हमारा अनुरोध है कि वे इस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ें खासकर जिन्हें गाधी जी के विचारों में कुछ भी आस्था हो उन्हे यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

मेरे मन में कोई शक नहीं है

"मेरे मन में कोई शक नहीं है" ..."मैं जवाहर लाल की हैसियत से कहता हूँ कि मेरे दिमाग में कोई शक नही है कि इस 'बुनियादी तालीम' के ही रास्ते पर हमें चलना है, ७ वर्ष की, और ७ वर्ष से पहले पूर्व-बुनियादी और उसके बाद भी। और फिर यह सोचना है कि इसमें दूसरी टेकनीकल तालीम कैसे खपेगी। यह एक सवाल है और विचार करने के लायक है। किन्तु उसे हर आदमी नही सीखेगा, आज भी नही सीखता। हमें तो यह याद रखना है कि एक आम तालीम हरएक के लिये, करोड़ों बच्चो के लिये, हमें रखनी होगी। यह टेकनीकल तालीम, बाद को इसमें जुड सकती है, बढ सकती है, खास लोगों के लिये। इसमें मुझे कोई शक नही कि इसी ढग से हमें चलना है खासकर स्कूलो में तो इसे कर ही देना चाहिये। अगर स्कूलो में नही करेंगे तो कब करेंगे ?

"अच्छा हो कि हम अपनी तालीम को उस तरफ न झुकने दें जो हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल न हो। आजकल हमारे विद्यार्थी विदेशो में जाते हैं, यह अच्छा है, किन्तु वे जब वहाँ से सीखकर आते हैं तो उनके दिमागो मे उन्ही देशो के ढंग और विचार रहते हैं। वे यहाँ भी उसी ढगसे काम करना चाहते हैं। यहाँ की जमीन दूसरी है, परिस्थितियाँ दूसरी हैं, साधन दूसरे हैं, लोग दूसरे हैं, काम करने की शक्ति भी दूसरी है। इसलिये यह बात गलत है कि हम उनकी बातों और विचारों को अपने देश में चलायें। और अपने देश में वह चल भी नही सकती। किन्तु जब वे इसे यहाँ चलाने की कोशिश करते हैं और थोड़ा बहुत चलाते भी हैं तो फिर बहुत परेशान होते हैं और फिर कुछ कर नही सकते। इसलिये हमें अपनी हैसियत के अनुसार ही काम करना चाहिये और ऊपर की बातो पर व्यर्थ रुपया नही खर्च करना चाहिये।"

—जवाहरलाल नेहरू

नयी तालीम : अक्टूबर, '७३
पहिले से डाक-व्यय दिय बिना भजन की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

समवत आन वाली दुनिया के वारे में आज जितना चिंतन पहले कमी नहीं हुआ है। क्या हमारी यह दुनिया हमेशा ही हिंसा की ही दुनिया रहेगी ? क्या यहाँ हमेशा ही गरीबी भुखमरी और दुख ही रहेगा ? क्या र्म म हमारी आस्था और दृढ हागी या दुनिया ईश्वर-विहीन हो जायगी ? यदि समाज म बडा आमूल परिवर्तन करना हो तो फिर परिवतन कैस लाया जायगा ? युद्ध या क्राति से ? या शाति से आयेगा ?

प्रत्यक व्यक्ति भावी विश्व का वैसा ही चित्र खींचता है जैसी वह आशा या इच्छा करता है। मैं अपना उत्तर केवल अपने विश्वास के वल पर नहीं अपितु अपने निश्चित मत के आधार पर दे रहा हूँ। कल की दुनिया अहिंसा पर आधारित दुनिया होगी इसे ऐसा होना ही चाहिए। यह पहला नियम है। वाकी सारी वात इसमें से ही निकलेंगी।

आने वाली कल की दुनिया मे मैं कोई युद्ध, क्राति अथवा रक्तपात नहीं देखता। और इस दुनिया मे पहले कमी भी अमी के मुकाविल ईश्वर पर कहीं अधिक गहरा और दृढ विश्वास होगा। स्वय दुनिया का अस्तित्व ही एक व्यापक अर्थ में धर्म पर ही निर्भर करता है। इसे समाप्त करने के सारे प्रयत्न असफल होंगे।

—महा मा गाधी

मुद्रक शकरराव लोंढ, राष्ट्रभाषा प्रस वर्धा

वर्ष : २२

अंक : ४

नवम्बर, १९७३

राष्ट्रनायक प. जवाहरलाल नेहरू

जिनकी ८४ वीं जयन्ती १४ नवम्बर को सोल्लास मनाई गई

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक : ४
मूल्य : ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण १७७
तालीम को उधर न झुकने दे १८३ जवाहरलाल नेहरू
शिक्षा-मन्त्रालय की शिक्षा योजना १८७ श्रीमन्नारायण
जो सीखना है— १९० वंशीधर श्रीवास्तव
शिक्षण और परिवर्तन १९९ बबलभाई मेहता
बुनियादी शिक्षा २०५ बी एस माथुर
राज्यों में बुनियादी शिक्षा की प्रगति
गुजरात राज्य म बुनियादी
शिक्षा का प्रगति २१३
आचार्यकुल प्रगति विवरण २२१

नवम्बर, '७३

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अंक का मूल्य ७० पैसे है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित।

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ४

मध्य एशिया का युद्ध

पिछले महीने में मध्य एशिया में एकबार फिर इजराइल और अरब देशो में भयकर युद्ध छिड गया, जिसमें दोनो ओर ही भारी क्षति पहुँची। सन् १९६७ में भी इसी प्रकार इस क्षेत्र मे ६ दिन का युद्ध हुआ था और इज्राइल ने मिस्र को बुरी तरह हरा दिया था। इस बार यह युद्ध १८ दिन तक चला और उसमें दुनिया की दो महान शक्तियो —अमेरिका और रूस ने बडी मात्रा में युद्ध सामग्री पहुँचा कर उसे और भी उग्र व विनाशक बना दिया। बाद को सयुक्त राष्ट्र सघ की सुरक्षा परिषद् क प्रस्ताव के अनुसार 'सीज फायर' घोषित हुआ, और यद्यपि आरभ में उसका अमल ठीक तौर पर नही हो रहा था किन्तु अब अमेरिकी विदेशमत्री हेनरी किसिंगर के प्रयासो से दोनो देशो ने एक शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। यह कहा जा सकता है कि इस युद्ध में किसी राष्ट्र की जीत नही हुई, बल्कि दोनो ही हारे हैं।

इस तरह ससार के देशो ने एक बार फिर अच्छी तरह देख लिया कि युद्ध से कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती है। वियतनाम के १२ वर्ष तक चलने वाले युद्ध का भी यही हाल रहा। आखिर अमेरिका जैसे शक्ति वाले देश को वहाँ से बिना जीते हटना पडा। उक्त

समस्या आज भी उसी प्रकार जटिल बनी हुई है। महात्मा गांधी ने विश्व के सभी देशों से बार-बार अपील की थी कि वे युद्ध के बजाय विश्व-शान्ति के लिए आपसी बातचीत से विभिन्न समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करें। किन्तु यह सचमुच गहरे दुःख का विषय है कि दुनिया के देश अभी भी आपस में बातचीत करने के बजाय युद्ध की ज्वाला में कूद पड़ते है और विश्व-शान्ति को गम्भीर खतरे में डाल देते है।

हम आशा करते है कि अब मध्य एशिया के इस क्षेत्र में आपसी विचार-विमर्श द्वारा वर्तमान समस्याओं का स्थायी हल निकलेगा ताकि भविष्य में फिर युद्ध की चिंगारियाँ न फैले और विभिन्न राष्ट्र मित्रता और सदभावना के वातावरण में रह कर अपना-अपना आर्थिक विकास करने में समर्थ हो।

अमेरीका का 'वॉटर गेट' कांड

हम आये दिन समाचारपत्रो में पढते हैं कि अमेरिका का 'वॉटर गेट' काड निरन्तर पेचीदा बनता जा रहा है और राष्ट्रपति निक्सन की प्रतिष्ठा दिनोदिन नीचे गिरती जा रही है। कुछ समय पहले ही अमेरिका के उपराष्ट्रपति श्री एगन्यु को भी त्याग-पत्र देना पडा क्योंकि उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार के गम्भीर आराप लगाए गए थे। उन्होंने विभिन्न कम्पनियो से लाखो डॉलर 'राजनैतिक फंड' के नाम से प्राप्त किए, किन्तु ये बड़ी रकमें उन्होने स्वयं अपने पास व्यक्तिगत ढग से रख ली। पहले तो उन्होंने इन अभियोगों से इनकार किया। लेकिन बाद में उनको अपनी गलती स्वीकार करनी पड़ी और राजनीति से सन्यास लेना पडा। भारत में भी इन दिनो बहुत से मन्त्री चुनावफड के नाम से लाखों रुपया जमा कर रहे है जो वास्तव में काला धन है। पहले तो व्यापारी कम्पनियों को कानूनी इजाजत थी कि वे राजनीतिक दलों को चन्दा दे सकें। लेकिन अब यह कानून बदल दिया गया है और फलतः इन कम्पनियो को चुनाव आदि कामों के लिए काला धन देना पड़ता है। इन रकमो में से कितनी राशि राजनीतिक दलो के दफ्तर में पहुँचती है और कितनी राजनीतिज्ञों की

व्यक्तिगत जेबो में, यह कहना बडा कठिन है। इसी वजह से देश मे व्यापक भ्रष्टाचार फैल रहा है और सार्वजनिक जीवन दूषित बनता चला जा रहा है।

राष्ट्रपति निक्सन की ईमानदारी पर भी खुद अमरिकी जनता को बहुत कम विश्वास रह गया है। उन्होने सचाई को छुपाने के लिए लगातार कोशिशें की है, लेकिन वे सत्य को जितना छिपाने की कोशिश करते है उतना ही वह दुनिया की निगाहो के सामने स्पष्ट होता जा रहा है। अब तो अमेरिका में जोरो से आवाजें उठ रही हैं कि राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही की जाय और उन्हें अपने पद से हटने के लिए मजबूर किया जाय। अमेरिका और शायद ससार के राजनैतिक इतिहास में यह सबसे दु खद और शर्मनाक घटना है।

इस 'वॉटर गेट' काड से हमें भी समय पर चेत जाना चाहिए। गाधीजी ने बार-बार हमें यही समझाया था कि पवित्र उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए हमारे साधन भी उतने ही पवित्र और शुद्ध होने चाहिए। साधन-शुद्धि के बिना हमारी राजनीति धूल के समान निस्तेज बनगी और सभी की प्रतिष्ठा मिटटी में मिल जायगी। हम सत्य को कितना ही छिपाने की कोशिश कर, किन्तु अन्त में वह अपना तेज जाहिर किए बिना नही रहता। भारत का राष्ट्र चिन्ह 'सत्यमेव जयते' है। यह केवल एक औपचारिक मन्त्र न रह जाय। हमें उसीके अनुरूप अपना आचरण शुद्ध और सत्यपूर्ण बनाना होगा।

बगलोर का शिक्षा सम्मेलन

पिछले ८ और ९ अक्टूबर को बगलोर विश्वविद्यालय द्वारा मैसूर राज्य शिक्षा सम्मेलन, बगलोर में आयोजित किया गया था। उसकी अध्यक्षता स्वय राज्यपाल श्री मोहनलाल सुखाडिया ने की और राज्य के शिक्षा मन्त्री श्री बदरीनारायण तथा विभिन्न उपकुलपतियो तथा उच्च शिक्षाधिकारियों ने उसमें सक्रिय हिस्सा लिया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य गत अक्टूबर में हुए सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशो का अध्ययन कर उन्हें मैसूर राज्य में तेजी से लागू करना था।

अपने उद्घाटन भाषण में हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि हम 'बुनियादी तालीम' शब्दावलि का प्रयोग करें या न करें, किन्तु महात्मा गाधी के इस सनातन सिद्धान्त को मानना ही होगा कि हमारी शिक्षा प्रणाली समाज उपयोगी और उत्पादक श्रम पर आधारित हो। इसलिए वर्तमान स्थिति में यह नितान्त आवश्यक है कि सभी शिक्षण सस्थाओ का आसपास के विकास कार्यक्रमो से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो और प्रत्येक विद्यार्थी को किसी न किसी प्रकार के उत्पादक काम में हिस्सा लेने का अवसर मिले। यदि ऐसा नही हुआ तो शिक्षित बकारो की समस्या कभी भी हल न हो सकेगी और शिक्षा व विकास दोनो ही असफल साबित होगे।

हमें खुशी है कि दो दिन की विस्तृत और गहरी चर्चाओं के बाद बगलोर शिक्षा सम्मेसन ने सेवाग्राम सम्मेलन की लगभग सभी सिफारिशें सहर्ष स्वीकार की और उन्हें कार्यान्वित करने का सकल्प किया।

हम उम्मीद करते है कि इस प्रकार के राज्य स्तरीय शिक्षा सम्मेलन देश के अन्य राज्यो म भी शीघ्र आयोजित किए जाएंगे ताकि हमारी शिक्षा पद्धति में तेजी से क्रान्ति लाई जा सके और भारत की लोकशाही को मजबूत और गतिशील बनाया जा सके।

——श्रीमन्नारायण

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट

इस अक में हम युनेस्को के द्वारा नियुक्त एक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की सस्तुतियाँ द रहे हैं। आयोग की रिपोर्ट और सस्तुति पढ़ने से पता लगेगा कि गाधीजी के शिक्षा सबधी विचार कितने अद्यतन और क्रान्तिकारी थे। उन्होन शिक्षा को 'जन्म से मृत्यु पर्यन्त' चलने वाली एक प्रक्रिया कहा था। यह आयोग भी शिक्षा को 'जीवन पर्यन्त' चलने वाली प्रक्रिया मानता है। गाधीजी न शिक्षा को 'जीवन के द्वारा

जीवन की शिक्षा' कहा था, यह आयोग भी सस्थागत शिक्षा को शिक्षा का पर्याय न मान कर, उसे अपर्याप्त मानकर, 'जीवन के पूरे क्षेत्र में' व्याप्त करने की सिफारिश कर रहा है। गाधीजी ने साहस पूर्वक कहा था कि साक्षरता मात्र शिक्षा नही है और केवल पुस्तको के माध्यम से सही शिक्षा नही दी जा सकती है। आयोग का भी वही मत है। गाधीजी ने शिक्षा का लक्ष्य स्वतत्रता बताया था, 'सा विद्या या विमुक्तये।' गाधीजी ने कहा था कि 'शिक्षा का ध्येय है व्यक्ति को वह क्षमता प्रदान करना जिससे वह सृजन के लिए और मन चाहे व्यवसाय चुनने के लिये सक्षम हो सके।' गाधीजी की शिक्षा की यह कल्पना मानो आयोग की ही सस्तुति है। और गाधीजी ने जब शिक्षा को उत्पादक दस्तकारी के माध्यम से देने की बात कही थी तो उन्होंने शास्त्रीय शिक्षा को इस दस्तकारी से अनुबधित करने की बात भी कही थी। आज आयोग सस्तुति करता है कि 'यदि उद्योगो का वास्तविक मूल्य प्राप्त करना हो तो उन्हें सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ अनुबधित कर देना चाहिए।'

सबसे बडी बात तो यह है कि कोठारी आयोग ने जिस 'बेसिक शिक्षा' को छोड देने की बात कही है विश्व के प्रख्यात् शिक्षा शास्त्रियो का यह आयोग सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा के लिय 'बेसिक शिक्षा' (बेसिक एज्युकेशन) और माध्यमिक शिक्षा के लिये (पोस्ट बेसिक एज्युकेशन) शब्द का प्रयोग किया है। गाधीजी ने तो 'बेसिक' शब्द का प्रयोग इसीलिये किया था कि वे इस तरह की शिक्षा को सबके लिये बुनियादी, यानी बेसिक, मानते थे और उन्होंने साफ साफ कहा था कि यह शिक्षा बच्चा को ही नही उनके मां बाप को भी दी जानी चाहिये। आज युनेस्को का यह आयोग सस्तुति कर रहा है कि 'बेसिक शिक्षा समान रूप से बालको और वयस्को को दी जाय।' इस रिपोर्ट को पढने से लगता है कि इस देश ने गाधीजी की बात को न मान कर कितनी घातक भूल की है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

उप राष्ट्रपति की सलाह :

गत आठ अक्टूबर को बहरामपुर (उडीसा) विश्व-विद्यालय में छटे दीक्षात समारोह में भाषण करते हुये भारत के उप राष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक ने राजनैतिक दलो को सलाह दी है कि वे

छात्रो के लिये आपस में मिलकर एक आचार सहिता वनायें ताकि छात्र आन्दोलन न हो और वे हिंसा में न पडें।

यह सही है कि आज देश में हिंसा और आन्दोलन का मानस जितना है उतना वह शायद ही कभी रहा हो। आज हमारे कालेज और विश्व विद्यालय आये दिन छात्रो के हिसात्मक आन्दोलनो के अड्डे वने हुये हे और जो छात्र केवल पढने के लिये ही विश्व विद्यालय अथवा कालेज में जात हे और ऐस छात्रो की सख्या ही अधिक है, उन्हें भी केवल कुछ मुट्ठी भर हिसा पर उतारू छात्रो क कारण अपनी पढाई से वचित रह जाना होता है। और मजे की वात यह है कि उनसे भी हजारो रुपय की फीस लन वाले स्कूल कालज भी इससे उनकी रक्षा नही कर पाते हैं। राजनैतिक दल इस स्थिति को पनपाने का खूव काम करते हैं। अत व यदि आचार सहिता के द्वारा स्वय पर कुछ रोक लगाते हे तो इसका स्वागत ही किया जाना चाहिये।

किन्तु क्या सचमुच राजनैतिक दलो के द्वारा ऐसी किसी आचार सहिता का अभाव ही इसका कारण है। एसा कहना समस्या को अत्यन्त हलका करके दखना होगा। आज देश में हिंसा और अराजकता का जो वातावरण है उसका कारण हमारी औपनिवशिक शिक्षा प्रणाली है जो हमारी सरकारो और राप्ट्र नेताओ के सरक्षण में खूव पनप रही है। फिर दश का राजनैतिक आर्थिक और औद्योगिक ढाँचा, जो सिवाय शोपण मूलक कन्द्रवाद को हा जन्म दता और पनपाता है, तो इसके लिये सवसे अधिक जिम्मवार है। गाधीजी ने वहुत पहल ही हमें इन वातो क प्रति आगाह किया था, किन्तु हमने उनकी वात कहाँ मानी और अव जव सिर पर ओल पड रहे हे तव हमें इतर वातें ध्यान में आती हे। किन्तु गाधी मार्ग को छोडकर हम चाहें एसी हजार सहितायें वनायें हम निरन्तर वढती जा रही हिसा और वेचैनी से वच नही सकते। हमें समस्याओ का हल उनकी गहराई में जाकर करना होगा। केवल छिलक का इलाज करने से वीज का रोग दूर नही होता।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

जवाहरलाल नेहरू

तालीम को उस तरफ न झुकने दें :

(१, नवम्बर, १९५२ को सेवाग्राम में ग्रामीण विश्व विद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर पं. नेहरू ने जो भाषण दिया था, उसका स्मरण करना आज हमारे लिये आवश्यक है। आज पंडित जी हमारे बीच नहीं हैं किन्तु वे किस ढंग से सोचते थे और खासकर बुनियादी शिक्षा के बारे में उनके क्या विचार थे यह हम इस लेख के माध्यम से नयी तालीम के पाठकों के लिये नीचे दे रहे हैं। पं. जी हमारी शिक्षा प्रणाली को पश्चिमाभिमुख होने से रोकना चाहते थे जो दुर्भाग्य से आज तक नहीं हो सका है। उस ओर हमारी दिशा भी अभी नहीं है। किन्तु भारतीय शिक्षा का यह संघर्ष आज भी जारी है और सफलता तक जारी रहेगा।

—संपादक)

यह बात साफ है कि तालीमका सवाल देश के लिये बहुत अहमियत रखता है। हमें इस तरफ ध्यान देना चाहिए। मैं देखता हूँ कि आज हमारी तालीम की जो जगहें हैं, स्कूल, हाईस्कूल, कालेज वगैरह, उनमें बहुत अच्छे लड़के लड़कियाँ हैं। किन्तु साफ तौर पर देखने में ये जगहें आज तो निकम्मी सी मालूम पड़ती हैं। बहुत सारी बातें जो मैं चाहता हूँ कि तालीमके जमानेमें लोगोंमें आवे वे बहुत कम आती हैं। यह नहीं कि बिल्कुल नहीं आती, कुछ तो आती हैं, किन्तु जितनी आनी चाहिये उतनी नहीं आती। आज उनके मन और दिमाग एक गलत आवेश में जकड़ जाते हैं। यह सही बात है कि इसमें तालीम देनेवाली संस्थाओं का ही पूरा कसूर नहीं है, आज तो दुनियाँ की फिजा ही दूसरी है, आज की दुनिया कुछ उखड़ी हुई है और उसके उसूल ही कुछ दूसरे हो गये हैं। फिर भी मेरा विचार है कि इसमें तालीम-की इन संस्थाओं का भी काफी बड़ा कसूर है। अगर ऐसा है तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम यह तरीका बदलें और तालीम को सही तरीके पर रखें।

मेरी पक्की राय :

मेरी यह पक्की राय होती जा रही है कि तालीम का यह सिलसिला तेजी से बढ़ नहीं सकता है अगर हम रुपयों के फेर में पड़े रहें। यह ठीक है कि तालीम पर रुपया तो खर्च होगा ही। किन्तु इंतजाम के, मकानों के, सामान के लिये हम पड़े रहें तो हम तेजी से नहीं बढ़ सकते हैं। ये चीजें तो बन ही जायेंगी। मैं मकानों के

खिलाफ नही हूँ लेकिन अगर हम इन पचडो में ही पडे रहे तो हम वरसो तक भी नहीं बढ़ सकते जैसा हमें बढ़ना चाहिये। हमारे विधान मे कहा गया था कि हम १० साल के अन्दर ७ से १४ साल के बालक के लिये निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करेंगे। किन्तु आज इतने साल हो गये हैं और हमने अभी भी काफी तरक्की तो नही की। और हम इसलिये पड़े रहे कि हमें मकान चाहिये, इमारत चाहिये तो फिर गाडी चल नही सकती है।

मेरे मन में जरा भी शक नही :

मेरे मन म यह जरा भी शक नही है, मैं जवाहरलाल की हैसियत से कहता हूँ कि मेरे दिमाग मे कोई शक नही है कि बुनियादी तालीम के रास्ते स ही हमें चलना है। और आरम्भ मे तो चलना ही है। ७ साल की और सात साल से पहले की पूर्व बुनियादी मे और फिर उसके बाद भी हमें इसी पर चलना होगा। हमें इसमें इस पर अवश्य सोचना होगा कि इसमें दूसरी टकनीकल तालीम कैसे चलेगी। किन्तु यह एक अलग सवाल है और यह बात ध्यान देन की है कि हर आदमी उसे नहीं सीखेगा। आज भी नही सीखता है। हमे तो यह याद रखना चाहिये कि हमे एक आम तालीम चाहिये, करोडो बच्चो के लिय तालीम चाहिये। उनके अलावे हम विशेष तालीम, टेकनीकल वगैरह रखे, मै उसके खिलाफ नहीं हूँ किन्तु वह भी तो फिर इसमें ही जुड सकती है, बढ सकती है और जो लोग उसे लेना चाहे वे उसे ले सकते हैं। मुझे इसके लिये कोई शक नही है कि इसी ढग से हमें चलना होगा। खासकर स्कूलो में तो इसे कर ही देना चाहिये। अगर हम स्कूलो में यह नही कर सकते तो फिर बाद मे क्या करेंगे। तीसरी बात यह याद रहनी ही चाहिये कि हम जो अब नये स्कूलो के नक्श बनायें उनमें ऐसा न हो कि हम ऊपरी बातो मे ही ज्यादा पैसा खर्च कर दें। इसमें पैसे की कमी का सवाल उतना नही है जितना एक उसूल का है। मैं समझता हूँ कि इस तरह से पैसे खर्च करने का उसूल भी सही नही है क्योंकि इससे हमारे दिमाग फिर दूसरी तरफ चले जाते हैं। नई दिल्ली को ही देखें। नई दिल्ली मे पुराने काल से काम करने के खास ढग हो गये हैं। वैसे कोई बुरे दिमाग नही है किन्तु वे एक तरफ को झुके हुये है। इस तरह से हमारे काम पर काफी असर होता है और फिर दिमाग को दूसरी तरफ झुकाना जरा कठिन हो जाता है। कोशिश की जा सकती है किन्तु उसमें फिर बहुत समय चला जाता है।

हम तालीम को उस तरफ न झुकने दें :

अच्छा हो कि हम अपनी तालीम को उस तरफ न झुकने दें जो हमारे देश की हालत स सम्बन्ध न रखती हो। आजकल हमारे विद्यार्थी विदेशो में जाते हैं। यह हर तरह स अच्छा भी है, वे नई नई जगहो मे जाय, नई बातें सीखे, नई हवा खायें, उनका दिमाग फैले और वे तग खयालो से बचें। किन्तु वहाँ स जो विद्यार्थी सीखकर आते हैं उनके दिमाग में फिर उन्ही देशो के ढग और हालात होते हैं। वे वहाँ के स्कूल और कालेजो के ढग पर ही सोचते हैं। वे फिर यहाँ भी उन्ही के ढग पर काम करना

चाहते हैं। किन्तु वहाँ की जमीन, वहाँ के हालात, वहाँ के साधन, वहाँ के लोग और उनकी काम करने की शक्ति, सब कुछ हमसे भिन्न हैं। इसलिए फिर उनकी नकल करने से वह बात चलती नहीं है और अगर कुछ चली भी तो वह बहुत ही छोटे पैमाने पर ही चलती है। और तब फिर वे लोग भी परेशान होते हैं कि कुछ कर नहीं सक रहे हैं। एक आदमी की सही निशानी तो यह है कि वह अपनी शक्ति से क्या कर सकता है, यह नहीं कि उस दस तरह के साधन चाहिये तभी वह काम कर सकेगा। यदि ऐसा है तो वह फिर बेकार है। इसलिए हम तो अपनी ही हैसियत से, अपने ही ढंग पर काम करना चाहिये।

फिर एक और बात भी मेरे ध्यान में आती है। विदेश की बातें नकल करने से तो हम कुछ भी नहीं कर सकते किन्तु यह भारत में भी सारे देश को हम एक साँचे में नहीं ढाल सकते हैं। मैं अक्सर घूमता रहता हूँ। मेरे घूमने से औरों को क्या लाभ होता है मैं नहीं जानता किन्तु मुझे तो बहुत लाभ होता है। इससे तो मेरी तालीम होती है। देश के अलग अलग भागों को देखने और समझने से देश की सही तस्वीर मेरे ध्यान में आती है। मैं देखता हूँ कि कितना फर्क है देश के अलग अलग भागों में। लोग यहाँ दिल्ली में बैठकर या और कहीं बैठकर कायदे कानून बनाते हैं वे शायद एक जगह के लिए मौजूं हों ठीक हों लेकिन वे भारत के जितने अलग हिस्से हैं सब भागों के लिए तो ठीक नहीं होते। एक चीज जो दिल्ली के लिए ठीक हो हम आज उसे ही दिल्ली से हजार मील दूर के लिए भी चलाते हैं। नतीजा यह होता है कि फिर मामला चलता ही नहीं है। यह बात केवल दिल्ली के ही लिए नहीं है। प्रदेशों में भी शामिल है। लखनऊ और कलकत्ता में बैठकर जो कानून बनाते हैं वे सोचते हैं कि वे सबके लिए ठीक होते हैं किन्तु वे ठीक नहीं होते।

नयी तालीम की दलील सही है.

हर एक सोचता है कि उसी का तौर तरीका ठीक है और दूसरों का नहीं है। अब यह बात केवल हमारी ही नहीं है। सारी दुनिया की बात आप देखें। उसका और भी अजीब हाल है। बड़े बड़े देश चाहते हैं कि दूसरे देश उनकी ही बात करें उनके ही तौर तरीका पर वे चलें। बजाय इसके अगर हर देश दूसरे को उसके हालात पर चलने दे, गलत या सही तो लड़ाई झगड़ा कम हो। मैं किसी मुल्क का नाम नहीं कहता लेकिन आज जो दुनिया में अक्सर देश समझते हैं कि उन्हीं का तौर तरीका अच्छा है, और दुनिया को उसी पर चलना चाहिये और अगर कोई न चले तो वे नाराज हो जाते हैं। कभी कभी दबाव भी डालते हैं कि सब उसी पर चलें। तो यह बात गलत है। जो बात दुनियाँ के लिए है वही बात भारत के लिए भी है। भारत में एकता है और उसी एकता ने उसे जोड़ा है। लेकिन इसमें अनेकताएँ भी बहुत है और यह एक तरह से आवश्यक भी है। मेरा मतलब है कि हमारे देश में इतनी अनेकतायें हैं इस बात को भी हम समझना है। हमें हर भाग की खासियत को भी

ध्यान में रखना है और उसके हिसाब से तालीम का प्रबन्ध करना चाहिये। इसलिए बुनियादी तालीम की यह जो दलील है कि शिक्षा को अपने आसपास के वातावरण से जोड़ो वह ठीक है। वह करना ही होगा।

आप जो काम कर रहे है वह ठीक है और उसे बढ़ाना चाहिये। आपने हलके हलके बावजूद कई कठिनाइयो के बुनियादी तालीम की बुनियाद इस देश में डाली है। इसे मजबूत किया जाना चाहिये। वह बुनियाद है उसकी बातें अक्सर दिखाई नहीं देती। जैसे आप एक इमारत की बुनियाद डाले तो वह दीखती नही है। वह तो जमीन के अन्दर रहती है। उस पर ही तो दीवालें खडी होती है। अगर बुनियाद मजबूत बनी तो तभी उस पर बना मकान खडा रह सकता है नही तो नही रह सकता है। आपने बनियाद डाली, कुछ गौर करने वाला ने इसे सुना, कुछ देखने वालो ने इसे नज़दीक से देखा। बाकी लगा को शायद कुछ दिलचस्पी भी हुई। आप करते गये और बुनियाद मजबूत बनती गई।

शिक्षा मन्त्रालय की अस्थिरता :

हमारे शिक्षा विभाग से आपको आशीर्वाद आता होगा किन्तु आज देश में जो तालीम चल रही है उसमें और बुनियादी तालीम में बहुत सम्बन्ध नही है। तो फिर क्या कमी है कहाँ कमी है, यह बात हमे परेशान करती है और हमें इस पर गौर करना चाहिये। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ जो काम कर रहा है, वह बहुत अच्छा काम है और उसे हमे एक प्रयोग के रूप मे देखना चाहिये उससे फायदा लेना चाहिये। हम यह देखें कि यदि वह सही है तो फिर उसे सारी ताकत लगाकर हम फैलाने का प्रयास करे। राज्य सरकार और भारत सरकार का दिमाग इसमें साफ होना चाहिये कि बुनियादी तालीम का जो सिलसिला है वह अहमियत रखता है या नही। अक्सर मैंने सुना है कि कुछ कमावेश कुछ अच्छे स्कूलो मे यह शिक्षा दी जाती है और फिर कुछ समय के बाद वह बद कर दी जाती है। और फिर वह दूसरे ही ढग से चलने लगती है। मेरी समझ मे यह बात नही आती कि इस तरह से हम क्या करें। यह तो इनसाफ की बात नही हुई। न बच्चों के साथ ही इन्साफ हुआ और न पढाई के साथ ही इन्साफ हुआ। तो यह बात गलत मालूम देती है। जो एक सिलसिला जारी किया उसे फिर पूरा करना चाहियें। सिलसिला बदल देने से कठिनाई आती है और फिर इन दोनो को आप जोड नही सकते है। तो हमें सोचकर तय कर लेना चाहिये कि बुनियादी तालीम को हमने मजूर किया है तो उसे फिर अच्छी तरह से कैसे चलावे। उसकी सख्या भी बढाना है और गुण को भी। यह नही कि थोडी दूर चलाकर फिर उसे रोककर कुछ और चालू किया जाय। इससे सिलसिला बिगड जाता है। इस पर शिक्षाशास्त्रियो को विचार करना चाहिये।

श्रीमन्नारायण

शिक्षा-मंत्रालय की शिक्षा योजना

अभी हाल ही मे केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय ने "पाँचवी पचवर्षीय योजना में शिक्षा" के नाम से केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड को एक प्रपत्र (डॉकुमेन्ट) पेश किया है। इसके मुख्य मुद्दे ये हैं —

१ — पूर्व-शालीय (प्री-स्कूल) विकास पर अधिकतर जोर दिया जाय।

२ — पाँचवी योजना की समाप्ति तक ११ से १४ की उम्र के ७५ प्रतिशत और ६ से ११ तक की उम्र के १०० प्रतिशत बालक-बालिकाओं को विद्यालयों मे भर्ती करने की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा को अतिरिक्त प्राथमिकता दी जाय।

३ — प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रम पर विशेष बल दिया जाय।

४ — १०+२+३ के सामान्य ढाँचे मे हायर सकेन्डरी स्तर तक शिक्षा का व्यावसायीकरण (वाकेशनलाइजेशन) कर दिया जाय।

५ — शिक्षित युवकों को रोजगार देने के एक ढाचे के अन्तर्गत उच्च शिक्षा में भर्ती पर नियत्रण लगाया जाय।

६ — विश्व विद्यालय और हायर सकेन्डरी स्तर तक सभी के लिये प्रायवेट और औपचारिक शिक्षा के विकास के लिये सभी तरह की सुविधाएँ उपलब्ध की जाँय।

७ — तकनीकी शिक्षा मे गुणात्मक सुधार कर उसको पुनर्गठित किया जाय।

८ — पाठ्यक्रम में सुधार, कार्यानुभव का प्रवेश, शिक्षण की नवीन विधियों का ग्रहण, परीक्षाओं मे सुधार और विद्यालय तथा समुदाय के बीच निकट सम्बन्धों का विकास, जैसी शैक्षणिक प्रक्रियाओं पर जोर दिया जाय।

९ — हर स्तर पर चुनी गई विशिष्ट शिक्षण सस्थाओं मे गुणात्मक सुधार हो।

१० — सास्कृतिक विकास पर अधिक जोर दिया जाय।

राष्ट्रीय सम्मति की उपेक्षा

जहाँ तक इन सुधारों का सम्बन्ध है पाँचवी योजना में इनका शामिल करना अच्छा है। किन्तु गत वर्ष सेवाग्राम में हुये राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की, जिसका उद्घाटन स्वय प्रधानमत्री ने किया था और जिसमें देश के कई राज्यों के शिक्षा मत्री, कई विश्व-विद्यालयों के कुलपति और स्वय केन्द्रीय शिक्षा मत्री भी शामिल थे,' आम सहमति ' (कन्सेन्सस) का ये सुझाव जरा भी नही दर्शाते हैं।

सेवाग्राम सम्मेलन ने सर्व सम्मति से यह कहा था कि "ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही क्षेत्रों में शिक्षा को हर स्तर पर देश के आर्थिक विकास और प्रगति के कार्यक्रमों से सम्बद्ध करके उसे किसी भी समाजोपयोगी उत्पादक क्रिया के माध्यम से

इसके अलावा केवल पाठ्यक्रम तथा परीक्षा में सुधार की बातों से भी कुछ नहीं होने वाला है। छात्रों के दैनिक उत्पादक कामों के सतत मूल्यांकन और पाठ्यक्रमों को आसपास के क्षेत्रों की अनुभूत आवश्यकताओं से सापेक्षपरक ढंग से जोड़ कर शिक्षा की वर्तमान पद्धति में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

सेवाग्राम सम्मेलन ने १०+२+३ के सामान्य ढाँचे को स्वीकार किया था। किन्तु यह बात भी साफ तौर पर कह दी गई थी कि ' इस सुधार की सफलता उन छोटे मध्यवर्ती स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (शार्ट टर्म वोकेशनल कोर्सेज) के कार्यान्वयन पर निर्भर करेगी जिससे छात्र मैट्रिक के बाद ही किसी न किसी धंधे में लग जायेंगे और उच्च शिक्षा के लिये भीड़ कम होगी।' ऐसा नहीं किया गया तो फिर यह द्विवर्षीय कोर्स भी पुराने 'इन्टर मिडियेट' की तरह विश्व-विद्यालयों में प्रवेश के लिये एक सीढ़ी के रूप में बदल जायगा।

डिग्री का नौकरी से संबंध विच्छेद

सबसे महत्व की बात सम्मेलन ने यह कही थी कि विश्व-विद्यालय की डिग्री का नौकरी, चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकारी, से सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहिये। केवल इससे ही हम विश्व विद्यालयों में भर्ती की अवांछनीय दौड़ के साथ साथ परीक्षाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी समाप्त कर सकेंगे और साथ ही एक दूसरी प्रगतिशील शिक्षा प्रणाली को भी प्रोत्साहन दे सकेंगे। किन्तु शिक्षा मंत्रालय की इस रिपोर्ट में सम्मेलन की इस महत्वपूर्ण सिफारिस का भी कोई जिक्र तक नहीं है।

उसी प्रकार से छात्रों और अभिभावकों को शिक्षा सुधार के काम में सम्बद्ध करने सम्बन्धी और अन्य कई महत्वपूर्ण सुझावों पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

विनोबा जी की राय

संक्षेप में शिक्षा मंत्रालय की इस प्रस्तावना में सेवाग्राम सम्मेलन की भावना की नितांत उपेक्षा कर दी गई है और आज लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता की हमारी बुनियादों को नुकसान पहुँचाने वाली वर्तमान परिस्थिति से बचने के लिये यह प्रस्तावना हमारी आवश्यकताओं को जरा भी पूरा नहीं करती है। आचार्य विनोबा जी जैसे ऋषि ने तो इसी लिये शिक्षा मंत्रालय की इस रिपोर्ट को 'निरर्थक' और 'भारूढ' (तत्वहीन बोझ) कहा है। इसलिए एक दीर्घ कालीन कार्यक्रम की व्यापक दृष्टि से आगामी पाँच सालों में शिक्षा के समूचे ढाँचे पर फिर से विचार करना अत्यावश्यक है। निरन्तर बढ़ती जा रही जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में शैक्षणिक सुविधाओं का विस्तार निस्संदेह ही आवश्यक है किन्तु शिक्षा के ढाँचे में कोई गुणात्मक परिवर्तन और तात्विक सुधार किये बिना केवल संख्या बढ़ाने से हम कहीं नहीं पहुँच सकते हैं। सच तो यह है कि हमारे इस तरह के कार्य से देश को हम और अधिक अस्थिरता, हिंसात्मक अनास्था और लगभग अराजकता की ओर ही ले जायेंगे।

वशीधर श्रीवास्तव

जो सीखना ह—

आज और आन वाल कल का शिक्षा जगत

[ससार में शिक्षा के विकास पर विचार करने के लिय १९७१ के प्रारम्भ में युनस्को न फ्रास क भूतपूव प्रधान मत्री और शिक्षा मत्री डाक्टर एडगर फाउरे की अध्यक्षता में एक अन्तरराष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया था। १८ मई १९७२ को आयोग ने अपनी रिपोट प्रस्तुत की जिसे युनस्को न १८ अक्तूबर, १९७२ को अपन एक्जाक्यूटिव बोड की ९० वीं बठक में विचार विमश के बाद स्वीकार किया। इस रिपोट का भारतीय सस्करण दिल्ली से १९७३ में प्रकाशित हुआ ह ।

यह रिपोट एक प्रकार से विश्व के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियो द्वारा शिक्षाकी सकल्पना सरचना और प्रशासन पर अद्यतन विचार प्रस्तुत करती ह । आज ससार के विभिन्न भागों म शिक्षा पर जो अध्ययन और अनुसधान हुए ह उनका सुन्दर समन्वय इस रिपोट में हुआ ह । इस आयोग की प्रमुख सस्तुतियाँ निम्नाकित ह । —सपादक।]

शिक्षा के वतमान ढाच म सुधार किया जाय। परन्तु सुधार चाहे वह कितना ही बडा सुधार क्या न हो पर्याप्त नही होगा। हमको आज का शिक्षा की सकल्पना (कासप्ट) और सरचना (स्ट्रक्चर) दोनो का ही क्रातिकारी विकल्प प्रस्तुत करना हागा।

(१)

सकल्पना

सकल्पना म पहला आधारभूत विकल्प होगा शिक्षा को जीवन भर चलनवाली प्रक्रिया (लाइफ लाग एजुकेशन) मानकर नियोजन करना। प्रत्यक व्यक्ति इस स्थिति म हो कि वह अपन जीवन भर सीखता रहे। जीवन भर चलन वाली शिक्षा (लाइफ लाग एजुकेशन) की यह सकल्पना शिक्षा के प्रत्यक पहलू को पूरी तरह समेट लती ह। जो जीवन भर की शिक्षा न हो शिक्षा का एसा कोई अलग और स्थायी विभाग नही है। दूसरे शब्दो म जीवन भर चलनवाली शिक्षा कोई शिक्षा प्रणाली नहीं ह परन्तु एक सिद्धान्त ह जिसपर किसी प्रणाली की पूरी सरचना आधारित होगी।

अतः हम विकसित और विकसनशील दोनो ही प्रकार के देशों की " आने-वाले वर्षोंकी शैक्षिक नीतियों " के लिये इस आधारभूत सकल्पना (मास्टर कान्सेप्ट) की सस्तुति करते हैं।

विभिन्न देशो मे इस सकल्पना का कार्यान्वय विभिन्न ढग से होगा परन्तु आयोग की सस्तुति हैं कि जीवन भर चलनवाली शिक्षा की यह सकल्पना किसी भी शैक्षिक नीति का निर्णायक सिद्धान्त होना चाहिये।

(२)

सरचना

शिक्षा को प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता और सुविधा के अनुसार सहज उपलब्ध बनाने के लिए यह आवश्यक हैं कि शिक्षण की प्रक्रिया को शिक्षा के विभिन्न वर्गो और वर्षों में पुन वितरित करते हुए मानव के जीवन्त अनुभवो के आयामो का शिक्षा के क्षेत्र में पुन स्थापन किया जाय। इसीलिये हमारी सस्तुति है कि शैक्षिक सस्थाओं और साधनो को अनिवार्य रूप से बढ़ाया जाय, वे सबको सहज उपलब्ध हों और उनसे व्यक्ति के रुचि वैचित्र्य का आज से अधिक पोषण हो सकें।

आज शिक्षा के लिए माँग इतनी अधिक हैं और भविष्य में और इतनी अधिक हो जायगी कि शिक्षा को वर्तमान सस्थागत प्रणाली (इन्स्टीट्यूशनल टीचिंग) इस बढती माँग को पूरी नही कर सकेगी। अगर माँग को पूरी करना हैं तो शिक्षा की सरचना और विषय-वस्तु का नीचे लिखे ढग पर पाँच स्तरो में पुनगठन किया जाय —

(क) शिशु शिक्षा —शिशु शिक्षा के स्तर पर शिक्षा शिशुओ के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अधिकतम अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण करे।

(ख) बेसिक शिक्षा —(बसिक एजुकेशन) बेसिक शिक्षा बहुमुखी हो। इसका ढाँचा एसा बनाया जाय कि वह बच्चो और युवको के लिये ही नही वयस्कों के लिये भी हो और जिस अवस्था में भी वे चाहें उन्हे सुलभ हो। यह शिक्षा विशेषतः बच्चों में स्वय सीखने की भावना को प्रोत्साहन दे। यह भावना या रुचि जीवन भर चले। यह शिक्षा व्यक्ति मे ज्ञान, निरीक्षण और निर्णय-शक्ति के विकास के साथ, इस भावना का सृजन भी करे कि वह समुदाय का अग हैं और उसका अपने प्रति और दूसरो के प्रति रचनात्मक उत्तरदायित्व हैं।

(ग) उत्तर बेसिक शिक्षा — (पोस्ट बसिक एजुकेशन) इस स्तर की शिक्षा का लक्ष्य विश्व-विद्यालय में प्रवेश उतना नही होना चाहिए जितना क्रियाशील जीवन के लिए तैयारी और जो इस समय आगे नही पढ़ सकते उनमें इस आशा को बनाये रखना कि कभी-कभी वे उच्च शिक्षा अथवा उच्च स्तर की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर सकेगे।

(घ) उच्च शिक्षा — (हायर एजुकेशन) उच्च शिक्षा किसी भी आयु में अनक रूपा म विभिन्न मार्गों द्वारा सुलभ हनी चाहिए। लक्ष्य सबका निरतर सुधार और विकास हो।

(ङ) प्रासगिक शिक्षा —प्रत्यक अवस्था के प्रत्यक व्यक्ति का तात्कालिक अथवा स्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिय प्रासगिक शिक्षा सुलभ होनी चाहिय।

सरचना के सम्बन्ध में शिक्षा को मोट तौरपर ५ स्तरो म वितरित करन के बाद आयोग ने सरचना के सम्बन्ध म पुन निम्नांवित सस्तुतियाँ का ह —

(३)

शिक्षा-सस्थाओंमें कम से-कम औपचारिकता

उपयुक्त प्रत्यक स्तर की शिक्षा विविध प्रकार के साधनो स दी जाय और ग्रहण की जाय। महत्वपूण बात वह माग नही ह जिस पर व्यक्ति चला है बल्कि यह बात ह कि उसन क्या सीखा और पाया ह। अत हमारी सस्तुति है कि प्रत्येक व्यक्ति अगर वह शिक्षाकी प्रचलित "प्रणाली" को छोड देता ह, तो भी वह जीवन भर के लिये शक्षिक सेवाओं से वचित हुए बिना, एक अधिक लचीले ढाचे में अपना माग ढूढन के लिये स्वतन्त्र हो।

इस समय विश्व म दो प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं — (१) शिक्षा-सस्थायें बढ़ रही हैं और अधिकाधिक बहुमुखी हो रही हैं और (२) परपरागत ढाँचे कम औपचारिक हो रहे हैं। इन दोना का परस्पर विरोध नही हैं। दोनो में असगति नहीं हैं। वतमान शिक्षण-सस्थाओ म सख्या-वृद्धि के साथ भिन्न प्रकार की पार्ट टाइम शिक्षण की सस्थाय खोलकर अथवा विद्यालयो के बाहर भी शिक्षण देकर शिक्षा के दायरे म अभिवृद्धि करना चाहिए और शिक्षण के सभी माग चाहे वे औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक सस्थागत हो अथवा न हो सामान्य रूप स मान्य होन चाहिए। इसी अथ में अनौपचारिकता और अविद्यालयीकरण को लेना चाहिय।

(४)

आज आवश्यकता इस बात का ह कि अधिकाधिक विद्यार्थी अधिक स्वतन्त्रता-पूवक एक ही सस्था म एक स्तर स दूसरे स्तर तक अथवा एक ही स्थान की एक सस्था स दूसरी सस्था म अधिक स्वतन्त्रतापूवक आ जा सके। अत हमारी सस्तुति है कि विभिन्न प्रकार के शिक्षा-सकायों, व्यवस्थाओ, पाठ्यक्रमों और स्तरों के बीच का कृत्रिम और दकियानूसी अवरोध और औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के बीच का व्यवधान समाप्त कर दिया जाय।

इसका परिणाम यह होगा कि अनिवाय शिक्षा-काल के अन्त में प्रत्यक व्यक्ति आग शिक्षा जारी करन अथवा जीवन म प्रवेश करन के लिय स्वतन्त्र होगा।

इतना ही नहीं विद्यार्थी परस्परित अनिवार्य शिक्षा-काल को पूरा किये बिना ही उच्च शिक्षा ग्रहण के लिये स्वतन्त्र हो। उस शिक्षा की एक शाखा से दूसरी शाखा में आने की पूरी स्वतन्त्रता हो। इस प्रकार की पुनरावर्तक शिक्षा (रिकरन्ट एजुकेशन) विद्यालयी और अविद्यालयी शिक्षा के विरोध को समाप्त कर देता है।

(५)

शिशु शिक्षा यानी पूर्व प्रारंभिक विद्यालय की आयु के बच्चों की शिक्षा किसी भी शैक्षिक या सांस्कृतिक नीति की पहली बात होनी चाहिये। अतः हमारी संस्तुति है कि इस की शैक्षिक नीति का प्रमुख लक्ष्य शिशु-शिक्षा का विकास होना चाहिये।

(६)

बेसिक शिक्षा —इसी प्रकार सभी बच्चों को बेसिक शिक्षा पाने की व्यावहारिक संभावना की गारंटी मिलनी चाहिये— पूरे समय तक के लिये और यदि आवश्यक हो तो दूसरे रूप में। अतः हमारी संस्तुति है कि १९७० से प्रारम्भ होनेवाली दशाब्दी की शैक्षिक नीतिओं में संभावनाओं और आवश्यकताओं के अनुसार सार्वभौमिक (युनिवर्सल) बेसिक शिक्षा को विविध रूप में शीघ्र प्राथमिकता दी जाय।

बेसिक शिक्षा सभी को सुलभ हो। आज सभी शिक्षा प्रणालियों में प्रत्येक बालक को पूरे समय तक विद्यालयी शिक्षा दी जाय, ऐसा नियम है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज भी अनेक बालक और तरुण बेसिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। अतः सब बालकों की शिक्षा हमारी शैक्षिक नीति का आधारभूत सिद्धान्त होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है इसका रूप विद्यालयी शिक्षा का ही हो— यह पार्ट टाइम भी हो सकती है

(७)

सामान्य शिक्षा (बेसिक और पोस्टबेसिक) का विस्तार.—

सामान्य शिक्षा की संकल्पना को व्यापक बनाना चाहिए जिससे सामान्य शिक्षा" में सामान्य सामाजिक-आर्थिक टेक्निकल और व्यावहारिक शिक्षा भी आ जाय। अतः हमारी संस्तुति है कि विभिन्न प्रकार के शिक्षणों में जो दुर्लंघ्य भेद आ गया है— जैसे सामान्य, वैज्ञानिक, टेक्निकल और व्यावसायिक उसे हटा देना चाहिए और शिक्षा प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर से ही एक साथ सैद्धान्तिक टेक्नालाजिकल, प्रायोगिक और हस्त्य (मनुयल) हो जानी चाहिए।

अतः तथाकथित सामान्य शिक्षा का सचमुच सामान्य होना है तो टेक्नालाजिकल शिक्षा का भी विकास होना चाहिए और यदि सामान्य विषयों के शिक्षण

का पूरा शैक्षिक मूल्य प्राप्त करना है तो बौद्धिक शिक्षा और हाथ के काम की शिक्षा का समन्वय होना चाहिए और अध्ययन और काम को निरन्तर अनुबंधित करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(८)

अधिकतम व्यावसायिक-गतिशीलता :-

शैक्षिक कार्य को अगर युवकों को काम और गतिशील जीवन के लिए तैयार करना है तो उन्हें किसी व्यवसाय विशेष के लिए प्रशिक्षित करने के बजाय उनमें ऐसी क्षमताओं का विकास करना चाहिए जिससे वे अपने में निरंतर विकसित उत्पादन पद्धतियों के अनुकूल बनने की क्षमता का विकास कर सके। यह क्षमता उनमें अधिकतम व्यावसायिक गतिशीलता विकसित करने में सहायक हो जिससे वे सरलतापूर्वक एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जा सके।

अत हमारी सस्तुति है कि व्यावसायिक (प्रोफेशनल) और टेकनिकल (प्राविधिक) ट्रेनिंग कालेज, माध्यमिक शिक्षण-प्रणाली के साथ विकसित किये जाय। ये कालेज जो ट्रेनिंग दें, उसे उन स्थानों पर पूरा किया जहाँ सचमुच काम होता है और फिर सबको पुनरावर्तक (रिकरेन्ट) शिक्षा और व्यावसायिक ट्रेनिंग के पाठ्यक्रमों से पूरा किया जाय।

(९)

व्यवसाय और उद्योग की शैक्षिक भूमिका :-

जीवन भर चलनेवाली शिक्षा का ठीक अर्थ है व्यवसाय (बिजनेस) औद्योगिक कारखाना और कृषि के कामों का व्यापक शैक्षणिक उपयोग हो। टेकनिकल ट्रेनिंग का उत्तरदायित्व केवल विद्यालय-प्रणाली का न हो। विद्यालय के बाहर के दूसरे उद्यम भी इसमें भाग ले और शिक्षक, उद्योगों और व्यवसायों के नेता एवं श्रमिक और सरकार सभी का उसमें सहयोग हो।

अत हम सस्तुति करते है कि शैक्षिक प्रतिष्ठानों और व्यावसायिक सस्थानों में, चाहे वे राज्य के प्रबन्ध के अन्तर्गत हों, चाहे व्यक्तिगत हों, जो अन्तराल है, उसे मिटना चाहिये क्योंकि व्यावसायिक सस्थान सपूर्ण शिक्षण-प्रणालीकी महत्वपूर्ण कुजी है और उनकी भूमिका कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि टेकनिशियनों और शोधकर्ताओं की ट्रेनिंग भी होनी चाहिये।

(१०)

उच्च शिक्षामें विविधता –

उच्च शिक्षा का प्रसार ऐसे सस्थानो का विकास करे जिनसे व्यक्ति और समुदाय के अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो। अतः हमारी सस्तुति है कि

उत्तर माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली में संरचना पाठ्य-वस्तु और छात्रों के वर्गीकरण में विविधता रहे।

इसका अर्थ यह होता है कि स्थानीय विशिष्ठ लक्षणों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लघु स्तर के कालेजों, तकनीकी संस्थानों और खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाय। ये संस्थायें अर्ध-व्यावसायिक और मध्य स्तर की टेकनालोजी की (इंटरमीडियेट टेकनालोजी की) ऐसी ट्रेनिंग दे जिनका बाजार की आवश्यकताओं से मेल हो। इन संस्थाओं में प्रवेश पाने की कसौटी अनौपचारिक और उदार हो और यह विद्यार्थी की आवश्यकताओं और उसके व्यावसायिक भविष्य को ध्यान में रखकर निश्चित की जाय, न कि उनके स्कूल के प्रमाण-पत्रों और डिप्लोमाओं के आधार पर।

(११)

चुनाव की कसौटी :—

विभिन्न प्रकार के शैक्षिक और व्यावसायिक रोजगार में प्रवेश प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान, क्षमता और अभिरुचि पर निर्भर करे और स्कूल में प्राप्त वर्गीकृत ज्ञान का परिणाम न हो।

अतः हमारी संस्तुति है कि ज्यों-ज्यों शैक्षिक प्रणाली अधिकाधिक नानाविध (डाइवर्सिफाइड) होती जायगी और ज्यों ज्यों प्रवेश-निकास (एक्जिट) और पुनःप्रवेश की संभावनाएं बढ़ेंगी विश्वविद्यालय की डिग्रियों और प्रमाण-पत्रों (डिप्लोमा) का संबंध पूर्व निश्चित अध्ययन के कोर्स को पूरा करने के लिए कम होता जायगा . . . . परीक्षाओं का प्रमुखतः उपयोग व्यक्तियों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों, अर्जित ज्ञान और कौशल की तुलना में होना चाहिए।

(१२)

वयस्क शिक्षा:—

शैक्षिक प्रक्रिया की स्वाभाविक निष्पत्ति वयस्क शिक्षा ही है। अतः हमारी संस्तुति है कि आनेवाले दशाब्द में स्कूल के भीतर और स्कूल के बाहर वयस्क शिक्षा का त्वरित विकास होना चाहिए और वयस्क शिक्षा को शीर्ष प्राथमिकता देनी चाहिये।

(१३)

"साक्षरता" वयस्क शिक्षा का एक क्षण मात्र है। अतः हमारी संस्तुति है उन सभी क्षेत्रों में जहाँ वयस्क निरक्षरता है जब साक्षरता के कार्यक्रम आयोजित किये जाएं, तो उसका पहला लक्ष्य व्यावहारिक साक्षरता का हो और दूसरा सांस्कृतिक साक्षरता का, विशेषतः जब परिस्थितियां अनुकूल हों, और जब सामाजिक विकास—

राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक—इतना अनुकूल हो कि जनता भाग लेने के लिए तैयार हो।

(१४)

स्वयं सीखना :—

शिक्षा का नया दर्शन व्यक्ति को अपनी सांस्कृतिक प्रगति का स्वामी और सृजनकर्ता बताता है। स्वयं सीखने का विशेषतः दूसरों की सहायता से स्वयं सीखने का किसी भी शिक्षा-प्रणाली में अन्यतम महत्व है। अतः हम संस्तुति करते हैं कि नयी प्रकार की संस्थाओं और सेवाओं, जो व्यक्ति को स्वयं सीखने में सहायता दें जैसे भाषा-प्रयोगशालाओं, तकनीकी ट्रेनिंग की प्रयोगशालायें, सूचना केन्द्र, पुस्तकालय और तत्सबंधित दूसरी सेवायें, श्रव्य-दृश्य साधन, प्रोग्राम्ड शिक्षण के साधन, इत्यादि का शिक्षण प्रणाली में संयोजन किया जाय।

आज के सामूहिक संचरण-साधन (मास मीडिया) के युग में स्वयं सीखने का महत्व बहुत बढ़ गया है।

(१५)

शैक्षिक टेकनालोजी

आज संचरण के नये ढंग और साधन किसी भी शैक्षणिक योजना को प्रारम्भ करने के बुनियादी अंग हैं।

अतः हमारी संस्तुति है कि शिक्षा प्रणाली की संकल्पना और सामान्य नियोजन में सामूहिक संचरण-व्यवस्था की नयी शैलियों को स्थान मिलना चाहिए जिससे उनका उपयोग एक प्रक्रिया के विकास में प्राप्य साधनों का उपयोग किया जा सके।

(१६)

आज के अधिकांश शैक्षिक परिवर्तन के लिये संचरण प्रणाली की नयी तकनीकी शैलियों का प्रयोग बुनियादी है और शिक्षा में इन नयी शैलियों का प्रयोग तभी संभव है जब शिक्षा प्रणाली के भीतर पर्याप्त परिवर्तन हों। अतः हम संस्तुति करते हैं कि (१) शिक्षक-प्रशिक्षण के काममें इस प्रकार परिवर्तन किया जाय कि अध्यापक इस नयी टेकनालोजी द्वारा आरोपित विभिन्न कर्तव्यों और भूमिकाओं के लिये तैयार किया जा सके और (२) शिक्षा के बजट में जो वृद्धि की जाय उसका एक नियत भाग इन नयी तकनीकों के विकास के लिए सुरक्षित रखा जाय।

शिक्षक की प्रतिष्ठा (स्टेटस)

शिक्षक-समदाय भविष्य म अपना भूमिका का निर्वाह तब तक नही कर सकता जब तक उस शिक्षा की एसी सरचना न दी जाय अथवा जिस वह या तो स्वय विकसित न कर ले या जो आज की आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अनुकूल ह।

स्कूल के शिक्षक, टकनिकल कालेज के अध्यापक माध्यमिक स्कूलो के शिक्षक और विश्वविद्यालय के प्रोफसरो म किसी प्रकार का हायरार्किकल भद नही होना चाहिए। न तो वेतन क्रम और न पदोन्नति शिक्षण के प्रकार पर निभर करे। अध्यापक चाहे शिक्षा के जिस क्षत्र म काम करे अपन सर्वोच्च स्तर तक पहुँचन की सुविधा उसकी व्यक्तिगत योग्यता पर निभर करे। अध्यापन के काय की समान रूप स प्रतिष्ठा होनी चाहिय— अध्यापन का क्षत्र चाहे कुछ भी हो— प्रारम्भिक विद्यालय हो अथवा विश्वविद्यालय हो— अध्यापन के काय को समान रूप स सभी क्षत्रो में एक ही समान मानना चाहिए। प्रत्यक अध्यापक को अपनी रुचि के अनुसार बच्चो, तरुणो अथवा वयस्को को पढान का काम चुन लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार परिवतन करन की उस छूट होना चाहिए।

अत हमारी सस्तुति है कि आज जो विभिन्न श्रणी के अध्यापकों में हायरार्किकल भेद ह उसे धीरे-धीरे कम करना चाहिए, और अन्ततोगत्वा समाप्त कर देना चाहिए।

(१८)

शिक्षक प्रशिक्षण

आज औपचारिक और अनौपचारिक और सस्थागत तथा गैर सस्थागत शिक्षा का अन्तर कम हो रहा है। अत हम सस्तुति करते हैं कि जिन परिस्थितियों में अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता ह उनमें आमूल परिवतन कर देना चाहिए। उन्हें एक पूव निर्धारित शिक्षाक्रम को पढ़ाने के लिए विशवज्ञ बनने के स्थान पर वास्तविक शिक्षक बनना चाहिए।

(१९)

रूढिवादी और प्रगतिशील शिक्षक

आज सवत्र शिक्षा उस बिदु तक विकसित हो चली है जहा वह सारे समाज का काम हो रही है अत जन सख्या के अधिकाधिक भाग को शिक्षण के काम में हाथ बटाना चाहिए। अत हम सस्तुति करते ह कि दूसरे व्यवसायों के कमचारी, टकनिशियन और प्रबधक आदि अध्यापन का कार्य करें। विद्यार्थियों का सहयोग इस प्रकार लिया जाय कि दूसरों को सिखाते हुए वे स्वय सीख सकें। और उनमें यह

विचार उत्पन्न हो कि अपनी बौद्धिक पूजी के अजन के लिय दूसरों के साथ साझा करना आवश्यक ह।

(२०)

विद्यालय के जीवन में विद्यार्थी का स्थान

परपरागत विचारा और अभ्यासा के विपरीत अध्यापन को अपने विद्यार्थिया के अनुकूल करना चाहिए जिसस सीखन वाले विद्यार्थी को पूव निर्धारित नियमों के लिए अपना दमन न करना पड। अत हमारी सस्तुति ह कि सिद्धांतत यह मान लिया जाय कि विद्यार्थी शिक्षण की सारी प्रक्रियाओं का केन्द्र हो जिससे यह ज्यों ज्यों बडा हो, उसे अधिकाधिक स्वतन्त्रता मिले और वह स्वय यह निणय कर सके कि उसे क्या और कसे सीखना ह।

(२१)

विद्यार्थी का उत्तरदायित्व

हम यह भी सस्तुति करते ह कि सभी सीखनवालोंको चाहे वे बच्चे हों, चाहे वयस्क, समस्त शिक्षण प्रणाली में उत्तरदायित्व पूण भाग लेना चाहिय।

क्योकि कोई शिक्षण पद्धति जिसम सीखनवाल का उत्साह नही हाता, अधिक सफल नही हाती।

बबलभाई मेहता

शिक्षण और परिवर्तन

शिक्षण केवल विद्यालयों और महाविद्यालयो की कक्षाओ में ही नही दिया जाता। इनके अलावा घरो में गलियो में और समाज के बीच भी मनुष्य का शिक्षण होता रहता है। माता पिता का रहन सहन, उनके काम धधे और बातचीत शिक्षक का समूचा जीवन समाज म घटनेवाल घटनाएँ मित्रो को सगति पुस्तको और पत्र पत्रिकाओं का वाचन मनन देश विदेश की फिल्मो और नाटकों को दखना इन सबका मनुष्य के शिक्षण में अप ा एक स्थान होता है। थोडे में मेरे कहने का आशय यह है कि समाज द्वारा और आसपास के वातावरण द्वारा भी मनुष्य का शिक्षण सतत होता रहता है। एसी स्थिति म केवल कक्षा म दिए जानेवाले शिक्षण म परिवतन करन से हमारा उद्देश्य कैसे सिद्ध हो सकता है?

विरोधाभासयुक्त जीवन

आजकल हमारा समूचा समाज-शरीर विरोधाभासो स विसगतियो से, भरा दीखता है। माता पिता चाहते ह कि लडका विनयशील विवेकवान नीतिमान और सयमी बने किन्तु अक्सर होता यह है कि वे स्वय अपने जीवन द्वारा उसे इसका उल्टा ही बरताव करना सिखाते हैं। शिक्षक कहते हैं कि विद्यार्थियो को उद्यमी और स्वाध्यायशील बनना चाहिए किन्तु उनमें से कइयो के जीवन में उद्यमशीलता अथवा स्वाध्यायशीलता व दशन नही होत। समाज के नेता कहते हैं कि जनता का चारित्रिक स्तर घट चुका है उसमें सुधार होना चाहिए लेकिन स्वय इन नताओ में से कितने एस होते हैं, जो अपन चारित्र्यका विचार करते है? व्यापारी अधिकारियो को दोष दत हैं, लेकिन उनमें कई एसे हैं, जो रिश्वत देना या काला बाजार करना छोडते नही। किन्तु काला बाजार करनेवालो की अथवा सरकारी अधिकारियों के भ्रष्टा-

चार की बातें करते हैं, लेकिन जब मौका मिलता है, तो उनमें से कई अपने से छोटे लोगों की गरज से बेजा लाभ उठाना चूकते नहीं। इस तरह दूसरों से अपेक्षा एक तरह की रखना और खुद व्यवहार दूसरी तरह का करना, ऐसी एक आम हवा-सी बन गई है। इससे औसत आदमी के दिल पर असर यह होता है कि सारे समाज का जीवन ही विरोधाभासों से भर गया है। यह विरोधाभास ही जनता के जीवन को और हमारे शिक्षण को अन्दर से कुरेद रहा है, खोखला बना रहा है।

पहला उपाय : अपना जीवन

आज मुख्य और महत्व का प्रश्न यह है कि विरोधाभास या विसंगति की इस जंजीर को कहाँ से तोड़ा जाए? इसे तोड़ने का सबसे पहला स्थान है, व्यक्ति का अपना जीवन। इसका सच्चा उपाय यह है कि मैं अपने जीवन में से विरोधाभास को खतम करूँ, न रिश्वत लूँ और न रिश्वत दूँ, कष्ट सहन करनेमें भी अपने आचरण में अटल रहूँ और अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बना रहूँ। ऐसा होने पर ही व्यक्ति का जीवन शुद्ध बन सकेगा। शुद्ध जीवन जीने के लिए व्यक्ति को भोग-विलास-पूर्ण जीवन छोड़ना होगा। बिना पसीना बहाए मुफ्त में मिलनेवाली सुख-सुविधाओं को अथवा धन-दौलत को छोड़ने की तैयारी रखनी होगी। यदि ऐसा न हुआ, तो व्यक्तियों द्वारा ही समाज में शोषण, अन्याय, असन्तोष और अशान्ति बढ़ती रहेगी। ठीक है कि मुझे सुख चाहिए, लेकिन साथ ही मेरी तरह समाज के सब लोगों को भी सुख मिलना चाहिए। दूसरों के सुख की चिन्ता न करके मैं अपने लिए ही सुख बटोरना चाहूँगा, तो समाज में और कई उपद्रव हुए बिना रहेंगे नहीं। हम सब में इस तरह की समझदारी आनी चाहिए।

शिक्षण ही इष्ट साधन है

अगर इस काम को हम डण्डे के या कानून-कायदे के जोर से ही करना चाहेंगे, तो हो सकता है कि इसकी प्रतिक्रियाएँ अच्छी न भी हों। जब आदमी कानून की गलियों में से बच निकलने की तरकीबें खोजने लग जाता है, तो कानून के बन जाने पर भी उसका पालन भलीभाँति नहीं हो पाता। क्या हम सबका यह अनुभव नहीं है कि सत्ता प्राप्त करनेवाले खुद ही सत्ता का दुरुपयोग करने लगते हैं? अतएव गलत प्रतिक्रियाओं से बचकर परिवर्तन करने का सही साधन तो शिक्षण ही है।

भेदभाव की दीवार

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के क्या-क्या परिणाम हमें देखने को मिलते हैं? आम तौर पर पढ़े-लिखे लोग साधारण लोगों से उसी तरह अलग पड़ जाते हैं, जिस तरह पानी में तेल। पढ़ाई-लिखाई के कारण पढ़े-लिखे लोगों की वेश-भूषा में, बातचीत में और रीतिनीति में कुछ फरक पैदा हो, तो वह समझ में आ सकता है, लेकिन आज

तो इसमें से यह भेदभाव प्रकट होने लगा है कि पढ़े लिखे लोग ऊँचे हैं और बिना पढ़े-लिखे नीचे। इसके कारण समाज के अन्दर द्वेष, असन्तोष और अशान्ति का बीजारोपण होता रहता है।

यह आकांक्षा बदली जानी चाहिए

आज का पढ़ा लिखा आदमी पढ़ा-लिखा होने पर भी बेकारी का अनुभव करता है। तो क्या पढ़ाई लिखाई बन्द कर दी जाए? नहीं। बल्कि पढ़ाई ऐसी जरूर होनी चाहिए कि जिसमें शिक्षित को बेकारी का अनुभव ही न करना पड़े। अधिकतर पढ़े लिखे लोगों की आकांक्षा यह होती है कि उन्हें ऐसी नौकरी मिले, जहाँ उनको कुर्सी पर बैठकर कम काम करना पड़े और सफेद पोशी का जीवन जीने को मिले।

लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था की सर्वश्रेष्ठ नीति तो यही है कि सभी नागरिक समझदार बनें और सब पढ़े-लिखे हों। अब अगर सब पढ़े लिखे लोगों की यही आकांक्षा रहे कि उन्हें काम तो कम-से-कम करना पड़े और दाम या सुख-सुविधाएँ अधिक-से-अधिक मिलें तो सोचिए कि उसके परिणाम और क्या निकलेंगे?

आज के शिक्षण की स्थिति

आज की शिक्षा का स्वरूप ऐसा है कि उसके कारण स्वतन्त्र रीति से जिम्मेदारी उठाकर काम करने का आत्म विश्वास बढ़ता नहीं। शिक्षित व्यक्ति के मन में यह विचार ही नहीं उठता कि स्वयं उसका अपना और सारे समाज का कल्याण किस बात में है। शरीरश्रम के काम उसे हलके और अपमानजनक लगते हैं। शिक्षण-काल में ऐसे काम करने की कोई आदत भी डाली नहीं जाती। दूसरी तरफ आदतवाला की आदत छूट जाती है और उनकी जीवन सम्बन्धी जरूरत बढ़ती रहती है। खुद काम करने की वृत्ति क्षीण होती रहती है। तिसपर आज कल तो मँहगाई भी लगातार बढ़ ही रही है।

इस सबका नतीजा यह होता है कि कम मेहनत करके अधिक कमाई करने के लिए मनुष्य को जाने अनजाने अनीति के रास्ते अपनाने पड़ते हैं। मुझे अपनी मेहनत की प्रामाणिक रोटी ही खानी है, मुझको अपनी चादर के हिसाब से ही पैर फैलाने हैं, स्वस्थ समाज के स्वस्थ नागरिक के ये लक्षण उसके जीवन में जड़ जमा नहीं पाते, उल्टे, जो थोड़े-बहुत लक्षण होते हैं, वे भी लुप्त हो जाते हैं। आज हमारी शिक्षा की यही दिशा और गति है। शिक्षण में परिवर्तन की पुकार तो सब कोई मचाते हैं। शिक्षण-सम्बन्धी आयोगों की रिपोर्ट भी परिवर्तन की ही बातें कहती है, फिर भी हम देख रहे हैं कि आवश्यक परिवर्तन होते नहीं हैं।

साँचे में ढला शिक्षण

आज जो शिक्षा दी जाती है, वह तो सब को एक ही साँचे में ढालती चली जा रही है। हर एक व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। हर एक की अपनी

अलग रुचि और शक्ति होती है। हर एक की परिस्थिति और स्वभाव भी अलग होता है। अतएव सबको एक ही साँचे मे ढालते जाने से शिक्षा प्राप्त करनेवाले का सत्व दब जाता है।

दूसरी बात यह है कि हर एक के सामने जीवन का कोई ऊँचा ध्येय नही होता और न किसी व्यवसाय अथवा उद्योग का ही कोई स्पष्ट चित्र होता है।

असल मे होना यह चाहिए कि हर विद्यार्थी के सामने जीवन का एक निश्चित ध्येय धीरे धीरे प्रकट होता चला जाए। उसे ध्येय-पोषक काम-धन्धा भी पसन्द करना होगा। अपनी रुचि, शक्ति और परिस्थिति का विचार करके उसे अपने लिए ऐसा कोई काम या धन्धा पसन्द कर लेना होगा, जो उसके स्वभाव के अनुरूप हो। अपनी पसन्द के धन्धे के लिए जिस प्रकार के ज्ञान या अनुभव की आवश्यकता हो, उस प्रकार का ज्ञान और अनुभव भी उसे प्राप्त करना होगा।

दुनिया मे ज्ञान के तो भडार भरे पडे हैं। मनुष्य उस ज्ञान को प्राप्त करने बैठे, तो उसे अपनी कई-कई जिन्दगियाँ बितानी पड जाएँ। इसलिए उसे चाहिए कि अपने वर्तमान जीवन मे उसको जो कुछ सिद्ध करना है, उसके लिए आवश्यक ज्ञान और अनुभव वह प्राप्त कर ले।

यदि ऐसे ज्ञान की प्राप्ति के लिए विद्यालयो अथवा महाविद्यालयो मे जाना जरूरी हो, तो वह वहाँ जाए। खेतो मे या कारखानो मे जाना जरूरी लगे, तो वहाँ पहुँच जाए, और घर मे अथवा दूसरी किसी जगह जाना जरूरी हो, तो वहाँ भी जाए।

सबके लिए सब विषय सीखना जरूरी नही होता। जिस धन्धे के लिए जो विषय आवश्यक हो, वे उसके लिए अनिवार्य हो सकते हैं।

उद्देश्ययुक्त शिक्षण

किसी निश्चित उद्योग या धन्धे की योग्यता से रहित कोई उपाधि, प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा किसी को दिया नही जाना चाहिए। अथवा, व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि जो जिस काम या धन्धे में लगना चाहे, उससे सम्बन्धित प्रवेश परीक्षा मे पास होनेवाले को ही उसमें लगाया जाए। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि इस सम्बन्ध की तैयारी की दृष्टि से विविध शिक्षा-क्रमो का शिक्षण देनेवाली सस्थाएँ अथवा कारखाने जगह-जगह खोले जाएँ। तत्वज्ञान, सशोधन अथवा ऐसे अन्य विषयो में पारगत बननेवाले लोगो की भी जरूरत रहेगी। लेकिन ऐसे लोग बहुत कम सख्या में होगे। इस प्रकार के शिक्षाक्रमो मे उन्ही लोगो को भरती किया जाना चाहिए, जिनकी उनमें विशेष रुचि, गति और शक्ति हो। इसके लिए प्रवेश सम्बन्धी योग्यता का निर्णय सस्था को प्रवेश परीक्षा लेकर ही करना चाहिए।

सर्वसाधारण शिक्षण

तेरह-चौदह साल की उम्र के विद्यार्थियों को सर्व साधारण शिक्षण दिया जाना चाहिए। इस उमर तक पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी अपनी रुचि, शक्ति और परिस्थिति के विषयमें स्वय सोचने लगे और उसे किसी निश्चित दिशा में मुड़ने का अवसर मिले, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। यह शिक्षण इस प्रकार का होना चाहिए कि जिससे विद्यार्थी के शरीर, मन और बुद्धि तीनो का सर्वांगीण और सतुलित विकास हो सके। इस अवधि में उसे ऐसी आदत पड़ जानी चाहिए और ऐसे काम करने का अभ्यास हो जाना चाहिए कि जिससे वह अपने परिवार अथवा अपने विद्यालय की कुछ-न-कुछ मदद कर सके। जिस तरह विज्ञान के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करने की उसकी भावना बननी चाहिए, उसी तरह आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का विशेष ज्ञान प्राप्त करने में भी उसकी रुचि जागनी चाहिए।

आगे का शिक्षण

इसके बाद शुरू होनेवाले शिक्षण की सारी व्यवस्था इस तरह की जानी चाहिए कि जिससे विद्यार्थी कमाई भी करता रहे और उसे जिस क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करना हो, उसे भी वह प्राप्त करता रहे। इस प्रकार की व्यवस्था चाहे सरकार की ओर से की जाए चाहे समाज की ओर से हो। यदि ऐसी व्यवस्था खडी हो जाए, तो विद्यार्थियो में कभी निराशा उत्पन्न ही न हो पाए। वे बेकारी का भी अनुभव न करें और राष्ट्र के लिए उपयोगी किसी न किसी काम में अथवा सृजन में भी बराबर लगे रहे। ऐसी व्यवस्था से उन्हे कार्यानुभव भी मिल सकेगा और उनका आत्म-विश्वास भी बढ सकेगा। क्योकि उन्हे बुद्धि के और शरीर-श्रम के सब प्रकार के काम करने के अवसर मिलते रहेंगे इसलिए वे न तो निरे बुद्धिजीवी बनेंगे और न निपट बेगार ढोनेवाले ही बन सकेगे।

विद्यार्थियों को ऐसे ही काम-धन्धे सिखाए जाएँगे कि जो समाज के विकास में सहायक बन सकें और जिनसे और किसी वर्ग विशेष का शोषण न हो। इससे समाज में अनीति का अथवा शोषण-वृत्ति का विकास नही होगा। विद्यार्थियो को क्रम-क्रम से समाज-विकास के अथवा समाज सेवा के अमुक काम करने के अवसर मिलते रहे और उनके लिए आवश्यक अनुकूल वातावरण खडा किया जा सके, तो समाज के साथ विद्यार्थियो की निकटता भी बढेगी और इससे उनके अपने विकास मे भी काफी मदद मिल सकेगी।

क्रमिक शिक्षण

यदि कोई व्यक्ति एक साथ किसी काम या धन्धे का पूरा ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त न कर सके, तो उसके लिए इस प्रकार की भी व्यवस्था की जानी चाहिए

कि वह दो या तीन बार में भी क्रम-क्रम से उस काम या धन्धे का पूरा ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त कर सके। इस अवधि में उसकी क्षमता इतनी हो जानी चाहिए कि जिससे एक विशेष स्तर का काम वह भली भाँति कर सके। इससे उसकी आर्थिक स्थिति कमजोर नहीं हो सकेगी और दूसरी विशिष्ट परिस्थितियोंमें वह कोई न कोई काम या धन्धा करके अपना गुजर-बसर कर सकेगा। बाद में जब उसे अनुकूलता रहेगी, वह आगे का अपना अभ्यास करके या अनुभव प्राप्त करके उचित योग्यता पा सकेगा।

सब मोर्चों पर क्रान्ति

इसी का नाम है, शिक्षण में क्रान्ति। क्रान्ति की प्रक्रिया समाज में और शिक्षणमें, दोनों जगह, एक साथ चलनी चाहिए और दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनना चाहिए।

यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब इन दोनों कामों को करने की स्पष्ट कल्पना हमें होगी और हम इनके लिए आवश्यक पुरुषार्थ कर सकेंगे। यदि हम शिक्षण में या समाज में क्रान्ति लाना चाहते हैं, तो हमें अपना विसंगत अथवा विरोधाभास-युक्त जीवन छोड़ना ही होगा। जीवन में सब प्रकार की विसंगतियोंको समाप्त करना होगा। अपनी प्रचलित कार्य प्रणाली को भी छोड़ना होगा। रूढ़ परंपराओं में पले लोग हमारे इस काम का विरोध भी करेंगे। इस विरोध को सहयोग में बदलने के लिए भी हमें भारी पुरुषार्थ करना होगा। व्यापक समाज शिक्षण द्वारा हमें इसके लिए अनुकूल हवा तैयार करनी होगी। माता पिताओं, विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच इसके लिए आवश्यक काम जमकर करना होगा। मौजूदा ढाँचे को भी बदलना होगा और समाज के विचार और आचार में भी जरूरी हेरफेर करने होंगे। मैं इस काम को ही आचार्यकुल का काम मानता हूँ।

('भूमिपुत्र' से साभार)

अनुवादक—काशिनाथ त्रिवेदी

वी. एस. माथुर

बुनियादी शिक्षा

भारतीय जनता के लिये बुनियादी शिक्षा के महत्व को समझाने से पहले यह आवश्यक है कि हम स्वतन्त्रता से पहले शिक्षा के क्षेत्र में भारत की समस्याओं और उससे भी महत्वपूर्ण महात्मा गाधी के जीवन दर्शन के बारे में जिसमें उन्होंने न केवल राजनैतिक क्षेत्र में भारत की आजादी का ही नेतृत्व किया है अपितु भारतीय जनता की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थितियों में भी सुधार के लिये उन्होंने अत्यधिक बल दिया है, भी कुछ जानकारी प्राप्त कर लें। वास्तव में यह उन समय की समस्याओं की ही प्रतिक्रिया का नतीजा था कि महात्मा जी ने भारतीय जनता के जीवन की स्थितियों में सुधार की बुनियादी और सक्षम शक्ति के रूप में शिक्षा की एक नयी ही पद्धति देश के सामने रखी।

भूतकाल पर नजर

सन् १८३५ में सावजनिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष के नाते लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप पर अपना लंबा ब्यौरा पेश किया। स्वभावतः ही लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा की अच्छी पद्धति की बुनियाद डालने की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा और साहित्य के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने अनुभव किया कि देश के दैनंदिन प्रशासन में स्थानीय (नेटिव) सहयोग प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि देश में एक ऐसा वर्ग पैदा किया जाय जो रंग और रक्त में भले ही भारतीय हो किन्तु जो रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज हो। तत्कालीन गवर्नर जनरल के द्वारा इस शिक्षा नीति का समर्थन किया गया और यह निश्चय किया गया कि अब स्थानीय जनता को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से विज्ञान और अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान दिया जाय।

इसके बाद सन् १९४७ तक जब भारत अंग्रेजी दासता से मुक्त हुआ, सन् १८३५ में तय की गई इसी बुनियादी नीति का पालन और प्रसार होता रहा है। इस बीच ब्रिटिश शिक्षा के इतिहास में देश के विशाल जनसंख्या को शिक्षित करने की दृष्टि से भारतीय भाषाओं तथा साहित्य की शिक्षा पर कभी भी जोर नहीं दिया गया। शिक्षा का अर्थ केवल इतना ही माना गया कि वह उस वर्ग के हित साधन के योग्य

हो जो विचार और आत्मा से अंग्रेज थे और शासन में छोटे मोटे पदों पर थे। इसी वर्ग की सहायता से अंग्रेज लगभग १०० साल तक भारत पर शासन कर सके।

शिक्षा की इस अनुचित पद्धति के कारण सबसे बड़ी विकृति यह हुई है कि शिक्षा सरकारी नौकरियों से जुड़ गई और केवल किताबी बन गई। यह दुखदायी स्थिति आज भी यों ही जारी है जिसने शिक्षित बेरोजगारों की भयानक समस्या को घातक व्यापकता प्रदान की है। ब्रिटिश शासन के किसी भी स्तर पर कभी भी अनेक कारणों से शिक्षा को सार्वत्रिक नहीं किया गया और भारतीय जनता की शिक्षा पर बहुत ही कम राशि खर्च की गई। भारतीय भाषाओं की उपेक्षा की गई और भारतीय अभिजात्यों पर अंग्रेजी छा गई। हमारे दुर्भाग्य से अंग्रेजी का यह प्रभाव इतना गहरा है कि आज भी आजादी के २६ साल बाद इसके कम होने के कोई लक्षण नहीं हैं।

गांधीजी के विचार

महात्मा गांधी ने, जिन्हें अपने छात्र जीवन के कुछ समय तक अपने निजी अनुभव से अंग्रेज जनता के जीवन में शिक्षा के महत्व को परखने का अवसर मिला था, अपनी प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही यह अनुभव कर लिया कि भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता का तब तक कोई भी अर्थ नहीं है जब तक देश की आम जनता के लिये, चाहे विदेशी सरकार उसके लिये आवश्यक धन न भी दे, किसी उचित शिक्षा पद्धति का विकास नहीं किया जाता है। उन्होंने यह भी अनुभव कर लिया कि केवल साक्षरता अथवा किताबी ज्ञान भी किसी काम का नहीं है। उन्होंने कहा कि बुद्धि का सही शिक्षण केवल शरीर के अन्य अंगों के उचित अभ्यास और प्रशिक्षण के द्वारा ही सम्भव है। उन्होंने हृदय और आत्मा के शिक्षण पर भी जोर दिया और हर अच्छी शिक्षा को धरती से ही पनपाने की बात कही।

गांधीजी कोई प्रशिक्षित शिक्षा शास्त्री नहीं थे। उन्हें विभिन्न शिक्षा सिद्धान्तों की भी जानकारी नहीं थी। उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार केवल उनके निजी और सामाजिक जीवन के अन्तर्भूत भाग के रूप में विकसित हुये थे। दक्षिण अफ्रीका और खासकर टालस्टाय फार्म तथा फिनिक्स आश्रम में काम करते हुये उन्होंने भारतीय जनता के लिये उपयोगी शिक्षा पद्धति के बारे में अपना एक स्पष्ट विचार-चित्र विकसित कर लिया था। उनके इन विचारों को बाद को गुरु देव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में अपने राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र के माध्यम से फिर और आगे बढ़ाया।

गांधीजी भी गुजरात विद्यापीठ और साबरमती आश्रम में अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग करते रहे और धीरे धीरे किन्तु निश्चित स्पष्टता के साथ उनके शिक्षा दर्शन को स्वरूप मिलता गया और उसके मुख्य बिंदु स्पष्ट होते गये। सन् १९३७ में जब अनेक प्रान्तों में कांग्रेस सरकार शासन में आई तो उस साल के जुलाई माह में

गाधीजी ने अपने पत्र 'यग इडिया' के माध्यम से अपने शिक्षा सम्बन्धी विचार स्पष्टता के साथ देश के सामने रखे और बाद को उसी साल नवम्बर में वर्धा में एक राष्ट्रीय परिषद हुई जिस में भारत में प्राथमिक शिक्षा की एक राष्ट्रीय पद्धति की बुनियाद के रूप में नीचे लिखी बात स्वीकार की गई —

(क) देश में ६ से १४ साल तक की उम्र के बालक बालिकाओं के लिये निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(ख) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिये।

(ग) शिक्षा की प्रक्रिया बालक के आसपास के वातावरण से उद्भूत कुछ उत्पादक शरीर श्रम के आधार पर चलनी चाहिये और

(घ) इस पद्धति से शिक्षकों का वेतन निकल आना चाहिये।

जाकिर हुसेन समिति

बाद को व सामान्य सिद्धान्त शिक्षा की नियमित पद्धति तथा पाठ्यक्रमों का विकास करने की दृष्टि से डा जाकिर हुसैन जी जो बाद को भारत के राष्ट्रपति भी बने, की अध्यक्षता में बनी शिक्षा शास्त्रियों की एक समिति को सौंप दिये गये।

भारत के करोडो लोगों की दृष्टि से गाधी जी का यह पक्का विश्वास था कि भारत में खासकर प्राथमिक और सेकेन्डरी शिक्षा में आमूल परिवर्तन अपरिहार्य है। वे उच्च शिक्षा के बारे में उतने चिंतित नहीं थे क्योंकि जैसा कि हर जगह और हमेशा होता है इसका सम्बन्ध तो एक अत्यन्त ही अल्प संख्या से रहता है। वे इस तथ्य के प्रति भी कि वर्तमान शिक्षा बालक का अपने समाज और पेशे से पृथक कर रही है पूर्णरूप से जागरूक थे। उस समय प्रचलित किताबी शिक्षा उनके विचार में पूर्णतया हानि कर थी और इसलिए शिक्षा में सबके लिये किसी गौण विषय में रूप नहीं अपितु भाषा, इतिहास भूगोल विज्ञान गणित और दूसरे विषयों का ज्ञान देने वाले साधन के रूप में शिक्षा में शरीर श्रम को जोडने का निश्चय किया।

स्वावलम्बन के पहलू पर दो कारणों से जोर दिया गया। पहला कारण तो यह था कि ब्रिटिश सरकार सार्वजनिक शिक्षा की किसी भी योजना के लिये धन देने को तैयार नहीं थी और दूसरे वह शिक्षा की किसी भी राष्ट्रीय पद्धति के एकदम विरुद्ध थी। किन्तु इसके अलावा गाधी जी का यह दृढ विश्वास था कि बालक के उच्चतम शारीरिक मानसिक और आत्मिक विकास के लिये शरीरश्रम अत्यावश्यक है। उनकी राय में साक्षरता मात्र कभी भी सही शिक्षा का उद्देश्य नहीं हो सकती। इसलिये उन्होंने कहा कि मैं इसीलिये बालक की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयोगी हस्तकला सिखाते हुए शिक्षा के आरम्भिक क्षणों से ही कुछ उत्पादन करने में समर्थ बनाकर करूँगा। *इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय स्वावलम्बी बनाया जा सकता है किन्तु* शर्त यह है कि राज्य विद्यालयों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं को ले ले।

गाधीजी के द्वारा प्रतिपादित इन सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर प्रायमिक शिक्षा का एक नियमित पाठ्यक्रम विकसित करने का काम वास्तव मे जाकिर हुसैन कमेटी के लिये एक भारी काम था। इस समिति ने अत्यन्त ही सराहनीय ढग से यह काम पूरा किया और अमल में जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक स्मारक के रूपमे प्रतिष्ठित हो गई है। समिति ने निश्चित पाठ्यक्रम और विषयों के चयन के साथ साथ अध्यापकों के लिये भी मार्ग दर्शक सिद्धान्तों का निरूपण किया है। इस रिपोर्ट मे समवाय याने विभिन्न उद्योगों के माध्यम से विद्यालयी विषयों को सिखाने की प्रविधि पर सबसे अधिक जोर दिया गया है। इसमे उद्योग को न केवल उत्पादक ही होना चाहिये अपितु उसे शारीरिक दृष्टि से भी उपयोगी होना चाहिये।

बुनियादी शिक्षा क्या है

यहाँ इस बात पर जोर देना उचित होगा कि बुनियादी शिक्षा और अन्य शिक्षा पद्धतियो मे बुनियादी अन्तर है। अन्य शिक्षा पद्धतियाँ जहाँ काम को गौण विषय मानती है वही बुनियादी शिक्षा मे काम ही शिक्षा याने बौद्धिक प्रशिक्षण का समूचा आधार है। १९३७ में जिन प्रान्तों मे काग्रेस सरकारे आरूढ हुई उनमे इस प्रकार कार्य की तरफ उन्मुख बुनियादी शिक्षा का काम तुरन्त हाथ मे लिया गया। इसपर फिर स्वतन्त्रता से पहले की केन्द्रीय सरकार ने भी विचार करना आरम्भ किया और अग्रेजों को भी इसमे निहित मूल्यों की कुछ समझदारी आई और यहाँ तक कि स्वतन्त्रता के केवल तीन साल पहले सन् १९४४ मे बैठी सार्जेन्ट कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकृति प्रदान की और पहली बार सार्वजनिक शिक्षा को एक राष्ट्रीय पद्धति की आवश्यकता को स्वीकार किया गया।

यह बात स्पष्टतया समझ ली जानी चाहिये कि बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य उसमें विभिन्न कौशलों और उद्योगों के माध्यम से कुछ विशेषता प्राप्त करने के ध्येय के बावजूद कारीगरो या तकनीसियनो का उत्पादन करना मात्र नही है। इसमें विद्यालयों को कारखाना बनाने की भी कोई मशा नही है। उत्पादकता पर जोर तो केवल बालक के मनोवैज्ञानिक पुनर्नवीकरण (रिओरिन्टेसन) की दृष्टि से ही दिया जाता है। यह अनिवार्यत. शिक्षा की एक योजना है, पूर्व-शिक्षा योजना नही। कार्य परक क्रियाकलापो के माध्यम से बालक में सतुलित व्यक्तित्व के साथ साथ अच्छी आदतें, चरित्र और जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टि कोण का विकास करना ही इसका उद्देश्य है।

कताई और बुनाई और कृषि पर दो कारणो से जोर दिया जाता है। पहले तो चूँकि खेती भारतीय जनता की मुख्य जीविका ही नही अपितु जीवन-विधि भी है,

दूसरे जहाँ तक कताई बुनाई का सम्बन्ध है यह अंग्रेजो के विरुद्ध हमारे स्वतन्त्रता संग्राम का मुख्य साधन रहा है। गाधीजी अहिंसा में विश्वास करते थे और वे उस पर अंत तक कायम रहे। इसलिए अंग्रेजो के विरुद्ध आर्थिक मोर्चे पर लडना भी आवश्यक था। भारत अपना पूरा कपडा इग्लैण्ड में स्थित ब्रिटिश मिलो से लेता था और गाधी जी ने सोचा कि यदि प्रत्येक भारतीय अपने श्रम से ही अपना कपडा प्राप्त करने लगे तो वह ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था पर सबसे बडी मारक चोट होगी।

शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा पर जोर सर्वत्र स्वीकार किया गया है। न केवल एक विषय के रूप मे अपितु शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजो ने अंग्रेजी भाषा पर जोर देकर भारतीय जनता के एक सक्षम भाग को उसकी जडो से अलग कर दिया। हर प्रकार की अंग्रेजियत को प्रोत्साहन और हर प्रकार की भारतीयता को तिरस्कार किया जाने लगा। यह अंग्रेजो की इतनी बडी विजय थी कि अंग्रेजी भाषा की यह मजबूत पकड आज भी जारी है। इसलिये मातृभाषा पर जोर देना वास्तव में एक ठोस शिक्षणशास्त्र था।

स्वतन्त्रता के बाद की प्रगति

१९४७ में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो भारत की पहली राष्ट्रीय सरकार ने इस बुनियादी शिक्षा को स्वीकार किया और यह माना की बुनियादी शिक्षा के द्वारा ही सारे देश मे समस्त प्राथमिक शिक्षा दी जा सकती है। १९५० म जब भारत का नया संविधान लागू हुआ तो उसकी ४५ वी धारा म यह कहा गया कि राज्य १० साल के अन्दर १४ साल तक के बालक-बालिकाओ के लिये नि शुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के सार्वत्रीकरण म काफी प्रगति हुई है किन्तु १४ साल तक के बच्चो को नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा देने का अपना घोषित लक्ष्य तो हम अब तक भी प्राप्त नही कर सके है। अब यह आशा की जा रही है कि सभवत सन् १९८० तक हम ६ से ११ साल तक के १०० प्र श बच्चो को स्कूलो में भर्ती कर सकेंगे।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सबसे बड़ी कठिनाई तो निस्सदेह हमारे पास साधनो की ही कमी रही है। किन्तु यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यदि हमने इस शिक्षा पद्धति को निष्ठा और ईमानदारी से लागू किया होता तो यह बाधा समाप्त की जा सकती थी। जहाँ तक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का सवाल है इसमें हमने काफी प्रगति की है। अभी उच्च माध्यमिक स्तर के अंतिम साल तक मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम है और अब तो शिक्षा के उच्च स्तरो पर भी क्षेत्रीय भाषाएँ माध्यम के रूप मे बडी खूबी के साथ अपनाई जा रही है। भारतीय भाषाओ म किसी भी प्रकार के आवश्यक साहित्य की कमी को भी तेजी से समाप्त किया जा रहा है। राष्ट्रीय पुस्तक निगम, राष्ट्रीय स्तर पर एन सी ई आर टी (नेशनल काउ-

सिल आफ एज्युकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग) और राज्य स्तर पर पाठ्यपुस्तकों के लिये राज्य स्तरीय बोर्ड इस दिशा में बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।

जहाँ तक उत्पादक शरीरश्रम के सिद्धान्त का सम्बन्ध है इसको भी बुनियादी और गैर बुनियादी दोनों प्रकार के विद्यालयों में लागू किया जा रहा है। सन् १९६६ में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षा के एक ठोस दर्शन और एक क्रान्तिकारी प्रयोग के रूप में बुनियादी शिक्षा की प्रशंसा की है और कार्यानुभव तथा शिक्षा के व्यावसायीकरण की शक्ल में शिक्षा के सभी स्तरों पर इसको लागू करने की सिफारिश की है। इस आयोग ने खासकर स्वतन्त्रता के बाद बुनियादी शिक्षा की फिर से व्यापक व्याख्या की है।

आलोचना :

यह बुनियादी शिक्षा का, जिसे मैं राष्ट्र को गांधीजी की सर्वोत्तम देन मानता हूँ, एक संक्षिप्त इतिहास है। फिर भी, जैसा कि हर नये विचार के साथ होता है, बुनियादी शिक्षा की भी उसके आरम्भ से ही कुछ आलोचना की गई है। मैं यहाँ बुनियादी शिक्षा के विरुद्ध की गई कुछ मुख्य आलोचनाओं का जिक्र कर उनकी परीक्षा करना उचित मानता हूँ।

(१) कुछ लोगों का मानना है कि बुनियादी शिक्षा में अत्यधिक प्रौढ़ निर्देश होता है। इस तरह के आलोचक कहते हैं कि असल में बुनियादी शिक्षा की कल्पना ही प्रौढ़ आवश्यकताओं और मूल्यों के आधार पर की गई है।

इस आलोचना पर विचार करते हुए हमें यह तथ्य भूलना नहीं चाहिए कि आखिर में शिक्षा का लक्ष्य बालक को एक ठोस और स्वस्थ सुन्दर प्रौढ़ जीवन के लिये तैयार करना है और यदि प्रारम्भिक अवस्था में ही इसकी पक्की बुनियादें नहीं डाली गई तो शिक्षा स्वयं बहुत कुछ महत्व खो देती है। बुनियादी शिक्षा के विरुद्ध असल आरोप उसके स्वावलम्बन के पहलू को लेकर है। आलोचक अनुभव करते हैं कि बुनियादी शिक्षा में बाल-श्रम निहित है जब कि फैक्ट्री कानूनों में बाल-श्रम १४ साल से कम के बालकों से श्रम लेने पर कानूनी बंदिश लगाई गई है।

किन्तु स्वावलम्बन का यह अत्यन्त ही संकुचित और यान्त्रिक अर्थ है। यहाँ आलोचक इसके सृजनात्मक पहलू की उपेक्षा कर देते हैं। वास्तव में उस मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण ही स्वावलम्बन पर जोर दिया गया है, जो इस तरह की शिक्षा पैदा करती है, और इस पर जोर आर्थिक दृष्टिकोण से और खासकर स्वतंत्र भारत में जब कि सरकार शिक्षा के लिये सभी आवश्यक धन खर्च करने के लिये तैयार है, नहीं दिया गया है। इसके अलावा, जैसा कि श्री विनोबा जी ने जो गांधीजी के बाद कहा है, गांधी-विचारके सर्वोत्तम जीवित अनुयायियोंमें से हैं,

कहा है कि स्वावलम्बन से गांधी जी का मतलब केवल आर्थिक स्वावलम्बन से नहीं था। उनका जोर तो असल में बौद्धिक और आध्यात्मिक स्वावलम्बन पर था और इन दो बातों का महत्व तो आज या कभी भी कहीं अधिक है।

(२) बुनियादी शिक्षा के विरुद्ध एक दूसरा बड़ा आरोप यह है कि इसमें बालक को आत्म प्रकटीकरण के लिये मुक्त वातावरण नहीं मिलता है। ये आलोचक यह अनुभव करते हैं कि बुनियादी शिक्षा क्राफ्ट केन्द्रित अधिक है और बालक केन्द्रित कम है।

यहाँ यह बात तुरन्त ध्यान में रखनी होगी कि शिक्षा में बहुत कुछ तो शिक्षक पर ही निर्भर करता है। यदि सही ढंग से पढ़ाये जायँ तो क्राफ्ट केन्द्रित क्रियाकलाप भी उपयोगी शैक्षणिक प्रोजेक्ट बन सकते हैं। यह तो एक रूढ़ियुक्त शिक्षक है जिसके हाथ में कोई भी क्राफ्ट मन को उकतानेवाला बन जाता है और प्रत्येक व्यक्ति में प्राप्ति की क्षमता को माप करने उसे प्रोत्साहन देने और उसमें गति पैदा करने की दृष्टि से क्राफ्ट की निश्चित ही एक विशिष्ठ उपयोगिता है। इसमें हमेशा ही प्रसन्नता और किसी वस्तु के पैदा करने अथवा बनाने के उपरान्त एक प्रकार का ज्ञान का भाव शामिल रहता है।

(३) इसकी एक तीसरी आलोचना यह भी की जाती है कि इसमें समवाय एक साधारण अध्यापक के हाथ में अत्यन्त भोंडा उपकरण बन जाता है। किन्तु इसका कारण समवाय तो नहीं है। यह तो वही शिक्षक करता है जो समवाय का संकुचित अर्थ करता है। जैसा कि मैंने कई अच्छे विद्यालयों में समवाय का काम करते हुए देखा है मैंने पाया है कि वह बालक के लिये दिये जानेवाले ज्ञान के हर भाग को एक अर्थ और वास्तविकता प्रदान करता है। जाकिर हुसैन कमेटी ने समवाय के विचार को और स्पष्ट कर आगे बढ़ाया और इस दृष्टि से शिक्षक को अधिक स्वतंत्रता प्रदान की है। भौतिक और सामाजिक वातावरण को भी समवाय के केन्द्र के रूप में रखा गया है। इस पर भी जोर दिया गया है कि सभी प्रकार का शिक्षण ठोस जीवन की स्थितियों के माध्यम से दिया जाना चाहिये और यह बात शिक्षा के लिये किसी भी देश और परिस्थिति में सही है।

कमी का कारण दोषपूर्ण कार्यान्वयन

यह बात सही है कि बुनियादी शिक्षा अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकी है और कुछ आलोचक इसका कारण पद्धति में निहित कमियाँ ही बताते हैं। किन्तु मेरे विचार से यह सही नहीं है। हमारी कमियाँ कुछ तो हमारे इसके दोषपूर्ण कार्यान्वयन के कारण रही हैं और कुछ अध्यापकों में इसके लिये आवश्यक निष्ठा और समझदारी के अभाव के कारण रही है। सम्भवतः हम इस पद्धति के लिये

आवश्यक प्रशिक्षित और पर्याप्त सख्या में शिक्षक भी उपलब्ध नही कर सके है। हमें अब इसकी सही आत्मा को पुन प्राप्त करना होगा। हमें इस समयानुकूल भी बनाना होगा।

उपसंहार·

उपरोक्त चर्चा का सार यह है कि महात्मा गाधी की बुनियादी शिक्षा जान ड्यूवी और अन्य शिक्षाशास्त्रियो के द्वारा प्रतिपादित और उनके व्यवहारवादी दर्शन पर आधारित क्रिया-परक शिक्षा का नया भारतीय सस्करण है। ब्रिटिश भारत की परिस्थितियो के कारण सारी चीजा को एक सर्वथा नया आधार देना आवश्यक था। हमारे लिये करोडो बच्चों के लिये एक ऐसी सार्वत्रिक शिक्षा का एक कार्यक्रम आवश्यक था जो मात्र साक्षरता से भी आगे जाता हो। अब चूंकि बुनियादी शिक्षा भारतीय शिक्षा पद्धति में गहराई तक शामिल कर ली गई है अत अब हम बुनियादी शिक्षा को उसके पृथक् नाम से पुकारना आवश्यक नही मानते। यह पश्चिमी देशो मे प्रचलित उस शिक्षा की ही तरह है जिसमे क्रिया-परक शिक्षा और प्रोजेक्ट पद्धति पूर्णरूप से एक मे मिल गई है। फिर भी बुनियादी शिक्षा में कुछ ऐसी अच्छी बातें है जो कि किसी भी आधुनिक समाज के द्वारा उसकी भलाई के लिये अध्ययन करके अपनाई जा सकती है। हम आज उस चौराहे पर खडे है जहाँ हमे स्वस्थ बौद्धिकता और आत्मघात में चुनाव करना है और इस सन्दर्भ में गाधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का अत्यन्त ही महत्व है। तकनीकी के घातक प्रवाह के सन्दर्भ मे आज हमारे युवक युवतियो मे सम्यक् व्यवहार, सस्कृति और उद्देश्यो का निर्माण अत्यावश्यक हो गया है और इस सन्दर्भ मे शिक्षा तथा जीवन के बारे में गाधी जी के विचारो से हमे आवश्यक प्रेरणा ग्रहण करनी होगी। गाधी जी के अहिंसा के सिद्धान्त ने भारत के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त की है और मुझे पक्का विश्वास है कि उनके बुनियादी शिक्षा के विचारो के द्वारा ही हम एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकेगें।

सयुक्त निदेशक, जन सम्पर्क विभाग, हरियाणा सरकार, चडीगढ।

गुजरात राज्य में बुनियादी शिक्षा की प्रगति

पृष्ठभूमि — नयी तालीम अथवा बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम महात्मा गांधी की देश को सर्वोत्तम देन है, यह गांधी जी ने स्वयं कहा है। उन्होंने सन् १९३८ में यह देश के सामने रखा और उस समय के बम्बई राज्य ने सबसे पहले इसे कार्यान्वित करने का निश्चय किया। उस समय राज्य के जिन चार सघन क्षेत्रों को इसके लिये चुना गया था उनमें वर्तमान गुजरात राज्य का सूरत जिला भी था। इन चारों क्षेत्रों की ५५ बुनियादी शालाओं में से १३ शालायें सूरत जिले में आती थीं जिनमें प्रयोग के रूप में पूनी बनाने और कताई उद्योग के द्वारा शिक्षा देने का काम आरम्भ किया गया। कई कारणों से सन् १९४५ तक तो इस कार्य में कोई खास प्रगति नहीं हुई, किन्तु जब १९४६ में बम्बई राज्य में कांग्रेस सरकार कायम हुई तब फिर इस कार्यक्रम को पूरा वेग मिला और जहाँ तक सम्भव था अधिक से अधिक शालाओं को बुनियादी शाला में बदल दिया गया। इन शालाओं में बागवानी, खेतीबाड़ी, कताई और बुनाई, कागज का काम, पुट्ठे बनाने का काम और लकड़ी का काम शिक्षण उद्योग के रूप में दाखिल किया गया। इसके साथ ही सफाई और समूह जीवन की प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहन देने के कार्यक्रम आरम्भ किये गये। इस प्रकार से सन् १९४९ तक राज्य में तीन प्रकार की शालायें काम कर रही थीं —

(१) बुनियादी शालायें।
(२) उद्योग शालायें और
(३) सामान्य शालायें।

सन् १९५६ में बम्बई राज्य में सौराष्ट्र राज्य का विलीनीकरण हो गया तब वहाँ भी इन बुनियादी शालाओं की ही तरह कुछ शालायें चलती थीं जिनमें बागवानी, खेती, कताई और बुनाई के उद्योग दाखिल किये गये थे। ये लोक शालायें आज भी गुजरात के सौराष्ट्र सभाग में चल रही हैं और यह इस प्रकार से राज्य में चौथी प्रकार की प्राथमिक शालायें हैं।

वर्तमान परिस्थिति — अभी गुजरात राज्य में कुल लगभग २२ हजार प्राथमिक शालायें हैं इनमें से ५६३१ बुनियादी शालायें हैं। इनमें अलग अलग उद्योग शिक्षण के माध्यम के रूप में दाखिल किये गये हैं। २५६३ शालाओं में कताई, २४५४ में कताई और बुनाई दोनों, ५०८ में बागवानी और खेतीबाड़ी, ५३ में पुट्ठे का काम और ५३ में लकड़ी के काम को शिक्षण के माध्यम के रूपमें दाखिल किया गया है। इस प्रकार से राज्य की कुल प्राथमिक शालाओं का २४ ५ प्र श भाग बुनियादी

शिक्षा के क्षेत्र में आ चुका है। सन् १९६६ से ही १ ली से लेकर ४ थी कक्षा तक के लिये सब विषयों का एक नया पाठ्यक्रम स्वीकार किया गया था जिसके अनुसार १ ली और २ री कक्षा में कोई रचनात्मक प्रवृत्ति और ३ री तथा ४ थी कक्षा में उद्योग का स्थान दिया गया है। इन उद्योगों का चुनाव शाला के भौगोलिक परिवेश और सामाजिक परिस्थिति के साथ साथ विद्यार्थी की रुचि के अनुसार किया जाता है।

उत्तर बुनियादी शालायें —माध्यमिक स्तर तक की संगठित शालाओं को उत्तर बुनियादी शाला कहा जाता है। सन् १९५४ में सेवाग्राम में हुये बुनियादी शिक्षा सम्मेलन में स्वीकृत परिभाषा के अनुसार ही ये शालायें हैं और खासकर सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा ही चलाई जा रही हैं। जब उत्तर बुनियादी शिक्षा का काफी विस्तार होने लगा और इनकी संख्या बढ़ने से उनके लिये भी फिर नये ढंग से विचार करना आवश्यक हो गया तो सरकार ने सन् १९४९ में ही इनके मूल्यांकन और दूसरी शालाओं को इनके अनुरूप बनाने के लिए सुझाव देने के लिये एक समिति का गठन किया। उसके अनुसार फिर उत्तर बुनियादी शालाओं के पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन किया गया और दूसरी शालाओं के साथ उनका कुछ तालमेल बिठाया गया। आज इन उत्तर बुनियादी शालाओं के छात्र अन्य माध्यमिक शालाओं के छात्रों की ही तरह शालान्त परीक्षाओं में उपस्थित होते हैं और उनकी ही तरह फिर या तो विश्व-विद्यालयों शिक्षा के लिये आगे चले जाते हैं या फिर किसी धंधे में लगकर जीवन में प्रवेश कर लेते हैं। अभी राज्य में कुल २२८२ माध्यमिक शालायें हैं इनमें से १०० इस तरह की उत्तर बुनियादी शालायें हैं जिनमें ९९ में तो खेतीबाड़ी को शिक्षण का माध्यम रखा गया है और एक में कताई बुनाई माध्यम है। इनके अलावा १२६ शालायें और ऐसी हैं, जिनमें विविधलक्षी शिक्षण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं और इस प्रकार से कहा जा सकता है कि राज्य में २२८२ में से २२६ में किसी न किसी प्रकार का उद्योग शिक्षण के माध्यम के रूप में दाखिल कर लिया गया है।

कार्यानुभव द्वारा शिक्षण —कोठारी कमीशन की सिफारिसों के अनुसार भी और राज्य में बुनियादी शिक्षा के प्राप्त संतोषजनक परिणामों के फलस्वरूप आज राज्य की सभी प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में किसी न किसी प्रकार का उद्योग शिक्षण के माध्यम के रूप में चलाया जा रहा है। कक्षा १ और २ में मिट्टी का काम, बागवानी और कागज का काम तथा कक्षा ३ और ४ में वस्त्र विद्या, खेतीबाड़ी, वन विद्या और और पुट्ठे का काम दाखिल किया गया है। इन उद्योगों में से हर शाला में कोई न कोई एक उद्योग रखना अनिवार्य कर दिया गया है। जून १९७० से ५ वीं में और जून १९७१ से ६ ठी कक्षा में भी नया अभ्यासक्रम लागू कर दिया गया है। अब जून १९७२ से यह पाठ्यक्रम कक्षा ७ वी में भी लागू हो गया है। कक्षा ५ से कक्षा ७ तक के लिये वस्त्र विद्या, वन विद्या, बढ़ईगिरी का काम, खेतीबारी,

नेतर काम, बांस का काम, पुट्ठ का काम, सिलाई, बढ़ाई और मिट्टी का काम तथा माडलिंग और इन्टीग्रटड जनरल क्राफ्ट कार्स लागू किया गया है। प्रत्यक माध्यमिक शाला म उपरोक्त १० उद्योगा में से कोई एक उद्योग रखना अनिवार्य कर दिया गया है। इस प्रकार स प्राथमिक स्तर तक बुनियादी शिक्षा का काम गुजरात राज्य म लगभग पूरा हो जाएगा। इनके साथ ही समूह जीवन की प्रवृत्तियाँ तो अनिवार्य है ही। अब सरकार ८ वी कक्षा म भी इस पाठयक्रम को लागू करन जा रही है और यह निश्चय किया गया है कि सन् १९७५ तक राज्य म कक्षा १० तक की सभी शालाओं म यह नया पाठयक्रम पूर्णत लागू और क्रियान्वित हो जाय। कक्षा ८ स १० वीं तक के लिए उपरोक्त सभी उद्योगो के अलावा बाध बनान का काम, प्राथमिक वैद्युती, परिमाप और सर्वे का काम, गृह विज्ञान और सिलाई तथा सामान्य रडियो यान्त्रिकी भी दाखिल करन का निश्चय किया गया है।

बुनियादी शिक्षण कार्यक्रम मूल्यांकन समिति —कोठारी आयोग की सिफारिशो का ध्यान म रखकर बुनियादी शिक्षा की दृष्टि म और सुधार करन क लिये सुझाव दन के लिय सरकार न सन् १९७० म श्री मनुभाई पचोली की अध्यक्षता म एक मूल्यांकन समिति की नियुक्ति की जिसन अपनी सिफारिशें सरकार को दे दी है और सरकार न उन्ह सन् १९७१ स ही लागू करन के सिद्धान्त के साथ लगभग स्वीकार कर लिया है। इस समिति न कार्यानुभव के द्वारा छात्रो म पूर्व व्यवसायिक क्षमता प्राप्त करनेपर जोर दिया और सरकार न इसी उद्देश्य को ध्यान म रखकर नय पाठयक्रम म उद्योगो का समावेश किया है। पहल स ही लिय गय उद्योगो क अलावा इस दृष्टि म पशु संवधन, डेरी का काम, धातु का काम, इन्टीग्रटड जनरल क्राफ्ट कोर्स और प्राथमिक इलेक्ट्रानिक्स और रेडियो यान्त्रिकी को भी पाठयक्रम म रखा है। इस समिति न बुनियादी और उत्तर बुनियादी शालाओं बुनियादी अध्यापन मंदिरो और स्नातक नयी तालीम केन्द्रो के साथ साथ बुनियादी शिक्षा स सम्बन्धित सभी संस्थाओ और निरीक्षक पदाधिकारियों के लिए कई महत्वपूर्ण सिफारिशें की है जिन्हे सरकार न लगभग सभी को मान लिया है। अब यह भी प्रयास किया जा रहा है कि सरकारी विद्यालयों के साथ ही सभी गैर सरकारी शालाओं म भी एकरूपता लान की दृष्टि स इन सिफारिशों का पूर्णतया लागू किया जाय। समिति की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिश इस प्रकार स है —

(१) कताई और बुनाई के लिय कच्चा माल प्राप्त करन का काम शाला की मदद और दखरेख म छात्रो को ही दना चाहिय और इस काय के लिय इस विद्या में निपुण शिक्षको को कई शालायें सौंप कर उन्हे साधन सुधार करन, साधन एकत्र करन और उद्योग सम्बन्धी मार्गदर्शन करन की सुविधायें दी जानी चाहिये।

(२) हर तालुके म इस तरह के उद्योगो के लिय एक साधन स्टोर होना चाहिए और उसी तरह स बड बड़ नगरो म इन साधनो की मरम्मत आदि के लिय

एक वर्कशाप होनी चाहिये। ये वर्कशाप सरकार पर बोझ न बन कर कमाऊ धवा बननी चाहिये और अपने अतिरिक्त समय में वे जिला पचायत समिति, नगर प्राथमिक शिक्षण समिति और अन्य सरकारी तथा गैर सरकारी सस्थानो के लिये भी सामान तैयार करें और उसकी मरम्मत करने का भी काम करें। सरकार और सस्थाओ के सभी विभाग इस बात का बराबर ध्यान रखें कि इन वर्कशापो को हमेशा काम मिलता रहे और वे व्यर्थ न पड़ी रहे।

(३) इस प्रकार के उद्योग शिक्षण से शाला और बालको को आमदनी होनी निश्चित है अत उस का कुछ भाग, उसमें से कुछ व्यवस्था और लागत खर्च काटने के बाद, खासकर जहाँ खेती का उद्योग हो, बालको को बाँट देना चाहिये।

(४) ५ वी से लेकर ७ वी तक की कक्षाओं के लिये समिति ने सुझाव दिया है कि उनके द्वारा सभी उद्योगो में से एक उद्योग अनिवार्यत दाखिल करके यह प्रयास होना चाहिये कि शाला 'कार्यानुभव' और 'कमाओ और पढ़ो' योजना का पूरा पूरा लाभ ले सके। इसके लिये शाला के मुख्य शिक्षको का तालुके के विकास अधिकारी से पूर्ण सम्पर्क और तालमेल होना चाहिये ताकि इस कार्य में विकास विभाग की भी पूरी मदद शिक्षा के काम में मिले।

(५) समूह जीवन की प्रवृत्तियो को शाला के दैनिक कार्यक्रम में प्रभावकारी स्थान मिल सके इसके लिये यह सुझाव दिया गया है कि शाला का समय-चक्र १०–४५ से आरम्भ हो और ११–१५ तक के बीच समूह जीवन की प्रवृत्तियां ही शाला मे चलें। इसके लिये शाला के पूरे समय मे १५ मिनट की वृद्धि करनी होगी।

(६) बुनियादी शिक्षा का यह प्रयोग सुचारू रूप से काम कर सके इसके लिये यह आवश्यक है कि जिला प्रशासन के स्तर पर ही नही तालुका स्तर पर भी सभी सम्बन्धित विभागो और कार्यकर्ताओ में पूर्ण तालमेल हो। अत यह सुझाव दिया गया है कि इसके लिये जिला स्तर पर एक समन्वय समिति होगी और तालुका स्तर पर भी उसकी एक शाखा होगी। इसमें शिक्षाशास्त्री, खादी कार्यकर्ता, विकास विभाग के अधिकारी, खेती विकास के अधिकारी, सिंचाई विभाग के अधिकारी और शिक्षा निरीक्षक होंगे। शिक्षा निरीक्षक इस समिति के सयोजक होंगे। इस समिति के द्वारा प्रस्तावित और क्रियान्वित होने वाले कार्यक्रमो को सफल बनाने में जिला कलेक्टर भी पूरी पूरी रुचि ले यह भी व्यवस्था की गई है।

बुनियादी शिक्षा के इस प्रयोग को राज्य स्तर पर एक पूर्णकालिक सक्षम अधिकारी के मातहत कर दिया गया है, और उसे सभी आवश्यक साधन और स्टाफ आदि दिया गया है। जिला में बुनियादी शिक्षा समन्वय समितियो से इस अधिकारी का निकट सम्पर्क रह सके तो अच्छा है।

कमाओ और पढ़ो योजना —गुजरात राज्यमें शिक्षा के क्षेत्र में यह एक नया और बुनियादी कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम भी कोठारी आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इसके अन्तर्गत शालायें इस तरह के कार्यक्रम लेंगी जिनमें छात्र काफी अच्छी कमाई भी कर सकें। इस योजना के अन्तर्गत कताई द्वारा कपड़े के मामले में छात्रों को पूर्ण स्वावलम्बी बनाना, घरेलू चीजों का निर्माण करना, उनकी मरम्मत करना, बागवानी और कृषि पशु पालन लकड़ी का काम, सिलाई, राजकाम एवं भवन निर्माण की विविध प्रवृत्तियाँ आरम्भ की गई हैं। इसके अलावा सड़क निर्माण कार्य में मदद करना पेड़ लगाना, नहर बनाने और उनकी मरम्मत करने, शाला या अन्य भवनों में सफेदी करने, उनके दरवाजों और खिड़कियों पर रंगाई करने, और कृषि की विविध प्रकार की प्रवृत्तियों में सहायता करने के काम भी हाथ में लिए गए हैं। कोठारी आयोग की कार्यानुभव की सिफारिशों को ध्यान में रखकर इन सब कामों का अनुसरण में करने का प्रयत्न भी हो रहा है और खासकर अवकाश के समय पर भी छात्र और शिक्षक इन प्रवृत्तियों को जारी रखें यह प्रयास किया जा रहा है। इसके साथ ही प्राथमिक चिकित्सा के द्वारा सेवा और स्वास्थ्य सम्बन्धी अभियान भी आयोजित किए जाने यह प्रयास है। छात्र जनगणना कायम सार्वजनिक सफाई में, पौधों की और सड़क आदि की देखरेख में नगरपालिका समिति और पंचायत समिति की मदद कर सकें यह भी प्रयास किया जा रहा है। उनसे बिजली लगाने के काम में भी मदद हो यह भी सोचा गया है। वस्त्र स्वावलम्बन के लिए अम्बर को ⅓ कीमत ही छात्र से ली जाती है और बाकी दो भागों को जिला पंचायत और तालुका पंचायत आपस में बराबर बाँट लेता है।

शैक्षणिक प्रयोगों को पूरी सुविधा —बुनियादी शिक्षा मूल्यांकन समिति के सुझावों के अनुसार प्रत्येक जिले में शैक्षणिक प्रयोग करने वाला एक विशिष्ट शाला का निर्माण हो यह भी प्रयास हो रहा है। ग्रामीण शालाओं में भी शाला और गाँव का पूरा पूरा संजीव सम्पर्क हो इसके लिए भी प्रयास है। यदि गाँव के लोग मुख्य शाला के मुख्य उद्योग में कोई फेर बदल करना चाहते हैं तो उनकी आवश्यक जाँच करके उसे ऐसा करने दिया जाता है और जिला शिक्षण समन्वय समिति उनके लिए आवश्यक अनुमति और अन्य मदद भी करती है।

शिक्षकों की नियुक्तियों में नयापन —मूल्यांकन समिति ने एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह भी की थी कि बुनियादी शिक्षा का काम बहुत कुछ योग्य शिक्षकों पर ही निर्भर करता है अतः इसके लिए शिक्षकों को उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। समिति का इसके लिए यह भी सुझाव था कि शिक्षकों की और खासकर प्रधान शिक्षक की नियुक्ति में केवल वरीयता क्रम को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए। खासकर आदर्श शालाओं के प्रधान शिक्षक के पद पर तो ऐसे ही शिक्षक को रखना चाहिये जो बुनियादी

शिक्षा में निष्ठा रखता हूँ उत्साही और दूरदर्शी हो। शिक्षकों की नियुक्तियाँ करनकी दृष्टिस एक सक्षम चुनाव मडल का गठन किया गया है।

कार्य सगठन —बुनियादी शिक्षा के इस कायक्रम को सुगठित और सक्षम रूप स लागू करन का एक क्रमवार फज्ड कायक्रम तैयार किया गया है। इसके अनुसार यह सारा काय जो जून १९७० म आरम्भ हो गया है, सन् १९७५ तक पूरा हो जायगा। इस समूच कायक्रम को इन पाच खडो म बाटा गया है —

प्रथम अभियान खड प्रथम वर्ष —इसम राज्य की १०० शालाओ को नमून की शालाओ म बदल दिया जायगा।

द्वितीय अभियान खड दूसरा वर्ष — वतमान ५६३१ शालाओ म स जो शालाय आदश शाला नही बनाई जा सका है उन्हे भी पूण साधन सज्ज करके उनका सभी आवश्यकताय पूरी करना।

तृतीय अभियान खड तीसरा वर्ष —राज्य की सभी शालाओ म कक्षा १ स कक्षा ४ तक पूणतया बुनियाद शिक्षा कायक्रम क्रियान्वित करन का निश्चय किया गया ह। इनम एक शिक्षक वाली शालायें भी शामिल हैं और उन्हे भी पूरी सुविधा दा जायगा।

चतुथ अभियान खड चौथा वष — राज्य भर म कक्षा ५ और कक्षा ६ में पूरी तरह स बुनियादी शिक्षा लागू करन का प्रस्ताव है।

पाचवाँ अभियान खड पाँचवाँ वष —राज्य का सभी शालाओ म कक्षा ७ तक बुनियादी शिक्षा लागू करना।

समग्र शिक्षा की ओर —बुनियादी शिक्षा का कायक्रम केवल प्राथमिक और माध्यमिक स्तर तक ही क लिय नहा है। असल म तो यह सम्पूण जावन की ही शिक्षा है। अत यह भा सोचा जा रहा है कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बुनियादी शिक्षा का शाघ्र ही उच्च शिक्षा तक पहुँचाया जाय। इसके लिय दो प्रस्ताव हैं —

(१) व्यावसायिक बुनियादी शिक्षा —इसका तात्पय खासकर व्यवसायो म लग नागरिको क लिय शिक्षा का व्यवस्था करना ह। इसके लिय डानस ढग का 'फाक स्कूल' क ढग का शालायें चलान का प्रस्ताव है। इस प्रकार की शालाओ म छात्रो को ६० रु मासिक तक की छात्रवृत्ति दी जायग क्योकि य शालायें पूणत छात्रावासी ही होगा। जा सस्थाय इस तरह की कोई शाला आरम्भ करना चाह सरकार की ओर स ७५ह ८० प्र श तक ग्रान्ट इन एड दा जायगी।

(२) ग्राम विश्व विद्यालय —इस प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया का सुझाव बहुत पहल भा दिया गया था और कई जगहो पर इस तरह की कुछ सस्थायें काम कर भा रहा है। अभी राज्य म इस तरह के तीन बड सस्थान हैं। पहला तो भाव-

नगर के निकट सणोसरा में स्थित 'लोक भारती' है जो गुजरात के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री मनुभाई पंचोली के द्वारा संचालित हो रही है। दूसरी सूरत के निकट वेडछी में विद्यापीठ है जिसे गुजरात के बुनियादी शिक्षा के स्तम्भ श्री जुगतराम दवे का मार्गदर्शन प्राप्त है। तीसरी संस्था का विकास रांदेर में सरस्वती विद्यापीठ के नाम से किया गया है। शिक्षण के ये संस्थान आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों को अपनी शिक्षण प्रवृत्तियों का माध्यम बनाकर काम कर रही हैं। इन संस्थानों ने अपने छात्रों और शिक्षकों की मदद से खेती की वैज्ञानिक पद्धतियों का विस्तार करके आस पास के गावों की सालों से बंजर और ऊसर पड़ी धरती को उपजाऊ बनाने का अच्छा काम किया है। इन संस्थानों के कार्यकर्ता ग्रामीण किसानों को समझाकर बीज, रासायनिक खाद और उचित सिंचाई के साधनों के उपयोग के बारे में प्रदर्शन और शिक्षण देकर उनका मार्गदर्शन करते हैं।

इन ग्राम विद्यापीठों को हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त है। वे अपने पाठ्यक्रम बनाने, शिक्षकों की नियुक्तियाँ करने, अपनी व्यवस्था करने, पाठ्य पुस्तकों का चयन करने, अपने प्रमाण पत्र देने और अन्य प्रकार की आन्तरिक व्यवस्था करने आदि में पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं। राज्य सरकार इन्हें हर सम्भव मदद करती है। इस तरह की संस्थाओं में शिक्षण कार्यक्रमों को राज्य की सामान्य शिक्षण प्रणाली से साथ तालमेल रह सके इस दृष्टि से इनके प्रतिनिधियों का न एक राज्य स्तरीय मंडल की स्थापना की गई है। अब यह प्रयास हो रहा है कि इनको भी राज्य के विश्व विद्यालयों के साथ संकलन हो जाय।

गुजरात राज्य में बुनियादी शिक्षा का जो कुछ भी काम हो सका है उसमें वहाँ के शिक्षकों और खासकर बुनियादी शिक्षा के शिक्षकों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसलिये राज्य सरकार ने हर स्तर पर सभी प्रकार का शिक्षण सम्बन्धी प्रवृत्तियों के मामले में शिक्षकों का मत हमेशा लेते रहने की परिपाटी कायम की है। गुजरात नयी तालीम संघ ने खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बालवाड़ियों की एक बहुत ही प्रशंसनीय प्रणाली का विकास किया है जिसे राज्य सरकार ने पूरा सहकार दिया है। सरकार ने ऐसी बालवाड़ियों के लिये संघ की मदद से एक अभ्यासक्रम भी तयार किया है। इसके साथ ही, शिक्षकों के उचित प्रशिक्षण पर हमेशा जोर दिया जाता है और बुनियादी शिक्षा मूल्यांकन समिति के द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार स्नातक नयी तालीम केन्द्रों और अध्यापन विद्यालयों के लिये नये ढंग से अभ्यासक्रम तैयार किये गये हैं। शिक्षकों की सेवा विधियों में भी आवश्यक सुधार किये गये हैं। इसी प्रकार से निरीक्षकों के प्रशिक्षण और नौकरियों की विधियों में काफी अनुकूल बदल किये गये हैं।

ये सारे काम कोठारी आयोग के सुझावों पर अमल के लिये मार्ग सुझाने के लिये सरकार के द्वारा नियुक्त की गई अभ्यासक्रम, व्यवसायीकरण समिति और

बुनियादी शिक्षा मूल्यांकन समिति के द्वारा दिये गये सुझावों के ही अनुरूप किये गये हैं। सरकार को आशा है कि सन् १९७५ तक राज्य में बुनियादी शिक्षा का यह प्रथम और बुनियादी चरण पूरा हो सकेगा। इसमें सन् ७१–७२ में ५०० शालाओं को नमूने की शालाओं के रूप में स्वीकार करके प्रयोग किये जा रहे हैं और उसी प्रकार से सन ७२–७३ में भी एसी और ५०० शालाओं का चयन करके उन्हें इस ढाँचे पर लाने का काम होगा। इन प्रत्येक शालाओं को १००० रु का अनुदान विशेष दिया जाता है। जिन शालाओं में किसी कारण से कोई भी उद्योग दाखिल नहीं किया जा सकता वहाँ भी एक इन्टाग्रेटेड जनरल क्राफ्ट कोर्स का सृजन किया गया है जो ३ री से १० वी तक के लिये है। यह कार्यानुभव की सुविधायें सुलभ करने के विचार से किया गया है। इन विशेष शालाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही फिर अध्यापन मंदिरों में शिक्षकों के प्रशिक्षण को भी तदनुरूप मोड दिया जा रहा है।

इससे स्पष्ट होगा कि जून ७५ तक सभी प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में उद्योग द्वारा शिक्षण का बुनियादी कार्यक्रम लागू करके गांधी जी के विचारों के अनुकूल शिक्षा का विकास राज्य में हो सकेगा। एसी आशा करना उचित होगा।

आचार्यकुल प्रगति विवरण

अप्रैल ७३ से सितम्बर ७३ तक

अप्रैल ७३ से सितम्बर ७३ तक ६ माह की अवधि में आचार्य कुल का काम कई प्रदेशों में संगठनात्मक दृष्टि से आगे बढ़ा है। आचार्यकुल का विचार व्यापक रूप से फैला है और उसकी भावना के प्रति आदर भाव बना है। पूज्य विनोबा जी का उसमें देश की वर्तमान गम्भीर परिस्थिति के निराकरण की दिशा में बहुत सम्भावनाएं प्रतीत हो रही हैं। वह चाहते हैं कि देश में बुद्धिनिष्ठ विद्वतजनों की शक्ति खड़ी हो। उनके अभिध्यान में आचार्य कुल का अग्रगण्य स्थान है।

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की बैठकें

२० मई, ७३ को पवनार में पूज्य विनोबाजी के सानिध्य में केन्द्रीय सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों के वरीयताक्रम के उल्लंघन और मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति पर अभिमत प्रकट करने के लिए केन्द्रीय आचार्य कुल समिति की एक अत्यावश्यक बैठक पूज्य विनोबा जी के सुझाव पर आमन्त्रित की गयी जिसमें विचार और चर्चा के बाद एक ड्राफ्टिंग कमेटी बनाई गयी जिसकी १५ जून, ७३ को वाराणसी में बैठक हुई। और उसमें उक्त विषय पर केन्द्रीय आचार्य कुल के अभिमत के रूप में एक ड्राफ्ट स्वीकृत हुआ। जो १५ जुलाई ७३ को समिति की पाँचवी बैठक (वाराणसी) में स्वीकृत कर प्रकाशित किया गया।* पवनार की बैठक में इसके साथ ही बनारस और अलीगढ़ विश्वविद्यालयों

---

* आचार्यकुल का यह अभिमत नयी तालीम के सितम्बर अंक में प्रकाशित हो चुका है। —सपादक।

की तनावपुर्ण स्थिति पर भी विचार किया गया और नीचे लिखे सदस्यो की एक उप-समिति बनाई गइ जो शीघ्र ही केन्द्रीय समिति को अपना प्रतिवेदन देगी।

(१) डा हजारी प्रसाद द्विवेदी
(२) श्री सुमत दास गुप्ता
(३) श्री रोहित मेहता
(४) श्री महादेवी वर्मा
(५) श्री वशीधर श्रीवास्तव (सयोजक)

१५ जून की इस बैठक मे ही ग्राम स्वराज्य के सघन क्षेत्रो में आचार्य कुल का काम करन का भी तय किया गया। केन्द्रीय आचार्य कुल कोष स्थापित करने तथा ५ सितम्बर स ११ सितम्बर तक समस्त देश मे आचाय कुल सप्ताह मनाने का निश्चिय किया गया। अखिल भारतीय आचार्य कुल का प्रथम सम्मेलन १२ और १३ जनवरी ७४ को विनाबा जी के सानिध्य मे पवनार अथवा सेवाग्राम में करने का विचार हुआ। बैठक म श्रीमन्नारायणजी को आचार्य कुल का सदस्य मनोनीत किया गया जिसे उन्होंने कृपा भाव स स्वीकार किया।

देशभर की समस्त तदर्थ समितिया स प्रार्थना की गई कि उनका वतमान कायकाल ३० नवम्बर ७३ को समाप्त माना जाय और दिसम्बर के अन्त तक विधान के अनुसार इकाइया का गठन कर लिया जाय। सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के ढग पर प्रत्यक प्रदश म राज्य शिक्षा सम्मेलन आयोजित किये जावें। केन्द्रीय सगठक श्री कामश्वरप्रसाद बहुगुणा की जा अब अ भा नयी तालीम समिति क कार्यकारी मत्री तथा नयी तालीम के प्रबध सपादक के रूप म सेवाग्राम च ने गय हैं, अब तक की आचायकुल की सेवाओ के प्रति आभार प्रकट किया गया और मध्यप्रदेश आचाय कुल के सयाजक श्री गुरुशरण को एक साल क लिये उनके द्वारा महाविद्यालय के अध्यापन काय से अवकाश लेकर केन्द्रीय सगठक का काम सौंपा गया।

आचार्यकुल सप्ताह

दिनाक ५ सितम्बर स ११ सितम्बर ७३ तक विहार, उडीसा, बगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान और तमिलनाडु में आचार्यकुल सप्ताह मनाया गया जिनमे शिक्षा की स्वायत्तता, शिक्षक के सामाजिक दायित्व और आचायकुल की भूमिका पर व्याख्यान और सगोष्ठियो के आयाजन के साथ साथ सदस्यता अभियान भी चलाया गया जिसमे पुराने सदस्यो की सदस्यताका रिन्युअल हुआ और नये सदस्य भी बने।

केन्द्रीय आचार्यकुल कोष

दिनाक २० और ३० अगस्त ७३ को मध्यप्रदेश के एक क्षेत्रीय सम्मेलन रतलाम में सव सेवा सघ के मत्री श्री ठाकुरदास बग को मध्यप्रदेश की ओर से श्री

वशीधर श्रीवास्तव ने रु १०००) रतलामवासियों की भेंट के रूप में केन्द्रीय कोष के लिए देकर शुभारम्भ किया और आशा है कि यह सिलसिला आगे बढेगा।

प्रदेशों की गतिविधियाँ

(१) महाराष्ट्र —५ अगस्त ७३ को धामणगाव म विदर्भ मभाग का सम्मेलन आयोजित हुआ। उसी अवसरपर महाराष्ट्र आचायकुल कार्यकारिणी समिति की भी बैठक हुई और आग के कार्यक्रम पर विचार हुआ। १५ व १६ सितम्बर को चादा जिले में ५० अध्यापको का जिला सम्मेलन हुआ जिसम कालेज, माध्यमिक और प्राथमिक तीनो स्तरो के अध्यापको न भाग लिया।

(२) बिहार —इस बीच बिहार का प्रथम प्रदेशीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस बीच मुजफ्फरपुर कालेज, २३ अप्रैल पटना, २८ अप्रैल जमालपुर, ६ मई को आरा, २२ व २३ मई को वैशाली २९ मई को जमालाबाद, ८ जुलाई को मुगेर, २४ जुलाई को छपरा और ७ अगस्त ७३ को नगर आचार्यकुल सहर्षा की बैठक हुई। सहर्षा की बैठकमे श्री कृष्णराज मेहता न आज क समाज को सही दिशा और दृष्टि देन के सन्दभ म आचायकुल का भूमिका की चर्चा की। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री नागेश्वर ठाकुर जिला शिक्षा अधिक्षक ने की।

५ और ६ सितम्बर ७३ को भागलपुर म गाधी शान्ति प्रतिष्ठान का सभा भवन म शिक्षा की स्वायत्ता सिद्धान्त और व्यवहार पर सगोष्ठी आयोजित हुई। ७ सितम्बर ७३ को शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय म शिक्षा के सरकारीकरण पर डा रामजीसिंह का भाषण हुआ। ९ सितम्बर को गया में गोष्ठी का आयोजन हुआ।

खडगपुर, मुंगेर और सूयगढा में भी आचायकुल की गोष्ठियां हुई। 'सर्वोदय सन्देश' मासिक का आचाय कुल विशषाक प्रकाशित हुआ। बिहार आचाय कुल समिति की पहली बैठक २२ जुलाई ७३ को भागलपुर में सम्पन्न हुई। मानस चतुशती के कायक्रम मे आचार्य कुल न योग दन का तय किया। ९ अगस्त को शिक्षा म क्राति दिवस सभी केन्द्रो पर मनाया गया और अधिकाश सदस्यो का अकाल बनाम तरुण अभियान म योग रहा।

(३) राजस्थान —दिनाक ५ सितम्बर से ११ सितम्बर ७३ तक अजमेर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर और भरतपुर म गोष्ठियाँ आयोजित हुई जिनमें राजस्थान आचार्य कुल समिति के सयोजक श्री पूर्णचन्द्र जैन और केन्द्रीय सगठक श्री गुरुशरण सम्मिलित रहे। इन गोष्ठिया में श्री केसरीमल बोदिया, अध्यक्ष माध्यम शिक्षा मण्डल, डा मसलदान, उपकुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय, श्री शकर सहाय सक्सेना, भूतपूर्व प्राचार्य और श्री गोकुल भाई भट्ट मुख्य अतिथि रहे।

इस बीच राजस्थान मे सदस्यता अभियान चला है और शीघ्र ही जोधपुर में क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित हान वाला है।

मध्यप्रदेश —रामपुर सभाग का सभागीय आचायकुल सम्मेलन दिनाक ११ और १२ अगस्त ७३ को तथा रतलाम का क्षत्रीय सम्मेलन २० एव ३० अगस्त ७३ को सम्पन्न हुआ। इस बीच कायकारिणी समिति की २ बैठके हुई। सदस्य सख्या ११०० स १६२८ हुई।

सर्वोदय विचार प्रारम्भिक परीक्षाओ और स्वाध्याय मण्डलो के द्वारा स्वाध्याय की प्रवृत्ति दिनो दिन विकसित हो रही है। सेवा और श्रम की दृष्टि स स्थान स्थान पर प्रोजक्ट लिय गय है। अकाल बनाम तरुण अभियान मे आचायकुल के सदस्यो का सक्रिय योगदान रहा।

५ सितम्बर स ११ सितम्बर ७३ तक ग्वालियर, मुरैना, भोपाल, रायपुर, विदिशा उज्जैन, विलासपुर आदि कई जिलो मे सप्ताह भर आयोजन चले। केन्द्रीय आचाय कुल कोप मे रु १०००) दिया गया।

(५) पश्चिम बगाल —न्यायमूर्ति श्री शकर प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में कलकत्ता म आचायकुल के सदस्यो की बैठक सम्पन्न हुई। आचायकुल सप्ताह के अन्तगत नय सदस्य बनाय गय। धीरे धीरे काम बढ रहा है। अकाल बनाम तरुण अभियान में भी सदस्यो का सक्रिय योगदान रहा।

(६) उडीसा —अभी विधिवत सगठन नही बन पाया है फिर भी छिटपुट स्थानापर आचायकुल यूनिट बन है जिहान आचाय कुल सप्ताह के अन्तगत अपन अपन यहा कायक्रम आयाजित किए।

(७) तमिलनाडु —मद्रास म श्री वेंकटरमन को तमिलनाडु आन्ध्र, केरल और मैसूर चारो प्रदेशो के सगठन का काम सौपा गया है। श्री वी रामचन्द्रन का सहयोग उन्हे मिलता रहता है। मद्रास म अभी आचाय कुल की एक सभा आयोजित हुई।

प्राय काम की जानकारी भजने म लोग अक्सर आलस्य करते है और पूरी जानकारी मिल नही पाती, लकिन फिर भी यह सताप का विषय है कि आचार्यकुल स्वस्थ जनमत जाग्रत करन के एक मच के रूप म तथा शिक्षा में स्वायत्तता के आन्दोलन की बात पर जोर दत हुए बुद्धिनिष्ठ लोगा का एक सगठन बनता जा रहा है।

गुरुशरण

केन्द्रीय सगठक

६८ सिंधी कालोना ग्वालियर—१

—बशीधर श्रीवास्तव

सयोजक

केन्द्रीय आचार्य कुल समिति,

राजघाट, वाराणसी—१

नयी तालीम : नवम्बर, '७३
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1
रजि० सं० एल० १७२३

मुद्रक . शकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

वर्ष : २२

अंक : ५

दिसम्बर, १९७३

दिनांक ३ दिसम्बर को स्व. राजेन्द्र बाबू की ८९ वीं जयंती हुई।

बुनियादी शिक्षा एक विचारधारा है और उस विचारधारा से ही हमारे कर्म अनुप्राणित होने चाहिये। समाज को समझना चाहिये कि दर्जों के ई बुनियादी फर्क नही हैं। इसलिये हमारी मनोवृत्ति बदलनी चाहिये और ही बुनियादी शिक्षा का काम है।"

(अ भा नयी तालीम सम्मेलन, काँचीपुरम्, १९५६ में दिए गए भाषणसे।)

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमनारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक : ५
मूल्य : ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण २२५
सत्ता का असल स्रोत २२९ गांधीजी
सत्याग्रह का युगधर्म २३१ विनोबा
स्वराज्य के लिए शिक्षा आवश्यक २३५ काका कालेलकर
शिक्षा की सबसे बड़ी जिम्मेदारी २३९ धीरेन्द्र मजूमदार
एक विश्व के लिए शिक्षा २४५ सरला देवी
शिक्षा विधायकों के लिए
चिन्तन का एक अवसर २४८ ब्रह्मदत्त दीक्षित
शिक्षा के माध्यम के रूप में समाजोपयोगी
उत्पादक कार्य २५६ एम. ए. सत्यनाथन्
शिक्षा में विश्व चिन्तन
वर्तमान शिक्षा पद्धति अनुवर्तन का फैलाव २६३ डा० मार्गरेट मीड
बुनियादी शिक्षा के प्रयोग
तामिलनाडु में बेसिक शिक्षा २६९

दिसम्बर, '७३

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अंक का मूल्य ७० पैसे है
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित।

वर्ष : २२
अंक : ५

हमारा दृष्टिकोण

१. ब्रेजनेव की भारत-यात्रा

नवम्बर के अन्त में सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधानमत्री श्री ब्रेजनेव की ५ दिन की भारत-यात्रा कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण रही। १५ वर्ष के लिए भारत रूस के बीच जो आर्थिक सहयोग सबधी समझौता हुआ है उससे कई औद्योगिक क्षेत्रों में हमें काफी लाभ होगा। विशेषकर भिलाई और बोकारो लोहे के कारखानो का तेजी से विकास हो सकेगा। आजादी मिलने के बाद काश्मीर, बगला देश आदि समस्याओ के सिलसिले में रूस ने भारत का जोरदार समर्थन किया है। सन् १९६५ और १९७१ के भारत-पाकिस्तान युद्धों के समय भी सोवियत रूस ने हमारा साथ दिया और अमेरिका के विरोध से होनेवाले नुकसान को रोकने में मदद दी। इसलिए भारत में रूस के प्रति काफी सद्भावना होना स्वाभाविक है।

किन्तु हमें यह नही भूल जाना चाहिए कि भारत की विदेश नीति शुरू से ही दुनिया के दो बडे गुटों से अलग रहने की रही है और इसी में हमारा राष्ट्रीय हित निहित है। रूस की मित्रता की हम कदर करते है, किन्तु हम अपनी तटस्थता की नीति कदापि छोड नहीं सकते। इस दृष्टि से हमें खुशी है कि प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी ने २ दिसम्बर को अपने

मेरठ के भाषण में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि "किसी भी देश के साथ भारत की मित्रता उसकी राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की कीमत पर नही है तथा मित्रता का यह अर्थ नही होता कि कोई देश हम पर दबाव डाल सकता है।" हमें भरोसा है कि प्रधानमंत्रीजी की इस घोषणा का देश में स्वागत किया जायगा और यह विश्वास पैदा होगा कि हम दुनिया के सभी देशों से मित्रता अवश्य चाहते है, और एक देश की मित्रता को दूसरे देश का विरोध नही माना जाना चाहिए। भारत पचशील और शान्तिमय सह-अस्तित्व की नीति अपनाता रहा है और इसी पर हमें कायम रहना चाहिये।

२. शिक्षा और सरकारी नियंत्रण:

पिछले कई महीनो से हम देख रहे हैं कि माध्यमिक और यूनिवर्सिटी शिक्षा के संचालन में सरकार का नियत्रण तेजी से बढ़ता जा रहा है। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र की विधान सभाओं में यूनिवर्सिटी व्यवस्था संबंधी जो नये कानून पेश किये गये है या पारित हुए है उनमें सरकारी सत्ता को बहुत बढ़ावा मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब सरकार चाहती है कि सभी विश्वविद्यालय उसके शिक्षा विभाग के अविभाज्य अग बनकर काम करें। उनके उपकुलपति एक प्रकार से सरकार द्वारा नामजद किये जायेंगे और वे सरकारी आदेशो के अनुसार ही अपना कार्य करेंगे। हम यह मानते हैं कि इस समय देश के स्कूलों और कॉलेजो में कई प्रकार के भ्रष्टाचार प्रवेश कर गए है जिनकी वजह से शिक्षको के प्रति काफी अन्याय होता रहता है। इन बुराइयो को अवश्य दूर किया जाना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नही होता कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार का पंजा जकड़ता जाय और शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता बिलकुल ढीली पड़ती जाय। जैसा पिछले वर्ष सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में घोषित किया गया था, "निजी संस्थाओ में मौजूद अनेक बुराइयों को हटाने के लिये भरसक प्रयत्न होना चाहिए, लेकिन प्रशासन को माध्यमिक स्कूलों और कॉलेजों को संचालित करने की समस्त जिम्मेवारी उठा लेने के दबाव में नहीं आ जाना चाहिए।"

हम आशा करते है कि विभिन्न राज्य सरकार इस ओर ध्यान देंगी और शिक्षा को अपने हाथ का एक खिलौना बनाने की कोशिश नहीं करेंगी।

३. नये विश्वविद्यालय :

हम समाचारों में यह भी पढते रहते हैं कि कई राज्यों में अभी नये विश्वविद्यालय क्षेत्रीय माँगो की पूर्ति के लिये खोले जा रहे है। हाल ही में पार्लियामेंट में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के संबध में जो चर्चा हुई थी उसमें कई सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया था कि किसी भी प्रदेश में कोई नया विश्वविद्यालय तभी खोला जाय जब उसकी उपयोगिता के बारे में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सम्पूर्ण सम्मति प्राप्त हो जाय। लेकिन हम देखते हैं कि ऐसा करने के बजाय नये विश्वविद्यालय केवल राजनैतिक दबाव के कारण खोल दिये जाते हैं। इसकी वजह से शिक्षा विभाग का खर्च तो बढता जाता है लेकिन उच्च शिक्षा का स्तर नीचे गिरता जाता है। यदि नये विश्वविद्यालय खोलने ही हो तो उन्हें 'आवासीय' ('रेसीडेन्सल') होना चाहिए, केवल परीक्षा लेनेवाले केन्द्र नही। इन विश्वविद्यालयो में ऐसी कुछ विशेषताएँ भी होनी चाहिए जो अन्य विश्वविद्यालयों में इस समय विद्यमान नही है।

हमारे ख्याल से नये विश्वविद्यालय खोलने के बजाय वर्तमान विश्वद्यालयो के अंतर्गत देश में कुछ स्वायत्तता-प्राप्त-कॉलेज (आटोनोमस कॉलेज) स्थापित होने चाहिए जिन्हें अपने पाठ्यक्रम, प्रवेश नियम और परीक्षा पद्धति स्वयं बनाने की स्वतंत्रता हो और नये-नये प्रयोग करने का अवसर मिले। लेकिन बुनियादी प्रश्न तो यह है कि जब हमारे विश्वविद्यालयो की स्वायत्ता का ही तेजी से ह्रास हो रहा है तो फिर स्वायत्त कॉलेज कैसे स्थापित हो सकेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर तो केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय, राज्य सरकारों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ही देना होगा।

४. शिक्षा में माता-पिता का सहकार्य :

लन्दन के 'ईकोनोमिस्ट' के २४ नवम्बर के अंक में एक दिलचस्प समाचार प्रकाशित हुआ है। लन्दन काउण्टी कौंसिल के अतर्गत जो

स्कूल चल रहे हैं उनके पुनर्गठन के सिलसिले में अधिकारियों ने माता-पिता की राय हाल ही में संग्रह करना शुरू किया। इस प्रक्रिया से यह जानकारी मिली कि अधिकारियों और अभिभावकों के दृष्टिकोण में बहुत बड़ा अन्तर है। शासन चाहता था कि छोटे-छोटे स्कूलों को मिलाकर बड़ा बनाया जाय ताकि सरकारी खर्च में कुछ कमी हो सके। यह भी मन्शा थी कि सभी स्कूलों में बच्चों को एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाय। किन्तु माता-पिता की कुछ दूसरी ही राय थी। वे चाहते थे कि स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या न बढ़ाई जाय, उन्हें छोटा ही रहने दिया जाय ताकि छात्रों की प्रगति की ओर व्यक्तिगत ध्यान दिया जा सके। अभिभावक यह भी चाहते थे कि सभी स्कूल एक से होने के बजाय उनमें पाठ्यक्रमों की विविधता हो ताकि प्रत्येक नवयुवक अपनी रूचि के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सके। इसलिये अब लन्दन काउन्टी कौंसिल के अधिकारी निर्णय लेने में काफी कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं।

इस समाचार से यह स्पष्ट हो जायगा कि शिक्षा-सुधार के काम में माता-पिता की राय प्राप्त करना कितना आवश्यक है। सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में इस पहलू पर भी बहुत जोर दिया गया था। हम आशा करते हैं कि भारत में नयी शिक्षा-प्रणाली संचालित करने के प्रयास में हम माता-पिता की सलाह लेना न भूलेंगे।

—श्रीमन्नारायण

गांधीजी

सत्ता का असल स्रोत :

हम एक अरसे से इस बात को मानने के आदी बन गये हैं कि आम जनता को सत्ता सिर्फ धारासभाओं के जरिये ही मिलती है। इस ख्याल को मैं अपने लोगों की एक गम्भीर भूल मानता हूँ। इस भ्रम या भूल का कारण या तो हमारी जड़ता है या वह मोहिनी है जो अँग्रेजों के रीति-रिवाजों ने हम पर डाल रखी है। अंग्रेज जाति के इतिहास के छिछले या ऊपर के अध्ययन से हमने यह समझ लिया है कि सत्ता शासनतंत्र की सबसे बड़ी संस्था पार्लियामेन्ट से छनकर जनता तक पहुँचती है। सच बात यह है कि सत्ता जनता के बीच रहती है, जनता की होती है और जनता समय समय पर अपने प्रतिनिधियों की हैसियत से जिनको पसन्द करती है उनको उतने समय के लिये उसे सौंप देती है। जनता से भिन्न या स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट की सत्ता तो ठीक, हस्ती तक नहीं होती है। पिछले कई बरसों से मैं यह इतनी सीधी सादी बात लोगों के गले उतारने की कोशिश करता रहा हूँ। सत्ता का असली भण्डार तो सत्याग्रह की या सविनय कानून भंग की शक्ति में है। कोई एक समूचा राष्ट्र यदि अपनी धारासभा के कानूनों के अनुसार चलने से इन्कार कर दे, और इस सिविल नाफरमानी के नतीजों को बरदाश्त करने के लिये तैयार हो जाय, तो सोचिये कि क्या नतीजा होगा। जब कोई समूचा राष्ट्र सब कुछ सहने को तैयार हो जाता है, तो उसके दृढ़ संकल्प को डिगाने में किसी पुलिस या फौज की कोई जबर्दस्ती काम नहीं देती।

सच्चे लोकतंत्र का विकास :

भारत सच्चे लोकतन्त्र के विकास का प्रयास कर रहा है, जिसमें हिंसा के लिये कोई स्थान नही होगा। इस प्रयास में हमारे शस्त्र वही हो, जो सत्याग्रह के है अर्थात् चरखा, ग्रामोद्योग, हाथ उद्योगों द्वारा दी जानेवाली प्राथमिक शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, कौमी एकता, शराबबदी और अहमदाबादकी तरह मजदूरो का अहिसक सगठन। इसका अर्थ है इनका सामुदायिक प्रयत्न और सामुदायिक शिक्षण। इन कार्यों के सचालन के लिये हमारे पास बडी बडी सस्थायें है। ये सब शुद्ध ऐच्छिक है और इनका एकमात्र पृष्टबल है भारत के छोटे से छोटे आदमी की सेवा।

अहिंसा की शोध ही संसद का काम :

सारा ही रचनात्मक कार्यक्रम हाथ-कताई और हाथ-बुनाई, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण और मद्य-निषेध तथा सत्य और अहिंसा की शोध के लिये है। धारासभाओ में जाने की अगर हमारे लिये कोई दिलचस्पी हो सकती है तो वह सिर्फ इसीलिए हो सकती है किसी और कारण से नही। सत्य और अहिंसा साधन भी है और साध्य भी है, और यदि अच्छे और सच्चे आदमी धारासभाओ मे भेजे जाय, तो वे सत्य और अहिंसा की ठोस शोध की साधन बन सकती है। अगर वे ऐसी नही हो सकती, तो यह उनका नही बल्कि हमारा दोष होगा। जनता पर हमारा सच्चा काबू हो तो धारासभायें सत्य और अहिंसा की शोध का साधन अवश्य बनेंगी, दूसरा कुछ हो ही नही सकता। हमको यह बात याद रखनी चाहिये कि बगैर रचनात्मक कार्यक्रम के कोई भी राजनीतिक कार्यक्रम टिक नही सकता। वह सारा कार्यक्रम सत्य और अहिंसा का प्रतीक है और यह देखना गाधी सेवा सघ का सबसे पहला काम है कि उस कार्यक्रम को किसी तरह की हानि तो नही पहुँच रही है।

विनोबा

सत्याग्रह का युगधर्म

[गत १ दिसम्बर से ६ दिसम्बर तक पवनार में सर्व सेवा संघ की एक 'संगीति' हुई। उसमें विनोबा जी ने ३ दिसम्बर को प्रातः जो प्रवचन दिया उसका सारांश नयी तालीम के पाठकों के लिये यहाँ दे रहे हैं। —संपादक]

गांधी तो नित्य विकासशील हैं :

आजकल हर बात में गांधी का नाम लेकर अपने मनस काम करने का एक रिवाज सा हो गया है। सत्याग्रह के बारे में भी गांधी का नाम लिया जाता है। हर कोई लेता है। किन्तु मैं तो कभी गांधी के नाम से कोई काम करता नहीं हूँ। उसका कारण है। मैं गांधी का नाम लेकर अपना काम करता हूँ तो कौन कह सकता है कि अमुक मौके पर गांधी क्या करते। आज यह कहना कि अमुक अवसर पर गांधी इस तरह से करते ऐसा है मानो हम ही गांधी हो गये। किन्तु मेरे लिये तो यह शक्य नहीं है। मैं गांधी नहीं हूँ। मुझमें वह शक्ति मैं देखता नहीं। तब मैं गांधी के नाम से क्या अपना काम करूँ? यदि हम ऐसा करेंगे तो लोग कहेंगे देखो यही गांधी हो गया है और यह बात सही नहीं होगी।

फिर गांधी जी ने कहा था कि मैंने जितने भी सत्याग्रह किये वे असल में सत्याग्रह थे नहीं। वे यह भी कहते थे कि मेरे विचारों में लोग संगति (कान्सिसटेंसी) न ढूंढे क्योंकि मेरे विचारों का हमेशा विकास होता रहा है और मैं नित्य बदलता रहता हूँ। इसलिए मेरे नये विचार को पकड़ो, पुराने को नहीं। अब उनके विचारों को कैसे पकड़ें। मेरे पास सरकार के प्रकाशन वाले कुछ वर्ष पहले आये थे जब गांधी शताब्दी मनाई जा रही थी। वे गांधी जी के सभी पुराने पत्रों, लेखों आदि का संग्रह करके छाप रहे हैं। काफी छप भी गया है। मुझसे कहने लगे कि मैं इस पर अपनी कुछ राय दूं। अब मैं क्या राय देता। मुझे तो हँसी सी आई और मैंने जरा कुछ गंभीर होकर कहा कि गांधी के पुराने जन्म की भी कुछ सामग्री इसमें हो तो बहुत अच्छा हो। तो वे भी हँसने लगे। यह हँसने का ही मामला है। शंकराचार्य ने अपने जीवन के उन १६ सालों में, जब वे सारे भारत भर में घूमे, हजारों भाषण किये होंगे। उन सबको

है। किन्तु एक गणपति है उनका वाहन चूहा है। चूहा याने जो इतना छोटा किन्तु चुस्त और सावधान है कि वह सब जगह आसानी से प्रवेश कर सकता है। तो बाबा ने भी भूमि को वाहन के रूप में ही लिया है। हम इसके माध्यम से अपना विचार रखते हैं। इस तरह के वाहन के बिना विचार का प्रचार नहीं हो सकता है। वह शक्ति हम में है भी नहीं कि बिना किसी वाहन के भी अपने विचारों का प्रचार-प्रसार कर सके। फिर यह भूमि का आन्दोलन इस तरह का है कि यह खूब चलेगा।

आगामी खतरा :

किन्तु इसमें भी अब एक नया फैक्टर है जिसका विचार भी करना चाहिये। वह है जनसंख्या की वृद्धि। आगामी ३० साल में दुनिया की जनसंख्या आज से दुगुनी हो जायेगी। तब जमीन के और भी छोटे छोटे टुकड़े होने से कौन रोक सकेगा। इस पर भी क्या उससे काम चलेगा। तब बाप-बेटे में मारकाट होगी और समाज में मारकाट ही आम बात हो जायगी। आज तो कहीं मारकाट होती है तो वह अखबारों के लिये खबर हो जाती है, उनके लिये यह भूदान-ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य आदि कुछ भी खबर नहीं है। ये बातें आज अखबार में नहीं छपती किन्तु कहीं किसी ने किसी को मार दिया, कत्ल कर दिया तो वह पहले पृष्ठ की न्यूज है। किन्तु आने वाले समय में जब मारकाट कामन चीज हो जायेगी तब वह फिर खबर की बात नहीं रहेगी। तब तो यह खबर छपेगी कि अमुक आदमी शांत रहा। इसलिये यह बात हिम्मत के साथ कहनी चाहिये कि भूमि के सवाल को हम शीघ्र से शीघ्र हल करें और वह तो समाज की सम्मति के बिना हो नहीं सकता है। इसलिये यह हमारा भूदान-ग्रामदान का काम भी एक प्रकार का सत्याग्रह ही है, यह हमने कई बार कहा है। इसके साथ ही यह भी कहा है कि अब ब्रह्मचर्य सामाजिक मूल्य की चीज हो गई है। पहले उसे केवल आध्यात्मिक मूल्य ही प्राप्त था। तब वह केवल मोक्ष के लिए था किन्तु आज उसका सामाजिक मूल्य है। इस प्रकार से उस पर डबल इंजिन लग गया है तो फिर ब्रह्मचर्य आज तो और भी सहज हो जाना चाहिये। तो इस प्रकार से ब्रह्मचर्य से जीवन बिताना और प्रेम से भूमि का प्रश्न हल करना यही आज के सत्याग्रह की तकनीक होगी।

काका कालेलकर

स्वराज्य के लिये शिक्षा आवश्यक

अमलदारी की तालीम

जब हमारे देश पर अंग्रेजा का राज्य था तब वे अपनी पसन्द के अंग्रेज वाइसराय और गवर्नर वगैरा अमलदारो के द्वारा राज्य चलाते थे। परन्तु इतने बडे देश मे विलायत से अंग्रेजो को लाकर राज्य चलाना असम्भव था और लोगो को यह अनुकूल भी नही आता। इसलिये अंग्रेजा को इस देश के लोगो मे स बहुतो को अमलदारी की तालीम देनी पडी। अपनी राज्य-पद्धति को, अपने को अनुकूल हो इस ढग से चलाने की तालीम यहाँ के अमलदारो को दी। हमारे लोग इस कला में कुशल बने और राजनिष्ठा को ही सुविधाजनक और श्रेष्ठ सद्गुण मानकर उन्होंने अंग्रेज सरकार को सब तरह स सन्तोष दिया।

एसे देशी अमलदारा को प्रजा पर हुकूमत चलाने की आदत हो गई। सरकार को सन्तोष देना यही एकमात्र उनकी चिन्ता थी।

पुरानी आदत नहीं बदली :

अब अंग्रेजा का राज्य यहाँ नही रहा और प्रजाराज्य शुरू हुआ है। परन्तु सरकारी अमलदार तो सरकार की ओर से प्रजा पर राज्य करने के आदी बन गये हैं। सरकार के बनाय हुये कानूनो के बल पर प्रजा को काबू में रखते हैं। अमलदारो को सरकार के बनाये हुय कानूनो को पूरी निष्ठा से अमल में लाना ही चाहिये, इसमें दो राय नही हो सकती। परन्तु सरकारी अमलदारो को जानना चाहिये कि अब प्रजा को दबाने के लिये, कानून को आगे करके, प्रजा के सिर राज्य करना नहीं है परन्तु प्रजा की ओर से और प्रजा की सम्मति से शासन चलाना है। इस कारण प्रजा को राज्य-व्यवस्था का उद्देश्य, उसकी पद्धति और उसकी उपयोगिता समझानी होगी। साथ ही प्रजा के सुख-दुःख को और प्रजा की भावनाओ को प्रजाकीय सरकार तक पहुँचाना होगा। तभी उसे "प्रजा राज्य" कहा जायेगा।

गांधीजी की सीख :

जब गांधीजी ने कांग्रेस की मदद में आकर स्वराज्य का आन्दोलन शुरू किया तब सरकारी दबाव की आदी बनी हुई और इसीलिये नमाली प्रजा को "सरकार से असहयोग" करना सिखाया और अंग्रेजो के लिये राज्य चलाना मुश्किल कर दिया।

रचनात्मक कार्यका उद्देश्य :

गांधीजी चाहते थे कि स्वराज्य होने के बाद प्रजा पर राज्य करने वाली सरकार का काम कम करते जायं। "प्रजा अपना बिन सरकारी संगठन खड़ा करे और उसके जरिये अपने बहुत से काम करनेकी आदी बन जाय।" इसलिये उन्होंने रचनात्मक काम शुरू किये और प्रजा को अपना काम सरकार की मदद अथवा रहनुमाई के बिना खुद चलानकी सीख दी।

समाजवाद : अमलदारी की तालीम की सीख :

परन्तु जब स्वराज्य हुआ तब कांग्रेस के नेताओं ने गांधी जी की यह सीख बाजू पर रख दी। वे अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे। इगलैण्ड का इतिहास, योरप का इतिहास और वहाँ के राजनीतिक विचार और आदर्श सीख-सीखकर तैयार हुये थे। इसलिये उन्होंने "सर्वोदय" की जगह "समाजवाद" देश में लाना पसन्द किया। उस "समाजवाद" का अन्तिम स्वरूप है "साम्यवाद"। उसका प्रचार रूस म हुआ। बाकी के योरप में और अमेरिका में समाजवाद क्या है इसकी चर्चा देश के नेता दिन-रात करते हैं। उसी के बारे में गांधीजी के मुख्य विचार यहाँ रखना चाहता हूँ।

मुख्य गांधी-विचार :

आज के नेता सारी प्रजा का— धनवान और निर्धन, पढे हुये या अनपढ़, हरिजन तथा गिरीजन, स्त्री एवं पुरुष सबका—मत देनेका अधिकार देते हैं। एसा सार्वजनिक अधिकार काम में लाकर प्रजा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करे। उन प्रतिनिधियों में से ही शासन चलाने वाले मंत्री नियुक्त किये जाये। तब तो वह पूरा प्रजाराज्य ही हुआ। उस "प्रजाराज्य सरकार" की चाटी सब तरह से प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में ही रहेगी। इतना यकीन हो जाने के बाद समाजवाद कहता है कि "प्रजा-जीवन के सब सार्वजनिक काम, अब प्रजामान्य प्रजा-नियुक्त सरकार के द्वारा ही हो। इसलिये प्रजा-शिक्षण-तन्त्र, औद्योगिक विकास, समाज-सुधार वगैरा सब काम सरकार के जरिये हम व्यवस्थित रूप से कर लेंगे"। प्रजा के ज्यादा-से-ज्यादा काम सरकार के मारफत करवाने की प्रथा शुरू हुई है। जब कि गांधीजी का विचार इससे बिलकुल उलटा था। इसे जरा स्पष्ट कर लें।

जब अंग्रेजो का विदेशी राज्य था, सरकार प्रजामान्य नहीं थी तब उसके खिलाफ सत्याग्रह क्रिया जा सकता था। असहयोग करके उसे बेचैन किया जाय

यह नीति ठीक थी। अब तो प्रजा द्वारा चुनी हुई स्वदेशी सरकार के प्रति हमारे मनमें आदर होना चाहिये। उसकी समय समय पर मदद करनी चाहिये। उसकी इज्जत सम्भालनी चाहिये। और फिर भी (गांधीजी कहते थे कि) सरकार के मारफत काम लेने की नीति ही बदलनी चाहिये। प्रजा अपनी सेवा-संस्थाएं खडी करे, लोग स्वेच्छा से रचनात्मक कामों के लिये चंदा इकट्ठा करके बिन सरकारी सार्वजनिक फण्ड चलाये। सरकार तो बाहर के आक्रमण के खिलाफ प्रजाका रक्षण करने के लिये फौज रखेगी। देश के अंदर कहीं दंगे हो जायें और लोग अपने ढंग से उन्हें काबू में ला सकें तो सरकार फौज और पुलिस के द्वारा दंगों को रोकेगी, दंगे करने वालों को सजा करेगी। यह सब ठीक है। परन्तु सरकार का काम हो सके उतना कम करना और प्रजा की पंचायतों के द्वारा राष्ट्र-सेवा और प्रजा-संगठन का काम ज्यादा से ज्यादा करना चाहिये।

गांधीजी की नीति फिर से स्पष्ट करूंगा। स्वराज्य का उपभोग करने वाली प्रजा की सरकार प्रजा-मान्य होती है। सरकार की चोटी प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में होती है। इसलिये उस सरकार के प्रति देश के हरएक प्रजाजन के मनमें आदर होना चाहिये। ऐसी सरकार प्रजा की सम्मत्ति से ही कानून बनाती है। इसलिये उन कानूनों का पालन पूरी निष्ठा से होना चाहिये।

स्वराज्य की पहचान स्वावलंबी समुदाय :

ऐसी सरकार को राज्य चलाने में सब प्रकार की सुविधाएं कर देना और सरकार मांगे तब उससे प्रसन्नता से सहयोग करना यही प्रजा की नीति होनी चाहिये। (केवल नीति नहीं प्रजा का यह स्वभाव ही बनना चाहिये)। इतना करने के बाद प्रजा को चाहिये कि वह अपने बहुत सारे काम अपनी नियुक्त पंचायतों के द्वारा ही करने की आदत डाले। हरएक काम के लिये सरकार के पास दौड जाने की वृत्ति छोड दे। गांधीजी के शब्दोंमें कहें तो सरकार मांगे तब पंचायतें उसकी मदद भले करें, परन्तु सरकार से आर्थिक या संगठन की मदद न मांगें। आयंदा पंचायतें सरकार को आश्रित न बनें।

आज की पंचायतें भले ही सरकार के कानूनों की मदद से और सरकारी संगठन की मदद से कायम हुई हो हम उनका विरोध न करें। परन्तु आयंदा सब पंचायतें मिलकर अपने संगठन के नियम वगैरा खुद बनावें और अपना काम चलाने के लिये पैसा इकट्ठा करने के लिये सरकार की मदद मांगने न जायें।

हमारी ऐतिहासिक और सामाजिक परम्परा :

ऐसी शक्ति प्रजा में नहीं है सो बात नहीं। हमारे यहांके " जाति संगठन " सरकारी कानून के बिना और सरकारी सहायता के बिना ही बनते थे। जाति के

फड इकट्ठा करने और खर्च करने के सब अधिकार जाति के ही पैदा किये होते हैं। इसमें सरकार का जरा भी दखल नहीं रहता।

जैसे जाति-संगठन पूर्ण स्वावलम्बी होते हैं वैसे ही कई धार्मिक संगठन भी सरकार की मदद के बिना स्वावलम्बी ढंग से चलते आ रहे हैं। यही न्याय हम इन नयी पंचायतों को क्यों न लागू करें? सरकार तो प्रजामत की मुहताज रहनी ही चाहिये। ऐसी मुहताज सरकार के प्रति हमारे मन में आत्मीयता और आदर होना ही चाहिये। परन्तु प्रजा की पंचायतें सरकार की यानी सरकारी कानून और सरकारी अमलदारों की मुहताज क्यों रहें?

यह है गांधीजी की दृष्टि। स्वराज्य-सरकार प्रजा-सरकार है, हमारी बनायी हुई है। उसके प्रति आदर हो उससे हृदय से सहयोग करें परन्तु उसके मुहताज न रहें। यह गांधी विचार आज की पंचायतों के समक्ष रखना चाहता हूँ। आज की स्वराज्य सरकार गांधीजी के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करती है। वह भक्ति सच्ची है हार्दिक है। इसीलिये वह सरकार भी यहाँ रखे हुये गांधी विचारों को सहानुभूति से सुनेगी। बाद में स्वराज्य के मंत्री और पंचायतों के नेता मिलकर इस गांधी विचार को यथा संभव अमल में लाने को तैयार हो जायेंगे ऐसी अपेक्षा है।

लोकतंत्र का असल खतरा

लोकतन्त्र को असल गंभीर खतरा किसी विदेशी तानाशाही से नहीं है। उसे खतरा तो हमारे भीतर की हमारी मनोवृत्तियों और संस्थाओं की उन स्थितियों से है जिन्होंने तानाशाही देशों में बाहरी सत्ता, अनुशासन एकरूपता, और नेताओं पर निर्भरता जैसी बातों को मनुष्य पर विजय दिलाने में मदद की है।

— जान ड्यूवी, फ्रीडम एंड कल्चर।

धीरेन्द्र मजूमदार

शिक्षा की सबसे बड़ी जिम्मेदारी

समाज की काम न करने की आकांक्षा को बदलना

आज का मुख्य प्रश्न यह है कि शिक्षित मनुष्य का समाज में क्या रोल (भूमिका) होगा? आज उसका केवल एक ही रोल है और वह है व्यवस्था का। इसलिए शिक्षा मैनेजरीयल रोल (व्यवस्थापक की भूमिका) अदा करने लायक बनायी गई है और यह पद्धति सार्वजनिक माँग और आकांक्षा के अनुरूप है। इस देश में काम की प्रतिष्ठा नहीं है, इसलिए शिक्षा पाने का ध्येय व्यवस्थापक वर्ग में दाखिल होना ही है। कृषि-कॉलेज का स्नातक भी खेती करना नहीं चाहता। वह फार्म-मैनेजर बनना चाहता है। वहाँ भी शिक्षा का प्रकार उसी ढंग का बनाया गया है कि अगर वह फार्म मैनेजर नहीं बन सका, तो अपने से खेती कर के गुजारा न कर सके।

लोकतन्त्र की न्यूनतम माँग

आज जमाना लोकतन्त्र का है। लोकतन्त्र में हर बालिग स्त्री-पुरुष को वोट का अधिकार है। अगर इस अधिकार को न्याय देना है, तो हर बालिग स्त्री-पुरुष को इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वह चुनाव घोषणा-पत्र पढ़ सके और उसे समझ सके। शिक्षा से लोकतन्त्र की यह न्यूनतम माँग है। यही कारण है कि आज कम-से-कम मैट्रिक तक सब को शिक्षा मिले, यह आवाज उठ रही है। जब सब को इतनी तालीम दी जायेगी और वह तालीम व्यवस्थापकीय कार्य के लिए— मैनेजरियल फंक्शन के लिए होगी, तो फिर यह समस्या उत्कट रूप से समाज के सामने पेश होगी कि ये शिक्षित लोग करेंगे क्या? आखिर सब तो मैनेजर नहीं बन सकते। आज देश के अधिकारी कह रहे हैं कि वे पाँच लाख को काम देंगे। वे कितना भी काम दें, वह व्यवस्थापक टाइप का होगा और उसकी एक सीमा है। उसमें जनता का बहुत कम प्रतिशत ही दाखिल होगा। इसका मतलब यह है कि शिक्षित लोगों में निराशा आयेगी और देशभर में निराशा-जनित उपद्रव होंगे। यह हो भी रहा है। इसलिए आपको शिक्षा के इस पहलू पर गम्भीरता से सोचना पड़ेगा कि व्यवस्थापकीय कार्य में कितने लोग लगेंगे? जब तक आप इस प्रश्न पर निर्णय नहीं कर लेंगे, तब तक शिक्षा-पद्धति में सुधार की बात चाहे जितनी सोचें, उसकी कोई निष्पत्ति नहीं होगी।

मार्ग-दर्शक कौन वास्कोडिगामा

यह पूछा जाता है इसके लिए कौन मार्गदर्शन करेगा ? समझना चाहिए कि वही मार्गदर्शन करेगा जिसने वास्कोडिगामा का मार्गदर्शन किया था। उसे दिशा मालूम थी मार्ग स्वयं खोजना पड़ा था। उसी तरह समस्या आपके सामने है। मार्ग आपको ही यानी शिक्षाविदो को ही खोजना होगा।

शिक्षा और शिक्षक की मुक्ति आवश्यक

जब शिक्षा और शिक्षक की बात करते है तो आज की दुनिया की गम्भीर समस्या पर भी विचार करने की जरूरत है। आज देश में नेतृत्व नहीं है, क्योंकि नेता नहीं है। पहले जो नेता थे, वे सब स्वराज्य के बाद प्रतिनिधि बन गये। प्रतिनिधि नेता नहीं हो सकता, क्योंकि उसे जनमत का अनुसरण करना पड़ता है। उसकी भूमिका वही है। नेता का कार्य दूसरा है। उसे परिस्थिति के अनुसार जनमत का निर्माण करना पड़ता है। जनमत मूलतः रूढिग्रस्त होता है और काल निरन्तर प्रवाहित है। इसलिए परिस्थिति और समस्याएँ नित्य परिवर्तनशील होती है। नेता का काम यह होता है कि वह जनमत को काल की गति के साथ कदम मिलाने में मार्गदर्शन करे अर्थात जनमत के आगे चले। विनोबाजी जयप्रकाशबाबू या चंद सर्वोदय-कार्यकर्ताओं को छोड दीजिए जो विचार दे सकते है इतने बड़े देश में इतने थोडे लोगो से नेतृत्व उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए विनोबाजी आचार्यकुल की आवश्यकता पर इतना जोर देते है। इसीलिए वे चाहते है कि शिक्षा और शिक्षक राजनीति से ऊपर हों, ताकि वे प्रतिनिधियो के अधीन न रहे। आप पूछ सकते है कि आज शिक्षक सरकारी तन्त्र के नीचे दबे हुए है फिर वे आचार्यकुल बना कर जनमत स्वतन्त्र रूप से कैसे निर्माण कर सकते है ? शिक्षक को इस स्थिति के लिए निश्चय ही सघर्ष करना होगा। आचार्यों का समाज में जो स्थान होना चाहिए, उस स्थान पर अगर वे नहीं पहुँच सकेंगे तो नेतृत्व के अभाव में दिशाभ्रष्ट हो कर समाज का नाश हो जायगा और वह हो रहा है।

समाज भी आटोमेटिक हो

वस्तुत आज के जमाने में दो ही प्रतिष्ठानो की आवश्यकता है। समाज और शिक्षक। क्योंकि यह युग समाजवाद का है। समाजवाद कुछ ऋषियो की कल्पना का उद्घोष मात्र नही है बल्कि वह इनसान की प्रगति की एक स्टेज (अवस्था) है। पुराने जमाने में यानी अंधकार-युग में जब चेतन समाज बहुत थोडा था तो समाज का कार्य कुछ व्यक्ति करते थे। एक राजा एक गुरु एक पुरोहित समाज को चलाता था शिक्षित करता था कल्याण कार्य के लिए प्रेरित करता था या सहायता करता था। ज्ञान-विज्ञान की तरक्की के साथ यानी चेतना के विकास के साथ

समाज का दायरा बढ़ने पर कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति से समाज की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता था और न उसे चला सकता था। तब समाज में 'फंक्शनल एजेन्सी' (कार्य का माध्यम) व्यक्ति के स्थान पर संस्थाएँ बनी। सब काम संस्थागत बन गये। आज व्यक्तिवाद से आगे बढ़ कर इनसान संस्थावाद पर पहुँचा है। आज का समाज राज्य-संस्था, शिक्षण-संस्था तथा सेवा-संस्था के सहारे चल रहा है। लेकिन ज्ञान-विज्ञान के अति प्रसार तथा लोकतन्त्र और समाजवाद के उद्घोष के कारण जन-मानस में सार्वजनिक चेतना का सचार हो रहा है। ऐसी स्थिति में राज्य सहित सभी संस्थाएँ पूरे चेतन समाज तक पहुँचने के लिए छोटी पड रही हैं। अतएव आज के मनुष्य को संस्थावाद से भी आगे बढकर समाजवाद पर पहुँचना होगा। अर्थात् समाज कैसे अपने आप फक्शन (काम) करे, इसका मार्ग खोजना पडेगा। आज जब जड यन्त्र भी ऑटोमेशन (स्वय-सचालन) की ओर तेजी से बढ रहा है, तब चेतन समाज-तत्र ऑटोमेशन से पीछे कैसे रह सकता है?

सम्मति-शक्ति ही एकमात्र सामाजिक शक्ति

विनोबाजी तत्र-मुक्ति तथा सर्वसम्मति के विचार पेश कर के इनसान की इस महत्वपूर्ण आवश्यकता के प्रति सकेत कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में इनसान के लिए नेतृत्व ही एक मात्र सहारा रह जाता है। अगर समाज को फक्शन करना है, तो सामाजिक शक्ति एक मात्र सर्वसम्मति ही हो सकती है। समाज से बाहर या समाज से ऊपर व्यक्ति या संस्था भले ही दडशक्ति से सचालन कर ले, लेकिन जब समाज को अपने आप फक्शन करना होगा तब वह काम दडशक्ति से नहीं हो सकता, उसके लिए तो सम्मति-शक्ति का ही विकास करना होगा। दडशक्ति का साधन शस्त्र है और साधक सैनिक। लेकिन सम्मति-शक्ति का साधन शिक्षण है और साधक शिक्षक।

अतएव शिक्षक-समाज यह कह कर चुप नहीं बैठ सकता कि वह राज्यतत्र के नीचे दबा हुआ है। उसे सघर्ष कर के शिक्षा के लिए जुडिशियरी स्टेटस् (न्यायाधिकारी की प्रतिष्ठा) हासिल करना होगा। आज जब शिक्षक सघ अखिल भारत पैमाने पर तनख्वाह बढाने जैसी छोटी बात के लिए हडताल आदि शातिमय प्रतिकार का सघटन कर रहा है, तो उसके लिए क्या शिक्षा का स्वतन्त्र स्टेटस् हासिल करने के लिए सघर्ष करना मुश्किल है? इतने बडे सिद्धान्त के लिए अत्यन्त छोटी बात का त्याग करना क्या असम्भव है? आवश्यकता है स्थिति को परखने के प्रयास की और परिस्थिति के अनुसार नेतृत्व करने की आवश्यकता के एहसास की।

शिक्षक द्रष्टा बनें

शिक्षण के सदर्भ में एक और बडी परिस्थिति का विचार करने की जरूरत है। पिछले दो हजार वर्षों में विज्ञान और टेक्नोलॉजी (तकनीकी) का जितना विकास हुआ था, उससे कही अधिक विकास हाल के दो-सौ वर्षों में हुआ है और पिछले

दो-सौ वर्षों में जितना विकास हुआ था, उससे कई गुना अधिक पिछले बीस सालों में हुआ है। उसी हिसाब से जमाना बदलता रहा है और आज जमाने की परिस्थिति और इनसान की मन स्थिति इतनी तेजी से बदल रही है, एक पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी की खाई इतनी अधिक बढ गई है कि एक-दूसरे को पहचानना भी मुश्किल हो गया है। पुराने जमाने मे कई पीढ़िया तक परिस्थिति करीब-करीब समान रहती थी। इसलिए पिता के अपने जीवन के अनुभव का लाभ पुत्र के जीवन को मिलता था और गुरु के अनुभव से शिष्य का मार्गदर्शन होता था। तब शिक्षण की रूपरेखा उस समय के वर्तमान समाज के प्रकार के आधार पर बन सकती थी, लेकिन आज शिक्षक को द्रष्टा बनना पड़ेगा। आज उसके हाथ मे जो बच्चा आता है, वह कम से कम सोलह वर्ष बाद प्रौढ़ हो कर जीवन में प्रवेश करेगा। परिवर्तन की वर्तमान गति को देखते हुए सोलह वर्ष बहुत लम्बी अवधि है। अगर शिक्षण-पद्धति वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में बनायी गयी और उसी भूमिका में उसके शिक्षण का क्रम चला, तो सोलह वर्ष बाद वह बच्चा जीवन-संघर्ष में पराजित होगा। क्योंकि तब तक समाज बहुत बदल चुका होगा। इसलिए शिक्षाविद् और शिक्षक को इस ढग से शिक्षाक्रम को सजाना होगा, जिससे बच्चा आगे आनेवाले जमाने में सफल नागरिक बन सके। अर्थात् शिक्षा और शिक्षक को अत्यंत दूरदृष्टि रखनी होगी। इसलिए आवश्यक है कि वे वर्तमान हलचल से ऊपर रहें।

विज्ञान की दिशा पहचानें

आज जो शिक्षण चल रहा है वह मैनेजर बनाने के लिए है, इस सिलसिले में देश की एक अत्यन्त खतरनाक मन स्थिति की ओर भी ध्यान देना होगा। अति प्राचीन काल मे जब उत्पादन के औजार बहुत निम्न स्तर के थे, तब मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति म ही अत्यन्त कठिन श्रम करना पड़ता था। आराम के लिए उसके पास अवकाश, या फुरसत नही थी। स्वभावत उसको इस कठिन श्रम से मुक्ति की चाह बनी थी। इसी चाह ने उत्पादन के यंत्र में सुधार की दिशा मे ज्ञान विज्ञान का उपयोग किया। हस्त-उद्योग से शुरू हो कर शक्ति-संचालित बड़े-बड़े उद्योगों तक कल-कारखाना का आविष्कार हुआ। उससे आगे बढ कर आज उद्योग अभिनवीकरण (रेशनलाइझेशन), स्वयसचालन (ऑटोमेशन) और साईबरनेटिक्स (स्वयंभरण) तक पहुँच गये हैं। ऑटोमेशन में यंत्र चलानेवाले की आवश्यकता नही रहती, लेकिन बटन दबानेवाला तथा दूसरे विभाग से काम करनेवाला की जरूरत तो रहती है। साइबरनेटिक्स (स्वयंभरण) में उनकी भी जरूरत नहीं रहती, मस्तिष्क का काम भी कम्प्यूटर से सध जाता है। इस तरह साइबरनेटिक्स के कारण उत्पादन के क्षेत्र में सब लोग खाली होते चले जा रहे हैं। विशेषज्ञों का तो कहना है कि पूरे अमरीका के उद्योगों के लिए केवल तीन सौ व्यक्ति पर्याप्त हैं। तो हिन्दुस्थान के उद्योगों के लिए

कितने मनुष्य चाहिए, यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है। शायद पचास पर्याप्त हों। मनुष्य की काम से मुक्ति पाने की आकांक्षा ने केवल उत्पादन के क्षेत्र को ही प्रभावित किया है ऐसी बात नहीं है। कम्प्यूटरों की प्रगति के कारण, आज भारत में जो मैनेजर बनाने की शिक्षा दी जा रही है, वे मैनेजर भी अपने काम से मुक्त होंगे। थोड़ा और आगे बढ़ कर विचार करेंगे तो स्पष्ट होगा कि टेलिविजन के विकास से शिक्षकों की आवश्यकता भी खत्म होती जाएगी। एक शिक्षक एक भाषा के एक क्लास के तमाम विद्यार्थियों के लिए काफी होगा। विज्ञान जिस रफ्तार से प्रगति कर रहा है, उसे देखते हुए टेलीविजनों के टू वे ट्रैफिक (दोनों तरफ से व्यवहार) बनना कोई आश्चर्य की बात है क्या? तब विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तरों की भी व्यवस्था हो सकेगी। कहा जायेगा कि मनुष्य ने विज्ञान की आराधना कर तथा उसे सतुष्ट कर काम से मुक्ति का वरदान देने की प्रार्थना की, तो विज्ञान ने सहज भाव से कहा, "तथास्तु"।

अवकाश की भी सीमा है

लेकिन इस वरदान का नतीजा क्या हुआ? एक ओर विज्ञान की प्रगति के ये नतीजे हैं और दूसरी ओर लोकतन्त्र और समाजवाद के विचार के स्तर से समानता का मानस तीव्र से तीव्रतर होता चला जा रहा है। अर्थात् आज की आवश्यकता यह है कि काम न करनेवाले और करनेवाले के रूप में दो वर्ग न रहें, सब समान रहें, यानी समाज में आज ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि या तो कोई काम न करे या सब काम करें। अगर कोई काम न करे कहें, तो 'अवकाश की उत्कट समस्या' पैदा होती है। संसार की सभी चीजों की तरह ही अवकाश भी लॉ ऑफ डीमिनिशींग रिटर्न (ह्रासानुक्रम के नियम) से मुक्त नहीं। अवकाश के रचनात्मक इस्तेमाल की भी एक सीमा होगी, जिसके बाद इसका इस्तेमाल ध्वंसात्मक ही होगा।

सामाजिक आकांक्षा बदलना ही एक मार्ग

इस तरह अगर 'कोई काम न करे' का सिद्धान्त असम्भव है, मानव समाज को ध्वस करने का वह साधन है तो किस प्रकार से सब काम कर सकें, यह उपाय खोजना होगा। अतएव उत्पादन के औजार और साधनों को ऐसा बनाना होगा, जिससे हर हाथ में काम रहे, लेकिन साथ-साथ काम से शरीर को आराम और मन को आनन्द मिले। यह तभी हो सकता है जब उत्पादन की प्रक्रिया ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति का माध्यम बने, जब उत्पादन सांस्कृतिक विकास के साधन के रूप में इस्तेमाल हो, क्योंकि जब सब को शिक्षित बनाना है और सब शिक्षितों को हाथ से काम करना है, तो कोई भी व्यक्ति आज का चरखा और चक्की नहीं चलायेगा। आज का चरखा-चक्की चला कर ड्रजरी (निरस काम) में नहीं पड़ेगा। इसलिए शिक्षाविद् और शिक्षक, जब शिक्षण-पद्धति की बात सोचते हैं तो उन्हें इस बुनियादी तथ्य को

ध्यान में रखना होगा और किसी न किसी रूप में उत्पादन तथा वैज्ञानिक खोज को शिक्षा से समन्वित करना होगा। जब विज्ञान मनुष्य को चद्रमा पर पहुँचा सकता है तो उसके लिए क्या यह असम्भव है कि चक्की चलाने की प्रक्रिया में वीणा की झकार सुनायी दे? आज चूकि सभी लोगों की आकाक्षा काम से मुक्त होने की है, तो मनुष्य के लिए विज्ञान का उपहार साइबरनेटिक्स, कम्प्यूटर और टेलिवीजन सेट्स है। लेकिन जिस दिन मनुष्य को यह आकाक्षा हो जायेगी कि सब को काम करना है तो विज्ञान भी इनसान को उसी प्रकार के साधन मुहय्या करेगा। अतएव शिक्षा के सामने यह एक बडी जिम्मेवारी है कि वह समाज की काम न करनेवाली आकांक्षा को बदले।

आचार्य कुल . आज की चुनौती का उत्तर:

इस तरह देश के शिक्षा-जगत के सामने एक अत्यन्त कठिन जिम्मेवारी उपस्थित हो गई है— वह है समाज को सर्वनाश से बचाने की जिम्मेवारी। 'आचार्यकुल' का सगठन और प्रगति ही आज की चुनौती का उत्तर है। शिक्षाविदा और शिक्षको को गम्भीरता से इस जिम्मेवारी की तरफ ध्यान देना होगा।

भारतका सच्चा विश्वविद्यालय

मारत वर्ष में यदि सच्चा विश्व विद्यालय स्थापित होगा तो आरम्भ से ही उसका अर्थशास्त्र, उसका कृषिशास्त्र, उसकी स्वास्थ्य विद्या, उसके सारे व्यावहारिक विज्ञान को वह अपने प्रतिष्ठा स्थान के आस पास के गाँवों से प्रयोग करके यह अपने को देशकी जीवन-यात्राका केन्द्र स्थल बनायेगा। वह विश्व विद्यालय उत्तम आदर्श की खेती करेगा, गोपालन करेगा, कपडा बुनेगा और अपनी आर्थिक आवश्यकता के लिये समवाय प्रणाली का अवलम्बन करके छात्र, शिक्षक और आस पास के अधिवासियों के साथ जीविका के सम्बन्ध के द्वारा घनिष्ठता से युक्त होगा।

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर

(सन् १९१९ में 'शांति निकेतन' नामक पत्रमें 'विश्व-भारती' नामक लेखसे)

सुश्री सरला देवी

एक विश्व के लिए शिक्षा

(प्रस्तुत लेख की लेखिका सुश्री सरलाबहन (मिस हेलीमन) गांधीजी की ज्ञान समृद्ध व वयोवृद्ध अंग्रेज शिष्या हैं। पिछले लगभग चालीस वर्षों से वह भारत की आजादी के आन्दोलन में और स्वतन्त्रता के बाद देश के दरिद्रनारायण की सेवा में लगी हुई हैं। भारत में शिक्षा-क्षेत्र में गांधीजी की नई तालीम के आधार पर सरला बहन ने कई प्रयोग किये हैं उनमें से उत्तरप्रदेश में अल्मोडा जिले में कौसानी में पहाड़ी बालिकाओं के एक सफल विद्यालय का संचालन उल्लेखनीय है। आज कल अधिकांश समय मुक्त सवार, अध्ययन और लेखन में व्यतीत कर रही हैं। एक अंग्रेज लेखिका द्वारा हिन्दी में लिखा यह लेख उन्हीं के शब्दों में यहां दिया जा रहा है। आशा है यह लेख शिक्षा में रुचि रखने वाले प्रबुद्ध पाठकों को उद्‌बोधक लगेगा। — सम्पादक)

नवम्बर, १९७२ में ब्रिटन में इस विषय पर चर्चा करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया गया था। उसमें मुख्य प्रवक्ता इतिहास के प्रसिद्ध विशारज्ञ प्रोफेसर आनल्ड टॉयन्बी थे। उनके विचार में इस प्रकार की शिक्षा में विचार शक्ति तथा भावना दोनों का प्रोत्साहन मिलना चाहिये। क्योंकि भावना ही एक विश्व की शिक्षा का सच्चा आधार बन सकती है।

शिक्षा तटस्थ नहीं!

आज कल मानव जाति के सामने जीवन-मृत्यु की कई समस्याएँ खड़ी हुई हैं। ऐसी समस्याओं पर शिक्षा तटस्थ (Neutral) नहीं रह सकती है। अन्तरराष्ट्रीयता, मानवता तथा मानव की सामान्य आवश्यकताओं के लिए एक भावात्मक (Positive) नैतिक समर्पण की मांग पेश करता है। बौद्ध धर्म तथा ईसाई धर्म ने सब प्रथम समस्त मानव परिवार के लिये चिन्ता व्यक्त की। आज कल आकाश की खोजों से यह स्पष्ट हुआ है कि मानव जाति एक ऐसी दुनियाँ में वास करती है, जो मिट्टी, जल और वायु की एक बहुत पतली तह पर आधारित है।

आज कल वातावरण की सीमितता (Limitations) के बारे में जो जागृति तेजी से बढ़ रही है, इसके फलस्वरूप चारो ओर से इस 'एक विश्व " की शिक्षा के बारे में काफी लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है, राष्ट्रवाद की भावना तथा "राष्ट्र की पूजा" मानवीय अस्तित्व के लिये बडा खतरा पेश करते हैं। तकनीकी प्रगति का नतीजा यह होने लगा है कि "विश्व-समाज" ही उसकी दिशा पर नियन्त्रण रख सकता है। राज्य को अपने नागरिको के लिये एक सार्वजनिक सेवा संस्था के रूप में पेश होना चाहिये। लेकिन कई बार वह एक ऐसे देवता का रूप लेता है, जो बडे पैमाने पर, युद्ध के रूपमें, मानव बलिदान की माग पेश करता है।

शिक्षा के नये आयाम :

आज कल मानव धर्म से दूर रहने लगा है, इससे ऐसी गलत "पूजा" और भी आसान हो रही है, क्योकि एक मानवीय कमजोरी यह है कि मानव अक्सर पूजा करने के लिये किसी केन्द्र की खोज करता है। इस धर्म निरपेक्ष युग मे शिक्षा के नैतिक तथा आध्यात्मिक आयामो का तिरस्कार करने में मनुष्य खतरा उठा रहा है। उन आयामो को "एक विश्व" की शिक्षा के नये कार्यक्रमो में उचित महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

साहित्य और कला के द्वारा अन्तरराष्ट्रीय जनमानस को प्रोत्साहन मिल सकता है। मानवीय प्रयास तथा सामान्य आशा के महान क्षेत्र राष्ट्रीय, जातीय तथा धर्म-भेदो से परे है। सांस्कृतिक एकरूपता से अन्तरराष्ट्रवाद का कोई तालुक नही है। आज कल दुनिया के सब भागों में लोग मानवीय परम्पराओ के प्रगटन के लिये नये तरीको की खोज कर रहे है।

सच्ची अन्तरराष्ट्रीय भावना तक पहुँचने के लिये अपनी एक संस्कृति की पक्की बुनियाद उपयोगी होती है। आज कल दुनिया में स्थानीय समाज तथा अन्तर-राष्ट्रीय विचार का चिन्तन प्रगट हो रहा है। पचास वर्ष पहले महात्मा गाधी ने हमारे सामने ग्राम-स्वराज्य और विश्व-राज्य का विचार पेश किया हो था।

मध्यकालीन युग में स्थानीय सामान्तशाही राज्य के प्रति वफादारी रखने के साथ-साथ, लोग अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर केथोलिक गिर्जों के प्रति भी वफादार थे। राष्ट्रवादी राज्यों मे विकास से यह समतोल टूट गया था, लेकिन अब, बीसवी शताब्दी के अंत में, स्थानीय तथा विकेन्द्रित समाज के चिन्तन के साथ ही साथ दूसरी ओर तकनीकी प्रगति सारी दुनिया को जोड रही है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को अब यह समझ लेना चाहिये कि इन दो वफादारियो का सृजनात्मक सन्तुलन कैसे बने ?

यह बहुत जरूरी है कि पश्चिमी दुनिया के बच्चे काफी छोटी उम्र में अन्य देशों की संस्कृति समझने लगें। ब्रिटेन की कुछ पाठशालाओं मे भारत तथा पश्चिमी द्वीप समूह के विद्यार्थियो के संगीत, नृत्य तथा रस्म-रिवाजो का प्रवेश हुआ है, तथा

ये विद्यार्थी विलायत के सांस्कृतिक कार्यों में भी भाग लेते हैं। यदि हम सिर्फ नकारात्मक दृष्टि से देखें, तो ऐसे कार्यक्रम पूर्वाग्रहों को तो जीत ही सकते हैं, लेकिन रचनात्मक दृष्टि से इससे एक दूसरे की संस्कृति के लिये आदर और सहानुभूति भी पैदा हो सकती है।

अभी ब्रिटेन में एक "विश्व अध्ययन योजना" बन रही है। ताकि वहाँ की पाठशालाओं तथा कालेजों में इस विषय का विकास हो सके। संक्षेप में उनके लक्ष्य निम्नलिखित हैं —

(१) मानव जाति के सामान्य विरासत का संरक्षण (Common heritaage)।

(२) विभिन्न आचार के नमूने (Patterns of behaviour)।

(३) विश्व के पैमाने पर निर्णय करना (Decision on a world scale)।

(४) विश्व के पैमाने पर व्यक्तिगत आचरण के लिए कानून बनाना।

(५) राष्ट्रीय हित तथा मानव हित में पारस्परिक विरोध होने से उठने वाली समस्याएँ।

(६) इस ग्रह पर भविष्य में मानव का अस्तित्व कैसे सम्भव हो?

सिर्फ अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से नहीं, बल्कि भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के लिए भी, भारत के शिक्षा-पाठ्यक्रम में ऐसे तत्वों का प्रवेश अत्यन्त आवश्यक है— और तीस वर्ष पहले नयी तालीम की योजना में गांधी जी ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया था।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण काम

चाहे स्कूल में हो, चाहे जीवन-क्षेत्र में हो, काम का सबसे बड़ा उद्देश्य काम करने का आनन्द है। उसकी फल-प्राप्ति में आनन्द और समाज के लिए उस काम में जो मूल्य है उसमें आनन्द। नवयुवक में इन मानसिक वृत्तियों को जागृत और शक्तिशाली बनाना ही मैं शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण काम मानता हूँ। ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार ही उसको मानव की श्रेष्ठतम सम्पत्तियों की प्राप्ति की साधना के आनन्दमय पथ में ले जा सकता है। यह सम्पत्ति है ज्ञान और कलाकार की कारीगरी।

— अल्बर्ट आइन्स्टाइन (अलबनी, न्यूयार्क में उच्च शिक्षा की त्रिशताब्दि समारोह में दिया गया भाषण)

ब्रह्मदत्त दीक्षित

शिक्षा विधायकों के लिये चिन्तन का एक अवसर :

(इस विचारोत्तेजक लेख में लेखक ने हमारी बौद्धिक जड़ता पर प्रहार किया है। यह स्थिति केवल उ. प्र को ही नहीं, सारे देश की है। दुख इस बात का कम है कि सरकारी स्तर पर घातक गैर जिम्मेवारी व्याप्त है, दुख इस बात का अधिक है कि स्वयं छात्र, शिक्षक (जो अभिभावक तो है ही।) तथा अभिभावक भी गहरी बौद्धिक जड़ता से ग्रस्त है।

—सम्पादक)

कहने को तो मनुष्य मननशील प्राणी कहा जाता है किन्तु कभी कभी वर्षों तक कितनी ही चिंतनीय घटनायें घटती रहती है और वह बपरवाह बैठा रहता है मानो कुछ भी नही हो रहा है। इसी दौर में वह किसी न किसी भीषण सकट का शिकार बन बैठता है। ऐसी ही घटना आज कई वर्षों से घटित होकर भीषण स्वरूप लती जा रही है किन्तु प्रबुद्ध मानव उस ओर नितान्त उदासीन है। उत्तर प्रदेश भारत का सबसे बडा प्रदेश कहा जाता है। जहाँ की घटनाए और दुर्घटनाए पूरे देश को प्रभावित करती है। थोडे दिन पूर्व उत्तर प्रदेश में हाईस्कूल व इण्टरमीडिएट की परीक्षा का फल उद्घोषित हुआ। थोडे छात्रो का नही दस लाख छात्रो का। इतनी बडी परीक्षा ससार के किसी भी देश म नही होती है इस आप महान मूर्खता कहगे या विशिष्टता— इसे छोडिए। उस दिन हजारो लाखो छात्र रोए होगे, लाखो अभिभावक, जो दीनता और कुण्ठा के शिकार है, सोच में पड गए होग। लाखो बनावटी हसी भी हस होग जिन्ह भविष्य का मार्ग दिखाई नही पड रहा है। किन्तु जिन वर्ग पर लाखो जवानो का दायित्व है उन पर जूँ भी न रेंगा। राजनैतिक नेता, व्यवसायी और उद्योगपति, शिक्षा शास्त्री, समाज-सुधारक तथा नए नारो के सर्जक और राजनैतिक अखाडा के योद्धा— आदि किसी न भी तो कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की। क्या सचमुच यह मामूली अकिंचन घटना है ?— विश्लेषण करके देखिए —

इस वर्ष उत्तर प्रदेश, माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा आयोजित हाईस्कूल व इण्टर के परीक्षार्थियो की सख्या दस लाख थी। इनमें से हाईस्कूल के ६ लाख ५० हजार १३१ परीक्षार्थियों में स कुछ २ लाख ७१ हजार ३८३ छात्र पास हुए।

इण्टर परीक्षा में ३ लाख ४१ हजार ५०० छात्रों में से कुल १ लाख ६४ हजार ८२४ छात्र पास हुए अर्थात् दोनो स्तरो पर पास छात्रों का प्रतिशत क्रमशः ४३.६ तथा ५३.३ रहा। पिछले पाँच वर्षों के परीक्षा फल की स्थिति निम्नांकित है :—

परीक्षाफल	१९६९	१९७०	१९७१	१९७२	१९७३
हाईस्कूल	४६ १	४५.२	४१ ८	४६ ७	४३.६
इण्टर—	५० ९	४६ ९	४९.५	५४ २	५३.३

स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है यदि औसत का भी औसत निकाल लिया जाय तब —

हाईस्कूल का परीक्षाफल	—	४४ ७ प्रतिशत
इण्टर	—	५० ९ प्रतिशत

शिक्षा में पूंजीवाद समाजमें ?

इस प्रकार हम कितने वच्चो को उत्तम नागरिक बनाने की सफलता घोषित कर रहे हैं —

४४ ७+५० ९ = ४७ ८ प्रतिशत
——————
२

अर्थात् ५० प्रतिशत से भी कम। अभी यही तक इतिश्री नही है। छात्रों के आकड़ो में मैं पाठको को उलझाना नही चाहता। निष्कर्ष की वस्तुस्थिति पर ही लाना चाहता हूँ। कही से भी पूँजीवाद हट गया हो या हट रहा हो, या अभियान ही चल रहा हो किन्तु शिक्षा जगत म तो पूँजीवादी प्रवृत्ति जड होकर जमी है। कही से भी नही हिली है। फर्स्ट डिवीजन, सेकिंड डिवीजन, थर्ड डिवीजन के वर्ग-विभेद की माया में हम इतने फँसे है कि इस पर कोई बोलता भी नहीं है। इन डिविजनो का नैतिक, शैक्षिक, और तार्किक आधार नितान्त सदेहात्मक ही नहीं अपितु घातक भी है किन्तु फिर भी हम इसकी कोई चिंता नही कर रहे है।

उक्त परीक्षाओं मे थर्ड डिवीजन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से नितांत अर्थहीन है— न कोई उसे नौकरी में पूछता है, न उसका प्रवेश उच्च कक्षाओ में आसानी से होता है, अभिभावक उसे घर में देखना नही चाहता, समाज में निरादृत होता है। यहाँ तक कि फेल छात्र को तो दूसरे वर्ष अपने को अच्छा सिद्ध करने का अवसर भी प्राप्त रहता है। किन्तु थर्ड डिवीजन तो सदा सर्वदा के लिए गया। थर्ड डिवीजन का कूडा करकट भी यदि फेल नाकारों में जोड़ दिया जाय तो स्थिति

स्पष्ट होकर हमारे सन्मुख आती हैं। उत्तीर्ण छात्रों में थर्ड डिवीजन की संख्या लगभग २।३ होती है। १।३ में फर्स्ट और सेकिंड डिवीजन होते हैं। अतएव स्पष्ट हुआ कि ५२.२ प्रतिशत फेल में हम इन कुल पास

४७.८% छात्रों के ×२।३ (थर्ड डिवीजन) याने ३१.८ प्रतिशत को भी जोड़ दे तो

५२ २+३१.८=८४०० प्रतिशत शिक्षा की दृष्टि से बेकार सिद्ध हुए। नए जवानो, नए युवजनो की ८४ प्रतिशत बच्चों की बेकार सेना की नई डिवीजन प्रतिवर्ष बनती जा रही हैं। विचार करनेकी बात है कि :—

विचारणीय प्रश्न : एक पक्ष :

१— क्या किसी लोक तांत्रिक सरकारको यह अधिकार है कि वह अपनी नयी पीढ़ी मे से ८४ प्रतिशत जीवित सपदा को मदा के लिए कूड़ा करकट सिद्ध करती रहे ?

२— ८४ प्रतिशत बच्चोंको आर्थिक,सामाजिक तथा भावनात्मक दृष्टि से मदा के लिए हीन बना देना क्या जनतान्त्रिक सरकार के लए महान अपराध नही है ?

३— क्या शिक्षा के नियोजको को यह अधिकार प्राप्त है कि वे निराधार परम्परा पर आधारित परीक्षा का माध्यम लेकर ८४ प्रतिशत जवानो के जीवन से लोकतंत्रवादी तथा वर्ग-विभेद निहित प्रणाली का खेल निर्द्वन्द्व होकर खेलते रहे ?

४— क्या वर्तमान शिक्षा पद्धति समस्याओ का सम्वर्द्धन करने में अहर्निश सलग्न नही है जब कि शिक्षा का आधार समस्या का समाधान प्रस्तुत करना है न कि समस्याओं को बढाना ?

५— ८४ प्रतिशत जवानों की सेना अर्थात् बेकारों की सैनिक डिवीजनें शिक्षा सस्थाओं रूपी कारखानो से कब तक निकलती रहेगी— उसकी अवधि कितनी और शेष है ?

दूसरा पक्ष:

एक दूसरे पक्ष पर भी विचार करें :—

यह निर्विवाद है कि हम प्रति वर्ष माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर ही ८४ प्रतिशत बच्चों को समाज का कूड़ा करकट सिद्ध करके उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। कहा जाता है कि हमारे देश में जनतन्त्र है। २१ वर्ष की अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति वोट का अधिकारी हो जाता है। प्रतिवर्ष ८४ प्रतिशत बच्चे जो 'नाकारा' सिद्ध हुए और कथित असामाजिक कृत्यों में विवशतः जा लगे केवल पाँच वर्ष पश्चात् वे ही वोटर का अधिकार प्राप्त करते जा रहे हैं। दु:खी और दीन-हीन होने की भूमिका में परिस्थिति उनके अनुकूल होगी कि वे आपस मे मिल जाये और यूनियन

का सगठन प्राप्त कर ले। (यथार्थ है कि दीन दुखी एव विपन्न की एकता दृढवती होती है तथा सुखी और सम्पन्न की एकता स्वार्थ साधक तत्वो पर निर्धारित होकर दुर्बल बनती है) तो जनतान्त्रिक सरकार ८४ प्रतिशत की बनेगी और १५ प्रतिशत (फर्स्ट और सेकिंड डिवीजन) उनके नौकर होंगे। फिर किसी को यह कहने का अधिकार नही है कि जनतन्त्र नही है या सरकार उत्तम नही है ?? यह स्थिति समाज को ग्राह्य करनी पडेगी। इसके अतिरिक्त यह सरकार केवल मात्र उपभोक्ता होगी उत्पादन कर्ता नही क्योकि इसका मूल उस तथ्य में निहित है जिसे आपने ५ वर्ष पूर्व कूडाकरकट बनाकर फेंक दिया था, जो समाज के चूसने वाले तो थे किन्तु समाज के उपादेय अग बनने का अवसर उन्हे आपने नही दिया था। ये समाज के लाडले बेटे न थे वरन् त्यक्त और निरादृत मास के लोथडे थे।

बुद्धि में जडता क्यों?

नए इसानो की दुनियाँ में हम इस उपलब्धि को प्राप्त करने जा रहे है! शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ एव समाज सुधारक तथा योजनाकारो के मस्तिष्को में कोई हलचल क्या नही है? क्या कभी के पास इन ८४ प्रतिशत नए नागरिको की रोटी, रोजी का स्थायी हल है? क्या समस्त शिक्षालय आज बेकारो की सैन्य-डिवीजने बढाने के सक्रिय कारखाने नही हैं? आज का योजनाकार प्रतीत होता है कि केवल 'समस्या का टालने की विधि' मे व्यस्त है उसके समाधान मे नही। समस्या हल चाहती है टालने की प्रक्रिया नही। शिक्षा क्रम को कोसते सभी है किन्तु साहस किसी में नही कि इस ओर एक भी कदम उठे।

समस्या टालने का प्रयास

समाज के तथा-कथित कर्णधार-नेताओ ने एक प्रलाप और प्रारम्भ किया है — छात्रों ने भविष्य के अधकार को देख कर कुठा और नैराश्य के वशीभूत होकर बडे-बडे विश्वविद्यालयो की मूल भित्ति को हिला दिया है। छात्र आन्दोलन प्रज्वलित हो उठे हैं, अध्यापक भी अपनी अलग परिधि बना बैठे है शासन और अनुशासन के आडम्बर ने शिक्षा का रूप बना लिया है। प्रत्यक नेता तथा दण्डधारी और सैनिक शिक्षा शास्त्री बन गया है, परिणाम स्वरूप विश्वविद्यालय भी आन्तरिक तथा बाह्य सघर्ष के शिकार बन बैठे है— ऐसी भयानक स्थिति मे नेताओ का उपदेश है — 'शिक्षा, कैसी हो इसे शिक्षक बताएँ, छात्र बताएँ, अभिभावक बताएँ', आदि आदि। शासन ये करे शासन के गूढ रहस्य दूसरे बनाएँ? यह भी समस्या टालने का अन्तिम प्रयास है।

निष्ठा और दृष्टि का अभाव :

सर्वविदित है कि आजादी आने के पूर्व यदि निर्माण की दिशा मे चिन्ता किसी को हुई तो शिक्षा की ही थी। राष्ट्रीय शिक्षा का निर्धारण सन् १९३७ के पूर्व हो चुका था। इसके पश्चात् कितनी बार 'शिक्षा कमीशन' बैठे जिन्होंने समस्या-

नुसार अपनी संस्तुतियों की और राष्ट्रीय शिक्षा के उस स्वरूप को, जो पहिले निश्चित हुआ था, निरन्तर तथा बार बार दुहराया। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप को न केवल भारतीय कमीशनों न पुष्ट किया वरन् विदेशी शिक्षा शास्त्रियो न भी सराहा। किन्तु कार्यान्वियन कौन करे? और क्यो?? सत्य तो यह है कि जिनके हाथ शासन सूत्र आया उन्होंन निष्ठाहीनता का परिचय दिया। शासक वग के सस्कार तो 'नौकरी-निष्ठ शिक्षा' पर ही निर्धारित थ अतएव उन्हें श्रम निष्ठ शिक्षा के प्रति रचमात्र भी आस्था न हुई। देश पार्थिव दृष्टि से औद्योगिक सस्थानों की दृष्टि से, तथाकथित प्रगति करता रहा किन्तु मानव का निर्माण न हुआ जो प्रगति में प्राण प्रतिष्ठा करता। शिक्षा का क्रम ज्यों का त्यो अंग्रेज द्वारा निर्धारित पद्धति पर ही चलता रहा। बसिक शिक्षा प्रणाली, पास्ट बसिक शिक्षा प्रणाली में तो श्रम प्रधान था। श्रम के माध्यम स ही शिक्षा तथा ज्ञान अजन की बात कही गई थी। काय केन्द्रित शालाओं का विधान था। प्रारम्भ स ही बच्चे को काय करन हाथ तथा शिल्प शि ा की ट्रनिंग देन का अनिवाय विधान था। किन्तु इस प्रवृत्ति को अर्थात श्रम करनको प्रवृत्ति को तो शासक वग हीन भावना की दृष्टि स देखता था। अतएव नई शिक्षा सकल्पना अथ हीन ही बना रही। सन १९३७ तथा सन् १९४७-४८ म आचाय नरेन्द्रदेव शिक्षा समिति' न प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का एक नया स्वरूप निर्धारित किया जिसम श्रम निष्ठ कायक्रम निहित था तथा माध्यमिक स्तर पर विविध माग शिक्षा के बताए गए थ—साहित्यिक वज्ञानिक व्यवसायिक रचनात्मक एव औद्योगिक कृषि एव टकनीकल आदि। इनके अनुसार छात्र अपनी अपना रुचियों के अनुरूप अपनी अपनी दिशाआ में अग्रसर हो सकते थ और जावन को सायक तथा स्वस्थ बना सकते थ। किन्तु इन विविध दिशाओं का किंचित मात्र भी विकास न हुआ। क्योंकि शिक्षा विभाग क कणधार इमस उदासीन थ और नतृत्व न भी शिथिलता दिखाई। परिणामस्वरूप समिति की सस्तुतियाँ ज्यों की त्यो पडी रह गई और पुरानी पद्धति ज्यों की त्यों चलती रही। 'श्रम की प्रतिष्ठा हो' यह बात न तो बच्चे के मस्तिष्क म बिठाई गई, न शिक्षालय के कायक्रम में ही उस प्रोत्साहन मिला तथा न उसके लिए भावी विकास की दिशा ही निर्मित हो पाई। शिक्षा का मोड औद्योगिक तथा तकनीकी दिशा की ओर न हो सका जसा कि होना चाहिए था।

पच वर्षीय योजनाओ का अभिनय

द्वितीय पचवर्षीय योजना म एक नया अभिनय और हुआ। औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा का प्रसार हो—नया नारा आया। तकनीकी सस्थान खुले किन्तु उनके प्रवशार्थी वही छात्र थ जिन्होंन जावन क १७-१८ वष तक हाथ का काम शिल्प का नाम छुआ भी नहीं था। उनमें न कोई वैसा सस्कार ही दृढ़ बना था और न वैसी आस्था ही निर्मित हुई थी। इन छात्रो को दो-दो, तीन-तीन वष की ट्रनिंग तकनीकी पद्धति पर दी गई। परिणाम यह हुआ कि य विद्यार्थी भी जब सस्थाओ स निकले तो कोरी

नौकरी-निष्ठ आस्था को लेकर। स्वावलम्बी बनना, नए उद्योगो को जन्म देना, उद्योगो को विकसित करना न इनके संस्कार में था न ट्रेनिंग में। न पुराना दृष्टिकोण ही बदला था। लाखो शिक्षार्थियो का दल केवल शास्त्रीय शिक्षा लेकर निकल पडा जो नौकरी ही चाहता रहा। अतएव सारी योजना असफलता का शिकार बनी। देश और समाज को कुशल कलाकार, उद्योग-निष्ठ शिल्पी, तथा स्वतन्त्र व्यवसायिक कर्मचारी प्राप्त न हो सके। तकनीकी संस्थान केवल अर्थहीन शिक्षा के प्रतीक बन कर रह गए। इन परिणामो पर भी किसी ने ध्यान नही दिया। उधर सामान्य शिक्षा का दौर दिनो दिन बढता गया और बेकारो की सेना निरन्तर बढती गई। 'शिक्षित वर्ग बेकारो की सेना बढावे' यह विचार भी वास्तविक शिक्षा का द्योतक नहीं वरन विपरीत है—इस तथ्य की प्रतीति शासन-सलग्न व्यक्तियो को आज तक न हो पाई। फलस्वरूप आज आजादी के २५ वर्ष पश्चात भी हम शिक्षा के इस क्रम से समस्यायें बढाने में ही तल्लीन हैं—समाधान कोई नही। प्राथमिक शिक्षा में श्रम के संस्कार नही, माध्यमिक शिक्षा में विविध प्रतिभाओ के अनुरूप मार्गान्तरीकरण की सुविधा और विधान नहीं, विश्व विद्यालयो में ऐसी भारी भीड जमा हो गई जिसको उच्च शिक्षा का कोई लाभ नही। सारा शिक्षा-जगत कुठा और नैराश्य से भरा पडा है। सब तितर बितर होकर अपना अपना मार्ग खोजने में लगे हैं। शिक्षित व्यक्ति का अर्थ हो गया नौकरी का चाहने वाला व्यक्ति— नौकरी भी ऐसी, जिसमे काम या श्रम न करना पडे। इस प्रवृत्ति का कल्पनातीत प्राधान्य हो गया।

इस दौड का उद्देश्य ?

सभी जानते हैं कि विश्व की आदर्श से आदर्श सरकार भी अपने सभी नागरिको को नौकरी नही दे सकती है। सभी को अपनी अपनी क्षमता और प्रतिभा के अनुसार विविध कार्यो एव उद्योगो में ही जाना पडेगा किन्तु भारत ही ऐसा देश है जिसमें सभी लोग इस दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करते है कि ऐसी नौकरी मिले जिसमें काम न करना पडे। उत्तर प्रदेश भी एक ऐसा प्रदेश है जिसमें दस लाख छात्र माध्यमिक स्तर पर परीक्षार्थी तो बन बैठते है किन्तु यह नही जानते कि पास या फेल होकर जायेंगे कहाँ। शिक्षा का उद्देश्य तथा प्रयोजन क्या रह गया ?? प्रतीत होता है जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नही है। आंधी के तिनको और धूलकणों के समान सब भागे जा रहे हैं। किधर ? किसी को पता नही ?? शिक्षा की यह अर्थहीनता तथा उद्देश्य हीनता सिवा इस देश के कही दृष्टिगोचर न होगी।

विडम्बना यह भी है कि समाज का नेता, सुधारक, पडित तथा मूर्ख सभी तो कहते है कि शिक्षा दूषित है, इसका "आमूल चूल' परिवर्तन होना चाहिए किन्तु जो शिक्षा सही रूप से बताई गई तथा निरन्तर उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया जाता रहा— उसे कोई करता नही। सभी उपदेशक, उपदिष्टा कोई नही। ऐसी

स्थिति में समाज में भली बुरी क्रांतियाँ ही हुआ करती हैं, अस्तव्यस्तता अधिक होनेपर विप्लव और उपद्रव होते हैं जो ऐसे सकट और भयावह स्थिति उत्पन्न करते हैं कि देश और समाज नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

अशैक्षिक दृष्टिकोण का बोलबाला :

सन १९५०, ५१-५२, ५३ में कहा जाता था कि शिक्षा सम्बन्धी नए विचारों पर आधारित जितनी योजनाएँ अमेरिका में चल रही हैं उतनी उत्तर प्रदेश में भी चल रही हैं। उस समय राजकीय शैक्षिक अनुसधान सस्थान, राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, राजकीय गृहविज्ञान प्रशिक्षण महाविद्यालय, राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, राजकीय नर्सरी प्रशिक्षण महाविद्यालय, राजकीय शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालय, राजकीय मनोविज्ञान प्रशिक्षण ब्यूरो, शिक्षा प्रसार विभाग, चलचित्र निर्माण केन्द्र, सचल शिक्षा दल, प्रांतीय शिक्षा दल, पाठ्य-पुस्तक निर्माण सस्थान, आदि कितने ही शिक्षा सस्थानों का जन्म हुआ जिनके लिए कहा गया था कि ये सभी सस्थान विकसित होकर पूरे शिक्षा जगत को प्रभावित करेंगे और उचित निर्देशन देकर स्वय विकसित होंगे। किन्तु इनके पीछे जो दर्शन और स्वप्न प्रतिष्ठित हुआ था वह एकाएक न जाने कहाँ विलुप्त हो गया। कितने ही सस्थान टूट कर समाप्त हो गए, कितने ही विकास के विपरीत सकुचित होकर सिकुड गए और आज उनका अस्तित्व एव प्रभाव शून्य हो गया है। उस समय यह सभी सस्थान शिक्षा क्षेत्र के लिए विद्युतगृह कहे जाते थे जिसके कारण उस समय यह भी कहा जाता था कि भारत में उत्तर प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी है किन्तु २० वर्ष होते होते शिक्षा के क्षेत्र में भी वह पिछडे प्रदेशों में भी सबसे पीछे रह गया है। जो भी हो सत्य इस कथन के विपरीत नहीं है। प्राथमिक शिक्षा का कोई सन्तुलन नहीं, योजनाबद्धता नहीं, श्रम मूलक दृष्टिकोण की प्रवृत्ति नहीं। माध्यमिक शिक्षा का प्रयोजन और उद्देश्य अर्थहीन हो गया है। यहाँ तक कि पाठ्यक्रम तो बडा ही आकर्षक दिखाया जाता है किन्तु उनका कार्यान्वियन उतना ही शिथिल और दुर्बल है। उसी का परिणाम तो है कि ८४ प्रतिशत बच्चों का प्रतिवर्ष "कूडा करकट" के ढेर में फेंक दिया जाता है। यह कौन सी शिक्षा है जो समूर्त मानवों को शिक्षा देकर भी जानवरपन के समूह में ले जाकर खडा कर देती है। विश्वविद्यालयों में एक ऐसी भीड एकत्र हो जाती है जिसका उच्च शिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं। उनके लिए यह केवल समय-यापन का साधन है। परिणाम स्वरूप प्रदेश के सारे विश्व-विद्यालय अन्तर्दाह से जल रहे हैं। वे उपद्रव और विप्लव के केन्द्र हैं। वहाँ असयम और अनुशासन हीनता का एकछत्र राज्य है, अध्ययन-अध्यापन का विपरीत वातावरण है। विश्वविद्यालय अनर्थकारी शिक्षा का पर्याप्त बन गए हैं। कोई भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं जो वर्ष भर लगातार चलता रहे। नित नए आन्दोलन, बवडर और उपद्रव खडे होते रहते हैं। सोचने की बात है कि क्या पी ए सी,

पुलिस और फौज के व्यक्तियो द्वारा बुद्धिवादियो स भरे पूरे विश्वविद्यालय अब नियंत्रित रहेग ? शिक्षा का उत्थान अशैक्षिक व्यक्तियो द्वारा होगा ? समाज का नियत्रण आर्डीनेंसो द्वारा सचालित होगा ? यह दृष्टिकोण ही अशिक्षा का सूचक है।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश में उपर्युक्त माध्यमिक स्तर पर १० लाख बच्चो के जीवन के साथ खिलवाड़ जिस किसी दिशा का द्योतक है इस सन्दर्भ में समस्या का चिंतन किया जाना चाहिए। वर्तमान उदासीनता अधिक श्रेयस्कर न होगी इतना यथार्थ है।

स्वतंत्रता की समस्या

हम यह भूल जाते है कि यद्यपि अब तक प्राप्त सभी प्रकार की स्वतत्रताओं की हमें पूरी मुस्तैदी के साथ रक्षा करनी चाहिय किन्तु, स्वतन्त्रता की समस्या सख्यात्मक न होकर गुणात्मक ह। हमको न केवल परम्परागत स्वतन्त्रताओं में वृद्धि और उनको कायम रखना ह अपितु एक नये प्रकार की स्वतत्रता भी प्राप्त करनी ह। हमें एसी नयी स्वतत्रता प्राप्त करनी है जो कि हमें अपने आप को समझने में और अपने में आत्म विश्वास के साथ ही जीवन में भी आस्था रखने में हमारी मदद करे।

—एरिक फ्राम, दि इस्केप फ्राम फ्रीडम।

एम. ए. सत्यनाथन्

शिक्षा के माध्यम के रूप में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति और बुनियादी शिक्षा के प्रख्यात आचार्य डा. जाकिर हुसेन ने बहुत सही ढंग से कहा था कि 'क्योंकि काम (वर्क) जीवन में केन्द्रीय महत्व रखता है इसलिए शिक्षा में भी उसका केन्द्रीय स्थान होना चाहिए' और 'क्योंकि हमने एक समाजवादी समाज-रचना का उद्देश्य सामने रखा है जहाँ कि उसका प्रत्येक सदस्य एक श्रमिक (काम करनेवाला) ही होना चाहिए ऐसे समाज में तो यह बात और भी सही है।' पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९५५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आवडी अधिवेशन में भारत की भविष्य की शिक्षा-नीति के बारे में प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था "मैं चाहता हूँ कि आपमें से प्रत्येक आदमी उत्पादक बने, कुछ न कुछ पैदा करे। आप में से प्रत्येक आदमी उपभोक्ता है और आप लोग समाज के द्वारा किये गये उत्पादन का ही उपभोग करते हैं। जब तक आप लोग पैदा नहीं करते, कम से कम आप उपभोग करते हैं उतना, तो आप समाज पर केवल एक बोझ हैं। एक फ्रांसीसी आदमी ने दूसरों के उत्पादन का उपभोग करनेवाले व्यक्तियों को दूसरे मनुष्य की सपत्ति चुरानेवाला चोर कहा है। मैं ऐसे समाज के लिए इच्छा रखता हूँ जहाँ प्रत्येक आदमी किसी न किसी रूप में उत्पादक हो। प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता है इसलिए उसे उत्पादक भी होना चाहिए। यदि उसे एक अच्छा और प्रभावकारी उत्पादक बनना हो तो उसे अपना काम (वर्क) अच्छी तरह जानना चाहिए। इसके लिए उसको सीखना चाहिए। हमारे शारीरिक, बौद्धिक और वैचारिक सभी प्रकार के प्रशिक्षण का यही उद्देश्य होना चाहिए। शरीर-श्रम करना कुछ हीन बात है इस विचार से अधिक इस देश का नुकसान और किसी चीज ने नहीं किया है। शरीरश्रम से अधिक उपयोगी आपके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अधिक कोई सुन्दर चीज नहीं है।"

हुसेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन : प्रधानमंत्री की स्वीकारोक्ति :

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा (बुनियादी तालीम) की योजना उत्पादक कार्य पर ही आधारित है। सेवाग्राम में, जहाँ उन्होंने और उनके अनेक साथियों ने एक

'समग्र शिक्षा' पद्धति का विकास किया, इन सिद्धान्तों के आधार पर गांधीजी ने अपने प्रयोगों से जो मूल्यवान अनुभव प्राप्त किये वे 'कार्यानुभव' (वर्क एक्सपीरिएन्स) के लिए भी प्रयोग को आरम्भ करने के लिए सर्वोत्तम आधार है। सन् १९७२ के अक्टूबर की १४, १५, १६ तारीखों में सेवाग्राम में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन हुआ जिसका उद्घाटन भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया और अध्यक्षता अखिल भारत नयी तालीम समिति के अध्यक्ष, गुजरात राज्य के तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायणजी ने की। देशभर से बुनियादी शिक्षा के काम में लगे हुए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी संख्या के साथ-साथ कई राज्यों के शिक्षा मंत्री, केन्द्र के उप शिक्षा-मंत्री, अनेक विश्वविद्यालयों के उप-कुलपति और अन्य कई शिक्षा शास्त्रियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया था। श्रीमती गांधी ने अपने उद्घाटन भाषण में दुःख के साथ यह बात बताई कि 'हम पिछले २५ वर्षों में अपने ब्रिटिश शासकों के द्वारा हमें दी गई शिक्षा पद्धति ही देश में चलाते आए हैं।' उन्होंने कहा 'हमारी शिक्षा जीवन से विच्छिन्न हो गयी है। यह बच्चे के विद्यार्थी जीवन से अलग है। सारे संसार में अब तक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रगति हुई है इस शिक्षा का उससे भी कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। श्रीमन्जी ने बिलकुल सही कहा है कि शिक्षा का दुनिया में होनेवाले परिवर्तनों से, समुदाय में काम से और परिवार में बच्चे के जीवन से गहरा सम्बन्ध होना चाहिए। इसलिए भावी शिक्षा के हमारे कार्यक्रम में समाजोपयोगी वास्तविक श्रम का अन्यतम ध्यान होना चाहिए।'

सम्मेलन की राय :

सामाजिक न्याय और प्रगति के साथ शिक्षा को जोड़ने के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार करने के बाद सम्मेलन सर्व-सम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में शिक्षा आर्थिक प्रगति और विकास के साथ जोड़कर समाजोपयोगी उत्पादक क्रियाओं के माध्यम से दी जानी चाहिए।'

अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग की राय : एकांगी सुधार काफी नहीं

१९७२ में यूनेस्को के द्वारा शिक्षा और विकास पर नियुक्त अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा आयोग भी अपनी रिपोर्ट 'आज और कल की दुनिया के लिए शिक्षा' में भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है। उन्होंने इस विचार के समर्थन में शिक्षा व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तनों की सिफारिश की है। आयोग कहता है कि अब "वर्तमान परिस्थितियों में भविष्य के लिए अत्यधिक संभावना को ध्यान में रखकर और अभी तक प्राप्त अनुभवों के आधार पर बड़े से बड़े एकांगी सुधार काफी नहीं होंगे। हमको शिक्षा के सम्पूर्ण ढाँचे और विचार में ही बुनियादी विकल्पों की दृष्टि से खोज करनी चाहिए।" रिपोर्ट में कहा गया है कि 'इस प्रकार की महत्वपूर्ण खोजों में सामान्य शिक्षा को इतना व्यापक बनाने का विचार भी शामिल है ताकि तकनीकी, सामाजिक

और आर्थिक और अन्य व्यावहारिक ज्ञान भी उसमें निश्चित रूप में शामिल किया जा सके। सामान्य प्रकार से वैज्ञानिक, टेकनिकल और व्यावहारिक शिक्षा के विभिन्न प्रकारों में आज के रूढ भेद समाप्त किए जाने चाहिए और प्राइमरी से लेकर सेकेंडरी तक शिक्षा को व्यवहारिक और श्रमाधारित होने के साथ ही सैद्धान्तिक और तकनीकी होना चाहिए। यदि सामान्य शिक्षा को सही अर्थों में सामान्य होना है तो तकनीकी शिक्षा का विकास होना चाहिए और यदि सामान्य विषयों की पढाई का पूर्ण शैक्षिक मूल्य प्राप्त करना हो तो हमें बौद्धिक और शारीरिक प्रशिक्षण को अध्ययन और काम के समवाय के रूप में समन्वित करने पर सतर्कता से ध्यान देना होगा।

व्यावहारिक जीवन और काम के लिए तैयारी की दृष्टि से शैक्षिक क्रियाओं को युवा लोगों को कोई ट्रेड अथवा व्यवसाय देने के बजाय उनको काम की और उत्पादन पद्धति की विकसित होनेवाली परिस्थितियों के साथ निरन्तर चलने और विकसित होने के लिए स्वयं ही विभिन्न प्रकार के काम उठाने के लिए सक्षम बनाने पर अधिक जोर देना चाहिए। इसे रोजगार में अनुकूलतम गतिशीलता और व्यवसायिक स्थानातरण को सुविधाजनक बनाने में मददगार होना चाहिए।"

शिक्षा के अनिवार्य तत्व के रूप में अब काम के महत्व को संसार-व्यापी स्वीकृति मिल चुकी है। मानव विकास में काम के महत्व के इस स्पष्ट चित्र के लिए हमें मार्क्स इंजिल्स और लेनिन जैसे साम्यवादी विचारकों, गांधीजी, कुमारप्पा और विनोबाजी जैसे सर्वोदय विचारकों और टालस्टाय, मम्फर्ड, फोगराती, ड्यूवी और डूविन जैसे पश्चिमी विचारकों का ऋण स्वीकार करना चाहिए। मानव-व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास की दिशा में काम के योगदान की आवश्यक परिस्थितियों के बारे में ये सारे विचारक भी अपने भिन्न और अनेक दृष्टिकोणों के बावजूद एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि —

(१) काम वास्तविक होना चाहिए और उत्पादन की वास्तविक परिस्थितियों में किया जाना चाहिए।

(२) काम में विभिन्नता के फलस्वरूप श्रमिकों की अधिकतम संभाव्य परिवर्तनशीलता को सामाजिक उत्पादन के जगतिक नियम के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

(३) काम समाजोपयोगी और उत्पादक होना चाहिए अर्थात इसके माध्यम से न केवल हमारी अद्भूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो अपितु इस समुदाय के सामाजिक स्वास्थ्य में सकारात्मक योगदान भी करना चाहिए।

(४) इसे उत्पादन में सम्मिलित तकनीकों और विज्ञान से कार्यकर्ता को अच्छी तरह से परिचित करना चाहिए।

'शिक्षा में काम' नही, 'काम ही शिक्षा':

डयूवी ने खेल और काम के बीच सकारण स्पष्ट भेद किया है। गाधीजी ने चरित्र निर्माण और काम के नैतिक पहलू पर जोर दिया है कि यह केवल तभी हो सकता है जब कि काम वास्तविक हो और अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो। इसलिए उन्होंने उत्पादक क्रियाओ के माध्यम से स्वावलम्बन को बुनियादी शिक्षा की कसौटी माना है। शेपोलेकों (Shapovalenko) और बीसवीं साम्यवादी कांग्रेस के शिक्षा पर निबन्ध में छात्रो के लिए समाजवादी उत्पादन की वास्तविक परिस्थितियों के साथ परिचित होने पर जोर दिया गया है। इसलिए हमारे विद्यालयो में काम का अर्थ हफ्ते मे एक या दो घंटे के 'विषय के रूप में काम' करना नहीं है। इसके विपरीत हमें छात्रो के लिए काम की वास्तविक परिस्थिति के अन्तर्गत सम्पूर्ण और निश्चित उत्पादक कार्यों का विकास करना होगा। बाकी तीन आवश्यक पहलुओ की पूर्ति भी केवल इसी तरह हो सकती है। जैसे डयूवी ने कहा था कि छात्र उत्पादन की वास्तविक परिस्थितियों में विभिन्न कौशलो (स्किल्स) के विकास में स्वयं को सम्मिलित कर किसी एक काम (प्रोजक्ट) को पूरा करते हुए 'शिक्षामें सम्पूर्ण' के सिद्धान्त से मन शारीरिक सतुष्टि प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार विभिन्न व्यवसायों में काम करने के साथ-साथ छात्रो को विभिन्न इकाइयो को पूरा करने में सहकारी प्रयासो की आवश्यकताओं का अधिकतम अनुभव होता जायेगा। सामान्य परिस्थितियो में तो वे अपने परिवार अथवा विद्यालय समुदाय के लिए काम करते हैं। किन्तु वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि छात्रो का किसी समाजोपयोगी काम के लिए प्रोत्साहन देकर आज के व्यापारिक दृष्टिकोण से उत्पादन करने के मूल्य से भिन्न एक समाजवादी समाज के लिए नये मूल्यों का विकास करने मे सहायता दी जाय।

गाधी जी की मौलिक दृष्टि :

मानव विज्ञान की दृष्टि से कहा जाय तो केवल अपने लाभ अथवा व्यापारिक दृष्टिकोण से काम करने की यह प्रवृत्ति अभी हाल का ही भटकाव है। सभवतः ३०० वर्ष पुराना। इससे पहले समूह के लिए, जिसमें वह स्वयं भी शामिल है, उत्पादन करने की प्रवृत्ति मनुष्य की अत्यन्त पुरानी प्रवृत्ति रही है जिसे आज फिर से पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

इस दृष्टि से गाधीजी की दृष्टि मौलिक और साफ थी कि विद्यार्थियो को प्रत्येक किये जाने वाले काम के कार्य-कारण सम्बन्धो की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए तथा उससे शैक्षिक उद्देश्यो की पूर्ति होनी चाहिए। मार्क्स, लेनिन, डयूवी और फ्राम जैसे लोग भी भिन्न दृष्टिकोणो से इसी निष्कर्ष पर आए और उन सबने केवल दोहराये जाने वाले यांत्रिक काम धधे को समाप्त करने पर जोर दिया। इसके अलावा समाज-

वादी समाज की कल्पना तो यह है कि उसमें श्रमिक अथवा कार्यकर्ता नीचे से ऊँची तकनीक तक क्रमश: पहुँचता जाएगा ताकि उत्पादन क्रिया के तेज विकास के साथ-साथ उसके काम के घटे कम हो सके और वह सार्वजनिक मामलो में अधिक भाग लेने के लिए स्वतन्त्र रह सके।

क्योकि शिक्षा के माध्यम के रूप मे समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की परिस्थितियो का विकास केवल 'वास्तविक काम' की स्थितियो मे ही हो सकता है इसलिए उत्पादक कार्यको पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य हिस्सा बनाने के साथ साथ यह बहुत आवश्यक है कि ग्रामीण और शहरी औद्योगीकरण का एक समन्वित ढाँचा खडा किया जाय। शहरी क्षेत्रो में उद्योगो और कारखानो को युवको की व्यावसायिक (Vocational) दक्षता के लिए शिक्षित और प्रशिक्षित करने में अधिकतम हिस्सा लेना चाहिए।

उद्योगों तथा कारखानों का शैक्षणिक दायित्व :

ऊपर जिस अतरराष्ट्रीय शिक्षा आयोग का जिक्र आया है उसने भी अपनी रिपोर्ट में शिक्षा के विकास में विद्यालयों के अलावा अन्य दूसरी प्रकार की सस्थाओ के परस्पर सहयोग पर जोर दिया है।

आयोग ने कहा है कि "अब हमें व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण विद्यालयों का विकास सेकेडरी शिक्षा पद्धति के अनुरूप करना चाहिए। वे जो कुछ सिखाते हैं उसे प्रशिक्षण की वास्तविक जगहो पर वास्तविक प्रशिक्षण के द्वारा सिखाया जाना चाहिए और उसे पुन शिक्षा और व्यावसायिक ट्रेनिंग के पाठ्यक्रम के माध्यम से व्यापारिक, औद्योगिक और कृषि सस्थाएँ अधिकतम 'शैक्षिक कार्य' करेगी। टेक्निकल ट्रेनिंग केवल और बुनियादी रूप से भी विद्यालयो की जिम्मेदारी नही होनी चाहिए। इसमें विद्यालय, व्यापार और दूसरे धधा का सहकार होना चाहिए। विद्यालय से बाहर की क्रियाओं के लिए शिक्षा-शास्त्रियो, उद्योग और व्यापार के नेताओ, श्रमिको और सरकारो को इस उद्देश्य के लिए प्रत्यक्ष सहकार करना चाहिए। शिक्षा की नयी बढ़ती हुई जिम्मेदारी की दृष्टि से जब उसे दूसरी सस्थाओ के, खासकर जो सस्थान विद्यालयों के द्वारा प्रशिक्षित लोगो को काम देते हैं उनके, सहकार की आवश्यकता है। अभी अनेक मामलो मे, व्यापारिक कपनियो और शिक्षा सस्थानो में, चाहे वे निजी अथवा सार्वजनिक कैसे भी हो, वर्तमान खाई समाप्त की जानी चाहिए क्योकि समूची शिक्षा पद्धति में इनका, खास कर सार्वजनिक सस्थानोका, अत्यधिक महत्व है। उनका काम केवल श्रमिका को ट्रेनिंग देना ही नही होना चाहिए बल्कि तकनीशनो और शोधकर्ताओं को हर सभव प्रशिक्षण देना भी उनका काम है। जहाँ तक शिक्षा को देश की अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप स्वरूप देने का प्रश्न है इसके लिए आवश्यक है कि उद्योग और शिक्षण सस्थाएँ मिलकर काम करें।"

उच्च शिक्षा पर गांधी जी के विचार :

इस सम्बन्ध में उच्च शिक्षा के बारे में गाधीजी के विचार ध्यान देने योग्य हैं जो उन्होंने ३१ जुलाई १९३६ के 'हरिजन' में लिखे। उन्होंने लिखा "मैं कालेज-शिक्षा में क्रांति करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ सम्बद्ध करना चाहता हूं। इंजीनियरिंग और अन्य मेकेनिकल विषयों के लिए डिग्रियाँ हो सकती हैं किन्तु वे सब विभिन्न उद्योगों से जुड़े हुए रहेंगे और उन्हें अपनी आवश्यकता के लिए स्नातकों की ट्रेनिंग पर स्वयं खर्च करना होगा। इस प्रकार उदाहरण के लिए टाटा (उद्योग) से यह अपेक्षा की जाएगी कि वे राज्य की देखरेख में इंजीनियरिंग ट्रेनिंग के कालेज चलायेंगे। उसी प्रकार अपनी आवश्यकता की दृष्टि से मिल असोसियेशन भी इस प्रकार के ट्रेनिंग कालेज चलायेंगे। अन्य उद्योगों और व्यापार आदि को भी अपने-अपने कालेज चलाने होंगे।"

ग्रामस्वराज्य नयी शिक्षा का सही अंत प्रसूत आधार

ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगीकरण का एक अंत प्रसूत ढांचा खड़ा करने की आवश्यकता है। उसमें क्रम से और नियोजित ढंग से मध्यवर्ती और विकसित टेक्नालाजी के छोटे छोटे केन्द्रों की स्थापना करनी होगी। इसका अर्थ यह है कि इस दृष्टि से खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रम को पूरी तौर पर पुनर्गठित करना होगा। यातायात, खरीद और बिक्री की सुविधाएँ तथा सामान्यतः शक्ति (बिजली) की सुविधाएं प्रदान करनेवाली छोटी छोटी ग्रामीण औद्योगिक इस्टेटें कायम करना एक उपाय हो सकता है। ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य की भूमिका का स्वीकार इसके लिए एक आदर्श स्थिति प्रदान कर सकता है। किन्तु जहाँ ग्रामदान नहीं हुए हैं, अभी काफी समय तक गांवों की विशाल संख्या शायद ग्रामदान के कार्यक्रम से अछूते ही रह सकती है, वहाँ भी गांवों के लोग परस्पर सहकारी उत्पादन के कार्यक्रमों के लिए संगठित हो सकते हैं। खादी ग्रामोद्योग आयोग दस्तकारी बोर्ड हैंडलूम बोर्ड विभिन्न राज्यों में लघु-उद्योग संगठन और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं को इस प्रकार की ग्रामीण औद्योगिक इस्टेटों के साथ समन्वित किया जा सकता है।

विद्यालयों में क्राफ्ट्स की लघु उत्पादक इकाइयां हों

विद्यालयों में भी समाजोपयोगी उत्पादक क्रियाओं की दृष्टि से सम्बन्धित ट्रेड अथवा क्राफ्ट की छोटी छोटी उत्पादक इकाइयाँ कायम की जा सकती हैं। किसी सक्षम क्राफ्ट के तज्ञ की देखरेख में इस प्रकार की इकाइयाँ विद्यालयों और छात्रों के सहयोग से कायम की जा सकती हैं जो कि पहले सरल क्राफ्ट से आरम्भ कर धीरे धीरे हर स्तर पर अधिक जटिल क्राफ्ट्स में तज्ञता प्राप्त कर सकेंगे। उदाहरण के लिए बर्तन निर्माण की कला में हम साधारण छोटे छोटे बर्तन, प्याले आदि से आरम्भ कर

धीरे धीरे चक्र के उपयोग के द्वारा अधिक सुन्दर वर्तन बनाने की ओर अग्रसर हो सकते हैं। प्रत्येक स्तर पर बनाया गया सामान उपयोगी, कलात्मक और सौन्दर्य की दृष्टिसे उपयोगी बनाया जा सकता है। दूसरे उत्पादनो पर भी यह वात लागू हो सकती है। अभी तक इस दिशा मे मुख्यत भोजन, कपडा अथवा आवास की प्राथमिक आवश्यकताओ को पूरा करन की दृष्टि से विद्यालयो में कही कुछ उत्पादन-कार्य हाथ मे लिए गय है। किन्तु सास्कृतिक और शैक्षिक आवश्यकताओ की दृष्टि स भी काम हाथ में लेने चाहिए। सामाजिक उपयोगिता की सेवाओ अथवा सामुदायिक आवश्यकताओ, जैस सडक बनाना, नहर खोदना, भूमि सरक्षण, भूमि की पुनर्प्राप्ति वृक्षारोपण आदिको उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योकि इस प्रकार की क्रियाओ के माध्यम स विद्यालयो और छात्रो का समुदाय और उसके हित के साथ घनिष्ठ तादात्म्य स्थापित करन में मदद मिलेगी। इसके अलावा विद्यालयो को सस्ते अनाज की दूकानें, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और अपनी क्षमता के अनुसार एस ही अन्य सामाजिक उपयोगिता के कार्यो मे भी अपन को शामिल करना चाहिए।

पाठकों के लिये महत्वकी सूचना

अखिल भारत नयी तालीम समिति की गत २ दिसम्बर को सेवाग्राम की बैठक में यह निश्चय किया गया है कि नयी तालीम का एक अंश अंग्रेजी भाषा में भी हो। दक्षिण और उत्तर-पूर्वी भारत के अनेक मित्रों ने इसके लिये आग्रह किया था। इससे आशा है अब नयी तालीम का और भी विस्तार करने में मदद होगी। हर अंग्रेजी लेख का सारांश हिन्दी में और हर हिन्दी लेख का सारांश अंग्रेजी में होगा। इससे हिन्दी और अंग्रेजी के दोनों ही पाठकों को लाभ होगा और वे एक दूसरे के विचारों से परिचित हो सकेंगे। आशा है हमारे पाठक इसका स्वागत करेंगे।

— संपादक

डा० मार्गेट मीड

वर्तमान शिक्षा-पद्धति : अनुवर्तन का फैलाव :

(नीचे हम नयी तालीम के पाठकों के लिये विश्व विख्यात् मानवशास्त्री डा. श्रीमती मार्ग्रेट मीड द्वारा नेहरू स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत गत १३ नवम्बर ७३ को नई दिल्ली में दिये गये भाषण का साराश दे रहे हैं। अमरीका में जन्मी और विश्व से सदियों से दूर फेंके गये मानव समुदायों के बीच, उनके सुख-दुख में साझीदार बननेवाली इस विदुषी महिला के, जो आज संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, विचार उन लोगों को निश्चय ही आकर्षित करेंगे जो कि आज के मति-भ्रम (फ्रस्टरेसन) में से कोई मार्ग ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं। डा. मीड ने आज की शिक्षा पर जो प्रहार किया है वह आशा है शिक्षा के आज के मालिकों को कुछ विचार करने के लिए प्रेरित करेगा।

— सम्पादक)

मानवशास्त्र का योगदान

मानवशास्त्र वह मानव विज्ञान है, जिसमें हमारे छात्र आधुनिक जगत के प्रभावों से दूर पृथक्कृत समुदायों के बीच रहते और काम करते हुए समस्त मानव जाति के बारे में चिंतन करते और सीखते हैं। किन्तु अब हम इस प्रकार सीखने-समझने के बाद मनुष्यों के व्यापक समुदाय के बारे में चिंतन की ओर मुड रहे हैं। समूचे ग्रह-समुदाय के बारे में हमें जो भी सूचनायें मिल सकी है, उनसे अब यह समझना आसान हो गया है कि समूची मानव जाति एक ही है और प्रत्येक मनुष्य वह सब कुछ, जो कि किसी भी मानव समुदाय ने विकसित किया है अथवा खोजा है, सीख सकता है। इसलिए मानवशास्त्र विज्ञान और दर्शन तथा कला और मानव विज्ञानों के आनेवाले समन्वय की दिशा में काफी योगदान कर सकता है।

यद्यपि मनुष्य जाति के सभी महान् विचारकों ने अब यह जान लिया है कि हमें मानव जाति को एक मानकर चिंतन करना चाहिये किन्तु फिर भी हमने अभी तक केवल अपने इस ग्रह की ही खोज की है और खासकर दूसरे विश्व युद्ध के बाद से हम एक अच्छे दार्शनिक की भांति, कि हम सब एक है, इसकी खोज में, दूर-दराज के पहाड़ों,

और घने जंगलों में रहने वाले मनुष्यों तक ही पहुँच सके हैं। किन्तु चन्द्र-यात्रा के बाद जब हमने चन्द्र-तल पर पैर रखा और वहाँ से अपनी इस धरती को देखा तो पता लगा कि हमारी यह पृथ्वी कितनी छोटी, अकेली, कमजोर और असुरक्षित है। हमें अब अपने इस छोटे से ग्रह की समस्याएँ स्वयं हल करना सीखना होगा और इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इसलिए हमारी तरफ से अब अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

प्रत्येक सभ्यताका मूल्य है:

प्रत्येक सभ्यता ने छोटे समूहों से बडे समूहों की तरफ जाने और मनुष्यों को एक साथ लाने की दिशा में असाधारण आविष्कार किए हैं। इसके ही कारण आज हम अनदेखे लोगों को अपने साथ रखने के राजनीतिक आविष्कार कर सके हैं। जिसके फलस्वरूप आज हम लाखों करोडों लोगों को अपना रक्त-सम्बन्धी जैसा समझने के योग्य बन सके हैं। बाह्य अन्तरिक्ष की नवीन खोजों ने पृथ्वी को घेरने और उसकी रक्षा करने वाले वातावरण के बारे में हमें नयी-नयी जानकारियाँ प्रदान की हैं और साथ ही भागीदारी का एक ऐसा नया क्षेत्र प्रदान किया है जिसमें अब कोई बाटने-वाली सीमायें या एक दूसरे को अलग करनेवाली बाधाएँ नहीं हैं। आज तक धरती के सागरों, महानदियों और पर्वतमालाओं ने धरती के मनुष्यों को एक दूसरे से अलग किया था और उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध अपने अपने क्षेत्र, अपने अपने पुरखों की कब्रों और अपने बच्चों के भविष्य के लिए लडने के लिये खडा किया था। किन्तु अब हवा का वातावरण ऐसा है कि जहाँ हम सब एक साँस लेते हैं। अब यदि किसी भी राष्ट्र के कारण से यह हवा जहरीली होती है तो सबको एक साथ ही दुख उठाना होगा क्योंकि इसके विनाशकारी जहरीले तत्वों से हमारा बादलों का सुरक्षा-कवच नष्ट हो जायेगा और इस धरती पर जीवन समाप्त हो जायेगा। इसलिये हमारे ग्रह समुदाय के बारे में इस नये ज्ञान ने हमें, हम जो कुछ हैं उनसे भी, अधिक ज्ञान प्रदान किया है और फलत इससे हम परस्परावलम्बन के नये नये तरीकों को क्रियान्वित करने के लिए नये नये माध्यम भी प्राप्त कर सके हैं। युद्ध मनुष्य की उन दूसरे मनुष्यों को, जिन्हें हमने कभी भी अपने समान ही मनुष्य, शिकार हुये या शिकार करनेवाले, पूरे नागरिक मित्र, हमारे भाई या बहन अथवा हमारे मूल्यवान पडोसी जैसा कुछ भी नहीं समझा, जाने बिना ही उनके बारे में एक धारणा बना लेने की क्षमता पर आधारित होता है। किन्तु अब हम चाहें तो इस कल्पना से एक कदम आगे जा सकते हैं और इससे ही हमारे लिये यह मानना सम्भव हो सकेगा कि भारत, अमरीका, ब्रिटिश-कामनवेल्थ, सोवियत रूस या चीनी गणराज्य में प्रत्येक मनुष्य भी हमारा साथी है। और वास्तव में यह कल्पना की साहसी उडान है किन्तु अब यह चिंतन शुरू होना

चाहिये। यह हद कर सकते हैं, कि इन धरती पर रहने वाले सभी मनुष्यों का भाग्य और भविष्य हमारे भाग्य और भविष्य के साथ भ्रमातीत तरीके से जुड़ा हुआ है।

हमारी आकांक्षा की नवीन सम्भावनायें :

यह हमारी आकांक्षा है। हम इस आकांक्षा को एक सच्ची व्यावहारिक सम्भावना बना सकते हैं क्योंकि आज के सचार साधनों ने दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक पहले एक शहर के एक किनारे से दूसरे किनारे तक कोई खबर फैलाने में लगे समय से कहीं अधिक तेजी से खबर फैलाना सम्भव बना दिया है। भारत जैसे विशाल देश में सारी जनता तक टेलीविजन सेवाएँ फैलाने का निश्चय इस बात का उदाहरण है कि आज हमारे सचार के नये साधनों ने किस प्रकार से हमारे लिये नये विकसित होनेवाले विश्व समुदाय में दूर दराज के देहातों के जीवन के साथ भी भागीदारी करना सम्भव कर दिया है।

किन्तु जब कि एक तरफ तो हमारे साझ सचार साधनों, हमारे वायु मार्गों, टेलीविजन उपग्रहों, धरती और मौसम की जाँच करनेवाली घड़ियों आदि ने हमें नई नई तकनीकी रज्जुओं से बाँध दिया है, इसके साथ ही दूसरी तरफ हमें ऐसी नयी राजनैतिक तकनीकों का भी विकास करना होगा जिससे कि हमारे लिए एक दूसरे के साथ सामन्जस्य के साथ रहना, इस ग्रह (पृथ्वी) के अत्यन्त सीमित और पूर्ति न किये जा सकनेवाले साधन स्रोतों का संचयन और सुरक्षा करना, हमारी धरती, जल और वातावरण पर शक्ति-उत्पादन के नये तरीकों से पड़नेवाले दबाव को कम करना सम्भव हो सके। एक नये सामंजस्यपूर्ण विश्व के निर्माण के लिये हमें हर जाति और राष्ट्र की प्रतिभा का, और खासकर उन महान् समाजों की प्रतिभा का जिन्होंने एक दूसरे के प्रति पहले से वैर भाव रखने वाले लोगों को भी एक साथ रहकर एकता प्राप्त करने के लिये सक्षम दार्शनिक विचारों और सामाजिक परम्पराओं का आविष्कार किया है, लाभ लेना होगा। प्रत्येक महान् समाज ने अपने अपने भिन्न भिन्न तरीकों से, जैसे कि संघ बनाकर, केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण के द्वारा, मतभेदों को एक पूर्ण के परस्पर पूरकों के रूप में मानकर चलनेवाले और मनुष्यों को एक सहोदरपन की भूमिका देनेवाले धर्मों के द्वारा, आवास-प्रवास की भिन्न भिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा, व्यावसायिक विभेदीकरण अथवा शिक्षण की समतावादी समरूपता के द्वारा या फिर कुलीनतन्त्र, अल्पतन्त्र, समाजवादी या साम्यवादी और लोकतान्त्रिक राजनीतिक पद्धतियों के द्वारा, यह काम किया है। इनमें से प्रत्येक पद्धति और प्रत्येक प्राचीन समाज, और खासकर एशिया के समाजों के हर युग, ने मानव जाति को बौद्धिक योगदान किया है और आज के लिये नये आवश्यक सामाजिक आविष्कारों के लिए हम इनसे लाभ ले सकते हैं। हम यह याद रखें कि प्रत्येक प्राचीन, अथवा अर्वाचीन चेतना पद्धति भी, जिसमें यद्यपि [illegible] एकांगी पर अपूर्ण चेतना को रहे

हैं, एक व्यावहारिक पद्धति है। इनमें से हर एक पद्धति किसी न किसी विशिष्टता में, इतिहास के एक विशेष काल में, पैदा हुई है और प्रत्येक ही यह मानती है कि दूसरे समुदायों के लोग दुश्मन हैं और उन्हें अपने अपने धर्म या मार्ग में बदलना है या उन पर विजय प्राप्त करनी है या उनका समूल नाश करना है। हम अभी तक कोई ऐसी धार्मिक या राजनीतिक पद्धति का विकास नहीं कर सके हैं जो कि इस ग्रह के सभी लोगों के लिए एक दूसरे को या इस धरती को ही नष्ट किये बिना साथ रहना सम्भव बना सके। वास्तव में मैं एक ऐसी दुनियाँ की कामना करती हूँ जहाँ पर मनुष्य कहीं भी जाने-आने और रहने के लिए स्वतन्त्र हो और जहाँ पर हर मनुष्य अपनी विशिष्टता, उदाहरण के लिये आज अंग्रेजी भाषा, कायम रखते हुए भी कहीं भी कोई हुनर सीख सके।

एक नई दृष्टि की आवश्यकता :

मैंने अब तक अनेक छोटे-छोटे समुदायों का काफी विस्तार के साथ अध्ययन किया है और अपने देश की आवश्यकताओं और दूसरे देशों के प्रति समझदारी के साथ जो समवाय साधन का प्रयास किया है इस सब पर स मैं आगे उठाये जाने की दृष्टि से कुछ सुझाव रखना चाहती हूँ। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक संस्कृति को सम्बन्धित समाज की, मानव जाति की सब तो नहीं किन्तु कुछ, क्षमताओं से युक्त एक समग्र जीवन-विधि के रूप में देखने की आवश्यकता है। यदि हम प्रत्येक समाज की बड़ी से बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धियों का समग्र करें तो पता लगेगा कि फिर भी इस धरती पर मनुष्य के समूचे काल में बहुत सारी मानव क्षमतायें बिना उपयोग किये ही रह जाती हैं। (यह कहा जाता है कि अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति भी अपनी प्रतिभा (मस्तिष्क-शक्ति) का केवल दसवाँ भाग ही उपयोग में ला सकते हैं और बाकी नौ भाग अप्रयुक्त ही रह जाते हैं।) किन्तु जैसे प्रत्येक सभ्यता का जन्म विभिन्न छोटे और पुराने समुदायों के परस्पर सम्पर्क के फलस्वरूप ही हुआ है इसलिए यदि हम वर्तमान समाजों में भी चेतन होकर सीखने का प्रयास करें तो हम हमारी अब नयी समझदारी की इस नयी दुनिया के अनुकूल विज्ञान पर आधारित नये आविष्कारों और नयी ग्रहीय (प्लेनटरी) मानवता की सांस्कृतिक विधियों (स्वरूपों) की आशा कर सकते हैं।

दुराग्रहों से मुक्ति :

किन्तु यह तभी हो सकता है, जब कि कोई भी वर्तमान समुदाय किसी भी दूसरे समुदाय को अपने विशिष्ट ढंग के अनुकूल बनने के लिये विवश न करे। वह दूसरे समुदाय का सम्मान करे और इस प्रकार के सम्मान में यह बात भी शामिल है

कि समुदाय एक दूसरे को छोटे या बड़े, धनी या गरीब, नये या पुराने के बजाय उनकी क्षमताओं और उनके अतीत अथवा भविष्य की उपलब्धियों के लिये उनके दायित्वों में परस्पर पूरक की दृष्टि से देखें।

प्राचीन भारतीय पद्धति :

यहाँ पर हम विभिन्न प्रकार के हुनर और व्यावसायिक भेदों को परस्पर पूरकों के रूप में एक साथ रखने की प्राचीन भारतीय पद्धति की ओर देख सकते हैं। समाज की जटिलता के साथ ही समाज के सदस्यों में अपने दायित्वों और उन जीवन विधियों को भी, जिनमें वे स्वयं नहीं रहते, अपने में शामिल करने की क्षमता बढ़ती है।

केवल तकनीकी ही नहीं .

हमें भविष्य में प्रत्येक मनुष्य के अन्दर वे दूसरे पूरक गुण भरने सीखने होंगे जो कि अभी उनमें नहीं हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम मनुष्यों में फिर एक दूसरों को हीन भाव से या तिरस्कार की निगाह से देखने का या मनुष्य के अवमूल्यन का काम करें। कुछ लोगों की सारी आशायें नयी तकनीकी पर टिकी हैं। उनका विश्वास है कि तकनीकी में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने मात्र से ही हमारी समस्यायें हम हल कर सकते हैं।* किन्तु यह सम्भव नहीं है। आज की योरोपीय अमरीकी ढंग की यह शिक्षा पद्धति भी, जो सारी दुनियाँ में फैल गई है और यद्यपि सार्वभौम साक्षरता का आधार रही है, कोई पूर्ण आदर्श नहीं है। यह बन भी नहीं सकती है। यह अब स्वयं समाप्त हो रही है, यह सृजनात्मकता और विभिन्नता का नाश करती है और बालकों को तिरस्कृत की हद तक धकेल देती है। इसने सारी मानव आकांक्षाओं का मानकीकरण (स्टैन्डर्डाइजेशन) करके अनुवर्तन (कन्फर्मिटी) मात्र का फैलाव किया है। हमें जिस नये समाज की आवश्यकता है उसके लिये यह कोई आधार प्रदान नहीं करती है।

धर्म की सीमा है :

सभी महान् धर्मों ने जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य पर जोर दिया है और सब में गूढ़ महान् अर्थ हैं। फिर भी कोई भी धर्म दुनियाँ की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता, खासकर ऐसी दुनिया की जिसमें हम अभी तक भी एक समान जीवन के भागीदार नहीं बन सके हैं। भूतकाल में यदि एक सम्पूर्ण प्रायद्वीप भी नष्ट हो गया तो भी दूसरा मानव सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिये कायम रह गया है किन्तु आज ऐसा नहीं है। आज हमारा यह साझा वातावरण, जो अत्यन्त ही दुर्बल

---

* अभी जान गाल्टुंग के साथ सभी भविष्यशास्त्री और 'फ्यूचरशाक' के लेखक अल्विन टफलर जैसे लोग भी इसी विश्वास पर चल रहे हैं। —सम्पादक

और प्रदूषित हो गया है और जिसमें हम सब सांस लेते हैं, हमारे लिये असल में अभी तक अप्राप्त विकास के नये स्वप्न उपस्थित करता है। मुझे, जिसने उन लोगों को, जो कई पीढियो से एकदम अनक्षर थे और तकनीकी दृष्टिसे पिछडे थे, और जिन्हें मैंने आज अपनी विशिष्टता के साथ इस नयी दुनिया में आते देखा है, पूरा भरोसा है कि हम यह कर सकते हैं।

अब भी समय है :

अब अधिक समय नही है। हम जिस वातावरण में सांस ले रहे हैं वह खतरे मे है। हमारा यह ग्रह तकनीकी द्वारा प्रदत हमारे अविचारिक उपयोग के सघातों से टूट रहा है। आज तो उन असख्य नवजात शिशुओ की जो पहले कभी मर गये होते, किन्तु जो आज जी रहे हैं, चिंता करने वाले प्रौढों की भी अत्यन्त कमी हो गई है और एक सम्पूर्ण विनाशक युद्ध का भी खतरा अभी समाप्त नही हुआ है। किन्तु चूंकि परिस्थिति इतनी तीव्र है, क्योकि अब भी कई करोड लोग भूखे हैं, क्योकि तमाम बडे शहर औद्योगिक धुये की कफन की चादर के नीचे आवृत हो गये हैं, इसलिये यह और भी आवश्यक हो गया है, और मैं आशा करती हूँ, यह हो सकेगा, कि हम कोई न कोई हल ढूंढ लें। अब यदि और अधिक देर की गई तो हम कुछ भी नही कर सकते हैं। क्योकि समय चुक रहा है और हमें अपने बच्चा की चिन्ता है कि शायद कुछ बन सकेगे। इसलिये हुमारे लिये कोई हल ढूंढने के लिये काफा प्रेरणा बाकी है। इन नये उपाया मे प्रत्येक सस्कृति, यदि हमें एक नया विश्व बनाना हो तो, अपना विशिष्ट योगदान कर सकती है। यह उसे करना ही चाहिए।

(१७ नवम्बर '७३ के 'प्वाइन्ट आव व्यू' से साभार)

शिक्षा का उद्देश्य

ज्ञान संतुलित विकास की एक प्रक्रिया का नतोजा है। व्यक्तित्व का इस प्रकार का सतुलित विकास ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। बौद्धिक व्यावसायिकता में किसी प्रकारकी बाधा बने बिना निकट भविष्य में सभी प्रकार की शोधों का यही उद्देश्य होना चाहिये।

ए. एन. ह्वाइटहेड,
साइन्स एन्ड दि माडर्न वर्ल्ड

बुनियादी शिक्षा के प्रयोग :—

तमिलनाड में बेसिक शिक्षा

गांधी निकेतन, गांधीग्राम, मदुराई :-

गांधी जी ने जब रचनात्मक कार्यक्रम का और फिर बुनियादी शिक्षा का विचार देश के सामने रखा तो सारे भारत की ही तरह दक्षिणी प्रदेशों ने भी उसमें बहुत रुचि ली और यहाँ भी इसके लिये अनेक सस्थायें कायम की गईं। श्री जी व्यकटचलपति ने सन् १९४० में गांधी निकेतन की स्थापना को और इसके माध्यम से क्षेत्र में गांधी विचार के प्रचार के साथ ही ग्रामोद्योगों और बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षण की व्यवस्था करना इसका एक मुख्य लक्ष्य रखा गया। बुनियादी शिक्षा के विचार और कार्यक्रम को कार्य रूप देने के लिये तब सन् १९४६ में यहाँ एक बेसिक स्कूल की स्थापना की गई जिसे आरम्भ में क्षेत्र के एक बहुत ही अच्छे शिक्षाविज्ञ श्री तिरुच्चन गोडसे जी जैसे व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो गया।

समस्याओं से ही आरम्भ.

किन्तु उस समय की अंग्रेजी सरकार को यह काम पसन्द नहीं आया और जनता में भी इसके लिये पहले पहल कोई उत्साह नहीं था। उल्टे वे इसे पसन्द नहीं करते थे कि उनके बालक बालिकायें सब प्रकार के लोगों के साथ बिना किसी जाति मर्यादा के रहें और उस पर भी फिर उनसे शाला में,पेशाब, पाखाना जैसी चीजें उठाने का काम लिया जाय। किन्तु कुछ ही दिनों में लोगों को यह भी पता लग गया कि हमारी शाला में उनके बच्चे अन्य तरह की परम्परागत शालाओं के बच्चों से कहीं अधिक सावधान हैं, जिज्ञासु भाव और स्वेच्छा से व्यवस्था पूर्वक अपना काम करने में कहीं आगे बढ गये हैं। बालकों के कार्यकलापों से उन्होंने देख लिया कि हमारे बालक-बालिकायें एक नयी प्रकार की प्रतिभा से विकसित हो रहे हैं और इसका नतीजा यह

हुआ कि लोगो ने अपने बालक बालिकाओं को हमारी ही शाला में भेजने पर जोर दिया। फलतः आस पास को बोर्ड की हायर एलीमेन्टरी शालाएं तेजी से बन्द होने लगी। स्वतन्त्रता के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने हमारी शाला को तुरन्त मान्य किया और सन १९४८ में हमारी शाला को अभ्यास विद्यालय के रूप में मान्य करके सरकार ने यहां कल्लूपट्टी में ही एक राजकीय बेसिक ट्रेनिंग स्कूल कायम कर दिया।

छोटा आरम्भ

शाला का आरम्भ केवल ३० छात्रों और दो शिक्षकों को लेकर हुआ था और आज इसमें कुल आठ कक्षाओं और २९ विभागों (सक्सन)में कुल १०७२ छात्र और ३० अध्यापक हैं। आरम्भ में ही पहली कक्षा से ही तकली से कताई आरम्भ की गई जिसमें प्रत्येक छात्र को माह में कुछ निश्चित संख्या में तार कातने होते थे। पांचवी कक्षा के बाद बुनाई आरम्भ की गई। इसके साथ ही छात्र सफाई-काम, बागवानी भी करते थे। इसके अलावा आरम्भ से ही यहां पर आसपास के क्षेत्र को लेकर सांस्कृतिक शिक्षण और अध्ययन-यात्राओं का कार्यक्रम भी रखा गया है। शाला की सामान्य व्यवस्था में छात्र-संसद का बड़ा महत्व है जिसके चुनाव हर माह होते हैं। छात्र अपनी एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकालते हैं और प्रत्येक छात्र को खेत, वर्कशाप, और कक्षा में अपने काम को स्वयं की एक डायरी रखनी होती है। शाला में सारे शिक्षण कार्य का माध्यम शारीरिक और सामाजिक कार्य तथा क्राफ्ट है।

नाम परिवर्तन

किन्तु इधर संस्था के नाम में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता खड़ी हो गई। पिछले साल ही तामिलनाडु की डी एम के सरकार ने राज्य में सभी बुनियादी विद्यालयों और उत्तर बुनियादी विद्यालयों से बुनियादी नाम हटा देने का निश्चय किया और अब वे सभी केवल प्राइमरी और मिडिल स्कूल कहे जाते हैं। इस सम्बन्ध में पूछताछ करने पर सरकार ने कहा कि सरकार बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार करती है और उसके सभी गुणों का वह राज्य के सभी विद्यालयों में विस्तार करना चाहती है। अतः इस प्रकार से फिर विद्यालयों में कोई फर्क करने का प्रश्न ही नहीं होता और इसलिए केवल कुछ ही विद्यालयों को बुनियादी कहना उचित नहीं होगा। सभी विद्यालय एक ही नाम से जाने जायेंगे। इसलिये एक सरकारी सहायता प्राप्त संस्था होने से हमें गांधी निकेतन का नाम गांधी निकेतन मिडिल स्कूल करना पड़ा है। फिर भी बुनियादी शिक्षा की विशेष प्रवृत्तियां तो पहले की ही तरह चालू हैं। अभी क्राफ्ट छठवीं कक्षा से आरम्भ होता है और अध्यापक उसे एक प्रोजेक्ट के रूप में लेकर पूरा करने का प्रयास करते हैं। बागवानी और अन्य बातें भी पहले की ही तरह जारी हैं। हर बुधवार को शाला में एक सामूहिक प्रार्थना भी होती है।

नया विस्तार :

सन् १९५३ से यहाँ एक प्रायोगिक स्कूल के रूप में एक उत्तम बुनियादी स्कूल भी चलाया जा रहा है। उसका पाठ्यक्रम श्री स्व० आर्यनायकम् जी के परामर्श से तैयार किया गया था और यह उस समय तामिलनाडु का पहला उत्तम बुनियादी स्कूल था। बाद को इसे तत्कालीन तामिलनाडु की सरकार ने भी मान्य किया। इसमें व्यक्तिगत कपड़े में स्वावलम्बन की दृष्टि से चरखे पर कताई आरम्भ की गई। साथ ही कृषि को मुख्य क्राफ्ट के रूप में रखा गया। छात्रों ने इसमें बड़े उत्साह से काम किया है और दूसरे ही साल भोजन में १०४ प्र. श. स्वावलम्बन प्राप्त कर लिया। इसके साथ ही आश्रम में चलने वाले ग्रामोद्योगों को सहायक क्राफ्ट के रूप में लिया गया। सभी छात्र शाला में निःशुल्क पढ़ते हैं और भोजन पकाने सहित सभी काम स्वयं करते हैं। लगभग ३००० पुस्तकों का एक पुस्तकालय भी वे स्वयं ही चलाते हैं। शाला और आसपास के क्षेत्रों में सामयिक सांस्कृतिक कार्य और अन्य पर्व त्योहारों में भी वे भाग लेते हैं। हर छात्र को अपनी एक नियमित डायरी लिखनी होती है और इसी प्रकार से अपनी मासिक मूल्यांकन रिपोर्ट भी देनी होती है। आश्रम में आने वाले मेहमानों के साथ वे बैठकर अनेक चर्चायें करते हैं। मिडिल स्कूल की ही भाँति इसमें भी छात्र-संसद है जिनका हर माह सब से मत अथवा सर्वानुमति से वे स्वयं ही चुनाव कर लेते हैं।

लोकतांत्रिक शिक्षण

छात्र-संसद की बैठक देखने लायक होती है। खासकर उसमें प्रश्न-काल का समय बहुत ही रोचक होता है। उसी प्रकार से भोजनालय भी शिक्षण का एक बड़ा माध्यम होता है। वहाँ पर छात्रों के स्वास्थ्य का और आहार में कैलरी आदि का एक चार्ट टंगा रहता है। यह चार्ट वे स्वयं ही तैयार करते हैं। छात्र को अपनी डायरी भी लिखनी होती है। उनके बारे में शिक्षक भी उसी प्रकार से एक नोटबुक रखते हैं जिसमें छात्रों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल जो भी वे दर्ज करें वह सब भी छात्रों को दिखाया जाता है और उसके बारे में यदि आवश्यक हुआ तो छात्र के साथ फिर चर्चा भी की जाती है। इस प्रकार से शाला में बिना जाति अथवा किसी अन्य प्रकार के भेद भाव के एक सामुदायिक जीवन पद्धति का विकास करने का प्रयास किया जाता है।

सन् १९५६ में इस शाला के तीन साल पूरा होने पर राज्य सरकार ने फिर श्री आर्यनायकम् जी की ही अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति का गठन किया। उसके बाद शिक्षा विभाग ने आंतरिक मूल्यांकन में अंग्रेजी और दूसरे विषयों में ४०

प्र. श अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को एक पोस्ट बेसिक लीविंग सर्टिफिकेट (पी बी. एल सी) दिया जिसे फिर बिना अंग्रेजी पढ़े और उसमें उत्तीर्ण हुए भी सीनियर बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों में प्रवेश के लिये तथा खादी ग्रामोद्योगों के कामों में लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं के लिये मान्य किया गया। सन् १९६६ तक यह स्थिति बनी रही।

लोक प्रवाह और शिक्षा :

किन्तु लोग तो अपने बालक बालिकाओं को डाक्टर, वकील, इजीनियर आदि बनाना चाहते हैं। फिर सरकार ने पी बी एल सी पास किसी छात्र को आगे कारे ' ' प्रवेश की अनुमति तो दी नहीं थी। अत लोगों ने विभाग की ही स्वीकृति से आ र से केवल दो फर्लांग दूर ही पर एक बोर्ड सेकेन्डरी स्कूल खोल दिया। हमने सरकार से इस बारे में बातचीत की और तब फिर सरकार ने हमें भी इस रूप में काम करने की अनुमति प्रदान कर दी। अब हमारे छात्र भी सीनियर सेकेन्डरी लीविंग सर्टिफिकेट (एस एस एल सी) की परीक्षा में बैठ सकते हैं और इसमें भी हर साल हमारे छात्रों का प्र. श उत्तीर्ण होने वालों में बढ़ता ही रहा है। सन् १९७२ में इसमें हमारे १०० प्र श बालक उत्तीर्ण हुये हैं।

इसमें भी हर छात्र को इस नयी परीक्षा पास करने के बाद रोज ३० मिनट की कताई और ९० मिनट का शरीरश्रम करना अनिवार्य होता है। अब इसमें ४० प्र श छात्र रोज घर से आते हैं। छात्रावास में रहने वाले सामुदायिक और सहकारी कार्यों में पहले की ही तरह से भाग लेते हैं और शाला का दिन भर का काम तो सभी मा सहकारी ढ़ग से होता है।

छात्रों की न्याय सभा

इधर इसमें हमने एक नया प्रयोग आरम्भ किया है। हमने छात्रों की एक न्याय-सभा का भी गठन किया है जो छात्रों की दैनंदिन की समस्याओं को सुनती और उनका निराकरण भी करती है। हमारे इस विभाग के पुस्तकालय में अभी कोई ६००० पुस्तकें हैं जिसमें काम करने, अध्ययन करने और नोट लेने के लिये छात्र को एक घंटा अलग से दिया गया है। छात्रावास मे ९० मिनट की एक 'निरीक्षक सेवा' का प्रबन्ध भी किया गया है। तामिलनाडु में इस प्रकार से काम करने वाली यह एक मात्र संस्था है।

नयी तालीम : दिसम्बर, '७३
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

वर्ष : २२
अंक : ६
जनवरी , १९७४

आध्यात्म और विज्ञान का भेद काल्पनिक है :

★

चिरस्मरणीय मिलन :

★

सांगोपांग शिक्षा :

★

भारत अपनी दिशा पहचाने :

★

वर्ष : २२
अंक : ६
मूल्य : ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण २७३
आध्यात्म और विज्ञानका भेद काल्पनिक है २७७ विनोबा
चिरस्मरणीय मिलन २८४
सागोपाग शिक्षा २८८ डा० ज० सी० कुमारप्पा
विहार में शिक्षा की भावी दिशा २९१ डा० जयदेव
पांचवी पचवर्षीय योजना में शिक्षा २९६
शिक्षा में विश्व चिन्तन
भारत अपनी दिशा पहचाने ३०४ विल्फ्रेड वेलाक
बुनियादी शिक्षा के प्रयोग
स्वावलबी प्रशिक्षण विद्यापीठ सेवाग्राम ३०७
पुस्तक समीक्षा
एज्युकेशन आव दि फ्यूचर ३१० कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा
केरल नयी तालीम सघ रिपोर्ट ३१४ के० राधाकृष्ण मेनन

जनवरी, '७४

* 'नया तालीम' का वर्ष अगस्त स प्रारम्भ हाता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अक का मूल्य ७० पैसे है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ६

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना :

पिछले महीने राष्ट्रीय विकास परिषद् ने पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को अपनी सामान्य सम्मति दे दी और लगभग तिरपन हजार करोड़ के विकास-खर्च को मंजूर किया। अगले पाँच वर्षों में राष्ट्र की आमदनी हर साल ५.५%की रफ्तार से बढ़े यह लक्ष्य भी स्वीकार किया गया। इसी बीच योजना आयोग के एक सदस्य डा. मिनहास ने अपना इस्तीफा देते हुए आगाह किया कि पिछले अनुभव को देखते हुए यह लक्ष्य यथार्थवादी नहीं है और ४.५% प्रतिवर्ष से अधिक देश की आमदनी नहीं बढ़ सकेगी। किन्तु इस चेतावनी की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया और सभी मुख्यमंत्रियों ने योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रारूप के बुनियादी ढाँचे की प्रशंसा की।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य देश में गरीबी हटाना, आर्थिक समानता स्थापित करना और राष्ट्र को स्वावलम्बन की ओर ले जाना है। इन उद्देश्यों के बारे में तो कोई विशेष मतभेद होने की गुंजाइश नहीं है। किन्तु असली प्रश्न यही है कि क्या वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत ये मकसद हासिल किये जा सकेंगे? हमारे ख्याल से सब से बड़ा सवाल है चीजों की कीमतों को काबू में रखना। अगर इसी तरह अनुत्पादक योजनाओं पर फजूल खर्ची की जाती रही, सरकारी कर्मचारियों के वेतन और महंगाई भत्ते अधिक मात्रा में नकद दिये जाते रहे, हड़तालें जारी रहीं और चुनाव के लिये काले धन का चन्दा एकत्र किया जाता रहा तो न तो देश का उत्पादन बढ़ेगा और न गरीब जनता का ही स्थायी ढंग से कल्याण होगा। हम

अभी चाहते हैं कि देश के गरीब से गरीब लोगों का जीवन अधिक समर्थ और सुखी हो। प्रत्येक नागरिक को उत्पादक श्रम द्वारा अपनी आजीविका कमाने का अवसर प्राप्त हो और आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का भी प्रभाव बढ़। लेकिन इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये देश में सादगी, संयम, अनुशासन और ईमानदारी का वातावरण फैलाना अति आवश्यक है। यह वातावरण तभी बन सकता है जब ऊपर से आदर्शों की मिसालें पेश हों और सर्व-साधारण जनता के लिये प्रेरणा का स्रोत बनें। केवल भाषणों से कोई भी काम सिद्ध न हो सकेगा।

इसलिये हमें डर है कि यदि वर्तमान दूषित परिस्थिति ही कायम रही तो हमारी पाचवीं पचवर्षीय योजना की सफलता गहरे खतरे में पड जायगी और देश को बहुत कठिन परिस्थिति का सामना करना पडेगा।

पाँचवीं योजना और शिक्षा :

हमें इस बात का सन्तोष है कि पाँचवीं पचवर्षीय योजना में शिक्षा सम्बन्धी जो कार्यक्रम दिये गये हैं, वे शिक्षा-मंत्रालय द्वारा दी गई पहली योजना से काफी भिन्न हैं। सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार अब पाँचवी योजना के प्रारूप में इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि शिक्षा का सम्बन्ध आसपास की विकास-योजनाओं से बहुत घनिष्ठ हो और विद्यार्थियों के लिये इस प्रकार के पाठ्यक्रम बनाये जायें कि वे समाज-उपयोगी कार्यों में शीघ्रता से लग सकें। इस बात पर भी बल दिया गया है कि सामान्य कार्यों के लिये केवल माध्यमिक शिक्षा पर्याप्त मानी जाय और यूनिवर्सिटियों की डिग्रियों की आवश्यकता न पडे। यह भी निश्चित रूप से कहा गया है कि १०+२+३ की शिक्षा-पद्धति पूरे राष्ट्र में लागू की जाय और विश्वविद्यालयों में उन्हीं नवयुवकों को प्रवेश दिया जाय जो उसके लिये विशेष योग्यता रखते हों। सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा के बाद २ वर्ष के एसे विभिन्न पाठ्यक्रम हों जिनकी शहरों और देहातों में जरूरत हो और जिनको पूरा करने के बाद विद्यार्थी फौरन काम में खप सकें और स्वावलम्बी भी बनने की क्षमता रखें।

हमें इस बात की भी खुशी है कि इस प्रारूप में 'मॉडल' या 'कम्यूनिटी' विद्यालयों की योजना की जगह अब कुछ प्रायोगिक (Experimental) स्कूलों के खोलने की ही सिफारिश की गई है। इस प्रकार की प्रायोगिक संस्थायें काफी उपयोगी होंगी ताकि वे यह दिखा सके कि किस प्रकार शिक्षा और विकास योजनाओं का पारस्परिक सहयोग और अनुबंध स्थापित किया जा सकता है। जो अनुभव इन संस्थाओं में प्राप्त होगा वह सामान्यतः सभी स्कूलों के लिये लाभदायक सिद्ध होगा। किन्तु इस बात का अवश्य ख्याल रखा जाय कि इन प्रायोगिक स्कूलों पर इतना ही

खर्च किया जाय जितना मामूली तौर पर आसपास के दूसरे विद्यालयों पर देश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए किया जा सकेगा। यदि इन प्रायोगिक विद्यालयों पर जरूरत से ज्यादा खर्च किया गया तो इनका अनुभव सारे देश में नहीं फैलाया जा सकेगा और वे सिर्फ कुछ विशिष्ट सस्थायें बनकर रह जायेंगे। हम आशा करते हैं कि शिक्षा-मंत्रालय और राज्य सरकारें इस बात की ओर पूरा ध्यान देंगी।

देश में व्यापक अव्यवस्था :

वेश के अन्दर भी इस समय जो आर्थिक अव्यवस्था है वह सभी के लिये गहरी चिन्ता का कारण बनती जा रही है। साधारण जनता के इस्तेमाल की चीजों के दाम दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे हैं और व्यापक भ्रष्टाचार की वजह से हमारे समाज का वातावरण बहुत दूषित बन गया है। चिन्ता की यह भी बात है कि देश की "लॉ एण्ड ऑर्डर" व्यवस्था बहुत ढीली हो गई है और आये दिन सरकारी कर्मचारियों की हड़तालों की वजह से आम जनता बहुत व्यथित है। हमारे मंत्रीगण लोगों की निगाहों में नीचे गिरते जा रहे हैं और उनके प्रति सर्वसाधारण का सद्‌भाव व आदर लगभग समाप्त हो गया है। जिस प्रकार से चुनावों के हेतु काले धन का चन्दा एकत्र किया जाता है वह इन सामाजिक और आर्थिक बुराईयों को सीधा बढ़ावा दे रहा है। सरकारी कर्मचारियों और राजनीतिज्ञों की ईमानदारी पर भी अब लोगों का भरोसा टूट रहा है। हिंसा की ज्वालाएँ चारों ओर तेजी से फैल रही है और जनता यह महसूस करती है कि वर्तमान सरकार शांति से किसी भी शिकायत को नहीं सुनती और हिंसा व विध्वंसक कार्रवाइयों के सामने ही झुकती है। यह परिस्थिति देश के लिये सचमुच बहुत ही चिन्ताजनक है और हमें कुछ कदम तेजी से उठाने चाहिये ताकि हालत काबू के बाहर न चली जाय।

इस सिलसिले में हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की उस चेतावनी को दोहराना चाहते हैं जो उन्होंने २१ मई, १९४७ को पटना में प्रार्थना सभा के बाद बहुत साफ शब्दोंमें देश के सामने रखी थी —

"स्वराज्य लेने का पाठ तो लिया पर सम्हालने का पाठ नहीं सीखा। हमारी राज्यसत्ता ब्रिटिश सत्ता की तरह बन्दूक के जोर से नहीं टिक सकेगी। अनेक त्याग और तपों के बाद कांग्रेस ने प्रजा का विश्वास प्राप्त किया है। परन्तु यदि आज कांग्रेस-वाले प्रजा को दगा देंगे और सेवा करने के बदले मालिक बन जायेंगे तथा स्वामित्व दिखायेंगे तो मैं कदाचित जीवित रहूँ या नहीं, पर इतने वर्षों के अनुभव के आधार पर यह आगाह करने की हिम्मत करता हूँ कि देश में बगावत होगी, सफेद टोपी वालों को प्रजा चुन-चुन कर मारेगी और कोई तीसरी सत्ता इसका लाभ उठायगी।"

क्या हम अब भी राष्ट्रपिता की इस कही चेतावनी की ओर गम्भीरता से ध्यान देंगे ?

ऋषि विनोबा ने इन दिनों कई बार कहा है कि भारत की जनता भूदान और ग्रामदान आन्दोलनों को अगले ५० वर्षों में भले ही भूल जाय, किन्तु यदि हम देवनागरी लिपि द्वारा भारत और एशिया की सांस्कृतिक एकता को मजबूत कर सकें तो यह कार्य हजारों वर्ष तक याद रहेगा। इस दृष्टि से यह जरूरी है कि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं के लिये नागरी लिपि का भी प्रयोग किया जाय। इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय भाषाओं की अपनी विशिष्ट लिपि समाप्त कर दी जाय। पूज्य विनोबाजी इतना ही चाहते हैं कि उनकी लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी राष्ट्र की एकता को मजबूत बनाने की दृष्टि से प्रचार किया जाय।

यह सन्तोष का विषय है कि विनोबाजी के इस विचार को समझने और आगे बढ़ाने के लिये केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा तारीख २३–२४ फरवरी ७४ को पवनार आश्रम में एक संगोष्ठी का आयोजन किया है। इसमें भारत के विभिन्न प्रदेशों के गणमान्य साहित्यिकों और विचारकों के अलावा चीन, जापान, बर्मा, नेपाल, थाईलैण्ड, श्रीलंका आदि राजदूतावासों के कुछ प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये जा रहे हैं।

हम आशा करते हैं कि इस संगोष्ठी द्वारा ऋषि विनोबा के नागरी लिपि विचार का स्वागत होगा और उसे व्यापक ढंग से फैलाने में मदद मिलेगी।

—श्रीमन्नारायण

विनोबा :

आध्यात्म और विज्ञान का भेद काल्पनिक है :

(गत ६, ७, ८ जनवरी, को पवनार में गाधी स्मारक निधि ने उक्त विषय पर एक अध्ययन-शिविर का आयोजन किया। इसमें विज्ञान के विकास, उपयोग और दिशा के सन्दर्भ में काफी अच्छी उपयोगी चर्चायें हुई। विनोबाजी ने तीनों दिन शिविर में प्रवचन किये। यहाँ नयी तालीम के पाठकों के लिये उन प्रवचनों का साराश दिया जा रहा है।

— सम्पादक।)

आप जानते हैं मैं इन दिनों विष्णु सहस्रनाम के जप पर बहुत जोर दे रहा हूँ। यहाँ भी अभी थोड़ी देर के बाद वह होगा। अब यह विष्णु सहस्रनाम है किन्तु इसका आरम्भ होता है, "विश्वविश्व वषट्कार" इससे। यह अद्भुत बात है। नाम है विष्णु सहस्रनाम और आरम्भ हो रहा है विश्व से। अब इसमें पहले विश्व आता है और इसमें सारा ही भौतिकशास्त्र आ जाता है। विष्णु नाम आध्यात्मिक है किन्तु इसमें भौतिक विश्व को पहले रखा गया है। विष्णु तो मन से ग्रहण करने की बात है। किन्तु बालक जब पहले पहल आँख खोलता है तो वह पहले विश्व को ही दर्शन करता है। यहाँ पर पहले विश्व का नाम केवल छन्द की सुविधा की दृष्टि से नही रखा गया है। छन्द की बात होती तो यह भी कहा जा सकता था कि "विष्णु विश्व वषट्कार"। कभी कभी इस तरह से होता है कि काव्य में छन्द के लिये कुछ इस तरह का तालमेल करना होता है, किन्तु यहाँ उस प्रकार की कोई लाचारी नही है। यहाँ पर यह जानबूझ कर दिया गया है। पहले विश्व से परिचय हो यह आशय है। उसके बाद फिर आध्यात्मिक दर्शन होता है। विश्व से परिचय के लिये इस आध्यात्मिक का 'गाइडेन्स' आवश्यक है और उसके लिये फिर त्याग आवश्यक है। इसलिये ही कहा है 'वषट्कार'। पहले विज्ञान फिर त्याग यह क्रम बना है। यही परिपूर्ण कार्यक्रम है। इसके आगे फिर कहा है, "भूत भव्य भवत्प्रभु। भूतात्मा मन" आदि आदि। इस प्रकार से फिर कई भूत हमारे पीछे लगा दिये हैं। मैं कहना यह चाहता हूँ कि इस तरह से प्रकट होगा कि वास्तव में विज्ञान और अध्यात्म इस तरह का कोई भेद ही नही है। ये जो भेद किये जाते हैं वे सब काल्पनिक हैं।

विज्ञान की दिशा : मानव हित :

आज विज्ञानका युग है यह कहा जाता है। किन्तु विज्ञान का तो हर युग होता है। आज विज्ञान की दिशा गलत हो गई है। उसे मानव सेवा में लगना चाहिये। मैं विज्ञान को बहुत महत्व की शक्ति मानता हूँ और चाहता हूँ कि वह बढ़े। मैं तो

कहता हूँ कि उसे घर घर में भी पहुँचना चाहिये। मैं तो कहता रहा हूँ कि तकली भी यदि बिजली से चल सके तो चलाओ। आप जानते हैं कि बाबा ने तकली के विषय में बहुत काम किया है और उसकी सारी शक्तियों का मैंने अनुभव किया है। तो मैं चाहता हूँ कि विज्ञान मनुष्य का सखा बनकर काम करे मालिक बनकर नहीं। आज विज्ञान केन्द्रीकरण कर रहा है। इससे ही सारी बुराइयाँ पैदा होती हैं। किन्तु मैं कहता हूँ कि विज्ञान और केन्द्रीकरण साथ चलेगा तो वह मानव के लिये बहुत भारी खतरा होगा। आज उसके कारण वायु दूषित हो रही है, प्राकृतिक स्रोतों का बहुत दुरुपयोग हो रहा है। वह मनुष्य को हितकारी बनने के बजाय मनुष्य को दास बनाने वाला बन रहा है। यह सब केन्द्रीकरण के कारण है। किन्तु विज्ञान का उपयोग मनुष्य को स्वतन्त्र बनाये रखने के लिये होना चाहिये। वैज्ञानिक दृष्टि यह है, कि हम प्रकृति की शक्तियों की पहचान करें और फिर उनका उनकी प्रकृति के अनुसार उपयोग करें।

मैंने वेदों के सप्त रत्नों की चर्चा की थी। ये हैं भोजन, आवास, वस्त्र स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन और औजार। अब यह दृष्टि वेद की है कि इन सातों शक्तियों का मानव के हित में उपयोग हो। यह आज की 'इकालॉजी' है। मैंने तो यहाँ तक कहा है कि हमें अब शक्ति के लिये सौर्य ऊर्जा का उपयोग करना चाहिये। यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी है इससे किसी प्रकार का दूषण भी नहीं होता है। मैंने तो अपने यहाँ पर पानी गरम करने के लिये और कुछ रसोई पकाने के लिये भी सौर्य शक्ति का उपयोग करने का प्रयास किया है। आज तो वैज्ञानिक कह रहे हैं कि सौर्य ऊर्जा से हमारे सारे भावी काम करने होंगे। अभी वे इस समस्या पर विचार कर रहे हैं कि जब बादल रहते हैं तब भी हम सूर्य किरणों को प्राप्त कर सकें यह कैसे हो। सम्भव है वे कोई ऐसा यंत्र बनाने में सफल हो जाय जो फिर बादलों से होकर भी सूर्य की किरणों को खींच सकेगा और फिर तो हम निर्बाध रूप से उसके उपयोग से लाभ ले सकेंगे। तो विज्ञान के लाभ लेने के लिये हमें प्रकृति के नियमों का ज्ञान तो चाहिये ही किन्तु साथ ही उसका उपयोग करने की कला भी चाहिये। वृक्षों से हमें कितना लाभ होता है किन्तु आज वे नष्ट किये जा रहे हैं। वही बात पानी की भी है। वह भी अब तेजी से दूषित हो रहा है। वायु तो बहुत हद तक दूषित हो ही चुकी है। धरती के कुदरती उत्पादक गुणों की रक्षा करने का भी सवाल हमारे सामने है। ये सब प्रश्न हैं विज्ञान के किन्तु इनके मूल में तो मनुष्य यानें आध्यात्मिक दृष्टि ही है। तो इस प्रकार से, जैसा मैंने कहा, विज्ञान और आध्यात्म में कोई फर्क नहीं है। तो वैज्ञानिक लोग इस तरह से विचार करेंगे तो वे उनकी प्रतिभा से मानव जाति को बहुत लाभ दे सकेंगे। इसलिये मैंने यह भी कहा है कि वैज्ञानिक जरा तटस्थ हो कर चिंतन करें।

तटस्थ और मुक्त चिंतन ही मुख्य :

उस दिन हमारे आश्रम में कुछ वैज्ञानिक लोग आये थे। हमें वैज्ञानिकों से मिलकर बहुत आनन्द होता है। वे सत्य के अन्वेषक लोग होते हैं किन्तु आजकल वे जरा कुछ डरने लग गये हैं और निर्भय होकर अपना काम नहीं कर पाते। सरकारें जैसा उनसे करने को कहती हैं वे वैसा करते हैं। किन्तु यह विज्ञान के लिये हानिकर होगा। वैज्ञानिकों को हम स्वतन्त्रता से यदि मनन और चिंतन तथा खोज नहीं करने देंगे तो विज्ञान का सही विकास नहीं हो सकेगा। इसलिये हमने विज्ञान के बारे में दो तीन शर्तें मानी हैं। एक तो वह मनुष्य का मालिक नहीं होना चाहिये। दो, उसे विकेन्द्रित होना चाहिये और तीन, वैज्ञानिक निर्भय और तटस्थ हो। वेद के सुप्त रत्नों में यह सब कहा गया है।

वृक्ष भी समाधिस्थ होते हैं :

अब बात होती है कि गौतम बुद्ध को उस पेड़ के नीचे ज्ञान मिला। इसलिये उस पेड़ का महत्व बढ़ गया। उसे लोग 'बोधिवृक्ष' कहने लगे। वह भी महत्व का हो गया। किन्तु असल में स्थिति इससे एकदम ही उल्टी है। मैंने कहा था कि पेड़ों में चैतन्य होता है यह तो हम सब मानते ही हैं। जैसे हम में चैतन्य है वैसे ही उनमें भी है। किन्तु जिस प्रकार से हमारी चेतना में अनेक तरह के स्तर होते हैं वैसे ही पेड़ों में भी होते हैं। मुझमें जो चेतन है वह उससे कुछ भिन्न है। मुझमें जो चेतन है मुझे उसका 'अनुभव' होता है, मैं उसका 'साक्षी' हूँ। किन्तु पेड़ में यह 'सुप्त' होता है। वह उस चैतन्य का साक्षित्व नहीं कर सकता है। तो यह सुप्त चैतन्य है। जिस प्रकार से मनुष्य निद्रा में जाता है तो सामान्यतः उसे उस समय का अनुभव होता है और यह कहता है कि 'आज बहुत अच्छी नींद आई।' अब मैं तो सोया था फिर भी मुझे अच्छी नींद का 'अनुभव' हुआ। इसका अर्थ है कि मैं नींद का साक्षी हूँ। किन्तु नींद में यह अनुभव प्रकट नहीं कर सका, जागने पर किया। समाधि की अवस्था इससे भिन्न होती है जब कि समाधि में फिर चैतन्य ही साक्षी रहता है कि मैं समाधि में हूँ यह अनुभव होता रहता है। एक सोये हुये और समाधिस्थ मनुष्य में यही फर्क है। बाहर से तो वे दोनों ही समान ही मालूम पड़ेंगे किन्तु भीतर से वे भिन्न हैं। तो मैं कहता था कि उस पेड़ को बुद्ध के कारण महत्व नहीं हुआ अपितु वह पेड़ ही समाधिस्थ था। यह मेरी शास्त्रोक्त खोज है। पेड़ भी हमारी ही तरह से समाधिस्थ हो सकते हैं बस फर्क इतना ही है कि हमें ही अपनी समाधि का भान है उसे नहीं है। तो उस पेड़ के नीचे बैठकर समाधि लगाने से बुद्ध को लाभ हो गया और उन्हें भी समाधि मिल गई।

मेरा गाढ निद्रा का अनुभव लेने का प्रयास चलता है। मैं अपनी निद्रा अपनी इस घडी से नापता रहता हूँ। मै शाम के ६ बजे सो जाता हूँ। इस समय केवल बालक या चिडियाँ या फिर पेड ही सोते हैं। तो ये सब बाबा के साथी है। तो मैं ६ बजे सो जाता हूँ और ११॥ या १२ बजे जाग जाता हूँ। मन मे सोचता हूँ कितने बजे होग। तो घडी देखता हूँ। और यदि केवल ५–७ मिनट का ही अतर रहा तो बाबा अपने को पास मानता है। किन्तु अधिक फर्क हो तो समझता हूँ कि अभी नीद पर काबू नही हो सका। इसका अर्थ है कि मै अपनी नीद का साक्षी नही था बस गाढ निद्रा मे स्वय ही डूब गया। अब यह सारी भौतिकी ही है। मैं तो इस पर बहुत विश्वास करता हूँ। बाबा का भगवान् के बाद गणित पर ही विश्वास है। तो मै गिनती करता रहता हूँ कि नीद पर काबू हुआ या नही। बाबा यह गिनता रहता है, तीन बार शौच जाना तीन बार खाना छ बार पेशाब करना आदि। यही चलता रहता है और इस प्रकार से कुल ४०–५० एक्सन हो जाते है। घूमना खाना, पीना, कुछ अध्ययन आदि यह सब। अब यदि नीद नही आई तो मै गिनती करता हूँ कि क्या नही आई। मै उसका कारण खोजता हूँ। यह सब भौतिकी ही है। तो कहने का सार यह है कि अध्यात्म और विज्ञान मे इस तरह कोई भेद नही है।

स्वाध्याय, मनन मानव-कर्तव्य :

हमारे सुझाव पर पट्टी कल्याणा आश्रम को स्वाध्याय आश्रम बना दिया गया है। हमारे ऋषि मुनी कहते थे कि स्वाध्याय मनन मानव का कर्तव्य है। उन्होने हर कर्तव्य के साथ स्वाध्याय जोड दिया सत्य स्वाध्याय प्रवचनेभ्य, दमश्च स्वाध्याय प्रवचनेभ्य क्षमश्च स्वाध्याय प्रवचनेभ्य, मानुष च स्वाध्याय प्रवचनेभ्य, आतिथेय स्वाध्याय प्रवचनेभ्य आदि। यह बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि थी। इसका अर्थ है कि हमारे हर काम का हमें सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए। सूक्ष्म निरीक्षण होगा तो ही कार्य पूर्ण होगा। स्वाध्याय के बिना सूक्ष्म निरीक्षण हो नही सकता और यह हमारे यहाँ के ज्ञानियो की दृष्टि थी। फिर भक्त आये तो उन्होंने भी अपने दूसरे ढग से यही कहा 'श्रवण कीर्तनच।' वे स्वाध्याय प्रवचन को ही श्रवण-कीर्तन कहते थे। यह श्रवण शब्द भारत का विशेष शब्द है। वेद को हम श्रुति कहते ही है। अंग्रेजी में इसके समान कोई शब्द नही है यद्यपि इस तरह का भाव जताने वाला शब्द वहाँ एक 'वेलरेड' है किन्तु सस्कृत में हम इसे 'बहुश्रुत' कहते है। किन्तु आप जानते है कि बहुश्रुत के अपने नुकसान है, वह कान भी खराब करता है। आज कल विज्ञान ने शोर स होने वाली हानियों की ओर हमारा ध्यान खींचा है। किन्तु श्रवण के साथ इस तरह का कोई खतरा नही है। श्रवण के बाद फिर पढने लिखने की भी बहुत आवश्यकता नहीं

हूँ। कबीर की मिशाल आपके सामने है। वह कहता है 'कारी स्याही कोरा कागज लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे।'

प्रश्न —किन्तु गीता कहती है कि श्रवणे भ्रमणे बुद्धि।'

विनोबा —यह ठीक है कि यह कहा है, किन्तु यह खतरा कागज के समान तो नहीं है। शंकराचार्य कहते हैं कि 'श्रुतये शतगुण विधात् मनन'। क्या करते हैं। हमारे खाने में एक घंटे का समय लगता है किन्तु उसे पचाने के लिये फिर २३ घंटे तक परिश्रम करना होता है। तो जब शरीर के लिये इतना समय पचाने के लिये लगाने की आवश्यकता होती है तो फिर श्रवण पचाने के लिये कितना समय चाहिये, बिना मनन के श्रवण करेंगे तो गीता ने जैसा कहा है वह होगा ही। बापू ने तो इस तरह कहा था, यह विनोबा तो इस तरह कहता है, दादा धर्माधिकारी तो इस तरह कहते हैं, इस प्रकार के अनेक भ्रम पैदा होंगे। तब उपाय क्या है। मनन। फिर शास्त्रों ने तो उसका गणित ही बता दिया है। 'मननात् निदिध्यासलक्षगुण। मनन के बाद लाख बार निदिध्यास करो। फिर कहा है, 'निर्विकल्प अनन्त गुण।' यदि निर्विकल्प प्राप्त करना हो तो फिर तो अनन्त बार निदिध्यास करना होगा। यही शंकर की स्वाध्याय की प्रक्रिया है।

ग्रंथ बनाम सूत्र :

आज तो लोग भारी भारी ग्रंथ लिखते हैं। कई बार तो वे इतने भारी होते हैं कि उन्हें उठाने के लिये बलवान् को बुलाना होता है। किन्तु पहले लोग सूत्र में लिखते थे। आज से कोई २५०० साल पहले सूत्र लिखे गये होंगे। अब पातंजल का योगसूत्र है। उसमें कुल १९५ ही सूत्र हैं और उसे पढ़ने में कुल २० मिनट का समय लगता है। किन्तु वे २५०० साल से चल रहे हैं। तो यह सोचने का विषय है कि हमें क्या करना है। इन सूत्रों के माध्यम से लोग इतना लिख देते थे कि फिर उस पर लोग हजारों साल तक मनन करते हैं और उससे लोगों को समाधान होता है।

मनन का प्रत्यक्ष लाभ .

योग सूत्र का एक सूत्र है 'अहिंसाया तत्सन्निधौ वैर त्याग।' अब इस पर मनन करने से क्या लाभ होता है उसके लिये आपका मैं अपना धूलिया जेलका एक अनुभव सुनाऊँगा। मैं वहाँ जेल में था तो एक दिन मेरे खाट के नीचे सर्प आ गया। मैं किसी को बुला भी नहीं सकता था क्योंकि मेरा उस दिन मौन था और मौन तोड़ना उचित नहीं लगा। तब विचार आरम्भ हुआ। सोचा सर्प का भक्ष्य मनुष्य नहीं है तो विचार बना कि साँप मेरा वैरी नहीं है। फिर मुझे संत फ्रान्सिस (एसिसी) का किस्सा याद आया जिनके साथ सर्पों का समूह ही रहता था। फिर भगवान् शंकर का भी स्मरण हुआ जिनके गले में तो सर्प माला बनकर ही विराजमान हैं। फिर "अहिंसाया तत्सन्निधौ वैर त्याग" का यह सूत्र याद आ गया। सोचा कि यदि मुझमें

अहिंसा हूँ तो फिर मैं इसका वैरी नही और यह मेरा वैरी नही हो सकता। इस प्रकार से विचार करते करते मुझे २० मिनट लग गये। यो म शीघ्र सो जाता हूँ किन्तु उस दिन यह सारा विचार करने में इतना समय लग गया। विचार करते करते फिर म मन म अहिंसा का भाव रखकर सो गया। सुबह देखा तो सप महाशय चले गये थे। तो यह एक मिसाल दी कि मनन करने से भी लाभ होता है। मनन नही करता तो मौन भी टूटता और कोई गडबड भी उस हडबडी में हो सकती थी। मनन के ही अभाव में सारी हडबड और गडबड़ होती है। कबीर को मनन के बारे में इतना सूक्ष्म ज्ञान था यह देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि वह पढ़ा लिखा नही था। किन्तु उसका मनन तो बे मिशाल था। इसी तरह की दूसरी मिशाल है मुहम्मद की। वह भी अनपढ़ थे। एक दिन अल्लाह ने उन्हे अपना सन्देश एक कागज पर लिख कर दिया और कहा 'अक्रा * (पढो)। तो मुहम्मद बोले—'भगवान मैं पढ़ना नही जानता।' तब भगवान (जिब्रील) ने साक्षात् दर्शन देकर स्वयं पढकर सुनाया। तो मुहम्मद ने कहा कि 'म पढा लिखा होता तो भगवान का साक्षात्कार कैसे करता। तो मैं कहना यह चाहता हूँ कि हम पढना कम और मनन अधिक करना चाहिये। मनन करना यही सामुहिक साधना है। इसके लिय भी एक साहस की आवश्यकता होती है, त्याग चाहिय। कबीर ने कहा ही है कि उसके साथ तो वही चले जो अपना घर फूकने को तैयार हो। ' कबिरा खडा बाजार में लिये लुकाठी हाथ। जो घर फूके आपना चले हमारे साथ।

गुरु-कृपा का सौर्य गुण :

प्रश्न —आपने निर्विकल्प समाधि का बात कही है कि उसके लिये अनंत-गुणा मनन होना चाहिये। तो इसम तो फिर जन्म-जन्मान्तर लग जायेंगे।

विनोबा —हाँ, आप ठीक कहते है कि इसम जन्मातर लग सकते है। किन्तु यह यही इसी जन्म म प्राप्त करने की लालसा हो तो फिर इसके लिय 'गुरु कृपा' चाहिय। यह बिना गुरु की कृपा स सम्भव नही है। किन्तु गुरु कृपा के लिय कीमत चुकानी होती है। वह कौनसी कीमत है ? वह है भक्ति। निर्विकार भक्ति। एसे भक्त ही गुरु-कृपा प्राप्त कर सकते है। किन्तु इसके लिय गुरु की खोज में जाने की आवश्यकता नहीं है। असल में तो गुरु ही हमेशा शिष्य की खोज म रहते है। गुरु तो सूर्य के समान होते हैं। सूर्य आपके दरवाजे पर हाथ रखकर खडा हो जाता है। अब आपने अगर दरवाजा बंद कर रखा हो तो वह वहीं पर खड़ा होगा। आप दरवाजा जितना ही खोलगे वह उतना ही अदर जायगा। इसलिय इसके लिये दिल का द्वार

---

* अरबी में 'अक्रा' का अर्थ पढ़ना होता है।

हमेशा खुला रहना चाहिये। गुरु तो गाय के समान होते हैं। गाय क्या करती है। स्वय तो कडवी खाती है, किन्तु हमें मीठा दूध देती है। यही हाल गुरु का भी होता है। वे स्वय तपते है और हमारे लिए शाति प्राप्त करते है। यह हम कर सके तो फिर हमें भी भक्ति का दूध मिल सकता है। बस मन का द्वार खुला रखो।

प्रतिष्ठा का अभिशाप :

प्रतिष्ठितता एक प्रकार का शाप है। यह हृदय और मन को छील डालनेवाला पाप है। पता न चलते हुये, चोरी छुपे वह प्रवेश करता है और प्रीति पावना की मगलमयता को नष्ट कर डालता है। प्रतिष्ठित होने का मतलब है अपने यश से हर्षित होना, जगत में अपने लिये विशेष स्थान प्राप्त करना और अपने चारों ओर निश्चितता की पक्की दीवार खडी करना, सपत्ति, यश, कार्यकुशलता अथवा सद्गुण से प्राप्त होने वाली निश्चितता का परकोटा खडा करना। निश्चितता के इस परिवेष्ठन से मनुष्य में दुराव पैदा होता है। यह दुराव ही सब प्रकार के मानवीय सम्बन्धो के कारण समाज में विरोध और द्वेष के बीज होने में कारणीभूत होता है। प्रतिष्ठित लोग हमेशा सशक, भयाकुल और स्व सरक्षण के हथियार होते हैं। वे ढोल की तरह भीतर से पोले होते है, बाहर से आघात होते ही वे जोर शोर से आवाज करने लगते हैं। ये लोग कभी भी सत्याभिमुख नहीं हो पाते। क्योंकि केवल अपने सुधार की चिंता के कारण समाज के तिरस्कृत लोगों की तरह ही वे अपने को परिवेष्ठित कर डालते हैं, समाज से अपने को तोड डालते है। उन्हें कभी सारे सौख्य का लाभ नहीं मिलता, क्योंकि वे सत्य से दूर जा पडे होते हैं।

एक चिरस्मरणीय मिलन

(गत २ जनवरी, ७४ को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने, अपनी ही पहल पर, पवनार आश्रम में पूज्य विनोबा जी से भेंट की। वे इस भेंट के लिये सीधे दिल्ली से वायुयान द्वारा नागपुर हवाई अड्डे पर उतरकर हेलीकोप्टर से पवनार गईं और ८० मिनट तक विनोबाजी से विभिन्न विषयों पर चर्चा करती रहीं। चर्चा के बाद जब वे बाहर आईं तो अत्यन्त प्रसन्न दीख रही थीं और फिर विनोबा जी और प्रधान मंत्री ने इस अवसर पर बाहर से आये कुछ व्यक्तियों, पत्रकारों व आश्रमवासियों से बातचीत की। इस अवसर पर विनोबा जी और प्रधानमन्त्री ने जो विचार प्रकट किये हम 'नयी तालीम' के पाठकों के लिये उन्हें यहाँ दे रहे हैं।

—सम्पादक।)

पू० विनोबाजी

आज इन्दिरा जी हमसे मिलने आई और एक घंटा बातचीत होनी थी किन्तु ८० मिनट तक बातचीत होता रहा। हमें इस बातचीत से बहुत संतोष है और बातचीत से प्रकट हुआ कि आज की परिस्थिति और उसके हल के बारे में हमारे विचारों में पूर्ण समानता है। परस्पर विश्वास और दृढ़ हुआ है और सर्वोदय विचार के लिये बहुत अनुकूलता उन्होंने दिखाई है। देश की परिस्थितियों का निराकरण करने के लिये सर्वोदय विचार का आधार उन्हें स्वीकार्य हुआ है और सरकार तथा सर्व सेवा संघ के कामों में परस्पर सहयोग होगा यह आशा की जा सकती है। इससे दोनों ही तरफ आनन्द हुआ है। मैंने तो यह भी इन्दिरा जी के विचार सुनने के बाद कहा कि आप सर्व सेवा संघ की सदस्य बन सकती हैं तो इस पर उन्होंने कहा कि यह कहकर आपने (मैंने) मेरा (इन्दिरा जी का) गौरव ही बढ़ाया है। सर्वोदय विचार पर उनका विश्वास बना यह आनन्द की बात है। यह संक्षेप में हमारी चर्चा का सार है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि मैं आज बाबा से मिल सकी। मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि मैं बाबा के दर्शन करूं और उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करूँ। क्या बतायें आज जीवन कुछ इस तरह का हो गया है कि इस तरह की मुलाकातों के लिये समय ही नहीं मिल पाता। कई माह पहले से सोचकर कार्यक्रम बन जाय तभी यह सम्भव

हो सकता है। इस भेंट के लिये भी मैंने बहुत पहले से ही बात तय कर ली थी और तब जाकर मैं समय निकाल पाई हूँ। इस तरह की भेंटो से निश्चय ही हमें प्रेरणा मिलती है और हमारा मार्गदर्शन होता है।

शांति स्तंभ

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि भारत में समय समय पर कुछ इस तरह के महापुरुष होते रहे हैं जो इस अत्यन्त अशांत और कई तरह की गलत बातों से भरी दुनियाँ के बीच रहकर भी शांत रह सकते हैं, समस्याओं पर तटस्थ और मौलिक चिंतन कर सकते हैं और दूर तक देखकर हमें राह दिखा सकते हैं। वे महापुरुष इस अशांत दुनियाँ में शांति के महान् स्तम्भ हैं। इस तरह के महापुरुषों का प्रभाव उनके काल पर तो होता ही है किन्तु आने वाले अनेक युगों तक भी मानव जाति उससे प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त करती रहती है।

हमने पहचाना नहीं

अभी मैं आश्रम की बहनों से बातचीत कर रही थी। वे मुझ से बापू के बारे में पूछती थी। क्योंकि बापू से भी मेरे निकट के सम्पर्क रहे हैं और मैंने तो बहुत बचपन से ही उन्हे अपने घर के बड़े बुजुर्ग की ही तरह अपने अत्यन्त निकट से देखा है। किन्तु मुझे कई बार लगता है कि हमने बापू को कभी सही ढंग से पहचाना ही नहीं है। वे न केवल अपने ही युग के अपितु आनेवाले कई युगों की दृष्टि से भी महान् व्यक्ति थे, एक महान् शक्ति थे। किन्तु उनकी वह महानता हमें मालूम हो नहीं सका। हम इसका कोई अंदाज ही नहीं लगा पाये। यह हमारी अपनी ही भूल है और हर काल के और हर देश के महान् व्यक्तियों के साथ ऐसा होता है। उनकी महानता तो समय पर ही और हर व्यक्ति (देखनेवाले) की शक्ति के ही अनुसार प्रकट होती है। तो बापू की जो महान् शक्ति थी वह भी समय आने पर हमारी अपनी शक्ति के अनुसार हम पर प्रकट होगी, यह मेरा विश्वास है। बाबा की भी वही बात है। बाबा ने यह आश्रम कायम कर एक दिशा संकेत किया है कि अंतत विश्व को कहाँ जाना है। यह दिशा बहुत महत्व की है और हमें इसे समझना होगा।

बुनियादी सवाल

आज हमारे सामने अनेक सवाल खड़े हैं। आज यह बहस की जाती है कि हम अपने देश का और खासकर देहातों का विकास कैसे करें, उनकी तरक्की कैसे हो? विज्ञान कैसे बढ़े क्योंकि आखिर में वह भी एक बड़ी शक्ति है और उससे हम लाभ ले सकते हैं। तो मैं विज्ञान की तरक्की में और हमारे देहातों की तरक्की में कोई फर्क नहीं समझती। दोनों एक ही है। दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता के कुछ ऐसे गुण हैं जिनकी हमें रक्षा करनी होगी और देहात के विकास का अर्थ यह भी होता है कि हम उन गुणों की हिफाजत करें।

किन्तु असल सवाल यह है कि इस तरह के विकास में विज्ञान का कैसे उपयोग हो। हम तो समाज की प्रगति और हमारी प्राचीन सभ्यता के अच्छे गुणो, दोनों को ही कायम रखना होगा। मेरे मन म इसमें कोई मतभेद नहीं है।

आधुनिकतावाद का भ्रम

किन्तु कुछ लोग ह जो अपने को आधुनिकतावादी मानते ह और जिनके लिए हर पुरानी चीज बेकार होती है। वे हर फैशन की ही तरह हर नयी चीज को चाहे उसके अच्छे या बुरे गुणो को परखते समझते हो या नही अपनाने के लिये लालायित रहते ह और जैसे ही फैशन बदला कि फिर से वे अपनी अच्छी चीज को भी तुरन्त बदलने के लिये आतुर हो जाते ह। किन्तु ऐसे लोगो को समझना चाहिए कि हर पुरानी या नई चीज में भी कुछ अच्छाई और काफी बुराई भी रहती है। तो हमें किसी चीज को केवल पुरानी है इसलिए न तो आख मूद कर अपनाते ही जाना है और 'केवल पुराना है, ' यह कहकर उसे ठुकरा ही देना है। हम तो हर चीज के सामयिक अच्छे और बुरे गुणो के आधार पर ही निर्णय करना चाहिये। हमें बहुत से पुराने अधविश्वासोंको छोडना होगा किन्तु बहुत-सी ऐसी बातें भी उनम है कि उन्हें हमेशा ही सुरक्षित रखना होगा। यही बात नयी बातो के बारे म भी सच है। आज भी बहुत-सी बातें विज्ञान के नाम पर बहुत ही गलत होती ह और कुछ अच्छी बातें भी ह। तो इस प्रकार से गुण विगुण के आधार पर ही निणय करना, यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। तो मेरे विचार म देहातो के विकास का विज्ञान के विकास के साथ कोई विरोध नही है। हाँ, यह बात अवश्य है कि हमें भारत के गांवो की दशा सुधारने म तेजी करनी होगी क्योंकि आज उनकी हालत बहुत ही खराब है और वह सुधरे बिना भारत का भी सुधार असम्भव है।

आत्म-शक्ति ही विकास का मार्ग

फिर हम विकास के नारे को विश्व सन्दर्भ में देखना होगा। जो अपने आप में मजबूत होता है वही विकास कर सकता है। बाबा तो आज हमसे बहुत ऊँचे उठे है। वे राष्ट्रीयता से भी ऊँचे उठकर जय-जगत' की बात करते ह और यही भविष्य का दृष्टिकोण है। जो भविष्य में होने वाला है वह बाबा आज कह रहे ह किन्तु वे यह भी कह रहे ह कि इसके लिए भी हमें अपने देश और अपने गांव तथा पडोस के साथ प्रेम और भाईचारे से रहना होगा। जब तक हम अपने से अपने पडोस और गाँव से प्रेम नहीं कर सकते तब तक हम विश्व से भी प्रेम नही कर सकते है। अपने से, अपने परिवार से, गाँव या पडोस से प्रेम करते करते ही मनुष्य देश और विश्व-प्रेम तक पहुँचा है। तो इस प्रकार से राष्ट्र-प्रेम और विश्व प्रेम में कोई भेद नही है। यही आज का विचार है।

मैं जो कुछ समझती हूँ और जो मुझे सही लगता है वह मैंने आपके सामने रखा है। आप यहाँ पर इस आश्रम में जो कुछ कर रहे है उसका बहुत महत्व है और मैं चाहती हूँ कि यह दीप देश और विश्व भर में फैले। आपका राष्ट्र के विकास में बहुत योगदान हो रहा है। बाबा के इस विचार को हम सब मिलकर देश और विश्व में फैलायें, अपने जीवन और देश के कामों में इस पर अमल करें तो यह बात बहुत हितकारी होगी और इससे न केवल हमारे ही अपने आप को और हमारे ही समय में अपितु आने वाले कालों म भी सबको बहुत लाभ होगा।

स्वतंत्रता पर हमले का नया रूप :

एकान्तता (प्राइवेसी) पर हमला मानव स्वतंत्रता का नकार है। इससे समुदाय भयाक्रान्त हो जाता है और फिर किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास का यह हनन स्वतंत्र समाज के लिये एक भारी खतरा है। नौकरी के लिये या मकान प्राप्ति के लिये या बीमा कराने के लिये प्रयोग में लाई जानेवाली विस्तृत प्रश्नावलियाँ, छिपे किन्तु शंकायुक्त केमरा का उपयोग, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, झूठ पकडने वाले यंत्र, ये सारी बातें जो हमारे अंतरंग जीवन की गूढ़ बातों को भी खोज निकालने के लिये की जाती हैं एक ऐसी भयानक असुरक्षा उत्पन्न करती है जो कि व्यक्तित्व का दमन करती है, जिम्मेदारी को हतोत्साहित और भयजनित अनुवर्तन (कन्फर्मिटी) को प्रोत्साहन देती है।

—संयुक्त राष्ट्र संघ

[कूरियर (अँग्रेजी) जु० ७३, पृ १९ से]

डा. जे. सी. कुमारप्पा :

सांगोपांग शिक्षा :

(स्व. डा. जे. सी. कुमारप्पा, यदि आज जीवित होते तो इस माह की ४ जनवरी को वे पूरे ७३ साल के होते। किन्तु सन् १९६० को ३० जनवरी को ही उनका देहान्त हो गया। डा. कुमारप्पा गांधी विचार के प्रख्यात् आचार्य ही नहीं मौलिक विचारक भी थे और भारतीय अर्थशास्त्र को उनकी देनें बहुत महत्व की मानी जाती हैं। वे उन चन्द भारतीय बुद्धिवादियों में से थे जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर सीधे ही गांधी जी के आवाहन पर उन्हें समर्पण किया और फिर अपनी सारी प्रतिभा गांधी-विचार के लिये ही लगा दी। नयी तालीम परिवार की ओर से उनकी इस पुण्यस्मृति में हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। — सम्पादक।)

शिक्षा कौन सा पथ ग्रहण करे। गाधी जी का कहना था कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। स्वावलम्बन से उनका तात्पर्य यह था कि आगे चलकर छात्र नागरिक के रूप में जो सेवा करेंगे उसके अनुसार ही उनकी शिक्षा का मूल्यांकन होगा। यह केवल छात्र को माल भर का व्यय या शाला को व्यय का कुछ भाग मिल जाय इससे भी कहीं अधिक दूरगामी विचार है। इसमें, जिसे हम बुनियादी शिक्षा कहते हैं किसी न किसी दस्तकारी को शिक्षा का मुख्य माध्यम माना गया है और इसके पीछे विचार

यह है कि बालक शिक्षा पाने के बाद कुछ इस तरह का हुनर सीख जाय ताकि वह अपने जीवन में फिर किसी दूसरे का मुहताज न बना रहे। इस प्रकार की मुहताजी ही सारी दासता और शोषण का कारण होती है। इसलिये ही इसमें बालक की दिनचर्या के साथ दस्तकारी का सम्बन्ध और बालक के भौतिक और सामाजिक वातावरण के तालमेल को साधना होगा।

आज कल की शिक्षा में साधारण शिक्षण के आधार पर कुछ दस्तकारी की शिक्षा रखी जाती है और इस कारण से इसमें बौद्धिक शिक्षण पर ही अधिक जोर दिया जाता है, इससे हम एक प्रकार से बालक के हाथ पाँव बाध कर उसे अव्यावहारिक बना देते हैं। फिर इस कमी की पूर्ति आगे चलकर किसी भी प्रकार से नही हो पाती है। फिर अनुभव के लिये इसमें चूंकि कोई गुंजाइश नही रहती इसलिये यह केवल स्मरणशक्ति पर ही जोर देती है। किन्तु यह शिक्षा का अत्यन्त ही पुराना विचार है।

सृजनात्मकता का ह्रास :

मौजूदा शिक्षा प्रणाली के द्वारा नवीन विचारक पैदा होना तो सम्भव ही नही है। हमारे विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट भी विकास का इस तीसरी श्रेणी तक नही पहुँच पाते हैं। इसी दोष के कारण आज भी हम उसी जगह पडे पडे सड रहे हैं। अभी हमारी शिक्षा केवल क्लर्क बनने मात्र के लिये है और किसी क्लर्क के लिये तो अपनी निजी सूझबूझ की कोई भी आवश्यकता नही होती। यह तो आत्मविश्वास के आधार पर ही आ सकती है और आत्मविश्वास तो किसी अपने अनुभव के आधार पर किये जाने वाले काम के द्वारा ही पनपाया जा सकता है। इसलिये आज हमारी सारी पीढी आत्मविश्वास से हीन है। उसमें कोई भी नया जोखिम उठाने या खोज करने की क्षमता मर गई है।

जनता की स्थाई संस्कृति का निर्माण :

इसलिये हमारी शिक्षा का आधार काम के माध्यम से ज्ञान होना चाहिये। यदि हमारे विद्यालयो के पास दस्तकारी या उद्योग के माध्यम से शिक्षा देने की कला और साधन हो, यदि वे इसमें फिर सरल से सरल पाठ्यक्रम भी पूरा कराते हो तो उसमें से भी अच्छे आचरण वाले स्त्री-पुरुष निकलेंगे जो फिर दरमी गढ़े माँगने के लिये किसी देशी या विदेशी मालिक की खोज में नहीं अपितु सिर ऊँचा करके स्वाधीन रहेंगे और साधारण जनता की साधारण मुसावात वाली जिन्दगी में साथ देने को तैयार रहेंगे। जब तक हम जनता की स्थाई संस्कृति के आधार पर एक ऐसा बलवान् राष्ट्र बनाने के लिये कमर कस कर खडे नही होंगे तब तक यह ऊपर ऊपर की लीपा-पोती हमारे किसी काम नही आयेगी। विश्व के राष्ट्रों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिये हमारी जडें अपनी संस्कृति में बहुत ही मजबूती के साथ जमी रहनी चाहिये। उधार मांगे हुये परो को लगाकर हम चमक नही सकते।

गाधी जी के सुझाव के अनुसार हमारे कालेज शिक्षण को हमें स्वावलम्बी बनाना आवश्यक है। जो कृषी कालेज अपनी जमीन से अपनी व्यवस्था नहीं कर सकते वे अपन व्यय को ही न्युनलायग। इसी प्रकार से अन्य सब उद्योगो और धधो के भी अपन अपन विद्यालय हो और उन्हे भी अपना सारा खच स्वय ही चलाना चाहिये। यह होगा तो ही हम अपनी शिक्षा को सागोपाग बना सकेंग।

'ग्राम भावना' (सर्वोदय डाइजेस)

'ग्राम भावना,' पजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश गाधी स्मारक निधी क दवारा पिछल ग्यारह सालो स प्रकाशित होती है। अब जनवरी '७४ स यह 'सर्वोदय डाइजेस' के रूप में निकल रही है। शिक्षा, सस्कृति तथा सर्वोदय विचार की यह पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख पत्रिका है। डाइजेस के रूपमें अब इसका कलेवर, आकार तथा सामग्री और भी आकर्षक बन गई है।

सम्पादक मण्डल

सर्वस्वी भवानी प्रसाद मिश्र, देवेंद्रकुमार गुप्त, ओम्प्रकाश त्रिखा (प्रधान सम्पादक) प्रो शादीराम जोशी और जगदीश चद्र जौहर।
वार्षिक शुल्क– १०)
एक प्रति– १)

पता –पट्टी कल्याणा आश्रम, करनाल, हरियाणा

डा. जयदेव

बिहार में शिक्षा की भावी दिशा :

(बिहार सचमुच शिक्षा-प्रयोगों को विचित्र स्थली रहा है। आजकल वहाँ फिर से माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया जा रहा है। उसकी सभी बातें भी अभी सामने नहीं आई हैं किन्तु इस लेख में विद्वान् लेखक ने जो मुद्दे उठाये हैं प्रदेश की नयी शिक्षा योजना पर विचार करते समय इस तरह के सवालों पर भी पहले से ही गंभीरता और निष्ठापूर्वक विचार तथा स्पष्ट निर्णय नहीं लिये गये तो इस तरह के सारे प्रयास पुनः व्यर्थ हो जायेंगे। कोठारी शिक्षा आयोग ने कार्यानुभव का जो सुझाव दिया है उसे यदि सचमुच ४०–४५ मिनट के एक 'पीरियड के विषय' के रूप में ही रखकर मान लिया गया कि कार्यानुभव के सिद्धान्त का पालन हो रहा है तो इससे अधिक बचकानापन और कुछ नहीं होगा। आज शिक्षा का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हमें 'शिक्षा में काम' नहीं 'शिक्षा को काम' बनाना है। बुनियादी शिक्षा का भी यही कहना रहा है। —सपादक।)

बिहार की भूमि हमेशा से ही विभिन्न प्रकार के प्रयोगों की भूमि रही है। शिक्षा और परीक्षा के अतिरिक्त यहाँ पर पहले धर्म और राजनीति के कई प्रयोग किए गये हैं। राजनीति के प्रयोग तो यहाँ आज भी आये दिन होते रहते हैं। बिहार यदि एक तरफ वैदिक ऋषियों और मनीषियों का कर्मशाला रहा है तो दूसरी तरफ वह उनके ही प्रतिस्पर्धी व्रात्यों की प्रयोगशाला भी रहा है। पहले यहाँ कभी जैन और बौद्ध धर्म का जन्म और प्रचार प्रसार का केन्द्र रहा है तो अभी हाल ही में यहीं से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने अपनी नीति परक राजनीति और जीवन परक शिक्षा 'बुनियादी शिक्षा' का प्रयोग भी आरम्भ किया था। और यह तो अभी की बात है कि जब श्री विनोबा जी ने ग्राम स्वराज्य के अपने विश्व विख्यात् प्रयोगों के लिये भी बिहार को ही चुना है। क्या इस तरह के ऐतिहासिक प्रयोगों का स्थल बनने का ऐसा सौभाग्य किसी अन्य प्रदेश को प्राप्त है ?

किन्तु सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से इस तरह के प्रयोगों का बिहार की भूमि पर, यह लगता है, कोई प्रभाव नहीं होता है। यदि कुछ प्रभाव है भी तो वह नितान्त

अस्थाई हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर तो यह कहीं दिखाई ही नही देता है। पहले यहाँ पर मैकालियन शिक्षा पद्धति से हम बुनियादी शिक्षा के वैदिक युग में गये किन्तु हमने शीघ्र ही फिर उसका अवैदिक ढग से निष्प्रासन भी कर दिया। फिर मूल्याकन प्रथा का धूमधडाके के साथ आगमन हुआ और फिर उसका भी बेआबरू निष्कासन कर दिया गया। हमने फिर उच्चतर माध्यमिक योजना का प्रशसनीय उद्घोष और कुछ कार्यान्वियन भी किया किन्तु शीघ्र ही उसका भी निन्दनीय निष्कासन हो गया। यही हाल फिर हमारे त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स का हुआ और वह आने के पहले ही निकाल दिया गया। बिहार इस तरह के आवा जावे के प्रयोग पर प्रयोग करता रहा है किन्तु ये सारे प्रयोग असल में प्रयोग कहलाये जाने के योग्य ही नही है क्योंकि असल में किसी भी प्रयोग पर कभी भी गम्भीरता से न तो विचार ही किया गया और न उसके नतीजो के बारे में कोई चिन्तन ही हुआ है।

पुनः नई उछाल का दौर

अब फिर बिहार को भावी शिक्षा योजना की सरचना या इसे व्यूहरचना कहे तो ठीक होगा और उसके लिये पाठ्यक्रम बन रहे हैं। शायद इस पर भी अब कुछ समय तक वैसे ही एक दम हलके मन और ऊपरी तौर पर थोडा बहुत कुछ होगा और फिर यह भी वैसे ही अन्य पुराने प्रयोगोंकी रद्दी की टोकरी में फेंक दी जायेगी। किन्तु अभी यह मानकर कि इस पर लोग गभीर है और अमल के लिये राह खोजने की दृष्टिसे ही यह नया चितन आरम्भ हुआ है हम इस पर यहाँ कुछ विचार करना चाहते हैं। अब तक जो कुछ सामने आ सका है उस पर से यह लगता है कि इस प्रायोगिक योजनाकी सरचनाके सूत्र इस प्रकार हैं –४+३+३+२+३। इसका अर्थ यह है कि पूर्व माध्यमिक को छोडकर चार वर्षीय प्राथमिक शिक्षा, तीन वर्षीय मध्य विद्यालयीय शिक्षा, तीन वर्षीय माध्यमिक शिक्षा, या प्रवेशिका विद्यालयीय शिक्षा, दो वर्षीय प्रवेशिकोत्तर शिक्षा और तीन वर्षीय स्नातक योजना की शिक्षा के क्रम से विचार आरम्भ हुआ है। दूसरे शब्दों में इसे यों भी रखा जा सकता है कि (१) पूर्व प्राथमिक वर्ग (२) एक से चार तक प्राथमिक, (३) पाँचसे सात या एक से सात तक मध्य विद्यालयीय (४) आठ से दस या पाँचसे दस तक माध्यमिक, या प्रवेशिका विद्यालयीय, (५) ग्यारह से बारह तक प्रवेशिकोत्तर और (६) उसके बाद तीन साल का डिग्री कोर्स होगा।

पाठ्यक्रम की दिशा

इस योजना के अन्तर्गत जो पाठ्यक्रम मान्य किया जा रहा है उसमें तीन तरह के विषय रखे गये है। एक-अनिवार्य, दो-वैकल्पिक और तीन-अतिरिक्त वैकल्पिक। ये सभी विषय एक सौ अकों के होगे। वैकल्पिक विषयों में किन्ही तीन विषयों का चुनाव अनिवार्यतः करना होगा और अतिरिक्त वैकल्पिक विषयोंमें शायद एक विषयका चयन करना होगा जो ऐच्छिक होगा।

वर्ग एक और दो में मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, हिन्दी या संस्कृत, गणित, प्रकृति अध्ययन तथा स्वास्थ्य शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, चित्रांकन और संगीत, मुख्यतः कविता पाठ, और कार्यानुभव याने हस्तकर्म के विषय रखे गये हैं।

वर्ग तीन और चार के विषय इस प्रकार से हैं — मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, गणित, सामान्य विज्ञान, सामाजिक एवं नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, चित्रांकन एवं संगीत और कार्यानुभव।

वर्ग पाँच से वर्ग सात तक के विषय हैं — मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, अंग्रेजी, गणित, इतिहास तथा भूगोल, नागरिक एवं सामाजिक शिक्षा (नैतिक शिक्षा सहित) (विज्ञान भौतिक, रसायन एवं जीव विज्ञान सहित), कार्यानुभव, शारीरिक शिक्षा और कला तथा कौशल।

उच्च विद्यालयीय स्तर पर वर्ग आठ से दस तक के अनिवार्य विषयों में मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा या द्वितीय भारतीय भाषा, अंग्रेजी, इतिहास भूगोल और नागरिक शास्त्र, अप्लाइड विज्ञान और गणित रखे गए हैं। वैकल्पिक विषयों में भौतिक तथा रसायन शास्त्र वनस्पति विज्ञान एवं प्राणि विज्ञान प्रगत गणित, प्रगत इतिहास, प्रगत भूगोल अर्थशास्त्र, वाणिज्य, गृह विज्ञान और संस्कृत, अरबी या फारसी है। इसी प्रकार से अतिरिक्त वैकल्पिक विषयों में शारीरिक शिक्षा तथा आन्तरिक मूल्यांकन के साथ कार्यानुभव रखे गये हैं। द्विवर्षीय प्रवेशिकोत्तर एवं त्रिवर्षीय स्नातक या स्नातकोत्तर वर्गों के लिये विषयों का निर्धारण अभी स्थगित रखा गया है क्योंकि इस विषय पर बिहार सरकार ने पहले से ही एक विश्व विद्यालयीन समिति का गठन किया हुआ है जिसकी रिपोर्ट पर सरकार विचार कर रही है ।

निराशा के भविष्य की ओर

बिहार की इस भावी एवं संभावित शिक्षा संरचना और उसके पाठ्यक्रमों को देखकर मन में आशा के बजाय निराशा ही अधिक पैदा होती है। इस धारणा का आधार इसके पुनः प्रायोगिक प्रयोग को ध्यान में रखना है। ऐसा लगता है कि लोग इसके भविष्य के बारे में निश्चित हैं। बिहारकी यह शिक्षा योजना केन्द्रीय शिक्षा योजना के अनुरूप ही है। किन्तु यह शंका होती है कि बिहारकी यह शिक्षा योजना जो संघीय शिक्षा की समवर्ती सूची (कन्करेंट लिस्ट) तक में नहीं है और जहाँ बहुदलीय राज्य है वहाँ आज के शासकीय और प्रशासकीय कर्मियों के द्वारा इस संरचना और उसके विषयक्रम कितने दिन तक चलेंगे यह भगवान ही जानता है। कौन कह सकता है कि कल बिहार में फिर कर्पूरी जी या उनके समान कोई ससोपाई, सोपाई या साम्यवादी या संविद सरकार न बन जाय और इस योजना का भविष्य भी फिर उच्चतर माध्यमिक योजना या अन्य शैक्षिक प्रयोगों की ही तरह उन्मूलित न हो जाय।

इसलिये इस सम्बन्धमें कोई अन्तिम निर्णय लेने के पहले ही यह अच्छा होगा कि इस पर न केवल अनुभवी शिक्षकों शिक्षा प्रधानों प्राध्यापकों प्राचार्यों शिक्षक-संघों आचार्यकुल और बिहार नयी तालीम संघके प्रतिनिधियों तथा गैर राज-नीतिक शिक्षाविदों का भी अभिमत ले लिया जाय वरन् शिक्षा को राजनैतिक दबावों से बचानेके लिये इसमें सभी राजनीतिक दलों की भी सम्मति ले ली जाय।

कोई नवीनता नहीं

बिहार की इस भावी शिक्षा योजना में कोई नवीनता नहीं है न कोई क्रांति-कारिता ही है। इसमें सही दिशा का भी नितान्त अभाव है और दृष्टि विहीनता भी इसमें खूब है। यह पुन वही मैकालियन पद्धति का बोझिल भार है और इसमें सुझाये गये पाठ्यक्रम का पुन व्यावहारिक जीवन जगत से कोई सम्बन्ध जुड़ना सम्भव नहीं है। इसमें व्यावहारिकता का नितान्त अभाव है। श्रम की महत्ता का तो इसमें पूर्णत बहिष्कार ही किया गया है। कार्यानुभव को जगह जगह पर रखा अवश्य है किन्तु प्रवेशिका तक आते आते उस भी उसकी सौत (शारीरिक शिक्षा) के जोड़कर एकदम पंगु बनाकर अतिरिक्त वैकल्पिक विषय के रूप म बदल दिया गया है। असल में आज तो आवश्यकता इस बात की थी कि कार्यानुभव को हर स्तर पर अनिवार्य बनाया जाय और हर स्तर पर शिक्षा क्रम को किसी न किसी उद्योग के साथ अवश्य जोड़ा जाय।

विद्यालयों में आज और महाविद्यालयों में कलकी नीति घातक है

इसकी सफलता भी इसी पर निर्भर करती है कि हम द्विवर्षीय प्रवेशिकोत्तर और त्रिवर्षीय स्नातक वर्गों के लिए जो भी पाठ्यक्रम बनायें उसका निर्धारण भी इसीके आलोक में किया जाय। विद्यालयों में आज और महाविद्यालयों में कल की यह वर्तमान नीति तो एकदम ही घातक है और यह शिक्षा को असल में नितान्त ही कृत्रिम और हानिकर विभागों में बाँट देती है। हमें शिक्षा के समग्र पर हमेशा विचार करना होगा और इस नयी कही जानेवाली योजना में यह सचमुच दुख का बात है कि इस प्रकार के समग्र दृष्टिकोण का नितान्त ही अभाव है।

शिक्षा में एकांगी परिवर्तन असंभव व घातक है

फिर यह भी इस सन्दर्भमें विचार करने का बात है कि क्या शिक्षकों और प्राचार्यों के बीच आज व्याप्त समान काम के समान वेतन की आकांक्षायें और उसके साथ ही पुन आकाशीय असमानताओं से उत्पन्न असन्तोष जो है इसमें सहभागी बनने देगा? यह प्रश्न है जिस पर हमें विचार करना ही होगा। प्राथमिक और मध्य विद्यालयों के शिक्षकों से कम वेतन भोगी बिहार के करीब दस हजार गैर-राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को अपने पेशे के प्रति क्या हम इस तरह से वफादार बनने को

लिये प्रेरित कर सकगे ? फिर जब तक शिक्षा का परीक्षा से, परीक्षा का पेशे स और डिग्री का नौकरी से सम्बन्ध है तब तक क्या दिन दूनी रात चौगुनी चाल से बेलगाम पब्लिक स्कूलो और तथा कथित कोचिंग इन्स्टीटयूटो की बढती हुई महामारी क्या किसी भी शिक्षा नीति को कारगर होने देगी ? फिर क्या सरकारी शिक्षको की सेवा की तो अति सुरक्षा और गैर राजकीय शिक्षको की सेवा की अति असुरक्षा शिक्षको को वफादारी का पाठ सीखने के लिये भी प्ररित कर सकेगी ? बिहार की इस नयी शिक्षा योजना में भी इस तरह शिक्षा के किसी भी प्रगतिशील कदम से अनिवायत जुडे प्रश्नो पर कोई विचार नही किया गया है। इस तरह के एकागी विचार से क्या होगा।

इसलिय अब भी समय है जब हम शिक्षा के सवाल पर उसके समग्र के सन्दभ में ही विचार करें और उसके ही आलोक में शिक्षा नीति का निर्धारण करें। नहीं तो फिर शायद इस शिक्षा योजना का भी वही हाल होगा जो अब तक बिहार की अन्य प्रायोगिक शिक्षा योजनाओ का होता रहा है।

समीक्षार्थ पुस्तकें प्राप्त

१–जयवर्द्धन	श्री जैनेन्द्र कुमार
२–दि अन्डर एचीविंग स्कूल,	श्री जान हाल्ट
३–कुरुक्षेत्र (नाटक)	डा एन चन्द्रशखरन् नायर
४ हारकी जीत (कहानी सग्रह)	"
५–सेवाश्रम (नाटक)	
६–देवयानी (नाटक)	"
७–भारतीय साहित्य और कलायें (भाग–१)	"

'नयी तालीम' में समीक्षार्थ भेजी जाने वाली पुस्तको की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है। समीक्षा निकलने पर लेखक कृपया अवश्य सूचित करें कि समीक्षा उन्हें कैसी लगी।

—सपादक

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा का प्रारूप :

शिक्षा आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति का एक प्रबल साधन है। वह न केवल व्यक्तियों को अपने निजी विकास के साधन ही प्रदान करती है अपितु वही देश को कुशल और प्रभावशाली कार्यकर्ता भी प्रदान करती है। चौथी योजना में हमने शिक्षा के जो लक्ष्य तय किये थे वे कई कारणों से, खासकर प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर, प्राप्त नहीं हो सके हैं। हमने चौथी योजना में प्राथमिक माध्यमिक, हायर सेकेन्डरी और विश्व विद्यालय स्तर पर तय किया था कि हम इनमें क्रमश ६८५,८०, १८१०० २६९९० और २६६० लाख छात्रों को भर्ती कर सकेंगे किन्तु हम केवल क्रमश ६३७५४, १५०२९ ८५०० और ३० लाख लोगों को ही भर्ती कर सके हैं। इस प्रकार से सिवाय विश्व विद्यालय स्तर को छोड़कर हम कहीं भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके हैं।

अब पाचवी योजना में शिक्षा में तेजी से विकास करने का लक्ष्य है। इसके चार मुख्य आधार रखे गये है —

(१) सामाजिक न्याय की दृष्टि से सबको समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना।

(२) विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के साथ शिक्षा का निकट सम्बन्ध कायम करना।

(३) शिक्षा के स्तर में सुधार करना, और

(४) छात्रों तथा अध्यापकों को सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रम के साथ संलग्न करना।

योजना के व्यय-लक्ष्यांक :

कुल मिलाकर पाँचवी योजना में चौथी योजना के मुकाबिले नीचे लिखी राशियाँ खर्च करने का प्रावधान है —

शीर्षक	चौथी योजना	पाचवीं योजना (रु करोड में)
(१) प्राथमिक शिक्षा	२३९ करोड	७४३ करोड
(२) सेकेन्डरी शिक्षा	१४० करोड	२४१ करोड
(३) विश्व विद्यालयीन शिक्षा	१९५ करोड	३३७ करोड
(४) सामाजिक शिक्षा	४५ करोड	३५ करोड
(५) सांस्कृतिक कार्यक्रम	१२ करोड	३५ करोड
(६) अन्य	८९५ करोड	१७१ करोड
(७) टेकनोकल शिक्षा	१०६ करोड	१६४ करोड
(८) कुल योग	७८६ करोड	१७२६ करोड

याने टेकनोकल शिक्षा को छोड़कर सामान्य शिक्षा पर कुल व्यय का चौथी योजना के ८७ प्र श से बढ़कर अब ९१ प्र श व्यय करने का प्रावधान है। इसके साथ ही अलग से ११२ करोड रुपये बालकों को मध्यान्तरीय पौष्टिक आहार (मिड डे माल) योजना के लिये और लगभग १५०–१६० करोड रुपया अतिरिक्त शैक्षिक कार्यक्रमों के लिये समाज कल्याण के अन्तर्गत रखे गये हैं। यदि इन व्ययों को भी हम शिक्षा के सामान्य व्यय में मान ले तो यह राशि कुल मिलाकर १८३४ करोड की होती है। इसमें टेकनोकल शिक्षा अलग है।

प्राथमिक और प्रौढ शिक्षा पर जोर देने के साथ साथ कमजोर वर्गों को विद्यालयों में लाने, विकास के साथ शिक्षा का सम्बन्ध कायम करने, पाठ्यक्रम में सामाजिक दायित्वों को शामिल करने और परीक्षा तथा शिक्षण प्रशिक्षण पद्धतियों में सुधार करने आदि की बातें इसमें शामिल की गई हैं। सन् ७८–७९ तक यह आशा की गई है कि हम प्राथमिक कक्षाओं में ६३७ ५४ से ७८२ ०७ तक, माध्यमिक कक्षाओं में १५० २९ से २१५ ८० तक, सेकेन्डरी स्तर पर ८५ ०४ से ११२ ०८ तक और विश्वविद्यालय स्तर पर ३० से ४६ ५० लाख तक पहुँच सकेंगे। याने प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हम क्रमशः ९७ ०१, ४७ ०१, २६ ०१ और ६ प्रतिशत बालकों को कक्षाओं में भर्ती कर सकेंगे। इसी प्रकार से पूर्व-शालीय शिक्षा

पर भी जोर दिया गया है और बालवाडियां तथा आंगनवाडियां को प्रोत्साहन देने के साथ ही कुछ चुने हुये प्राथमिक विद्यालयों में बाल क्रीडा केन्द्र स्थापित करके उन्हें सभी सुविधायें प्रदान की जायेंगी। शिक्षा के अलग-अलग कार्यक्रम इस प्रकार हैं —

प्राथमिक शिक्षा :

संविधान में ६ साल से १४ साल तक के बालकों के लिये शीघ्र ही अनिवार्य सार्वभौम शिक्षा की व्यवस्था करने का आदेश था। इस दृष्टि से हम अभी बहुत पीछे हैं। चौथी योजना में प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय २३९ करोड़ था जो अब ७४३ करोड हो गया है किन्तु इस पर भी हम संविधान की मंशा पूरी नहीं कर सकेंगे। पाँचवीं योजना में हम ६ से ११ साल तक के ९७ प्र० श० बालकों और ११ से १४ साल तक के ४७ प्र० श० बालकों को ही कक्षाओं में ला सकेंगे। इसका अर्थ है कि पहली से पाँचवीं कक्षा तक के कुल १४५ लाख और छटी से ८ वी तक के ६६ लाख अतिरिक्त बालकों के लिये हमें शिक्षा की सुविधायें जुटाना होगी। इसके अलावा ११ से १४ साल के ७८ लाख बालकों के लिये कुछ अंशकालीन (पार्ट-टाइम) शिक्षा की भी व्यवस्था की गई है। अब यदि हम अपने ये लक्ष्य भी प्राप्त कर पाये तो आशा की जाती है कि हम अगली, याने ६ टी योजना, अर्थात् सन् १९८४ तक शायद संविधान की मंशा पूरी कर सकेंगे। अभी प्राथमिक शिक्षा में खासकर पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जातियों के बालकों को विशेष सुविधायें देना जारी रहेगा और उनके लिये अन्य निशुल्क सुविधाओं के साथ साथ कुछ 'आश्रम-स्कूल' भी कायम किये जायेंगे।

प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक विकास का ओर भी ध्यान दिया गया है। इसमें पाठ्यक्रमों के कुछ सुधार और परिवर्तन करने के साथ ही शिक्षकों के पूर्व सेवा और सेवा कालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी होगी और राज्य शिक्षा संस्थाओं में सुधार के साथ ही शिक्षा को विकास के साथ जोडकर यह प्रयास होगा कि शिक्षा आत्म रोजगारी (सेल्फ-इम्प्लायमेंट) देने वाली बनने के साथ ही ठोस शैक्षिक प्राप्ति (एज्युकेसनल रिटर्न) करनेवाली भी हो। इस दृष्टि से विद्यालय और छात्रों का पंचायतों और सहकारी संस्थाओं के कार्यक्रमों के साथ संलग्न करने का विचार है। इससे कार्यानुभव के द्वारा शिक्षा की आवश्यकतायें पूरी होंगी यह आशा की गई है। कुछ चुने हुये विद्यालयों में सूचना और प्रसारण मंत्रालय की योजना के अन्तर्गत सामुदायिक टेलीविजन सेट और रेडियो सेट देने तथा सभी में विज्ञान किट देने की भी व्यवस्था की गई है। इसके लिये इन संस्थाओं का राज्य शिक्षा संस्थानों और आकाशवाणी के साथ सम्पर्क रहेगा।

- प्राथमिक शिक्षा में प्रयोग की दृष्टि से प्रयोग-विद्यालयों (एक्सपेरिमेंटल-स्कूल्स) में भी सुधार होगा और एन सी ई आर टी तथा राज्य शिक्षा संस्थानों में भी इस दृष्टि से कुछ सुधार करने का प्रावधान है। उनमें स्थानीय भौतिक और मानवीय साधनो का सदुपयोग करने की ओर ध्यान दिया जायेगा और इन संस्थानों का आसपास के दस-पन्द्रह शिक्षण विद्यालयो के माध्यमसे फिर प्राथमिक विद्यालयो के एक बडे समूह के साथ सम्बन्ध कायम कर दिया जायेगा।

सेकेण्डरी शिक्षा विकासके साथ साथ .

सकेन्डरी स्तर पर शिक्षा के विस्तार के साथ साथ शिक्षा को देश की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओ के साथ घनिष्ठता के साथ जोड़ देने का प्रस्ताव है। इसका उद्देश्य यह है कि शिक्षा विश्व विद्यालयो में प्रवेश का तैयारी होने के बजाय छात्रो के लिये विभिन्न व्यवसाय अपनाने के साधन और अवसर प्रदान करे। पाँचवी योजना में १४ से १७ साल तक के बालको के लिये ७३–७४ में २२ ०० के बुकाबिले ७८ ७९ तक २६ ०१ प्र श की भर्ती का लक्ष्य रखा गया है। इस प्रकार से कुल २७ लाख अतिरिक्त बालको के लिये शिक्षा का सुविधायें पैदा करनी होगी। अब तक अपनाई जाने वाली फोस माफी की प्रवृत्ति को इसमें अब हतोत्साहित करना होगा, क्योकि इससे सार्वजनिक कोष पर भारी बोझ तो पडता ही है साथ ही उससे दूसरे कमजोर वर्गों के लिये शिक्षा सुविधायें प्रदान करने में भी दिक्कत आती है। इसके बदले में कमजोर वर्गो को निशुल्क शिक्षा और छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने और जो लोग शाघ्र हो जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं उन्हे पत्राचार पाठ्यक्रमका सुविधायें प्रदान करने का ओर ध्यान दिया गया है।

व्यवसायीकरण की ओर

सकेन्डरी शिक्षा में कार्यानुभव और व्यावसाय करण को दिशा में मोडने की ओर भी ध्यान है। पाँचवी योजना का यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा। छात्रो को पूर्व मैट्रिक स्तर पर ही कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण लेने के लिये प्रोत्साहन दिये जायेंगे और इसके लिये विद्यालयो को व्यावसायिक सूचनाओं और मार्गदर्शन की सुविधायें उपलब्ध कराने का ओर विशेष ध्यान दिया गया है साथ ही काम पर शिक्षण (आन द जाब ट्रेनिंग) के लिये स्थानीय आवश्यकताओ को ध्यान में रखकर कुछ विशेष सुविधायें देने का व्यवस्था की गई है। व्यावसायिक ट्रेनिंग देनवाली संस्थाओ, पौलिटेकनीक और खेती का शिक्षण देनेवाली संस्थाओ में नियमित छात्रो के अलावा अन्य लोगोंको भी कुछ व्यावसायिक शिक्षण देने के विचार से उन्हें क्षेत्र की समस्याओ से साथ जोड़ने का प्रयास किया जायेगा। इसके लिय उन्हें सामान्य शिक्षा के साथ

व्यावसायिक शिक्षा की जानकारियों और तथ्यों से युक्त किया जायेगा और विभिन्न प्रकार के कौशल प्रदान करने वाले कार्यक्रम हाथ में लिये जायेंगे। इसके लिये एक अंतर विभागीय समिति भी कायम की गई है जो कि इसके लिये एक समन्वित कार्यक्रम तैयार करके उसके क्रियान्वयन के मार्ग भी सुझायेंगी।

इस क्षेत्र में प्रायोगिक स्कूलों को भी प्रोत्साहन दिया जायेगा। इसके लिये प्रत्येक ट्रेनिंग कालेज के साथ एक स्कूल जुड़ा होगा जो उसके मार्गदर्शन में काम करेगा। प्राथमिक विद्यालय की दशा में उसका सम्बन्ध फिर राज्य शिक्षा संस्थान और उसके माध्यम से एन सी ई आर टी के साथ भी जुड़ा रहेगा।

पाँचवी योजना में १०+२+३ के क्रम को मान्य किया गया है। शिक्षा आयोग ने यह सुझाया था कि ११ वी और १२ वी कक्षाओं को स्कूलों के साथ ही जुड़ा रखना चाहिये। कहीं कहीं ये कक्षायें कालेजों के साथ जोड़ी गई हैं और कहीं इन्हें अलग अलग स्कूलों और कालेजों में रखा गया है। किन्तु चाहे जो पैटर्न हो यह आवश्यक है कि ये कक्षायें हायर सेकेन्डरी शिक्षा बोर्डों के मातहत हो काम करें। साथ ही इस सारे ढाँचे से भरपूर लाभ लेने के लिये यह भी आवश्यक है कि सेकंडरी शिक्षा का सम्पूर्ण व्यावसायीकरण कर दिया जाय।

विश्व-विद्यालयीन शिक्षा समस्या की विविधतायें

विश्व विद्यालय स्तर पर हमारे सामने आज भौतिक सुविधाओं के विस्तार के बिना ही तेजी से विश्व-विद्यालयों की संख्या में वृद्धि, सामुदायिक जीवन से उनका कोई सम्बन्ध न होना, उनके शिक्षक समुदाय की गुणवत्ता और आकार में भी किसी प्रकार के सुधार के बिना ही छात्रों की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप शिक्षा के स्तर में भारी गिरावट और स्नातकोत्तर युवकों की बेकारी में वृद्धि, आदि की समस्यायें हैं। पाँचवी योजना में इस दृष्टि से कुछ कार्यक्रम हाथ में लिये गये हैं। विश्व-विद्यालयों में भीड़ कम हो इसके लिये भर्ती की एक ऐसी नीति का विकास आवश्यक है, जिससे कि भीड़ कम होने के साथ ही आवश्यक स्थिति में सबके लिये उच्च शिक्षा की सुविधायें भी उपलब्ध हो सकें। इसके लिये हायर सकेन्डरी स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण करना आवश्यक है ताकि ज्यादे लोग उसी स्तर पर कोई काम करने में लग जायें और साथ ही गुणवत्ता तथा कुछ निश्चित मानदंडों के आधार पर निर्धारित संस्थाओं में भर्ती की सीमा बाँधने, पत्राचार (कारस्पान्डेस कोर्सेस) पाठ्यक्रम को प्रोत्साहन देने निजी अध्ययन के लिये सुविधायें जुटाने और कोचिंग कक्षाओं तथा सायंकालीन कक्षाओं की व्यवस्था करने जैसी बातें भी करनी होंगी। योजना में इन सब बातों का ध्यान रखा गया है। साथ ही यह भी प्रावधान है कि जिन कामों के लिये विश्व विद्यालय की डिग्री आवश्यक नहीं है।उनके लिये डिग्री को प्रोत्साहन न

दिया जाय। इस ख्याल से अब विश्व विद्यालयो में कुल भर्ती का ५० प्र श, नियमित सस्थाओ में २० प्र. श, सायकालीन कालेजो में २० प्र श और निजी अध्ययनो में १० प्र श को खपाया जाय यह विचार रखा गया है। पोस्ट ग्रेज्युएट स्तर पर भी भर्ती के लिये चयन प्रणाली बनाने के लिये व्यवस्था की गई है। और इसमें भी वैज्ञानिक और तकनीकी खोजो की दृष्टिसे विश्व-विद्यालयो और सस्थाओ को प्राथमिकता देनी होगी। इन उच्च शिक्षण सस्थानो में शोध कार्यक्रमो को इस ढग से चलाना होगा ताकि वे उत्पादक बन सके और इसके लिये शोधकार्य को उच्च स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी नियोजन के कार्यक्रम के साथ जोड दिया गया है। इसके साथ ही वर्तमान सुविधाओं में विस्तार और 'साइन्स सर्विस सेन्टर' और सामान्य सगणक (कम्प्यूटर्स) सुविधायें भी प्रदान की जायेंगी। शिक्षा की गुणवत्ता बढाने के लिये यह सोचा गया है कि विश्व-विद्यालयो में आतर-विषयो अध्ययनो (इन्टर डिसिप्लेनरी स्टडीज) और शोधो के हो आधार पर पाठ्यक्रमो में आवश्यक परिवर्तन करने का काफी स्वतन्त्रतायें सस्थाओ को दी जाय तथा स्नातक में रोजगारी की सभावनायें बढाने के लिये विषयो को सामान्य समस्याओ और सामाजिक उपयोगिताओ को लेकर पुनर्गठित किया जाय। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ने परीक्षा सुधार का जो कार्यक्रम जारी किया है वह बढाया जायेगा और कुछ कालेजों को स्वायत्त कालेज (ऑटोनामस कालेज) के रूप में विकसित होने के लिये पाठ्यक्रम शिक्षण पद्धतियो और छात्र मूल्याकनो के क्षेत्रो में प्रयोगो को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

सख्या विस्तार नहीं

आगे से नये विश्व-विद्यालय स्थापित करनेकी दिशा में एक बुनियादी नीति यह तय की गई है कि अब इस प्रवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिये। आज की हालात में एक विश्व विद्यालय को स्थापित करने का तात्पर्य यह है कि हम बिना किसी पर्याप्त शैक्षिक और बौद्धिक औचित्य के ही एक भारी भरकम रकम व्यय में ही खच कर दें। इसलिये वर्तमान पोस्ट ग्रेज्युएट कालेजो को ही उस प्रकार की शोधो और उच्च स्तर के अध्ययन आदि के लिये सुविधायें दी जायें जिनके लियें ही विश्व विद्यालय का औचित्य माना जाता है और माग की जाती है। दूसरी बात यह है कि अब खुले विश्व विद्यालयो की पद्धति को भी प्रयोग का खुला अवसर दिया जायेगा।

भाषा शिक्षण :

पांचवी योजना में इस विषय में भी कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव हैं। भाषा शिक्षण के आधुनिक कार्यक्रम और पद्धति को प्रोत्साहन देने के साथ ही विभिन्न

भाषाओ के प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्तिया या नये शिक्षकों का प्रशिक्षित करने की दिशा में भी काम होगा। हिन्दी क्षेत्रो में हिन्दीतर भाषी क्षेत्रो से और गैर हिन्दी क्षेत्रो में हिन्दी भाषी शिक्षको का नियुक्तिया को प्रोत्साहन दिया जायेगा। साथ ही क्षेत्रीय भाषाओ म उच्च स्तर की पाठ्य पुस्तके तैयार करने और विदेशी तथा भारतीय भाषाओ के ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद करन के लिये एक उच्च स्तरीय सस्थान कायम करने का प्रस्ताव है। उसी प्रकार स सस्कृत शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया जायगा और सस्कृत में साहित्य निर्माण के लिये भी सस्कृत सस्थाओं को सभी प्रकार की सुविधायें दी जा सकेगी।

सामाजिक शिक्षा और युवक कार्यक्रम

विगत अनुभवो को ध्यान में रखकर इन क्षेत्रो में अब कुछ परिवर्तन किये गये है। अब समाज शिक्षा को सामाजिक विकास और आर्थिक निर्माण को क्रियाओं के साथ जोड दिया गया है। और उसी प्रकार से प्रौढ शिक्षा को भी प्राथमिक शिक्षा, परिवार नियोजन स्वास्थ्य और कृषि विस्तार तथा सहकारिता कायक्रमो के साथ जोड दिया गया है। खास तौर पर उत्पादन से घनिष्ठतया जुड क्षेत्रो में प्रौढ और समाज शिक्षा को विकास कायक्रम के साथ जोड देन का प्रणाली विकसित को जायगी। यह काम शिक्षा विभाग की मदद और मार्गदर्शन में होगा। विस्तार शिक्षा के लिये युवक-केन्द्रो अथवा नवयुवा और नेहरू युवक केन्द्रो को व्यवस्था को जायगी। अभी तक इस क्षेत्र म उपयुक्त साहित्य का भी अभाव रहा है और पाँचवी योजना में इस ओर भी ध्यान दिया गया है। अब देश में लगभग सभी राज्यो में पाठ्य-पुस्तको का पूर्ण राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। इस चीज को प्रोत्साहन देन के साथ ही इसके लिये भी सपादन उत्पादन अनुवाद और बिक्री आदि के लिये एक राष्ट्रीय और फिर कुछ क्षेत्रीय सस्थान भी कायम करने की व्यवस्था की गई है। छात्रो के लिये पहली योजना स ही प्रस्तावित राष्ट्रीय सेवा योजना को अब अनिवार्य कर दिया गया है और उसे आसपास के क्षेत्र में समाजोपयोगी कामों और योजनाओ स सम्बद्ध कर दिया गया है। विद्यालयो में खेल कूदको सुविधायें भी बढा दी गई है।

टकनीकल शिक्षा

चौथी योजना में डिग्री में २५००० और डिप्लोमा में ५०००० की भर्ती का लक्ष्य था किन्तु अभी तक हम क्रमश १८००० और २७००० के लक्ष्य ही प्राप्त कर सके हैं। इसका कारण खासकर इंजीनियरो में फैली बेकारी रहा है। ७३-७४ तक शायद यह सख्या क्रमश २०००० और ३७००० तक आ जाय। अभी देश में

कुल २७००० छात्रों को भर्ती कर सकने लायक केवल १३८ इंजीनियरिंग कालेज हैं और ५० हजार के लायक ३०७ पोलीटेकनीक हैं। अब पाँचवी योजना में इस बात पर खास जोर है कि इस प्रकार की शिक्षा को पहले से ही काम कर रहे लोगों की कुशलता बढ़ाने के लिये भी लगाया जाय और शिक्षा-क्रम में तकनीकी परिवर्तनों के साथ सरलता से समायोजन करने के लिये कम समय और पुनः स्मरण के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गई है। इस दृष्टि से निजी और सार्वजनिक दोनों ही उद्योगों का भारी दायित्व है।

(योजना-आयोग द्वारा प्रकाशित पाँचवी पंचवर्षीय योजना से।)

शांति दिवस बिल्ला

शांति दिवस तथा गांधी स्मृति के लिये शांति दिवस बिल्ले तैयार किये गये हैं। उसकी कीमत प्रति बिल्ले १० पैसे हैं। २०० से अधिक बिल्ले मँगाने वाले को सेफ्टीपिन के बिना ६ रु. सैंकड़े की दर से भी मिल सकेंगे। डाक व्यय अतिरिक्त देना होगा। बिल्ले ३० जनवरी के बाद भी बेचे जा सकते हैं।

रकम नीचे लिखे पते पर अग्रिम भेजें या वी. पी. से मँगायें :—

अ. भा. शांतिसेना मंडल, राजघाट, वाराणसी २२१००१ उ. प्र.।

विल्फ्रेड वेलॉक

भारत अपनी दिशा पहचाने

मेरे विचार स भारत के लिये वर्तमान समय अत्यन्त महत्व का है। यह एक ऐसा समय है जो न केवल उसके भावी इतिहास को ही प्रभावित करेगा अपितु यही उसकी नैतिक शक्ति और स्थायित्व की भी एक बडी कसौटी होगी। भारत के औद्योगिक विकास की समस्या उसके लिये अनिवार्यत एक ऐसी नैतिक समस्या है जब कि उसे बहुसख्या के भौतिक और नैतिक कल्याण की कीमत पर कुछ लोगो के द्वारा असीमित सम्पत्ति जमा करने की छूट देने और समस्त राष्ट्र के बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास पर जोर देने के बीच चुनाव करना होगा।

आज की बडी आवश्यकता

ब्रिटिश औद्योगिक पद्धति बहुसख्या की स्वतन्त्रता का नकार है, यह अनगिनत सामाजिक बुराइयो का प्रत्यक्ष कारण है। इसका एक झूठा नैतिक आधार है। भारत को चाहिये कि वह अपने बटे-बेटियो को एक नया सामाजिक आदर्शवाद प्रदान करे कि जीवन स्वय एक कला है और भारत को उन्हे मानव कल्याण की सही स्थितियो का दर्शन कराना चाहिये। ब्रिटेन तथा भारत दोनो में ही उस भयानक झूठ पर, जो आज पश्चिमी अर्थशास्त्र की बुनियाद है, कि व्यापार का मुख्य उद्देश्य अपने तथा परिवार के लिये असीमित धन पैदा करना है, करारी चोट करने की आवश्यक्ता है। यह काम उस शिक्षा की अपनी नई पद्धति के द्वारा करना चाहिये। पश्चिम का यह आदर्श केवल मनुष्य के अहं और स्वार्थ को ही उभाडता है जब कि हम जानते है कि यदि हम तेज जहर ग्रहण करें तो हम मर जायगे किन्तु यह बहुत कम लोग ही अनुभव करते है कि स्वार्थपरता तो हमारी आत्मा में ही जहर घोल देती है और शरीर को जीवित रखते हुये भी मनुष्य को मार देती है।

शिक्षाका मूल तत्व

शिक्षा का मूल तत्व आध्यात्मिक सत्य की खोज या शोध और जीवन के हर स्तर पर सही मानव सम्बन्धो के नियमो की,खोज करना होना चाहिये। शिक्षा ऐसी होनी चाहिय जो १६ साल की उम्र तक के हर बालक-बालिका को सम्यक् रहन-सहन की असीम सभावनाओ की स्पष्ट प्रतीति करा सके। गाधी जी ने भारत के लिये जो शिक्षा दर्शन पेश किया है वह भारत की इस आवश्यकता को सम्पूर्णत पूरा कर सकता है, भारत को उस ओर ध्यान देना चाहिये।

भारत के युवकों से एक अपील

मै भारत के मित्रो और खासकर युवक युवतियो स एक हार्दिक अपील करना चाहता हूँ। क्योकि मै जानता हूँ कि भारत के युवक मित्र भारत के भविष्य की दृष्टि से वर्तमान परिस्थितियो का पूरा पूरा महत्व नही समझ रहे है। आज का भारत एक नये युग की देहली पर खडा है। उसे शीघ्र ही अपने दीर्घकालीन इतिहास में अत्यन्त महत्व का निर्णय लेना होगा। अब उसे अपनी प्राचीन परम्पराओ और पश्चिम के शक्तिशाली राष्ट्रो को तेजी स जकडनवाले क्रूर भौतिकवादी पजो के बीच घसीटे जाने में चुनाव करना होगा। उसके पास इसके सिवा और कोई विकल्प नही है।

भारत के दिग्भ्रमित युवक

भारत के हजारों युवक-युवतियाँ छात्रो के रूप में यूरोप और अमरीका आते हैं। वे हमारी समृद्धि देखकर उसकी चमक दमक से अभिभूत होते है किन्तु उनमें से अधिकाश छात्र सतह के नीचे देख सकन मे नितान्त असमर्थ होते है कि पश्चिम की यह समृद्धि पश्चिम की जनता के लिए क्या क्या कहर ढा रही है। यह समृद्धि हमारे पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और नैतिक जीवन को किस प्रकार स गिरा रही है और यह हमारे लिय सृजनात्मक जीवन जीने के लिय उत्साह और आध्यात्मिक आकाक्षाओ के तमाम स्रोतो को तेजी से खात्मा करती जा रही है यह वे युवक नही देख पाते हैं। किन्तु इस समृद्धि से लोगो को भीतर से कम स कम मूल्य प्राप्त हो रहे है और लोग अपने आनन्द तथा दुखो स छुटकारे के लिये अब अधिक स अधिक बाहरी साधन स्रोतो पर निर्भर होते जा रहे है। इस समृद्धि न हमें किस प्रकार न केवल भौतिक रूप में ही अपितु नैतिक और आत्मिक रूप मे भी स्थाई दास बना लिया है, यह सब य युवक नही देख रहे है। रोज रोज पैस पर निभरता बढती जा रही है और इसके कारण हमें गहरी खाइयो की तरफ धकेल कर ले जाने वाली प्रवृत्तिया की एक शृखला ही पैदा हो गई है। इसलिए भारत क युवक चेतें।

पश्चिम स भारत आने वाला हर यात्री एक तरफ भारत के कुछ सम्पन्न और सुसस्कृत आभिजात्यो की ऊँची आध्यात्मिक गुणवत्ता और दूसरी तरफ उसकी भयानक गरीबी और भिखमगो की प्रचड समस्याओं को दखकर विस्मित हो जाता हैं। किन्तु भारत के मध्यमवर्गीय लोगो न यह सब स्वाभाविक सा मान लिया हैं। किन्तु, उन्हे यह याद रखना चाहिय कि इस प्रकार की उदासीनता स अब अधिक दिन काम नही चलेगा। इस प्रकार की अतार्किक अमानवीय असमानताओं क दिन अब लद गय/ हैं।

अतत: सारी दुनिया में फैलेगा

मैं समझता हूँ कि इस सदी का अगामी चतुर्थांस यह तय कर देगा कि भारत लोकतन्त्र रहेगा या साम्यवाद उसे जकड लेगा। यदि वह लोकतान्त्रिक रह सका तो इसका कारण यह होगा कि वह अपनी पूरी ताकत से देश को ग्रामीण स्वायत्त समुदायो के रूप में सगठित करने में लग जायगा, जैसा कि गाधीजीन साफ साफ देखा था और कहा था, और यदि सभ्यता को समूलत: नष्ट होन स बचना है तो अन्तत सारी दुनिया म भारत का यह आदर्श फैल जायगा।

सरस्वती पूजा के लिये प्रतिमा का निर्माण कर पूजा प्राप्ति के बाद उसी प्रतिमा से दुर्गापूजा का समाधान हो जायगा, ऐसा सोचना जिस प्रकार मदबुद्धि का परिचायक है, उसी प्रकार आजादी प्राप्ति की प्रतिमा के सहारे लोकतत्र का भी अधिष्ठान हो जायगा, ऐसा सोचना अत्यत भ्रामक है। ऐसा समझना चाहिये। पैसा बटोर बटोर कर एक हजार रुपया खर्च कर घोडा खरीदा। उसी एक हजार रुपये में गाडी भी हो जायेगी, यह सोचना कितना गलत है, यह तुम लोग सोच ही सकते हो।

—धीरेन्द्र मजूमदार

ग्रामीण युवक स्वावलंबी प्रशिक्षण विद्यापीठ, सेवाग्राम का प्रगति विवरण

इस विद्यापीठ का आरम्भ गत २ अक्टूबर, १९७३ को पूज्य विनोबा जी की अनुमति और सम्मति से किया गया था। इस विद्यापीठ का उद्देश्य गांधीजी ने देश के सामने शिक्षा की जो कल्पना रखी थी उसे साकार रूप देना है। गांधीजी ने देश के हर गांव को स्वायत्त स्वावलम्बी गणतन्त्र के रूप में विकसित होने की कल्पना की थी और बुनियादी शिक्षा को इस समाज का आधार बनना था। पूज्य विनोबा जी ने फिर ग्रामदान-ग्राम स्वराज्य के कार्यक्रम के द्वारा इस कल्पना को एक ठोस आधार प्रदान किया। इस पृष्ठभूमि और देश की वर्तमान परिस्थिति के सन्दर्भ में तब अखिल भारत नयी तालीम समिति ने निश्चय किया कि सेवाग्राम में नयी तालीम का एक ऐसा प्रशिक्षण हो जिसके बाद प्रशिक्षार्थी अपने ग्रामीण सन्दर्भ को और भी पुष्ट और पूर्ण बना सके जो आज शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है। इस प्रकार का शिक्षण गांव के विकास के लिये सरकार-निरपेक्ष आधार खड़ा करेगा और प्रशिक्षार्थी को स्वावलम्बी जीवन बिताने में मदद करेगा यह अपेक्षा की जाती है। इस प्रयोग का गत अक्टूबर और नवम्बर माह का प्रगति विवरण यहां प्रस्तुत है।

प्रशिक्षण गत २ अक्टूबर, ७३ को आरम्भ हुआ। आरम्भ में इसमें चार छात्र आये। अपेक्षा यह थी कि इसमें सारे देश से कम से कम २५ छात्र लिये जायें। किन्तु, इसका एक कारण तो यह रहा कि हम इसका सम्यक् प्रचार नहीं कर सके हैं। इसलिए अभी इसमें केवल महाराष्ट्र (वर्धा जिला) से चार, गुजरात से दो तथा बंगाल से एक छात्र आया है और अब यहां कुल ७ छात्र हैं। शिक्षण का माध्यम हिन्दी रखी गई है। छात्रों की औसत उपस्थिति ५ रही।

पाठ्यक्रम में खेती, बागवानी, तथा वर्कशाप का काम ही मुख्य रहा है। खेती के काम की योजना विभाग प्रमुख श्री अनतराम भाई जी और छात्र मिलकर तय करते हैं। इसमें मुख्यत प्लाट्स तैयार करना, गेहूँ बोना, खाद देना, सिंचाई करना, सब्जी पर स्प्रे करना, सीड प्रोग्राम तैयार करना, और काटन (रुई) पाल्युनेसन आदि का ही काम किया गया है। रोज ४ घटे के हिसाब से खेतो में छात्रो ने कुल ५० दिन काम किया है जिसकी मजदूरी के रूप में उन्होने कुल १९५ रु ५० पैसे की आमदनी की है। उनका इस बीच का कुल भोजन खच औसतन २०० रु का रहा है। इसका अर्थ है कि यदि छात्र रोज ४ घटा काम करें तो वे शिक्षा में स्वावलम्बी हो सकते हैं।

अम्बर कताई

इसके अलावा स्वावलम्बन की दृष्टि से १ घटा रोज अम्बर पर काम करना भी अनिवार्य माना गया है। इन दो माहो में छात्रो ने कुल ११० गुडो सूत का उत्पादन किया है और उसका कपडा बुनकर छात्रोको दिये जाने की व्यवस्था बुनाई शिक्षक कर रहे है। सामान्यत इतने सूत से न केवल छात्र अपने ही अपितु कुछ और के लिये भी वस्त्र में स्वावलम्बन प्राप्त कर सकते है यह सिद्ध हुआ। यह याद रहे यह केवल शिक्षण के लिये ही किया जा रहा है और दिन में केवल एक घटा ही कताई होती है। यदि यह काम जीविका की भी दृष्टिसे किया जाय तो हम कह सकते है, कि इस आधार पर भी आदमी स्वावलम्बी ही नही अपितु उससे अपनी अन्य आवश्यकताय भी पूरी कर सकता है।

अभी चूंकि खेती का ही अवसर रहा है अत खेती में ही समय दिया गया है। इसलिये गोपालन और वर्कशाप में छात्र समय नही दे पाये। यह अब आगे आरम्भ होगा। अब वे कम्पोस्ट बनाना, गोपालन में पशु की देखभाल के साथ साथ नस्ल सम्बन्धी ज्ञान आदि भी प्राप्त करेंगे। उसके साथ ही बकरी का काम और यत्रशाला का काम भी आरम्भ होगा।

छात्रो का दैनिक अभ्यास

प्रत्यक्ष काम के साथ ही रोज दो घट के लिये बौद्धिक वर्ग भी चलाये जाते हैं। इन वर्गों के विषय हैं सवधम समभाव और समन्वय की दृष्टि से सवधम प्रार्थना, तथा सत वाड्मय, सामाजिक अध्ययन और सम सामयिक परिस्थितियो का विश्लेषण तथा चर्चा ग्रामीण स्वास्थ्य और सफाई तथा उसका आयोजन सर्वोदय साहित्य और ग्राम-स्वराज्य का विचार खासकर लोकतन्त्र के सन्दर्भ में, कृषि शास्त्र गणित और भारतीय सभ्यता। इसके साथ ही विद्यापीठ में और पास ही गाधी सेवा

संघ में भी एक अच्छा ग्रंथालय है जिससे छात्रों को पुस्तकें देकर उन्हें स्वतन्त्र अध्ययन के लिये भी प्रोत्साहित किया जाता है। वे जो कुछ पढते हैं या करते हैं उसका दैनिक विवरण अपनी डायरी (दैनंदिनी) में रखते है। पढ़ाई, काम या अन्य प्रकार की छात्रों की समस्याओ पर छात्र और शिक्षक मिलकर चर्चा करते है और फिर उसका हल निकालने का प्रयास किया जाता है। समस्या हल करने की इस प्रक्रिया में छात्र और शिक्षक मिलकर जो चर्चा करते हैं उसका परिणाम अच्छा आया है। छात्रो और शिक्षको में आज जो दूरी दिखाई देती है वह यहां सहज ढंग से समाप्त होकर उनमें परस्परता का सहज विकास होता है।

छात्रों के चारित्रिक विकास का भी एक लेखा जोखा रखा जाता है। इसमें उनके सामान्य काम के साथ ही उनमें सामुहिकता और पारस्परिकता के विकास पर भी ध्यान दिया जाता है। यह बात उनके इस प्रकार के लेखे-जोखे से प्रकट होनी चाहिये यह प्रयास रहता है।

छात्रो की आम सभा

माह में एक बार छात्रो की एक मासिक आमसभा भी होती है जिसम प्रत्येक छात्र के काम का विवरण पढा जाता है। उस पर फिर आम चर्चा होती है और उस पर से निकलने वाले सवालो का हल ढूढने का प्रयास सरल हो जाता है। यह बात ध्यान में रखने की है कि यह काम इस ढग से हो कि इससे छात्र में कोई हीन ग्रंथि न बने। इसलिये यह विवरण पठन आलोचना के लिये नही अपितु अन्वेषण के लिये हो यह प्रयास चेतना पूर्वक किया जाता है।

अभी असल में इस तरह के बुनियादी प्रयोग का सही सही मूल्यांकन करना बहुत शीघ्रता होगी। किन्तु इससे दिशा का निर्देश अवश्य होता है। हम यह काम इस अपेक्षा से कर रहे हैं कि देश के शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान बुनियादी शिक्षा के इस पहलू की ओर जाय और साथ ही इससे छात्र स्वावलम्बी होने के साथ साथ उनमें आत्म विश्वास और तटस्थ आत्म निरीक्षण का विकास हो सके।

संयोजक—
माधव गोडसे

—संचालक
के० एस० आचार्लु

–पुस्तक समीक्षा

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

एज्युकेशन आव दि फ्यूचर

एज्युकेसन आव दि फ्यूचर — लेखक – श्रीमन्नारायण। प्रकाशक – एस चांद एन्ड कम्पनी प्रा लि, राम नगर, नई दिल्ली, पृष्ठ सख्या –१४२, मूल्य – २० रु।

जीवन में शिक्षा का हमेशा ही भारी महत्व रहा है। कभी पहले शिक्षा को एक विषय मात्र माना जाता था किन्तु अब यह जीवन जीने की विधि के रूप में मानी जाती है। शिक्षा का यह दृष्टिकोण यद्यपि अत्याधुनिक माना जाता है किन्तु असल में यह तो भारत का बहुत प्राचीन शैक्षिक दृष्टिकोण रहा है जब कि मनु ने आज से हजारों साल पहले शिक्षा के दो उद्देश्यों-स्वाहा और स्वधा-की घोषणा की थी। आज कल इसी विचार को इस प्रकार रखा जाता है कि शिक्षा जीवन निर्माण की, उसे सजाने सवारने की एक प्रक्रिया है। अत आज कल सवत्र ही इस विचार पर जोर दिया जा रहा है कि शिक्षा का न केवल जीवन विधियो से तादात्म्य ही स्थापित होना चाहिये अपितु उस जीवन जीने के साधन और क्षमतायें भी उपलब्ध करानी चाहिये। गाधी जी का बुनियादी शिक्षा का विचार, जिसे उन्होंने स्वय ही इस राष्ट्र को अपनी अतिम और सर्वश्रेष्ठ देन कहा है, भी इसी दृष्टिकोण का पोषण करता है।

गाधी जी ने इसके माध्यम से भारत और विश्व के सामने एक नयी जीवन विधि का दृष्टिकोण रखा है और यदि हम खासकर पिछले चार पाँच सालों के विश्व शैक्षिक चिंतन पर ध्यान से विचार करें तो पता चलेगा कि विश्व का समूचा शैक्षिक चिंतन अब गाधी जी की ओर ही मुड रहा है।

भारत में गाधीजी के विचारों को समझने और परखने वाले बहुत अधिक लोग आज नही हैं। गाधी-विनोबा के बाद जिन चन्द सक्षम लोगो के नाम इस में लिये जा सकते हैं श्रीमन् जी का नाम उनमें पहले स्थान पर आता है। उनका निर्माण ही स्वय गाधी जी की छाया में हुआ है और गाधी-विचार और खासकर बुनियादी शिक्षा के विचार के प्रचार-प्रसार में उनका सक्रिय हाथ रहा है। इसके साथ ही वे भारत के राजदूत और राज्यपाल के जैसे जिम्मेदार पदो पर भी काम कर चुके हैं। वे स्वय अर्थशास्त्र, शिक्षा और संस्कृति के विद्वान हैं और अनेक पुस्तकों के लेखक है। इस तरह के व्यक्ति के द्वारा लिखी गई कोई भी पुस्तक निश्चित ही उपादेय और महत्व की होगी और प्रस्तुत पुस्तक भी उनकी ऐसी पुस्तकों में से है।

यह उनके देश विदेश के विश्व विद्यालयो और शैक्षिक सम्मेलनो के अध्यक्ष पद से दिये गये भाषणों अथवा उनके लिये लिखे गये निबन्धों का सग्रह है किन्तु यह पुस्तक मात्र संग्रह से भी कही अधिक उपादेय बन गई है। इस में लेखक ने सफलता के साथ यह दर्शाया है कि एक तरफ जब आज सारा विश्व गाधी-विचार की ओर मुड रहा है तो हमारे देश में अब भी हमारा उस ओर कोई ध्यान नही है और यह राष्ट्र के भविष्य की दृष्टि से अत्यन्त ही चिंतित कर देने वाली बात है। यदि हमने गाधी जी के विचारो का त्याग न किया होता तो आज देश इस प्रकार की भयानक अराजकता, बेकारी और गरीबी, युवक-हिंसा और मतिभ्रम तथा लोकतात्रिक मूल्यो के ह्रास का शिकार न होता। आजादी के बाद खासकर शिक्षा को जो मोड मिलना चाहिये था उसकी हमने घातक उपेक्षा की है और उसका नतीजा आज की विस्फोटक स्थिति है। लेखक के ही प्रयासो स गत अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में जो राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था और जो सन् १९३७ में स्वय राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी की अध्यक्षता में हुये राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के बाद इस तरह का पहला कदम था कि जिसमें देश को प्रधानमंत्री और केन्द्र तथा राज्यों के शिक्षा मंत्रियो और अनेक विश्व विद्यालयों के कुलपतियो के साथ साथ देश के अनेक शिक्षा शास्त्री और रचनात्मक कार्यकर्ता भी शामिल हुये हों और जिसमें राष्ट्र ने एक स्वर से फिर अपनी एक सर्व सम्मत शिक्षा-नीति निर्धारित की हो, उसमें यह साफ तौर पर कहा गया था कि शिक्षा हर स्तर पर समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों के साथ विकास के क्रम से जोड दी जानी चाहिये। शिक्षा

का यह विचार आज विश्व का सर्व स्वीकृत विचार हो गया है और संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा नियुक्त शिक्षा आयोग ने तो साफ तौर पर कहा है कि यह 'बुनियादी शिक्षा' सबन ही प्राथमिक और हायर सेकेन्डरी स्तर तक दी जानी चाहिये। और इतना ही नहीं आयोग ने तो गांधी जी की तरह से यह भी कहा है कि यह शिक्षा न केवल बालकों ही दी जाय अपितु उनके माता पिताओं को भी दी जानी चाहिये। आयोग ने यह भी कहा है कि यह शिक्षा जीवन भर की शिक्षा के रूप में दी जाय। यह सब गांधी जी ने सालों पहले कहा था।

किन्तु हमारे देश न अब भी शिक्षा के, और शिक्षा ही क्या किसी भी, क्षेत्र में कोई भी मौलिक विचार न तो विकसित हो किया है, न बुनियादी शिक्षा को ही निष्ठा के साथ लागू किया गया है। कोठारी कमीशन तक ने यद्यपि शिक्षा के साथ काम को जोड़ने का सिद्धान्त तो मान्य किया है किन्तु उसे भी बुनियादी शिक्षा को साफ साफ स्वीकार करने का साहस नहीं हो सका। किन्तु लेखक ने सही ही कहा है कि हमें नाम से कोई मोह नहीं है हम तो मात्र इतना ही कहना चाहते हैं कि शिक्षा के साथ समाजोपयोगी काम को सम्मिलित करने का जो आज विश्व स्वीकृत विचार है उसे मान्यता दी जानी चाहिये। यह विचार गांधी जी का बुनियादी विचार है इससे कोई चाहकर भी इन्कार कैसे कर सकेगा? अब तो यह विश्व विचार बन चुका है और भावी विश्व की शैक्षिक नीति का आधार भी स्वीकार किया जा चुका है। इसलिये हमें अपने दुराग्रह छोड़कर बुनियादी शिक्षा के विचार को स्वीकार कर लागू करना चाहिये। यदि हमें गांधी विचार और नाम से चिढ़ भी हो तो भी चूंकि हमने समाजवाद का लक्ष्य तो स्वीकार कर ही लिया है इसलिये उसके लिये भी शिक्षा के इस विचार को मान्य करना अति आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में हम समाजवादी समाज की रचना भी नहीं कर सकते। इस प्रकार से यह न केवल हमारे राष्ट्रपिता के प्रति सच्ची निष्ठा की ही कसौटी है अपितु यह हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व की भी कसौटी है।

पुस्तक तेरह भागों में विभाजित है और शिक्षा के हर पहलू पर विशद विवेचन प्रस्तुत करती है। शिक्षा के कुछ ऐसे सार्वभौम मूल्य हैं जैसे कि आत्म-सहाय्य का बुनियादी गुण, श्रम की प्रतिष्ठा और समाज सेवा की वृत्ति, जिनकी किसी भी अच्छी शिक्षा नीति में जरा भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। लेखक ने खासकर युवकों का आवाहन किया है कि उनका सारा भविष्य इस शिक्षा पर ही निर्भर करता है इसलिये वे ही कम से कम स्वयं विचार करें और शिक्षा में आमूल परिवर्तन के लिये आगे आवें। गांधी जी ने तो युवकों को राष्ट्र का नमक कहा था तो उन्हें सचमुच

ही राष्ट्र के जायके को सुन्दर बनाने में अपना योगदान करना होगा। युवक इसमें क्या करें यह पुस्तक में सुन्दर ढग से बताया है।

पुस्तक बहुत सुन्दर छपाई और जिल्द में है और हर पुस्तकालय के लिये सग्रहणीय है। गाधी विचार को मानने वालो के लिये तो यह पुस्तक उपयोगी है ही किन्तु जो अन्य लोग गाधी-विचार को भी मान्य न करते हो किन्तु जो अपने देश को सही अर्थो में समाजवादी धर्म निरपेक्ष और लोकतात्रिक देश बनाने का स्वप्न देखते हैं उनके लिये भी उपादेय है।

आज देश में महानिशा की घडी आई है। उसमें आशा की ज्योति जलाना है। मेरे दिलमें कोई निराशा नहीं है। आज सूरज चला गया, चन्द्रमा विलुप्त हुआ, छोटे छोटे सितारे भी विलुप्त हुये, एक महान् अधकार सर्वत्र छा रहा है। इस अधकार में से है कोई माँ का बेटा जो दीपशिखा बन कर जलेगा? सर्वोदय समाज के साथियों से मै कहना चाहता हूँ कि आज ही आपके जलने का वक्त आया है। महानिशा में ही दीप शिखा के जलने का वक्त आता है। भगवान से प्रार्थना करो कि मुझे शक्ति द कि मै इस महानिशा में जलूं। आपको जलना है, निराश होकर नहीं, उत्साह और आशा के साथ जलना है। अतर में आग लेकर जलना है। भगवान् ने आप पर एक बहुत बडा काम सौंपा है।

रामनन्दन मिश्र

A Short Report from the Kerala Nai Talim Sangh.

The Kerala Nai Talim Sangh which was formed as early as 1957 and functioned effectively till 1965, after being defunct for some years was again revived, after the formation of the All India Nai Talim Samiti, at a meeting of Nai Talim enthusiasts held at 'Mitra Niketan', an exprimental educational community near Trivandrum, in Sptember 1972. with Shri K. Arunachalam presiding An ad hoc committee was appointed and Shri Radhakrishna Menon, Head Master of the Seva Mandir Post Basic School, Ramanatkara, was nominated secretary. and elected Dr. N. P. Pillai, formerly educational adviser to the UNESCO, as President.

Nai Talim had made considerable headway in the erstwhile Malabar area under the 'Compact Area Scheme' of the then Madras Government and, even after the formation of the Kerala State. under the 'Five-Point-Programme' of the Kerala Government. In 1959, with the coming of the President's rule in the State, the Governor, on representaions made by the Nai Talim Sangh, appointed a Basic Education Evaluation Committee with the Secretary of the Sangh as a mem bfer of the 3-man committee. The committee submitted its detailed report in 1960, but the Report was never implemented.

Goodbye to Basic Education:

The 400 and odd Basic Schools, and all the rest of the Five Point Programme Primary Schools,

gradually languished and lost all the NaiTalim features. The emphasis was more and more on the improvement of classroom teaching technique of the traditional School subjects Today the training schools, all of which had been earlier converted to the Basic Pattern, still carry the nomenclature 'Basic', but are altogethar text book centered and examination ridden without any insistence on community life, social service or productive work The Post Garduate Basic Training College which gave re training in Basic Education to graduate teachers was abolished The primary schools do not even carry the name 'Basic', and are now altogether of the traditional pattern At the secondary stage there are two lone Post Basic Shcools retaining the basic features, less because the education department wants them to remain basic, than because they are managed by well-known Sarvodaya Organisations of the State Curiously enough, it is in these Post Basic Schools alone that any thing of the old Basic practices are still in evidence They have accepted the Government syllabus and prepare children for the S S L C examination, though of the diversified pattern Agriculture and clothcraft are taught, for which Government provide staff and facilities, and, in the pre school final classes, freedom is allowed for the introduction of whatever activities and correlated teaching techniques the schools consider feasible Post Basic education still remains on the Government lists as a stream of secondary education and a separate Post Basic School Leaving Certificate is issued to Post Basic students which puts considerably more emphasis on the achievements in the non-academic areas of school work than the ordinary S S L Certificate doses The academic performance of these Post Basic Schools compares

quite favouralby with that of the academic schools, and their extra-curricular activities admittedly surpass those of the latter. Inspecting officers are all apprectiation for the activity-centredness and discipline of the schools as is evidenced by the facts that, at most of the non-academic Inter-School Contests, the Post Basic Schools bag the prizes and that they are seldom affected by the student agitation all too rampant in the Educational institutions in Kerala. In 1971-72, one of the Post Basic School headmasters was the recipient of the State Award for meritorious work, which showed that Basic Education practices, even under the limitation of Government recognition, had superior educational value. But all this being no more than an insignificant drop compared to the vast ocean of traditional school work, Basic Education has only a very marginal place, is almost non-existent, in the educational picture of the State.

Specials Officers For Work-Experience.

Of late, however, acting on the suggestion of the Kothari Commission, the Government has begun to give some serious thought to carrying out the 'work-experience' programme, though without any reference to Basic Education. A special officer has been appointed at the D. P. I.'s office for work-experience, literature and guide books are being brought out, 'periods's are allotted to work-experience within the school time-table and more and more schools are being brought in to the scheme every year under a phased programme. The Kerala Nai Talim Sangh has represented to Government that, in implementing schemes of work-experience, they should take advantage of the experiments and the experience of the Basic Education

teachers of old, that indifferent headmasters should not be allowed to scuttle the scheme by allotting the work-experience periods to the teaching of the traditional subjects as is often done, that the work should be properly assessed periodically and credit assigned to the childdren for purposes of promotion and evaluation of school results, that periodical returns shcould be insisted on, and that Government should make available to willing schools grants on their own or through other funding agencies for provision of facilities like equipment and know-how. Several of these suggestions have been acted on. A recent order of Government has required the Agriculture Department to make available, to any high school that asks for it, equipment, fertilisers and seeds to the value of Rs 200/- and another order has arranged for exhibition of products and one-day seminars on work-experience at the various District Centres in January, 1974. Nai Talim Schools and enthusiasts are being requested to make the utmost use of these occasions to publicise the potentialities of systematic work-centred education.

Self-Govt. in Schools

Anorther line of activity where The Nai Talim Sangh has attempted to influence the general stream of school-work is the running of the school Self-government programme, the importance of which the Government have also accepted in principle. But while making school self-government programmes obligatory, Government have at the same time set at nought its possibillities by making these mere 'mock' programmes and not real responsibility-sharing projects, and then by giving to political parties and the student unions they control *unlimited freedom to influence these programmes.*

The result is that the very concept of School-Parliment has come into great disfavour with the school authorities on account of the manifold undesirable practices and the indiscipline at school they let loose. The Nai Talim Sangh has represented to Govt. backed by the very encouraging experience in the Post Basic Schools, that there should be genuine responsibility-sharing, that the whole school must be organized as a democretic community as were the Basic Schools of old, and that political parties should be resolutely forbidden any sort of entry, overt or covert, into the working of shcools. It would seem that the inevitable trend of events is gradually pushing the authorities to the acceptance of these suggestions.

Social Service:

Yet another aspect of school work where the Nai Talim Sangh has tried to influence educational policy is the work of social service and extension programmes. Inspite of the recommendations of the Kothari Commission, there has as yet been no practical effort made to include this in the school curriculum. Some schools had effectively participated in the 'Youth Against Famine' Projects last summer, and the Nai Talim Sangh has urged Government to make such vacation programmes a regular annual feature of school work, require as many educational institutions as possible to plan and implement at least one year-long work project every year, and devise techniques to assess such work in schools so as to give it its due place in the evaluation programme of the School.

Youth Centers:

In the field of non-government experimental work along Nai Talim lines, too, the Sangh keeps

itself in close touch with such work. Two such significant experiments are the community-centered educational work in the Mitra Niketan School near Trivandrum and the Youth Center on Navodaya Danagram, near Calicut. In the former, they don't take any government aid and are particular that school work is derived from, and leads to, community improvement projects. In the latter, young village people of the age range 12 to 25 who are mainly drop outs at various stages of school, have been organised into a 'Tarun Santi Sena' group which organises a public library and reading room, conducts weekly Sramdan programmes and regular remunerative work projects with aid from the gramsabha, holds weekly literary and cultural programmes, and arranges literacy classes and excursions. The chief organisers of both these experiments are members of the Executive of the Kerala Nai Talim Sangh.

Efforts are also being made to hold a Confernce of Nai Talim enthusiasts in April May, 1974.

केरलमें नयी तालीम संक्षिप्त प्रतिवेदन—

केरल नयी तालीम संघ के मंत्री श्री के मुनियाण्डी ने बताया है कि केरल में यद्यपि यह संघ सन १९५७ से ही काम कर रहा है और कुछ समय तक अच्छा काम हुआ भी किन्तु बाद को सभी राज्य सरकारों की ही तरह केरल में भी बेसिक शिक्षा का नाम मात्र ही रह गया और अब तो नाम भी हटा दिया गया है। सरकार यद्यपि समय समय पर संघ की सलाह लेती है और कुछ हद तक उसकी राय मान्य भी करती है किन्तु बुनियादी शिक्षा के तत्वों का समावेश प्रदेश की शिक्षा में नहीं है। फिर भी गैर सरकारी स्तर पर संघ दो अच्छे स्कूल चला रहा है जिन्हें सरकारी मान्यता भी प्राप्त है। इसके अलावा ग्रामीण युवकोंके लिए एक युवक-

केन्द्र के माध्यम से भी सघ युवक-प्रशिक्षण का काम कर रहा है जिसमें प्रौढ़ शिक्षा, सावजनिक वाचनालय, युवकों के लिये ग्राम सभाओं की मदद से कमाऊ काम की योजनायें और ग्राम सफाई के साथ साथ साप्ताहिक श्रमदान काय भी होता है। बीच में लगभग ७ साल तक समाप्त प्राय रहने के बाद अब सघ पुन सक्रिय हुआ है और आशा है आगे से काम अच्छा होगा। अभी सघ के अध्यक्ष युनेस्को के भू 'पू शिक्षा सलाहकार श्री डा एन पी पिल्लई है।

नयी तालीम : जनवरी '७४
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

मुद्रक राष्ट्र

नयी तालीम

सर्व सेवा संघ की मासिकी

वर्ष : २२

अंक : ७

फरवरी, १९७४

★

आचार्यकुल राष्ट्रीय सम्मेलन

विशेषांक

★

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक ७
इस अंक का मूल्य १ रु प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण ३२१
स्वागत भाषण ३२६ अण्णा सहस्त्रबुद्धे
उद्घाटन भाषण ३२७ श्रीमन्नारायण
शिक्षा में परिवर्तन के लिए आचार्य उत्तमोत्तम सत्याग्रह करें ३३२ विनोबाजी
आचार्यकुल प्रगति विवरण ३४२ वंशीधर श्रीवास्तव
ज्ञान की सीढ़ियों से उतरे बिना समस्याओं का हल नहीं ३५५ जैनेन्द्र कुमार जैन
वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और आचार्यकुल ३५९ डा रामजी सिंह
आचार्यकुल संगठन और कार्यक्रम ३६५ गुरुशरण
समारोप भाषण ३७१ अनन्त गोपाल शेवडे
परिशिष्ट —
(क) संक्षिप्त सम्मेलन विवरण ३७६
(ख) मैं समिति की छठी बैठक का विवरण ३८१
(ग) सम्मेलन का निवेदन ३८४

फरवरी, '७४

* नयी तालीम का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* नयी तालीम का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और इस अंक का मूल्य १ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।
* नयी तालीम में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ७

पहला राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन :

ब्रह्म विद्या मंदिर पवनार में १२ और १३ जनवरी ७४ को आयोजित प्रथम राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन कई दृष्टि से सफल माना जायगा। यद्यपि रेल की अव्यवस्था के कारण इस सम्मेलन में अधिक प्रतिनिधि भाग नहीं ले सके, फिर भी विभिन्न प्रदेशों से लगभग साढ़ तीन सौ सदस्यों का पवनार आश्रम में समय पर पहुँच जाना स्वयम् इस बात को सिद्ध करता है कि देश के शिक्षकों में आचार्यकुल विचार की ओर काफी आकर्षण हुआ है और वे दिल से चाहते है कि इस कार्य को तेजी से आगे बढ़ाया जाय। सौभाग्य से ऋषि विनोबा ने इस सम्मेलन को काफी समय दिया और उसे तीन बार संबोधित कर समुचित मार्गदर्शन भी प्रदान किया।

सम्मेलन में जो चर्चायें हुई वे भी काफी ठोस व रचनात्मक थीं। इस बात पर बहुत जोर दिया गया कि शिक्षकों को यद्यपि दलगत राजनीति से पृथक रहना चाहिये, किन्तु उन्हें राष्ट्र की व्यापक राजनीतिक गतिविधियों से पूरी तरह परिचित रहना जरूरी है ताकि वे देश के नव निर्माण में अपना हिस्सा अदा कर सके। सम्मेलन के अन्त में जो निवेदन प्रकाशित किया गया वह आचार्यकुल आन्दोलन को सही दिशा की ओर ले जाने में सहायक होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

चर्चाओं के दौरान यह बात भी साफ हो गई कि शिक्षकों को अपने अधिकारों के साथ अपने कर्तव्यों पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये ताकि युवा पीढ़ी को उचित मार्गदर्शन दिया जा सके और उनकी सामूहिक शक्ति देश के विकास के कामों में व्यवस्थित ढंग से लगाई जा

सके। यह स्पष्ट हो है कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को एक नया मोड़ देना नितान्त आवश्यक है ताकि समाज-उपयोगी और उत्पादक श्रम द्वारा सभी स्तरों पर हमारे नवयुवकों को शिक्षित किया जा सके और पढ़े-लिखों की बेकारी की समस्या अविलम्ब दूर हो। इस सम्बन्ध में सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशों को सभी प्रदेशों में समय गंवाये बिना लागू करना बहुत जरूरी है।

सम्मेलन में करीब सभी सदस्यों ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप सभी राज्यों में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यह सचमुच देश के उत्थान के लिये अवाछनीय और अहितकर है। यह सही है कि शिक्षण-सस्थाओं में जो बुराइयाँ घर कर गई हैं उन्हें मजबूती से उखाड़ फेंकना चाहिये और शिक्षकों के प्रति खुलेआम होता हुआ अन्याय दूर होना चाहिये। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि शिक्षण-सस्थाओं के सचालन की पूरी जिम्मेवारी सरकार ही अपने ऊपर लेने की कोशिश करे और विश्वविद्यालयों को भी शिक्षा विभाग का एक अंग बना ले। देश की शिक्षा का मुख्य संचालन और नीति-निर्धारण विद्वत्जनों द्वारा ही होना चाहिये। आचार्यकुल का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस विचार को देश भर में फैलाये ताकि उसका प्रभाव सरकारी तन्त्र पर भी निश्चित रूपसे पड़ सके।

आचार्य विनोबा ने इस बात पर भी बहुत बल दिया कि आचार्यकुल के सदस्य दलगत राजनीति से परे रहकर तटस्थ और सम्यक बुद्धि से देश की विभिन्न समस्याओं पर अपना मत सतुलित ढग से जाहिर करते रहें। भारत की लोकशक्ति को जाग्रत करने और प्रजातन्त्र को मजबूत बनाने के लिये यह बहुत लाजमी है।

"नयी तालीम" का यह अक राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन के विशेषाक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। कुछ सामग्री जो समय पर उपलब्ध नहीं हो सकी वह अगले अक में भी दी जायगी। हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक इस विशेषाक में प्रकाशित सामग्री का योग्य लाभ उठा सकेंगे।

तामिलनाडु शिक्षा सम्मेलन :

हमें खुशी है कि १९, २० और २१ जनवरी को मद्रास में तामिलनाडु शिक्षा सम्मेलन का आयोजन तामिलनाडु नयी तालीम समिति द्वारा किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन राज्य के गवर्नर श्री के. के. शाह ने किया और उसकी अध्यक्षता मदुराई विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री सौमसुन्दरम् ने की। इस सम्मेलन में यूनेस्को के भूतपूर्व डायरेक्टर डा. मालकम आदिसेशय्या ने बहुत सारगर्भित भाषण दिया। मैं कई कारणों से सम्मेलन में स्वय उपस्थित तो न हो सका, किन्तु मेरी ओर से अखिल भारत नयी तालीम समिति के मत्री श्री आचार्लू वहाँ गये

और उन्होंने मेरा "की-नोट" भाषण भी पढ़कर सुनाया। मैंने अपने भाषण के अन्त में यह दृढ़ आशा प्रकट की कि देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति को आमूलाग्र बदलने में तमिलनाडु राज्य अन्य राज्य सरकारों की राह देखे बिना इस महत्वपूर्ण कार्य में अगुआ बनेगा।

हमें संतोष है कि इस सम्मेलन में सेवाग्राम राष्ट्रीय सम्मेलन की सभी सिफारिशों पर बहुत गम्भीरता से चर्चा की गई और कुछ निर्णय भी लिये गये। हम उम्मीद रखते हैं कि इन निर्णयों पर जल्द ही उचित कार्यवाई की जायगी ताकि तामिलनाडु राज्य में चालू शिक्षा को एक नया रूप देने में निश्चित प्रगति हो सके।

—श्रीमन्नारायण

आगे की दिशा :

प्रथम राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन का आयोजन, विनोबा जी का सानिध्य और ब्रह्मविद्या मंदिर आश्रम पवनार का पवित्र सांस्कृतिक वातावरण तथा देश भर से आये लगभग ३५० प्रतिनिधियों की उपस्थिति आचार्यकुल आन्दोलन को एक आध्यात्मिक पृष्ठभूमि और दूसरे शिक्षक संघों से अलग एक विशिष्टता प्रदान करती है।

सम्मेलन में "शैक्षिक नीति" और संगठन विषयक विचारपत्रक प्रस्तुत हुए जो प्रकाशित रूप में प्रतिनिधियों तक पहुँचे पर उन पर समय की कमी के कारण अधिक चर्चा न हो सकी। अच्छा हो कि अगला सम्मेलन कम से कम चार दिनों का हो। सम्मेलन के बाद पवनार के सन्देश के रूप में ग्राम और प्रखण्ड के स्तर से लेकर देश के स्तर तक आचार्यकुल का काम सक्रिय रूप से और प्रभावशाली ढंग से खड़ा हो, शिक्षक इसमें रुचि ले उनका अभिक्रम जागे और वे अपने क्षेत्र के शिक्षा जगत में नई चेतना, नया पुरुषार्थ खड़ा करें तो सम्मेलन की सच्ची सार्थकता सिद्ध होगी। सम्मेलन में जैसा उत्साह देखा गया उससे ऐसी आशा बधती है कि यह सब अब वेगपूर्वक होगा।

सम्मेलन में उद्घाटन भाषण के अलावा श्री गोविन्दराव देशपाण्डे, डा. रामजीसिंह और श्री अनन्त गोपाल शेवडे के भाषण हुए। चर्चा गोष्ठियों के अध्यक्ष के रूप में श्री शीतलाप्रसाद और श्री जैनेन्द्रकुमार ने भी सम्मेलन को उद्बोधित किया। कुल मिलाकर आशा करनी चाहिए कि सम्मेलन प्रेरक सिद्ध होगा और आचार्यकुल का काम आगे बढ़ेगा। इस दिशा में विशेषकर दक्षिण के राज्यों में और गुजरात में विशेष प्रयास किया जाना चाहिए इसका

संकेत विनोबाजी ने भी अपने भाषण में किया। काम को आगे बढ़ाने में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना होगा —

१– अध्ययन-अध्यापन आचार्य का स्वधर्म है। अतः इस स्वधर्म का पालन ही आचार्यकुल का पहला लक्ष्य होना चाहिए। उत्तम अध्ययन अध्यापन के लिए आचार्यकुल एक आचार संहिता का निर्माण करे और उसका पालन अपना भी कर्तव्य माने।

२– आचार्यकुल का दूसरा कार्य होना चाहिए आज के विद्यार्थी-वर्ग के विद्रोह को विधायक दिशा देना। आचार्यकुल दल राजनीति से मुक्त एवं रचनात्मक शिक्षा-आंदोलन है। अतः जहाँ भी आचार्यकुल की इकाइयां स्थापित हों वहाँ तरुण शांति सेना की इकाइयां भी स्थापित की जायें और क्योंकि छात्र और आचार्य दोनों मिलकर जब निर्माण और विधायकता के लक्ष्य की ओर उन्मुख होंगे तभी दोनों का विकास होगा और समस्याओं को शांतिपूर्ण ढंग से हल कर लेका मार्ग प्राप्त होगा।

३– आचार्यकुल की शैक्षणिक नीति है शिक्षा को सरकार से मुक्त रखना लोकतंत्र की रक्षा के लिए यह आवश्यक है। इसलिए आचार्यकुल सक्रिय प्रयास करे कि शिक्षा के तंत्र पर सरकार का नियंत्रण न हो। शिक्षकों के वेतन और अन्य सेवा-सुविधाओं का पूरा उत्तरदायित्व सरकार का हो, परंतु शैक्षणिक नीति, परीक्षा पद्धति, शिक्षा-विधि आदि का पूर्ण नियंत्रण "स्वायत्त शिक्षा निगमों" (आटोनोमस एजुकेशन् बोर्ड्स) के हाथों में हो जिसमें कम से कम ६० प्रतिशत सदस्य शिक्षक हों।

४– आज के अन्यायपूर्ण सामाजिक ढांचे को बदले बिना सबको शिक्षा की समान सुविधायें उपलब्ध नहीं कराई जा सकतीं और जब तक सबको शिक्षा की समान सुविधायें उपलब्ध नहीं होतीं तब तक सम.जव.द की स्थापना कोरी कल्पना ही होगी। अतः ग्रामदान-ग्रामराज्य की अहिंसक पद्धति से पूज्य विनोबा ने समाज-परिवर्तन का जो महान आंदोलन आरम्भ किया है आचार्यकुल को उसमें भाग लेना चाहिए। अहिंसक ढ़ग से समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया ही 'शिक्षा' है और विद्यालय की चहार दीवारी के भीतर जो अध्ययन-अध्यापनका कार्य आचार्य का रहा है उसके अतिरिक्त बाहर समाज में आकर उसे जो शिक्षण का और लोक-सेवा का काम भी अपना स्वधर्म मानकर करना चाहिए।

५– आचार्यकुल को अन्याय के शांतिपूर्ण प्रतिकार के लिए, चाहे वह अपनी संस्था के भीतर हो, चाहे बाहर समाज में सदा तत्पर रहना चाहिए।

—वंशीधर श्रीवास्तव

शिक्षा योजना के बाद अब सर्वेक्षण :

समाचार पत्रों से मालूम हुआ है कि सरकार ने देश में प्राइमरी, सेकेन्डरी, हायर सेकेन्डरी और पूर्व विश्व विद्यालय शिक्षा के बारे में एक देशव्यापी सर्वेक्षण कराने का निश्चय किया है जो ३१ दिसम्बर १९७३ को आधार मानकर किया जायेगा। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य यह बताया गया है कि इससे सरकार देश में शिक्षा की सही स्थिति और फिर उसकी सही आवश्यकता की जानकारी प्राप्त करना चाहती है। इस प्रकार के सर्वेक्षण दो बार पहले भी किये जा चुके हैं।

इस तरह का सर्वेक्षण अपने आप में अच्छा काम है और यह किया जाना ही चाहिये। किन्तु एक प्रश्न मन में आता है कि अब जब पाँचवीं पचवर्षीय योजना बन चुकी है और उसमें आगे पाँच साल के लिये शिक्षा की भी एक योजना शामिल है तब अब इस तरह का सर्वेक्षण किस और कब काम आयेगा। पहले के दो सर्वेक्षण भी इसी तरह से योजना से हटकर किये गये थे। इस तरह के सर्वेक्षण का नतीजा फिर यह होता है कि उसके नतीजों का योजना से कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं रह जाता और यह तो निश्चित है कि सर्वेक्षण के बाद यह लगे कि शिक्षा की योजना में कई आमूल परिवर्तन होने आवश्यक हैं किन्तु तब तक योजना काफी आगे या पीछे जा चुकी होती है। फिर कहा जाता है कि अब अगली योजना में इसका ध्यान रखा जायेगा पर तब तक सर्वे के नतीजे ही अप्रासंगिक हो जाते हैं। क्योंकि तब तक फिर सारी परिस्थिति ही बदल जाती है। इस तरह से ये कीमती सर्वे फिर केवल रिसर्च करने वालों के लिये डाकुमेन्ट मात्र का काम कर पाते हैं और राष्ट्र का जो धन इस तरह व्यय किया जाता है वह एक तरह से बेकार ही जाता है। यह ऐसा लगता है कि वस्तुस्थिति से नितान्त अपरिचित रहकर किये गये चिंतन का ही परिणाम होता है।

असल में इस प्रकार का सर्वेक्षण तो हर योजना से पहले ही किया जाना चाहिये ताकि फिर योजना बनाने में उसका उपयोग हो सके और योजना के दौरान फिर उसका सही मूल्यांकन किया जा सके जो कि आगे के लिये पुन सर्वेक्षण के लिये एक वस्तुगत आधार प्रदान कर सके। मालूम नहीं हम कब योजनाबद्ध ढंग से काम करना सीखेंगे।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

अन्ना सहस्त्रबुद्धे :

स्वागत भाषण :

आज इस पहले राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन के लिये आप सब लोग दूर दूर से काफी कष्ट उठाकर भी यहाँ आये हैं। यह सम्मेलन आचार्यकुल की ही परम्परा और गरिमा के अनुकूल एक ऐसे स्थान पर हो रहा है जो भारत के प्राचीनतम सांस्कृतिक वैभव और महिमा से आपूर्ण है और जहाँ विनोबा जी ने आज ब्रह्म विद्या का एक अभिनव प्रयोग आरम्भ किया है। विनोबा जी ही इस आचार्यकुल के विचार के उद्गाता भी हैं और यह ठीक ही है कि आचार्यकुल का यह पहला सम्मेलन उनके ही सान्निध्य में हो रहा है। इस भूमि पर इस पुनीत कार्य के लिये आप सब विद्वद्जन यहाँ एकत्र हुये हैं। मैं स्वागत समिति की ओर से इस अवसर पर आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूँ। मुझे पूरी आशा है कि यहाँ से आप अपने लिये और भारत के लिये निश्चित ही एक नया सन्देश लेकर जायेंगे।

मित्रो ! आज देश एक अत्यन्त पीड़ा का अनुभव कर रहा है और यह पीड़ा किसी निर्माण की नहीं है अपितु लगता है एक उद्देश्यहीन भागदौड़ की है। यह प्रसव पीड़ा नहीं बध्या की पीड़ा है। क्या इस संकट के समय पर आपका यह आचार्यकुल देश को कोई राह दिखा सकता है ? हम सबकी यही आशा और विश्वास है कि आचार्यकुल ही यह कर सकता है। आप दो दिन तक इन सब बातों पर गम्भीर मंत्रणा करेंगे और देश के लिए कोई मार्ग दिखायेंगे यह हमारी आशा है।

स्वागत समिति की ओर से हम आपकी आवश्यक व्यवस्था नहीं कर सके हैं इसका हमें ध्यान है। आपको यहाँ काफी कष्ट भी होगा क्योंकि हम आपके लिये सामान्य सुविधा भी नहीं जुटा सके हैं। किन्तु हमें आशा है कि आप यह कष्ट ध्यान में न रखकर हमें क्षमा करेंगे। आप सबने यहाँ आकर हमें आपका स्वागत करने का जो अवसर दिया है उसके लिये हम आपके आभारी हैं।

श्रीमन्नारायण :

उद्घाटन भाषण :

हम सभी को बहुत खुशी है कि केन्द्रीय आचार्यकुल की ओर से पहली बार पवनार आश्रम में एक अखिल भारतीय सम्मेलन पूज्य विनोबाजी के सान्निध्य में आयोजित किया गया है। मैं आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन में समुचित चर्चाओं के बाद कुछ ठोस निर्णय लिए जा सकेंगे और देश के शिक्षक समाज को एक नयी प्रेरणा मिल सकेगी।

जैसा आप जानते ही हैं आचार्यकुल के विचार का उदय उस समय हुआ जब स्वर्गीय डा जाकिर हुसैन सन १९६७ में आचार्य विनोबाजी से बिहार में मिले और उनसे शिक्षा की समस्याओं पर विचार विनिमय किया। शासन द्वारा शिक्षण सस्थाओं की स्वायत्तता में बढते हुए हस्तक्षेप शिक्षक सघो द्वारा शिक्षा के सरकारीकरण की माँगें छात्रों की बढती हुई हिसात्मक प्रवृत्तियाँ और शिक्षकों के दलगत राजनीति में बढते हुए प्रवेश के कारण डा हुसैन बहुत चिंतित थे। उसी समय विनोबा जी ने आचार्यकुल की योजना उनके सामने पेश की जो उन्हें पसन्द आई। उसके बाद बिहार में इस ओर कुछ कदम उठाए गए, अगस्त १९७० में आचार्यकुल के विधान का प्रारूप तैयार किया गया जो सितम्बर १९७१ को पवनार में हुई केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की बैठक में सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

प्रारम्भ से ही आचार्यकुल का मुख्य उद्देश्य देश की पंच शक्तियों में से विद्वत्जन शक्ति को जगाना है ताकि वह राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं पर तटस्थ ढग से विचार करके अपनी राय जनता के सामने प्रस्तुत करे और लोकशक्ति को सजग बनाए। ऋषि विनोबा ने कई बार कहा है कि शिक्षकों को न्यायाधीशों की तरह निष्पक्ष रहना चाहिए ताकि वे प्रत्येक समस्या पर गहराई से विचार कर सके और अपना सतुलित मत समाज के सामने पेश करें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षक वर्ग दलगत राजनीति से अलग रहे और सत्ता की राजनीति की भवर में न फँसे। इसीलिए आचार्यकुल की सदस्यता उन्हीं शिक्षकों के लिए खुली है जो किसी राजनीतिक पार्टी के सदस्य न हो। इसका यह अर्थ नहीं कि शिक्षक-समाज देश की राजनीतिक गतिविधियों पर नजर न रखे और विभिन्न राजनीतिक दलों की विचारधाराओं से परिचित न हो। आज की व्यापक राजनीति से तो कोई अछूता नहीं रह सकता और अध्यापकों के लिए तो इन सभी मसलों का बहुत गम्भीरता से

अध्ययन करना जरूरी है। लेकिन उनके लिए 'पार्टी पोलिटिक्स' से पृथक रहना भी बहुत आवश्यक है, नहीं तो वे पक्षमुक्त ढ़ग से सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर अपनी तटस्थ राय देने में असमर्थ रहेंगे और आम जनता उनके मत प्रकाशन की ईमानदारी पर विश्वास कैसे करेगी?

तारीख ८ सितम्बर, १९७३ को यहीं ब्रह्म विद्या मन्दिर, पवनार में देश के प्रमुख उद्योगपतियों और व्यापारियों की सभा में भाषण देते हुए पूज्य विनोबाजी ने आचार्यकुल का महत्त्व समझाते हुये ये शब्द कहे थे —

"तीसरी उँगली मार्गदर्शक होती है। किसी को मार्ग दिखाना हो तो इस उँगली का उपयोग करते हैं। अंगुली-निर्देश करके कहते हैं, यह रास्ता है, यहाँ से वहाँ जाते हैं। यह है विद्वद्जनशक्ति! विद्वानोंकी शक्ति, जो कि सबका तटस्थ मार्गदर्शन करती है। दुनिया में क्या ठीक चला है, क्या बेठीक चला है, उसका अध्ययन तटस्थ वृत्ति से करना, उस पर अपना निर्णय, अपना विचार दुनिया के सामने रखना। सरकार की क्या गलती हो रही है, जनता की क्या गलती हो रही है, विश्व में क्या गलती हो रही है, इस सबका अध्ययन करना और पक्षमुक्त होकर तटस्थ दृष्टि से निर्णय सबके सामने रखना। जाति, धर्म, पथ, भाषा, पक्ष, प्रान्त, इन सबों का अस्त है सर्वोदय। इन सब का अस्त होगा तब सर्वोदय होगा। इन सब से मुक्त हृदय रखने वाली, दुनिया का मार्गदर्शन करने वाला एक विद्वद्जनों की शक्ति है। इस वास्ते बाबा ने 'आचार्यकुल' नाम की संस्था शुरू की। उसमें कई वाइस चान्सलर शामिल हुए हैं। बिहार से लेकर महाराष्ट्र, केरल तक थोड़ा-थोड़ा आरम्भ हुआ है। धीरे-धीरे यह तटस्थ शक्ति, पक्षमुक्त शक्ति बढ़ेगी, जिसका वजन सरकार पर भी पड़ेगा, जनता पर पड़ेगा और महाजनों पर भी पड़ेगा।"

आचार्यकुल बिना किसी भेदभाव के सभी शिक्षकों का एक राष्ट्रीय सगठन व भाई चारा है। इसमें प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों के सभी शिक्षक पूरी आजादी से भाग ले सकते हैं और देश के निर्माण में अपना हिस्सा अदा कर सकते हैं। यह जरूरी है कि इस सगठन में सभी स्तरों के शिक्षकों का समावेश किया जाय ताकि उसकी नींव अधिक व्यापक और शक्तिशाली बन सके। आचार्यकुल की निष्ठाओं में विश्वास रखने वाले साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार और समाज-सेवक भी इसके सदस्य बन सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आचार्यकुल के सभी प्रान्तीय सगठन इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

यह स्पष्ट है कि देश की लोकशक्ति अहिंसा के आधार पर ही खड़ी की जा सकती है। ऋषि विनोबा ने उसे 'तीसरी शक्ति' कहा है जो हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न है। उसका विकास तभी किया जा सकता है जब जन-शिक्षण द्वारा समाज के विचार में परिवर्तन लाया जाय और लोगों की आन्तरिक शक्ति और

आत्मविश्वास को जगाया जाय। यह काम न हिंसा द्वारा किया जा सकता है और न सत्ता द्वारा। इसकी जिम्मेवारी मुख्यतः विद्वद्जनों और आचार्यों पर ही स्वाभाविक ढंग से आ जाती है, क्योंकि वे ही सच्चे अर्थ में समाज की 'कॉन्सेंस' या अन्तर-आवाज बन सकते हैं। इस दृष्टि से आचार्यकुल की सदस्यता के लिए यह भी आवश्यक है कि किसी भी उद्देश्य की सिद्धि के लिए हिंसा का मार्ग न अपनाया जाय और न उसका समर्थन किया जाय। इस संस्था का मुख्य आधार लोक-शिक्षण और हृदय-परिवर्तन है, और इस प्रक्रिया में हिंसा, विद्वेष और विध्वंस से भरी कार्रवाइयों का कोई स्थान नहीं हो सकता। अतः जो शिक्षक वर्ग-संघर्ष और हिंसात्मक तरीकों में आस्था रखते हैं वे आचार्यकुल के सदस्य नहीं बन सकते। संक्षेप में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का साधन-शुद्धि का सिद्धान्त आचार्यकुल की बुनियाद है और हमें ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे यह नींव कमजोर और खोखली बने।

इस समय देश और दुनिया में हम अधिकारों की माँगों की ही गूंज सुनते हैं। प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त करने पर जोर देते हैं, लेकिन अपने कर्तव्य की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान है। बापू ने हमें बार-बार समझाया था कि हमारा असली अधिकार एक ही है और वह है अपना कर्तव्य करने का। कर्तव्य के पालन के बिना हमारे अधिकार निरर्थक और हानिकारक बन जाते हैं। जिस समाज में अधिकारों के साथ कर्तव्यों का चुस्ती से पालन नहीं किया जाता, उसका धीरे-धीरे पतन हो जाना एक स्वाभाविक घटना है। इस दृष्टि से आचार्यकुल के सदस्य अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्यों की ओर विशेष ध्यान दें यह उचित ही है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि शिक्षकवर्ग अपने बुनियादी अधिकारों के प्रति बिलकुल उदासीन रहें और घोर अन्याय सहता जाय। उदाहरण के लिए हम सभी जानते हैं कि आजकल बहुतसे स्कूलों और कालेजों में प्राध्यापकों को पूरा वेतन नहीं दिया जाता, जिस राशि पर उनके हस्ताक्षर लिए जाते हैं अक्सर उसकी आधी ही रकम उन्हें यथार्थ में दी जाती है। यह तो एक बहुत बड़ा अन्याय है जिसके विरुद्ध शिक्षकों को सामूहिक ढंग से बुलन्द आवाज उठाना चाहिए और इस भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। मेरा ख्याल है कि इस काम के लिए आचार्यकुल का संगठन बहुत उपयुक्त होगा, क्योंकि यह राजनैतिक दलबन्दी से परे है। इस बातका अवश्य ख्याल रखा जाय कि इस प्रकार के कामों में 'ट्रेड युनियन' के वातावरण की बू न आने पाए। यह कार्य ऊँचे धरातल से किया जाना चाहिये ताकि शिक्षा-क्षेत्र में शुद्धिकरण स्थापित हो सके और अनाचार की आबोहवा खत्म हो जाय।

इसके अलावा आचार्यकुल को शिक्षा-सुधार के मूलभूत कार्य में तेजी से लग जाना है। पिछले वर्ष सेवाग्राम में अखिल भारत नयी तालीम समिति और शिक्षा मंडल वर्धा के संयुक्त तत्वावधान में एक अखिल भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन

आयोजित किया गया था जिसका उद्घाटन स्वयं हमारी प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। इसमें करीब सभी राज्यों के शिक्षा-मंत्री और देश के बहुत से विश्व-विद्यालयों के उपकुलपति शामिल हुए थे। राष्ट्र के गैर-सरकारी प्रमुख शिक्षा-शास्त्री तो उपस्थित थे ही। तीन दिवस की चर्चा के बाद सभी ने सर्वानुमति से एक वक्तव्य प्रकाशित किया था जिसमें यह घोषित किया गया था कि "शिक्षा हर स्तर पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी एवं उत्पादक क्रियाकलापों द्वारा आर्थिक विकास व वृद्धि से सम्बद्ध रहकर ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों में प्रचलित हो।"

यह भी निश्चय किया गया था कि "प्राथमिक विद्यालयों से विश्वविद्यालय स्तरों के पाठ्यक्रमों में तीन मूल तत्वों पर बल दिया जाय —

(१) आत्म निर्भरता, आत्म विश्वास तथा शैक्षणिक कार्यक्रम के अविभाज्य अंग के रूप में प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा श्रम-प्रतिष्ठा,

(२) सामुदायिक सेवा के सार्थक कार्यक्रमों में छात्रों और शिक्षकों के सहयोग द्वारा राष्ट्रीयता एवं सामाजिक दायित्व की भावना और

(३) नैतिक मूल्यों का सिंचन, तथा सर्व धर्म समभाव और उनके मूलभूत सिद्धान्तों की एकता।"

यह भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया कि 'परीक्षा-पद्धति न केवल विद्यार्थियों की बौद्धिक सिद्धि की जांच करे, बल्कि उत्पादक और विकास प्रवृत्तियां, सहभागी कार्यक्रमों, समाज सेवा, नियमित उपस्थिति तथा सामान्य व्यवहार पर भी ध्यान दे।"

सेवाग्राम के वक्तव्य में और भी कई महत्व के विषय शामिल किये गये हैं जिनका यहां जिक्र करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं आशा करता हूं कि आचार्यकुल सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन के वक्तव्य का बारीकी से अध्ययन करेगा और उसके अनुसार देश में शिक्षा-सुधार के महत्वपूर्ण कार्यको आगे बढाने में सक्रिय हिस्सा लेगा। मुख्यतः हमें यह भलीभांति समझ लेना है कि जब तक हमारी शिक्षा का विकास और समाज-उपयोगी उत्पादक कार्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं स्थापित होगा तब तक वर्तमान समस्यायें हल न हो सकेंगी। यह भी साफ तौर पर समझना और समझाना होगा कि सरकारी नौकरियां और विश्वविद्यालयोंकी डिग्रियों का कोई सीधा सम्बन्ध न रखा जाय। प्रत्येक सरकारी विभाग अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वतन्त्र परीक्षा ले और कार्यकर्ताओं को उनकी योग्यता के अनुसार चुन ले, भले उनके पास कोई डिग्री हो या न हो।

मुझे एक खास बात का और आचार्यकुल का विशेष ध्यान खींचना है। मेरा पक्का विश्वास है कि शिक्षा-सुधार का कार्य केवल शिक्षकों और आचार्यों द्वारा पूरा नहीं हो सकेगा। इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों के माता-पिता का पूरा सहयोग

अनिवाय है। हमारे ऋषियोने "मातृदेवो भव", पितृदेवो भव, आचायदेवो भव", अतिथिदेवो भव' यह केवल कविता की दृष्टि से नही लिखा या, इस क्रम के पीछे उनकी बडी पैनी व गहरी नजर थी। वे अनुभव से जानते थे कि बच्चो पर सब से अधिक प्रभाव माता का पडता है, उसके बाद पिता का, आचाय तो तीसर नम्बर पर ही आते हैं। इसलिए आचामकुल को अपनी मर्यादाएँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए और शिक्षा-पद्धति में क्रान्ति लाने के लिए अभिभावको का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना चाहिए। इसके बिना यह अहम काय कभी सफल न हो सकेगा।

अन्त में आचायकुल के सभी सदस्यों का किसी न किसी समाज-सेवा के काम में निरन्तर लगा रहना आवश्यक है। तभी वे राजनीति के स्थान पर लोकनीति को सच्चे अयमें स्थापित कर सकेंगे। इस दृष्टि स आचाय विनोबा न सारे देश में भूदान-ग्रामदान आन्दोलना द्वारा ग्राम-स्वराज्य का जो अलख जगाया है और एक व्यापक अहिंसक क्रान्ति की नीव डाली है वह हम सभी के लिए बहुत अहमियत रखती है। मुझ उम्मीद है कि आचायकुल इस प्रकार के ग्रामदानी क्षेत्रा के विकास की ओर विशष ध्यान दगा ताकि वहाँ लोकशक्ति ठीक ढग स जाग्रत हो और देश व दुनिया के सामन अहिंसक और विकेन्द्रित समाज का एक सच्चा आदश पेश किया जा सके।

मैं आपका अधिक समय नही लेना चाहता हूँ। हम सब को मुख्य मार्ग-दशन तो ऋषि विनोबा स प्राप्त करना है। अत अब मैं आप सबकी ओर स उनस निवेदन करता हूँ कि वे हमें योग्य दिशादशन प्रदान करें।

ज्ञान प्राप्ति का नियम

ज्ञान शालीनता और नम्रता के साथ प्राप्त करना होता ह। ज्ञान लेन वाले को देने वाले के सामन वसे ही डरते हुये और उत्सुकता के साथ खडा होना चाहिये जसे कोई भिखारी किसी धनी दानी के सामने खडा होता ह। जो अहकार म ह और जो इस तरह से नहीं बरतते वे निश्चय ही अज्ञानी रहते ह और जीवन में कभी भी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करते।

सत तिरुवल्लुर,-तिरुकुरल से साभार।

विनोबा :

शिक्षा में परिवर्तन के लिए आचार्य उत्तमोत्तम सत्याग्रह करें :

(आचार्यकुल सम्मेलन में पूज्य विनोबा जी ने तीन प्रवचन किये। फिर सम्मेलन में आये बिहार आचार्यकुल के प्रतिनिधियों से भी उनकी अलग से बातचीत हुई। यहाँ उन तीनों प्रवचनों और बिहार के शिक्षकों से हुई बातचीत का सारांश दिया जा रहा है।)

आज बाबा कुछ वैसे ही कठिनाई में पड गया है, जैसे एक वैदिक ऋषि पड गया था कि विद्वानों के सामने क्या कहूं। बाबा बोलता है बहुत पर आज तक जो कुछ भी बोला वह गाववालों के सामने ही बोला है। और वहाँ तो आप जानते हैं कि वहाँ 'अरण्डोऽपि द्रुमायते' होता था। किन्तु यह तो विद्वत्जनों का सभा है तो मैं क्या कहूँ यह सोच रहा हूँ। फिर यह भी सवाल है कि अब तक जो कुछ कह चुका उसे छोडकर और अब क्या कहूँ।

किं भाग्यम् देहवताम् :

आज प्रातः मामा क्षीरसागर जी मिले। मैंने पूछा आपके आचार्यकुल का क्या हालचाल है तो बोले अच्छा है। इस प्रकार से आचार्यकुल का स्वास्थ्य अच्छा है यह जानकर अच्छा लगा। यह उत्साहप्रद बात है। आज कल तो हम सबका स्वास्थ्य बिगड रहा है। सारे समाज का ही स्वास्थ्य बिगाड पर है। इस हालत में यदि आचार्यकुल का स्वास्थ्य अच्छा है तो यह अच्छी बात है। आप जानते हैं शंकराचार्य महाज्ञानी थे। किन्तु वे देह के प्रति जरा उदासीन थे। फिर भी उन्होंने एक सवाल किया 'किं भाग्यम् देहवताम्' और स्वयं ही उत्तर भी दे दिया 'आरोग्यम्' तो वे भी आरोग्य पर इतना जोर देते थे। आज तो देश की ही प्रकृति बिगड रही है इस हालत में आचार्यकुल का स्वास्थ्य अच्छा है तो यह बाबा के लिए प्रसन्नता की बात है।

किन्तु इस स्वास्थ्य के लिए कुछ त्याग करना होता है। कुछ व्यायाम भी करना होता है। मैंने पूछा कि देश में कितने राज्यों में यह आचार्यकुल फैला है। तो मालूम हुआ कि सारे देश से काफी कम लोग आये हैं और दक्षिण से तो कुल मिलाकर पाँच ही आदमी आये हैं। कर्नाटक से तो कोई नहीं आया। अब देश के कुल पाँच लाख गाँव हैं और शिक्षक कुल मिलाकर २३-२४ लाख होंगे। तो १ प्रतिशत भी

नहीं आये। इस प्रकार हमारा स्वास्थ्य एक प्रतिशत भी सही नहीं है। तो इस प्रकार कैसे चलेगा। इतना कम व्यायाम होगा तो कैसे चलेगा। फिर त्याग भी सुना है आप लोग बहुत कम करते हो। मैंने सुझाया था कि वेतन का एक प्रतिशत आचार्यकुल को दें, मैंने यह माहवार देने को कहा था। वह नहीं हुआ। तब मैंने कहा कि साल में एक प्रतिशत दो। वह भी नहीं हुआ। तब फिर १ पैसा रोज पर आये। किन्तु यदि किसी साल ३६६ पैसे देने पड़े तो क्या होगा। हर चार साल बाद एक पैसा अधिक देना होगा। तो इस प्रकार की कंजूसी चलेगी तो कैसे चलेगा।

सर्व सेवा संघ की भूमिका

आज तक आचार्यकुल का सारा भार सर्व सेवा संघ उठाता रहा है। और इस पर भी उसका उस पर कोई अंकुश नहीं था। आचार्यकुल पूर्ण स्वतन्त्र है। किन्तु अब सर्व सेवा संघ भी कहाँ से देगा। अब तो उसका रूप बदल कर वह लोक सेवक संघ बनने जा रहा है। अब वह भी उपवासदान पर चलेगा। अपनी अपनी शक्ति भर सब उसे दें। तो आचार्यकुल को भी उसे बल देना होगा। मैंने स्वयं से यह उपवासदान आरम्भ किया है। समाज में यह होगा तो समाज का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। वेद में तो अन्न को ब्रह्म ही कहा है। वेद पूछता है कि अन्न बढ़ाओ 'अन्नबहुकुर्वीतम्'। कैसे बढ़ाओ 'यथाकया च विधया'। चाहे जिस ढंग से बढ़ाओ। कारण क्या था। 'अन्न ब्रह्मेतिविजानात्।' भगवान् बुद्ध की यह कथा तो आप सबने पढ़ी ही होगी कि उनके शिष्य एक भूखे को उनके पास उपदेश के लिए लाये किन्तु भगवान् ने उनसे कहा कि पहले इसे अन्न खिलाओ। तो बुद्ध इतने बुद्ध थे किन्तु हम तो बुद्धू बन गये हैं। अन्न कैसे बढ़ाना यह नहीं करते। किन्तु अन्न के अलावा अन्य सब गौण हैं। अन्न प्राण है। तो मैं कहता हूँ कि अन्न बढ़ाओ और उपवास करके दान करो। बाबा ने कहा था कि भारत भर से साल में ४० हजार दान मिलने चाहिए। अभी चार माह हो गये किन्तु कुल ४०० भी नहीं हुये। तो इतनी धीमी गति है हमारी। आचार्यकुल को यह कमी पूरी करनी चाहिये। आचार्यकुल अपने हिसाब से कम से कम ४००० उपवास दान प्राप्त कर सर्व सेवा संघ को दे। इस प्रकार करेंगे तो हम श्रमण-संस्कृति से भी सम्पर्क कर सकेंगे। यह श्रमण-संस्कृति हमारे देश की मूल संस्कृति रही है। श्रमण-संस्कृति याने श्रम करने वालों की संस्कृति। आचार्यकुल को इस संस्कृति का पारिव्राजक बनना है।

परम्परा को आगे बढ़ाओ :

अब आप जानते हैं कि हमारे देश में आचार्यों की परम्परा रही है और खासकर दक्षिण में तो यह बहुत ही दृढ़ रही है। हमारे चारों महान् आचार्य दक्षिण

में हुये है। शकर केरल में हुये, मध्व कर्नाटक में हुये, वल्लभ आन्ध्र में हुये और रामानुज तमिलनाडु में हुये। और ये चारो फिर सारे ही भारत भर में फैल गये है। ये लोग जीवनभर देश में घूमे और उन्होने सर्वत्र अपनी परम्परा कायम की। इसलिये यह आचार्यकुल का विचार दक्षिण को सबसे अधिक मान्य होना चाहिये। किन्तु हम अभी वहाँ गय ही नही। सम्भवत इसमें भाषा की एक कठिनाई होगा। किन्तु आचार्यकुल को वह भी नही होनी चाहिये। आचार्यकुल सस्कृत का अध्ययन और प्रसार करन का काम उठा ले। सस्कृत में चूकि एक एक पद को सस्कार देते है इसलिये उसे सस्कृत कहा गया। सस्कृत बहुत ही सरल और वैज्ञानिक भाषा है। उसका उपयोग आप चाहे जैसे कर सकते है। आप चाहे तो 'आहारपात्रम्' कहे या 'पात्रम् आहार' कहे अर्थ में कोई फर्क नही होता। देशकी सभी भाषाओंमें सस्कृत है। दक्षिण में तो बहुत ही अधिक है। सस्कृत हमारी सस्कृति का मुख्य भाग है। तमिल में वह ३० प्रतिशत से भी अधिक होगी। तमिल के तो नाम भी सस्कृत में ही होते है। केरल में भी बहुत सस्कृत भरी पडी है। बगला में भी यह बहुत अधिक है। मराठी और हिन्दी आदिमें तो है ही। तो मैं कहता हूँ कि आचार्यकुल सस्कृत के माध्यम से दक्षिण में फैले। आज आप देखते है कि यह सारा शकर के ही कारण हुआ है कि देश में चारो ओर एक ही सस्कृति व्याप्त है।

भारत की राष्ट्रभाषा सस्कृत हो'

एक बार किसी ने मुझसे पूछा कि भारत की राष्ट्रभाषा के बारे में आपके क्या विचार है तो मैंने कहा कि मेरे विचार में सस्कृत को भारत को राष्ट्रभाषा होना चाहिए। कारण क्या है— सस्कृत में चार गुण है एक तो वह सबसे प्राचीन है और उसमें भारत का सर्वोत्तम सग्रहीत है। दूसरे वह सबको समान भाव से कठिन है इसलिए किसी को भी उसके लिए द्वेष नही हो सकता है। तीसरे वह सबको समान भाव से सुगम भी है क्योंकि देश की सभी भाषाओं में वह है ही। चौथे वह भारत की सब भाषाओं से कही अधिक आज सारी दुनिया में पढी जाती है। आप चाहे जहाँ जाय, जर्मन अमरीका आदि में तो वहाँ लगभग हर विश्व विद्यालय में सस्कृत के पठन-पाठन की व्यवस्था है। इस तरह की व्यवस्था और किसी भारतीय भाषा के लिए नहीं है। इसका कारण यह है कि आज भी सस्कृत का ही सबसे अधिक आदर दुनिया में होता है। मैंने विश्व की भाषाओं का कुछ सूक्ष्म निरीक्षण किया है तो पाया कि अंग्रेजी में ही बहुत अधिक शब्द सस्कृत के है। यही बात अन्य विदेशी भाषाओं के लिये है। मैंने कम से कम २००० विदेशी शब्दो पर चिह्न लगाये है जो सस्कृत से बने या निकले है। पश्चिमी दर्शन में सारे आध्यात्मिक शब्द भी सस्कृत से ही निकले हैं। तो यह व्यापक भाषा है। आचार्यकुल का इसका वाहन बनाओ।

सर्व शील में ही अमोघता :

तो आचार्यकुल की इस प्रकार से आज सबसे अधिक आवश्यकता है। यह सब समस्याओं का समन्वययुक्त और तटस्थ अध्ययन करे और नम्रता से किन्तु निर्भयता से अपना अभिमत प्रकट करे। तब उसके वचन को प्रतिष्ठा होगी। शंकर ने कहा है कि किसके वचन अमोघ होते हैं 'केसाम् अमोघ वचनम्' वे स्वयं ही उत्तर देते हैं 'एच सत्यशील, मौनशील, दानशील, खिलशाल, एषाम् अमोघवचनम्।' तो आचार्यकुल इस प्रकार की अमोघता प्राप्त करे।

आचार्यकुल की जिम्मेदारी :

मैं आपके सामने भारत के एक और खतरे की बात भी रखना चाहता हूँ। अपना यह भारत तो १५–१६ भाषाओं वाला विशाल देश है। यूरोप में तो हर भाषा का एक अलग राष्ट्र होता है पर हमारे देश में हमने एक राष्ट्र में ही १५–१६ भाषाएँ रखी हैं। यह बहुत बडी और समझने लायक बात है। यह हमारे पुरखों का पराक्रम था। किन्तु आज हम क्या देख रहे हैं। आज हमारे यहाँ पर प्रांत टूट रहे हैं, वे अलग स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं। किन्तु उधर यूरोप में एकता का काम हो रहा है। वहाँ यूरोप का 'कामन मार्केट' बन रहा है। यूरोप की एकता का आरम्भ और भारत की एकता का ह्रास यह हम देख रहे हैं। आज भारत की एकता के विच्छृखलन का खतरा आ गया है। तो यह आचार्यकुल की जिम्मेदारी है कि वह भारत की एकता न टूटने दे। इसलिए वह दक्षिण में जाय।

गुजरात से खास अपील :

यहाँ पर अन्य प्रदेशों की ही तरह गुजरात से भी कम ही लोग आये हैं। अब वहाँ पर तो यह विचार गांधीजी के कारण सबसे अधिक मजबूत है। किन्तु अभी वहाँ पर एक गलत फहमी है कि जीवन के टुकडे नहीं किये जा सकते इसलिये हम राजनीति से अलग कैसे रह सकते हैं। यह वे गांधी जी के नाम से कहते हैं। बाबा भी मानता है कि जीवन एक है और अखंड है। किन्तु मुझे आशा है कि अब कांग्रेस के टूटने के बाद गुजरातवाले समझेंगे कि जीवन की एकता का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। राजनीतिज्ञ और राजनीति तो हमेशा ही तोडने वाली होती है। वह जोडना तो जानती ही नहीं। राजनीति ने जर्मनी और बर्लिन को तोडा, उसने कोरिया तोडा, वियतनाम को तोडा, भारत को तोडा और अब भी वह जगह जगह पर तोडने का ही काम कर रही है। इससे बाबा की इस बात पर विचार होना चाहिये कि राजनीति से एकता नहीं होती। और फिर उस पर अंकुश तो हमेशा चाहिये ही। आचार्यकुल राजनीति का 'साक्षी' रहे किन्तु उसमें स्वयं ही डूब जाएगा तो साक्षित्व कैसे करेगा? जैसे खेल में एक 'रेफरी' होता है जो खेल से अलग रहता है तभी वह

सही निणय दे सकता है और उसके निणय मान्य होते हैं। वैसे ही आचायकुल को चीजो को सही पसपेक्टिव (परिप्रेक्ष) में देखना होगा और उसका सही पसपेक्टिव यही हो सकता है कि वह चीजा को बाहर स तटस्थ होकर देखे। वह बाहर स अधेरे पर प्रकाश फेंकेगा तभी वह अधेरा दूर कर सकेगा। इसलिये गुजरात स बाबा की यह खास अपील है कि वह बाबा की बात पर विचार कर। हमें तो विश्व का समूचा चिंतन करना चाहिये और उसमें राजनीति तो आती ही है। बाबा तो जयजगत् का बात कहता है। किन्तु यह समझना होगा कि आज विश्व की एकता अभी सधी नही है और वह केवल नार लगाने स नही सधेगी। अभी जिस तरह की एकता की बात कही जाती है वह तो केवल बुद्धिको एकता है किन्तु हृदय स तो विश्व आज और भी अधिक खडित है और यही सबसे बडा खतरा है,। इसस सर्वत्र झगडे ही बढगे। जब हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व होगा तो फिर हम किसी भी प्रकार की एकता नही साध सकते। अत विश्व राजनीति का अध्ययन करो पर उससे एकता सधनी चाहिये। आज वह तोडने का काम कर रही है। काग्रेस टूट गई, समाजवादी दल टूट गया, अन्य दल भी टूट रहे हैं। अब भाषा और धम के नाम पर भी यह तोडने का ही काम कर रही है। यह सब होगा ता भारत को एकता भी टूटेगी ही। तो मैं गाधी जीके नाम से तो नही बोलता किन्तु इस पर विचार करने की आवश्यकता है। यह सब मैंने खासकर गुजरात के लिये ही कहा है। वह इस पर विचार कर।

दडशक्ति का अधिष्ठान .

अभी मैं डडा लेकर चल रहा था तो विचार करता रहा कि इस डडे की क्या आवश्यकता है। यही समस्या तुलसीदास के सामने भी थी। तुलसीदास तो रामराज्य के हामी थे तो उन्होने यह कहा कि रामराज्य में दड यतियो के ही हाथ में रहता था राजाओ के हाथ में नही। 'दड यतिनकर' अब आप भी रामराज्य चाहते हो तो दड को राजाओ के हाथ स निकाल कर यतियो के ही हाथ में दे दो। अब मैं तो यति नही हूँ तो सोचा कि फिर मेरे डडे का क्या औचित्य हो सकता है। तो मुझे शास्त्रवाक्य मिल गया कि 'वृद्ध गृहीत्वादडम्'। मैं बूढा तो हूँ ही। पर उसमें यह भी कहा है कि 'तदपि न मुचति आशा पिंडम'। अब मैं तो कोइ आशा रखता नही। मेरी एक ही आशा है कि अब पचशक्तियाँ एक हो। उसमें आप भी आते है इसलिये आपके ही लिये मेरी आशा है।

सघे शक्ति कलियुगे :

यह सज्जन सगीति है यह मैं मानता हूँ। बुद्ध के जाने के बाद बोधिसत्वो की एक सगीति हुई थी और उसके बाद उन्होने घोषणा की 'सघ शरणम् गच्छामि'। पहले 'बुद्ध शरणम् गच्छामि' था। किन्तु जब बुद्ध नही रहे तो फिर उनका

ध्यान सघ ने लिया और फिर सघ शरणम् गच्छामि हुआ। इसी प्रकार की यह सगीति है। आचार्यकुल की यह सगीति यद्यपि कोई सगठन नही है, जो है भी वह बहुत ढीला है, यह तो विद्वानो का पक्षमुक्त सगम है। और इस प्रकार का पक्षमुक्त सगम आज और भी आवश्यक है। कहा भी है 'सघे शक्ति कलियुगे ' यह ध्यान देने की बात है। सज्जन यद्यपि बहुत कम सगठित होते हैं किन्तु दुर्जन बहुत ही शीघ्र सगठन बना लेते हैं। इसका कारण शायद यह है कि सज्जन लोग सगठन पर बहुत अधिक विश्वास करते नही। वे तो स्वय को ही बुद्ध मानते है। किन्तु अब कलियुगमें इस तरह का बुद्धत्व किसे प्राप्त हो सकता है इसलिए 'सघे शक्ति कलियुगे ' है। तो आप सब लोग विद्वानो का इस प्रकार का एक नम्र सघ बनाओ।

आचार्य अपेक्षाकृत आचारवान् हैं :

प्रश्न —आप कहते है कि हम समाज को दिशा दें किन्तु हमारा स्वयका आचरण तो इस तरह का है नही। हममें आज कोई आचारण ही नही रहा। जब तक यह नही होता तब तक यह सब कैसे होगा ?

विनोबा —कहा गया है कि जब तक आचार्य आचारवान नही बनते तब तक कुछ नही हो सकता है। पहले उन्हे 'आचार्यत्व की दीक्षा' देनी होगी। मैं कहता हूँ कि यह कहना गलत होगा कि आचार्योंमें आचार नही है। मेरा जितना सम्पर्क हुआ है इस समाज से मैं कह सकता हूँ कि उनमें अपेक्षाकृत काफी आचार है। इसका मतलब यह नही कि उनमें कोई सुधार नहीं चाहिये। तो रोज आत्म-निरीक्षण करो और आचारवान् बनने का प्रयास करो। मेरे छात्र जीवन में भी मुझे जितने शिक्षकों ने पढ़ाया है उनमें भी आचारवान् थे और उनका प्रभाव मेरे जीवन पर आज तक है। अब सुमति और कुमति तो सब के ही अन्दर रहती है, तो हमारा काम इतना ही है कि हम कुमति को कम करते जाय और सुमति बढाते जायें। मेरा मानना है कि विष्णुसहस्रनाम के प्रभाव से सदाचार में वृद्धि होती है तो वह सब आचार्यों को करना चाहिए।

पक्षमुक्ति और आचार्य :

प्रश्न —आज तो समाज और जीवन में भी दलों का इतना प्रभाव हो गया है और वे इतने अधिक कारगर और उपयोगी भी है कि क्या हमारे लिये दलों से अलग रहना सम्भव और उचित है ? क्या हम दल में रहकर भी तटस्थ नही हो सकते ?

विनोबा —इस बात पर विचार करना चाहिये। गाधी जी के सामने जब कभी कोई भी राजनीतिक या आध्यात्मिक सवाल खड़ा होता था तो वे झट से बाबा को बुलाकर पूछते थे कि 'क्यो रे' तू तो सब बातो से अलग रहकर सोचता है, इस सवाल

पर तेरी क्या राय है। बाबा बचपन से ही तटस्थ वृत्ति का रहा हूँ तो गाधी जी की भी बाबा पर कुछ श्रद्धा थी। फिर उनका यह तो गुण ही था कि वे अपने साथियो को हमेशा ही ऊपर उठाने का प्रयास करते थे। तो जब जब खासकर राजनीति का कोई सवाल आता तो वे बाबा की राय मॉगत। तो इस प्रकार स गाधी जी को भी तटस्थ राय की आवश्यकता होती थी। इसी कारण स बाद को गाधी जो ने कॉग्रेस भी छोड दी थी। मैंने पूछा कि 'पहले क्यो नही छोडो थी' तो बोले— 'अब मुझे कुछ अक्ल आ गई है। तो ऐस थे गाधी जी। वे चाहते तो आजादी के बाद देश के प्रधानमत्री हो सकते थे, राष्ट्रपति भी हो सकत थे। किन्तु उन्होंन यह सब कुछ नही किया और आजादी के दिन तो वे नोआखली में गॉव गॉव घूमकर लोगों की सवा कर रहे थे। वे हर मामले में हमेशा अत तक तटस्थ रहते थे और साथिया स कहते थे कि वे सब मिलकर निर्णय करें। तो मैं कहना यह चाहता हूँ कि तटस्थ राय की हमेशा ही आवश्यकता होती है और गाधी जी जैस मनुष्य को भी होती है।

दल में रहकर दलशुद्धि असम्भव :

अब दल में रहकर हम तटस्थ हो सकते है कि नहीं यह तो केवल भगवान ही कर सकता है क्योकि वह विश्व में रहकर भी विश्व स अलग रह सकता है। अब बाबा भी कर सकता है कि नही, तो बाबा अपने में वह शक्ति देखता नही। यह सम्भव नही है। दल में रह कर तटस्थता हो ही नही सकती है। दल में रहकर फिर दल शुद्धि भी नही हो सकती है। यह काम गगा और यमुना ने करके हजारो साल से देख लिया और वे हार कर चुप बैठ गई है। पहले उनका यह विचार था कि वे सागर को मीठा बना सकेगी किन्तु अब वे भी मान गई कि सागर में रहकर वे स्वय भी खारी हो बन गइ है और उनके पास सिवाय इसके कोई चारा नही है। जब गगा यमुना नही बच सकीं तो मैं कहता हूँ कि हम ही बच जायें। यह कोशिश ही बेकार है।

सामाजिक विकास की दिशा :

प्रश्न —समाज में सवत्र हिंसा भरी पडी है। इस हालत में फिर केवल विचार से ही क्या होगा?

विनोबा —मेरा कहना है कि हिंसा से तो जरा भी डरना नही चाहिये। खासकर बम स तो जरा भी भय नही होना चाहिये। मैं तो कहता हूँ कि बम अहिंसा के सबसे अनुकूल है। अहिंसा को बम से नही छोटे छोटे हथियारो स ही अधिक खतरा है। दिल के राग द्वेष ही उसके असल शत्रु है। इसलिये बाहरी हिंसा से कोई भय नही है। फिर मैं तो मानता हूँ कि समाज अहिंसा की ही ओर बढ रहा है। अहिंसा और आध्यात्मिकता बढगी यह मेरी श्रद्धा है। सवत्र यही हो रहा है। आज आप यूरोप में देखें कि 'कामन मार्केट' बना रहे हैं। दोनो जमन एक होने का प्रयास कर

रह हैं। कोरिया में भी यह हो रहा है। सारा विश्व धीरे धीरे अहिंसा की ओर बढ रहा है।

आचार्योंमें पलायनवाद है ?

प्रश्न —आपने आचार्यों से बहुत अपेक्षायें की हैं किन्तु उनमें तो किसी भी समस्या का सामना करने का साहस ही नहीं है। वे तो समस्याओं से घबराते हैं।

विनोबा —समस्याओ से घबराना नही चाहिये। यह समझना चाहिये कि भारत देश बहुत बडा देश है। इतने बडे देश में समस्यायें तो होंगी ही। किन्तु भारत ने समस्याओं का हल निकालने का जो तरीका निकाला है, वह हमें याद रखना है। भारत ने हमेशा वैदिक दृष्टिकोण अपनाया है। वह समस्त पृथ्वी की ही बात करता है। वेद में 'भारत सूक्त' नहीं 'पृथ्वी सूक्त' है। हम विश्व मानुष की बात करते हैं। नरसी मेहता, माधव देव आदि भी सब पहले पृथ्वी की वदना करते है फिर भारत भूमि की। बाबा तो 'जय-जगत' ही कहता है। आगे यह पृथ्वी और छोटी पडने वाली है। इसलिये हमने तो सारी वसुधा को ही कुटुम्ब माना है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। हमारे शास्त्रों में कई बार प्रश्न किया गया है कि 'हम कहाँ रहते है' और फिर जवाब दिया गया है कि 'भुवनत्रयम्'। हम तीनो भुवनों में रहने वाले हैं। शंकर ने यह कहा, तुकाराम ने यही कहा। इसलिये समस्याओं से घबराने की आवश्यकता नही है। समस्यायें हमारी ही अकेली नही हैं और न हम अकेले उनका हल कर सकते हैं। यह सब मिलकर ही हो सकता है। इसलिये बाबा ने कहा है कि सब मिलकर रहो और मिलकर करो।

जो करना है अभी करो

प्रश्न —आज शिक्षा में परिवर्तन की बात तो बहुत होती है किन्तु कुछ होता नही है। क्या किया जाय ?

विनोबा —सबसे बडी बात तो यह है कि क्या शिक्षकों को लगता है कि यह शिक्षा बदली जानी चाहिये ? आज की शिक्षा तो इतनी निकम्मी है कि उसे एक दिन के लिये भी जारी रखना नही चाहिये। बाबा ने तो सन १९१६ में ही स्कूल छोड दिया था। क्योंकि यह शिक्षा नौकरी के लिये थी और बाबा को नौकरी तो करनी नहीं थी। तो वह बेकार शिक्षा को लेकर क्या करता। फिर आज तो नौकरी भी नही मिलती। किन्तु शिक्षा तो वही चल रही है। उससे तो आज बेकारी बढ़ रही है। यह शिक्षा इतना निकम्मा है फिर भी कोई इसे त्यागना नही चाहता। तो मैं कहता हूँ कि शिक्षक मिलकर सब हडताल कर दें और इस निकम्मी शिक्षा में शामिल होने से इन्कार कर दें। वे अपने छात्रों को भी इसमें अपने साथ कर लें।

शिक्षा में सुधार का अब समय नही रहा है। अनेक कमीशन बैठे हैं। पहले राधाकृष्णन् कमीशन बैठा, फिर कोठारी कमीशन बैठा। और भी कई कमीशन बैठे। किन्तु क्या हुआ। बाबाने कभी कहा था कि आजादी में जैसे हमने पुराना गुलामी का झंडा उसी दिन उतार कर फेंक दिया वैसे ही शिक्षा उसी दिन बदल दी जानी चाहिये थी। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा का विचार देश के सामने रखा था। बाबा ने भी फिर योग, उद्योग और सहयोग की शिक्षा का विचार रखा है। अब यह काम आचार्यकुल का है कि वह सोचे कि देश में कैसी शिक्षा चलनी चाहिये। मेरा कहना है कि शिक्षा का सचालन विश्व विद्यालयों के हाथों में हो और विश्व विद्यालय तथा स्कूल, कालेज सरकार से मुक्त हो। इनमें सभी शिक्षक आचार्यकुल का विचार मान्य कर काम करें। या तो शिक्षा को बदलो या फिर स्कूल का त्याग करो।

प्रश्न —आप कहते हैं कि शिक्षा विश्वविद्यालयों के हाथ में रहे। वे तो आज भी काफी हद तक स्वतन्त्र है फिर भी उनमें सबसे अधिक पार्टीबाजियाँ और शिक्षा में बिगाड़ है। तो क्या करें ?

विनोबा —यह हो सकता है क्योंकि जो जितना ऊँचा होता है उसमें उतना बड़ा मोह होता है। तो उनके मोह निरसन का काम आप करें। किन्तु जो करना हो वह अभी करो। मेरा कहना है कि शिक्षा में सुधार के लिये उत्तमोत्तम सत्याग्रह करो। आज की शिक्षा बदलने के लिये विश्वविद्यालयों को भी आगे आना चाहिये। आप तो जानते हैं कि डा जाकिर हुसैन बहुत बड़े शिक्षाशास्त्री थे और हमारे राष्ट्रपति तो थे ही। वे एक बार मेरे पास आये और शिक्षा सुधार के बारे में चर्चा होने लगी। तो मैंने कहा कि इस शिक्षा से सरकार के सामने भी एक द्विविधा है कि वह लोगों को न पढाये तो लोग मूर्ख रहेंगे और पढाये तो वे बेकार रहेंगे। तो उन्होंने झट से कहा कि इससे तो वे दोनों ही होते हैं। ऐसी थी उनकी सहज प्रतिभा। तो आप इस शिक्षा के खिलाफ सत्याग्रह करोगे, सब छात्र और शिक्षक मिलकर हड़ताल करोगे तो फिर सरकार के भी ध्यान में आ जायेगा कि अब क्या करना है। उसे फिर इस सारे सवाल पर सोचना होगा, वह फिर कमीशन बिठायेगी और फिर उस पर अमल भी करेगी।

शिक्षकों की जीविका का सवाल :

प्रश्न —आप कहते है कि शिक्षक स्कूलों का त्याग कर दें तो फिर उनकी जीविका का क्या होगा ?

विनोबा —अब बिहार में ही शायद कुल दो लाख शिक्षक होंगे। विश्व विद्यालय और स्कूल में सब। और देहात शायद ७५ हजार के करीब हैं। याने हर देहात के पीछे ऐसे दो तीन ही शिक्षक आते हैं। तो शिक्षक गाँव की सेवा करें और

गाँव उनका दायित्व उठायें। शिक्षा सुधार केवल शिक्षकों को ही नहीं चाहिये वह सब अभिभावकों को भी तो चाहिये न! तो सब लोग, शिक्षक और अभिभावक, मिलकर शिक्षा बदलने के लिये आगे आवें।

कर्तव्य अधिकार से पहले है :

प्रश्न —आज तो शिक्षक संघ आये दिन रोज ही हड़ताल करते रहते हैं और सरकार पर उसका कोई भी असर नहीं होता है। इस पर आपका क्या कहना है ?

विनोबा —जहाँ तक मैंने सुना है कि आज तो शिक्षक इसलिये हड़ताल नहीं करते कि शिक्षा में सुधार हो। वे तो केवल अपना वतन बढ़ाने के लिये हड़ताल करते हैं। अपने अधिकार के लिये हड़ताल करते हैं। किन्तु इस अधिकार से पहले आपका कर्तव्य है कि देश निकम्मी शिक्षा से मुक्ति पाये। हमने आचार्यकुल में कर्तव्यों को पहले रखा है। इसका अर्थ यह नहीं कि आचार्यकुल शिक्षकों की समस्याओं की ओर से बेखबर होगा किन्तु समझना चाहिये कि भगवान् ने जीव के लिये कर्तव्य रखा है अधिकार अपने हाथ में रखा है। इसलिये हम पहले अपना कर्तव्य पूरा करें तो भगवान् अधिकार भी हमें दे देगा।

सहरसा अभियान के लिये आवाहन :

प्रश्न —सहरसा से भी शिक्षकों का एक दल आया है। सहरसा के शिक्षकों के लिये आपका क्या सन्देश है ?

विनोबा —सहरसा में अभी एक और अन्तिम अभियान होने वाला है। आचार्यकुल के लोग साढ़े तीन माह उसके लिये दें। वहाँ पर अभी धीरेन दा हैं, जयप्रकाश जी भी वहाँ पर जानेवाले हैं, बंगाल के चारु बाबू भी वहाँ बैठे हैं। तो इन सब बुजुर्गों की शक्ति का आप लोग लाभ ले सकते हो। अब इस अन्तिम अभियान के बाद सफलता हुई तो भी बाहर और असफलता हुई तो भी बाहर। इसके बाद वहाँ पर लगे सेवक सभी बाहर निकल कर लोकगंगा में तैरने के लिये निकल जायेंगे। तो यह सहरसा के शिक्षकों का दायित्व है कि वे इसमें शामिल होकर इसे सफल करने का काम करें।

प्रश्न —आपने कहा कि वे साढ़े तीन माह दें। किन्तु शिक्षकों के अपने तो अनेक झमेले हैं और फिर उन्हें इतने लम्बे समय तक का अवकाश कैसे मिलेगा ?

विनोबा —यह समझना चाहिये कि क्रान्ति कार्य के लिये हमें हर प्रकार के झमेलों को त्यागना होगा। क्रान्ति करना हो तो फिर वह झमेले तोड़ कर ही की जा सकती है। अवकाश माँगो तो फिर सरकार भी मान सकती है कि आप अच्छे काम में जा रहे हैं।

श्री बंशीधर श्रीवास्तव :

आचार्यकुल प्रगति विवरण : (१९६८ से १९७३ तक)

सन् १९६७ के अन्तिम चरण में जब भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसैन पूसा रोड में विनोबा जी से मिले और एक शिक्षाशास्त्री के नाते उन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर भारत में शिक्षण संस्थाओं में दलगत राजनीति का प्रवेश, शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता में सरकार के हस्तक्षेप, स्वयं शिक्षक संघों के द्वारा शिक्षा के सरकारी करण की माँग तथा छात्र-संगठनों की बढ़ती हुई हिंसात्मक प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त की और विनोबा जी से प्रार्थना की कि वे इन समस्याओं के हल के लिये कुछ करें अन्यथा राष्ट्र की बड़ी क्षति होगी तो विनोबा जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि यद्यपि उन्होंने सूक्ष्म में प्रवेश कर लिया है किन्तु वे शिक्षा की समस्या पर समाधान के लिये कुछ करेंगे।

तब विनोबा जी के कहने पर बिहार के तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने ७-८ दिसम्बर ६७ को बिहार के शिक्षा विशारदों की एक परिषद बुलाई इसमें तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री त्रिगुणसेन, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री धीरेन्द्र मजूमदार जैसे मनीषी और चिंतक तथा बिहार के कई विश्व विद्यालयों के उप कुलपति अनेक शिक्षाशास्त्री और शिक्षा अधिकारी भी शामिल हुए। इस परिषद को विनोबा जी ने 'उपनिषद' की संज्ञा दी।

इस परिषद् को सम्बोधित करते हुए विनोबा जी ने शिक्षकों को अध्ययन-अध्यापन के उनके स्वधर्म के प्रति उद्‌बोधित करते हुए कहा कि उन्हें अपनी स्वतन्त्र-शक्ति खड़ी करने के लिये संकल्प लेना चाहिये। विनोबा जी ने कहा कि शिक्षकों को सत्ता एवं संघर्ष की कलुषित राजनीति से मुक्त होकर दलगत संकीर्णताओं और मतवादों से ऊपर उठकर जनशक्ति पर आधारित लोकनीति को अपनाना चाहिये और ज्ञाननिष्ठा तथा विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्यभाव रखने के साथ ही शिक्षा विभाग

को न्याय विभाग की तरह स स्वायत्त बनाने के लिये भी काम करना चाहिये। शिक्षा विभाग की न्याय विभाग की ही तरह से सरकार स स्वतन्त्र और स्वायत्त हस्ती होनी चाहिये और यह विचार समाज को मान्य होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब शिक्षक पक्षमुक्त और तटस्थवृत्ति के हो।

जन्म एव स्थापना

फिर ९ जनवरी ६८ को विनोबा जी मुजफ्फरपुर विश्व विद्यालय में पहुँचे तो वहाँ विश्व विद्यालय क शिक्षा प्रागण में पुलिस का प्रवेश देखकर वे बहुत दुखी हुये और उन्होंने शिक्षकों से अपील की कि वे अपना नैतिक प्रभाव डालकर समाज में अशाति शमन का दायित्व उठायें। उन्होंने कहा कि शिक्षक सकीर्ण साम्प्रदायिकता और दलगत राजनीति स ऊपर उठें और लोकनीति स जुड़कर जो कि हिंसा शक्ति की विरोधी और दडशक्ति स भिन्न है काम करें। उसके बाद विनोबा जी का फिर दो माह तक यही विचार चलता रहा और आर डी कालेज मुगर तथा भागलपुर विश्व विद्यालय दोनो जगहो पर उन्होने शिक्षकों के गिरते स्तर पर अपना गहन अतर वेदना व्यक्त की और उन्हे प्रेरणा दी कि वे अपना स्वरूप पहचानें। इस विचार मथन मे से ही फिर ८ मार्च १९६८ को प्राचीन कहोलमुनि के आश्रम कहोलगाँव में विनोबा जी ने तब 'आचार्यकुल' की स्थापना की घोषणा की।

सकल्प एवं लक्ष्य

यह सही है कि आचार्यकुल का आरम्भ शिक्षा की समस्याओं के सन्दर्भ में स हुआ है। किन्तु जब विनोबा जी ने आचार्यकुल का विचार सुझाया तो उनक मन में शिक्षा की स्वायत्तता और शिक्षकों के अखड वर्चस्व की ही बात थी। इसीलिये पहले उ प्र आचार्यकुल सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए श्रीमती महादेवी जी वर्मा ने कहा था कि आचार्यकुल का काम अपने मनोबल और तपस्या के द्वारा नागरिक और सामाजिक वर्चस्व को कायम रखना और नयी पीढ़ी के मार्ग को आलोकित करना है। यह वह तभी कर सकेगा जब उसका चरित्र उज्ज्वल हो भावनायें उदात्त हों और जब वह राजनीति के दल दल स बचा रहे। हमारी आज की राजनीति तो विक्षिप्तों का एक मेला सा ही है जहाँ साझ सबेरे सत्ता क लिय दगल होता रहता है, दल बदल होता है कुर्सियाँ खींची और उलटी जाती हैं और कोई यह नही जानता कि कब क्या होगा। इस राजनीति ने शिक्षकों का मन दुर्बल कर दिया है और इसने उनके भाई चारे को भी तोड़ा है। इस राजनीति के फेरे में पडकर आज क शिक्षक और विद्यार्थी दोनो ही विक्षिप्त हो गय हैं। उन्हे स्वस्थ बनाने का काम आचार्यकुल को करना है। विचार एक यज्ञ है सकल्प भी एक यज्ञ है। किन्तु इतने स ही काम नही चलेगा। अधेरे में बैठकर दीपक का जप करने स प्रकाश नही आयेगा। उसके लिये तो दीपक ही जलाना होगा। आचार्यकुल का प्रत्येक सदस्य दीपक बनकर जले तभी वह नयी पीढ़ी और समाज को भी आलोकित कर सकेगा।

इस देश में लोकतन्त्र अक्षुण्ण बना रहे और सर्वोय की स्थापना हो इसके लिये सत विनोबा जी ने आचायकुल की सकल्पना के माध्यम से हमें दो मत्र दिये हैं। १ शासन सरकार मुक्त हो और २ सरकार दल मुक्त हो। और शिक्षा इन दोनो स मुक्त हो। शासन सरकार मुक्त और सरकार दल मुक्त हो यह सर्वोदय का विचार है और शिक्षा सरकार और शासन दोनो स मुक्त हो यह आचार्यकुल का लक्ष्य है। यह बात आचायकुल के मूल में ही है। देश में लोकतन्त्र की रक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षा सरकार के हाथ में जाकर विचारों के रेजिमेन्टेसन का माध्यम न बने। नही तो इसस लोकतन्त्र समाप्त हो जायेगा और फिर इससे एकाधिकार वाद का जन्म अनिवाय है।

संगठन :

सन् १९६८ में राजगीर विहार के सर्वोदय सम्मेलन में विनोबा जी की प्रेरणा से सव सेवा सघ ने एक केन्द्रीय आचायकुल समिति का गठन किया। श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री सुमित्रा नन्दन पत, श्री जैनेन्द्र जी, श्री गोविन्दराव देशपाडे, श्री मामा क्षीरसागर, श्री डा रामजी सिंह समिति के सदस्य मनोनीत किये गये और श्री वशीधर श्रीवास्तव को सयोजक नियुक्त किया गया गत ५ सालो में केन्द्रीय समिति की की कुल ५ बैठके हुई है और समिति के प्रयास से आचायकुल का विचार देश क कुल १५ राज्यो में कही कम कही अधिक फैल सका है।

राज्यवार विवरण :

अब तक मिली सूचनाओ के आधार पर यह इस प्रकार है —

बिहार —श्री जैनेन्द्र जी ने अप्रैल १९६९ में समय देकर मूगाढा, भागलपुर, बेगूसराय भगवानपुर मुजफ्फरपुर वैशाली, दरभगा, पटना एव गिरीडीह आदि स्थानो का भ्रमण किया। पहले पहल आचाय कपिल जी को बिहार आचायकुल का सयोजक नियुक्त किया गया। बाद को पटना में समिति का गठन हुआ और फिर उसमें पटना विश्वविद्यालय के उपकुल पति डा महेद्रप्रताप जी को अध्यक्ष और डाक्टर रामजी सिंह जी को सयोजक बनाया गया। किन्तु काम में कोई विशप प्रगति नही हुई। फिर सन १९७१ में केन्द्रीय सगठक श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने सहरसा में काम करत हुए मुशहरी, पूर्णिया, राची, दरभगा, मधुबनी और गया आदि स्थानो का दौरा किया और केन्द्रीय सयोजक भी गया, मुशहरी आदि दो तीन स्थानो पर गय। इस प्रकार से आचाय कुल का विचार धीरे धीरे फैलता गया। १८-१९ फरवरी १९६३ को फिर मुगेर में ही बिहार आचायकुल का पहला सम्मेलन हुआ जिसमें फिर आचाय कपिल अध्यक्ष और डा रामजीसिंह को सयोजक चुना गया। आचायकुल का काम बिहार स ही आरम्भ हुआ था और वहाँ पर शिक्षको ने ६८ में ही अपने लिये एक सकल्प पत्र भी बनाया था उस पर कईयो ने हस्ताक्षर भी किये थे और

इस प्रकार से लगभग २२०० सदस्य बने थे। इसमें सदस्यता शुल्क की कोई धार नहीं थी। बाद को फिर श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा के प्रयास से सहरसा में भी लगभग ७०० सदस्य बने किन्तु शुल्क बहुत ही कम ने दिया और इस समय तो विहार में शुल्क देने वाले सदस्यों की संख्या केवल लगभग सौ तक है। कोष के नाम से इस प्रकार स विहार आचार्यकुल के पास नहीं के बराबर राशि है और उसके कार्यालय का काम भी वहीं भागलपुर में विहार तरुण शांति सेना और गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र के सहयोग स हो चल रहा है।

किन्तु यद्यपि विहार में आचार्य कुल का संगठन का काम बहुत नहीं हो सका है पर विचार-प्रचार का काम काफी हुआ है। ग्राम-स्वराज्य अभियान में सघन क्षेत्रों में आचार्यकुल ने बहुत मदद दी है और भवानीपुर रूपौली मुशहरी आदि में आचार्यकुल के माध्यम स हो शि क्षा विभाग और आचार्यकुल के संयुक्त संयोजन में वर्तमान विद्यालयों को ग्रामाभिमुख एव अंध ग्रामाभिमुख बनाने की दिशा में प्रयास हो रहे हैं जिससे शिक्षा का स्तर ऊँचा उठने का आशा है। विहार में हो सबस पहले गया जिले में सागरपुर उ वि के ३३ छात्रों को लेकर शिक्षको न 'काम के बदले काम ' की एक योजना आरम्भ की है। विहार सरकार के प्रस्तावित दस वर्षीय शिक्षा क्रम पर गत २४ अक्टूबर ७३ को विहार आचार्यकुल की एक विशेष बैठक में तय हुआ कि अभी तत्काल पाठ्यक्रम के लिये सरकार को कुछ निदेशक सूत्र प्रदान किये जायँ जिसके आधारपर ही फिर विहार का माध्यमिक पाठ्यक्रम बने। विहार माध्यमिक शिक्षक संघ विहार संस्कृत शिक्षक संघ विहार बुनियादी शिक्षक संघ और विहार आचार्यकुल के प्रतिनिधियों को लेकर एक मसविदा बनाकर सरकार को दिया गया है। यह भी तय किया है कि यदि सरकार उस इसको ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम नहीं बनायगी तो फिर शिक्षक प्रतिनिधि उससे अलग हो जायेंगे।

शिक्षा की स्वायत्तता पर ७ स ९ दिसम्बर ७३ तक राजगीर में विहार के सभी स्तरों के शिक्षक के संघों के पाँच पाँच प्रतिनिधियों की एक गोष्ठी आचार संहिता और शिक्षा की स्वायत्तता पर विचार करने के लिए हुई जिसमें सब सम्मति से कुछ व्यावहारिक कदम तय हुये।

उत्तर प्रदेश —विहार के बाद उ प्र में ही आचार्यकुल का सबसे अधिक विचार प्रचार का काम हुआ है। सन ६८ में बलिया जिलादान समारोह के अवसरपर पूज्य विनोबा जी की उपस्थिति का लाभ उठाकर आचार्यकुल का एक प्रादेशिक इकाई का निर्माण हुआ। आरम्भ में केन्द्रीय संयोजक ही उ प्र का भी काम देखते रहे किन्तु बाद को फिर खासकर पूर्वी जिलों में श्री प्रो रामवचन सिंह जी के सक्रिय सहयोग स आचार्यकुल का काफी सघन काम हुआ। फिर सन् १९७० की २८ नवम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उपकुलपति श्री डा कालूलाल जी श्रीमाली की

अध्यक्षता में एक बैठक हुई जिसमें आगरा के तत्कालीन उपकुलपति श्री शीतलप्रसाद जी को प्रदेश का सयोजक नियुक्त किया गया। फिर काम कुछ आगे बढ़ा और पूर्व के वाराणसी, बलिया, गोरखपुर, बस्ती, देवरिया, आजमगढ़, फैजाबाद, मिर्जापुर, गोडा और बहराइच और पश्चिम के आगरा, कानपुर, इटावा, फरुखाबाद, बरेली देहरादून और उत्तरकाशी के जिला में काम हुआ। इन जिला में कुल ४२ माध्यमिक स्कूलों और १६ डिग्री कालेजा में इकाइयाँ बनी। किन्तु बाद का सातत्य न रहने से फिर काम ढाला हो गया और सदस्यता शुल्क तो लगभग कुछ भी नहीं मिला। उत्तर प्रदेश में इस समय शुल्क देने वाले सदस्या की कुल सख्या लगभग ३०० है।

इसके अलावा काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, कानपुर, आगरा और गोरखपुर विश्व विद्यालय से सम्बद्ध कालेजा में भी इकाइयाँ बनी। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय की इकाई डा अनन्त रमन जी के सयोजकत्व में बहुत उत्साह से काम करता है और अपना एक विशेष स्थान रखती है। इसी इकाई की जिम्मेदारी पर असल में उ प्र आचार्य-कुल का पहला सम्मेलन विश्व विद्यालय में सम्पन्न हो सका है। बसत कन्या महा-विद्यालय कमच्छा व बसत महिला विद्यालय राजघाट में भी इकाइयाँ है जिन्होंने बगला देश के सकट के समय विस्थापितो को मदद का बहुत अच्छा काम किया है। अलीगढ़ और मुरादाबाद में हिन्दू-मुस्लिम अशांति के समय शान्ति स्थापना में और सार्वजनिक निर्वाचन के समय पर आगरा में मतदाता शिक्षण का काम भी आचार्यकुल इकाइयों ने किया है। कानपुर और देवरिया तथा बरेली में आचार्य कुल और तरुणशांति सेना का अच्छा सहयोग रहा है। उ प्र आचार्य कुल ने कुशीनगर में एक आचार्यकुल गोष्ठी का आयोजन भी किया और उसी प्रकार से श्रावस्ती में भी एक शिक्षक सम्मेलन हुआ तथा इटावा में जिला स्तरीय और बलिया में सभाग स्तरीय सम्मेलन भी किये गयें हैं। तरुण शांति सेना के साथ मिलकर शिक्षकों और छात्रों के सहजीवन शिविर चलाना आचार्यकुल का उ प्र में एक खास काम रहा है और इस प्रकार के शिविर ७३ में वाराणसी में और अन्य स्थानो पर हुये हैं। वाराणसी के शिविर में तो लगभग १५० शिक्षक और छात्र शामिल हुये थे।

महाराष्ट्र —महाराष्ट्र आचार्यकुल के सयोजक मामा क्षीरसागरजी के अथक प्रयास से महाराष्ट्र के हर जिले में आचार्यकुल की इकाइयाँ कार्यरत हैं। फिर १९७३ में पवनार में ही पूज्य विनोबा जी के सान्निध्य में प्रदेश आचार्यकुल का पहला सम्मेलन भी किया गया जिसमें लगभग ३०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया हैं। इसमें एक प्रदेश स्तर की कार्यकारिणी भी बनाई गई और अब आचार्यकुल का सम्पर्क यहाँ महाविद्यालयों के अलावा माध्यमिक विद्यालयों में भी हुआ है। महाराष्ट्र में आचार्यकुल ने सस्कार निर्माण की दिशा में एक विशेष कार्यक्रम स्वाक्षरी अभियान"

बहुत ही प्रभावशाली ढग से चलाया है जिसमें शिक्षको में ज्ञान-निष्ठा, श्रम निष्ठा और छात्र निष्ठा के माध्यम से समाज में शिक्षको की नैतिकता और कर्तव्य-निष्ठा को जागृत करने का प्रयास किया गया है।

ग्रीष्मावकाश में ४० गाँवो के निकट ग्रामीण अचल में २५ दिन का श्रम-शिविर आयोजित किया गया। अकाल बनाम तरुण अभियान में भी महाराष्ट्र आचार्यकुल के सदस्यो ने सक्रिय भाग लिया। 'सर्वोदय विचार प्रारम्भिक' परीक्षाओ में भी आचार्यकुल केन्द्रो का सहयोग रहा है। गत वर्ष जब महाराष्ट्र आचार्यकुल सम्मेलन सम्पन्न हुआ था तब महाराष्ट्र के लगभग प्रत्येक जिले में आचार्यकुल की इकाइयाँ थी और ८०० सदस्य थे। मामा क्षीरसागरजी की अस्वस्थता के कारण यह काम बहुत आगे नही बढ पाया है।

मध्यप्रदेश —मध्यप्रदेश में आचार्यकुल का काम सबसे पहले इंदौर नगर में शुरू हुआ। डा रामचन्द्र बिल्लोरे और प्रो बी डी नागर के प्रयासो से प्रदेश के कुछ भागो में कार्य की शुरूआत हुई। उसके पश्चात् श्री गुरुशरण को तदर्थ सयोजक मनोनीत किया गया। आचार्यकुल का प्रथम अधिवेशन उनके प्रयासों से ३१ अक्तूबर १९७२ को भोपाल में सम्पन्न हुआ जिसका उदघाटन श्री दादाभाई नाईक ने और अध्यक्षता श्री धीरेन्द्र मजुमदार ने की। उसके बाद दूसरा सम्मेलन ८ और ९ नवम्बर १९७२ को महात्मा गाधी सेवा आश्रम जौरा मुरैना के प्रागण में सम्पन्न हुआ। दूसरे सम्मेलन के अवसर पर तदर्थ समिति भग करके विधान के अनुसार सभी जिला के सयोजकों को सदस्य मानकर मध्यप्रदेश आचार्य कुल का गठन हुआ और आगामी तीन वर्ष के लिये पुन श्री गुरुशरणजी को सयोजक निर्वाचित किया गया।

मध्यप्रदेश के ४५ जिलो में इस समय आचार्यकुल की जिला इकाईयाँ हैं और १२ जिलो में प्रखड व प्राथमिक स्तर का भी इकाईयाँ कार्यरत हैं। सदस्यों की सख्या बराबर बढ़ती रही है और नियमित रूप से सदस्यता शुल्क भी प्राप्त होता रहा है। जिसका १० प्रतिशत प्रति वर्ष केन्द्र को भी भेजा गया है। जो कि अब तक रुपये ५०० से अधिक है।

प्रादेशिक स्तर पर एक शिक्षा सगोष्ठी दिनाक ११ और १२ नवम्बर ७२ को ग्वालियर में आयोजित की गई जिसमें डा रामजी सिंह, श्री गोविन्दराव देशपाडे, स्वामी कृष्णानन्द और श्री काशिनाथ त्रिवेदी का मार्गदर्शन प्राप्त रहा। क्षेत्रीय स्तर की गोष्ठियाँ भी समय-समय पर होती रही हैं। अब तक यह गोष्ठियाँ मध्य-प्रदेश के पाँच सभागो में आयोजित हो चुकी हैं। जैसे रायपुर, भोपाल, रतलाम, इदौर और छिन्दवाड़ा। रतलाम की क्षेत्रीय सगोष्ठी में केन्द्रीय सयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव और श्री ठाकुर दास बग व श्रीमती मुक्ता बग, श्री पी. श्रीवास्तव आदि रहा। इस अवसरपर केन्द्रीय आचार्यकुल कोष के लिये श्री ठाकुरदास बग को

रु १००० की थैली भेंट की गई। सिवनी और छिंदवाडा जिलो के आचार्यकुलो का सयुक्त सम्मेलन हुआ तथा जिला स्तर पर इन्दौर, धार, रीवा, होशगाबाद, उज्जैन, मुरैना, भिण्ड, ग्वालियर आदि कई जिलो के सम्मेलन आयोजित हुए।

प्रदेश के बडे बडे नगरो में व्याख्यान-मालाओका आयोजन किया गया जिन्हें सुश्री सरला बहन, एस एन सुब्बाराव, काशीनाथ त्रिवेदी, डा जे पी व्यास और डा अमरनाथ कौल अदालती ने सबोधित किया।

चबल घाटी में आचार्यकुल का काम सघन रूप से करने के लिए केन्द्रीय सगठक श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा की पद यात्रा का भी श्री दादाभाई नाईक के साथ १० अगस्त से २८ अगस्त ७२ का योगदान रहा। पूर्वी क्षेत्र के रायपुर और बिलासपुर सम्भागो की शिक्षा-सस्थाओमें श्री दादाभाई नाईक के भाषण आयोजित किये गये।

मध्यप्रदेश में आचार्यकुल का तरुण शाति सेना और स्वाध्याय मडलो के साथ समन्वयात्मक दृष्टि से काय चल रहा है। तरुण शाति सेना के साथ सयुक्त शिविरो का भी आयोजन हुआ। गाधी जयन्ती, विनोबा जयन्ती, शिक्षक दिवस, मातृ दिवस, बाल दिवस और आचार्यकुल सप्ताह का सभी जिलो में आयोजन हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम में मध्यप्रदेश आचार्यकुल के २५ सदस्यो ने भाग लिया। आचार्यकुल का शैक्षिक नीति और कार्यक्रम पर प्रखण्ड स्तर की गोष्ठियाँ आयोजित हुई। रायपुर में विश्वविद्यालयीन स्तर पर सम्मेलन आयोजित हुआ। अकाल बनाम तरुण शिविरो और स्वाध्याय योजना में आचार्यकुल सदस्यो का सक्रिय योग रहा।

प्रादेशिक आचार्यकुल समिति की प्रत्येक वर्ष में एक और कार्यकारिणी समिति की हर तीसरे माह बैठके आयोजित होती रही। अब तक पाँच बैठके हो चुकी हैं। मध्यप्रदेश सर्वोदय मडल के सहयोग से मध्यप्रदेश आचार्यकुल कोष की भी स्थापना हुई है और वर्तमान समय में प्रादेशिक आचार्यकुल अपने सदस्यता शुल्क के अशदान एव चदे आदि से अपना वार्षिक खर्च चलाने में सक्षम है। आवश्यकता पडने पर कोष से रकम ले ली जाती है। वर्तमान सदस्य सख्या ३१ दिसम्बर ७३ तक १२०० है।

राजस्थान —राजस्थान में तदर्थ सयोजक श्री पूर्णचन्द्र जैन हैं। उनके प्रयास से अजमेर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, भरतपुर और बीकानेर में आचार्यकुल का काम शुरू हुआ है। उनकी माग पर केन्द्रीय सगठक श्री गुरुशरण ने राजस्थान का दो बार दौरा किया और विशेष रूप से पाँच सितम्बर से ११ सितम्बर ७३ तक अजमेर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर और भरतपुर की गोष्ठियो में वे सम्मिलित हुये। इन गोष्ठियो में अच्छी उपस्थिति रही। जोधपुर में क्षेत्रीय सम्मेलन का भी आयोजन

होनेवाला है और राजस्थान प्रादेशिक समिति विघटित होकर विधान सम्मत आचार्यकुल के गठन की प्रक्रिया चल रही है। जोधपुर में जोधपुर विश्वविद्यालय के डा अमरनाथ आचार्यकुल के काम में दिलचस्पी ले रहे हैं जिससे वहाँ काम बढ़ने की आशा है।

बंगाल —प बंगाल में प्रादेशिक स्तरीय आचार्यकुल की स्थापना १० जून १९७२ को हुई जिसमें श्री चारुचन्द्र भंडारी और श्री ईश्वरचन्द्र प्रामाणिक के प्रयासों के फलस्वरूप आचार्यकुल के १०० सदस्य बने। केन्द्रीय संयोजक श्री बंशीधर श्रीवास्तव के दौरे का भी आयोजन हुआ। मिदनापुर वर्दवान २४ परगना और वीरभूम में काम शुरू हुआ है। आचार्यकुल सप्ताह में न्यायमूर्ति श्री शंकर प्रसाद मित्र की अध्यक्षता में आचार्यकुल के सदस्यों की बैठक हुई। आचार्यकुल सप्ताह के अन्तर्गत नये सदस्य बने हैं और धीरे धीरे काम बढ़ रहा है। अभी सदस्यता शुल्क बहुत कम प्राप्त हुआ है। बंगाल से केन्द्रीय समिति को अब तक रु १००-०० अंशदान एवं सहायता प्राप्त हुई है और प्रादेशिक आचार्य कुल समिति विधानतः गठित हो गई है।

दिल्ली —दिल्ली प्रादेशिक आचार्यकुल समिति का काम शुरू में तो व्यवस्थित रूप से चला। बाद में कुछ शिथिलता रही। अब फिर से प्रादेशिक समिति का पुनर्गठन हुआ और श्री सी ए मेनन के संयोजकत्व में एक नयी समिति बनी है जिसके अन्तर्गत दिल्ली शहर में पुराने सदस्यों ने नवीनीकरण कराया है और कुछ नये सदस्य भी बने हैं।

उत्कल —१५ नवम्बर ७२ को आचार्यकुल की स्थापना हुई। तदुपरान्त समय समय पर बैठकें होती रही हैं। श्री रोहित मेहता के व्याख्यानों का आयोजन हुआ। आचार्यकुल सप्ताह भी मनाया गया और श्री मनमोहन चौधरी के सभापतित्व में संगोष्ठी हुई। आचार्यकुल की ओर से आदर्श पाठशाला चलाने का तय किया गया। श्री वत्स नायक संयोजक और डा नरसिंहचरण पंडा और रघुनाथ महापात्र सह संयोजक चुने गये। धीरे धीरे राज्य के सभी जिलों में काम फैल रहा है।

असम —असम में भी अनिरुद्ध मंडल ने आचार्यकुल का काम प्रारम्भ किया और लगभग ७० सदस्य बनाये। इस समय श्री जगत शर्मा आचार्यकुल का काम कर रहे हैं। आचार्यकुल सम्बन्धी साहित्य का असमी भाषा में अनुवाद हुआ। और सभायें एवं विचार गोष्ठियाँ आयोजित हुई।

गुजरात —गुजरात नई तालीम संघ और गुजरात सर्वोदय मण्डल के संयुक्त तत्वावधान में फरवरी ७३ में आचार्यकुल विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ। विचार प्रसार की दृष्टि से श्री रोहित मेहता के व्याख्यानों का आयोजन भी हुआ। विचार प्रचार के स्तर पर ही अधिक काम हुआ है। अभी ठोस रूप से संगठन की भूमिका नहीं बन पाई है।

हरियाणा —हरियाणा में इसी वर्ष १९७३ में काम की शुरूआत हुई है और पंडित ओमप्रकाश त्रिखा ने विशेष रुचि लेकर चंडीगढ़, अंबाला, पट्टी कल्याणा आदि स्थानों पर कुछ सदस्य बनाये हैं। केन्द्रीय संगठक श्री गुरुशरण ने भी दौरे का आयोजन हुआ और वहाँ के काम को गति मिली है।

कर्नाटक —कर्नाटक में आचार्यकुल का काम श्री के० एस० आचालू के मार्गदर्शन में चला। समय समय पर विचार गोष्ठियों का आयोजन हुआ। आचार्यकुल सप्ताह में नये सदस्य बनाये गये। कर्नाटक आचार्यकुल की ओर से राज्य शिक्षा सम्मेलन का आयोजन श्री श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में हुआ। यहाँ पर काम विकसित हो रहा है। श्री आयगर इन दिनों आचार्यकुल का काम देख रहे हैं।

केरल —केरल सर्वोदय मंडल की कार्यालय में दिनांक ५-११-७२ को एक बैठक आयोजित हुई। जिसमें श्री ई नारायण पिल्लई को संयोजक नियुक्त किया गया। ३१ दिसम्बर ७२ को श्री आचार्य राममूर्ति व श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा की उपस्थिति में दो बैठकों का आयोजन हुआ। शिक्षकों व सामाजिक कार्यकर्ताओं के बीच विचार प्रचार का काम किया गया। ११ जिलों में से ८ में काम आरम्भ हुआ है।

तमिलनाडु —तमिलनाडु में मद्रास नगर के शिक्षकों की समायें क्षेत्रीय संगठक की व्यक्टरमण के प्रयास से हुई हैं और दक्षिण के अन्य प्रान्तों की तरह तमिलनाडु में भी काम का आरम्भ हुआ है। परन्तु वहाँ संगठन नहीं बन पाया है।

आंध्र —यहाँ भी अभी विधिवत संगठन नहीं बन पाया है। हैदराबाद के श्री वैद्यनाथ और विजयवाडा के श्री चल जनार्दन स्वामी और एस पी एल नरसिंहम् ने शिक्षकों के बीच आचार्यकुल की जानकारी दी है। साहित्य आदि उन तक पहुँचाया है। आचार्यकुल सप्ताह के अन्तर्गत कुछ सदस्य बने हैं और प्रमुख नगरों में विचार गोष्ठियाँ आयोजित हुई हैं।

केन्द्रीय आचार्यकुल का काम :

१ आचार्यकुल का विधान

राजगीर में केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की स्थापना के बाद प्रदेशों में आचार्यकुल के विचार प्रचार के अतिरिक्त केन्द्रीय आचार्यकुल समिति ने आचार्यकुल का विधान बनाने का काम किया।

२२ २३ अगस्त १९७० को आगरा विश्वविद्यालय आगरा में आयोजित केन्द्रीय आचार्यकुल समिति ने आचार्यकुल के संगठन पर चर्चा करने के बाद निर्णय किया कि आचार्यकुल का संगठन भले ही लचीला रहे और स्थानीय स्वायत्तता की अधिकाधिक गुंजाइश रहे फिर भी राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि से एक विधान होना

चाहिये। इसके लिये एक विधान उप-समिति नियुक्त की गई जिसमें सर्वश्री रोहित मेहता, शीतल प्रसाद, राधाकृष्ण अग्रवाल, जैनेन्द्र कुमार, डा. रामजी सिंह, कृष्णराज मेहता, आचार्य राममूर्ति, वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक) ने अपनी रिपोर्ट देकर विधान का एक प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसे समिति ने १२–१३ सितम्बर १९७१ की पवनार बैठक में स्वीकार किया।

२. शैक्षिक नीति और कार्यक्रम :

केन्द्रीय आचार्यकुल ने दूसरा काम किया आचार्यकुल की शैक्षिक नीति पर अपना विचार व्यक्त किया। आचार्यकुल का अभिमत है कि भारत में शैक्षिक प्रयासों को नई दिशा देने के लिये शिक्षा के दृष्टिकोण और लक्ष्यों का स्पष्ट असंदिग्ध निरूपण होना चाहिये। इस दृष्टि से २८, २९ नवम्बर १९७० को उत्तर प्रदेश आचार्य कुल के प्रथम सम्मेलन के अवसरपर जब श्री रोहित मेहता ने, 'आचार्यकुल और शिक्षा का पुनर्स्थापन' विषय पर एक संदर्भ लेख पढ़ा तो चर्चा के उपरान्त निश्चय किया गया कि आचार्यकुल की शैक्षिक-नीति और कार्यक्रम पर एक घोषणा पत्र तैयार किया जाय। इसके लिये शिक्षाविदों की एक समिति नियुक्ति की गई जिसमें सर्वश्री रोहित मेहता, डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा. सीताराम जायसवाल श्री वृजनंदन स्वरूप, आचार्य राममूर्ति, डा. अनन्त रमण, पी. के. जेना, शिवकुमार मिश्र और वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक) को समिति ने प्रारूप तैयार कर १२ १३ दिसम्बर १९७१ की बैठक में रखा जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय आचार्यकुल ने समय समय पर गोष्ठियाँ भी आयोजित की है।

३ क्षेत्रीय परिगोष्ठी :

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों आजमगढ़, बलिया, देवरिया, गोरखपुर और वाराणसी के आचार्यकुल के संयोजकों एवं सदस्यों की एक परिगोष्ठी १० जून १९७० में आयोजित की गई जिसका उद्घाटन डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया और अध्यक्षता श्री केशवचन्द्र मिश्र ने की। इस परिगोष्ठी में आये हुये सदस्यों ने शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं जैसे—छात्र प्रवेश, अध्यापकों की नियुक्ति, परीक्षा और परीक्षकों आदि की स्थिति पर विचार विमर्श किया। इस गोष्ठी से इन जिलों में आचार्यकुल के विचार प्रचार में योग मिला।

४ सम-सामयिक समस्याओं पर आचार्यकुल का अभिमत :

(अ) उ० प्र० छात्र संघ अध्यादेश—

उत्तर प्रदेश छात्र संघ अध्यादेश पर केन्द्रीय आचार्यकुल समिति ने १९, २० और २१ दिसम्बर १९६९ को वाराणसी के गांधी विद्या संस्थान के सभा कक्ष में कानपुर विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, वाराणसी और आगरा विश्वविद्यालय के

कुलपति सर्व श्री राधाकृष्णजी, शीतल प्रसादजी तथा श्री राजाराम शास्त्री की अध्यक्षता में एक गोष्ठी आयोजित की। गोष्ठी में आगरा, कानपुर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के छात्र संघों के प्रतिनिधियों के अलावा अनेक डिग्री कालेजों के प्राचार्यों तथा गांधी विद्या संस्थान के प्राध्यापकों, आचार्यकुल के सदस्यों, अ भा शांति सेना मंडल, सर्व सेवा संघ के कार्यकर्ताओं एवं विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों एवं सम्माननीय नागरिकों ने भाग लिया। गोष्ठी का उद्घाटन श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने किया। चर्चा के बाद आचार्यकुल ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुये कहा कि आचार्यकुल अध्यादेशों के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी सुधार के प्रयत्न को शिक्षा और लोकतन्त्र के मूल्यों के विपरीत मानता है और यह भी मानता है कि छात्र संघ की सदस्यता स्वैच्छिक होनी चाहिये ।

(ब) सर्वोच्च न्यायालय में वरीयता क्रम के उल्लंघन पर अभिमत—

दिनांक २० मई १९७३ को पूज्य विनोबा जी के सान्निध्य में केन्द्रीय सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों के वरिमताक्रम के उल्लंघन और मुख्य न्याया-धीश की नियुक्ति पर अभिमत प्रकट करने के लिये केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की एक अत्यावश्यक बैठक पूज्य विनोबाजी के सुझाव पर आमन्त्रित की गई। जिसमें विचार और चर्चा के बाद सर्व श्री रोहित मेहता, रघुकुल तिलक, गुरुशरण, शीतल प्रसाद और वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक) इन पांच सदस्यों की एक ड्राफ्टिंग कमेटी बनायी गयी। इस समिति ने १५ जून १९७३ को अपनी वाराणसी की बैठक में ड्राफ्ट को अन्तिम रूप दिया और उसे प्रकाशित कर सभी पत्र-पत्रिकाओं, संसद सदस्यों और प्रमुख लोगों को भेजा गया। आचार्यकुल का अभिमत है कि सर्वोच्च कार्यालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति वैधानिक तो है परन्तु अगर इस प्रकार की नियुक्ति वरीयता क्रम का उल्लंघन करके की जाय तो राष्ट्रपति को विधिवेत्ताओं या किसी संसदीय समिति की राय लेनी चाहिए जो उन्हें मान्य हो।

(स) विश्वविद्यालयों की स्थिति पर—

बनारस और अलीगढ़ विश्वविद्यालयों की स्थिति पर चिंता प्रकट करते हुए सर्वश्री डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुगत दासगुप्ता, रोहित मेहता, महादेवी वर्मा और वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक) की एक समिति बनाई गई है। यह समिति अभी काम कर रही है।

५. ग्राम-स्वराज्य अभियान और आचार्यकुल :

ग्राम-स्वराज्य अभियान के सघन क्षेत्रों के काम में भी आचार्यकुल का योगदान हो इस दृष्टि से बिहार के सहरसा जिले में केन्द्रीय संगठक श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने लगभग दो साल का समय दिया और ग्राम-स्वराज्य के काम में आचार्यकुल के

सहयोग की भूमिका का निर्माण किया है। इस पर से यह अनुभव आया है कि अगर आचार्यकुल ग्राम-स्वराज्य के काम को उठा ले तो स्थानीय अभिक्रम प्रकट हो सकता है और ग्राम-स्वराज्य का काम अधिक सुचारु रूप से चल सकता है।

६ आचार्यकुल और तरुण शान्ति सेना :

जहाँ जहाँ आचार्यकुल स्थापित हुये हैं वहाँ पर तरुण शांति सेना के साथ भी उसका सहयोग रहे यह हमारी दृष्टि आरम्भ से ही रही है और कई स्थानों पर यह हुआ भी है। अनेक जगहों पर इन दोनों के संयुक्त तत्वावधान में सहजीवन शिविर लगाये गये हैं और खासकर सहरसा में तो इनके परस्पर सहयोग से ही शिक्षकों और छात्रों के बीच अच्छा काम हो सका है। वहाँ पर 'शिक्षा में क्रान्ति' दिवस तो सारे भारत के मुकाबिले बहुत अच्छे ढंग से मनाया गया था। असल में ये दोनों काम एक ही हैं और आगे भी ये दोनों मिलकर काम करेंगे तो दोनों ही प्रभावपूर्ण और यशस्वी होंगे। बिहार में इस तरह के काम के लिये बिहार तरुण शांति सेना के मंत्री श्री लखनदोन, जो अब तरुण शांति सेना के प्रतिनिधि के तौर पर केन्द्रीय समिति के भी सदस्य हैं, और डॉ रामजीसिंह का अच्छा प्रयोग रहा है।

७ आचार्यकुल और स्वाध्याय :

केन्द्रीय गांधी निधि के द्वारा सचालित सर्वोदय विचार परीक्षाओं को भी आचार्यकुल केन्द्रों ने अपनाया है और अधिकांश केन्द्र ही इन परीक्षाओं के भी केन्द्र है। इनके माध्यम से ही अनेक स्थानों पर स्वाध्याय के वर्ग भी चले हैं जिनमें सप्ताह में दो बार परीक्षा वर्ग और माह में एक दिन गोष्ठी की जाती है। म प्र और बिहार के सयोजकों ने इस तरह से काफी अच्छा काम किया है।

८. केन्द्रीय संगठक :

केन्द्रीय सयोजक की मदद की दृष्टि से नवम्बर १९७० में श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा की केन्द्रीय सगठक के तौर पर नियुक्ति हुई। उन्होंने जुलाई १९७३ तक इस तरह से काम किया। उनकी अधिकांश शक्ति इस बीच ग्राम-स्वराज्य के सघन राष्ट्रीय क्षेत्र सहरसा में ही लगी फिर भी वे अनेक अन्य स्थानों पर भी गये और आचार्यकुल के विचारों और लक्ष्यो को प्रचार-प्रसार करने में उन्होंने काफी काम किया। जुलाई ७३ से फिर जब श्री बहुगुणा जी नयी तालीम समिति और 'नयी तालीम' के काम से सेवाग्राम चले गये तो म प्र के सयोजक श्री गुरुशरण जी की नियुक्ति केन्द्रीय सगठक के तौर पर की गई है और इन पिछले छ माहो में उन्होंने भी अनेक स्थानो पर घूमकर काफी काम किया है।

९. आचार्यकुल के अन्य काम :

आचार्यकुल ने समय समय पर दुर्भिक्ष बनाम तरुण कार्यक्रम में, आसाम के दगों के समय पर और राष्ट्रीय सेवा योजना तथा चबल घाटी में शान्ति स्थापना कार्य में समय समय पर योगदान किया।

उपसंहार —उपरोक्त विवरण से यह प्रकट होता है कि वर्ष १९७३ में आचायकुल सप्ताह का जो आयोजन किया गया उससे सभी प्रदेशों में सदस्य सख्या में वृद्धि हुई है। विश्वविद्यालयों में भी विचार पहुँचा है लेकिन फिर भी पूज्य विनोबा जी को जैसी अपेक्षा है उसके अनुसार काम बहुत कम मात्रा में हो पाया है। और जो कुछ भी हुआ है उसके लिये मैं यदि स्पष्ट स्वीकार न करूँ तो अपने काम के साथ न्याय नहीं करूँगा कि बिना श्री रोहितजी और आचार्य राममूर्तिजी की सहायता के आचार्यकुल के आन्दोलन को रूप और गति नहीं मिलती जो कि मिला है। पूज्य बाबा का मार्गदर्शन पग पग पर मिलता रहा है। पूज्य दादा धर्माधिकारी और पूज्य धीरेन भाई का भी पर्याप्त मार्गदर्शन रहा, लेकिन उनके बाद इन दोनों महानुभावों के विचार और कार्य ने आन्दोलन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। आचार्यकुल के आन्दोलन ग्राम-स्वराज्य की प्रक्रिया में सहायक एवं निदेशक बने इसका प्रयोग श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने सहरसा में किया और आज श्री कृष्णराज मेहता उस काम को आगे बढ़ा रहे हैं। सगठन की दृष्टि से मेरी अस्वस्थता के कारण दौड़धूप के अभाव में आन्दोलन दृढ़ नहीं हो रहा था। इस कमी को श्री गुरुशरण जी ने सफलतापूर्वक पूरा किया है और जब से वह इस काम में आए हैं तब से उन्होंने सगठन को मजबूत बनाने के लिए अथक परिश्रम किया है। और उसी का परिणाम है कि आज ५ राज्यों में आचार्य कुल की इकाईयाँ और १०,००० सदस्य हैं। एक स्तुत्य प्रयास उन्होंने केन्द्रीय आचार्यकुल के लिये निधि सग्रह का भी प्रारम्भ किया है।

आचार्यकुल की स्थापना में सर्व सेवा संघ ने पहल की और उसमें गत ५ वर्षों से आर्थिक सहायता भी मिलती रही है लेकिन आचार्य कुल के आन्दोलन के लिये सर्व सेवा संघ से धन तो मिलता रहा है परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि सर्व सेवा संघ ने पैसा दिया है दखल कभी नहीं दिया है। मैं सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री सिद्धराज ढड्ढा और मंत्री श्री ठाकुरदास बंग का भी आभारी हूँ। केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के कार्यालयीन कार्यों में मेरी स्वस्थता और अस्वस्थता सभी समय श्री माहेश्वरी भाई और गायत्री भाई का सक्रिय सहयोग रहा है। इस सम्मेलन के आयोजन का सारा श्रेय महाराष्ट्र के साथियों श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्ध, मामा क्षीरसागर, दो ह. सहस्रबुद्ध और मेरे साथी श्री गुरुशरणजी को है। मैं महसूस करता हूँ कि मैंने कुछ भी नहीं किया जिसके लिये आप सब मुझे क्षमा करेंगे। अन्त में एक प्रार्थना है कि इस सम्मेलन के अवसर पर आगे के लिये केन्द्रीय सयोजक का काम किन्हीं सक्षम हाथों में सौंपा जाय जिससे आन्दोलन की प्रगति हो। मेरा विश्वास है कि आचार्यकुल आन्दोलन युग सापेक्ष है और इससे इस देश की नहीं विश्व की समस्यायें हल होंगी, क्योंकि आज इस अणु युग में अगर विश्व को कोई बचा सकता है तो तटस्थ आचार्य ही। आप सब को धन्यवाद।

श्री जैनेंद्र कुमार जैन :

ज्ञान की सीढ़ियों से उतरे बिना समस्याओं का हल नहीं :

यहाँ हम लोग अनेक तरह के समाधान खोजने में लगे हैं। कई नीतियाँ बताई जा रही हैं। किन्तु समाधान कहीं निकलता दीखता नहीं है। इसका क्या कारण हो सकता है। अब मुझे लग रहा है कि आप लोग तो इस मामले में किसी निणय पर पहुँच चुके हैं। आप लोग ज्ञान के एक स्तर पर आ चुके हैं। किन्तु मेरी स्थिति भिन्न है। मैं पहले तो आपके बीच का हूँ नहीं। मैं शिक्षक भी नहीं न कोई बहुत पढ़ा लिखा हो आदमी हूँ। कभी कभी तो मैं अपने को आपके बीच विदेशी जैसा अनुभव करता हूँ और लगता है कि मुझ आपके बीच नहीं बोलना चाहिये। किन्तु एक तो आपने यहाँ अध्यक्ष बना दिया और परम्परा है कि अध्यक्ष को कुछ कहना ही है तो इसलिये, दूसरे सोचता हूँ कि जब आपके बीच आ ही गया तो कुछ अपनी बात भी आपके सामने रख ही दूं। इसलिये मैं कुछ कहने का साहस कर रहा हूँ। किन्तु मुझे लगता है, कि जब तक समाधान का तात्कालिक समस्या के साथ कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता तब तक कोई समाधान नहीं हो सकता है। क्या इनमें कोई सम्बन्ध है? यह सवाल मेरे सामने है और यही सवाल में आपके सामने भी रखना चाहता हूँ। अब एक तो शास्त्रों का समाधान है उपनिषदों का समाधान है। किन्तु क्या उनका आज की हमारी तात्कालिक समस्याओं से कोई रिश्ता है यह आप बतायें। क्योंकि समस्या का समाधान से कोई सम्बन्ध ही न हो तो फिर मुश्किल है। जब हम समस्या से विरत होकर समाधान खोजने का प्रयास करते हैं तो वह तो हाथ आता ही नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम अपना ज्ञान की जिस सीढ़ी पर से समस्या को देखते हैं वहाँ से कोई समाधान सम्भव ही न हो। अब यदि हम सीढ़ी पर से उतरे ही नहीं समस्याओं में पड़े ही नहीं, यदि हमें लगे कि हम तो जानकार लोग हैं और जनता तो अजानकार है, अज्ञान में है तो फिर समाधान कैसे होगा। किसके लिये होगा। क्योंकि ज्ञानियों के समाधान का अज्ञानियों के लिये क्या उपयोग हो सकता है। मेरा मानना है कि आचार्य

लोग जरा समाधान की ऊँची सीढी से नीचे उतरें और फिर समस्या की गहराई में जाकर देखें कि क्या समाधान हो सकता है।

ऊँचाई विलग करती है

तत्वज्ञान हमें बस ऊँचाई पर ले जा सकता है। किन्तु इसमें बराबर यही देखता हूँ कि यह ऊंचाई हमें समस्या से विलग कर देती है। यदि हम यह मानकर जाते हैं और मुझे लगता है कि हम बराबर यही मानकर जाते हैं कि हमें कुछ देना है तो फिर कोई समाधान कैसे हो सकता है। हमें यदि अपने इस आचार्यकुल आन्दोलन को मास आन्दोलन बनाना हो तो फिर तो यह समझना होगा कि हमारा ज्ञान आज समस्याओं के हल की दृष्टि से किस काम नहीं आ रहा है। हममें मुझे लगता है ज्ञान अधिक है कभी कभी तो बहुत ही अधिक है और फिर समस्या का दर्शन कम कर पाते हैं। हम एक संत के सानिध्य में आये हैं और हम यह अनुभव कर रहे हैं कि विनोबा संत हैं किन्तु हम तो संत नहीं हैं हम तो साधारण जन हैं तो फिर समस्या पर हमारा चिंतन का ढंग भिन्न होगा। संत एक ऊंचाई पर होता है और वह उसकी भी सीमा है। वह वहाँ से उतर नहीं सकता। किन्तु सामान्य जन तो हमेशा ही जमीन पर होता है। इसलिये दृष्टिकोण में फर्क हो ही जाता है। इसलिये मेरा कहना है कि यथार्थता की चुनौतियाँ हमें स्वीकार करनी चाहियें और तब समस्याओं पर चिंतन करना चाहिये।

दो प्रकार के मानस

यह चुनौती शायद दो प्रकार से स्वीकार की जा सकती है। अब एक तो वह दृष्टि है कि हम संगठन मजबूत कैसे बनायें कोष संग्रह कैसे करें आदि आदि। किन्तु एक दूसरा मानस यह भी होता है, जो इस तरह से नहीं अपितु परिवर्तन की भाषा में सोचता है। उसे कभी कभी लोग क्रान्तिकारी मानस कहते हैं। पहला मानस कार्यकारी कहा जाता है। अब इस कार्यकारी और क्रान्तिकारी मानस में काफी बुनियादी अन्तर मालूम होता है। कार्यकारी मानस तो हमेशा ही केन्द्रीय संगठन की, कोष आदि की बातों की आवश्यकता अनुभव करता है किन्तु क्रान्तिकारी मानस असंग्रह और अपरिग्रह की दिशा में सोचेगा। किन्तु हमें तो यह विपरीत बात-सी लगती है क्योंकि यदि असंग्रह और अपरिग्रह ही करना हो तो फिर कार्यकारी मानस कहेगा कि तब काम कैसे चलेगा। हमने ग्राम-स्वराज्य कोष भी इसी विचार से एकत्र किया था कि उसे रखना नहीं है क्योंकि उसके पीछे कार्यकारी मानस नहीं क्रान्तिकारी मानस था। पर यदि आज हम वह फिर करना चाहेंगे तो क्या वह हो सकेगा। शायद अब वह नहीं हो सकता। होता तो फिर हम इस उपवासदान पर क्यों आते। उपवासदान का यह कार्यक्रम भरपूरता में से निकला है यह तो नहीं लगता। यह तो विनोबा की व्यथा में से निकला है। व्यथा में से त्याग ही निकलता है और यह सही है कि उससे

भी शक्ति प्रकट होती है। स्वेच्छा में से बलिदान होता है और उससे जो शक्ति निकलती है उसका मूल्यांकन करना सरल नहीं होता। बलिदान में एक आकर्षण होता है। गांधीजी के समय में देश में एक बलिदान की भावना इतनी गहरी जमी थी कि लोग अपनी सुखी जीवन की अच्छी अच्छी संभावनाओं पर भी लात मार कर बाहर आ निकले थे। आप लोग शायद कम जानते होंगे कि उस समय जमनालाल बजाज जैसे लोगों ने कितने त्याग किये। इस सबमें से एक ऐसी शक्ति निकली थी कि आखिर देश आजाद ही हो गया।

आचार्यकुल राष्ट्र का आवाहन करे :

तो मैं कहना यह चाहता हूँ कि यदि सर्वोदय और आचार्यकुल के इस आन्दोलन में रोज़ के तात्कालिक समस्याओं के साथ जुड़ने का कार्यक्रम बना सके तो फिर अवश्य ही शक्ति पैदा होगी। आचार्यकुल जब समाज का दर्द अनुभव करता तब फिर तत्वज्ञान, लोक-शिक्षण आदि का काम भले ही कम हो जाय किन्तु हमारा यह आन्दोलन फिर विश्वरूप ले लेगा। तब यह फिर किसी व्यक्ति के भरोसे भी नहीं रहेगा। शक्ति कहीं प्रकट हो जाय तो फिर वह चुप नहीं रह सकती है। हमने विनोबा के नाम से एक करोड़ का ग्राम-स्वराज्य कोष बनाया किन्तु आज उ. प्र. में कांग्रेस इस चुनाव में अकेले ही २० करोड़ रुपया खर्च करेगी। यह सब आपके हमारे ही पास से तो आता है। क्या हम लोग यह कर सकते हैं। शायद नहीं कर सकते हैं। क्योंकि उस हिंसा पर आधारित शक्ति के मुकाबिले हमारा अहिंसा पर आधारित शक्ति सर्वथा निर्बल है। उनके पास तो हथियार हैं, पुलिस है, लाइसेंस और रोजगार है। हमारे पास क्या है सिवाय तत्वज्ञान के ? अहिंसा का तत्वज्ञान हमारे पास है यह सही है किन्तु उसमें तेज क्या नहीं आता। मेरी कुछ यह धारणा है कि जब तक हम में सारे राष्ट्र को एड्रेस करने का साहस नहीं होगा तब तक वह तेज नहीं आ सकता है।

विरोध नहीं—असहयोग :

आज जो चुनाव हो रहे हैं हम उनके बारे में क्या करेंगे। क्या उनके बारे में कुछ बुनियादी प्रश्न हम उठा सकते हैं ? ये सवाल इसलिये उठाने की आवश्यकता है कि आज तो चुनाव लोकतन्त्र के बजाय नौकरशाही और शासनतन्त्र को ही मजबूत करनेवाले हो रहे हैं। तो ये चुनाव लोकतन्त्र को मजबूत करने वाले हों क्या हम यह कह सकते हैं ? कभी कभी लोग कहते हैं कि हमें सत्याग्रह करना चाहिये किन्तु मैं कहता हूँ कि सत्याग्रह हमेशा ही अल्पसंख्यकों का हथियार है पर बहुसंख्यकों के लिये तो मात्र असहयोग ही काफी है। यह कोई विरोध नहीं है क्योंकि विरोधी तो असल में पक्ष को ही प्रकृति रखता है। विरोधी और जिसका विरोध होता है, उसमें कोई फर्क नहीं होता। आज तो वह विरोध केवल दो दलों की हारजीत की बाजी का खेल सा बन गया है, और इसमें जनता तथा राष्ट्र का कोई भला नहीं हो रहा है। आज का यह

दलीय लोकतन्त्र असल में तो हमारे राष्ट्र की शक्ति को तोड ही रहा है। अतः यदि हम इसका कोई विकल्प दिखा सके तो यह एक बडी बात होगी। हमें क्या यह नही कहना चाहिये कि लोकतन्त्र में १० या १५ प्र श की नही, क्योकि आज तो चाहे जिस दल की सरकार हो यही हालत होती है चलेगी सबकी चलेगी। क्या हम सबकी चलनवाली कोई पद्धति विकसित कर सकते है ?

गलत समीकरण

आज के विश्व की परिस्थिति पर यदि आप विचार करें तो क्या दिखता है ? एक तरफ तो सारी मानव जाति एक है यह बात कही जाती है किन्तु दूसरी तरफ यह मूल्य भी बढाया जाता है कि सरकार हो राष्ट्र है।' किन्तु यह समीकरण तो बहुत ही पिछडा हुआ और उथला मालूम देता है। तो क्या हम इस असगति से राष्ट्र और विश्वको बचा सकत है ? क्या आचायकुल यह कर सकता है ? मेर विचार में यह करने की आज अतीव आवश्यकता है क्योकि यही माग है शायद जिससे हम राष्ट्र को भी एड्रस कर सकते है और अहिंसा की शक्ति भी निखर सकती है। गाधी जी न कहा था कि भारत ही सही लोकतन्त्र का विकास करगा। क्या यह आचायकुल इस बातका जिम्मा ले सकता है ? यदि यह हो सके तो न केवल भारत का ही अपितु विश्व का भी बहुत हित हो सकता है। किन्तु यदि हम विशिष्ठ है ज्ञानी है जनता के असल सवालो स हमारा कोई सम्बन्ध नही रहा तो फिर काइ अन्य उपाय मुझ नही दीखता है।

आज तो इस तरह के भी ज्ञानी है जो हमस कहते है कि यदि खान लायक अनाज नही मिलता है तो फिर ब्रेड खाओ। आपको उस फ्रासीसी रानी की बात मालूम है न जो अपनी भूखी प्रजा को हलुवा खाने की बात कहती थी। आज हमार देश में खान को नही मिल रहा है कम मिलता है जो मिलता भी है वह खान लायक होता नही। इस हालत में आप क्या यही कहेग कि फिर केक खाओ। तो मरा कहना यह है कि आप समस्याओं का सामना करन की ओर बढें। किन्तु उसके लिय फिर मारे शरीर को ही पानी में डालना होगा। बस सिर बाहर रखें ताकि आप डब नही और देख भी सकें।

जैसा मैन पहले कहा कि आपके बीच में अपन को अनपढ अनुभव करता हूँ। फिर भी जब आपने एक अनपढ़ को अपना अध्यक्ष बनाकर गलती कर हो ली तो फिर उसका मूल्य भी आपको चुकाना चाहिय। इसलिय ही मैन य कुछ बातें आपके विचार के लिय सामने रखी है। कभी समय मिलेगा तो फिर जरा विस्तार से बात करन का मन होता है। आज तो वह समय मिला नही।

(दूसरे सत्र का अध्यक्षीय भाषण)

(

डा. रामजी सिंह :

वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और आचार्यकुल :

शिक्षक चिरंतन का निर्माता है, क्योंकि वह सत्य को वाणी प्रदान करता है। सत्य जो न प्राची का है न प्रतीचि का ही, वह तो केवल शाश्वत है, चिरंतन है और सनातन है। लेकिन यह तो पारमार्थिक सत्य हुआ। इसके साथ ही एक और व्यावहारिक सत्य भी होता है और वास्तव में तो हमारा कोई भी चिंतन शून्य में से नहीं निकलता। इसलिये देश और काल को अपनी दृष्टि से ओझल करना स्वयं अपने को ही एक तरह से नकारना होगा। हमारा वर्तमान अतीत का फल तो होता ही है किन्तु साथ ही वह भविष्य की प्रसव वेदना भी है। अतीत बीत चुका है, भविष्य अनिश्चित है इसलिये भी हम वर्तमान को न भूलें। यह हमारा पलायन करना ही होगा। अतः हम वर्तमान को समझ कर अपने सही भविष्य के निर्माण का काम हाथ में लें।

आचार्यशक्ति भारत की परंपरा :

प्राचीन काल से ही भारत को आचार्यों ने बनाया है। प्राचीन काल के आचार्य उपवर्ष, औडुलोमि, काशकृत्स्न, आस्मरथ्य और याज्ञवल्क्य आदि की बात छोड़ दें तो भी अर्वाचीन काल में ही आचार्य शंकर, रामानुज और उनके अनेक शिष्यों जैसे कबीर और तुलसी ने ही वर्तमान भारत के निर्माण का सही काम किया है। इन्हीं आचार्यों के बनाये सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का आज भी समाज पर गहरा असर है। राज्य सत्तायें तो आई और चली गईं किन्तु इन आचार्यों का प्रभाव बराबर बना रहा है। यह आचार्यशक्ति है। यद्यपि आज यह बात ठीक है कि आज के आचार्य अब धर्मगुरु और राजगुरु भी नहीं रह गये हैं तो फिर वे विद्यागुरु ही कहाँ से रह सकते हैं। इसलिये आज वे तटस्थता का साहस भी खो बैठे हैं। आज तो शिक्षा भी राज्य का एक काम हो गया है और वह लोक-मानस को अपने अनुकूल एक ढाँचे में ढालने का पूरा प्रयास कर रहा है और उसके सारे प्रचुर प्रचार के साधन इस उद्देश्य

के लिये ही लगाये जा रहे हैं। फिर भी यह बात नहीं भूलनी होगी कि जब तक शिक्षा के हाथ में सामाजिक परिवर्तन का साधन तथा विकास की प्रक्रिया होने के कारण समाज की गतिशील और संवेदनशील पात्री है तब तक हमें निराश होने की कोई बात नहीं है। वर्तमान में हम देखते हैं कि छात्रों और शिक्षकों की यह संयुक्त शक्ति बड़े से बड़े राज्य शासन को भी धराशायी बना देती है।

देशकी परिस्थिति हमारे लिए चुनौती है :

आजादी के बाद देश के सामने अनेक समस्यायें आई हैं जिनकी जड़ें वास्तव में हमारी दासता के युग में हैं किन्तु उनमें से कुछ का हमने अच्छा हल भी निकाला है जिन पर हम कुछ गर्व भी कर सकते हैं किन्तु फिर भी हमारे अभाव इतने विराट् हैं कि अब इन उपलब्धियों की चर्चा भी व्यर्थ हो गयी है क्योंकि वे उपलब्धियाँ सर्व साधारण की न होकर कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित हो गयी हैं। इससे वर्तमान इतना दुर्दान्त हो गया है कि उससे न केवल सत्ताधारी हो अपितु विरोधी भी अत्यन्त आतंकित और परेशान हो गये हैं। आम आदमी तो पिछले २६ सालों में इतना निराश और हताश हो गया है कि शायद ही हमारे इतिहास में वह इतना पहले कभी रहा हो। आज तो हर जगह बस एक ही सवाल है, हमारे परिवार का क्या होगा। देश का क्या होगा। दो बार मुद्रा अवमूल्यन के बाद अब तीसरे की भी तैयारी है, उससे जो भयानक मुद्रास्फीति बनी वह तो दम घोट रही है। रोज अनियंत्रित हड़तालों, तालेबंदियां और बेरोजगारी से जीवन दूभर होता जा रहा है। काले धन से वूथ कब्जा करके सत्ता की कुर्सियां पर की हापाधापी ने भी लोकतन्त्र को भ्रष्ट बनाकर रख दिया है और प्रचार प्रशासन से लेकर उद्योग और शिक्षा आदि पर सरकार की सत्ता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। संविधान को मनमाने ढंग से जब मन हो बदल देना और न्यायालयों को भी सरकार के मन के अनुसार चलने को बाध्य करने का प्रयास करना यह सब तानाशाही के ही चिन्ह हैं। सत्तारूढ दल के भीतर भी लोकतन्त्र का निरन्तर ह्रास हो रहा है और विरोधी तो केवल विरोध पर ही जीने का उपक्रम करते हैं। इससे भी बढ़कर शिक्षिता में भयानक उदासीनता छा गई है और देश में बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक दोनों ही प्रकार की साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। यह सब भी लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास ही है। हमारी राजनैतिक प्रणाली इस तरह की है कि उसने हिन्दुओं के जातिवाद को नया आयाम प्रदान कर दिया है और पिछले कुछ सालों में तो एक प्रकार का नव ब्राह्मणवाद भी देश में पनप रहा है। भौतिकवाद चाहे जो कहे किन्तु स्वार्थ और भोग की प्रवृत्ति में अत्यन्त ही वृद्धि हुई है और आज तो नैतिक जीवन से 'अधिक सफल' जीवन का ही मूल्य हो गया है। शिक्षा के क्षेत्र में तो तस्वीर और भी भयानक है। तीन तीन शिक्षा आयोगों के बावजूद हमारी शिक्षा आज भी पूर्णतया वंध्या ही है। फिर स्वयं शिक्षक जगत से ही शिक्षा के सरकारीकरण की मांग

तो आत्मघाती हो है और यह शिक्षा की स्वायत्तता छीनने के साथ ही समाज की स्थाई दासता का भी कारण होगी। इस बात पर न तो शिक्षकों को ही कुछ चिंता है और न छात्र ही इस पर चिंतित हैं। आज तो सारी तरुणाई मानो सो गई है और यदि वह कभी कभी कुछ क्रान्ति की बात करता भी है तो उस समय भी वह केवल प्रजातन्त्र की हत्या और राजनीति के मुहर का ही काम कर पाती है। सर्वोदय समाज और आचार्यकुल के जैसे कुछ जो थोड़े से प्रयास हो रहे हैं वे तो इस सारी परिस्थिति में सागर में बूंद के ही समान हैं।

आस्था बनाम शिक्षा

किन्तु निराशा मृत्यु है और हमें पथ खोजना ही होगा। जब कोई मनुष्य किसी बड़ी श्रद्धा या जीवन मूल्य से बंधता है तो फिर उसको सारी निराशायें समाप्त होती जाती हैं और श्रद्धा आकर्षण का कारण बनता है। यह आकर्षण संक्रामक होता है। इसलिये हमारे लिये कुछ जीवन मूल्यों में श्रद्धा होना आवश्यक है और इसके बिना हमारी कोई निष्ठा बन ही नहीं सकती है। इसलिये अहिंसात्मक समाज में यदि हमारी आस्था नहीं है तो फिर हमसे उसके लिये आत्म विश्वास जग ही नहीं सकता है। अहिंसा का विकल्प केवल एक ही है कि हम केवल अहिंसा और तेजस्विनी अहिंसा में ही विश्वास करें। अन्य कोई चारा नहीं है। अब यह अलग बात है कि हम अभी तक अहिंसात्मक की पूरी खोज नहीं कर पाये हैं किन्तु यही तो हमारे लिये अवसर भी है। फिर हम इस सवाल पर भी विचार करना होगा कि अहिंसा का उपयोग अन्याय के निरसन के लिये कैसे किया जाय। यदि अहिंसा से अन्याय का प्रतिकार नहीं हो सकता तो वह हमारे किसी काम की नहीं है। अभी लगता है कि हम केवल अहिंसा की बात करते हैं किन्तु प्रतिकार को भूल गये हैं। इसलिये ही शायद बिहार में ग्राम-स्वराज्य आंदोलन के ग्रामदान तक पहुँचने के साथ साथ ग्रामीण हिंसा भी तेज हो रहा है। यह एकदम उल्टी बात है। हम सत्य की चर्चा तो कर रहे हैं किन्तु उसका आग्रह रखना हमने छोड़ दिया है। जिस सौम्य से सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह की हम आज बात करते हैं उसका प्रकट रूप अभी निकलना बाकी है किन्तु जो अहिंसा अभी तक हमारे लिये प्रकट थी हम उसे भी खो ना जा रहे हैं। यह सब शिक्षण के विचार का सवाल है जिस पर आचार्यकुल जैसे मंच को चिंतन करना चाहिये।

हिंसा काल विरुद्ध हो गई है :

आज भी कुछ लोग हैं जो हिंसा पर विश्वास करते दावत हैं किन्तु उन्हें भी समझना होगा कि हिंसा शक्ति आज तो गति और शक्ति दोनों ही खो चुकी है। अब तक का यही हमारा अनुभव है। काल पुरुष हिंसा को तोल चुका है। अब उसकी रक्षा न किसी सिद्धान्त से हो हो सकेगी और न किसी शासन या विज्ञान की शक्ति

से ही वह बचाई जा सकेगी। किन्तु अहिंसा पर इस विश्वास को भी तो ज्ञान का, भावना को बुद्धि का और आस्था को शिक्षा का सम्बल चाहिये ही। इसलिये हमें स्वय ही आगे बढकर जागना होगा और चलना होगा। यही आचार्य के नाते हमारा स्वधर्म भी है और यही हमारा स्वार्थ भी है।

हमें इस स्वधर्म के मार्ग पर बढना ही होगा तब चाहे तो हमें फिर सुकरात की तरह जहर, ईसा की तरह सूली, जिब्रान की तरह फाँसी या फिर गाधी की तरह से गोली ही क्यो न मिले। असल में ये सब घटनायें स्वय इस बात की ही प्रमाण हैं कि शिक्षा में, विचार में कितनी शक्ति होती है, नही तो फिर ये शक्तिशाली सत्तायें भी इन विचारको को इस तरह से समाप्त क्यो करती। फिर शिक्षा का सामाजिक दायित्व भी तो है ही। इसलिये ही आज शिक्षा को सामाजिक विकास के साथ जोडने पर बल दिया जाता है। इसलिये सामाजिक विकास हो या फिर अन्याय प्रतिकार हो यह सारा शिक्षण की ही प्रक्रिया है और हमें यह समझना होगा कि आज के ही विद्यार्थी कल के विद्रोही, शिक्षक, शासक या नायक भी होगें। अत इस युग का नाश या निर्माण भी शिक्षा पर ही निर्भर है। शिक्षा ही हमारी अन्तिम आशा है। हमें अब लम्बे समय से चली आ रही गलत सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक नीतियो के फलस्वरूप पैदा होने वाली समस्याओ के स्थाई हल खोजने होगें। यह ठीक है किन्तु इसका अर्थ यह तो नही होना चाहिये कि हम तात्कालिक समस्याओ से एकदम विमुख हो जायें। हम वर्तमान के मूक दृष्टा बनकर मात्र नही रह सकते है। आज जब वामपथी आतकवाद विभाजित और असफल होकर धराशायी हो गया है और सविधानवाद भी विफल हो चुका है, क्योकि वह दलगत राजनीति और भ्रष्ट चुनाव प्रथा का शिकार हो गया है और जब लोकतात्रिक आस्थायें डगमगा रही है और अधिनायकवाद के लिये मानस अनुकूल होता जा रहा है तब फिर तीसरी शक्ति की आवश्यकता तो आज और आवश्यक है। अब भारत के ३५ लाख शिक्षको और करोडो छात्रो की इस विवशता की समाप्ति का और कोई उपाय नही है सिवाय इस तीसरी शक्ति के जागरण के। अत हमारे सामने प्रश्न राजनीति से परागमुख होने का उतना नही है जितना कि उसके परधीन होने का है। इसलिये हमें विद्यालय-शिक्षण के साथ ही लोक-शिक्षण को भी हाथ में लेना होगा। आचार्यत्व की यही सार्थकता है। हमें देखना होगा कि स्वस्थ लोक-सम्मति का विकास हो सके, लोक-सहकार के आधार पर लोक-सगठन बन सके, दलगत राजनीति के स्थान पर लोकनीति का चलन हो सके और हिंसाशक्ति और दडशक्ति के स्थान पर लोकशक्ति का अधिष्ठान हो सके। इसी प्रकार से बहुमत के स्थान पर हमें सर्व सम्मति की शक्ति की खोज करनी होगी। यही वे तरीके है जिनसे हम शिक्षा का समाज के साथ सीधा सम्बन्ध कायम कर सकेंगे।

यह सब काम केवल नवीन शिक्षा नीति के आधार पर ही हो सकते हैं। हमारी आजादी के गत २६ सालों के बाद भी हम अपनी कोई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण नही कर सके हैं। अब यह काम आचार्यकुल का है कि वह इस पाप का प्रायश्चित करे। आज तो शासक से लेकर सभी सामान्यजन तक इस शिक्षा पद्धति की निंदा करते हैं किन्तु लगता है कि खासकर शासक और सम्पन्न वर्ग का इस में एक स्वार्थ निहित है इसलिय व इस असल में बदलना नही चाहते है। तब क्या आचायकुल चुप रह जाय ? उस अब शिक्षा में क्रान्ति का काम उठाना होगा। हम इसके अधिकारी भी हैं। शिक्षा में क्रान्ति के लिये इसस अनुकूल अवसर भी नही मिलेगा। अब शिक्षा को व्यक्तिगत जावन में भी सगठन और साधना के माध्यम वो प्रोत्साहन देना होगा। किन्तु यदि स्वय शिक्षा ही सरकार को चेरी बन गई तो वह क्या कर सकेगो। आज यह ठीक है कि शिक्षको के प्रति सरकारी गैरसरकारी स्तर पर जो अन्याय है हम उस पर भी चुप नही बैठ सकत है किन्तु शिक्षा का सरकार के हाथ में देने की माग वो निश्चय ही शाश्वत दासता की ही माँग है। यदि शिक्षा मुक्त नही है तो फिर वह शिक्षा नही हो सकती चाहे प्रचार भले ही हम उसे कह लें। सा विद्या या विमुक्तये। अत: हमें असल में सरकार और निजी प्रबध के बाच का विकल्प खोजना होगा। वह क्या हो सकता है। इसके लिये ही आचायकुल कहता है कि कम स कम न्यायपालिका की जैसी स्वतन्त्रता तो हम शिक्षा के लिये माग करें ताकि वह कुछ अपनापन कायम रख सके। इसलिये हमें राष्ट्रीय, प्रादेशिक और ग्रामीण स्तर पर स्वायत्त शिक्षा परिषदा के गठन की माग करनी चाहिये। आज को मूल्यहीनता के इस युग में कम स कम हम शिक्षक तो कुछ मूल्य कायम रखें तभी तो फिर अगली पाढी भी कुछ हमस प्राप्त कर सकगी। इसलिये हमें अपनी आचार सहिताओं का निर्माण करके उनके माध्यम स अपना सुधार आरम्भ करना होगा। हमने अब तक भारत में आध्यात्मिक अभियंत्रणा के साथ साथ ही सामाजिक अभियंत्रणा का निर्माण नही किया है इसलिये सहजावन की सस्कृति का हम निर्माण नही कर सके हैं। क्या यह काम हम अब कर सकत हैं। हम अभी तक व्यक्तिगत भक्ति को ही बात करते रहे हैं किन्तु इस व्यक्तिवाद के आधार पर भौतिकवाद और स्वार्थवाद तो चल सकता है किन्तु समाजवाद और अध्यात्म तो नही चल सकते। विज्ञान भी काय कारण के नियम को मान्य करता है, मनोविज्ञान भी समूचन, सहानुभूति और अभिसधान के आधार पर सहजावन को मान्य करता है। जब तक समाज में सहजीवन का मूल्य स्वीकाय नही होगा तब तक हम कोई समाजवाद कायम नहीं कर सकते हैं। इससे तो केवल तानाशाही ही आयेगी जो आ रही है। आज हम समाजवाद के नाम पर केवल तानाशाही की ही ओर बढ़ रहे हैं।

शिक्षा की त्रिवेणी का निर्माण अपरिहार्य

हमारी आज की शैक्षिक समस्या यह है कि शिक्षक छात्र और समाज का परस्पर विलगाव रोज बढ़ रहा है। इसके परिणाम सामने हैं। तो हमें फिर से यह त्रिवेणी बहानी होगी ताकि इन तीनो की सम्मिलित शक्ति के समाज को कोई विधायक दिशा मिल सके। इसके ही आधार पर हम लोक-सम्पर्क और लोक-संगठन की दिशा में बढ़ सकते हैं। यह इसलिए भी आवश्यक है कि हमें समझना होगा कि देश की वर्तमान परिस्थिति के लिए हम सब मिलकर कोई कम दोषी नहीं है तो इसका परिमार्जन भी हमें मिलकर ही करना होगा।

एक निष्पक्ष मंच की आवश्यकता

इसलिए आज देश में एक ऐसे निष्पक्ष, निर्भीक लोकमंच की आवश्यकता है जो सत्य की वाणी बनकर फैल सके। आज तो सत्य धर्म सम्प्रदाय और सत्ता का दास हो गया है। इसका नतीजा तो सामने है। अब सत्य दल का है सरकार का है, जन का सब का नहीं है। इसलिए आज हम किसी भी समस्या पर कभी एकमत हो ही नहीं सकते है। तो क्या आचार्यकुल इतिहास की इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकेगा। अभी पिछले दिनों सर्व-सेवा संघ ने एक ऐसी ही राष्ट्रीय परिषद देश की वर्तमान परिस्थिति पर विचार के लिए बुलाई थी। असल में सर्व सेवा-संघ ने यह करके आचार्यकुल का ही काम किया है और हमारा मार्गदर्शन किया है। वस्तुतः हमें तो अब प्रदेश, जिला और ग्राम स्तर पर इस तरह की परिषदें बुलाकर पहल करना चाहिये। तभी हम निष्पक्षता और निर्भीकता पूर्वक अपनी बात सामने रख सकेंगे।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि आज देश की स्थिति किसी विदेशी आक्रमण से कम भयावह नहीं है। यदि हमने राष्ट्रीय संकट का सामना नहीं किया तो यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा। हमें तो तत्काल ही राष्ट्रीय सरकार बनानेको ओर नाव मानस को तैयार करना चाहिये क्योंकि अब किसी भी दल में चाहे वह कितना ही बलवान् और साधनवान् क्यों न हो किसी भी समस्या का सामना करने की सहास और प्रतिभा नहीं है। असल में वे तो समस्या पैदा ही कर सकते हैं, उनका हल नहीं कर सकते है। इस प्रकार की राष्ट्रीय सरकार समस्याओं को हल की ओर केवल एक आरम्भ होगा जिसमें जन सहयोग मिलेगा और फिर जन अभिमत भी जगेगा। यह आचार्यकुल के सामने एक बड़ा काम है और आचार्यकुल को यह दायित्व लेना होगा। तभी उसकी सार्थकता है।

प्रो. गुरुशरण :

आचार्यकुल संगठन और कार्यक्रम :

आचार्यकुल का प्रारम्भ शिक्षकों के संगठन के रूप में १९६८ में हुआ और ऐसा माना गया कि इसमें प्राथमिक शिक्षकों से लेकर विश्वविद्यालय तक के सभी शिक्षक शामिल होंगे। विनोबा जी का ऐसा कहना रहा कि आचार्यों का प्रभाव पूरे भारत भर पड़ना चाहिये। आचार्य विचार-परिवर्तन तथा हृदय-परिवर्तन कर सकते हैं। वे ऐसा वातावरण निर्माण करें कि पुलिस के दमन की आवश्यकता ही न रहे। उन्होंने शिक्षकों को उनकी महान परंपरा, याज्ञवल्क्य, जनक, बुद्ध तथा महावीर की याद दिलायी। लेकिन आज तो सारा समाज राजनीति से परिचालित हो रहा है और जो मार्गदर्शन शिक्षक और शिक्षालयों से मिलना चाहिये वह राजनीतिक स्थितियों के आधीन है। इसलिये विनोबा जी ने आचार्यकुल के सदस्यों को राजनीति से अलग रहकर स्वस्थ लोकतन्त्र के निर्माण के लिये प्रेरित किया। परन्तु आचार्यकुल शिक्षा को राजनीति के स्थान पर स्थापित करने में अभी तो सफल नहीं हुआ है किन्तु इस बारे में चेतना जरूर जगाई है और इस प्रकार वह दूसरे शिक्षक संघों से भिन्नता और एक प्रकार की विशिष्टता रखता है

आचार्यकुल के संगठन के विषय में शुरू शुरू में यह तय रहा कि एक केन्द्रीय समिति हो जिसमें चुनाव और निर्णय सर्व सम्मति से हों। यह समिति देश भर में आचार्यकुलों की स्थापना का प्रयास करे और आचार्यकुलों की प्राथमिक इकाइयों में शिक्षक अपने मासिक वेतन का एक प्रतिशत इस संगठन को दें। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षकों को आधा प्रतिशत देने की बात मान्य की गई और कालान्तर में यह धन राशि कम से कम एक पैसा प्रति दिन से रुपये तीन, पैंसठ पैसे सदस्यता शुल्क के रूप में रह गई। जिसे सदस्यता के संकल्प-पत्र में विधान बनाते समय विशेष बल देकर जोड़ा गया। लेकिन गत पाँच वर्षों का अनुभव बताता है कि सदस्यता शुल्क बहुत कम जमा हो सका। कुछ प्रदेशों में जैसे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बंगाल और शुरू शुरू में बिहार में धन राशि जमा हुई पर उसमें सातत्य बना रहे यह एक विचारणीय प्रश्न है। कुछ प्रदेशों ने यह भी माना है कि बिना सदस्यता शुल्क के केवल वैचारिक मंच के रूपमें ही आचार्यकुल संगठन का काम चले किंतु जैसा कि विनोबा जी ने भी बार बार कहा है, संगठन बनाने के लिये सदस्यता शुल्क आवश्यक है। विनोबा जी के कथन को और अभी तक हुई प्रगति को ध्यान में रखकर यह सोचना चाहिये कि ११ सितम्बर १९७४ से सर्व सेवा संघ जब उपवास दान पर आधारित होगा, और उसकी ओर से अभी तक मिलने वाली सहायता की धनराशि में कमी या न देने की स्थिति आयेगी

तो आचायकुल का काम कैसे चलेगा? अच्छा यही है कि हम समय रहते सगठन के बारे में गहराई से विचार करें।

सगठन के लिये सव सेवा सघ ने अक्तूबर १९६९ के राजगिर सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर केन्द्रीय आचायकुल तदर्थ समिति का निर्माण कर पहल की। और उसके वार्षिक खच के लिये कुछ रुपया दना तय किया। जो कि वह गत पाँच वर्षों से देता रहा है। आर्थिक सहायता देने के अलावा सव सेवा सघ ने आचायकुल के काम में किसी भी प्रकार का दखल नही दिया। हाल ही में केन्द्रीय आचायकुल समिति ने केन्द्रीय आचायकुल कोष खडा करने का जो निणय लिया है और जिसकी शुरूआत रुपये १०००।- से मध्यप्रदेश से हुई है वह सिलसिला यदि सभी प्रदेशो की ओर से चले विशेषकर उन प्रदेशो में जहाँ अभी ग्राम स्वराज्य कोष की धनराशि है वहाँ आचायकुल को भी ग्राम स्वराज्य के कायक्रम में पूरक मानते हुये कुछ धनराशि केन्द्रीय कोष में भेजी जाय। सव सेवा सघ अभी तक जो वार्षिक सहायता देता रहा है, कम से कम उतनी वह एक वर्ष के लिये कोष में दे दे तो अपने पैरो पर खडे होने की शुरूआत हो सकती है। केन्द्र की भाति ही सभी प्रदेशो में प्रादेशिक आचायकुल कोष का प्रावधान होना चाहिये और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दफ्तरो का खच जहाँ तक हो सदस्यता शुल्क के अशदान पर चले। जितनी कमी पडे वह कोष से ली जाय। यदि हम ऐसा मानकर चलेंगे तो आशा है कि आज नही तो कल स्वावलम्बन की ओर अग्रसर होते जायेंगे।

वर्तमान सगठन का ढाँचा

वर्तमान समय में सगठन के पाँच स्तर विधान में माने गये है — १ प्राथमिक इकाई २ प्रखड और नगर स्तरीय इकाई ३ जिला स्तरीय आचायकुल ४ प्रदेशीय आचायकुल और ५ केन्द्रीय आचायकुल समिति। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में चारो स्तर की इकाईयाँ बनी ह परन्तु व्यावहारिक रूप में देखा जाय तो जिला स्तरीय और प्रादेशिक सगठन ही अधिक सक्षम रहे हैं। जिलो में अपने काम का जैसे-जैसे प्रसार बढेगा आशा है कि प्राथमिक और प्रखड स्तरीय इकाईयाँ भी सक्षम होगी। अभी तो यह स्थिति है कि किसी किसी जिले में जहाँ जिला स्तर की इकाई है वही नगर स्तर की और वही प्राथमिक। इसका कारण केवल यही है कि हम अधिक लोगों तक पहुच नही पाये ह। इस दृष्टि से भी हमारा सगठन और अधिक सक्षम होना चाहिये। सगठन काफी चलता है और प्रसन्नता की बात है कि गत पाच वर्षों में कभी भी प्रदेश से प्राथमिक नगर स्तरीय और जिला स्तरीय का कोई विवाद अभी तक नही उठा है। इन में चुनाव भी सव सम्मति से होते रहे ह और जैसा कि अन्य सगठनो में प्राय देखा जाता है कि कुछ चतुर व्यक्ति सगठन पर हावी हो जाया करते हैं वैसी स्थिति सौभाग्य से अभी नही आयी ह। भविष्य में काम बढने पर वह न आये

इस पर भी आज सोचना होगा। इसके लिये मेरा सुझाव है कि जिला स्तर की इकाई में वही सदस्य अधिकाधिक रहे जो कि प्राथमिक इकाईयों के संयोजक हैं और जिला जो भी खर्च करे वह समय पड़ने पर प्राथमिक इकाईयों से ले लिया करें। जहाँ तक सदस्यता शुल्क के अंशदान का प्रश्न है अभी के विधान में ऐसा प्रावधान है कि ७५ प्रतिशत प्राथमिक इकाईयों के पास रखकर शेष २५ प्रतिशत में दस प्रतिशत केन्द्रीय संगठन के लिये, पाँच प्रतिशत राज्य स्तरीय संगठन के लिये, पांच प्रतिशत जिला स्तरीय संगठन के लिये और पाँच प्रतिशत प्रखड स्तरीय संगठन के लिये माना गया है। यह पाँच-पाँच प्रतिशत इतनी कम राशि है कि राज्य, जिला और प्रखड अपना कार्यालयीन खर्च नहीं चला सकते। इसलिये अच्छा हो कि प्रत्येक प्राथमिक इकाई १५ प्रतिशत प्रदेश को और १० प्रतिशत केन्द्र को भेजे। प्रदेश का यह दायित्व माना जाय कि वह प्राथमिक इकाइयों को प्रखंड और प्रखंड इकाईयों को जिले के सूत्र में बाँधे और उनका खर्च वहाँ की ७५ प्रतिशत धनराशि से करायें। आवश्यकता पड़े तो प्रदेश अपने कोष में से भी जिलों और प्रखडों पर खर्च करे। जहाँ काम कम है वहाँ प्रदेश किसी संगठक आदि के माध्यम से अधिक खर्च करके भी काम को बढ़ावा दिया जा सकता है। रुपये ३ ६५ का पांच प्रतिशत इतना कम होता है कि वह मनीऑर्डर कमीशन काटकर भेजने में कुछ बचता हो नहीं। इसलिये अच्छा यही है कि प्राथमिक इकाई प्रदेश को भेजे और प्रदेश केन्द्र को।

संगठन का स्वरूप :

बिहार, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, उड़ीसा, बंगाल, केरल, तमिलनाडु, आंध्र, कर्नाटक और असम में आचार्यकुल संगठन का स्वरूप कुछ कम अधिक मात्रा में विकसित हुआ है। बिहार में आचार्यकुल का आरम्भ ही हुआ था, प्रचार भी हुआ किन्तु बाद को वैसा संगठन बन नहीं पाया जो चाहिये था। एक मंच के रूप में विचार प्रचार का दृष्टि से जो काम हुआ उसको संयोजित कर जब तक आगे नहीं बढ़ाया जायगा तब तक हमारे काम को ठोस आधार प्राप्त नहीं होगा। महाराष्ट्र, बंगाल और मध्यप्रदेश में काम कुछ नियमित ढंग से चला है और वहाँ सदस्य संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। उत्तर प्रदेश में शुरू में तो बहुत अच्छा रहा पर बाद को कुछ शिथिल हो गया। गुजरात के बारे में पूज्य बाबा प्रायः कहते रहते हैं वहाँ देश भर में सबसे अच्छी नयी तालीम की संस्थायें भी हैं पर आचार्यकुल का काम वैचारिक स्तर से आगे संगठनात्मक रूप में विकसित नहीं हो सका है। राजस्थान, दिल्ली और हरियाणा में हाल ही में काम में कुछ गति आयी है और आशा है कि अब वहां काम धीरे धीरे बढ़ेगा। केरल, तमिलनाडु, आंध्र, कर्नाटक और असम इनमें प्रादेशिक संयोजक और १००–१५० की संख्या में सदस्य हैं। पूरी तरह से प्रादेशिक समितियाँ भी गठित नहीं हुई हैं। यह सब जो बिखरा

हुआ स्वरूप है उसे एक सुनिश्चित रूप देना आवश्यक ही नहीं वरन अनिवार्य है। इसे बाधने मे प्रादशिक स्तर के सम्मेलन बहुत ही मदद रूप सिद्ध होत हैं। यदि इन प्रदेशा में प्रादेशिक सम्मेलना का आयोजन हो तो काम निश्चित रूप से व्यवस्थित होगा। अभी तक उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और बगाल में एक एक तथा मध्य-प्रदेश में दो प्रादेशिक सम्मेलन हो चुके है। जिन्होंने प्रादशिक आचार्यकुल और प्रादेशिक काय समितियाँ बनने में आसानी पैदा की हैं।

केन्द्राय स्तर का पहला सम्मेलन १२, १३ जनवरी १९७४ को पवनार (वर्धा) में आयोजित हो रहा है। जिसमें अभी तक चल रही केन्द्रीय तदर्थ समिति भग होगी और विधान सम्मत नयी समिति का गठन होगा। इस समिति का गठन करत समय उचित होगा कि प्रादेशिक सयोजको की सख्या को ही प्रधानता दी जाय। उनके प्रवास आदि की जिम्मेदारी प्रादेशिक समितियाँ वहन करें। इस तरह से खर्च भी कम होगा और केवल नाम के बजाय काम के सक्रिय लाग अधिक होगे। इसी तरह की रचना प्रादशिक आचार्यकुलो की भी रहे। केन्द्रीय सयोजक के चुनाव के लिए २५० सदस्यो पर एक निर्वाचक चुनकर निर्वाचक मण्डल जैसी स्थिति अभी तक सब राज्यों में नहीं बन पाई है।

विविध प्रयास :

केन्द्रीय स्तर स अभी तक जो प्रयास किये गये हैं वे सराहनीय हैं। केन्द्रीय सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव ने अपनी बीमारी की हालत में भी इस अपने सर्वस्व चिंतन का विषय बनाकर अवैतनिक रूप से बहुत सेवा की है उन्हीके प्रयासों का परिणाम है कि विनोबा जी के आचार्यकुल विषयक भाषणों का सकलन पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। हाल ही में उस पुस्तक का पाँचवा सस्करण सर्व सेवा सघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी ने प्रकाशित किया है। अब तक इस पुस्तक की ९००० प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिससे यह माना जा सकता है कि काफी सख्या में प्रबुद्धजनों के पढ़ने में यह विचार आया है कि इस पुस्तक का सभी भाषाओ में अनुवाद होने से इस विचार के प्रचार-प्रसार में मदद होगी। प्रचार साहित्य के रूपमें विधान, फोल्डर, शिक्षा-नीति, सर्वोच्च न्यायालय के प्रश्नपर आचार्यकुल का अभिमत हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। सदस्यता पत्रक भी काफी मात्रा में भेजे गये। प्रति वर्ष केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की एक-दो बैठके भी होती रहीं। जिन प्रदेशों ने बिना आर्थिक सहायता के सगठनात्मक कठिनाई अनुभव की वहाँ के तदर्थ सयोजकों को शुरू शुरू में रु ५००।-तक की आर्थिक सहायता भी की गई। नवम्बर १९७० में केन्द्रीय सगठन के रूप में श्री कामदवर प्रसाद बहुगुणा की नियुक्ति सयोजक की सहायता के लिये की गई। उनका कार्य क्षेत्र अधिकाश समय सहरसा (बिहार) ही रहा। वहाँ उनके प्रयासों से आचार्यकुल का विचार प्रचार काफी हुआ और अब उनके बाद उस काम को

श्री. कृष्णराज मेहता एक स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। श्री कामेश्वर प्रसादजी के नयी तालीम समिति के काम से सेवाग्राम चले जाने पर केन्द्रीय संयोजक श्री वंशीधर जी की सहायता के लिये केन्द्रीय संगठक के रूप में मैंने एक वर्ष का समय दिया। जिसमें छः माह हो चुके हैं और इन छ महीनों का मेरा अनुभव है कि इस विचार के प्रति सब जगह आदर है और लोग राजनीति से ऊबकर रचनात्मक दिशा में प्रयत्न करने का कुछ सोचते हैं। बस जरूरत इस बात की है कि उनके उत्साह को बनाये रखने के लिये कुछ सक्षम लोग सतत कार्यक्रम रखते रहे। राजस्थान, दिल्ली और हरियाणा तीनों प्रदेशों में मुझे अच्छा अनुभव रहा।

आचार्यकुल के विधान में निम्न कार्यक्रमों का प्रावधान रखा गया है। १. विद्यार्थियो एवं शिक्षकों के कल्याण के काम, २ सामाजिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर गोष्ठियों एवं परिषदों का आयोजन और इनमें अपने स्पष्ट अभिप्राय की अभिव्यक्ति, ३ लोक-सेवा एवं लोक-शिक्षण का काम, ४ लोकनीति एवं लोक-शक्ति के विकास के लिये सहयोग, ५ शिक्षा की स्वायत्तता के लिये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन, ६ मतदाता-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन, ७. समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिये सर्वदलीय मंच का आयोजन, ८ आचार्यकुल के लक्ष्यों से सम्बन्धित साहित्य का प्रचार और प्रकाशन, ९ अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये अन्य प्रयोग, प्रशिक्षण एवं कार्य, १० अभिभावक सम्पर्क, ११ सह-जीवन शिविरों का आयोजन। उपरोक्त कार्यक्रमोंमें गोष्ठियों, सभा-सम्मेलन और शिविर तो समय-समय पर होते रहें जिनसे एक प्रकार से विचार प्रचार काफी हुआ लेकिन अन्य कार्यक्रम कम हुए। जैसे कि छात्रों और शिक्षकों के सम्बन्धा में आचार्यकुल को अधिकाधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके कल्याण के भी कुछ काम किये जाय तो उनके बीच आचार्यकुल का प्रसार काफी हो सकता है। शिक्षकगण विद्यार्थियो के प्रति वात्सल्यभाव रखकर उनके विकास के लिये सतत प्रयत्न करें और सारे समाज के सामने जो समस्यायें आती है उनका तटस्थभाव से चिंतन करके समाज के सामने रखें और उनके अहिंसक निराकरण के लिये समाज का मार्गदर्शन भी करें तभी आचार्यकुल की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी। अभी चाहे तो अर्थाभाव की कमी कह लीजिए अथवा स्पष्ट चिंतन के साथ निष्ठापूर्वक दृढ निश्चय की कमी कहिये आचार्यकुल के माध्यम से शिक्षकों की स्वतन्त्र एवं सक्षम सत्ता नहीं खडी हो पायी है। उनकी नैतिक प्रतिष्ठा बनने, बढ़ने और उनकी सामाजिक हैसियत के उन्नयन से ही यह सम्भव हो सकेगा।

अन्तमें मैं अपने इस विचार पत्रक को संक्षेप में निम्नांकित सुझावों के साथ समाप्त करता हूँ जिन पर प्रथम राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन में खुली चर्चा होनी चाहिये —

संगठन :

१– संगठन को मजबूत बनाने के लिये नियमित रूप से सदस्यता-शुल्क लेने तथा प्रादेशिक और केन्द्रीय कोष पर जोर दिया जाय।

२– प्राथमिक इकाईयो में ७५ प्रतिशत, प्रदेश में १५ और केन्द्र में १० प्रतिशत सदस्यता शुल्क रहे।

कार्यक्रम :

१– अन्याय और अनीति के खिलाफ आचार्यकुल में प्रतिकार का सामर्थ्य आना चाहिये। मध्यप्रदेश का एक अनुभव है कि थानेदार की क्रूरता के खिलाफ जब वहाँ के आचार्यकुल के सदस्य संगठित रूप में सामने आये तो अत्याचार भी समाप्त हुआ और वहाँ की जनता में आचार्यकुल की प्रतिष्ठा भी बनी और आज भी वह आचार्यकुल इकाई बहुत सक्रिय है। इसी तरह उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में नशाबंदी का काम आचार्यकुल ने उठाया तो वह नयी शराब की दूकान बंद कराने में सफल रहा। चुनाव के समय अन्याय, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक तनाव, आये दिन के उपद्रव आदि ऐसे अनेक अवसर हैं कि जिनमें आचार्यकुल अपनी शक्ति और सामर्थ्य प्रकट कर सकता है और उसे करना भी चाहिये।

२– स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं पर निष्पक्ष वैज्ञानिक विश्लेषण का सिलसिला सतत चलते रहना चाहिये।

३– आचार्यकुल की केन्द्रीय समिति में ग्राम-स्वराज्य क्षेत्रों में काम करने की बात पर विचार कई बार हुआ लेकिन व्यावहारिक रूप में केवल सहरसा में ही काम हुआ। लेकिन उसकी भी प्रक्रिया, पद्धति और परिणति के बारे में अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध कराकर देश के अन्य क्षेत्रों में भी जब ऐसा कुछ होगा तभी आचार्यकुल का महत्व उजागर होगा और आचार्यकुल के सदस्यों को गणसेवकत्व की दिशा में अपना पुरुषार्थ प्रकट करने का अवसर आयेगा। इन क्षेत्रों में तरुण शांति सेना, सर्वोदय-मित्र और लोक सेवकों के साथ आचार्यकुल के सदस्यों का निकट का सम्बन्ध बने और परस्पर एक दूसरे के पूरक सिद्ध हों।

४– राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम ने अपने प्रस्ताव में आचार्यकुलों की स्थापना पर बल दिया है। अब राज्य में राज्य शिक्षा सम्मेलन आयोजित हों और उनके लिए आचार्यकुल पहल करे। जिन में शिक्षा की समस्याओं पर खुलकर चिंतन हो। न्यायपूर्ण मांगों के लिये सशक्त वातावरण बने और कुछ ऐसी स्थिति निर्मित हो कि शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयों पर जनता और सरकार के बीच आचार्यकुल सम्पर्क का माध्यम सिद्ध हो।

अनन्त गोपाल शेवड़े * :

समारोप भाषण :

आचार्यकुल विचार एवं संभावनाएं :

संत विनोबाजी के निवास से तपपूत इस पवित्र भूमि में आपका यह अखिल भारतीय आचार्यकुल सम्मेलन हो रहा है। इसमें सम्मिलित होते हुए मुझे कुछ संकोच हो रहा था। मेरी पहले यह धारणा हो गई थी कि यह आन्दोलन मूलतः शिक्षकों, प्राध्यापकों और शिक्षाशास्त्रियों के लिए है जो शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति करना चाहते हैं। पर बाद में श्री सिद्धराजजी ढड्ढा तथा श्री ठाकुरदासजी बंग ने, जिनसे अनायास ही सेवाग्राम में भेंट हो गई थी, बताया कि नहीं, विनोबाजी की कल्पना में लेखक, पत्रकार, कलाकार, विचारक सभी लोग इसमें आ सकते हैं, बशर्ते कि वे पक्षातीत भूमिका पर खड़े हों। श्रीमन्नारायणजी के कल के उद्घाटन भाषण में भी इसका संकेत था। इसलिये लगा कि ठीक है, मेरे जैसे साहित्य सेवी एवं पत्रकार के लिए भी यहाँ स्थान है। इसीलिए मैं आज यहाँ आया।

आचार्यकुल तटस्थ चिन्तन का व्यासपीठ :

आचार्यकुल को मैं एक नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र (Nucleus) मानता हूँ। यह एक ऐसा मंच या व्यासपीठ है जहाँ तटस्थ चिन्तन के व्यक्ति, जो किसी भी राजनीतिक पक्ष से सम्बद्ध नहीं है पर जो राष्ट्र एवं मानवता के कल्याण की ही हित चिंतना करते हैं एकत्र होकर सहचिंतन कर सकते हैं और समाज का मार्गदर्शन कर सकते हैं। नैतिक एवं आध्यात्मिक आधार के बिना हमारा समाज-जीवन या राष्ट्र-जीवन अथवा मानव जाति का कोई भी व्यापार-व्यवहार चल ही नहीं सकता। जो बात ब्रह्माण्ड में है वही मानव समाज में भी है। ब्रह्माण्ड में पृथ्वी है, चन्द्र-सूर्य है कोटि कोटि ग्रह-नक्षत्र है और न जाने क्या क्या है। पर वे सब किस अद्‌भुत प्रकार के यम-नियम एवं संतुलन के साथ अपना चिरयात्रा करते रहते हैं? कहीं कोई अव्यवस्था नहीं, अराजकता नहीं। इसीलिए उसे Cosmos कहते हैं, Chaos नहीं। उसके पीछे एक विराट चैतन्य-तत्व है, नीति तत्व है, एक सार्वभौम दैवी शक्ति है जो सबको एक विचित्र नियम से बांधे हुए बैठी है। वह भी कितनी शुभ और कितनी सुन्दर है। वही हमारे लिए एक प्रेरणा का उदाहरण है कि हम मानव-समाज को, राष्ट्र-जीवन को इन्हीं सिद्धान्तों पर चलाने का प्रयत्न करें तो हम भी सुख, सौन्दर्य एवं आनन्द के भागी होंगे। उसीके

---

* हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं पत्रकार तथा नागपुर टाइम्स (अंग्रेजी दैनिक) के प्रबंध सम्पादक।

अनुसरण से हम चाहे तो यहाँ 'किंगडम ऑफ गॉड', ईश्वरी साम्राज्य या राम-राज्य की अवतारणा कर सकते है। नैतिक शक्ति के बिना समाजशास्त्र, राजकारण, अर्थशासन—कुछ भी नही चल सकता है। उससे मुह मोडने से ही तो हम नितान्त दुख और कष्ट उठा रहे है। उसी की प्रस्थापना से हम अपनी समस्याओ का समाधान कर पायेगें और सुख-शान्ति की भी प्राप्ति करेगे।

वाल्मीकि-व्यास की परम्परा :

आचार्यकुल का विचार जब विनोबा जी की वाणी से प्रस्फुटित हुआ तब मुझे उसके प्रति सहज ही आकर्षण हुआ। विनोबाजी जो कुछ कहते है उसके पीछे गहरा तत्व रहता है। उनके साथ मुझे जेल में रहने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हे कुछ नजदीक से देखने का अवसर मिला। उनमें तो मुझे वाल्मीकि व्यास जैसे साहित्य-ऋषियो और ज्ञानेश्वर-तुकाराम जैसे सतो की आत्मा का प्रतिविम्ब दिखाई देता है। यह हमारा एक पूर्व-सचित पुण्य है कि वे हमारे बीच उपस्थित है और हम उनके दर्शन एव मार्ग-दर्शन से लाभान्वित हो सकते है। आचार्यकुल की कल्पना भारत के लिये नवीन नही है। वह तो पुरातन काल से एक उज्ज्वल परम्परा के रूप में यहाँ चली आ रही है। यह एक नैतिक शक्ति का स्वतन्त्र केन्द्र है जो शासन की परिधि या आश्रम से बाहर होता है पर जो अपनी आत्मिक शक्ति के कारण शासन और समाज पर प्रभाव डालता है। महाराज श्री दशरथ या राजा रामचन्द्र के समय वसिष्ठ मुनि थे, तो राजर्षि जनक के गुरु मुनि याज्ञवल्क्य थे। ऐतिहासिक काल में छत्रपति शिवाजी का स्वामी रामदासजी से इसी प्रकार का सम्बन्ध था और आधुनिक काल में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डलो पर राष्ट्रपिता गांधीजी का इसी प्रकार का नैतिक अकुश था। इस तरह के तटस्थ, निर्भीक एव निरपेक्ष प्रभाव के कारण शासन-तन्त्र भी व्यवस्थित और सन्मार्ग पर रहता था। इसलिए इस कल्पना की उपादेयता तो निर्विवाद है ही।

शासन और अध्यात्मशक्ति निकट आये :

मैंने यह कल्पना १९५७ में तत्कालीन प्रधानमन्त्री प जवाहरलाल जी नेहरू के सम्मुख अत्यन्त विनम्रतापूर्वक रखी थी और बाद में अमृतसर में पूज्य विनोबाजी की उपस्थिति में साहित्यिको की जो अखिल भारतीय गोष्ठी हुई थी उसमें इसको कुछ विस्तार से रखा था। उस सन्दर्भ में मैंने कहा था कि गांधीजी के पुण्यलोक में प्रवेश करने के बाद भारत की जनता नेहरू जी और विनोबाजी को उनके उत्तराधिकारियो के रूप में देखती है। नेहरूजी उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी थे और विनोबाजी उनके अध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं। गांधीजी जब जीवित थे तब वे अपने आप में इन दोनो शक्तियो को— राजनीतिक एव आध्यात्मिक— समन्वित किए हुए थे, समाए हुए थे। उनके अवसान के बाद भारत की जनता अपेक्षा करती थी कि ये दोनों महान व्यक्ति— नेहरू और विनोबा— जो इन दो विराट

शक्तियाँ के प्रतीक हैं समानान्तर न चले पर इन दोनों का साथ हो, सहयोग हो।
उन दोनों के सम्मिलित व्यक्तित्व में हो, जनता को गांधीजी की आत्मा के दर्शन हो सकते हैं। यह केवल जनता का ही तकाजा नहीं है, बल्कि समय की मांग है। यही बात मैंने हमारे दूसरे प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी से कही थी और वही बात मैंने विनयपूर्वक श्रीमती इन्दिराजी के सम्मुख भी रखी। शासन की शक्ति और अध्यात्म की शक्ति निकट आए तभी आज जिन चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों का सर्वत्र ह्रास दिखाई देता है उनकी पुनः प्रस्थापना होगी और राष्ट्र की बिगड़ी हुई हालत सुधारने में सहायता होगी। अभी हाल ही में इन्दिराजी का पवनार आगमन हुआ, विनोबाजी से लम्बी चर्चा हुई यह हम सबको विदित ही है। यह एक शुभ लक्षण है।

विनोबाजी ने इधर एक नया ठोस विचार प्रस्तुत किया है जो उनके गहन चिन्तन का ही निचोड़ है। उन्होंने कहा है कि इस देश की और मानवता की समस्याओं का समाधान करने के लिये कोई एक शक्ति वह चाहे कितनी भी बड़ी क्यों न हो पर्याप्त नहीं है। उसके लिए तो पंचशक्तियों का सहयोग आवश्यक है। वे हैं जनशक्ति, सज्जनशक्ति, विद्वज्जन शक्ति, महाजन शक्ति और शासन शक्ति। इनमें से दो शक्तियाँ सज्जनशक्ति और विद्वज्जनशक्ति एक होकर आचार्यकुल के व्यासपीठ पर आ जाएँ तो कितना बड़ा काम होगा? कितना व्यापक उनका प्रभाव होगा? समाज और मानवता की विवेक बुद्धि (Conscience of Humanity) के रूप में वे काम कर सकती हैं। चूंकि यह शक्ति शासन से बाहर रहेगी स्वतन्त्र और निष्पक्ष दृष्टिकोण से काम करेगी, उसका नैतिक प्रभाव भी दूर दूर तक फैलेगा। वह राष्ट्र के ही नहीं विश्व के अन्य देशों के शासनों पर भी असर डाल सकती है ताकि देशों के बीच के तनाव कम हो वैमनस्य दूर हो और सामंजस्य एवं मैत्री का वातावरण उत्पन्न हो, दृढ़ हो। इस तरह आचार्यकुल की अनगिनत संभावनाएँ बन जाती हैं।

विदेश में मुझे अनेक बार जाना पड़ा। वहाँ के कतिपय लेखकों, विचारकों और प्राध्यापकों से चर्चाएँ हुईं। उन सबने इस कल्पना का स्वागत किया कि शासन के तन्त्र से बाहर एक नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र हो जो शासनों पर प्रभाव डाल सके। उसमें कवि, कलाकार, दार्शनिक संत, वैज्ञानिक सभी आ सकते हैं। विश्व की प्रख्यात लेखिका नोबेल पुरस्कार विजेता मिस पर्ल बक से मैंने उनके निवास स्थानपर फिलाडेल्फिया में इस कल्पना की चर्चा की तो उन्होंने उसका हृदय से स्वागत किया। वे भारत-चीन को, एशिया का मित्र थी और भारतीय दर्शन का आदर करती थी।

भारत के बुद्धिजीवी चेतें :

एक बात मुझे कहनी चाहिए कि समाज को लगता है कि भारत के बुद्धिजीवियों ने समाज और राष्ट्र के प्रति अपना वह कर्तव्य नहीं निबाहा जो कि उनसे

अपेक्षित था। शासन तन्त्र के हाथ-पैर इतने व्यापक हैं, इस कदर सभी क्षेत्रों में फैले हुए हैं कि बहुत ही कम बुद्धिजीवी उनके प्रभाव से मुक्त रह पाते हैं। शिक्षा, कला, व्यापार, साहित्य पत्रकारिता— सभी क्षेत्रों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उनकी पकड़ी न रही सदा है। रेडियो-टेलीविजन आदि जन-सम्पर्क प्रचार प्रसार के साधन तो उनके कब्जे में हैं ही। इन सब के माध्यमों से विचारों को विशिष्ट ढंग से गढ़ने पकाने का काम निरन्तर चलता रहता है। बुद्धिजीवी भी अक्सर उसके शिकार हो जाते हैं और जो यथा स्थिति है उसी का समर्थन करने में अपना सारा बुद्धि-कौशल खर्च करने लगते हैं। यह तो और भी खतरे की बात है। गांधीजी ने कहा था कि भौगोलिक गुलामी उतनी बुरी नहीं है क्योंकि उसका निराकरण करना कठिन नहीं है। पर जब भौगोलिक गुलामी के साथ मानसिक गुलामी आ जाती है तब तो भगवान ही मालिक है। अंग्रेजी राज्य की जड़ें मजबूत करने में इस मानसिक गुलामी ने काफी हाथ बटाया। इसलिए उसे दूर करने में भी काफी कठिनाई उठाना पड़ा।

आवश्यकताओं का न्यूनीकरण ही श्रेय -

आजकल जीवन का स्तर (*Standard of Living*) बढ़ाने की रट लगी है— जीवन मान बढ़ाओ स्तर बढ़ाओ। गुणों या मूल्यों पर कोई जोर नहीं दिया जाता। उपभोग्य वस्तुओं की लालसा बढ़ रही है उनकी माँग और कीमतें भी बढ़ती जाती हैं और महँगाई तो बढ़ ही रही है। सादगी दिन दिन दुर्लभ होती जा रही है। इसलिए हमेशा पैसे की हविस रहती है उसे कमाने की होड़ लगी रहती है और उसी में जीवन की अधिकांश शक्ति खर्च हो जाता है। उस पर अवलम्बन भी बढ़ जाता है। परिणामतः आश्रितता की भावना बढ़ जाती है स्वावलम्बन कम रहता है। इससे जीवन की निर्लिप्तता स्वतन्त्र बुद्धि एवं निर्भयता पर भी परिणाम होता है। हमारे यहाँ सादा जीवन ऊँचा चिंतन की परम्परा है। इसलिए मेरी धारणा है कि गांधीजी ने सादगी की आवश्यकताओं के न्यूनीकरण का जो सन्देश दिया था वही श्रेयस्कर है। उसी में हम चारित्र्य का तेज और बुद्धि की स्पष्टता एवं निर्लिप्तता की सुरक्षा कर सकते हैं। पुराने जमाने में ऋषि-मुनि जंगलों में रहा करते थे वन के कन्द मूल फल खाकर ही अपना जीवन चलाते थे। उसी कारण उनमें साहस होता था कि वे राजा से भी स्पष्ट खरी खरी बात कर सकते थे और राजा भी उनके आगमन पर सिंहासन से उठकर नतमस्तक होकर उनकी आज्ञा का पालन करते थे। यदि वे स्वयं राजाश्रय पर पलते होते तो उनमें इतनी निर्भीकता और स्पष्टवादिता कहाँ से आती? मैं समझता हूँ कि आचार्यकुल का नैतिक शक्ति बढ़ाने के लिये इस पहलू पर ध्यान देना आवश्यक है। साधना और तपस्वी जीवन से चिंतन में सामर्थ्य आता है शब्दों में मन्त्र शक्ति आती है। ऐसा व्यक्ति जब बोलता या लिखता है तो उसमें केवल शब्द नहीं रहते उसका सारा जीवन अवतरित होता है

कर्म ही एक मात्र दवा

हमें इस बात से भी निराश नहीं होना चाहिए कि हमारी संख्या कम है इसलिए हमें कौन पूछेगा ? हमारा क्या असर होगा ? नैतिक शक्ति संख्या-बल पर आधारित नहीं रहती गुणों पर रहती है। गुणों और मूल्यों की उपासना करनेवाले तादाद में कम ही होते हैं। लेकिन इतिहास इसका साक्षी है कि संस्कृति के निर्माता, या विभिन्न मानवीय क्रान्तियों के जनक या सभ्यताओं को टिकाने वाले अल्प संख्या में ही होते हैं। वे तो समय की मांग का उचित मूल्यांकन करते हैं और उसे पूर्ण करते हैं। इसीलिए उनका विचार कोटि कोटि लोग सर आंखों पर उठा लेते हैं। निराशा विफलता गिरावट या भ्रष्टाचार से भी हताश होने का कोई कारण नहीं है। विफलता तो निष्क्रियता से आती है। कर्म ही उसकी दवा है। नाहक गिरावट और भ्रष्टाचार को कोसने मात्र से कुछ नहीं बनता। अंधेरे के नाम से रोने-पीटने की बजाए एक छोटी सी मोमबत्ती जलाना अधिक श्रेयस्कर है। भले ही वह एकाकी हो कमजोर हो पर वह अंधेरे की शक्ति को चुनौती देनेवाली ज्योति है। वही ज्योति बढ़ते बढ़ते सभी दिशाओं में आलोक फैला सकती है। प्रसिद्ध अमरीकन कवि राबर्ट फ्रास्ट की कल्पना के अनुसार शब्द ही जब कृति बन जाते हैं तब जीवन प्रभविष्णु एवं सार्थक बन जाता है। ऐसे लोग कम होते हैं पर वही असल में मानवता के प्रहरी होते हैं। आचार्यकुल की शक्ति और सामर्थ्य का ध्वजा इन्हीं लोगों के हाथों फलेगी।

आचार्यकुल समय की मांग है

आचार्यकुल के विचार को मैं एक मौलिक एवं मूल्यग्राही विचार मानता हूं। आजकल राज्यसत्ता की शक्ति राजनीति की शक्ति क्षीण होती जा रही है मूल्यों का, विचारों की शक्ति अध्यात्म की शक्ति उभर रही है। तलवार निरर्थक सिद्ध हो रही है कलम की ताकत बढ़ रही है। साहित्यिक जब अपनी लेखनी के लिए स्याही का उपयोग करता है तो उसमें केवल काली स्याही ही नहीं रहती वरन लेखक के पसीने की बूंद और उसकी आंखों के आंसू भी मिले रहते हैं और उसके रक्तबिन्दु भी। इन सब से मिल कर जो वह लिखता है वह अक्षर साहित्य होता है और तलवार या राजसत्ता के मुकाबले में उसका प्रभाव ज्यादा पड़ता है। प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार विक्टर ह्यूगो का कथन था कि उस विचार के सामर्थ्य की शक्ति को कम मत लेखो जिसकी घड़ी आ गई है। मेरी धारणा है कि भारत में ही नहीं विश्व में भी आचार्यकुल के विचार की घड़ी आ गई है। वह समय की मांग है। उसी से हम नये समाज की ओर बढ़ेंगे जो सबके कल्याण सबके मांगल्य की भावना पर आधारित हो। भारत में यह प्रयोग सफल हुआ तो निस्सन्देह वह विश्व में भी फलेगा। यह विचार तो निश्चय ही फैल सकता है। हम उसका यथोचित प्रचार प्रसार कर सकें और आचार्यकुल की सकल्पना को अधिक दृढ़ता और मजबूती के साथ ग्रहण कर सकें यही मेरी अभिलाषा है, ईश्वर से प्रार्थना है। इसमें हम सब सफल हों।

परिशिष्ट : क :–

संक्षिप्त सम्मेलन विवरण :

परमधाम नदी के तट पर ऋषि विनोबा के सान्निध्य में दिनाक १२ और १३ जनवरी १९७४ को आचार्यकुल का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। पूज्य विनोबाजी ने यहीं पर ब्रह्मविद्या मंदिर की स्थापना की है जहां पर कई बहन और भाई विनोबा जी के मार्गदर्शन में ब्रह्मविद्या का अभ्यास और चिंतन मनन करते हैं। यह खासकर बहनों के लिये है और इस आश्रम का उद्देश्य प्राचीन भारत की परम्परा क अनुसार बहनों को भी ब्रह्मविद्यावादिनी बनने का अवसर प्रदान करना है। प्राचीन वेदकाल में तो यह परम्परा कायम रही किन्तु बाद को इसका ह्रास हो गया और बीच में केवल भगवान् महावीर ने ही पुन बहनों के लिये सन्यास का मार्ग प्रशस्त किया था नहीं तो यह अब तक भी लगभग बंद-सा है। पूज्य विनोबा जी का विश्वास है कि बहनें इस क्षेत्र में यदि आगे आवें तो विश्व में इसका बहुत बड़ा असर होगा।

ऐसे स्थान पर आचार्यकुल का पहला सम्मेलन हो यह उचित ही था। सम्मेलन में देश भर से लगभग ३५० लोग आये थे। सम्मेलन का उद्घाटन देश के प्रख्यात गांधीवादी शिक्षाविद् तथा अखिल भारत नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने किया। प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुये 'पद्मभूषण' श्री अन्ना सहस्रबुद्धे ने आशा प्रकट की कि भारत की प्राचीन परम्परा के प्रतीक ऋषि विनोबा के इस आश्रम में होने वाले इस सम्मेलन स निश्चय ही देश को मार्गदर्शन प्राप्त होगा। श्री श्रीमन्नारायण जी ने अपने भाषण में आचार्यकुल की स्थापना, उद्देश्य और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये कहा कि अब भी समय है जब कि देश का बुद्धिवादी वर्ग अपनी जिम्मेदारी समझकर देश का मार्गदर्शन कर सकता है।

सम्मेलन के आरम्भ में केन्द्रीय संयोजक श्री वंशीधर जी श्रीवास्तव की बीमारी के कारण व अपनी रिपोर्ट पेश नहीं कर सके तो उसे फिर संगठक श्री गुरुशरण जी ने रखा। नागपुर के श्री दि ह सहस्रबुद्धे ने सम्मेलन के लिये आये हुये श्रीमती महादेवी वर्मा, महाराष्ट्र, म प्र तथा हरियाणा के शिक्षामंत्रियों, सर्वश्री अ न जोशी, अर्जुनसिंह तथा मारुसिंह, महाराष्ट्र के वित्तमंत्री, जयपुर, विक्रम, एन एन डी टी महिला विश्वविद्यालय बम्बई, गुजरात, नागपुर, जबलपुर तथा मराठवाड़ा विश्व-विद्यालयों के उपकुलपतियों, खादी कमीशन के चेयरमैन श्री जी रामचन्द्रन् तथा महाराष्ट्र विधान परिषद के अध्यक्ष श्री बी स पागे जी के सन्देश पढकर सुनाये।

श्रीमती महादेवी वर्मा जी ने अपने संदेश में आशा व्यक्त की कि आचार्यकुल ही एकमात्र मंत्र है जो आज के दिशाभ्रम के समय में समाजका मार्गदर्शन कर सकता है और कहा कि इस सम्मेलन से यह हो सकेगा तो यह सफल माना जायेगा।

सम्मेलन को पूज्य विनोबा जी ने काफी समय दिया। विनोबा जी ने तो आचार्यकुल को अपनी सर्वश्रेष्ठ देन भी कहा है और उनका आचार्यों पर बहुत भरोसा है। अपने तीन प्रवचनों में उन्होंने आज देश की संकटग्रस्त स्थिति पर चिंता व्यक्त की और कहा कि राजनैतिक उपायों से इन समस्याओं का हल नहीं हो सकता। इसके लिये तो समाज की सभी शक्तियों, खासकर पंचशक्तियों (शासन शक्ति, आचार्य शक्ति, महाजन शक्ति, जनशक्ति और सज्जन शक्ति) के मिलकर करने से होगा। उन्होंने अन्न उत्पादन के महत्व पर जोर देते हुये कहा कि हमारे प्राचीन ऋषियों ने तो अन्न को ही ब्रह्म कहा था और बिना अन्न के कोई भी प्रगति नहीं की जा सकती है। विनोबा जी ने यह भी कहा कि आचार्यों को तटस्थ होकर देश की समस्याओं पर चिंतन-मनन करना चाहिये और अपना देशव्यापी भाईचारा कायम करना चाहिये। इसके लिये उन्होंने दक्षिण में आचार्यकुल के प्रचार-प्रसार पर बल दिया और कहा कि यदि प्रयास हो तो दक्षिण में तो चूंकि आचार्यों की प्राचीन परम्परा अभी तक कायम है अत: वहाँ पर आचार्यकुल का विचार तेजी से फैल सकता है। देश को जोड़ने की दृष्टि से उन्होंने यह भी कहा कि हमें सारे देश में एक भाषा और एक लिपि का विकास करना चाहिये तथा भारत को पहचानने की दृष्टि से संस्कृत के अध्ययन पर जोर देना चाहिये। संस्कृत भारत को जोड़ने वाली भाषा है और आचार्यकुल का यह काम करना चाहिये। देश के भावात्मक ऐक्य के लिये उन्होंने दक्षिण के साथ निकट परिचय कायम करने पर भी बल दिया और कहा कि आज तो राजनीति तोड़ने का जो काम कर रही है उससे शिक्षक यदि अलग नहीं रहेंगे तो न तो उनका देश पर ही कोई असर होगा और न देश की समस्या ही हल होगी। उन्हें तो राजनीति का आचार्य होना है जो दूर से तटस्थ निरीक्षण करके निर्णय दे न कि खेल में स्वयं ही शामिल होना है। यह राजनीति को भी सही पर्स्पेक्टिव (परिप्रेक्ष) प्रदान करने के लिये आवश्यक है कि देश में तटस्थ चिंतन शक्ति का विकास हो। उन्होंने शिक्षा में आमूल परिवर्तन के लिये आचार्यों से उत्तमोत्तम सत्याग्रह करने की बात भी कही।

विनोबा जी के उद्बोधन से पहले श्री गोविन्दराव देशपांडे ने 'आचार्यकुल की संकल्पना' पर चर्चा से सम्मेलन की चर्चाओं का आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि आचार्यकुल को न तो हमें शिक्षकों की कोई ट्रेड यूनियन ही बनाना है और न इसे राजनीतिज्ञों के लिये किसी मंच के रूप में ही रखना है। आचार्यकुल को तो आज निरन्तर बढ़ रही राज्यशक्ति के चंगुल से समाज को कैसे त्राण मिले, इस पर विचार करना है और शिक्षा तथा शिक्षकों को इसमें महत्व की भूमिका निभानी है। इस

सत्रके अध्यक्ष आगरा विश्व-विद्यालय के भू. पू. उपकुलपति श्री प्रो. शीतलप्रसाद जी ने कहा कि आचार्यकुल असल में समय की एक ऐसी माँग है जो शिक्षको के हित में है और शिक्षकों को यदि अपनी खोई हैसियत प्राप्त करनी हो तो आचार्यकुल ही उनके लिये एकमात्र मच है। इसी सत्र में नागपुर के प्रो. श्री दि ह. सहस्रबुद्धे ने 'आचार्यकुल की शिक्षानीति और कार्यक्रम' विषय पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने इस पर जोर दिया कि शिक्षको को शिक्षा परिवर्तन के लिये इस नीति तथा कार्यक्रम पर विचार करना चाहिये। उन्होंने एक शिक्षा आयोग गठित करने का भी प्रस्ताव किया।

इस विषय पर समय की कमी से यद्यपि कम ही लोग बोल सके किन्तु जो भी बोले सबने इस बात पर बल दिया कि आज शिक्षकों की हैसियत बहुत गिर गई है और इसके लिये वे ही बहुत हद तक जिम्मेदार है। वे अपने कर्तव्य को भूल गये है इससे समाज में उनके लिये कोई आदर-भाव नही रह गया है। इससे सरकार भी उन्हे नौकर की ही हैसियत में रखती है। जब तो स्वय शिक्षक भी इस हैसियत को स्वीकार करके शिक्षा के सरकारीकरण करने की माँग करने लगे है तो फिर शिक्षको और शिक्षा के उन्नयन की आशा कम हो गई है। किन्तु इससे न केवल देश का ही नुकसान होगा अपितु स्वय शिक्षक भी इससे खतरे में रहेगे। अतः आचार्यकुल न केवल शिक्षा की ही अपितु शिक्षकों की मुक्ति का भी आन्दोलन है।

दूसरे दिन १३ जनवरी को प्रख्यात साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार जी की अध्यक्षता में सत्र आरम्भ हुआ जिसमें भागलपुर विश्व-विद्यालय के प्रो डा. रामजी सिंह ने अपने भाषण में 'वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और आचार्यकुल' के परस्पर सम्बन्धो के बारे में कहा कि देश की आज की परिस्थिति सिवाय अराजकता के और किसी भी तरह से नही बताई जा सकती है। शासकों ने लोकतान्त्रिक मूल्यों का त्याग कर दिया है और शिक्षकों ने भी उनकी दासता को स्वीकारने का निर्णय-सा कर लिया है। किन्तु किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति और खासकर शिक्षक के लिये तो यह स्थिति अत्यधिक अपमानजनक है और हम शिक्षकों को इसे बदलने के लिये आगे आना चाहिये। उन्होंने भारत के प्राचीन आचार्यों की परम्परा का स्मरण दिलाते हुये कहा कि जब तक आचार्य शासन के हाथ बिकते रहेंगे तब तक शिक्षा से कोई लाभ भी नही हो सकता है। अत शिक्षको को चाहिये कि वे अपनी और देश को भी हैसियत पाने के लिये पुन. उसी प्राचीन त्याग और बलिदान के मार्ग पर आगे बढें।

इस सत्र में केन्द्रीय सगठक श्री गुरुशरण ने 'आचार्यकुल सगठन' पर अपना निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आचार्यकुल को अन्याय और अनीति के खिलाफ भी आवाज उठानी चाहिये। जगह जगह आचार्यकुल केन्द्र कायम करने के सुझाव के साथ उन्होंने कहा कि अब समय आ गया है कि जब कि शिक्षकों

को अपनी समस्यायें हल करने के लिये राजनीतिज्ञों के पास दौड़ने के बजाय स्वयं ही सगठित होकर अपनी समस्यायें हल करनी चाहिये क्योंकि राजनीतिज्ञ समस्याओं को हल करने के बजाय एक तो उन्हें और उलझा देते हैं और फिर उसमें वे शिक्षकों के बजाय अपना हित ही सामने रखकर काम करते हैं। आचार्यकुल शिक्षकों को इस तरह का मंच देता है और वे इस पर सगठित हों।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि यदि हम यह मानकर चलेंगे कि हमें तो ज्ञान मिल चुका है और यदि हम इस प्रकार से अपने बनाये तथाकथित ज्ञान के हिमालय की सी ऊँचाइयों से ही बात करते रहेंगे तो फिर कुछ भी नहीं होने वाला है। हमें तो नम्रता और करुणापूर्ण हृदय से जनसाधारण के बीच जाकर उनके सुख दुःख में भागीदार होना होगा और इस प्रकार से देश की जनता के साथ एकात्मता साधने का प्रयास करना होगा। समाज अभी तक कहीं किसी निर्णय पर नहीं आया है और मनुष्य के ज्ञान की खोज अभी अनन्तगुना बाकी है। हम तो इस खोज में नम्र भागीदार बनने का प्रयास करना होगा तभी हम कुछ कर सकेंगे। आज देश में जो स्थिति है उस पर जैनेन्द्र जी ने गहरा दुःख व्यक्त करते हुए कहा कि इसका कारण शासन तो है ही पर हम भी हैं। जो अपने को बुद्धिवादी कहते हैं हमने अपने को एक अलगाव के महलों में जमा बंद कर दिया है और हम उन्हीं में सुख प्राप्त करने की आशा करते हैं। हमारी सारी कोशिश बस केवल इसलिये होती है कि हमारी स्थिति में कोई फर्क न आवे। किन्तु इस मनोवृत्ति से कोई भी सार्थक परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। यदि आचार्यकुल का कुछ अर्थ है तो मैं यही समझता हूँ यद्यपि मैं आपके बीच अपने को एक प्रकार से विदेशी जैसा देखता हूँ क्योंकि मैं तो किसी भी निर्णय पर अभी तक नहीं आ सका कि आचार्य कुल इस सार्थक सामाजिक परिवर्तन का वाहक बने।

तीसरे पहर के समापन समारोह की अध्यक्षता नागपुर टाइम्स के सम्पादक और प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अनन्त गोपाल शेवडे जी ने की। इसमें सम्मेलन के निवेदन के रूप में श्री पूर्णचन्द्र जैन ने एक निवेदन पढ़ा जो सम्मेलन ने स्वीकार किया। निवेदन में इस बात पर जोर दिया गया है कि आचार्यकुल को व्यापक जिम्मेदारियाँ उठानी चाहिये और इसका देश भर में व्यापक प्रसार प्रचार करना चाहिये। निवेदन में शिक्षा में आमूलाग्र परिवर्तन के लिये भी माग की गई है और शिक्षकों का आवाहन किया गया है कि वे इसके लिये सक्रिय कदम उठावें। निवेदन में सेवाग्राम सम्मेलन का स्वागत करते हुए कहा गया है कि आचार्यकुल के सदस्य और इकाइयाँ इस तरह के सम्मेलन हर प्रदेश में आयोजित करें ताकि देश में शिक्षा में परिवर्तन के लिये अनुकूल वातावरण पैदा हो सके।

अपने समापन भाषण में श्री शेवडे जी ने कहा कि आचार्यकुल भारत की प्राचीन परम्परा के अनुकूल है और न केवल शिक्षकों को ही अपितु सभी साहित्यकारों,

पत्रकारों और लेखकों का भी इसमें शामिल होना चाहिये। आज का साहित्यकार अपने असल कर्तव्य से च्युत-सा हो गया है। इस बात पर गहरा दुख प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि अब भी समय है कि साहित्यकार अपनी भूल सुधार सकते हैं। पूज्य विनोबा जी ने आचार्यकुल के रूप में जो दिशा-निर्देश किया है वह साहित्यकारों के लिए भी एक दिशा सूचक है। आचार्यकुल को चाहिये कि वह उस पंच शक्ति के सामन्जस्य का काम हाथ में ले जिसका प्रस्ताव विनोबा जी ने किया है। उन्होंने कहा कि आज एक दूसरे पर दोष देकर हम अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते। हमें तो सब को ही नम्रता से अपना अपना काम करना चाहिये और दोष देखने के बजाय हम गुणों की पूजा आरम्भ करें। अंधकार की नहीं प्रकाश की आराधना ही हमें अपने गन्तव्य तक ले जा सकती है। उन्होंने कहा कि हमें निराश नहीं होना है क्योंकि इसमें से कुछ नहीं निकलता है। हमें तो दीपशिखा बनकर जलते जाना है बस प्रकाश स्वयं ही अपना काम कर लेगा।

इस अवसर पर केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की भी दो बैठकें हुईं। पहले प्रस्ताव था कि इस सम्मेलन में नयी समिति बना दी जाय किन्तु सभी राज्यों से उसके लिये आवश्यक रूप से संगठनात्मक तैयारी न रहने से यह तय किया गया कि अभी आगामी ६ माह तक यही समिति काम करती रहे और तब तक संविधान के अनुसार राज्यों में संगठन बन जाय। दक्षिण में खासकर आचार्यकुल के प्रचार-प्रसार पर भी बल दिया गया और यह निश्चय हुआ कि केन्द्रीय समिति इसके लिये श्री रोहित मेहता से निवेदन करे कि वे दक्षिण का दौरा करें। अन्य राज्यों में श्री पूर्णचन्द जैन और श्री गोविन्दराव जी घूमें। समिति की पहली बैठक में ११ ता. को ही सम्मेलन के संचालन के लिये चार आदमियों की एक समिति बना दी गई थी। उसी प्रकार से सम्मेलन का निवेदन तैयार करने के लिये भी पांच व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई।

सम्मेलन का आरम्भ वर्धा महिला आश्रम की बालिकाओं के भजन से आरम्भ हुआ और अन्त स्वागत समिति के मंत्री तथा महाराष्ट्र आचार्यकुल के संयोजक श्री मामा क्षीरसागर जी के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ। दिन भर चर्चाओं के बाद रात्रि को रायपुर (म. प्र.) के श्री रामकुमार शर्मा के नेतृत्व में कवि सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ जिसमें कई युवा कवियों ने भाग लिया। सम्मेलन में पहले दिन ब्रह्मविद्या मंदिर की सुश्री शान्ताबहन ने ब्रह्मविद्या मंदिर के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी और बताया कि पूज्य विनोबा बहनों के इस प्रयोग को बहुत महत्व देते हैं। यह आधुनिक भारत में अपने ढंग का पहला ही प्रयोग है।

दो दिन तक शांत और प्रेरणाप्रद वातावरण में अत्यन्त सौहार्द और मैत्रीपूर्ण ढंग से सम्मेलन समाप्त हुआ।

परिशिष्ट (छ)

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की छठी बैठक :

(परमधाम पवनार, वर्धा : दिनांक ११ व १२ जनवरी, ७४)

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की छठी बैठक दिनांक ११ व १२ जनवरी, ७४ का परमधाम आश्रम पवनार, वर्धा के अतिथिगृह में सम्पन्न हुई। समिति के संयोजक श्री वंशीधरजी की अस्वस्थता के कारण पहली बैठक की अध्यक्षता के लिये केन्द्रीय संगठक श्री गुरुशरण ने श्री शीतल प्रसाद जी से प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया। दिनांक १२ की बैठक की अध्यक्षता श्री सिद्धराज ढड्ढा, अध्यक्ष सर्व सेवा संघ ने की। बैठकको में निम्नलिखित सदस्य और आमंत्रित उपस्थित थे —

सदस्य	आमंत्रित
१ श्री सिद्धराज ढड्ढा	१ श्री दि ह सहस्त्रबुद्धे
२ श्री शीतल प्रसाद	२ श्री रामशेवालकर
३ श्री गोविन्दराव देशपांडे	३ श्री चन्द्रा किर्लोस्कर
४ श्री मामा क्षीरसागर	४ श्री अ वा सहस्त्रबुद्धे
५ डा. रामजी सिंह	५ श्री बनवारीलाल चौधरी
६ श्री महादेव झा	६ श्री डा अमरनाथ श्रीवास्तव
७ श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा	७ श्री यशपाल मित्तल
८ श्री श्रीमन्नारायण	८ श्री एम वी एल नरसिंहम्
९ श्री पूर्णचन्द्र जैन	९ श्री आर व्यंकटरमण
१० श्री काशीनाथ त्रिवेदी	१० श्री मानव मुनि
११ श्री ठाकुरदास बंग	११ बालकृष्ण जोशी
१२ श्री गुरुशरण	१२ रामकुमार शर्मा
१३ श्री जैनेन्द्र कुमार	१३ श्री चन्द्रकान्त
१४ श्री ग उ पाटणकर	१४ वसंतराव बावटकर
१५ श्री ओमप्रकाश त्रिखा	
१६ श्री सी ए मेनन	
१७ श्री गोविन्द रावल	
१८ श्री रघुनाथ महापात्र	

दिनांक ११ को १ पिछली बैठक (दिनांक १५ जुलाई, १९७३) की कार्यवाही की पुष्टि की गई। २ पिछली बैठक से लेकर अब तक के हुए काम का विवरण केन्द्रीय संगठक श्री गुरुशरण ने प्रस्तुत किया और बताया कि इस बीच में ५५० नये

सदस्य बने हैं। आचायकुल सप्ताह पाँच सितम्बर से ११ सितम्बर तक सभी राज्यों में उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस सप्ताह में सदस्यता में वृद्धि हुई। १९७३ में एक महत्वपूर्ण नवान काय हुआ है— केन्द्राय आचायकुल कोषका प्रारम्भ। जिसस आचायकुल सही मान म स्वावलम्बी बन सके। हमने चाहा था कि इस सम्मेलन क पहले तदथ समितियाँ विघटित हो जाय आचायकुल क विधान के अनुसार समितिया का निर्माण हो जाय परन्तु कई राज्यों में एसा नही हो पाया है। अब सम्मेलन के बाद वहाँ नयी समितिया बन सकेगा— ऐसी चेष्टा की जायगा। राज्या में राज्य स्तर पर शिक्षा सम्मेलनो का आयोजन शुरू हुआ है।

३ प्रथम अखिल भारतीय आचायकुल सम्मेलन के कायकम को सुचारू ढग स चलाने के लिये एक स्टीयरिंग कमेटी का भी गठन किया गया जिसमें श्री पूणचन्द्र जैन श्रा दि ह सहस्रबुद्ध श्री शीतल प्रसाद जा, श्री गोविन्दराव देशपाडे और श्रा गुरुशरण को मनानात किया गया। दिनाक १२ जनवरी १९७४ को सम्मेलन की दूसरी बैठक की कायवाही की अध्यक्षता, श्री रोहित मेहता करनेवाले थे परन्तु उनकी अनुपस्थिति के कारण श्री शीतल प्रसाद जी से प्राथना की गई कि व अध्यक्षता करें।

फिर अध्यक्षको धन्यवादके साथ बैठक अगले दिनके लिए उठ गई।

दिनाक १२ जनवरी ७४ की सध्या को ६ बजे अतिथि निवास में उसी स्थान पर पुन बैठक आरभ हुई।

४ विधान सम्मत केन्द्रीय आचायकुल के गठन की चर्चा करत हुए केन्द्रीय सगठक श्री गुरुशरण ने बताया कि सम्मेलन के बाद सारे राज्या में एक अच्छा वाता वरण बनगा और प्रादेशिक आचायकुलों का विधान सम्मत गठन सभव होगा और उसी स्थिति में केन्द्राय सयोजक के लिय निर्वाचको के नाम भी आ सकग। अभी तो कवल मध्यप्रदेश स ही निवाचकों के नाम आय हैं। एसा स्थिति में विधानत नय सयोजक का चुनाव नहीं हो सकता। अत वतमान तदथ समिति को विघटित करने के बजाय आगामी ३० जून, ७४ तक इसका कायकाल बढा दिया जाये और श्री वशीधर श्रीवास्तव स प्राथना की जाय कि वे तब तक सयोजक का काम करें। इस सुझाव को सब सम्मति स मान्य किया गया।

५ सम्मेलन को अतिम बैठक में निवेदन रखन के लिये एक ड्राफ्टिंग कमेटी बनाने का निश्चय हुआ और निम्नाकित सदस्यों की एक समिति बनाई गई — १ श्री पूणचन्द्र जैन, २ श्री गोविन्दराव देशपाडे ३ श्री काशिनाथ त्रिवेदी ४ श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, ५ श्री गुरुशरण (सयोजक)। इस समिति के द्वारा तैयार किया गया निवेदन श्री पूणचन्द्र जैन सम्मेलन क समक्ष प्रस्तुत करें यह भी तय हुआ।

६ केंद्रीय आचायकुल समिति का वप ७३–७४ का वजट रूपये २० ००० का प्रस्तावित हुआ था जिसमें सव सेवा सघ ने रुपय १५००० स्वीकृत किया था। परन्तु इस वप समिति का बैठक १ के वजाय ३ होने तथा सम्मेलन आदि के कारण खच अधिक हुआ है अत सव सेवा सघ के मत्री स प्राथना है कि व इस मत्र या पूरक वजट रुपये ५००० और स्वीकृत कर उसे रु २० ००० ही मान्य करन का कृपा करें।

७ केंद्रीय आचायकुल समिति के वप १९७४–७५ का वजट गत वर्ष की भांति रुपय २० ००० का प्रस्तुत किया गया। चूंकि अभी समिति का कायकाल ६ माह और बढ़ाया गया है अत सव सेवा सघ के नये हिसाब वप १ मई ७४ से लेकर, ३१ जुलाई १९७४ तक ३ माह का अन्तरिम वजट इसी मर्यादा में रुपय ५००० का स्वीकृत किया जाय यह तय हुआ और जब विधान सम्मत केंद्राय आचायकुल का गठन हो जाय तो उसकी प्रथम बैठक में पूरे वप का वजट प्रस्तुत करके पारित कराया जाय। सव सेवा सघ म प्रायना की जाती है कि गत वर्षों की भांति ही यह तीन माह के अन्तरिम वजट रु ५००० के दिय जान की कृपा करे।

८ श्री दि ह सहस्रबुद्ध सयोजक प्रथम राष्ट्रीय आचायकुल सम्मेलन आरम्भ स ही आचायकुल के काम में सक्रिय रुचि लेते रहे ह। वे स्वय एक अनुभवी शिक्षा शास्त्री हैं। उनस आचायकुल के काम को बल मिलेगा इसलिय केंद्रीय सगठक के सुझाव पर उन्हे केंद्रीय समिति के सदस्य के रूप में मनोनीत करना सव सम्मत्ति स तय किया गया।

९ जिन प्रदशों म काम अभी कम हुआ है उनम तथा विशेषरूप से दक्षिण के चारों प्रदेशों और गुजरात में सगठन को व्यापक बनाने की दृष्टि स सवश्री श्रीमन्नारायण गोविन्दराव देशपांडे पूणचन्द्र जैन और गुरुशरण विशेष प्रयत्न करें। इसी तरह सवश्री रोहित मेहता राममूर्तिजी राधाकृष्ण मेनन और के अरुणाचलम से भी प्राथना की जाय और इन सबसे सयोजक पत्र-व्यवहार करे।

१० श्री व्यकटरमन क्षेत्रीय सगठन ने दक्षिण के राज्यों में काम का वर्ष ७४–७५ का बजट प्रस्तुत किया। उस सम्बन्ध में तय रहा कि जैसा अभी चल रहा है उसी आर्थिक मर्यादा म ३० जून ७४ तक चलता रहे।

११ अध्यक्ष की अनुमति से अन्य प्रस्ताव में दिल्ली म होनेवाले सत सेवक समागम में केंद्रीय आचायकुल के योगदान के सम्बन्ध में विचार हुआ। श्री जैनेन्द्रकुमार न उस आयोजन के बारे म जानकारी दी जिस पर श्री श्रीमन्नारायण का कहना रहा कि इस प्रकार के आयोजनों में सदस्यगण व्यक्तिगत रूप से जो योग करना चाहें करें।

अन्त में अध्यक्ष श्री सिद्धराज ढड्ढा को धन्यवाद देने के साथ बैठक समाप्त की गई।

परिशिष्ट (ग)

प्रथम राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन :

पवनार आश्रम, १२-१३ जनवरी, १९७४

निवेदन :

आचार्यकुल का विचार उस समय उदय हुआ जब तत्कालीन राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन सन १९६७ में आचार्य विनोबाजी से बिहार में मिले और उनसे शिक्षा की समस्याओं पर विचार विनिमय किया। आचार्यकुल की सकल्पना के अनुसार उसका विधान बना संगठन की स्थापना हुई आचार्यों के लिये ज्ञान निष्ठा, विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य एवं तटस्थ वृत्ति पर जोर दिया गया। धीरे धीरे कार्य आगे बढा। अब यह प्रथम राष्ट्रीय आचार्यकुल सम्मेलन परमधाम आश्रम पवनार में १२ और १३ जनवरी १९७४ को ऋषि विनोबा के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। देश भर के लगभग ३२० प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और आचार्यकुल संगठन व कार्यक्रम के सम्बन्ध में दो दिन तक गम्भीर चर्चा हुई और सम्मेलन की ओर से निम्न निवेदन सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ —

स्वाधीनता के बाद पिछले २५ वर्षों में राष्ट्र ने सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और शैक्षणिक क्षेत्रोंमें अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। किन्तु कई परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और लोकशक्ति के निर्माण में कुछ बाधायें भी उत्पन्न हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में बढता हुआ सरकारी नियन्त्रण सचमुच गहरी चिन्ता का कारण बना है। आचार्यकुल का प्रारम्भ से ही यह बुनियादी सिद्धान्त रहा है कि शिक्षा शासन मुक्त हो और शिक्षण-संस्थाओं की स्वायत्तता में सरकार दखल न दे। यद्यपि निजी संस्थाओं में बढती हुई अनेक बुराइयां हटाने के लिये भरसक प्रयत्न होना आवश्यक है लेकिन प्रशासन को शिक्षा के क्षेत्र में विशेष परिस्थिति के अलावा सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। आचार्यकुल का यह राष्ट्रीय सम्मेलन आशा करता है कि सभी राज्य सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी।

यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आमूलाग्र परिवर्तन तेजी से किये जाय। पिछले वर्ष सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने जाहिर किया था कि 'शिक्षा हर स्तर पर सामाजिक दृष्टि से उपयोगी एवं उत्पादक क्रियाकलापों द्वारा आर्थिक विकास व समृद्धि से सम्बद्ध रहकर ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में प्रचलित हो।' इस बात पर भी जोर दिया गया था कि सभी पाठ्यक्रमों में आत्मनिर्भरता, आत्म विश्वास, सामुदायिक सेवा और नैतिक मूल्यों के सिंचन का समावेश होना आवश्यक है। आचार्यकुल का अनुरोध है कि सेवाग्राम सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर देश की शिक्षा प्रणाली में तेजी से परिवर्तन लाये जायें ताकि राष्ट्र का विकास सही दिशा में हो सके।

इसके लिये यह भी जरूरी है कि शिक्षा-जगत दल, पक्ष, सम्प्रदाय आदि का संकीर्णता से मुक्त हो। तभी हमारी शिक्षण संस्थायें व्यापक रूप से देश के लोकतन्त्र को मजबूत कर सकेगी। इसी दृष्टि से यह निश्चित किया गया है कि आचार्यकुल के सभी सदस्य दलगत राजनीति से पृथक रहे और देश की तत्कालीन समस्याओं पर पक्ष-मुक्त ढंग से अपनी तटस्थ राय दृढ़ता से जाहिर करते रहें। यह तभी सम्भव हो सकता है कि जब शिक्षक किसी राजनैतिक पार्टी के सदस्य न हों और सत्ता की भँवर में न फँसे, हालांकि शिक्षक वर्ग को देश और दुनिया की व्यापक राजनीति का गहराई से अध्ययन तो करते ही रहना चाहिये।

स्वायत्त शिक्षा, लोकशक्ति का विकास और राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं के हल के लिये अहिंसक-शक्ति को संगठित करना आवश्यक है। इस अहिंसा शक्ति को पूज्य विनोबा जी ने 'तीसरी शक्ति' कहा है जो हिंसा शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न है। उसका विकास तभी किया जा सकता है जब जन शिक्षण द्वारा समाज के विचार में परिवर्तन लाया जाय और लोगों की आंतरिक शक्ति और आत्म-विश्वास को जगाया जाय। इसलिये आचार्यकुल ने यह तय किया है कि किसी भी उद्देश्य की सिद्धि के लिये हिंसा का मार्ग न अपनाया जाय और न उसका समर्थन ही किया जाय।

आचार्यकुल को राष्ट्र निर्माण और नये समाज की स्थापना का सजग व सक्रिय प्रहरी बनना चाहिये। हाल ही में मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के समय देश में जो विषम परिस्थिति खड़ी हुई उसका आचार्यकुल ने तटस्थता से गहरा अध्ययन किया और उसका अभिमत प्रकाशित भी किया गया। इसी प्रकार हाल ही में विश्व विद्यालयों के सम्बन्ध में जो विधेयक विभिन्न विधान सभाओं में पेश किये गये हैं या पारित हुए हैं, उनके बारे में भी आचार्यकुल का संतुलित अभिमत राष्ट्र के सामने शीघ्र प्रस्तुत होना चाहिये, ताकि उसके द्वारा सही लोक शिक्षण और नागरिक जाग्रति का संचार हो सके।

अब समय आ गया है कि आचार्यकुल का संगठन सारे देश में व्यापक ढंग से फैलाया जाय। देश की लोक शक्ति को जगाने के लिये और राष्ट्र की विकास योजनाओं का सही दिशा में लगाने लिये यह बहुत जरूरी है। यह सम्मेलन आशा करता है कि देश की प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरीय सभी शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक और आचार्यकुल की निष्ठाओं में विश्वास रखने वाले साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार और समाज-सेवक इस संस्था के सदस्य बनेंगे और राष्ट्र निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य में हाथ बटायेंगे। यह सम्मेलन आचार्यकुल के सभी सदस्यों व उसकी इकाईयों को इस दिशा में तत्परता से प्रयत्नशील होने के लिये आवाहन करता है और आशा एवं विश्वास रखता है कि इस राष्ट्रीय कार्य में उन्हें जनता का प्रोत्साहन व सहकार्य प्राप्त होगा।

सूचना--स्थानाभाव के कारण जिन लेखों को इस अंक में नहीं दिया जा सका है, उन्हें आगामी अंकों में प्रकाशित किया जायगा। आशा है लेखक बन्धु क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

नयी तालीम : फरवरी '७४
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

मतदाताओं से—

मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि किसी भी मतदाता को पक्षों के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिये। अमुक प्रत्याशी किस पक्ष का है यह बात जानने के बजाय यह जानना चाहिये कि उसके विचार क्या हैं। और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह जान लेना है कि प्रत्याशी का चरित्र कैसा है। चरित्रवान् व्यक्ति जहाँ कहीं होगा, हमारा हित साधन ही करेगा। उसकी भूलें भी सह्य होंगी। चरित्रहीन व्यक्ति के द्वारा उच्चकोटि की सेवा की जा सकती है, इसे मैं असम्भव मानता हूँ, अर्थात् यदि मुझे मतदान करना हो तो मैं पहले यह देखूँगा कि उम्मीदवारों में से श्रेष्ठ उम्मीदवार कौन है और उसके बाद यह जानने की कोशिश करूँगा कि जिन साधनों के द्वारा देशकी उन्नति शीघ्र से शीघ्र की जा सकती है वे साधन उसे प्रिय हैं या नहीं। भारत के मतदाता को तटस्थ, प्रामाणिक और बुद्धिमान होना आवश्यक है। यदि ऐसा कोई उपयुक्त उम्मीदवार नहीं हो तो फिर ऐसी अवस्था में किसी को भी अपना वोट न देकर मतदाता चुनाव को पूरी तरह से प्रभावित कर सकते हैं। इतना ही नहीं अगर एक बार मतदाता अपनी पसंद का प्रत्याशी न पाकर वोट नहीं देते तो दूसरे अवसर पर उचित कदम उठाकर योग्य प्रत्याशी का ढूँढ़कर खड़ा भी करेंगे और इस प्रकार अपने ग्राम या नगर का मस्तक ऊँचा करेंगे। सभी ज्ञानवान् और विचारशील मतदाता देखेंगे कि उनके सामने भी कभी न कभी ऐसे अवसर अवश्य आयेंगे कि जब उन्हें अपना वोट देने से इनकार करना पड़े। उपयुक्त प्रत्याशी न दीखने पर मतदाता निर्भयतापूर्वक अपना मत देने से इन्कार कर दें और वोट देना ही हो तो अमुक प्रत्याशी किस पक्ष का है इसका ख्याल किये बिना सबसे अच्छे व्यक्ति को ही वोट दें।

नवजीवन, १६-५-१९२०

—गांधीजी

मुद्रक शकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

वर्ष : २२

अंक : ८

मार्च, १९७४

एक राष्ट्र के लिए एक लिपि आवश्यक

★

पूर्वी एशिया की एक लिपि : देवनागरी

★

गांधी-मार्ग ही अब एकमात्र विकल्प है

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री बंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष : २२
अंक : ८
मूल्य : ७० पैसे प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण ३८५
एक राष्ट्र के लिए एक लिपि ३८८ गांधीजी
पूर्वी एशिया की एक लिपि : देवनागरी ३९० विनोबा
गांधी-मार्ग ही अब एक मात्र विकल्प है ३९५ वी. वी. गिरि
राष्ट्रीय एकता में देवनागरी का योगदान ३९८ प्रो. शेरसिंह
देवनागरी लिपि संगोष्ठी, पवनार, विवरण ४०५
संगोष्ठी का निवेदन ४१०
शिक्षक अपना कर्तव्य समझें ४१२ प्रो. शीतल प्रसाद
बुनियादी शिक्षा के प्रयोग :
श्रमशाला (अर्न एण्ड लर्न सेन्टर)
खादी ग्राम, बिहार ४१५ विद्या बहन
राज्यों में शिक्षा :
Tamilnadu State Education Conference 421 K. Muniyandi
पुस्तक समीक्षा :
दि अन्डर अचीविंग स्कूल्स (जॉनहाल्ट) ... कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

मार्च, '७४

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क आठ रुपये है और एक अंक का मूल्य ७० पैसे है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखककी होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

शिक्षकों, अभिभावकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ८

देवनागरी लिपि संगोष्ठी

गत २२ और २३ जनवरी को पवनार में ऋषि विनोबा जी के सानिध्य में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने एक अखिल भारतीय देवनागरी लिपि संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी का विवरण इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है। इस संगोष्ठी का इस दृष्टि से भी महत्व है कि इसमें भारत से बाहर नेपाल जैसे देशों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। भारतीय प्रतिनिधियों में मुख्यतः श्री काका साहेब कालेलकर, रा र दिवाकर, डा जैनेन्द्रकुमार, केन्द्रीय संचार मंत्री श्री प्रो शेरसिंह, कर्नाटक के शिक्षामंत्री श्री मल्लिकार्जुनस्वामी, तथा नागपुर टाइम्स के सम्पादक श्री अनन्त गोपाल शेवड़े जी थे। विनोबा जी ने संगोष्ठी को काफी समय दिया और उनके तीन महत्वपूर्ण भाषण हुये। इस संगोष्ठी का उद्देश्य विनोबा जी के इस सुझाव पर विचार करना था कि भारतीय भाषाओं के लिये देश की एकता की दृष्टि से उनकी अपनी लिपियों के साथ ही देवनागरी को भी अपनाया जाय ताकि देश के एक भाग में रहने वाले लोग दूसरे भाग के साहित्य और विचारों से सीधे ही परिचय प्राप्त कर सकें। किसी भी राष्ट्र की एकता में निस्सन्देह भावों की एकता और विचारों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण अत्यन्त ही आवश्यक है। गांधी जी जैसे व्यक्ति तो यहाँ तक मानते थे कि न केवल भाषा और लिपि में ही अपितु वेशभूषा आदि में भी हमारी राष्ट्रीयता का दर्शन होना चाहिये।

हम अपनी अलग अलग भाषाओं की अलग अलग लिपियों के साथ देवनागरी को भी व्यवहार में लायें तो इससे एक सामान्य भारतीय भी अपनी भाषा के अलावा कम से कम चार पाँच और भाषायें आसानी से सीख सकता है। खासकर दक्षिण की भाषायें, जिनका साहित्य भी हजारों साल पुराना है किन्तु जो आज तो लिपि की कठिनाई के कारण न केवल भारत के अन्य भागों के लिये ही अगम्य हो गयी हैं अपितु वे स्वयं भी एक दूसरे से नितान्त अपरिचित हैं, बहुत ही आसान होंगी। देश के भावात्मक ऐक्य के लिये यह आवश्यक है कि उत्तर भारत दक्षिण से और दक्षिण भारत उत्तर से तथा इसी प्रकार पूर्वी भारत पश्चिम से और पश्चिमी भारत पूर्वी भारत से निकट से परिचित हो। देवनागरी चूंकि संसार की सबसे वैज्ञानिक लिपि है इसलिये यदि हम भारत की सभी भाषाओं के लिये इसको मान्य कर लें तो यह सम्भव है कि फिर एशिया के अन्य भागों में भी लोग इसको मान्य करें क्योंकि अनेक देश, जैसे चीन जापान आदि भी, अपनी चित्रमय लिपि से परेशान हैं और एक नयी लिपि की खोज में हैं। नेपाल के प्रतिनिधि, भारत में नेपाल दूतावास के सांस्कृतिक सहचारी प्रो. मानधर ने सही ही कहा है कि असल में नागरी लिपि तो सारे एशिया में आसानी से फल सकती है क्योंकि एशिया की सारी भाषायें या तो ब्राह्मी से निकली हैं, नागरी उसकी ही संतान है या फिर वे सभी उसी परिवार की हैं जिसकी नागरी है। इसलिये नागरी में और एशिया की अन्य लिपियों में अनेक तरह से काफी समानतायें हैं। यह हो सका तो निस्संदेह यह भारत की एकता की दिशा में एक अत्यन्त ही बुनियादी कदम होगा। हमें आशा है कि देश के विद्वान् लोग श्रद्धेय विनोबा के इस प्रस्ताव पर विचार करेंगे और इसे स्वीकार करेंगे।

सरकारों तथा समाचार पत्रों की भी इसमें महत्व की भूमिका है और जैसा कि संगोष्ठी के निवेदन में कहा गया है कि वे संगोष्ठी की सिफारिशों पर अमल करें तो इससे बहुत बड़ा काम हो सकेगा। आशा है सरकारें और समाचार पत्र इस ओर ध्यान देंगे।

यहाँ एक बात स्पष्टता से समझ ली जानी चाहिये कि देवनागरी लिपि के प्रश्न को हिन्दी भाषा के साथ नहीं जोड़ना चाहिये। ये दो बातें नितान्त अलग और भिन्न हैं। नागरी लिपि केवल हिन्दी की ही नहीं अपितु नेपाली, मराठी थोड़े से भेद के साथ गुजराती आदि भाषाओं की भी लिपि है। इसलिये यह न माना जाय कि नागरी लिपि के प्रचार प्रसार का उद्देश्य हिन्दी का भी प्रचार प्रसार है। यह बात पूज्य विनोबा जी ने भी कई बार स्पष्ट की है कि वे नागरी लिपि को 'ही' नहीं, को 'भी' मान्य करने का सुझाव दे रहे हैं और वे भी इसे हिन्दी भाषा से अलग तथा व्यापक प्रश्न मानते हैं। आशा है नागरी लिपि के सवाल पर भाषागत संकीर्णताओं से ऊपर रहकर ही विचार किया जायगा।

स्त्री-शक्ति सम्मेलन :

अभी ८, ९ और १० मार्च को पवनार में अखिल भारतीय स्त्री-शक्ति सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ। सम्मेलन को पूज्य विनोबा जी और प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी सम्बोधित किया। इसमें देश भर से लगभग ५१३ महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो इस बात का प्रतीक है कि देश की स्त्री शक्ति अब जागृत हो रही है और आशा करनी चाहिये कि फिर से स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों की भांति भारतीय महिलायें आगे आकर देश के नवनिर्माण में अपनी उचित भूमिका निभायेंगी। पूज्य विनोबा जी ने अपने प्रवचन में भारत की मातृशक्ति को आवाहन किया है कि वह अब देश को वर्तमान जड़ता और मतिभ्रम से मुक्त करने के लिये आगे आयें। श्रीमती गांधी ने भी यह आशा प्रकट की है कि बापू के समय में जैसे भारतीय महिलाओं ने देश की स्वतन्त्रता के लिए आगे बढ़कर योगदान किया वैसे ही वे अब पूज्य विनोबा जी के आवाहन पर देश के निर्माण में आगे आवेगी।

यह अपने ढंग का पहला सम्मेलन था और पहली ही बार ५०० प्रतिनिधियोंका उपस्थित होना अपने आप में स्त्री शक्ति जागरण का प्रतीक है। आज देश में जो समस्यायें व्याप्त हैं उनमें से अधिकांश तो ऐसी हैं जो यदि महिलायें अपने अपने क्षेत्र में जरा सक्रिय होकर कुछ करें तो वे बहुत हद तक हल की जा सकती हैं। जैसे कि शराब के कारण से आम जनता का जीवन अत्यन्त ही दूषित हो रहा है और महिलाओं को ही इसका अधिक दोष वहन करना पड़ता है। वैसे ही फिर अश्लील सिनेमा के कारण भी मातृशक्ति का ही अपमान होता है। खाद्यान्नों में मिलावट और महंगाई एक और समस्या है जिसका भी सीधा सम्बन्ध महिलाओं से आता है। इन क्षेत्रों में वे बहुत कुछ कर सकती हैं और जैसा कि पूज्य विनोबा जी ने साफ कहा कि आवश्यकता हो तो वे इसमें सत्याग्रह का भी सहारा लें। यह बात तो स्पष्ट है कि पुरुषों के बजाय यदि महिलायें किसी रचनात्मक आन्दोलन में आगे रहें तो वह अधिक सौम्य, प्रभावी और शांति प्रिय होता है तथा उसका दमन करना भी आसान नहीं होता। इसमें पुलिस की आज की बर्बरता भी बहुत कम हो सकती है।

सम्मेलन के बाद अखिल भारतीय स्तर पर ब्रह्मविद्या मंदिर पवनार की श्री सुशीला बहन के संयोजकत्व में एक राष्ट्रीय समिति का निर्माण भी किया गया है जो अब प्रदेश स्तर पर संगठन करने का प्रयास करेगी। आशा करनी चाहिये कि यह सम्मेलन स्वतन्त्रता के बाद भारतीय महिलाओं को पुनः राष्ट्रीय जागरण की दिशा में संगठित और सक्रिय कर सकेगा।

—-कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

एक राष्ट्र के लिए एक लिपि :

यदि हमें दुनिया के सामने अपने इस दावे को सिद्ध करके दिखाना है कि हम एक राष्ट्र है तो हमारी बहुत-सी चीजें समान होनी चाहिये। हमारे यहां विविध धर्म और सम्प्रदाय हैं किन्तु सबके भीतर एक ही संस्कृति की धारा प्रवाहित होता है। हमें जो बाधायें सहनी पड़ती हैं वे भी समान हैं। मैं आज कल यह दिखाने की कोशिश कर रहा हूं कि हमारी पोशाक के लिये एक-सा कपड़ा वाछनीय ही नही आवश्यक भी है। हमें एक सर्व सामान्य भाषा की भी जरूरत है। इसके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हमारी देशी भाषाओं की अलग अलग लिपियाँ हैं। अगर हम सर्वमान्य लिपि अपना सके तो हमारी एक सामान्य भाषा होने का जो ध्येय एक सपना-सा बना हुआ है उसे साकार करने के मार्ग की एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जाये।

ज्ञानार्जन की बाधा :

लिपियों की अनेकता कई बातों में बाधक है। यह ज्ञानार्जन के मार्ग में एक बहुत बड़ी दीवार है। सभी आर्य भाषाओं में इतनी समानता है कि अगर अलग अलग लिपियों पर अधिकार पाने पर सारा समय खर्च न करना पड़े तो हम आसानी से कई भाषायें सीख लें। उदाहरण के लिये अगर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अद्वितीय साहित्य देवनागरी लिपि में छाप दिया जायें तो जिन लोगों को संस्कृत का थोड़ा-सा ज्ञान है, उनमें से अधिकांश को उस साहित्य को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। लेकिन बंगला लिपि तो मानो चेतावनी देती जान पड़ती है कि 'मुझ से दूर रहो'। दूसरी ओर, अगर बंगाली लोग देवनागरी लिपि जान लें तो तुलसी साहित्य के अद्भुत सौष्ठव तथा उसकी आध्यात्मिकता का और अन्य बहुत से साहित्यकारों की कृतियों का रसास्वादन वे बड़ी आसानी से कर सकते हैं।

प्रांत-भक्ति भारत-भक्ति की धारा को पुष्ट करे :

समस्त भारत के लिये एक लिपि हो, यह एक ऐसा आदर्श है जिसे चरितार्थ करना बहुत दूर की बात है, लेकिन, अगर हम सिर्फ अपनी प्रान्तीय भावना का त्याग कर दें, तो जो लोग संस्कृत से निकली भारतीय भाषायें बोलते हैं और जिनमें इस तरह से दक्षिण भारतवासी लोग भी सामिल हैं, उन सबके लिये सर्वमान्य लिपि की बात को व्यावहारिक आदर्श मानना चाहिये। उदाहरण के लिये, किसी गुजराती के लिये गुजराती लिपि से चिपटे रहने में कोई सार नहीं है। जिस प्रकार भारत के प्रति भक्ति उसी हद तक अच्छी है जिस हद तक वह सारी दुनिया के प्रति अनुराग पैदा करने में सहायक है, उसी प्रकार प्रान्तभक्ति भी उसी सीमा तक श्रेयस्कर है जिस सीमा तक वह भारत भक्ति की वृहत्तर धारा को पुष्ट करने में सहायक है। लेकिन जो प्रान्त भक्ति ऐसा आग्रह करके चले कि भारत कुछ नहीं है गुजरात ही

सब कुछ है वह भक्ति नहीं दुष्टता है। उदाहरण के लिये मैं गुजरात का ही उल्लेख इसलिये कर रहा हूँ कि एक तो उसकी लिपि देवनागरी से बहुत दूर नहीं है और दूसरे मैं स्वयं एक गुजराती हूँ। मैं समझता हूँ कि यह बात सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है कि देवनागरी ही सर्वसमान्य लिपि होनी चाहिये। इसका सबसे बडा कारण यह है कि इस लिपि को भारत के सबसे अधिक लोग जानते हैं।

अगर हम चाहते हैं कि शिक्षित सुसंस्कृत भारतीयों का कोई एक सर्वमान्य भाषा हो, तो विभिन्न देशी भाषाओं और लिपियों के परस्पर एक दूसरे से अलग होते जाने की और उनकी संख्या में वृद्धि की प्रक्रिया को हमें रोकना होगा। हमें एक सर्वमान्य भाषा को प्रोत्साहन देना होगा।[1]

द्रविड भाषाओं के लिए सुगम साधन :

जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था, तब भी मैं मानता था कि संस्कृत से निकली हुई सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी होनी चाहिये, और मुझे विश्वास है कि देव-नागरी के द्वारा द्राविड भाषायें भी आसानी से सीखी जा सकती हैं। मैंने तमिल, तेलुगु को और कुछ दिन तक कन्नड और मलयालम् को भी उनकी अपनी लिपियों के द्वारा सीखने का प्रयत्न किया है। मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह साफ दिखाई पड़ रहा था कि अगर इन चारों भाषाओं की लिपि देवनागरी ही होती, तो मैं इन्हें थोड़े ही समय में सीख सकता था। लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार चार लिपियाँ सीखनी होंगी, तो मैं मारे डर के घबरा उठा। मेरी ही तरह जिसे चारों भाषायें सीखने का उत्साह है, उसके लिये यह कितना बडा बोझ है। और क्या यह समझाने के लिये भी किसी दलील की जरूरत है कि दक्षिण वालों के लिये अपनी मातृभाषा के सिवाय दूसरी तीन भाषायें सीखने के लिये देवनागरी लिपि अधिक से अधिक सुविधाजनक हो सकती है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रश्न के साथ लिपि का प्रश्न मिलाना न चाहिये। मैंने यहाँ उसका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिये किया है कि हिन्दुस्तान की सभी भाषायें सीखने वालों को लिपि के कारण कितनी कठिनाई होती है।[2]

नागरी लिपि उत्तम लिपि है :

यह कोई छिपी बात नहीं है कि विभिन्न लिपियों में से मैं नागरी लिपि को सबसे उत्तम मानता हूँ और जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था तब ही मैंने गुजराती चिठ्ठियाँ गुजराती लिपि के बजाय नागरी लिपि में लिखना आरम्भ कर दिया था। मैं बाद को समय की कमी के कारण इस सुधार को आगे जारी नहीं रख सका हूँ। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि नागरी लिपि में भी बहुत से सुधार करने की आवश्यकता है जैसे कि अन्य सभी लिपियों में भी है। किन्तु यह भिन्न विषय है।[3]

---

१. यंग इन्डिया, २७-८-१९२५। २ हरिजन बंधु, ५-७-१९३६।
३. हरिजन सेवक, २५ जनवरी, १९४८।

विनोबा

पूर्वी एशिया की लिपि–देवनागरी :

[पू विनोबाजी ने सगोष्ठी में कुल तीन प्रवचन दिये। उनका सारांश नीचे दिया जा रहा है।]

हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत ज्यादा काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हिंदुस्तान की समस्त भाषाएँ देवनागरी में लिखी जायें। नागरी लिपि सब भाषाओं में चले, इसका मतलब दूसरी लिपियो का निषेध नही है दोनो लिपियाँ चलेगी।

भारत को राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक व्यवहार के लिए राष्ट्रभाषा के तौर पर हिन्दी को भारतीयों ने मान्यता दी है। दक्षिणवाले भी हिन्दी के विरोधी नही हैं। वे जरा मोहलत मागते हैं।

जिन कारणो से 'सब की बोली' के तौर पर हिन्दी को मान्यता दी गई है, उन्ही कारणो से नागरी को 'सब की लिपि' के तौर पर मान्यता मिलनी चाहिए। हिन्दुस्तान की अन्यान्य भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जायें, ऐसा निणय होने पर दूसरी भाषाओं के लिए आज जो लिपियाँ चल रही हैं, उनका निषेध नही होगा। वे लिपियाँ भी चलेगी और नागरी भी चलेगी।

मुझे दस-ग्यारह साल पहले यह सूझा और इस पर बोलना लिखना मैंने शुरु किया। लेकिन इस वक्त मैं जिस बारे में तीव्र हूँ, वह है, देवनागरी लिपि का प्रचार।

सस्कृत की देन :

यूरोप में आज 'कामन मार्केट' हो रहा है, योरोपियन 'इकनामिक कम्युनिटी' (इ इ सी) बन रही है। कामन मार्केट उनके लिए आसान बन गया। क्योकि वहाँ लिपि एक थी। मैंने इंग्लिश फ्रेंच के अलावा जर्मन, लैटिन, एस्पेरेंटो बहुत थोड़े समय में सीखी। यह सब आसानी से क्यों हो सका ? इसलिए कि लिपि एक थी। भारत में वह चीज है, जो योरोप में नही है। भारत १५–१६ भाषाओं का एक देश है। योरोप में हरएक भाषा का अलग-अलग देश है। समाजशास्त्र में योरोप हम से पीछे है, विज्ञान में हम से आगे है। लेकिन वे धीरे धीरे एक हो रहे हैं। भारत में हमने सोलह भाषाओं का एक देश बनाया जो बडी बात है। पहले सस्कृत भाषा थी, जो जोडती थी। शकराचार्य केरल से लेकर काश्मीर तक घूमें तो सस्कृत भाषा का आधार लेकर घूमें। रामानुजाचार्य भी सस्कृत का आधार लेकर ही सारे भारत में घूमें। उन दिनों सस्कृत ही चलती थी, इसलिए एक ही लिपि चलती थी 'ब्राह्मी लिपि'। बाद में नागरी लिपि आयी। उसके बाद जब अलग अलग भाषाएँ बनीं तो अलग-अलग लिपियाँ आयीं। आज भिन्न भिन्न प्रदेश के लोग लिपि भेद के कारण अलग हुए हैं। दक्षिण की चार भाषाओं की चार लिपियाँ हैं।

अगर एक लिपि हो, तो चारो प्रान्तोवाले एक-दूसरे की भाषा १५ दिन में सीख सकते हैं। उनकी भाषाओं में बहुत से शब्द समान हैं और संस्कृत के शब्द तो समान हैं ही, लेकिन लिपियाँ चार हैं। इसलिए एक-दूसरे की भाषाएँ सीखना कठिन है।

इसी प्रकार से उत्तर के लोग भी दक्षिण की भाषायें सरलता से सीख सकते हैं यदि वे नागरी लिपि में भी लिखी जायें। आज तो हालत यह है कि 'कुरल' का पता बहुत कम मलयाली बालकों को होगा और केरल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'इडतिच्छन' रामायण बहुत कम तमिल बालकों को मालूम है। उत्तर में तो शायद ही कोई बालक तिरुकुरल के बारे में जानता होगा। तो इस तरह से देश की एकता कैसे सधेगी। नागरी लिपि के माध्यम से मैं चाहता हूँ कि सारे भारत के लोग तमिल के प्राचीन साहित्य से परिचित हों जैसे कि संस्कृत के कारण से आज दक्षिण के लोग भी महाभारत और रामायण से खूब परिचित हैं। संस्कृत ने देश को जोड़ने का काम किया था वह अब नागरी लिपि को करना होगा।

रोमन लिपि जार्ज बर्नार्ड शा की नजर में :

इंग्लिश भाषा के लिए रोमन लिपि अत्यन्त खराब है उस लिपि में बिल्कुल अराजकता चलता है। उसमें But बट होता है पर Put पुट होता है। ऐसा क्यों है इसका रोमन लिपि युक्त भाषाओं के पास कोई जवाब नहीं है। रोमन लिपि से तंग आकर बर्नार्ड शा ने अपना विल में पैसा रखा था नई लिपि की खोज करने के लिए। वह ऐसी लिपि चाहता था जिसके प्रत्येक अक्षर के लिए एक उच्चारण हो।

अब उमाशंकर जोशी ने मुझे पत्र लिखा है कि भारत की भाषाओं के लिये मैं रोमन लिपि मान्य कर लूँ। कुछ अन्य लोगों के भी यह विचार है। अब मैं इन सब सज्जनों की इस राय का आदर करता हूँ क्योंकि भारतीय होते हुये भी उनमें भारताभिमान नहीं है। वे विश्व को दृष्टि से सोचते हैं। बाबा को रोमन लिपि के स्वीकार में कोई भी आपत्ति नहीं है बशर्ते कि ब्रिटिश और फ्रांच सहित यूरोप वाले सभी लोग 'एक उच्चारण के लिये एक अक्षर और एक अक्षर के लिये एक उच्चारण' के सिद्धान्त को मान्य कर ले। पर वे यह नहीं चाहते इसलिये विश्व रोमन लिपि का विकास नहीं हो रहा है। बाबा तो विश्व रोमन के पक्ष में हैं। अब शा के सुझाव पर उसमें किसी सज्जन ने जो सुधार किया है वह लन्दन टाइम्स में छपा है और उसकी प्रति मुझे भी भेजी गई है। वह यहाँ रखी है। वह आप देखें तो पता लगेगा कि वह तो और भी बेकार है। तो अब शा जैसे महान साहित्यकार की भी रोमन लिपि में सुधार की बात करना पड़ी तो वह हमारे किस काम आ सकती है।

पहले स्वीकार फिर सुधार

इसके मानी यह नहीं कि नागरी परिपूर्ण लिपि है या उसमें सुधार की गुंजाइश नहीं है। नागरी लिपि में सुधार की जरूरत है, एसा मानने वालों में मैं भी शुमार हूँ।

परन्तु पहले नागरी सुधारी जाय, और बाद में वह भारतीय भाषाओं में लागू की जाय, इस विचार में मैं खतरा देखता हूँ। मैं कहता हूँ पहले स्वीकार तब सुधार। यह नहीं होगा तो फिर सुधार के नाम पर स्वीकार भी टलता जायेगा। लिपि-सुधार का मेरा सुझाव है, आग्रह नहीं। लिपि प्रचार का मेरा आग्रह है। आग्रह के माने यह न समझा जाय कि मैं उसे किसी पर लादना चाहता हूँ। लादने वाली बात अहिंसा में आती ही नहीं।

एशिया की एकता की साधक :

मेरा तो मानना है कि अगर भारत की सभी प्रान्तीय भाषाएँ देवनागरी लिपि को भी स्वीकार कर ले, तो आगे चलकर चीन, जापान जैसे देश भी उसे स्वीकार कर लेंगे। भारतीय और जापानी भाषा की बनावट एक रूपता की दृष्टि से लगभग समान है। उसमें 'प्रीपोजीशन' नहीं है। पोस्ट पोजीशन है। "इन द रूम" ऐसा नहीं है "कोठरी में' ऐसा चलता है। वाक्य में पहले कर्ता, फिर कर्म और फिर क्रिया— ऐसा चलता है। मतलब शब्दश: जापानी का तर्जुमा करें, तो हिन्दी-मराठी में हो सकता है। जापानियों को 'ल' बोलना कठिन होता है। हमें 'र' बोलना कठिन होता है। बचपन में राम राम बोलने के लिए कहते, तो मैं 'लाम-लाम' कहता। फिर माँ सिखाती राम बोलना। इंगलिश के कारण जापानी शब्द गलत ढग से हमारे पास आते हैं। टोकियो का उच्चारण है, तोक्यो। जापनी कोश में पहला शब्द है— 'आई'। मराठी में भी वह शब्द है। उसका मतलब है 'माता' और जापानी में उसका अर्थ है 'प्रेम'। तो बहुत समानता है।

जापानी भाषा की लिपि चित्रमय लिपि है। इसलिए उसके शब्दचित्रों की संख्या लगभग २ हजार है, जिसे सीखना सरल काम नहीं है। इसलिए वे लोग नई लिपि की खोज कर रहे हैं। यही बात चीनी भाषा के सम्बन्ध में है। यदि चीन और जापान देवनागरी को अपना ले, तो इसमें उनका भी भला है।

मैं मानता हूँ कि समस्त भारत में देवनागरी लिपि अपना ली जाय, तो देवनागरी लिपि पूर्वी एशिया (जावा, सुमात्रा आदि) में अपनायी जा सकती है। यह सब का सब नागरी का क्षेत्र है। वह आगे की बात है लेकिन कम से कम भारत को तो हम पहले नागरी के क्षेत्र में लायें।

आरंभ कहाँ से करें :

अब पूछा गया है कि इस प्रकार की एकता कैसे सधेगी। मैं कहता हूँ कि पहले कदम के तौर पर पहले उसके लिये १५ प्रदेशों में एक साथ १५ कदम उठने चाहिये। मेरे सुझाव पर हमारी पत्रिकायें कई देशों में नागरी में छपने लगी हैं। यह काम आगे बढ़ना चाहिये। इस प्रकार से नागरी और उसके साथ काम के लिये पैसा इन दो कड़ियों के माध्यम से काम आगे बढाओ।

'गीता-प्रवचन' के जो अनुवाद भिन्न भिन्न भाषाओं में हुए, उनको मेरे सुझाव पर 'सर्व-सेवा-संघ' ने देवनागरी में प्रकाशित किया है। इनके सहारे घर बैठे हम एक दूसरे की भाषाओं का अध्ययन कर सकते हैं।

मेरी सिफारिश है कि जो गैर पंजाबी और गैर तेलुगु लोग हैं, वे नागरी लिपि में छपे हुए तेलुगु और पंजाबी, 'गीता प्रवचन' जरूर खरीदें। समझ न सकें, तो भी पढ़ें। दो चार दस मिनट अपनी आँख उन अक्षरों पर से घुमावें। इससे मालूम होगा कि हमारी भाषाओं में कितना साम्य है। इससे परस्पर प्रेम भी पैदा होगा। जरासी मेहनत करेंगे तो आप देखेंगे कि उत्तर हिन्दुस्तान की भाषाएँ दो-चार-पाँच दिन में ही सीख सकते हैं। मैं सिफारिश करता हूँ कि कुछ किताबें अनेक भाषाओं में, परन्तु नागरी लिपि में भी निकालें। इस प्रकार का उपक्रम 'सर्व-सेवा-संघ' ने किया है।

भारत में भिन्न भिन्न लिपियाँ चलती हैं। उन सबकी अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। मैं सबसे कहता हूँ कि आपकी भाषा नागरी में 'भी' लिखी जाय तो सारे भारत के शिक्षितों को जोड़ने में बड़ी मदद मिलेगी। नागरी लिपि पूर्ण है, ऐसा किसी का दावा नहीं है और दुनिया की कोई लिपि पूर्ण है भी नहीं। लेकिन जो लिपियाँ हमारे यहाँ मौजूद हैं उन सब में थोड़े-से फर्क से जो पूर्ण हो सकती है, वह नागरी लिपि है। दो-तीन अक्षरों की जरूरत है। भारत की सब भाषाएँ नागरी लिपि में व्यक्त करने के लिए नुक्ते और जरा स्वर-भेद की जरूरत है।

एशिया की एकता के लिए त्रिपिटक नागरी लिपि में भी छपे :

यदि दो-तीन नये अक्षरों को दाखिल कर दिया जाय तो नागरी लिपि हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में तो चल ही सकती है, जापानी और चीनी भाषाओं के लिए भी चल सकती है। ऐसी है इसकी शक्ति। सारे एशिया को प्रेम से जोड़ना चाहें, तो मैं बौद्धों से कहूँगा कि वे 'त्रिपिटक' को नागरी लिपि में लायें। पाली भी भारत की अपनी भाषा है। पाली और संस्कृत में क्या फर्क है ?

पड़ोसी देश नेपाल है, जहाँ का सारा कारोबार नागरी में चलता है। संस्कृत, मराठी और हिन्दी तो हैं ही, गुजराती भी नागरी है। बंगला आदि दूसरी लिपियाँ भी हैं, जो नागरी से बहुत नजदीक हैं। अगर हम लोगों में नागरी के प्रति प्रेम है, तो नागरी में दूसरी लिपियों का साहित्य लाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह साहित्यकारों का काम है कि वे देवनागरी के माध्यम से भाषाओं तथा संस्कृतियों में एकता कायम करने का प्रयास करें।

देवनागरी के पंच-विध ध्येय :

इस प्रकार से देवनागरी लिपि का सुझाव बाबा ने पाँच उद्देश्यों से किया है.—

१— एक तो मैं चाहता हूँ कि दक्षिण के चारों प्रदेश एक दूसरे के निकट आवें और दक्षिण की भाषायें वहाँ पर भी सबके लिये सब सुलभ हों। देवनागरी से यह हो सकेगा।

२— दूसरे मैं चाहता हूँ कि उत्तर और दक्षिण भारत भी एक दूसरे के अधिक निकट आवें और वे एक दूसरे को समझें। यदि सभी दक्षिण की भाषायें देवनागरी में भी लिखी जाने लग जायें तो वे उत्तर वालों के लिये सुलभ हो जायेंगी और सारा दक्षिण का साहित्य उत्तर में फैलेगा।

३— तीसरे मैं चाहता हूँ कि इस प्रकार से सारा भारत एक हो। सुदूर पूर्व से लेकर पश्चिम तक और सुदूर उत्तर काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक लोग एक दूसरे से बिना किसी भी बाधा के आपस में बातचीत कर सकें, एक दूसरे को समझ सकें एक दूसरे का लिखा हुआ पढ़ सकें तो भारत की एकता मजबूत होगी। इसलिये देवनागरी लिपि से यह हो सकेगा।

४— चौथे मैं चाहता हूँ कि सारे एशिया और भारत में एकता हो तथा एशिया में भी एकता कायम हो। यदि एशिया के देश देवनागरी लिपि को मान्य करेंगे, जो कि एशिया की सभी लिपियों में अत्यधिक वैज्ञानिक और सरल है, तो एशिया को यह एकता सिद्ध हो सकेगी और भारत तथा एशिया भी एक होंगे।

५— पाँचवें मैं चाहता हूँ कि भारत की विश्व के साथ एकता सधे। यह भी तभी होगा जब कि हम अपने देश में भी एकता कायम कर लें, एशिया में एकता कायम कर लें और विश्व के उत्तम से उत्तम साहित्य को सब के लिये सुलभ करें। रोमन वाले यदि मैंने जो बात पहले कही है कि एक उच्चारण के लिए एक अक्षर और एक अक्षर के लिये एक उच्चारण का सिद्धान्त मान्य करें तो फिर रोमन के साथ, देवनागरी के साथ हिन्दी बैठ सकती है और इन दो विश्व भाषाओं के माध्यम से विश्व की एकता सध सकती है।

'ही' नहीं 'भी'

बाबा के ये पाँच उद्देश्य हैं जिनसे वह देवनागरी लिपि को सर्वमान्य करने का सुझाव रख रहा है। मैं एक बात फिर से साफ करना चाहता हूँ कि मैं 'ही' वाला नहीं 'भी' वाला हूँ। यह बात मैंने बार बार कही है और इसे याद रखा जाय। यदि यह बात ध्यान में रहेगी तो फिर कोई भ्रम नहीं हो सकता है। मैंने यह भी कहा है कि देवनागरी को हिन्दी भाषा के साथ एक न माना जाय। देवनागरी लिपि तो हिन्दी के अलावा और भी कई भाषाओं, जैसे मराठी, नेपाली, संस्कृत में तो है ही साथ ही गुजराती और बंगला भी में भी वह बहुत हद, में प्रचलित है। तो मैं देवनागरी के नाम पर हिन्दी का प्रचार नहीं कर रहा हूँ यह बात भी हमेशा याद रखी जाय।

वी. वी. गिरि

गांधी मार्ग ही अब एकमात्र विकल्प है :

(गत २ मार्च ७४ को वर्धा शिक्षा मंडल की हीरक जयती का उद्घाटन करने के लिये राष्ट्रपति श्री वी वी गिरी जी वर्धा पधारे। वे पवनार आश्रम में पूज्य विनोबा जी से भी मिले और सेवाग्राम आश्रम में भी आये। इन अवसरों पर राष्ट्रपति ने शिक्षा के बारे में जो विचार प्रकट किये वे नीचे दिये जा रहे हैं। आशा है राष्ट्रपति के इन विचारो पर सरकार और समाज गम्भीरता से विचार करेगी।)

शिक्षा मे आमूल परिवर्तन अपरिहार्य :

आज भारत की परिस्थिति इस तरह की है कि अब हमें अपने शिक्षाक्रम को तेजी से आमूल बदलना ही होगा। शिक्षा को मुख्यत रोजगार के साथ जोड देना होगा। इसलिये हमें विचारो के विवाद में न पडकर उन्हे क्रिया का रूप देने के लिये काम करना चाहिये। आज छात्रो को शक्तियो को गलत दिशा मिलती है और समस्याओ से उनका कोई परिचय नही है। यदि हम परिस्थिति में तेजी से सुधार नही करते तो फिर भविष्य निश्चय ही सकटमय है। आज तो छात्र और शिक्षण सस्थायें राजनीति के भँवर में फस गई हैं और राजनीतिज्ञो ने भी उन्हे अपना एक हथियार सा मान लिया है किन्तु छात्रो और शिक्षको को राजनीति से अलग रहना चाहिये और राजनीतिज्ञों को भी शिक्षण-सस्थाओ और छात्रो को अपनी सीमा से बाहर मानना चाहिये। छात्र स्वय न केवल अपनी पढाई की व्यवस्था की ही जिम्मेदारी लें अपितु वे समाज की भी जिम्मेदारी लेने के लिये अपने को तैयार करें।

सप्त पापों से बचें.

मेरा पक्का विश्वास है कि गांधी जी ही वह व्यक्ति हैं जिनकी राह चलकर हम आज देश की समस्याओं का हल निकाल सकते हैं। उन्होंने ठेठ सन् १९२१ में ही हमें सिद्धान्तविहीन राजनीति, काम के बिना सम्पत्ति, विवेकहीन आनन्द, चरित्रहीन ज्ञान, नैतिकताविहीन व्यापार, मानवता विहीन विज्ञान और बलिदान के बिना पूजा, इन सात पापों से बचने के प्रति आगाह किया था। ये सात पाप आज भी समाज जीवन में व्याप्त हैं और जब तक हम इन पापों को समाज तथा जीवन से समाप्त नहीं कर देते तब तक राष्ट्र का उद्धार नहीं किया जा सकता है। शिक्षा मंडल जैसी संस्थाओं ने बहुत सेवायें की हैं और आज भी कर रही हैं। इन संस्थाओं को इन बातों पर ध्यान देना चाहिये कि छात्र और अध्यापकों में परस्पर समझदारी और साझेदारी की भावना तो पनपे ही साथ ही समाज-जीवन को भी शुद्ध करने की प्रेरणा व कर्तृत्वशक्ति पैदा हो। आज देश में भारी भ्रष्टाचार व्याप्त है, लोगों को न तो खाने को पर्याप्त अनाज ही मिल रहा है न पर्याप्त वस्त्र ही उन्हें प्राप्त हैं और न रहने को सामान्य मकान ही उन्हें प्राप्त हैं। यह सब कमियाँ केवल 'गरीबी हटाओ' का नारा लगाने से दूर नहीं होंगी। इसके लिये तो हमें मिलकर भारी परिश्रम करना होगा। हमें खेतों के विकास और वितरण की सही व्यवस्था की ओर तेजी से ध्यान देना होगा।

शिक्षा उत्पादक हो :

मेरा यह पक्का विश्वास है कि छात्रों को मैट्रिक या एस एस एल सी परीक्षा के लिये एक साल के लिये गाँवों में भेज दिया जाना चाहिये जहाँ जाकर वे खेतों पर काम करें और समाज की समस्याओं का प्रत्यक्ष अनुभव करें। यह हुआ तो मैं कह सकता हूं कि आगे विश्व-विद्यालय में जाने के इच्छुक ४० प्रतिशत छात्र तो वहीं काम पर लग जायेंगे और जो बाकी ६० प्रतिशत वहाँ जायेंगे भी उनमें से भी २० ३० प्रतिशत फिर गाँव में काम पर लौट आयेंगे, क्योंकि उन्हें पता चल जायेगा कि वहाँ रहकर वे कोई काम पाने के योग्य नहीं बन सकते हैं। तब जो कुछ थोड़े से लोग विश्व विद्यालयों में बचेंगे वे सही प्रतिभावान् होंगे और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में तब वे कुछ मौलिक काम कर सकेंगे। विश्व विद्यालयों में आज जो भीड़ है वह भी कम होगी। हम अब यह प्रयास कर रहे हैं कि हर राज्य में इस तरह के कुछ उत्पादन-केन्द्र कायम किये जायें जहाँ पर युवकों को चार पांच एकड़ जमीन देकर उन्हें उत्पादन के काम में लगाया जाय और वे फिर कुछ अन्य लघु धंधे भी स्वयं विकसित कर सकें। इससे हमें आशा है कि २० साल के भीतर बेरोजगारी की समस्या बहुत कुछ हल हो जायेगी। इससे शिक्षा भी जीवनपरक होगी और यह हो सका तो फिर यह निश्चित है कि पढ़े-लिखे लोग फिर गावों में बसने के लिये आगे आयेंगे।

गांधी-मार्ग ही एकमात्र विकल्प है :-

आज हमारे लिये राजनीति और चुनाव ही सब कुछ हो गये हैं। अनाज की कमी और गलत वितरण व्यवस्था से लोग बहुत परेशान हैं। विनोबा जी ने जो सुझाव दिया है कि लगान और वेतन का कुछ भाग अनाज में लिया-दिया जाय तो इससे अनाज जमा करने की समस्या भी बहुत दूर तक हल होगी मैं इससे पूर्णतः सहमत हूँ और मैं भारत सरकार को विनोबा जी की यह बात कहूँगा। विनोबा जी ही आज भारत में एक मात्र व्यक्ति हैं जो कि हमें राह दिखा सकते हैं। मेरा पक्का विश्वास है कि जब तक हम गांधी मार्ग की ओर नहीं लौटते तब तक भारत की समस्याओं का कोई हल सम्भव नहीं है। यह अत्यन्त ही दुर्भाग्य की बात है कि हम आज गांधी जी की बात को एकदम ही भूल गये हैं और यही कारण आज हमारी समस्याओं का भी है। किन्तु अब भी समय है कि जब हम अपने को सुधार सकते हैं। गांवों में ग्राम पंचायतों को भी हम अनाज वसूली की जिम्मेदारियाँ दे सकते हैं और वे सरकार की इस मामले में मदद करें। जमाखोरों ने स्थिति को और भी खराब कर रखा है। उन पर भी निगाह रखनी होगी और आवश्यक हो तो उन्हें सख्त सजायें देकर भी सुधारना होगा। यदि हमने अब भी लगन और ईमानदारी से काम नहीं किया तो समस्या और भी जटिल हो जायेगी और लोग भूख से मरने लगेंगे। पढ़े लिखे लोगों और शिक्षण संस्थाओं को इस बात पर विचार करना चाहिये और खासकर विश्व-विद्यालयों को तो इसमें आगे आकर जिम्मेदारियाँ उठानी चाहिये।

मुख्य मंत्रियों का प्रस्ताव—

ता १० अगस्त से १२ अगस्त १९६१ तक दिल्ली में होने वाले मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया —

भारत की सब भाषाओं के लिये एक लिपि का होना वांछनीय है। यह सब भाषाओं में मेल-जोल बढ़ाने के लिये एक सशक्त कड़ी बन सकेगी। यह देश की एकात्मकता को मजबूत करने में भी सहायक सिद्ध होगी। भारत के आज के भाषा-विषयक वातावरण में एक मात्र देवनागरी लिपि ही यह स्थान ग्रहण कर सकती है। इस लिपि को तत्काल मान्यता प्रदान करने में बाधाएं आ सकती हैं, पर भविष्य में इस बात की ओर ध्यान देना चाहिये और इसके लिये एक योजना बनानी चाहिये।

प्रो. शेरसिंह :*

राष्ट्रीय एकता में देवनागरी का योगदान : एक ऐतिहासिक विश्लेषण :

राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी के महत्व की ओर ऋषि-कल्प विनोबा जी का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

आज यूरोप में साझा बाजार और साझा सुरक्षा की योजनाएँ लागू की जा रही हैं। यूरोप यद्यपि कई देशों में विभक्त है किन्तु अब वह यूरोपीय एकता की दिशा में एक-एक कदम उठाता जा रहा है। इस दिशा में रोमन लिपि की भूमिका को विनोबा जी ने ठीक ही पहचाना है। रोमन लिपि के कारण आज अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, डच, पोलिस आदि में से किसी भी एक भाषा को जानकर दूसरी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है। लिपि से भाषा का ज्ञान होता है और उससे हृदय की एकता स्थापित होती है। इस दृष्टि से विनोबा जी ने कहा है कि यदि हम सारे देश के लिए देवनागरी को अपना ले तो हमारा देश बहुत मजबूत हो जाएगा। फिर तो, देवनागरी ऐसी रक्षा-कवच सिद्ध हो सकती है जैसी कोई सेना भी नहीं हो सकती।

मुख्यमंत्री सम्मेलन की संस्तुति :

अगस्त, १९६१ में देश की भावात्मक एकता पर विचार करने के लिए मुख्य मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ था उसने सिफारिश की थी कि समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि का होना वाछनीय ही नहीं, आवश्यक भी है क्योंकि ऐसी लिपि भारतीय भाषाओं के बीच एक सेतु का काम करेगी और उससे देश की भावात्मक एकता को बढावा मिलेगा। इस सिलसिले में मुख्य मंत्रियों के इस सम्मेलन की यह भी राय थी कि देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि हो सकती है।

परम्परा की देन :

हजारों वर्ष पुराने इस देश में भाषा और लिपि की कहानी भी अत्यन्त प्राचीन है। समय के धूमिल क्षितिज में हमें इसके ओर-छोर का कोई पता नहीं

* राज्य मंत्री (संचार) भारत सरकार

सगता। तथापि इतना अवश्य है कि हमारे उत्कर्ष काल में एक भाषा अर्थात् संस्कृत और एक लिपि अर्थात् ब्राह्मी ने देश भर में एक सूत्रता पिरोयी है। उस समय हमारे देश की सीमाएँ आज की सीमाओं से काफी विस्तृत थीं। उत्तर में चीन, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, तिब्बत,नेपाल और पूर्व में ब्रह्मा से लेकर इंडोनेशिया,सिंगापुर,मलेशिया, थाईलैण्ड, कंबोडिया और अनाम और दक्षिण में लंका तक भारतीय संस्कृति के उद्घोष गुंजित होते थे। इस देश में भारतीय संस्कृति का रंग कितना गहरा था वह इनके हिंदेशिया और हिंद-चीन नामों से ही प्रकट है। संस्कृत को देवावाक् (देववाणी) की संज्ञा दी गई है (संस्कृत नाम देवीवाक आचार्य दंडी)। इतने विस्तृत भू-प्रदेश में विचारों के आदान प्रदान और समस्त सांस्कृतिक कार्यों में इसका प्रयोग होता था। वास्तविकता तो यह है कि भारत ही नहीं इन सभी देशों की भाषाओं का पोषण इसी संस्कृत के अक्षय भंडार से हुआ है। संस्कृत भारत की बहुलांश भाषाओं की जननी है और शेष भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त उपयुक्त बृहत्तर भारत की भाषाओं की भी वह धाय रही है। संस्कृत के प्रायः ४०–५० हजार शब्द भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक प्रचलित हैं। इस समान एकता के कारण भारत में भाषा भेद होते हुए भी साहित्य भेद कभी नहीं हुआ है। समूचा भारतीय साहित्य सदा से एक था और आज भी मूलतः एक है।

ब्राह्मी भारत तथा एशिया की लिपियों का मूल है

भारतीय इतिहास में अशोक एक महान राजा हुआ है। वह शांति का अग्रदूत था। उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कर्णाटक तक पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक उसका राज्य विस्तृत था। अपने इस विशाल राज्य में ही नहीं उस समय ज्ञात सम्पूर्ण विश्व में सीरिया और मिस्र तक उसने शांति और मैत्री के युग का प्रारम्भ किया था। धर्म के प्रचार के लिए उसने पर्वत शिलाओं और प्रस्तर स्तम्भों पर लेख खुदवाए थे। ब्राह्मी लिपि में खुदे उसके ये लेख उत्तर में हिमालय की उपत्यका (कालसी) से लेकर दक्षिण में कर्नाटक (सिद्धपुर) तक और पश्चिम में गिरनार (सौराष्ट्र) से पूर्व में उडीसा (धौली और जौगड) तक मिलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज से २३०० वर्ष पूर्व समूचे भारत में एक ही लिपि का प्रचार था और उसका एक ही नाम था ब्राह्मी। वह सच्चे अर्थों में भारत की राष्ट्रीय लिपि थी जो पाटलिपुत्र के केन्द्रीय सचिवालय द्वारा स्वीकृत थी। इसी ब्राह्मी लिपि से हमारे देश की सभी वर्तमान लिपियाँ देवनागरी गुजराती, गुरुमुखी, बंगला, असमिया, उड़िया, तमिल, तेलुगु मलयालम्, कन्नड आदि आदि निकली हैं। इन सबका मूल एक ही है।

अशोक के बाद ब्राह्मी लिपि का प्रयोग ई पू दूसरी शताब्दी में 'शुग लिपि' के रूप में, ईस्वी पहली दूसरी शताब्दी 'कुशाण लिपि' और पाँचवीं शताब्दी में 'गुप्त लिपि' के रूप में प्रकाशित हुआ। गुप्त साम्राज्य बगाल स कश्मीर और नेपाल से दक्षिण भारत तक विस्तृत था। दक्षिण के वाकाटक और कदब राजाओं स इनके राजनैतिक और वैवाहिक सम्बन्ध थे। पवनार जहाँ आज हम एकत्र हैं वहाँ प्रसिद्ध वाकाटक राजा प्रवरसेन का बनाया हुआ प्रवरसेनपुर नगर था जिसे वाकाटक साम्राज्य की राजधानी होने का सौभाग्य प्राप्त था। इस प्रकार मौर्यों के बाद गुप्तो के काल तक सस्कृत और ब्राह्मी लिपि के माध्यम स भारत में भाषा और लिपि की एकता अक्षुण्ण रही। उत्तर भारत में गुप्त लिपि का 'कुटिल' अथवा 'सिद्ध मातृका लिपि' के रूप में विकास हुआ जिसने आगे जा कर 'नागरी लिपि' का रूप धारण किया। इस गुप्त लिपि के दो विकसित रूप थ— पूर्वी और पश्चिमी। इसके पूर्वी रूप से बगला लिपि का विकास हुआ। आगे चल कर उडिया और असमियाँ लिपियाँ भी इसी स निकली। पश्चिम में इसका विकास 'शारदा लिपि' में हुआ जो पजाब और कश्मीर में प्रचलित थी। गुरुमुखी, टाकरी आदि लिपियाँ इस पश्चिमी शाखा की ही उपज हैं।

दक्षिण भारत में भी ब्राह्मी का ऐसा ही विकास हुआ और 'पल्लव लिपि' के रूप में यह समस्त दक्षिण भारत की लिपि बनी। इसी पल्लव लिपि से कालान्तर में तेलुगू और कन्नड, मलयालम तथा 'ग्रथ लिपि' (तमिलनाडु में सस्कृत के लिए इसी लिपि का व्यवहार होता था) और तमिल लिपियो का जन्म हुआ।

ब्राह्मी लिपि ने इस देश के बाहर बृहत्तर में भी प्रचार पाया था। भारत से लेकर मध्य एशिया और जापान तक धार्मिक ग्रथो के लिए इसका प्रयोग होता था। ७ वी शताब्दी के मध्य में तिब्बत के राजा स्रोग चन्न गप्पो ने नालन्दा में अपने विद्यार्थी भेजकर वहाँ तिब्बती में इस लिपि का आयात किया था। इसी प्रकार पूव में वर्मा, इडोनेशिया थाईलेण्ड, कबोडिया और अनाम जहाँ-कही भी भारतीय सस्कृत गई थी वहाँ उसके साथ ही साथ इस लिपि का भी प्रचार हुआ था। इन सभी देशो में ब्राह्मी लिपि में सस्कृत के लेख प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

इस प्रकार अतीत काल में यह ब्राह्मी लिपि वास्तविक अर्थों में एक विश्व लिपि थी।

देवनागरी की व्यापकता

समस्त भारत के लिए एक अतिरिक्त लिपि के रूप में नागरी का प्रयोग कोई नई बात नही है। इतिहास के धूमिल अधकार में भी जब तक देश में विभिन्न

क्षेत्रीय लिपियाँ विकसित हो चुकी थी उस समय भी देश के प्राय सभी भागा में एक अतिरिक्त लिपि के रूप में इसका बराबर प्रचार था। दक्षिण में पल्लव राजाओ के (७ वी शताब्दी) अपने शिलालेखो में ग्रथ और तमिल लिपिया के अतिरिक्त नागरी का भी प्रयोग होता था। पल्लवो के परवर्ती चोल राजाओ ने भी अपने सिक्को पर नागरी लिपि का प्रयोग किया। उत्तम चोल, राजराज और राजेन्द्र गगेकाड चोल के प्राचीनतम सभी सिक्को पर नागरी का प्रयोग हुआ है। दक्षिण में इस लिपि का प्रभाव इतना अधिक था कि यह चोल राज्य से आगे उन द्वीपा में भी चलाई गई जिन्हे चोल राजाओं ने जीता है। लका में पराक्रमबाहु, लीलावती साहसमल्ल धर्माशोक, भुवनेक-बाहु आदि के सिक्कों पर इसका प्रयोग हुआ है। पश्चिमी चालुक्यों (आठवीं शताब्दी) ने भी अपने शिला-लेखो में कन्नड लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि का प्रयोग किया था। मद्रास म्यूजियम में सुरक्षित कार्वा से प्राप्त ७ वी शताब्दी के एक शिला-लेख में ग्रथ लिपि के एक दान पत्र का नागरी रूपान्तर भी मिलता है।

दक्षिण के राष्ट्रकूट (७ वी शताब्दी) राजाओं के अधिकाश शिलालेख नागरी में ही मिलते हैं। वस्तुत नागरी का प्राचीन शिलालेख राष्ट्रकूट वश का ही है।

श्रवणबेलगोला में दसवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच के अनेक शिक्षा-लेख मिले है। इनसे पता चलता है कि उस समय वहाँ कन्नड, ग्रथ और नागरी तीनो लिपियो-का प्रयोग होता था।

नागरी लिपि का प्रयोग दक्षिण के विजय नगर राज्य में 'नदिनागरी' के नाम से होता था। १५ वी शताब्दी के आगे तो वह चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। इस काल में इस राज्य में कन्नड, तमिल और ग्रथ लिपियो का भी प्रयोग होता था, किन्तु उस समय इस प्रदेश की प्रधान लिपि नागरी थी। विशेषकर ताम्रपत्रो में तो इसी लिपि का प्रयोग होता था। १८ वी शताब्दी में तजोर के महाराष्ट्र शासको ने तो सवत्र नागरी लिपि का प्रयोग किया था।

मुगलो की देन

अतिरिक्त लिपि के रूप में मुसलमान शासको ने भी नागरी को प्रतिष्ठा की। महमूद गजनवी के सिक्को पर अरबी कलमा का सस्कृत अनुवाद (अव्यक्तमेक-पुरुष अवतार मुहम्मद) देवनागरी के रूप में अकित है। मुहम्मद बिनसाम (१२ वी शताब्दी) के सिक्का पर 'श्री मदहमीरहमहमद साम', शमसुद्दीन अल्तमश (तेरहवी शताब्दी) के सिक्को पर 'सुरितन श्री समसदीन', गयासुद्दीन बलबन (तेरहवी शताब्दी) के सिक्को पर 'श्री सुलता मुइजुद्दी' और मुइजुद्दीन कैकुबाद (तरहवी शताब्दी) के सिक्को पर 'श्री सुलता मुइजुद्दी' अकित है। सम्राट अकबर ने अपने

एक सिक्के पर बनवासी राम सीता का अंकन कराया था जिस पर देवनागरी में 'राम-सीय' लिखा है।

राष्ट्रीय जागरण और देवनागरी

वस्तुत देवनागरी का विरोध तो अंग्रेजों के समय में प्रारम्भ हुआ 'नागरी' के प्रचार से भारत के नागरिकों का उद्बुद्ध होना स्वाभाविक ही था जो अंग्रेज शासकों को पसन्द न था। इसलिए उन्होंने बराबर नागरी के प्रचार को रोका। किन्तु वे भारतीय नागरिकों में उठती जागरूकता को नहीं रोक सके। देशभक्त भारतीयों ने जब नागरी और नागरिकों के सम्बन्ध को पहिचाना तो उसी समय से नागरी के ग्रहण और प्रचार का आन्दोलन शुरू हो गया। स्वयं गुजराती भाषी होते हुए भी महर्षि दयानन्द ने हिन्दी और देवनागरी का प्रचार किया। वस्तुत नागरी प्रचार आन्दोलन के जनक बंगवासी जस्टिस शारदाचरण मित्र थे। मित्र महाशय ने २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक लिपि विस्तार परिषद' नामक एक संस्था की स्थापना की थी जिसके तत्वावधान में देवनागरा नामक एक पत्र भी वे निकालते थे। लोकमान्य तिलक ने सन १९०५ में ही भारत की सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाने का सुझाव दिया था। न्यायमूर्ति मित्र महोदय द्वारा आयोजित एक लिपि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से प्रसिद्ध विद्वान् श्री वी कृष्णस्वामी अय्यर ने सन १९१० में देवनागरी को अपनाने का सुझाव दिया था।

गांधी-नेहरू की दृष्टि

उसी के आस पास महात्मा गांधी ने भी कहा था —

सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी होनी चाहिए और मुझे विश्वास है कि देवनागरी के द्वारा द्रविड भाषाएं भी आसानी से सीखी जा सकती हैं। पंडित जवाहर-लाल नेहरू भी इसी पक्ष में थे। अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व पंडितजी ने कहा था कि समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक समान लिपि को कभी न कभी तो अपनाना ही होगा। नेहरू जी ने तब यह भी कहा था कि देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए अतिरिक्त लिपि के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे एक राज्य के निवासी दूसरों की भाषाएं सरलता से सीख सकेंगे क्योंकि वास्तविक कठिनाई भाषा का उतनी नहीं जितनी लिपि की है।

भारतीय एकता के लिए समान लिपि के रूप में देवनागरी के ग्रहण की उपयोगिता निर्विवाद है। आज भी देवनागरी पर्याप्त मात्रा में यह कार्य कर रही है। भारत की सभी प्राचीन भाषाओं जैसे संस्कृत पालि प्राकृत अपभ्रंश ब्रजी अवधी आदि और आधुनिक भाषाओं जैसे हिन्दी मराठी नेपाली डोगरी मैथिली आदि की लिपि देवनागरी है। अब सिंधी ने भी इसे अपना लिया है।

अभी कुछ वर्षों पहले तक अरुणाचल प्रदेश की भाषाओं के पास अपनी कोई लिपि नहीं थी। अब ये भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जा रही हैं। इससे उस प्रदेश में साक्षरता की वृद्धि में गति क्षिप्र हुई है। अभी कुछ ही दिन हुए प्रसिद्ध विद्वान डा सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने कोकणी के लिए भी इसी लिपि के ग्रहण की सिफारिश की है। गुजराती लिपि में शिरारेखा लगा देने मात्र से वह देवनागरी बन जाती है। अन्य भारतीय लिपियाँ देवनागरी की सगी बहनें हैं। इसलिए उनके चेहरे-मोहरे मिलते-जुलते हैं। वस्तुत सच तो यह है कि शिक्षित भारतीयों में ९० प्रतिशत से अधिक इस लिपि से परिचित हैं। इसलिए देश की समान लिपि के रूप में देवनागरी के ग्रहण के मार्ग में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए।

ससार की सबसे वैज्ञानिक वर्णमाला :

भारतीय भाषाओं की वर्णमाला प्रायः वही है जिसका पाणिनि ने माहेश्वर-सूत्र में आख्यान किया है। यह ससार की सबसे वैज्ञानिक वर्णमाला है। भारत की सभी भाषाओं में स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ का क्रम व्यजनों का विभाजन आदि एक जैसा है और कुछ हेर फेर से उनमें ध्वनियों की सख्या भी लगभग समान है। भारतीय ध्वनियों का वर्गीकरण वास्तव में एक वैज्ञानिक आधार पर हुआ है पाणिनि आदि व्याकरणाचार्यों ने इसका आधारशिला पहले ही डाल दी थी। इनमें पहले स्वर, फिर व्यजन, अन्त में अतस्थ ऊष्म आदि कुछ विशेष ध्वनियाँ आती हैं। इनके वर्गीकरण-का दाद आज के अद्यतन् भाषाशास्त्री (Linguisticians) भी करते हैं। अभिनव भाषा विज्ञान (Linguistics) भी ध्वनियों के वर्गीकरण में 'स्थान' और 'प्रयत्न' के भेद पर जोर दिया जाता है जिसे 'पाइन्ट आफ आर्टिकुलेशन' और 'मैनर आफ आर्टिकुलेशन' का सज्ञा दी जाती है। क वर्ग च वर्ग, ट, वर्ग, त वर्ग, और प वर्ग कुछ नहीं बल्कि स्थान भेद ही हैं। इसी तरह घोषत्व (Voicing) और महाप्राणत्व (Aspiration) प्रयत्न भेद के उदाहरण हैं, जिनके आधार पर 'क' से 'ग' और 'ग' से 'घ' का भेद किया जाता है।

भारतीय भाषाओं की इस परिपूर्ण ध्वनि-सम्पत्ति को प्रकट करने के लिए देवनागरी की उपयोगिता के बारे में दो मत नहीं हैं। इतनी सारी ध्वनियों को प्रकट करने के लिए वही लिपि खरी उतर सकती है जिसमें लिपि चिन्ह पर्याप्त हों, लिपि-चिन्हों के नाम ध्वनि के अनुरूप हों और उसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए एक लिपि चिन्ह हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि देवनागरी इन सभी गुणों में श्रेष्ठ है। प्रातीय भाषाओं में कतिपय ध्वनियाँ ऐसी अवश्य हैं, जिनके लिए देवनागरी में फिलहाल लिपि चिन्ह नहीं है। शिक्षा मत्रालय ने कुछ विशेष चिन्हों का प्रयोग कर परिवर्द्धित देवनागरी के जरिए इस कमी को भी पूरा कर दिया है। जहाँ तक अक्षरों की बनावट का सम्बन्ध

है, भारत की सभी भाषाओं में देवनागरी ही ऐसी लिपि है जिसकी आकृति में बिना कोई विकार उत्पन्न किए अनेक भाषाएँ लिखी जा सकती है। अक्षरों की आकृति अर्थात् बनावट की दृष्टि से एक-एक करके हम सभी लिपियों की तुलना देवनागरी लिपि से करें तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

भारत सरकार के प्रयास

भारत सरकार की ओर से अब इस बात के प्रयत्न भी जारी हैं, जिनसे देवनागरी आज के युग में गति, सुगमता और आवश्यक यंत्रों के अनुरूप रोमन की तरह व्यापक बन जाए। संचार मंत्रालय के तत्वावधान में अब हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर के कारखाने में देवनागरी के जो टेलीप्रिंटर बनेंगे वे शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वीकृत इस परिवर्धित देवनागरी के आधार पर ही बनाए जाएँगे। यांत्रिक आवश्यकताओं की दृष्टि से संचार मंत्रालय ने जो टेलीप्रिंटर बनाया है यह सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए उपयोगी है। इस टेलीप्रिंटर पर देवनागरी लिपि में किसी भी भारतीय भाषा में सन्देश भेजा जा सकता है।

अभी हाल ही में डाक-तार विभाग के सम्मुख यह भी प्रस्ताव आया है कि जापान और थाईलैंड की तरह अपने देश में भी द्विलिपिक टेलीप्रिंटर बनाने चाहिए। इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए एक ऐसे टेलीप्रिंटर के निर्माण पर विचार हो रहा है जिसमें रोमन और देवनागरी दोनों लिपियों में सन्देश भेजे जा सकते हैं। यदि एक कुंजी दबा दें तो रोमन में संदेश भेजा जाएगा और दूसरी कुंजी दबाने पर देवनागरी में। यह प्रस्ताव सिद्धान्त रूप में मान लिया गया है। प्रस्तावित टेलीप्रिंटर के देवनागरी की बोर्ड को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। यह कार्य पूरा हो जाने पर टेलीप्रिंटर का निर्माण शीघ्र होने लगेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि देश की वर्तमान परिस्थितियों में इस टेलीप्रिंटर के निर्माण से देवनागरी के माध्यम से भारतीय भाषाओं को बड़ा लाभ पहुँचेगा।

देवनागरी लिपि को अपनाने का मतलब अन्य भारतीय लिपियों को कुचलना नहीं, बल्कि उसकी उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए उसे एक सामान्य भारतीय लिपि के रूप में ग्रहण करना है। विद्या और ज्ञान की परिपूर्णता के लिए राजमार्ग का वर्णन कालिदास ने रघुवंश के तीसरे सर्ग में स्पष्ट रूप से किया है कि 'लिपेर्यथावद्-ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत' — अर्थात् लिपि का यथोचित अध्ययन करने से समस्त वाङ्मय का ज्ञान उसी प्रकार हो जाता है जैसे नदी के द्वारा समुद्र तक पहुँचना। क्या न हम देवनागरी रूपी इस नदी के जरिए भारतीय वाङ्मय के सागर में पहुँचने का प्रयत्न करें।

देवनागरी लिपि संगोष्ठी, पवनार, संक्षिप्त विवरण :

गत २३–२४ फरवरी १९७४ को ऋषि विनोबा के ब्रह्मविद्या मंदिर पवनार में गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने एक अखिल भारतीय देवनागरी संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी में सारे देश से लगभग ५० विद्वानों लेखकों साहित्यकारों और साहित्यिक संस्थाओं के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए और दो दिन तक उन्होंने विनोबा जी के इस सुझाव पर विचार किया कि 'सारे भारत के लिए सभी भाषाओं के लिये देवनागरी को अतिरिक्त लिपि के रूप में मान्यता दी जाय। श्री विनोबा जी ने यह सुझाव बहुत दूरदृष्टि से दिया है। वे चाहते हैं कि देश में कोई एक ऐसी सामान्य लिपि हो जिसके माध्यम से लोग एक दूसरे की भाषा और साहित्य का अध्ययन तो करें ही किन्तु साथ ही इसके माध्यम से वे फिर एक प्रकार से भावात्मक रूप से भी आपस में गुंथ रहें। कभी यह काम संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि ने किया था जब कि सारे देश में एक भाव एक विचार फैल सका था। उसका ही नतीजा आज का भारत है। किन्तु आज देश की वह एकता कई कारणों से तेजी से विच्छृंखलित होने लगी है और यदि समय पर कुछ नहीं किया गया तो फिर देश की एकता खतरे में पड सकती है। ऋषि दयानन्द, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और अन्य महान् भारतीयों ने भी यह बात कई बार कही थी कि भाषा विज्ञान की दृष्टि से सम्पन्न और देश की सबसे अधिक लोगों के द्वारा बोली और लिखी जानेवाली देवनागरी लिपि ही वह लिपि हो सकती है जो भारत की सभी भाषाओं के लिये सुगमता से अपनाई जा सकती है। विनोबा जी पिछले दो तीन सालों से खासकर इस बात की ओर देश का ध्यान खींच रहे हैं।

प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए श्रीमन्नारायण जी ने कहा कि देवनागरी लिपि के बारे में काम यों पहले से ही हो रहा है किन्तु अब संगठित प्रयास करने की आवश्यकता है। इसका उद्देश्य अन्य लिपियों के स्थान लेना नहीं है किन्तु जो लोग लिपि के कारण उन उन भाषाओं का अध्ययन नहीं कर पाते हैं उनके लिये केवल एक अतिरिक्त सुविधा प्रदान करना है। यह विशुद्ध सांस्कृतिक कार्य है और इसमें कोई किसी अन्य हेतु का आरोपण न करे। हमारा उद्देश्य केवल देश की एकता प्राप्त करना है और उसके माध्यम से फिर एशिया के देशों में भी आपसी भाई चारा और

समझदारी के दायरे को बढ़ाना है। श्रीमन् जी ने कहा कि वास्तव में देवनागरी के माध्यम से तो भारत की अन्य भाषायें भी समृद्ध होंगी क्योंकि यदि वे नागरी में भी लिखी और पढ़ी जाने लगेंगी तो फिर उनका दायरा बहुत विस्तृत होगा और उसके लेखकों के लिये भी क्षेत्र का बहुत विस्तार होगा।

संगोष्ठी में भारत स्थित नेपाल राजदूतावास के सांस्कृतिक सहचारी श्री डा मानधरजी ने कहा कि देवनागरी वास्तव में हम नेपालियों के लिये तो हमारी अपनी ही लिपि है और मैं तो हिंदी को भी केवल भारत की ही भाषा नहीं मानता, उसे एशिया की भी भाषा मानता हूँ और मैंने तो स्वयं हिन्दी में भी साहित्यिक रचनायें की हैं। इसलिये यदि यह लिपि भी सारे एशिया में फैलती है तो इससे नेपाल को बहुत प्रसन्नता ही होगी। नेपाल में तो नेपाली और नेवारी दोनों ही भाषाओं के लिये देवनागरी ही चलती है और हिंदी हमारी भी भाषा है। डा मानधर ने, जो स्वयं नेपाली भाषा के अच्छे लेखक भी हैं, कहा कि भारत और नेपाल तो प्राचीन काल से ही एक सांस्कृतिक ऐक्य में बंधे रहे हैं और जब श्रीमन्नारायण जी नेपाल में भारत के राजदूत थे तो उन्होंने भी इसमें काफी योगदान किया था। उन्होंने कहा कि देवनागरी पर हम नेपाली भी आपकी ही तरह से हर्ष और गर्व का अनुभव करते हैं।

उनसे पहले संगोष्ठी को प्रसिद्ध मनीषी श्री आचार्य काका साहब कालेलकर और गांधी स्मारक निधि के भू पू अध्यक्ष तथा प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान श्री रा र दिवाकरजी ने भी सम्बोधित किया। पूज्य काका साहब ने कहा कि विनोबा ने यह जो काम उठाया है मेरा उसमें पूरा सहकार है और मैं चाहता हूँ कि यह काम आगे बढ़े। उन्होंने कहा कि जो लोग इसमें उनकी जो भी मदद देना चाहें वे उनसे दिल्ली आकर मिलें और उनसे बराबर सम्पर्क बनाये रखें। श्री दिवाकर जी ने कहा कि देवनागरी के माध्यम से हम असल में भारत की एकता साधना चाहते हैं और भिन्न भिन्न भाषा भाषियों को निकट लाना चाहते हैं। देवनागरी सबसे वैज्ञानिक लिपि है और सबसे अधिक सरल भी है। वह भारत में सबसे अधिक बड़े क्षेत्र में लिखी भी जाती है। भारत की सभी भाषाओं की लिपियाँ ब्राह्मी से ही निकली हैं और देवनागरी फिर उसका ही अगला रूप है। इससे उसका भारत की लगभग सभी लिपियों से बहुत साम्य भी है। संस्कृत के कारण दक्षिण की भाषाओं से भी उसका निकट सम्पर्क है। पर लिपि के कारण आज उनमें दूरी सी लगती है। देश की एकता के लिये आवश्यकता है कि यह दूरी मिटे।

संगोष्ठी को पूज्य विनोबा जी ने काफी समय दिया और पहले वे केवल दो बार ही बोलने वाले थे किन्तु उन्होंने तीन बार सम्मेलन को सम्बोधित किया। अपने प्रवचनों में विनोबा जी ने यह बात बार बार स्पष्ट की कि वे 'भी' वाले हैं 'ही' वाले नहीं। माने वे केवल यह चाहते हैं कि देवनागरी भी 'अन्य लिपियों के

साथ' अपनाई जाय। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि कोई देवनागरी को हिंदी भाषा के साथ भी न जोडे और इसका हिन्दी भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा उद्देश्य इसके माध्यम से हिन्दी का प्रचार करना नहीं है। हमने तो पहले दक्षिण की एकता, फिर उत्तर और दक्षिण की एकता, फिर सारे भारत की एकता, फिर भारत और एशिया की एकता और फिर भारत और विश्व की एकता के इन पचविध उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही यह सुझाव दिया है और चूंकि देवनागरी भाषा विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न लिपि है, और भारत की सबसे अधिक बड़े क्षेत्र में बोली लिखी जानेवाली लिपि के कारण सब सुलभ है इसलिये हम चाहते हैं कि भारत की सभी भाषाओं के लिये उनकी अपनी लिपियों के साथ ही एक अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी को मान्यता दी जाय। भारत में यह हो सकता है तो फिर एक समय आयेगा जब कि *सारे एशिया के लिये भी यह मान्य हो सकता है।* *पहले स्वीकार फिर सुधार* पर जोर देकर उन्होंने कहा कि इसमें सुधार की गुंजाइश है किंतु सुधार होने तक इसको मान्यता का टलना खतरनाक होगा। सब इसे स्वीकार करें तब सुधार की सोचें।

सगोष्ठी की चर्चाओं में लगभग २० लोगों ने भाग लिया। मैसूर विश्व विद्यालय के हिंदी विभाग के भू. पू. अध्यक्ष श्री प्रा नागप्पा ने कहा कि इस दिशा में *पहले से ही काफी काम हो रहा है और यदि हम जरा और सगठित होकर काम करें* तो यह काम तेजी से आगे बढ सकता है। प्रसिद्ध विचारक और साहित्यकार डा. जैनेन्द्र कुमार ने कहा कि देवनागरी के लिये भिन्न भाषाओं में विश्वास की भावना जागृत करना आवश्यक है और यह काम इस ढग से किया जाय कि लोग इसे सहज ही स्वीकार करने लगें। देवनागरी सब सुलभ हो यह बात स्वयं अन्य भाषाओं के भी पक्ष में है। सघ लोक सेवा आयोग के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री पाडुरंग राव ने कहा कि वैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी ही भारत की ही नहीं विश्व की भी सबसे अधिक सम्पन्न लिपि है और इस सारे भारत और फिर एशिया के लिये सर्वमान्य बनाने के लिये कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये। श्री पाडुरंग राव ने सगोष्ठी में अपना निबन्ध भी रखा। भारत सरकार के सचार मत्री श्री प्रो. शेरसिंह जी ने भी अपने एक बहुत ही मार्गदर्शक और विवेचनायुक्त लेख में कहा कि देवनागरी लिपि की ग्राह्यता के बारे में कोई संदेह नहीं है और पिछले इतिहास का यह निर्णय है कि देवनागरी लिपि भारत भर में ही नहीं अपितु एशिया में भी बहुत दूर दूर तक लिखी जाती थी। उनके लेख की विनोबा जी ने भी बहुत प्रशंसा की। गुजरात से आये डा. कन्ट्रक्टर ने रोमन लिपि के पक्ष में कहा कि भारत के लिये वही लिपि मान्य की जानी चाहिये। विनोबा जी ने अपने भाषण में इसका बहुत ही तर्कयुक्त उत्तर दिया। नागपुर टाइम्स के सम्पादक और प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अनन्त गोपाल शेवडे ने कहा कि आज देवनागरी के बारे में जो एक प्रकार का भ्रम है वह ब्रिटिश राज्य की

देन है और इस वातावरण को हम सिवाय गाधीवादी ढग से और किसी तरह नहीं सुधार सकते है। गांधी जी ने तो बहुत पहले ही इस खतरे को, जो अंग्रेज चुपके चुपके इस देश में पैदा करते जा रहे थे, भांप लिया था और इसीलिये उन्होंने एक राष्ट्र की एक भाषा और एक लिपि की बात भी कहनी आरम्भ कर दी थी। आज विनोबा जी भी वही बात कह रहे हैं। यदि हम देश में एक समन्वयात्मक सस्कृति का निर्माण करना चाहते हों तो फिर हमें गाधी विनोबा की बात पर ध्यान देना ही होगा। श्री शेवडे ने कहा कि साहित्यकारो का इस सन्दभ में भी बहुत बडा दायित्व है। ससद सदस्य श्री शकरदयाल सिंह ने कहा कि यह काम तो हमें आजादी मिलते ही कर लेना चाहिये था और अब भी देर नही हुई है यदि हम अब भी कुछ करें। उन्होंने इसके लिये कई व्यावहारिक सुझाव दिये और कहा कि उन्हे इसके लिये जो भी काम सौंपा जायेगा वे उसे पूरा करेंगे। श्री प्रबोध चौकसी, श्रीमती तुलसी जयरामन्, श्री मल्लिकार्जुन स्वामी (शिक्षा मत्री मैसूर राज्य), श्री डा वेदप्रताप वैदिक (सहकारी-सम्पादक नवभारत टाइम्स नई दिल्ली), श्री शशिशेखर, श्री अम्बेकर, श्री गागल, श्री पराजपे तथा पूना विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा पेन्डसे, आदि ने भी अपने विचार प्रकट किये।

सगोष्ठी में सर्वाधिक महत्व और आकर्षक वस्तु थी पूज्य विनोबा जी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा महाकवि जी शकर कुरुप आदि साहित्यकारो को अनेक भाषाओ और नागरी लिपि में प्रकाशित साहित्य का तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा और केन्द्रीय हिन्दी सस्थान के द्वारा लगाई गई नागरी लिपि के विकास से सम्बन्धित प्रदर्शनी। विनोबा जी के गीता प्रवचन की तो भारत की लगभग सभी भाषाओ में आवृत्तियाँ हुई हैं और उनमें से सभी नागरी लिपि में भी प्रकाशित हुई हैं। इसी तरह से गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य की भी बात है। लिपि प्रदर्शनी में यह दिखाया गया था कि देवनागरी के अक्षरो का विकास किस प्रकार से हुआ। यह सब अत्यन्त ही महत्व की जानकारी देनेवाली थी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने हिंदी प्रचार के क्षेत्र में तो काम किया ही है तथा साथ ही भारत की विभिन्न भाषाओ को नागरी के माध्यम से सिखाने के लिये भी उसने 'भारत भारती' नाम से एक बहुत ही महत्वपूर्ण साहित्यमाला प्रकाशित की है। उसके मत्री श्री शकरराव जी लोंढे और परीक्षामत्री श्री रामेश्वर दयाल जी दूबे ने उसके लिये बहुत प्रयास किया और इस प्रदर्शनी से इस राष्ट्रीय सस्था के काम की अच्छी जानकारी मिल जाती थी। उसी तरह से लखनऊ के भुवन वाणी ट्रस्ट के श्री अवस्थी जी ने जो काम अकेले के पुरुषार्थ से किया है वह भी देखने योग्य था। उन्होंने देवनागरी में भारत के लगभग हर प्रदेश धर्म और भाषा के साहित्य को प्रकाशित ही नही किया है अपितु लुप्त प्राय ग्रथो का पता लगा कर उन्हे नागरी में प्रकाशित करके नष्ट होने से बचा लिया है।

संगोष्ठी की ओर से एक निवेदन भी प्रसारित किया गया है, जिसमें श्रीमन्नारायण जी को विनोबा जी की सलाह से एक कार्यान्वियन समिति बनाने का अधिकार दिया गया है और फिर कई व्यवहारिक कदम भी सुझाये गये है। उसमें कुछ ध्वनियो के साथ नागरी को भारतीय भाषाओ के लिये एक अतिरिक्त लिपि के रूप में अपनाने की विनोबा जी की सलाह का समर्थन किया गया है। यह निवेदन इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के बाद यह पहली राष्ट्रीय संगोष्ठी थी जिसमें देश को शिक्षण व्यवस्था को दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय लिपि पर विस्तार से चर्चा की गई और जिसकी सिफारिसो पर यदि अमल हुआ तो जिसके दूरगामी परिणाम होंगे। अत्यन्त ही विश्वास, आस्था और क्रियापरक आवश्यकता के भाव के साथ संगोष्ठी समाप्त हुई। आज हमारे देश में जो दिन व दिन विघटन की प्रवृत्तियाँ जोर पकडती जा रही हैं उनके प्रकाश में देखें तो इस संगोष्ठी का महत्व सहज ही ध्यान में आ जायेगा और यह देश का दुर्भाग्य ही होगा कि इस तरह की गम्भीर बातो पर भी यदि हम अब भी ध्यान न दें। विनोबा जी ने कहा ही है कि मैं तो इसी कामना के साथ आपसे कह रहा हूँ कि—

समानी व आकूति समाना हृदयानि व
समान वो मनांसि समान सुसहासति व

यदि उर्दू पुस्तके देवनागरी लिपि में छपने लगें तो उर्दू पुस्तकों की बिक्री बहुत अधिक बढ़ जायेगी। परिणाम स्वरूप उर्दू की आशातीत प्रगति होगी। इस दिशा में प्रयोग भी किया गया। उर्दू के एक महाकवि गालिब की उर्दू कवितायें देवनागरी लिपि में छापी गयीं। यह प्रयोग अत्यधिक सफल हुआ। उनकी पुस्तक की हजारों प्रतियाँ बिकीं।

— एम० सी० छागला

देवनागरी लिपि संगोष्ठी निवेदन :

(पवनार आश्रम, फरवरी २३ और २४ — १९७४)

केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि द्वारा सयोजित देवनागरी लिपि सगोष्ठी तारीख २३ और २४ फरवरी १९७४ को परधाम आश्रम पवनार में सम्पन्न हुई। ऋषि विनोबा न उसका उदघाटन किया और उसमें देश के विभिन्न भागो के लगभग ५० प्रमुख विद्वान लेखक सम्पादक और शिक्षा-शास्त्री शामिल हुए। अन्य व्यक्तियो के अलावा आचाय काकासाहेब कालेलकर केन्द्रीय सचार राज्य मत्री प्रो शेर सिंह कर्नाटक के शिक्षा मत्री श्री मल्लिकार्जुनस्वामी श्री र रा दिवाकर डा जनेन्द्रकुमार और नपाल राजदूतावास के सास्कृतिक सहचारी प्रो मान धर न भी इस गोष्ठी की चर्चाओ में भाग लिया।

इस सगोष्ठी का प्रमुख उद्देश्य पूज्य विनोबाजी के इस विचार को स्वीकार करना और लोकप्रिय बनाना था कि भारत को सभी प्रादेशिक भाषाओं और एशिया की कई भाषाओ क लिए उनकी अपनी विशिष्ट लिपियो क अलावा देवनागरी लिपि का भी प्रयोग किया जाय ताकि हमारी सास्कृतिक एकता अधिक मजबूत बन सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि एक निश्चित काय योजना शीघ्र बनाई जाय।

दो दिन की चर्चा के बाद निम्नलिखित सर्वानुमति प्रगट हुई —

(१) यह सगोष्ठी ऋषि विनोबा के इस प्रस्ताव का हार्दिक समथन करती है कि आपसी सास्कृतिक एकता को समृद्ध बनान के लिए सभी भारतीय भाषाओ और कई एशिया की भी भाषाओ के लिय देवनागरी को एक अतिरिक्त लिपि के रूप में इस्तमाल किया जाय। आवश्यकतानुसार नागरी लिपि में कुछ अन्य ध्वनियो को भी शामिल किया जा सकता है।

(२) इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए केन्द्रीय शासन, राज्य सरकारो, शिक्षण और बहुत-सी रचनात्मक सस्थाओ के सहयोग से एक कार्य-योजना तैयार की जाय। इस योजना में नीचे लिखे मुद्दे शामिल किए जा सकते हैं.—

(अ) विभिन्न भारतीय भाषाओ की उत्कृष्ट कृतियां देवनागरी लिपि में और हिन्दी का ऊंचा साहित्य प्रादेशिक लिपियों में प्रकाशित करने की व्यवस्था की जाय।

(आ) केन्द्रीय शासन की ओर से इस समय भारतीय भाषाओं के तार देवनागरी लिपि में भेजने की जो व्यवस्था है उसका आम जनता द्वारा पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए।

(इ) सभी केन्द्रीय कानून विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ में और देवनागरी लिपि में प्रकाशित किये जायें।

(ई) भारतीय भाषाओ की दैनिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओ को प्रोत्साहित किया जाय कि वे अपने कुछ कालमो में प्रादेशिक भाषा के समाचार नागरी लिपि में भी पाठको के शिक्षण के लिये प्रकाशित करते रहें।

(उ) राज्य सरकारो से निवेदन किया जाय कि वे स्कूलो की पाठ्यपुस्तक प्रादेशिक तथा देवनागरी दोनो ही लिपियो में प्रकाशित करें और विद्यार्थियो को विकल्प हो कि वे किसी भी लिपि में अपनी भाषा का अध्ययन कर सकें।

(ऊ) राष्ट्रीयकृत बैंक, जीवन बीमा आयोग और अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों की सस्थायें अपने निवेदन-पत्र आदि प्रादेशिक भाषाओ किन्तु नागरी लिपि में भी प्रकाशित करें।

(ए) इसी प्रकार की नागरी लिपि सगोष्ठी प्रत्येक राज्य में आयोजित की जाय ताकि इस विचार का तेजी से प्रचार किया जा सके।

ये मुद्दे उदाहरण के लिये दिये गये हैं, इनमें और भी मुद्दे जोड़े जा सकते हैं।

३— इन सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिये सगोष्ठीके सयोजक श्री श्रीमन्नारायण को अधिकार दिया जाता है कि वे आचार्य विनोबाजी के परामर्श से २१ सदस्यो की एक कार्यान्वयन समिति नियुक्त करे, जिसमें प्रत्येक भारतीय भाषा का कम से कम एक प्रतिनिधि रहे। इस समिति को अधिकार होगा कि वह अपने में और भी सदस्य आवश्यकतानुसार जोड़ ले।

शीतल प्रसाद :

शिक्षक अपना कर्तव्य समझें :

[गत जनवरी में हुये आचार्यकुल राष्ट्रीय सम्मेलन में एक सत्र के अध्यक्ष श्री शीतल प्रसाद जी थे। उनका यह अध्यक्षीय भाषण हम नयी तालीम के गत आचार्यकुल विशेषांक में नहीं दे सके थे। यह अब यहां दिया जा रहा है।]

आपने मुझे अध्यक्ष चुनकर शायद कोई समझदारी का काम नहीं किया है क्योंकि मैं तो आपके पसन्द की कोई बात कहने वाला नहीं हूँ। मैं जीवन भर शिक्षक रहा हूँ और इस नाते मुझे अपने इस जीवन पर कुछ गर्व भी होता है, किन्तु फिर चिंता भी होती है। गर्व तो इसलिये होता है कि मैं समझता हूँ कि इस तरह से मैंने समाज के निर्माण में कुछ भाग अदा किया है किन्तु चिंता इसलिये होती है कि आज समाज के निर्माता के नाते इस शिक्षक का कोई स्थान समाज में नहीं रह गया है। मैं इस पर जब विचार करता हूँ तो मुझे तो यही बात मालूम देती है कि हम शिक्षकों में ही कमी है। समाज तो हमेशा ही मनुष्य को पहचान कर ही मान या अपमान देता है। पहले एक समय था जब कि भारत के आचार्यों का सम्मान था, राजा भी उनसे भय खाते थे और समाज के नियम आदि वे ही बनाते थे। किन्तु आज तो स्थिति एकदम ही उल्टी हो गई है। आज तो शिक्षक सरकार के नौकर हो गये हैं और वे भी इसमें अपना गौरव अनुभव करते हैं।

मेरे विचार में तो यह कोई प्रगति नहीं हुई है। यह तो हमारी अधोगति ही है। अब मैं मानता हूँ कि शायद यह आचार्यकुल हम शिक्षकों को इस अधोगति से बचा सकता है। मैं आचार्यकुल के विचार में पूरी आस्था रखता हूँ और अपनी भरसक प्रयास भी करता हूँ कि यह कुछ बढ़े। किन्तु मैं आप सभी शिक्षक बंधुओं से कहना चाहता हूँ कि यदि हम अब भी समय पर नहीं जागेंगे तो फिर हमारी सुरक्षा और सम्मान दोनों ही खतरे में आ जायगे। मैं चाहता हूँ कि आप लोग इस पर विचार करें।

विश्वविद्यालय परकोटों से बाहर आयें

शिक्षा का एक ही मतलब है कि उससे मनुष्य अपनी पहचान करता है और फिर उसे क्या करना है यह जानता है। पर आजकी शिक्षा तो यह कुछ नहीं कर पाती है। मैं तो विश्वविद्यालय का कुलपति जब या तब भी कहता था कि विश्व विद्यालयों को तो सबसे अधिक अपने बारे में गलत फहमी से बचना चाहिये। आज तो वे यह मानते हैं कि वे कुछ विशिष्ठ स्थान पर हैं, समाज में सम्मानित हैं और वे अधिक जानते हैं। इससे वे समाज में हिलने मिलने में भी अपनी कुछ हेठी मानते हैं।

किंतु लोकतन्त्र के इस युग में जब कि अब विशिष्ठ जनों का नहीं सामान्य जनों का समय आया है और हमें यह समय आगे बढाना है तो फिर देश के ये उच्च शिक्षा संस्थान कब तक इस प्रकार के सुरक्षित परकोटों में बने रहेंगे ? यह उन्हे विचार करना होगा। आज तो उनके छात्र ही उनके विरुद्ध हो गये हैं। कल समाज भी उनके विरुद्ध खडा हो जाएगा। तब वे क्या करेंगे ? इसलिये आचार्यकुल के विचार को मान्य करके विश्व विद्यालयों को भी पहले अपने में सुधार कर लेना चाहिये तभी समाज पर उनका असर कायम रह सकता है।

शिक्षक चेतें .

दूसरी बात मैं शिक्षकों से भी कहना चाहता हूँ। आज यह ठीक है कि उनकी कई दिक्कतें हैं किन्तु इसका यह तो अर्थ नहीं कि हम समाज को भी केवल इसीलिये दिक्कत में डाल दें क्योंकि हम खुद दिक्कत में है। आज हम लोग भी कहाँ अपना कर्तव्य निभाते हैं। आचार्यकुल ने कहा है कि हम छात्रों के प्रति वात्सल्य भाव रखें, पर क्या हम यह रखते हैं ? फिर परीक्षा आदि में हमारा आचरण भी कोई आदर्श तो नहीं होता है। तो हमें भी आत्म निरीक्षण करना होगा और अपने लिये स्वय ही कर्तव्यों का चयन करना होगा। यदि हम यह नहीं करते तो फिर हमारे ही छात्र आज जो हमारे एक तरह से दुश्मन जैसे बन रहे हैं वे और भी अधिक दुश्मन बनेंगे। वे हमारे ही बच्चे हैं किन्तु जब पिता ही अपना कर्तव्य न समझे तो फिर बालक को क्या करना होगा। तब वह भी यदि प्रह्लाद होगा तो अहिंसा से नहीं तो फिर हिंसा से हमारा सामना करेगा। और यह उन्होने आरम्भ कर भी दिया है। तो शिक्षक इस खतरे को समझें। यह आचार्यकुल हमें एक प्रकार से आगाह करने आया है।

आज हमारा अधिकांश समय अपने वेतन को बढाने की मांगो के लिये संघर्ष में ही बीत रहा है। किन्तु क्या कभी हमने समाज के व्यापक दुख दर्द के बारे में भी विचार किया है। यदि हम अपने को समाज से इसी तरह से अलग करके चलते रहे तो फिर समाज के ही आक्रोश से हमारी रक्षा कौन करेगा। इसपर भी आप लोग विचार करें।

आचार्यकुल शिक्षा बदलने के लिये आगे आवे :

आज की शिक्षा तो इतनी निकम्मी है कि इसके बारे में कुछ कहना ही अब बेकार है। इसे तो अब कोई भी सराहता नहीं। फिर भी यह चल रही है। तो आचार्यकुल इसे बदलने के लिये भी कदम उठाये। आचार्यकुल ने इस पर विचार करके एक शिक्षा नीति और कार्यक्रम आप सबके सामने रखा है जिसपर आज श्री दि. ह. सहस्रबुद्धे जी ने बहुत ही अच्छे ढग से बातें सामने रखी हैं। मैं चाहता हूँ कि आप लोग इस विषय पर खूब गंभीरता से विचार करें और सम्मेलन की ओर से शिक्षा में परिवर्तन के लिये देश का आह्वान करें। श्री श्रीमन्नारायण जी ने जैसा कि अपने उद्घाटन भाषण में कहा है कि अब भी समय है कि जब हम कुछ कर सकते हैं। उनके

-ही प्रयास से सेवाग्राम में सन् १९७२ के अक्टूबर में एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन भी किया गया था। उस सम्मेलन ने कई अच्छी सिफारिशें की थीं। उनका भी हमें अध्ययन व प्रचार करना चाहिए।

मुझे आशा है कि हम लोग इस सम्मेलन में से कुछ लेकर जायेंगे।

समाचार-पत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) नियमावली १९५६ के ८ वें नियम के अनुसार अपेक्षित "नयी तालीम" से सम्बन्धित विवरण.—

प्रपत्र ४

१. प्रकाशनका स्थान :	सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र
२. प्रकाशन अवधि :	प्रतिमाह को १४ तारीख
३. मुद्रकका नाम.	श्री शंकरराव लोंढे
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता.	मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा
४. प्रकाशक :	श्री प्रभाकर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता :	मन्त्री, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम, वर्धा
५. सम्पादक.	सर्वश्री श्रीमन्नारायण, वंशधर श्रीवास्तव, आचार्य राममूर्ति और कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता	अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा
६. पत्रिका के मालिक का नाम व पता	अखिल भारत नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा

मैं प्रभाकर यह घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

ता. १४-३-७४

ह० प्रभाकर
प्रकाशक के हस्ताक्षर

विद्या बहन :*

श्रमशाला (अर्न एन्ड लर्न सेन्टर) खादीग्राम, बिहार :

[भारत गांवों का देश है और वह आगे भी बहुत लम्बे काल तक ऐसा ही रहने वाला है, यह मानकर गांधी जी ने भारत के लिये बुनियादी शिक्षा की योजना पेश की थी। भारत में शिक्षा की क्या समस्यायें हैं इनका असल में आज भी किसी को बहुत अधिक स्पष्ट ज्ञान नहीं है। इसलिये ही शिक्षा की सारी योजनायें अवास्तविक बन जाती हैं। गांधी जी के अनन्य सहयोगी और प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री तथा नयी तालीम के भू. पू. सम्पादक श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने खादीग्राम में बहुत पहले एक शिक्षण केन्द्र कायम किया था। वह आज सर्वोदय जगत के विख्यात चिंतक और नयी तालीम के सम्पादक आचार्य राममूर्ती जी के मार्गदर्शन में काम कर रहा है। उसका संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है।)

आज से १७ साल पहले सन १९५६ में पूज्य धीरेन्द्र भाई के मार्गदर्शन में श्रमभारती खादीग्राम मुंगेर, बिहार में इस श्रमशाला का आरम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य भारत की परिस्थितियों के संदर्भ में ग्रामीण बालकों के लिये 'कमाई के साथ पढ़ाई' की एक व्यवस्था कायम करना था। हमारा विश्वास है कि ज्ञान का कर्म के साथ समन्वय ही सही शिक्षा है। आज समाज में खासकर जो तिरस्कृत लोग हैं, जैसे कि हरिजन और अन्य पिछड़े हुए लोग उनमें अपने 'अस्तित्व की प्रतीति' का बोध पैदा हो, वे अपने भाग्य के विधाता स्वयं बन सकें और साथ ही कुदाल और कलम पर उनका भी समान हक हो यह इस शाला के उद्देश्यों में माना गया है।

---

* संचालिका, श्रमशाला, खादीग्राम।

इसलिये इसमें आरम्भ से ही एक विशेष प्रकार के बालक रखे गये। हमारे बालक सभी भूमिहीन हैं और उनमें से अधिकाश तो 'हलवाहो' में बिके हुये बालक है। बहुत लोगो को अभी भी यह मालूम नही है कि भारत की आजादी के २६ साल के बाद भी भारत के गांवो में दासता कायम है, और परिवार के परिवार कर्ज में बिके रहते हैं। इन बालको के मां-बाप ने कभी साहुकार से कर्ज लिया था और ये बालक अब अपने मां-बाप के साथ और बाद को भी उनके बदले में साहुकार के यहाँ पर हल चलाने का काम करते है। उन्हें कोई मजदूरी नही मिलती बल्कि वे तो कर्ज में यह काम करते हैं और उनके बाद उन को सताने फिर उनका स्थान लेगी। इन लोगो की मुक्ति ही श्रमशाला की मूल प्रेरणा है।

हमारे गावो के बालक आमतौर पर पांच साल की उम्र से ही काम में लग जाने से पढ़ाई से वचित रह जाते हैं। इसलिए इस शाला में आठ साल के शिक्षण क्रम में इन बालको को इतना शिक्षण दे देना चाहते हैं कि वे प्रचलित पद्धति से अब तक माध्यमिक स्तर तक आ जायें और साथ ही इस बीच उनमें कोई एक ऐसा हुनर भी आ जाय ताकि वे फिर अपनी स्वतन्त्र जीविका कमाने के साथ ही समाज के लिये भी कुछ उपयोगी बन सकें। कालक्रम में हम इस शिक्षण योजना को बालको के परिवारो तक भी पहुँचाना चाहते है। योजना यह है कि इनकी छोटी सी खेती का विकास किया जाय, खेती उनके पास न हो तो उसका भी प्रबंध किया जाय; उसके साथ उन्हे कोई पूरक उद्योग सिखाया जाय।

वर्तमान स्थिति :

अभी शाला में कुल ६० बालक है। ये सभी बालक कुल १४ गांवो से आते हैं। इनमें से ३० बालक तो हरिजन कही जानेवाली जातियो से और ३० बालक पिछडी कही जानेवाली जातियो के हैं। आयु के हिसाब से उनमें ८ से १० साल तक के २० बालक, १० से १२ साल के १३ बालक, १२ से १४ साल तक के ९ बालक, १४ से १६ साल तक के ११ बालक और १६ से १८ साल तक के ७ बालक हैं। अभी हमारे यहाँ पांच ही वर्ग तक था। अब जनवरी ७४ से ६ टा वर्ग भी आरम्भ हो गया है।

अभी खेती, बागवानी, मछली पालन, लोहारी का काम, सिलाई, कताई-बुनाई, धान-कटाई, रोगियों की सेवा और प्राथमिक उपचार आदि का शिक्षण क्रम चलता है। खेती की सभी प्रक्रियायें, जैसे कि खेत तैयार करना, सामयिक फसलें बोना, भूमि-सुधार याने परती भूमि को समतल करना और ग्रामीण इजीनियरिंग तथा पानी-प्रबंध का काम होता है। हमारे पास एक यत्रशाला भी है जिसमें ग्रामीण आवश्यकता के लोहारी काम के अलावा मशीनी काम जैसे कि खेती के औजार बनाना और उनकी मरम्मत का काम, डीजल पम्प और बिजली की मोटर को मरम्मत और देखभाल आदि का काम होता है। सिलाई के काम में सस्था के तथा कुछ गांव के

भी कपडो की सिलाई होती है और कताई-बुनाई के माध्यम से कपडा तैयार किया जाता है। इस सबने छात्रो को आत्म विश्वास का वातावरण प्रदान करने में बहुत मदद की है। बालक तीन चौथाई समय तक श्रम करते हैं और एक चौथाई समय पढाई। काम और पढाई सब साथ ही होता है। अलग अलग वर्ग में नही।

सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये शिक्षा

शाला की सामान्य व्यवस्था छात्रो के हाथ में होती है। उनका एक मंत्री मंडल है जो कि हर माह चुना जाता है। छात्रावास की व्यवस्था करना सफाई करना छात्रो के लिये एक सामुहिक दूकान चलाना छात्र कोष की व्यवस्था करना आदि सब काम वे स्वयं ही करते हैं। काम के लिये छात्रों को जो पारिश्रमिक मिलता है वह कुछ अनाज में होता है और डढ किलो रोज पानेवाले छात्र ५ किलो माह और १ किलो पाने वाले ३ किलो माह के हिसाब से छात्र कोष जमा करते हैं। इस कोष से उनके लिये कुछ कपडे और अन्य आवश्यक चीजें ली जाती है। भोजनालय की व्यवस्था यों तो छात्रो के ही हाथो में रहती है किन्तु शिक्षण की दृष्टि से उनके साथ एक शिक्षक भी रहते हैं जो कि उन्हे भोजन के बारे में कुछ शास्त्रीय ज्ञान भी साथ साथ देते रहते हैं। ये बालक जिनके पास अपना कोई घर-बार आदि अक्सर नही होता तो वे फिर घर की व्यवस्था करने भोजन बनाने आदि के अवसर कहा से हो पा सकते है अब स्वच्छ और शुद्ध शास्त्रीय विधि से भोजन बनाना सीख गये है और इसमें बड़े बालक छोटो के लिये शिक्षक का काम करते है। इसका प्रभाव अच्छा है। एक तो भोजन के लिये बालको में कोई भी असन्तोष नहीं होता जो आजकल अन्य विद्यालयो के छात्रावासो को आम बात होना है और दूसरे उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है क्योंकि भोजन शुद्ध और ताजा होता है। भोजन में काम आने वाली सभी साग़भाजी तो वे अक्सर अपने श्रम से पैदा कर लेते हैं। शाला के बारे में सामान्य निर्णय छात्र मिलकर स्वयं करते हैं और यदि कोई समस्या उनकी समझ से बाहर हो तो उसमे शिक्षको की मदद माग लेते हैं।

बालको का हर माह स्वास्थ्य-परीक्षण भी होता है। उनके हर एक के वजन ऊंचाई आदि की वे स्वयं ही व्यवस्थित जानकारी रखते है। तीन माह में बालको के वजन में तीन किलो तक की वृद्धि भी हुई है। बीमार होने पर रोगी छात्रो को अलग रखने और उनकी सेवा उपचार आदि के लिये भी छात्र स्वयं ही व्यवस्था कर लेते है और विशेष आवश्यकता पर शिक्षक भी मदद करते है।

सबसे अधिक सन्तोष की बात यह है कि बालको को सफाई का संस्कार मन में जम गया है। वे नियमित दातून करने स्नान करने कपड़ साफ करने और शौच जाने के आदी होते जा रहे हैं। कपडो को सही ढग से तह करके रखने में भी वे अब स्वावलम्बी होते जा रहे हैं। कपडे के मामले में यद्यपि अभी उनकी सामान्य

आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती हैं और इस जाडे भर तो उन्हों ने हड्डो का कपा देनेवाली ठड तक केवल एक चादर और एक कट तथा कमीज में काटी है। धीरे धीरे उनकी कपडा पैदा करने की गति बढ़ रही है और आगे से उनका यह अभाव दूर हो जायेगा।

हुक्म बजाने की संस्कृति से मुक्ति :

अक्सर यह बात कही जाती है कि काम को अधिक महत्व देने के कारण बालको का बौद्धिक विकास रुक जाता है। गाधी जी की बुनियादी शिक्षा पर तथाकथित शिक्षाशास्त्रियो का यही आरोप होता था। किन्तु हमारा अनुभव नितान्त भिन्न है। हमारे बालक अन्य बालको की अपेक्षा किसी बात को शीघ्र समझ लेते हैं और अब वे धीरे किन्तु निश्चित ढग से परम्परा से प्राप्त ग्रंथि से मुक्त हो रहे हैं। अब वे खुलकर बात कर सकते हैं जो पहले किसी बडे के सामने मुह खोलना तक कठिन मानते थे। अभी उनके बात करने, खाने-पीने, खेलने कूदने, उठने-बैठने और आपसी व्यवहार में बहुत परिवर्तन आया है और हम कह सकते हैं कि आज वे आत्म विश्वास के वातावरण का अनुभव करते हैं। यह अपने आप में बडी बात है खासकर इस तरह के समाज के लिये जिस जन्म से ही हीनता का पाठ दिया जाता है।

यह इससे भी पता लगता है कि वे अब न केवल स्थानीय त्यौहारो और पर्वों में ही रुचि लेते हैं अपितु उन्हें कैसे मनाया जाय यह भी विचार करते हैं। हमारा यह प्रयास रहता है कि इस तरह के अवसरो पर हम बालको को गांव के साथ ही करके त्यौहार पर्व आदि मनायें। खासकर गाधी पर्व ३० जनवरी, और १२ फरवरी को हम उन्हे आसपास के गाँवो में ले जाकर ग्राम सभा बनाने,गांव में सभा करने और ग्रामस्वराज्य के लिये वातावरण तैयार करने के लिये भी प्रेरित करते हैं। इससे वे ग्रामीण समस्याओ से सहज ही परिचित होते हैं और फिर उनके हल के लिये भी विचारते हैं। आगे इस काम को दिशा यह मानी गई है कि बालक धीरे धीरे ग्राम सगठक की भी भूमि अदा करने लायक हो। यह बात भी सन्तोष देने वाली कही जा सकती है कि अब हमारे विद्यार्थियो को निगरानी की आवश्यकता लगभग नही होती। बिना शिक्षक के भी वे दिये काम को निष्ठा और सफाई के साथ पूरा करेंगे और इस प्रकार से 'हुक्म बजाने की संस्कृति' से उन्हे छुटकारा मिल सकेगा हम यह आशा करते हैं। आदमी भले ही अनपढ और अशिक्षित रह जाय किन्तु वह हुक्म बजाने की संस्कृति से मुक्त हो जाय तो शिक्षा का लक्ष्य पूरा हो गया माना जा सकता है।

समाज शाला में :

शिक्षा का समाज-जीवन से समवायिक सम्बन्ध हो यह आज शिक्षा का मुख्य विचार कहा जाता है। हम भी इस ओर प्रयास कर रहे हैं। हर तीन माह पर

अभिभावकों का एक सभा शाला में बुलाई जाती है और उनके बालक क्या सीख रहे हैं, वह उनके काम का है या नहीं, उनके बालकों का परीक्षाफल क्या है आदि बातें उन्हें बताई जाती है। फिर उन्हें शाला के खेत भी दिखाये जाते हैं जो उनके बालकों के तैयार किये रहते हैं। इस पर से वे अपने बालकों की शिक्षा का अंदाज करते हैं और देखा गया है कि वे संतुष्ट होकर जाते हैं। हमने देखा है कि इससे शाला को भी क्षेत्र के निकट आने में मदद मिली है और हम कह सकते हैं कि हमारी शाला और समाज अब अलग नहीं है। हमारी १९ एकड़ की खेती तो केवल इन बालकों पर ही निर्भर है और माँ-बाप इससे सन्तुष्ट हैं कि उनका बालक एक जिम्मेदार नागरिक बन रहा है। अभी हम ६० से ७० प्रतिशत तक स्वावलम्बी हो सके हैं पर हम शीघ्र ही पूरे स्वावलम्बी हो सकेंगे हमें यह आशा है। इसके लिये प्रयास जारी है। खेती का विकास किया जा रहा है, यंत्रों की मदद से काम करने का शिक्षण बढ़ रहा है किन्तु यंत्र हमारे मददगार हों हम उनके भरोसे न रहें यह बात सावधानी से बताई जाती है। हमें बाहरी मदद लगभग नहीं मिलती। न सरकार से ही कोई मदद है। इस साल हमें जमना के श्री माइकेल भाई से ५० रु खादी समिति के जी रामचन्द्र से १५० रु और एक बालक से ५ रु मिले हैं। शाला में तथा आश्रम में जो खेती होती है इस की जानकारी आस पास के किसानों को देने के लिये समय समय पर हम शिविर भी करते हैं और इस प्रकार से हमारी शिक्षा समाज विकास की पर्याय बन जाय यह प्रयास जारी है।

चिंतन के आयाम :

हमारे सामने मुख्य सवाल यह नहीं है कि हम क्या या किस तरह से पढ़ायें। हमारे सामने तो मुख्य सवाल यह है कि भारत के लिये शिक्षा का क्या रूप हो? हमारे गांव विभिन्न तरह के टुकड़ों में बँटे हैं गरीबी और असमानता तो भयानक है शोषण और दासता भी रोज बढ़ रही है। इस तरह के समाज में शिक्षा का क्या हाल हो? उसका रूप क्या हो? यह सवाल है। हमारे बालकों के माँ-बाप की भी यह अपेक्षा रहती है कि उनका बालक दिन ब दिन अधिक कमाई करे किन्तु साथ ही वह अच्छा सुशिक्षित नागरिक भी बनें। यह कैसे हो। गरीबी के कारण कई मां बाप कुछ दिन तक हमारे पास अपने बालक को रखने के बाद कमाई के लिए फिर उसे कहीं अन्यत्र भेज देते हैं और इस तरह से हमारे पास सिर्फ फिर नाबालिग बालक ही अधिक रह जाते हैं। समझ हुये बालक अधिक समय तक शाला में रहें तो वे अपने लिये तो लाभदायी होते ही हैं किन्तु दूसरे बालकों के लिये वे किसी भी अच्छे से अच्छे शिक्षक के मुकाबिले अच्छे मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। तो उन्हें शाला में कैसे रोका जाय। भारत की शिक्षा को इन सवाल का उत्तर ढूंढना होगा नहीं तो करोड़ों रुपये लगाकर बनने वाली सरकारी योजनाओं का कोई औचित्य नहीं है।

फिर शाला के पास साधनों का अभाव तो है ही। यदि हमारे पास जितनी भूमि है उसके लिये काफी साधन हो तो उसमें से बहुत कुछ किया जा सकता है। किन्तु एक तो अभिभावकों को इसमें रुचि कम है और दूसरे इस तरह का शिक्षा के लिए आज इस देश में कोई प्रोत्साहन भी नहीं है। सरकार को तो इन बातों पर सोचने का अवकाश भी नहीं। वह तो चुनाव में सारी उम्र बिता देती है। फिर एक सवाल और है। हम शाला में ही अगर काम का विकास करें तो फिर हम इस तरह से वहाँ व्यस्त हो जाते हैं कि फिर ग्राम से सम्पर्क भी लगभग टूट सा जाता है। इस पहेली का भी जवाब खोजना होगा।

हमें आशा है कि देश के शिक्षाशास्त्री इन सवालों पर चिंतन करके हमारा मार्ग दर्शन करेंगे।

सर्व-सामान्य लिपि नागरी—

कोई भाषा उत्तर की है अथवा दक्षिण की— इसका ख्याल किये बिना हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि हम भारत की सब भाषाओं के लिये एक 'सर्व-सामान्य लिपि' (आम लिपि) निश्चित करें। यह लिपि सबके स्वीकार करने योग्य होगी। बंगला, तामिल, हिंदी, मलयालम आदि भाषाओं की लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। इन लिपियों के बीच जो घनिष्ट सम्बन्ध है और इनमें जो समानताएँ हैं उनका ज्ञान होनेपर— हमारे झूठे भय और दुराग्रह दूर होंगे। नागरी लिपि सब भाषाओं के लिये ग्राह्य हो सकती है और इसके द्वारा विभिन्न भाषाओं की विशिष्ट विशिष्ट ध्वनियाँ भी व्यक्त की जा सकती हैं। प्रादेशिक लिपियों की उनकी कुछ अपनी विशेषताओं और खासियतों को बनाये रखने के लिये यदि आवश्यक हो तो कुछ नये अक्षर नागरी लिपि में जोडे जा सकते हैं। इस प्रकार तैयार की नयी सर्व-सामान्य लिपि (आम लिपि) का उपयोग छपाई के लिये किया जा सकता है।

—महाकवि जी शंकर कुरुप, केरल

Report of the Tamilnadu State Educational Conference, Madras.

As a follow-up action of the National Educational Conference held at Sevagram in Oct 1972, under the auspices of the Tamilnadu Basic Education Society, a state level educational conference was held in Madras on the 19th, 20th, and the 21st, of January 1974 It was presided over by Dr T P Meenakshisundaram, formerly Vice-Chancellor of the Madurai University. The Governor, Mr Sri K K Shah, inaugurated the conference and the State Educations Minister Dr. V R Nedunchezhian delivered the valedictory address, Dr Malcolm S Adiseshiah, formerly connected with the UNESCO and now a member of the State Planning Board also adressed the gathering on Productive Work in Education Sri S V Chitti Babu, Director of Public Instruction, spoke on Education to Promote Social Responsiblity Sri Kulpati Balkrishan Joshi, Principal, D A. V H S School, Madras, was the main architect of the conference Administrative officers of the education deptt besides a large number of teachers of the Basic Education Institutions in the state, the workers of the Gandhi Peace Foundations Centres and Sarvodaya Sangh and several Headmasters of the primary and the secondary schools also attended Sri Sriman Narayanji, the Chairman of the All India Nai Talim Samiti, Sevagram, who was to deliver the keynote address could not attend the conference owing to indisposition Sri K S Acharlu, the Secretary of the

All India Nai Talim Samiti, Sevagram, was deputed to read the keynote address on his behalf The local English and Tamil Dailies and the All India Radio gave full coverage by publishing brief reports of the conference

The Governor, the President of the conference, and the Education Minister stressed the need for a basic change in the educational pattern of the country so as to relate it closely with the national developmental activities, and in this connection the lead given by the Sevagram Conference was appreciated The Education Minister in his valedictory address assured the delegates that he would implement all the useful decisions of the conference The conference divided itself into four groups, viz, collegiate education, teacher's education, primary education and secondary education The recommendations of these groups are briefly as follows —

A. Collegiate Education :

The group regarded the three fundamental values enunciated by the Sevagram Conference as basic to any purposeful scheme not only for primary education but also for the higher stages In order to avoid the undue rush into the colleges and the universities the group was of the view that de-linking of the degree from employment was a necessary step in the right direction The structural pattern of 10—2—3 was accepted as the ideal with the suggestion that the 2 year course should be conducted by the institutions with the consultation of the universities concerned It was also suggested that the age for admission for the 3years degree course should be 17 year plus The pupil-teacher ratio should be at a reasonable level The consolidation of the courses should be such

as would foster the realisation of social justice and wellbeing of the local community through education and a positive relation ship between knowledge and work-experience The curriculum should have two parts ,a core programme which should contain activities related to work experience, and a selective one consisting of academic studies under Humanities and Sciences, which should be functional at least during the third year As regards examinations, it was keenly felt that external examinations unconnected with institutions should not find a place and that internal assessment by the instructors in the subjects concerned and by the students themselves in their accomplishments in theory and practice should be conducted By pre arrangement with farms or factories students may be deputed to work in them so that their vacation might be gainfully employed The universities of the state should certify the competence of the local colleges to conduct examinations and declare the results

The group was of the view that autonomous colleges will be highly beneficial to their respective regions. The need for the state and the central Govets to accord the highest priority to individual efforts to start and run such autonomous colleges throughout the state was greatly stressed

B Teacher Education ·

This group was of the view that the full implications of the 16 points given in the statement of the Sevagram Conference in all the training institutions should be worked out The teachers should get a thorough orientation in the three fundamental values-enunciated at the outset, viz, Self confidence through development of self reliance, acquisition of productive skills, a spirit of nationalism and commitment to the

community and social service and acceptance of a set of ethical and moral values as the basis of conduct. It was also stressed that selections of the teachers for training should be very carefully done and that not only academic excellence but a right attitude for the teaching profession should also be considered as the basis for selection. The teacher must develop an attitude for productive activities during the training period as well as in their school. This can be achieved by linking productive activities in the neighbourhood community with the training work in the institutions. Their capacity to investigate and utilize the potentialities of local crafts and artisans for educational purposes and to relate work experience with teaching and learning should also be taken into account at the time of selection. Organisation of the residential community life, a realistic programme of social service, conscious promotion of community integration and a broad national and inter national outlook, a clear knowledge of our freedom struggle and the cultural unity of India, a study and research programme in which the students should also be able to participate, a close involvement of the training institution in the educational and social development of the surrounding areas, an inbuilt system of constant evaluation of the performen ce of the students in the very system of instruction, organising parent-teacher associations and functional literacy programmes, are some of the main proposals of the group.

C. Primary Education:

This group supported the concensus statement of the Sevagram Conference, emphasing specially the first and the second items in the statement adding that the students should participate in activities like harves-

ting, street and road cleaning, white-washing the school rooms and walls serving mid day meals, maintaining school gardens, making useful articles like broomsticks, mats, paper pulp and baskets and spinning on the Amber Charkhas etc In urban areas the students should work in factories and small scale industries and learn traffic control and maintain school rooms and furniture The inculcation of the spirit of nationalism and social responsiblity, ethical and moral values and an understanding of the essential unity of and equal respect for all religions should be fostered The school should have freedom to organise its daily work and grant awards on merit and means sysytem and not on the present lines of caste and class The concept of the neighbourhood school should be given a fair trial The school should be organized as a *democratic community with council of ministers responsible* for the various school functions so that the pupil can from the very beginning learn the democratic traditions of the land Likewise social serviece units should be formed in the school to assume responsiblity for comunity work The pupils should be trained in queue formations, supply of drinking water, sanitation, restoring lost properties and maintaining order in public meetings and at school functions

D. Secondary Education·

After a lively and animated discussion the group, agreeing with the recommomndations of the Sevagram Conference, stressed the need for a comprehehensive craft programme for all the rural and urban schools, The craft being chosen according to local conditions The crafts should be so organized that their produce may be fit for marketing to add to the revenue of the school Community work by the stu-

dents, including social service activities in the nearby villages or towns should be made an essential part of education Examinations, internal as well as external, should be replaced by a proper continuation of final testing and internal assessment A student may be promoted to a higher class if his record of service to the school community is found good even if his performance in the examinations may not be up to the mark Periodical parent-teacher contacts thould be made a permanent feature of school orgnization Students courts or Nyaya Samitis should be instituted for fostering moral values and this should be done under the direct supervision of the Headamaster N C C, Scout, Guide or Red-Cross groups have to be started in the schools

तामिलनाडु बेसिक एज्युकेसन सोसायटी ने गत १९, २० और २१ जनवरी को सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की सिफारिशो पर विचार करने के लिए एक राज्य स्तरीय शिक्षा सम्मेलन किया। सम्मेलन का उद्घाटन राज्यपाल श्री के के. शाह ने किया। सम्मेलन ने प्राथमिक, सेकेण्डरी, कालेज तथा शिक्षको की शिक्षा पर चार अलग अलग अध्ययनदल नियुक्त किये। सभी दलो ने अपनी सिफारिशो में सेवाग्राम सम्मेलन की सभी सबधित सिफारिशो को स्वीकार किया है और सबने ही इस बात पर जोर दिया है कि शिक्षा को हर स्तर पर समाजोपयोगी उत्पादक कार्यों के साथ जोड दिया जाय। राज्य क शिक्षा मत्री डा नेंदुन्चेजिअन ने भी सम्मेलन को सबोधित किया और सम्मेलन की सिफारिशो को राज्य में पूर्ण नया लागू करने का आश्वासन दिया है।

श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा :

शिक्षा का प्राप्तव्य :

'दि अन्डर एचीविंग स्कूल' — लेखक – जॉन हाल्ट पेन्विन् बुक्स लि. हारमान्ड्सवर्थ, मिडिल सेक्स, इग्लैण्ड, पृष्ठ १७०, मूल्य - १ डालर।

"यदि आने वाले कल की दृष्टि से अमरीका के स्कूल कोई बडा कदम उठायें तो उन्हें क्या करना चाहिये ?"

"यह करना हो तो फिर प्रत्येक बालक को अपनी शिक्षा के बारे में स्वय नियोजक, निदेशक और मूल्याकक बनने दिया जाना चाहिये। उस कुछ अधिक अनुभवी और तज्ञ लोगो की प्रेरणा और मदद से, इस तरह की मदद जैसा वह चाहे, यह तय करने का हक होना चाहिये कि उसे क्या सीखना है, कब सीखना है, कैसे सीखना है और उसकी सीखने की प्रगति किस प्रकार से हो रही है। यह कदम आज के स्कूलों को, जो आज तो केवल बालको के लिये जेलो का ही काम करते है, अधिक मुक्त शिक्षण के ऐसे साधनो के रूप में बदल देना होगा जिससे समुदाय में चाहे जिस किसी उम्र का आदमी अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग कर सके।"

न्यूयार्क की शैक्षणिक पत्रिका 'एज्युकेसन न्यूज' के सपादको के द्वारा उपरोक्त प्रश्न के उपरोक्त उत्तर से जॉन हाल्ट की यह पुस्तक आरम्भ होती है जो शिक्षा के विश्व चिंतन में एक और नया आयाम जोडती है। यह पुस्तक खासतौर पर हमारे विद्यालयो, और इनमें विश्व विद्यालय भी सामिल है, के वर्तमान सगठन और उनके कार्यान्वियन तथा उनसे उत्पन्न शैक्षिक समस्याओं पर प्रकाश डालती है। लेखक ने, जो अमरीका में पहले नेवी (जलसेना) और अन्य कई विभागो में काम करने के बाद अनेक स्कूलों में अध्यापन कार्य करता रहा है और फिर अब मैस्युच्यूट्स के कैम्ब्रिज में फेयरवदर स्ट्रीट स्कूल में सलाहकार के रूप में काम कर रहा है और जिसने शिक्षा पर कई पुस्तके लिखी है, यद्यपि इस पुस्तक में अमरीकी शिक्षा पद्धति को ध्यान में रखकर ही बातें कही है किन्तु यह शिक्षा पर विश्व चिंतन की दृष्टि से भारत और उसकी ही तरह अन्य कई विकासशील देशो की दृष्टि से उपयोगी है। लेखक ने पुस्तक में प्रचलित शिक्षण पद्धतियो के बध्यापन (स्टॅलिटी), विद्यालयो में पढाये जानेवाले विषयों की सामयिक अप्रासगिकता, बालकों की स्कूल जाने में सार्वत्रिक हिचक और आनाकानी तथा अनुशासन के नाम पर शिक्षको के अशैक्षणिक व्यवहारो का तीखा और विचारोत्तेजक विवेचन किया है।

असल में शिक्षा जब संस्था की चहारदीवारी में बंध जाता है तब वह अपना तेज स्वभावत खो देती है। तब स्कूल जिस उद्देश्य से स्थापित की गई थी वह प्राप्त करना तो दूर रहा वे ठीक उसके विपरीत ही काम करने लगती हैं। किन्तु फिर उस विपरीतता को ही शिक्षा के नाम पर बालकों और समाज पर थोपा जाता है। लेखक कहता है कि आज हम स्कूलों में लोकतांत्रिक मूल्यों का बहुत चर्चा सुनते हैं किन्तु उनका काम इस तरह से होता है कि बालक वहाँ ठीक उसके विपरीत ही सीखते हैं। लेखक के ही शब्दों में बालक आज के स्कूलों में वास्तव में व्यावहारिक दासता के मूल्यों का ही शिक्षण पाते हैं। स्वामी (बास) की किस प्रकार से चापलूसी करना जिम्मेदारियों के संकट से स्वयं बचकर दूसरे को उसमें फँसा फंसाना आदि बातें ही वह वहाँ पर सीखता है।

होड़ (कम्पीटीशन) का शिक्षा में स्थान

पाश्चात्य समाजशास्त्र ने आरम्भ से ही वहाँ पर जीवन-दृष्टि वैसी होने के कारण होड़ (कम्पीटीसन) को एक प्रकार के अंध विश्वास के स्तर तक ले जाकर उस पूजनीय वस्तु के रूप में तथाकथित प्रगति उन्नति आदि के अत्यन्त ही अस्पष्ट अर्थ वाले भावों का पर्यायवाची बना दिया है। चाहे खेल हो, चाहे व्यापार चाहे राजनीति हो चाहे साहित्य या कला कोई भी क्षेत्र हो हर जगह होड़ को प्रगति का आगे बढ़ाने का साधन माना जाता है। शिक्षण शास्त्र में भी उन्होंने इस पूजनीय देव का स्थान दे दिया है और इस मामले में अन्य सभी मामलों की ही तरह पूँजीवादी या साम्यवादी चिंतन में कोई फर्क नहीं है। शिक्षण में सर्वत्र होड़ का ही बोलबाला है। हमने भी आज के भारत में जीवन के हर क्षेत्र में पश्चिम से इसी तरह की अनेक नकारात्मक बातें ली हैं। किन्तु मनोविज्ञान और खासकर शिक्षा मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह अत्यंत ही अनैच्छिक प्रक्रिया है। जान हाल्ट इस पर भी करारी चोट करता है। वह कहता है कि होड़ बालक को प्रत्येक दूसरे बालक को हीन भाव से देखने में प्रवृत्त करती है बालक इससे यही सीखता है कि हर दूसरा आदमी उसका स्वभावत दुश्मन है और फिर जैसा कि एक कहावत ही बन गई है जीवन एक शून्यवत खेल है यह भाव बलवान होता है। इस खेल में फिर एक का जीतना और अनेकों का हारना एकदम स्वाभाविक है क्योंकि किसी विजेता के लिए कोई विजित होना अनिवार्य है। लेखक कहता है कि होड़ की यह प्रवृत्ति हमारे तथाकथित प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में तो इस कदर पैठ गई है कि वहाँ शिक्षा एक ऐसे खेल में बदल गई है जहाँ एक विजेता के लिए बहुत से विजितों का सृजन आवश्यक है। इसका स्वाभाविक परिणाम है कि ऐसे वातावरण में बालक न केवल परस्पर विद्वेषी (होस्टायल) ही बनते हैं अपितु एक दूसरे के प्रति उदासीन भी हो जाते हैं। वे फिर धीरे धीरे अन्य बालकों और आगे चलकर जीवन में भी अन्य लोगों में स्वभावत रुचि लेने के बजाय

इस तरह से व्यवहार करते हैं मानो दूसरों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह सब बंधा शिक्षा का परिणाम है।"

मुक्त शिक्षा की आवश्यकता

इसलिये लेखक मुक्त स्कूलों का सुझाव देता है और कहता है कि "उन्हें बालकों के लिये जेलों की तरह काम करने के बजाय उन्मुक्त घरों की तरह काम करना चाहिये।" इसके लिये लेखक का यह भी सुझाव है कि शिक्षा को जीवन के साथ स्वाभाविकतया जोड़ देना होगा और इसके लिये आज के बंधे बंधाये पाठ्यक्रमों को इस तरह से बदल दिया जाय जिसका निर्णय स्वयं बालक ही करें। साथ ही स्कूलों का ढांचा इस तरह का होना चाहिये कि समुदाय ही पूरा का पूरा स्कूल के काम में हिस्सा ले सके। "बहुत अच्छा होगा यदि हम एक खास जगह और खास इमारत में स्कूल लगाने के बजाय बच्चों और शिक्षकों को लेकर ही गांव अथवा शहर में जाय और वहां लोगों को ही शिक्षा का विषय (लर्निंग रिसोर्स) बनाकर काम करें। हमें स्कूलों में इस तरह के लोगों की भागीदारी को बढ़ाना होगा ताकि जो लोग पूरे समय के अध्यापक नहीं हैं किन्तु जो शिक्षण के लिये इस तरह का आधार प्रदान कर सकते हैं वे भी शिक्षण के काम में पूरा पूरा भाग ले सकें। जैसे कि हम अनेक तरह के कलाकारों, मूर्तिकारों, संगीतकारों, दस्तकारों, लेखकों और कवियों को या अन्य तरह के कुशल कारीगरों को विद्यालयों में लायें, वे लोग वहां बालकों के साथ रहें, काम करें, बात करें, उनके तरह तरह के प्रश्नों का जवाब दें, बालक उन्हें काम करते हुए देखें, उनके काम में हाथ बटायें, वे बालकों के ही साथ रहें, खायें और इस तरह से वे कुछ समय तक शिक्षक का काम करने के बाद चले जायें।" लेखक का यह सुझाव नितान्त ही नया और विचारात्मक है। यह शिक्षा के क्षेत्र में सचमुच ही एक नया प्रेरणादायी सुझाव है।

शिक्षा सुधार का प्रश्न

आज कल शिक्षा में सुधार की बहुत-सी बातें होती हैं। किन्तु सुधार के नाम पर हम जिन सवालों और समस्याओं पर विचार करते हैं असल में शिक्षा से उनका सम्बन्ध जरा भी नहीं होता। आजकल हम शिक्षा सुधार के नाम पर विद्यालयों में बालकों की भीड़, शिक्षकों की कमी, इमारतों की कमी अथवा मरम्मत, उनके लिये धन जुटाने, साल में पढ़ाई के दिन कम या अधिक करने या फिर एक विशेष प्रकार की शिक्षण पद्धति का प्रयोग या जांच करने आदि तरह का ही बातें करते हैं। लेखक का यह कथन एकदम सही है कि "असल में ये सभी बातें शिक्षण की समस्यायें न होकर शिक्षण संस्थाओं की समस्यायें हैं। हमारे सामने असल सवाल यह नहीं है कि विद्यालय अपना काम कैसे करें वरन् यह है कि विद्यालयों का असल काम क्या है। इन ऊपरी बातों को, जो केवल शिक्षा के साधन मात्र हैं साध्य नहीं, हम इतना समय और शक्ति खर्च करके विचार और काम करते

है कि शिक्षा का असल सवाल एकदम भुला ही दिया जाता है।" शिक्षा का असल उद्देश्य, जैसा कि लेखक का कहना है, तो यह है कि "वह बालका में जीवन को समझने और उसकी समस्यायें हल करने की समझ और क्षमता पैदा करे।" शिक्षा को बालका को इन समस्याओं से परिचित कराना चाहिये और फिर उनका हल स्वयं ढूंढने में उनकी मदद करनी चाहिये। लेखक कहता है "हमारी आज की कुछ ज्वलन्त समस्याओं, जैसे कि जातिवाद (रेसियलिज्म), शांति, काम अथवा आराम (लाजर) या फिर उच्छिष्ट (वेस्ट) और बरबादी, वातावरण तथा स्वतन्त्रता आदि के साथ शिक्षा का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जब कि शिक्षा में इन्हीं और इसी तरह की बातों की प्रमुख चर्चा रहनी चाहिये।"

मनुष्य की मनोवृत्ति बदलना असल प्रश्न :

लेखक इस पुस्तक में शिक्षा के कुछ उन नये आयामों की भी चर्चा करता है जिनपर भारत में गांधी और टैगोर जैसे चिंतकों ने बहुत पहले ही जोर दिया था। उदाहरण के लिये लेखक कहता है कि अब हमें स्कूलों का उपयोग ऐसी पीढ़ियाँ तैयार करने के लिये करना चाहिये जो जातिवाद को समाप्त करने, विश्व के सीमित साधन-स्रोतों का उचित विभाजन और उपयोग करने, दरिद्रता के विरुद्ध सच्चा युद्ध छेड़ने, दुनियाँ के सार्वत्रिक विनाश के सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का विनाश करने और विश्वव्यापी अंतरराष्ट्रीय झगड़ों का विवेक सम्मत हल निकालने के तरीकों में सक्षम हों। लेखक के ही शब्दों में "हमारी वर्तमान शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि हम बालकों को दूसरे का किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचाने वाले प्रौढ़ों में कैसे विकसित करें। हमको यह बात स्वीकार करनी होगी कि आज तक शिक्षा ने इस तरह की समस्याओं को हल करना तो दूर रहा उन पर कभी विचार तक नहीं किया है। उसने आज तक इस तरह का कोई प्रयास ही नहीं किया है।"

शिक्षा का कार्य तथा अवकाश से सम्बन्ध :

शिक्षा को काम के साथ जोड़ देने का विचार आज तो विश्वव्यापी आयाम प्राप्त कर चुका है। किन्तु शिक्षा में इस नये उपयोगी और उत्साहप्रद विकास के साथ साथ एक और बड़ी समस्या भी तेजी से पनप रही है जिसका विचार आज शिक्षा के सन्दर्भ में बहुत कम होता है या होता ही नहीं। आज यन्त्र तेजी से मनुष्य का स्थान लेता जा रहा है। तब शिक्षा को यह भी तय करना होगा कि वह यंत्र के साथ कैसा व्यवहार करे। पहले पहल तो यंत्र का उपयोग मनुष्य अपनी आवश्यकता की दृष्टि से करता था किन्तु अब, जैसा कि लेखक कहता है, यंत्र तेजी से मनुष्य का स्थान ले रहा है और मनुष्य को यंत्र की इच्छानुसार करना होता है। यंत्र जैसा 'चाहता' है मनुष्य को वैसा ही करना होता है। यह प्रक्रिया इतनी तेजी से बढ़ रही है कि जैसा डब्ल्यु एच फेरी कहता है कि 'बहुत शीघ्र अब केवल रात को एकाकी चौकीदार का

काम ही एक मात्र काम रह जायेगा'। दूसरे शब्दो में मनुष्य के पास निस्तर बढ़ता जा रहा खाली समय होगा क्योकि यत्र न केवल उससे सब काम छीन लेगा अपितु वह सभी काम अत्यन्त शीघ्रता से भी कर रहा है। मनुष्य को थाडा बहुत जो उसके साथ काम करने का अवसर मिलता भी है वह इतना कम है कि बाकी सारा समय वह क्या करे यह भयानक प्रश्न उसके सामने खडा हो गया है। क्या शिक्षा का इस सवाल के साथ काई सम्बन्ध नही है ? शिक्षा में काम के सवाल को इस परिप्रेक्ष में देखना होगा। यह लेखक का बहुत हा महत्व का प्रश्न है जिस पर शिक्षा विचारको को विचार करना ही चाहिये।

समय की रिक्तता की भयानकता :

आज कल विद्यालयो और विश्वविद्यालयो में शिक्षा में काम के नाम पर बालको को कुछ दस्तकारी, कला खेल नाटक, सगीत या नृत्य आदि के कामो में लग दिया जाता है। कही कही पर कुछ थोडा समय खेतो जैसे कामो में भी दिया जाता है। किन्तु लेखक सही ही कहता है कि कही और कभी भी बालक को 'सचमुच काम' करने के लिये नहीं लगाया जाता। इसलिये लेखक का यह सुझाव महत्वपूर्ण है कि "हमें स्कूलो को सचमुच काम को जगह बनाना चाहिये। याने वहाँ बालक को इस तरह का काम करने का अवसर मिले जिससे उसके सामने जीवन की सार्थकता तो सिद्ध हो हो साथ ही उसके समय की दमघोटू रिक्तता भी भरी जा सके। समय को इस भयानक रिक्तता के विचार का अभी भारतीय शिक्षाशास्त्री शायद बहुत सही ढग से न समझें क्योकि हमारा देश अभी पश्चिम के मान से पिछडा है और अभी हमारे यहाँ 'यत्र-राज्य' पूरी तरह स नही हो गया है किन्तु यह बात तो समझना ही है कि हमारा भी चाल तजी से पश्चिम के इस तरीक की ओर ही है क्यो कि हमने जीवन के सभी क्षेत्रो में पश्चिमी जीवनमूल्यो को हा मान्यता दी है। तब हम भी इस 'समय की रिक्तता' का भयानकता के शिकार बहुत शीघ्र होगें इसमें कोई सन्देह किसी को नही रहना चाहिये। अत शिक्षा में काम क इस सवाल पर हमें लेखक की दृष्टि स विचार करना होगा। असल में जब गाधी जी यह कहते थे कि शिक्षा का देश की व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक योजनाओ स सम्बन्ध होना चाहिये तब उनका अर्थ यही था कि शिक्षा की कोई जीवन और समाज से पृथक् स्थिति नही है। उनके यत्र सबधी विचारो पर भी इसी परिपेक्ष म विचार करना होगा। यह नही हो सकता कि हम शिक्षा में तो काम की बात करें और फिर समाज में उन कामो लिये कोई भविष्य ही न रखें। आज तो यही हो रहा है। समय रहते ही हमें चेत जाना होगा।

मनुष्य का एकाकीपन भी दासता है :

इस पुस्तक में लेखक ने एक और महत्व की बात कही है कि यद्यपि आज स्वतन्त्रता का राग बहुत अलापा जा रहा है किन्तु समाज में कुछ वस्तुगत परि-

स्थितियाँ इतनी तेजी से बढ रही हैं जो मनुष्य को एकदम अकेलेपन में ढकेल दे रही हैं। आज मनुष्य को अपनी इच्छा के विरुद्ध बहुत काम करने पड रहे हैं और आज वह मन से सबसे अधिक लाचार है। लेखक ने इसके दो कारण बताये हैं। एक तो जीवन के व्यापारो से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले सगठन, जैसे कि व्यापार और सरकार, अत्यधिक केन्द्रीकृत होते जा रहे हैं और दूसरे इनका अपना आकार भी बहुत बढता जा रहा है। इनमें निर्वैयक्तिकता (इम्पर्सनेलिटी) और नौकरशाहीपन (ब्यूरोक्रेटिज्म) बहुत बढ रहा है। इससे मनुष्य में अपनी स्वतन्त्रता का भाव कमजोर होता जा रहा है। अत शिक्षा का काम यह हो कि वह स्वतन्त्रता का दृढ भाव वाली पीढ़ी का सृजन करे। "इसके लिये शिक्षा के आमूल परिवर्तन के साथ ही हम प्रौढों को अब अपनी यह पुरानी आदत छोड देनी होगी कि हमें यह बताने का अधिकार है कि बालक क्या पढ़े, कब पढ़े, कैसे पढ़े। हम अपने इसी मानदण्ड से आज बालकों का मूल्यांकन करते हैं।' लेखक का सुझाव है "अब शिक्षा को किसी भी प्रकार के बधे पाठ्यक्रम से मुक्त कर देना चाहिये। वह कहता है "मैं किसी भी प्रकार के पाठ्यक्रम में विश्वास नहीं करता, मैं कक्षाओं (ग्रेड्स) में विश्वास नहीं करता, मैं अध्यापकों के द्वारा मूल्यांकन में भी विश्वास नहीं करता, मैं तो हमारी मदद और प्रोत्साहन से बालक की अपनी पसन्द की बातें सीखने में विश्वास करता हूँ। क्या पढना, कब पढ़ना, कैसे पढ़ना और क्यों पढना, यह सब स्वय बालक को ही तय करने दो।"

इसी सन्दर्भ में लेखक 'अनिवार्य शिक्षा' के विचार का भी विरोध करता है और सही ही कहता है कि इसके पीछे असल में यह गलत मान्यता है कि आज के हमारे स्कूल और शिक्षा सब तरह से सही हैं, बालकों के हित में हैं अत उन्हें यह सिखानी ही चाहिये।

पुस्तक आद्योपात पढ़ने योग्य है और आज के विश्व शैक्षणिक चिंतन पर अच्छा प्रकाश डालती है। जिन लोगों को केवल पश्चिमी प्रकाश ही रुचिकर होता है, और हमारे देश में हम उन्हें ही बुद्धिमान (इन्टेलेक्चुअल) मानते भी हैं, उनके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपादेय है यद्यपि इस तरह के विचार भारतीय चिंतक, जैसे गाधी जी आदि बहुत पहिले से देते रहे हैं। किन्तु यदि वही बात पश्चिम से आती है तो हमारे देश में ये (इंटलेक्च्युअल) लोग उसे नवीन विचार कहने लगते हैं। किन्तु जिन्हें गाधीजी के विचारोंका परिचय है उनके लिये इसमें कोई नयापन नहीं है। फिर भी हाल्ट की पुस्तक हमें विचार के लिये प्रेरित करती है।

महावीर—वाणी

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलि त्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सयादन्ते, न य मम्ममुदाहरे।
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीलि त्ति वुच्चइ।

हर समय हंसता न हो, सतत इन्द्रिय निग्रही हो, दूसरों को मर्मभेदी वचन न बोलता हो, अशील न हो, याने सुशील हो, बार बार आचार को बदलने वाला विशील न हो, रस लोलुप याने खान पान अथवा विषयों में अति लोलुप न हो, क्रोधी न हो, इन आठ कारणों से मनुष्य शिक्षाशील कहलाता है।

—विणयसुत, महावीर वाणी, (सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी) पृष्ठ ७३-७४।

सूचना

कागज आदि की महँगाई के कारण हमें नयी तालीम का वार्षिक शुल्क १२) तथा एक प्रति का मूल्य १) कर देने पर विवश होना पड़ा है। अप्रैल ७४ से यह नयी दर लागू होगी। किन्तु अप्रैल माह में बनने वाले ग्राहकों को यह १०) में ही दी जायेगी। बाद को फिर १२) देने होंगे। आशा है विज्ञ पाठक इस रियायत से लाभ उठायेंगे और मूल्य वृद्धि की हमारी विवशता को समझकर नयी तालीम को अपना सहयोग पूर्ववत् जारी रखेंगे।

—सम्पादक

नयी तालीम : मार्च, '७४
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

वर्ष : २२
अंक : ९
अप्रैल, १९७४

शिक्षा में स्वावलम्बन का प्रश्न

★

मातृशक्ति श्रेष्ठतम शक्ति है :

★

तालीम का राष्ट्रीयकरण :

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ९

देश की वर्तमान स्थिति :

इस समय देश में जो हिंसा और विद्वेष का वातावरण तेजी से फैल रहा है वह सचमुच बहुत चिन्ताजनक है। आये दिन हम अखबारों में पढ़ते हैं कि कई स्थानों पर विरोधी राजनीतिक दलों और पुलिस में हिंसक मुठभेड़ हुई और कुछ लोग मरे व घायल हुए। इस सामूहिक हिंसा को रोकने के लिये हमें बार बार फौज की मदद लेनी पड़ रही है। यह स्पष्ट ही है कि ये सब घटनाएँ हमारे देश की लोकशाही व आजादी के लिये हितकर नहीं हैं।

गुजरात में विद्यार्थियों द्वारा जो आन्दोलन चलाया गया उससे हमें संतोष भी हुआ और दुःख भी। संतोष इसलिये हुआ कि छात्रों द्वारा संचालित यह अभियान सामान्यतया अहिंसक ही था और उसके फलस्वरूप उसका समर्थन आम जनता ने भी किया। समाचार पत्रों से जानकारी मिलती रही कि गुजरात के सरकारी कर्मचारी, मिलों के मजदूर, स्कूल और कॉलेजों के शिक्षक, वकील और डाक्टर सभी इस आन्दोलन के समर्थक बन गये और आखिर में वहाँ की सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। कुछ समय बाद आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा और अन्त में वहाँ की विधान सभा भी भंग कर दी गई।

विज्ञान, व्यापार के तत्व तथा इतिहास की कुछ राष्ट्रीयकृत पुस्तकें हा. से. स्कूलों में लागू कर दी थी । न्यायालय ने अपने इसी निर्णय में म प्र. हायर सेकन्डरी शिक्षा वोर्ड के उस आदेश को भी रद्द कर दिया जिसके अनुसार उसने सरकार के अधिकार अपने हाथ में लेकर 'भाषा' की कुछ पुस्तकें प्राइमरी और माध्यमिक विद्यालयों में लागू करने का आदेश दिया था । सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय पर हमें प्रसन्नता है और आशा है कि न्यायालय का यह निर्णय सभी सरकारों को सोचने पर विवश करेगा ।

सरकारे दिन व दिन शिक्षा पर अपनी पकड मजवूत करती जा रही है और फिर इसकी आड लेकर ही विभिन्न शिक्षा वोर्ड भी अपने अधिकारो का खुलेआम उल्लघन करते रहते है । अत्र विद्यालयो (और अव तो यह घातक रोग विश्व-विद्यालयो तक मे भी फेल रहा है) मे क्या, कैसे , कव और किस तरह से पढाया जाय यह न तो छात्र ही तय करते है, न शिक्षक ही तय करते है और न वे अभिभावक ही तय करते है जिन्होने अपने वच्चे इन नियत्रित विद्यालयो के सुपुर्द कर दिये है । यह सब अव सरकारे और राजनीतिक दल ही तय करते है । इस स्थिति पर सर्वोच्च न्यायालय ने जो कुछ कहा है हम उसका हार्दिक स्वागत करते है । न्यायालय ने कहा है कि "हमें इस तथ्य का ध्यान नही है और हमारे लिये यही सबसे अधिक चिन्ता की वात है कि विद्यालयो मे छात्रो के वस्तुगत उपयोग के लिये पाठ्य-पुस्तकें निश्चित और लागू करने का अधिकार कार्यपालिका (सरकार) के हाथो में अभी अपने लिये स्वतंत्र चिंतन कर सकने में असमर्थ और सहज ही प्रभावित किये जा सकने वाले अपरिपक्व वालकोके दिमागो में अपनी विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचार-धारा तथा दर्शन भरने का एक प्रवल शक्तिशाली हथियार वन सकता है"। फिर न्यायालय आगे कहता है कि "राज्य सरकारें जिनपर विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा तथा दर्शन वाले राजनीतिक दलो का ही नियत्रण रहता है, पाठ्यपुस्तकें निश्चित और लागू करने के अपने इस अधिकारका उपयोग युवक-युव-

तियों के अत्यन्त ही भावुक और सग्राहक मस्तिकों को एक विशिष्ट साँचे में ढालने के लिये कर सकती है। इससे लोकतंत्र के लिये अत्यन्त आवश्यक मुक्त चिंतन तथा उसका विकास रुक सकता है। हमारा यह दृढ़ विश्वास ही नहीं अपितु पक्की धारणा है कि हमारे संविधान में निहित स्वतंत्र समाज के मूल्य के लिये यह आवश्यक है कि हमें न केवल अपनी पसद के ही अपितु अपनी नापसद के भी विचार की पूर्ण स्वतत्रता हो।"

आज विचारो पर राजनीतिक दलो और सरकारो की पकड जिस तेजी से मजबूत होती जा रही है उसे यदि तत्काल नही रोका गया तो निस्सदेह मनन करनेवाले विवेकयुक्त प्राणी के रूप मे मनुष्य का पूर्ण तिरोभाव अवश्यभावी है। साम्यवादी विचार और शासन पद्धति के साथ यह रोग आरम्भ हुआ था जो अब सभी तथाकथित लोकतान्त्रिक पद्धतियो में भी सर्वत्र फैल गया है। अब सब सरकारे एक जेसी ही है। विज्ञान तथा उसके साधनो का उपयोग आज सामान्य जन के बजाय सत्ता और सत्ताधीशो के ही हितो के लिये किया जा रहा है। विश्व-व्यापी प्रचुरता के बीच भयानक विश्व-व्यापी त्रासदायी विपन्नता का यही कारण है। इसलिये पू. विनोबाजी ने 'मुक्त-शिक्षण' का जो विचार देश और दुनिया के सामने रखा है उस पर आज ध्यान देने की सबसे अधिक आवश्यकता है। विनोबाजी बार-बार कह रहे है कि शिक्षा सरकार के हाथ मे नही रहनी चाहिये। उसका सचालन, नियत्रण और निर्धारण तो छात्र, शिक्षक और अभिभावक मिलकर करें और ये सब मिलकर फिर सरकार पर भी नियंत्रण रखे। सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने इस निर्णय में पू. विनोबाजी के इस विचार को ही एक प्रकार से मान्यता दी है। आशा है देश के विचारवान् छात्र, शिक्षक और अभिभावक इस ओर ध्यान देगे।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

गुजरात की विधान सभा की १६८ सीटों में कांग्रेस का १४० का बहुमत था। फिर भी भ्रष्टाचार के विरुद्ध विद्यार्थियों और जनता की जो आवाज बुलन्द हुई, उसकी वजह से कांग्रेस शासन हिल गया और अन्त में उसका पतन हुआ। आन्दोलन को दबाने के लिये जब वहाँ फौज बुलाई गई तो नवयुवकों ने उसको भी एक प्रकार से निहत्था कर दिया। वे उसके सामने निडर होकर खड़े हो गये और कहा—

"हमारा आपसे कोई झगडा नही है। आपने हमारे लिए सन् १९७१ के युद्ध मे खून बहाया था। इसलिये हम आपका हार पहनाकर स्वागत करना चाहते है। यदि आप हमे अन्न दिलवायेंगे तो हमारा खून बढेगा, और यदि आप हमे गोली मारेंगे तो हमारा खून बहेगा। अब आप ही तय करे कि क्या करना है?"

इस प्रकार के व्यवहार से फौजी लोग भी चकित हो गये और उन्होने विद्यार्थियो के ऊपर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। हम समझते है कि गाधीजी के गुजरात मे अहिंसा की यह बहुत मार्मिक विजय हुई। हम आशा करते है कि गुजरात के विद्यार्थी भविष्य मे भी गाधीजी के मार्ग पर ही चलते रहेंगे और कभी भी हिंसा का सहारा नही लेंगे।

गुजरात की घटनाओ से हमें दु ख इसलिये हुआ कि विद्यार्थियों के अभियान का लाभ उठाकर वहाँ के कुछ असामाजिक तत्वो ने लाभ उठाया और काफी सरकारी चीजो को जलाकर बरबाद किया। पत्थर-बाजी और आगजनी की वारदातें भी काफी हुईं। इससे सारे देश पर बुरा असर हुआ और अराजकता का वातावरण पैदा हुआ जो राष्ट्र के हित मे नही है। गुजरात के राजनीतिक-दलों ने भी विद्यार्थियो के आन्दोलन का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ साधना चाहा। इसके कारण नवयुवकों में फूट भी डालने की कोशिश की गई।

हमें उम्मीद है कि गुजरात के विद्यार्थी राजनीतिक-दलो से बहुत दूर रहेंगे और उनके स्वार्थ के फन्दे में न फसेंगे।

देवनागरी लिपि का समर्थन :

हमें खुशी है कि गत २३ और २४ फरवरी को पवनार आश्रम में हुई देवनागरीलिपि संगोष्ठी के निर्णयो का देश में काफी व्यापक स्वागत

हुआ है। हमें इस बात का विशेष संतोष है कि कई मुसलमानी शिक्षण व सांस्कृतिक संस्थाओं ने भी इस बात का जोरदार समर्थन किया है कि अपनी विशिष्ट लिपियों के अलावा भारत की भाषाओं के लिये देवनागरीलिपि का भी प्रयोग किया जाय। आगरा की हजरत ताराशाह चिश्ती स्मारक समिति के पदाधिकारियों ने तो यहाँ तक कहा है कि भारत की भाषाओं के लिये देवनागरीलिपि का ही इस्तेमाल किया जाय। उन्होंने उर्दू के लिये भी इसी लिपि को पसन्द किया है। कालीकट युनिवर्सिटी के हिन्दी के प्रो डा मलिक मुहम्मद ने भी इस प्रस्ताव का पूरा समर्थन किया है कि रोमन लिपि के बजाय देवनागरी को ही भारतीय भाषाओं के लिये अतिरिक्त लिपि के रूप में प्रयोग किया जाय।

हमें यह जानकर भी संतोष हुआ कि एशिया के कई देशों के सांस्कृतिक सहचारियों ने भी पवनार संगोष्ठी के निवेदन को पसन्द किया है और यह राय जाहिर की है कि भारतीय भाषाओं के अलावा एशिया की कई भाषाओं के लिये भी देवनागरीलिपि बहुत उपयुक्त साबित होगी। इस कार्य में नेपाल, थाईलैंड, सिलौन और कंबोडिया ने विशेष दिलचस्पी दिखाई है।

हम उम्मीद है कि एशिया की सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कार्य आगे बढता रहेगा।

—श्रीमन्नारायण

म. प्र. पाठ्यपुस्तक आदेश पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय :

म प्र सरकार के २४ मई १९७३ के एक आदेश को जिसके अनुसार उसने राज्य के सभी हायर सेकन्डरी स्कूलों के लिये म प्र हा से एज्युकेशन एक्ट १९५९ के अनुसार प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुये कुछ राष्ट्रीयकृत पुस्तकें लागू कर दी थी, सर्वोच्च न्यायालय ने १८ मार्च ७४ को अवैध करार देकर रद्द कर दिया है। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय सर्वोच्च न्यायाधीश माननीय श्री ए. एन राय की अध्यक्षता में गठित एक पाँच सदस्यीय खंडपीठ ने दिया है। सरकार ने अपने इस आदेश में अंग्रेजी, वनस्पति विज्ञान, जन्तु

विज्ञान, व्यापार के तत्व तथा इतिहास की कुछ राष्ट्रीयकृत पुस्तकें हा. से स्कूलो में लागू कर दी थी। न्यायालय ने अपने इसी निर्णय में म प्र हायर सेकन्डरी शिक्षा बोर्ड के उस आदेश को भी रद्द कर दिया जिसके अनुसार उसने सरकार के अधिकार अपने हाथ में लेकर 'भाषा' की कुछ पुस्तकें प्राइमरी और माध्यमिक विद्यालयों में लागू करने का आदेश दिया था। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय पर हमें प्रसन्नता है और आशा है कि न्यायालय का यह निर्णय सभी सरकारों को सोचने पर विवश करेगा।

सरकारे दिन ब दिन शिक्षा पर अपनी पकड मजबूत करती जा रही हैं और फिर इसकी आड लेकर ही विभिन्न शिक्षा बोर्ड भी अपने अधिकारो का खुलेआम उल्लघन करते रहते हैं। अब विद्यालयो (और अब तो यह घातक रोग विश्व-विद्यालयो तक में भी फैल रहा है) म क्या, कैसे, कब और किस तरह से पढ़ाया जाय यह न तो छात्र ही तय करते हैं, न शिक्षक ही तय करते हैं और न वे अभिभावक ही तय करते हैं जिन्होंने अपने बच्चे इन नियत्रित विद्यालयों के सुपुर्द कर दिये हैं। यह सब अब सरकारे और राजनीतिक दल ही तय करते हैं। इस स्थिति पर सर्वोच्च न्यायालय ने जो कुछ कहा है हम उसका हार्दिक स्वागत करते हैं। न्यायालय ने कहा है कि "हमें इस तथ्य का ध्यान नही है और हमारे लिये यही सबसे अधिक चिन्ता की बात है कि विद्यालयो में छात्रो के वस्तुगत उपयोग के लिये पाठ्य-पुस्तकें निश्चित और लागू करने का अधिकार कार्यपालिका (सरकार) के हाथो में अभी अपने लिये स्वतत्र चिंतन कर सकने में असमर्थ और सहज ही प्रभावित किये जा सकने वाले अपरिपक्व बालकोंके दिमागो में अपनी विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचार-धारा तथा दर्शन भरने का एक प्रबल शक्तिशाली हथियार बन सकता है"। फिर न्यायालय आगे कहता है कि "राज्य सरकारे जिनपर विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा तथा दर्शन वाले राजनीतिक दलो का ही नियत्रण रहता है, पाठ्यपुस्तकें निश्चित और लागू करने के अपने इस अधिकारका उपयोग युवक-युव-

तियों के अत्यन्त ही भावुक और सग्राहक मस्तिकों को एक विशिष्ट साँचे में ढालने के लिये कर सकती है। इससे लोकतंत्र के लिये अत्यन्त आवश्यक मुक्त चिंतन तथा उसका विकास रुक सकता है। हमारा यह दृढ विश्वास ही नहीं अपितु पक्की धारणा है कि हमारे संविधान में निहित स्वतंत्र समाज के मूल्य के लिये यह आवश्यक है कि हमें न केवल अपनी पसद के ही अपितु अपनी नापसद के भी विचार की पूर्ण स्वतत्रता हो।"

आज विचारो पर राजनीतिक दलो और सरकारो की पकड जिस तजी से मजबूत होती जा रही है उसे यदि तत्काल नही रोका गया तो निस्सदेह मनन करनेवाले विवेकयुक्त प्राणी के रूप में मनुष्य का पूर्ण तिरोभाव अवश्यभावी है। साम्यवादी विचार और शासन पद्धति के साथ यह रोग आरम्भ हुआ था जो अब सभी तथाकथित लोकतान्त्रिक पद्धतियों मे भी सर्वत्र फैल गया है। अब सब सरकार एक जसी ही है। विज्ञान तथा उसके साधनो का उपयोग आज सामान्य जन के बजाय सत्ता और सत्ताधीशों के ही हितों के लिये किया जा रहा है। विश्व-व्यापी प्रचुरता के बीच भयानक विश्व-व्यापी त्रासदायी विपन्नता का यही कारण है। इसलिये पू. विनोबाजी ने 'मुक्त-शिक्षण' का जो विचार देश और दुनिया के सामने रखा है उस पर आज ध्यान देने की सबसे अधिक आवश्यकता है। विनोबाजी बार-बार कह रहे है कि शिक्षा सरकार के हाथ मे नही रहनी चाहिये। उसका सचालन, नियन्त्रण और निर्धारण तो छात्र, शिक्षक और अभि-भावक मिलकर करे और ये सब मिलकर फिर सरकार पर भी नियंत्रण रखे। सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने इस निर्णय में पू विनोबाजी के इस विचार को ही एक प्रकार से मान्यता दी है। आशा है देश के विचारवान् छात्र, शिक्षक और अभिभावक इस ओर ध्यान देंगे।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

गांधीजी

शिक्षा में स्वावलंबन का प्रश्न :

प्रश्न —यह कैसे माना जाय कि शिक्षा स्वावलम्बी बनाई जा सकती है ?

उत्तर —मैं चाहता हूँ कि आप इसमें भी वैसी ही श्रद्धासे काम शुरू करें। जब आप इसका अमल आरम्भ करेंगे तो इसके साधन और मार्ग आपको सहज ही सूझने लगेंगे। इस प्रयोगको मैं स्वयं ही अमल करता, अब भी अगर ईश्वरकी कृपा रही तो मैं अपने भरसक यह सिद्ध करने की कोशिश करूँगा कि शिक्षा किस प्रकार से स्वावलम्बी बन सकती है। लेकिन पिछले कई सालों से मेरा सारा समय दूसरे दूसरे कामों में खर्च होता रहा है। शायद वे काम भी उतने ही महत्व के थे। लेकिन इधर सेगाँव (सेवाग्राम) में रहने के कारण इसके विषय में मुझे बहुत ही पक्का विश्वास हो गया है। अब तक हमने लडकों के दिमाग में हर तरह की जानकारी ठूँसने का ही यत्न किया है मगर इस बात को कभी सोचा भी नहीं कि उनके दिमाग किस तरह से खुले और किस तरह से उनकी तरक्की हो। अब हमें रुक जाओ (हाल्ट) कहकर शारीरिक श्रम के द्वारा बालक को समुचित शिक्षा देने के काम में अपनी शक्तियाँ लगा देनी चाहिये। शिक्षा में शारीरिक काम का स्थान गौण न हो, बल्कि वही बौद्धिक शिक्षा का मुख्य साधन रहे।

प्रश्न —यह चीज समझी जा सकती है किन्तु आप यह शर्त क्यों लगाते हैं कि इसमें स्कूल का खर्च भी निकलना चाहिये ?

उत्तर —इस शर्त से हम इस बात की परीक्षा कर सकेंगे कि इस तरह का शारीरिक काम कितना मूल्यवान् है। चौदह वर्ष की उम्र में अर्थात् सात साल की पढ़ाई के बाद, जब बालक स्कूल से निकले, तो उसमें कुछ कमाने की शक्ति आ जानी चाहिये। आज भी गरीबों के बालक अपने-अपने माँ बाप की सहायता करते हैं। उनके मन में यह विचार होता है कि अगर हम अपने माँ बाप के साथ काम नहीं करेंगे तो वे क्या खायेंगे और हमें क्या खिलायेंगे। यही एक शिक्षा है। इसी तरह से सरकार सात साल की उम्र में बालक को अपने कब्जे में ले ले और उसे कमाऊ बनाकर वापस माँ बाप को सौंप दे। इस तरीके से आप शिक्षा भी देंगे और साथ ही बेकारी की जड भी काट सकेंगे। यह आवश्यक है कि किसी न किसी धंधे की शिक्षा

बालकों को जरूर दी जाय। इस मुख्य उद्योग के साथ आस पास आप उस शिक्षा का भी प्रबंध कर सकेंगे जो बालक के मस्तिष्क और शरीर, साहित्य और कलाभिरुचि में विकास में सहायक होगी। बालक जो कारीगरी सीखेगा उसका वह निष्णात भी बन जाएगा।

प्रश्न :—मान लें कि एक लड़का खादी निर्माण की कला और शास्त्र को सीखना आरम्भ करता है तो क्या आप यह मानते हैं कि उस कला में निष्णात बनने के लिये उसे पूरे सात साल लगेंगे?

उत्तर —जी हाँ! अगर वह यंत्र की तरह न सीखे तो सात साल जरूर लगने चाहियें। हम इतिहास के अथवा भाषा के अध्ययन के लिये सारे वर्ष क्यों खर्च करते हैं। इन विषयों को अब तक जो बनावटी बड़प्पन दिया जाता है क्या उनके मुकाबिले इस उद्योग का महत्व कुछ कम है?

प्रश्न —किन्तु आप तो प्रधान तया कताई और पिंजाई का विचार करते हैं। इससे तो यह मालूम होता है कि आप इन स्कूलों को बुनाई शाला बनाना चाहते हैं। किसी बालक की रुचि बुनाई की तरफ न हो और किसी दूसरी चीज में हो तो उसके लिये आप क्या करेंगे।

उत्तर —सच है, उस दशा में हम उसे कोई दूसरा उद्योग सिखायेंगे। लेकिन आपको जानना चाहिये कि एक स्कूल में बहुत से उद्योग सिखाने का प्रबंध करना काफी कठिन होगा। ख्याल यह है कि हमें हर २५ छात्रों के लिये एक शिक्षक रखना चाहिये और जितने शिक्षक मिलें उतने २५-२५ छात्रों की कक्षाओं या पाठशालाओं का प्रबंध करना चाहिये और इनमें से प्रत्येक पाठशाला में एक एक अलग अलग उद्योग का, जैसे कि बढ़ईगिरी, लुहारी, चमारी या मोचीगिरी का शिक्षण देना चाहिये। आपको सिर्फ एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इनमें से प्रत्येक उद्योग के द्वारा हमें बालक के मन का विकास करना है। इसके सिवाय एक दूसरी बात भी मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि आपको शहरों का ख्याल छोड़ देना चाहिये और सारी शक्ति का उपयोग गाँव में करना चाहिये। गाँव महासागर है और शहर इस सागर में बूँद की तरह हैं। इसलिये इस सिलसिले में आप ईंट वगैरह बनाने का विचार नहीं कर सकते। जो लड़के इंजीनियर बनना चाहेंगे वे सात साल की पढ़ाई के बाद उच्च और विशिष्ट अध्ययन के लिये कालेजों में चले जा सकते हैं।

एक और चीज पर भी मैं जोर देना चाहता हूँ। हमारी आदत हो गई है कि हम गाँवों के उद्योग धंधों को कोई चीज नहीं समझते। क्योंकि हमने शिक्षा को शारीरिक श्रम से अलग रखा है, शरीर श्रम को कुछ हलका स्थान दिया है और वर्णसंकरता के प्रचार के कारण आज हम कतिनों, जुलाहों, बढ़इयों और मोचियों

वगैरह को हलकी या गुलाम जाति का समझने लगे है। चूँकि हमने उद्योग को हलका समझा, यानी बुद्धिमानो की शान के कुछ खिलाफ समझा, इसीलिये हमारे यहाँ काम्पटन और हारग्रीव के समान यत्रशास्त्री पैदा नही हो सके। यदि हमने इन धधो को स्वतत्र प्रतिष्ठा मानी होती और इनके दर्जे को विद्वत्ता के समान ही ऊँचा समझा होता तो हमारे कारीगरो मे से भी बड़े बड़े आविष्कारक अवश्य पैदा हुये होते। इसमें कोई शक नहीं है कि यत्रों के आविष्कार के साथ ही साथ मिलें भी खड़ी हो गई और उन्होंने हजारो को बेकार बना दिया। म मानता हूँ कि यह एक आसुरी चीज थी। यदि हम अपनी समस्त शक्तिको गाँवो मे खर्च करेगे तो कला कारीगरी या फिर दस्तकारियों के एकाग्र अभ्यास म जो शोधक बुद्धि जागृत होगी वह गाँवो के तमाम लोगो की आवश्यकताओ को पूरा करेगी।

(एक शिक्षामत्री के साथ बातचीत, हरिजन, १८ सितम्बर, १९३७।)

गाधीवादी तकनीक और दृष्टिकोण— डा जाकिर हुसैन

शिक्षा सस्कृति के सर्वोत्तम मूल्यो को जीवित रखने और आत्मसात करने की प्रक्रिया है। आत्मसातीकरण का यह काम केवल शैक्षणिक उत्पादक कार्य के माध्यम से ही सम्भव है। इस प्रकार का शैक्षणिक उत्पादक कार्य केवल यांत्रिक ढग का न होकर हमें 'उद्देश्य से उद्देश्य की ओर' ले जाने वाला होना चाहिये जिसके अभाव में फिर वह मात्र व्यक्तिगत अह की तुष्टि का साधन रह जाता है। इस प्रकार के उत्पादक कार्य का अर्थ हमेशा ही दूसरों की सेवा के साथ शिक्षा का समवाय साधना है। इसके लिये आवश्यक है कि हमारे स्कूल और विश्व विद्यालय सभी को इस प्रकार के कार्य-समवाय का रूप धारण करना होगा ताकि वे हमें हमारी सर्वोत्तम सास्कृतिक विरासत को भोगने में मददगार हो सके।

[१८ जनवरी, १९५३ को उपरोक्त विषय पर दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में दिये गये भाषण पर से।]

विनोबा

मातृ-शक्ति श्रेष्ठतम शक्ति है

(गत ८, ९ और १० मार्च को पवनार के ब्रह्म विद्या मंदिर में एक अखिल भारतीय स्त्री शक्ति सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन को पूज्य विनोबा जी और प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने भी संबोधित किया। *पूज्य विनोबा जी के सम्मेलन में कुल तीन प्रवचन हुये। उनका* सारांश यहाँ दिया जा रहा है।)

इन दिनों बाबा की बोलने की प्रवृत्ति कम हो रही है और मैं अब बोलने से पूर्व चिंतन नहीं करता हूँ। सभा में आकर लोगों को भगवान मानकर उनका चेहरा देखकर जो भी प्रेरणा हो जाय वही बाबा बोलता है। यह स्त्री-शक्ति सम्मेलन है। भारत में स्त्री को महिला भी कहते हैं। अब यह महिला शब्द महान् है। [यों भी स्त्री शब्द का अर्थ भी महान् होता है। उसका अर्थ है विस्तार करना, फैलाना। संस्कृत की यही खूबी है कि उसके शब्द बोलते हैं। गीता को तो हमने माता ही कहा है। गीता में सात शक्तियों का जिक्र आता है। फिर यह ७४ का साल यू एन. ओ. ने भी 'स्त्री वर्ष' माना है। तो इस प्रकार से स्त्री-शक्ति का सम्मेलन करना समयोचित है।

किन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि आज भारत में स्त्री के प्रति दृष्टि बदल गई है। आज उसकी ओर लोग कामिनी की तौर पर देखते हैं। याने कामनाओं को पूरा करने वाली। किन्तु मेरी राय में यह मातृशक्ति का अपमान है। मनुस्मृति में तो कहा गया है कि एक उपाध्याय से दसगुण श्रेष्ठ पिता होता है, किन्तु माता तो सहस्र पिताओं से भी श्रेष्ठ है। यह नहीं कहा कि माता सहस्र पिताओं के बराबर है बल्कि वह उससे भी श्रेष्ठ है। किन्तु आज तो वह मात्र कामिनी हो गई है।

अश्लील सिनेमा पर रोक लगाओ

इसके लिये खराब सिनेमा जिम्मेदार हैं। बाबा ने तो एक बार इसके विरुद्ध आन्दोलन भी किया था कि अश्लील सिनेमा के चित्रों पर कालिख पोतो और निर्णय करो कि खराब सिनेमा नहीं चलेंगे। प्राचीन भारत में मातृशक्ति का गौरव था तो उसका कारण यह था कि उस समय जनसंख्या कम थी और लोगों को सताना की इच्छा थी। किन्तु अब तो समय बदल गया है और अब संतानें बढ़ाना गलत होगा। आज रूस जैसे देशों में भी मातृशक्ति का गौरव होता है, क्योंकि उनके पास भी जमीन अधिक है और आदमी कम है। किन्तु भारत जैसे देश में तो हमें अब नये सिरे से विचार करना ही होगा। इसलिये बाबा की राय में तो अब महावीर का या फिर रोमन कैथलिया का मार्ग ही एक मार्ग है। वहां पर बहनों को ब्रह्मचारिणी रहने के लिये उत्साहित किया जाता है, और वही हमें भी करना होगा। तो इसके लिये मांस और शराब इन दो चीजों का त्याग तो पहली बात है, किन्तु सिनेमा आज की ही तरह से चलते रहे तो फिर सारी कोशिश बेकार हो जायेगी। इसलिये बाबा का कहना है कि खराब सिनेमा पर रोक लगाओ। तब बहनें भी ब्रह्मचारिणी होंगी और ज्ञानेश्वर महाराज की भाषा में तब वे महिषासुरमर्दिनी बनेंगी। खराब सिनेमा समाप्त करने के लिये तो घराव भी किया जाना चाहिये।

राजस्थान सरकार वचन का पालन करे :

यही बात शराब के बारे में भी है। शराब का मारा दोष माताओं को ही सहन करना होता है। गरीबी हटानी हो तो भी शराब बंद करनी होगी। बाबा के सुझाव पर चार बहनें भा . की बारह साल की पदयात्रा पर घूम रही है। वे जहाँ भी जाती हैं बहनें उनकी सभाओं में खूब आती है और हर समय शराब के कारण अपने पतियों से पीटे जाने की शिकायत करती हैं। तो शराब की यह पिशाची वृत्ति है जिसे पैसे की वृत्ति कहते हैं। किन्तु हमारे देश में एक राजाजी थे जो बहुत लम्बी आयु भोगकर गये। उनसे किसी ने पूछा कि आपने इतनी लम्बी आयु कैसे पायी तो वे बोले कि जब मैं मद्रास राज्य का प्रधानमंत्री था तो मैंने शराब बंदी कर दी। उस पर सभी माताओं का आशीर्वाद मुझे मिल गया इनसे मैंने लम्बी आयु पायी है। शराब हिन्दू तथा इस्लाम धर्मों में भी वर्जित की गई है किन्तु फिर भी यह खूब बढ़ाई जा रही है। यह सब पैसे के लिये किया जा रहा है। राजस्थान में सरकार ने गोकुल भाई के साथ वचन दिया था शराबबंदी का किन्तु फिर इसी पैसे के लालच में आकर वह भी तोड़ दिया। किन्तु समझना चाहिये कि हम पैसे से नहीं अन्न से पलते हैं। आज गुजरात में आन्दोलन हो रहा है। वह कोई पैसे के कारण नहीं हो रहा है अनाज की कमी है लोगों को इसलिये हो रहा है। तो बाबा कहता है कि पैसे के बजाय अन्न बढ़ाने का काम करो और शराब बंद करो। वह तो बहुत पहले ही कहते थे कि अन्न

ही ग्रह है। तो अन्न बढ़ाओ और यह वेद का कहना है केवल आज के प्लानिंग कमीशन का नहीं।

राष्ट्रपति की सहमति :

तो बाबा ने सुझाव दिया था कि लगान तथा वेतन का कुछ भाग अन्न में लो दो तो फिर अनाज की समस्या बहुत हद तक दूर हो जायेगी। अभी राष्ट्रपति बाबा से मिलने आये थे। वे तो हमारे शासन में एकमात्र समझदार व्यक्ति है। तो वे भी मान्य करके गये कि यह होना चाहिये। राष्ट्रपति ने मुझसे कहा कि इसके लिये जनताका शिक्षण होना चाहिये तो मैंने कहा कि पहले सरकार इस सुझाव को स्वीकार करने की घोषणा करे तो बाबा अपने हजारो सर्वोदय सेवको को इसके लिये जनशिक्षण के लिये भेज सकता है।

'शरीयत' बदली जानी चाहिये :

फिर बाबा परदे को भी हटाने के पक्ष में है। किसी समय इसकी आवश्यकता रही हो सकती है, किन्तु अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। आज तो मुसलमान और खासकर बिहार में हिन्दू स्त्रियाँ बस शादी होते ही घर के भीतर बद-सी हो जाती है और फिर तो वे मरने पर ही बाहर आती है। किन्तु पहले जब सेना पर आधारित समाज था तो पुरुष राज्य चल सकता था किन्तु अब तो अहिंसा का समाज बनाना है तो फिर स्त्रियो को आगे आना होगा। परदा स्त्री की दासता का कारण है। मुसलमानो में चार चार शादियाँ करते है और कहते है कि यह हमारे धार्मिक विधान में है इसमें कोई दखल न दे। किन्तु बहुत लोगो को मालूम नहीं है कि यह कुरान का अनिवार्य भाग नहीं है। कुरान के मुख्य भाग को 'उसुल' कहते है और बाकी को 'शरीयत'। तो यह उसुल नहीं बदल सकता है, किन्तु शरीयत तो समय समय पर बदलती गई है। यह शादी आदि की बात उसुल में नहीं शरीयत में है जो बदली जा सकती है। कई मुस्लिम देशो ने तो अपने को आमूल ही बदल डाला है। इसलिये बाबा की राय में इसमें सुधार होना चाहिये। इसमें कहा जाता है कि हम समझाने की राह देख रहे है। अब आप देखें किन्तु यह सुधार होना चाहिये।

यही बात दहेज के लिये भी है। यह तो आज स्त्रियो का आम विक्रय हो रहा है। कहते है कि लड़के की पढ़ाई आदि पर हुये खर्च के लिये रकम दो तो शादी हो सकती है। तो यह भी एक अपराध है और मातृ-शक्ति का अपमान ही है। इसका विरोध होना चाहिये। बाबा ने तो एक सूत्र ही बनाया है कि एक शादी जिन्दगी की बर्बादी। आज तो एक एक शादी में घर के घर तबाह हो जाते है। बिहार में तो यह और भी भयानक है। तो यह सब भी रुकना चाहिये और महिलाओं को इसमें आगे आकर आन्दोलन करना चाहिये।

स्त्रियाँ आगे आवे :

भंगीमुक्ति का भी सवाल है। उसमें भी मातायें बहुत कुछ कर सकती है। बाबा ने देखा है कि मैला सिर पर ढोकर ले जाने का काम भी अक्सर स्त्रियाँ

ही करती है पुरुष तो बस उसे गड्ढे मे ढकेलने मात्र का काम ही करते है। तो यह आन्दोलन भी स्त्रियो को उठा लेना है। यदि स्त्रियाँ इस तरह से आगे आकर कुछ करनेका सोचेंगी तो फिर सरकार और समाज को भी सोचना होगा और वे भी अपना अपना काम करेगे। किन्तु हम सरकार की राह न देखें। सरकार के पुर्जे तो बहुत धीमे धीमे चलते है कई बार तो एक छोटे से पुर्जे के कारण भी भारी भरकम वह सारी मशीन बिल्कुल बद ही हो जाती है। तो यह सारा काम स्त्री-शक्ति का है।

बाबा ने अब अपना काम कर दिया। शकराचार्य ने भी इस देश में हजारो प्रवचन किये होगे। वे पूरे सोलह साल भारत में घूमे। उनसे किसी ने पूछा कि जनता के लिये आप क्या कर्तव्य सुझाते है तो उन्होने कहा कि जनता के चार कर्तव्य है। वे क्या है। 'गेय गीतानाम सहस्रम्। ध्येय श्रीपति रूपम्। नेय सज्जन शक्ति चित्तम्। देय दीनजनाय वित्तम्। अब शकर ने लोगो को यह नही कहा कि वेद पढो, उपनिषद पढो। अरे जीवन की बुनियादी बाते होगी तो फिर ये बाते भी हो ही जायेगी। तो बाबा के लिये आज यह परिषद ही बन गई है। लोग बहुत है, काफी दूर से केवल मेरी बात ही सुन रहे है इसलिये उपनिषद् तो नही है पर परिषद अवश्य है। तो मने कह दिया है कि हमे क्या करना है।

यूथ याने झगडालू तरुण याने तारनेवाला :

अब यहा पर अधिकतर तो तरुण लोग ही है। आज कल उन्हे 'यूथ' कहा जाता है। किन्तु तरुण और यूथ म फर्क है। यूथ याने झुंड में रहने वाला, झगडालू। तरुण का अर्थ है तारने वाला। तरुण वृद्ध के कधे पर बैठे होते है इसलिये वे दूर तक देख सकते है। किन्तु याद रहे कि यदि उनके पैर धरती पर, वृद्ध के कधे पर नही होग तो वे गिर पडेंग और फिर तो देखना तो दूर रहा अपने हाथ पैर ही तोड बैठेंगे। इसलिये ही कहा गया है कि न सा सभा न या वृद्धम्। तो म इन तरुणियो से कहता हूँ कि वे प्राचीन के उत्तम अश को जरूर पचाये, वे उसका आदर करें और उससे शक्ति प्राप्त करके आगे बढे।

सही शिक्षा का कार्य—

प्रिय ग्लूकन ! मुझे विश्वास है कि इससे (शिक्षा से) प्रजा को उनसे (रक्षकों या शासको से) रक्षा होनी ही चाहिए। क्योंकि सही शिक्षा में, चाहे वह कैसी भी याने किसी भी विषय में हो, उन्हे (रक्षकों या शासकों को) एक दूसरे तथा अपने सरक्षण में रहने वालों के साथ व्यवहार में मानवीयता प्रदान करने तथा सभ्य बनाने की प्रवृत्ति होती है।

— सुकरात, रिपब्लिक, भाग ३, कथन ४१६, पृष्ठ१२६।

अण्णा सहस्त्रबुद्धे

गुरुकल्प प्रशिक्षण केन्द्र कनकौली

[अप्पा साहब पटवर्द्धन भारत के अपने ढग के सेवक थे जिन्होंने गाधीजी के आवाहन पर अपने जोवन के आराम के अवसरो का त्याग करके सेवा का व्रत लिया और गाधीजी ने जब उन्हे अपने सचिव का पद तक देना चाहा तो उससे भी लेने से इन्कार कर दिया। इसी तरह से उन्होंने गुजरात विद्यापीठ म प्राध्यापक का पद भी गाधीजी की इच्छा होने पर भी स्वीकार नहीं किया। उच्च श्रेणी में एम ए करने के बाद उन्होंने अपने गाव में ही कुछ सेवा करने का व्रत लिया और खेती के विकास के माध्यम से शिक्षण का काम हाथ में लिया। उनके गोपुरी आश्रम (कनकौली) की भूमि जो कभी वीरान थी, हरी भरी और आस-पास के गावो के लिये प्रेरणा और सलाह का केन्द्र बनकर पिछले २२–२३ साल से सेवा कर रही है। आज यह केन्द्र अप्पा साहब के अवसान के बाद देश के एक अन्य प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्ता 'पदमभूषण', जो योजना आयोग के भी सदस्य रह चुके ह, श्री अण्णासाहब सहस्त्रबुद्धे के मार्गदर्शन में काम कर रहा है। नीचे उसका सक्षिप्त विवरण नयी तालीम के पाठक के लिये दे रहे हैं।]

पूज्य अप्पा साहेब पटवर्धन ट्रस्ट की ओर से ता कनकौली जिला रत्नागिरी, महाराष्ट्र में २५ जून १९७३ को एक गुरुकुल प्रकल्प शिक्षण केन्द्र आरम्भ हुआ। १६ विद्यार्थियो को पहले इसमें प्रवेश दिया गया। उनमें से पाँच तो एस एस सी तक, पाच छ नवी तक और बाकी मराठी सातवी कक्षा तक पढाई किये हुये थे। इन १६ लोगो म से दो बहनें थीं।

६ माह का अनुभव यह आया कि अब उस पर से हम कुछ ठोस दिशा की ओर बढ सकते हैं। उस पर से जो चिंतन और योजना बनी उस पर से हम कह सकते हैं कि नये शिक्षण की देश में काफी गुजाइश है।

मुक्त शिक्षण का आरम्भ :

हमारे पास इस तरह के विद्यार्थियो का समूह था कि उसके लिये हम पहले से ही कोई अभ्यासक्रम नही रखना चाहते थे। पहले पहल तो वे केवल पाँच-छ घटे तक खेत में मजदूरी का ही काम करते थे और फिर दो तीन घटे की पढाई होती थी। पढाई में भी चूंकि हर छात्र की योग्यता का स्तर भिन्न भिन्न था अत उसकी अपनी योग्यता के हिसाब से ही अभ्यास क्रम बनाया गया। कई लोगो को मराठी भाषा पढना और लिखना अच्छी तरह से नही आता था तो उनका उसी ढग से क्लास लिया गया। कुछ लोग ऐसे थे कि जो हिसाब और गणित नही जानते थे। महाराष्ट्र और भारत के भूगोल की जानकारी भी सामुहिक रूप से दी जाती थी।

आश्रम में सामुदायिक प्रार्थना होती है। भोजन व्यवस्था भी सामुदायिक ही है। एक घटे के लिये श्रमदान होता है और वह हर छात्र के लिये अनिवार्य है। ऐच्छिक वाचन की दृष्टि से पुस्तकालय का भी छात्रो ने काफी लाभ लिया। खेती मे काम करते समय साथ साथ जो फसल दे ले रहे थे उसके बारे में आरम्भ से अन्त तक पूरी जानकारी लेने का अवसर छात्रो को नही मिल सका इसका नतीजा यह हुआ कि धीरे धीरे छात्र जडवत् काम करने से ऊब गये और उसमे से दस छात्र तो वापस भी चले गये। किन्तु ज्यो ज्यो समय बढता गया और हमारी त्रुटियाँ हमारे सामने आती गई उस पर से फिर हमे चिंतन का काफी अवसर मिला और हम इस निर्णय पर आए है कि इस प्रकार से युवको को यदि सही शिक्षण देना हो तो फिर हमारे सारे कार्यक्रम मे काफी हेरफेर करने चाहिये।

वैशिक शिक्षा की ओर मुडना पडा :

इसलिये जो पुराने वेसिक स्कूल चलते थे उनका और हमारा ध्यान गया। खेती के माध्यम से प्राथमिक शालाओ में पाँचवी, छटी और सातवी कक्षा के लिये रोज दो घटे खेती के काम के लिये रखे गये है। इस तरह के स्कूलो के कार्यक्रम को उत्तेजन देनेके लिये हम लोगो ने फिर यह तय किया कि इस पर जिला परिषद के साथ मिलकर सलाह और योजना बनानी चाहिये। अब इस प्रकार की योजना बन भी गई है।

रत्नागिरी जिले में एक एक तहसील मे पाँच दस हाई स्कूल चलते है। हाई स्कूल चलाने की ओर इधर लोगो का ध्यान काफी गया है। किन्तु उनमे जिस तरह की पढाई है उसमे तो केवल दिये गये पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद विद्यार्थी केवल सफेदपोश बनेगा और शरीरश्रम से नफरत करेगा और नौकरी नही मिली, जिसकी ही अधिक संभावना है, तो फिर बेकार रहता। इसलिये हमने विचार विनिमय करने के बाद यह तय किया कि कनकौली तहसील में ऐसी हम चार पाँच माध्यमिक शालायें चलावें जिनके पास दस पन्द्रह एकड तक खेती हो और फिर उन्हे आठवी कक्षा के विद्यार्थियो के लिये एक पाठ्यक्रम के अलावा एक अतिरिक्त कार्यक्रम के रूप मे एक

दो घंटे खेती का काम करने की सुविधा प्रदान की जाय। यह भी प्रयास किया जाय कि आठवीं कक्षा तक के छात्रों के लिये ये शालायें ड्राय बोर्डिंग हाउस भी चलायें। इस तरह से यदि हम इस प्रकार के छात्रों के बीच कुछ काम कर सके तो फिर एस एस सी और मैट्रिक पास करने के बाद जो विद्यार्थी युवक प्रशिक्षण योजना के लिये हमारे पास आयेंगे वे न तो नये जीवन के लिये भय ही रखेंगे और न ही उनके दिलमें शरीर श्रम के लिये कोई हिचकिचाहट होगी।

अभिभावकों का सहयोग आवश्यक :

इस दिशा में चिन्तन करते करते हम इस नतीजे पर भी आये कि इस प्रकार से यदि हम केवल जमीन पर काम करने करते प्राथमिक और हाईस्कूल छात्रों के लिए एक अनुकूल वातावरण बना भी लें तो भी जब तक इस काम में हमें उनके अभिभावकों का सहयोग नहीं मिलता तब तक यह सही नतीजे नहीं दे सकती। अतः इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि इस कार्यक्रम में ग्राम के लोगों का भी पूरा पूरा सहकार हो और खेती की योजना तथा लघुउद्योग उद्योगों आदि में उनका भी हाथ हो। इसलिये अब वनकोली तहसील में अब खेती विस्तार का व्यापक कार्यक्रम भी हमने अपने हाथ में लिया है। वहाँ पर खेती एक ही फसल देने वाली है किन्तु यदि उस पानी की सुविधा दी जाय तो वह तीन फसल भी दे सकती है। वहाँ पर एक एक दो दो एकड़ वाले काश्तकार ही अधिक हैं। तहसील में पाँच नदियाँ हैं। कुछ बड़े बड़े तालाब भी हैं। इन सबका यदि सही ढंग से उपयोग किया जाय तो लगभग दस हजार एकड़ भूमि सिंचाई के नीचे आ सकती है। अगर एक पाँच साला कार्यक्रम बनाकर काम हो तो आज की एक फसली जमीन को तीन फसली बनाया जा सकता है। अब इस कार्यक्रम में गाँव के काश्तकारों को भी शामिल करके हम इस तरह के शिक्षण केन्द्र के लिये अनुकूल हवा बना सकते हैं। इसलिये यह सोचकर हमने सार्वजनिक योजना की दृष्टि से कृषि विस्तार के कार्यक्रम को भी अपने शिक्षण केन्द्र के कार्यक्रम का एक अनिवार्य भाग बना दिया है। हमारे छात्र यह विस्तार काम स्वयं करेंगे और फिर इसमें जो भी कठिनाइयाँ आयेंगी उनका सामना करने की भी हिम्मत उनमें आयेगी।

तकनीकी का शैक्षिक उपयोग :

इस प्रकार की कोई भी शैक्षणिक योजना चलाने के लिये फिर केन्द्र के पास एक छोटी मोटी वर्कशाप भी होनी आवश्यक है। उसमें हथियारों और औजारों की मरम्मत करने के लिये आवश्यक सामान और उपकरण हों, एक या आवश्यक मात्रा में ट्रैक्टर हो, फसलों पर लगने वाले कीटों का शमन करने के लिये स्प्रेइंग मशीन हो, एक इलेक्ट्रिकल पम्प बिठाने और उसकी दुरुस्ती करने के लिये भी आवश्यक उपकरण हों और फिर इन सारी मशीनों के चलाने के लिये कुशल कारीगरों के साथ ही आयल

इजिन आदि की तो आवश्यकता होगी ही। इस प्रकार से यह सब पाठ्यक्रम का ही भाग होगे।

काम हो शिक्षा बनाने की प्रक्रिया

अब लगभग ६ माह के अनुभव पर से हम लोग इस निष्कर्ष पर आये हैं कि खेतीको यदि शिक्षा का, और यह सिद्धान्त तो असल में सभी प्रकार के कामो पर भी लागू होता है, माध्यम बनाना है, तो फिर आज की इस पद्धति में कि हम छात्रो को खेत पर काम करने के लिये कहते हैं और वे लगभग उसी भूमिका से काम करते हैं जैसे कि एक मजदूर करता है तो इसके बदल में हम छात्र को ही एक खेत देकर उसकी ही जिम्मेदारी से वह उस पर काम करे। अब इस प्रक्रिया के दो रूप हो सकते हैं। एक तो यह कि हम प्रत्येक छात्र को अलग अलग खेत दें या फिर उनके समूह बनाकर दें। समूह बनाकर देंगे तो फिर शिक्षको के उनके साथ काम करने में सुविधा होगी और वे परस्पर सहकार से सीख सकेंगे। इस प्रकार से पाँच छात्रों का एक समूह हो सकता है। उस जमीन पर काम करने के लिये उन्हें सभी प्रकार की सुविधायें दी जायें और उस पर वे जो उपज लें उसका कम से कम ७५ प्रतिशत छात्रों और शिक्षकों को दे दिया जाय। इस प्रकार से साल भर में एक एकड पर हम तीन फसल ले सकते हैं और यह छात्रों और शिक्षकों की आय का बहुत भरोसे का आधार बन सकता है। हमने औसत लगाया है कि एक तरह से काम करने पर वे प्रति एकड चार से पाँच हजार रुपये की आमदनी ले सकते हैं। यदि इस तरह से मानो स्कूल दो ही छात्र मिलकर काम करें तो खर्चा और सर्विसिंग चार्जेस काट कर वे प्रति एकड पीछे प्रति छात्र कम से कम १८०० रु की एक सालाना आय लेंगे। इसमें से एक हजार रुपये उनके निजी खर्च में ले सकते हैं तो भी पाँच सौ रुपये की उनके पास जमा रह सकती है। हमारे अंदाज से यह आय केवल चार घंटा रोज काम करने में होती है। इस प्रकार से छात्र और शिक्षक चार घंटे अपने खेत पर और बाकी चार घंटे शाला के खेत पर काम करेंगे तो विस्तार के काम के साथ भी उनका समवाय हो सकेगा। इसके साथ हमारा अभ्यासक्रम इस तरह का है कि वह इसके साथ साथ उसे भी पूरा कर सकेगा। इस प्रकार से छात्र न केवल तज्ञ कृषक का ही अपितु तज्ञ व्यवस्थापक की भी ट्रेनिंग ले सकता है। साथ ही चूँकि एक विस्तार शिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से गांव के साथ उनका जीवित सम्बन्ध है तो इस प्रकार से वे गांव की समस्या को भी समझ और हल कर सकेंगे। हमारे विचार में इस प्रकार से शिक्षा को समाज विकास का सफल माध्यम बनाया जा सकता है।

छ माह के अनुभव के बाद आज हम कह सकते हैं कि इस तरह की पार्श्व-भूमि में हम जो काम कर रहे हैं उसके माध्यम से सहज ही हमारा पाठ्यक्रम भी विकसित हो रहा है और आगे चलकर यह कोई परिपूर्ण रूप ग्रहण कर लेगा यह हमारी धारणा है।

एस. वी. गोविन्दन्

तालीम का राष्ट्रीयकरण

[श्री एस. वी. गोविन्दन जी केरल के रहने वाले हैं। वे स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त अनुभवी शिक्षक हैं और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी काम कर चुके हैं। केरल के प्रख्यात् दैनिक 'मातृभूमि' में वे सालों तक काम कर चुके हैं। अभी वे रचनात्मक कार्य में लगे हैं। इस लेख में लेखक ने बहुत महत्व का सवाल उठाया है और शिक्षाविदों को एक प्रकार से चुनौती दी है।

हम इस विषय पर नयी तालीम के पाठकों के विचार आमंत्रित करते हैं। खासकर शिक्षक समुदाय को ही इस साल का जवाब देना है तो वे इसमें अपनी स्थिति स्पष्ट करेंगे यह आशा है।]

एक जमाना था जब लोग एक दूसरे को देखकर और एक दूसरे से सुनकर तालीम पाते थे। उस जमाने में आबादी भी बहुत कम थी और तालीम के विषय भी उसी परिमाण में कम थे। फिर गुरुकुलों की व्यवस्था चली। इस समय भारत की ही तरह विदेशों में भी धर्म के आधारपर गुरुकुल चलाये जाते थे। इस समय शिक्षा धर्म के माध्यम से दी जाती थी। शिक्षा के अन्य सब विषय जैसे कि गणित, वैद्यक,न्याय या तर्कशास्त्र, भूगोल आदि भी धर्म की ही दृष्टि से सिखाये जाते थे। यानें इन सब विषयों को सीखने का और कोई अपर उद्देश्य नहीं था सिवाय इसके कि यह जानना कि वे सब विषय धर्म के पालन में किस प्रकार से मदद कर सकते हैं। इस प्रकार से शिक्षा का उद्देश्य पूर्णतः धार्मिक था और चूंकि धर्म समाज से गहराई से सम्बन्धित था अत हम कह सकते हैं कि उस समय शिक्षा का मूल उद्देश्य सामाजिक था। सामाजिक जीवन जिसमें सम्पन्न और परिपूर्ण बने यही बात उस समय की शिक्षा का मुख्य विषय थी। इन गुरुकुलों की एक और विशेषता यह भी थी कि इनमें गुरु और शिष्य बहुत लम्बे काल तक साथ रह सकते थे और इस प्रकार से उनमें परस्पर पारिवारिकता और परिचय अच्छी तरह से सम्पन्न हो सकता था और इस प्रकार से गुरु शिष्य के पूरे जीवन को बनाने या बिगाड़ने में सक्षम होते थे। यह समय सामान्यत श्रुति का समय है और इस समय कोई पुस्तकें आदि लगभग नहीं थी।

,पुस्तको ने तालीम बदल दी :

किन्तु बाद को जब पुस्तको का आविष्कार हो गया तो शिक्षा का ढाँचा काफी बदल गया। अब गुरुकुलो का रूप भी बदलने लगा और वे केवल गुरुगृह न रहकर केवल शिक्षालय बनने लगे। याने अब बडे विश्व विद्यालयो की स्थापना होने लगी जहाँ पर गुरुओ के अनेक परिवार और हजारो छात्र रहने लगे। इसमे सबसे बडी बात यह होने लगी कि अब शिष्य केवल एक ही गुरु से नही अपितु अनेक गुरुओ से एक साथ शिक्षा पाने लगे और इस तरह से अब गुरु शिष्य का वह सहज निकट सम्बन्ध टूटने लगा। आरम्भ मे तो इन विश्वविद्यालयो मे भी धर्म को ही आधार मानकर शिक्षा दी जाती थी। किन्तु बाद को इनमें शिक्षा को धर्म से अलग किया जाकर वह राज्यशास्त्र अर्थशास्त्र आदि के रूप में अलग अलग विभक्त होने लगा। अब शिक्षा का उद्देश्य केवल धार्मिक जीवन बिताने के लिये ही शिष्य को तैयार करना नही था अपितु उस जीवन यापनके साधनो और विधियो का शिक्षण देना भी शिक्षा का उद्देश्य हो गया। एक बात और भी अब होने लगी कि अब शिक्षा सार्वभौम नही रह गई। याने अब वह सबके लिए सुलभ नही रह गई क्योंकि एक तो आबादी अधिक हो गई और फिर सबको शिक्षा पाना ही है यह विचार समाज मे जड नही पकड पाया था। सबको ही शिक्षा पाना आवश्यक है यह विचार तो असल में अभी हाल का ही विचार है यद्यपि इस प्रकार की शिक्षा अभी ससार में कही भी नही है यहा तक कि अत्यन्त विकसित देशो में भी नही। भारत के सविधान मे भी सातवे दर्जे तक सबको तालीम देना अनिवार्य किया गया था किन्तु हम भी अभी आजादी के २६ साल बाद भी कहाँ यह व्यवस्था कर पाये है।

केरल का चित्र :

केरल भारत का सबसे अधिक शिक्षित प्रदेश माना जाता है। वहाँ पर प्राथमिक शिक्षा तो सबके लिये प्राप्त है। उच्च विद्यालयो में भी काफी मात्रा में छात्रों की सख्या में वृद्धि की गई है। वहाँ उच्च शिक्षा भी निशुल्क है। केरल मे लगभग १२००० हाइस्कूल है। जिनमें से कोई ८००० तो अलग अलग समुदायो के हाथ मे है। किन्तु शिक्षा का पटन तो सर्वत्र सरकार के द्वारा ही बनाया गया है और वही चलता है। पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तके अध्यापको का वेतन आदि सभी बातें सरकार ही तय करता है। आज कल तो निजी स्कूलो के अध्यापको का सारा वेतन भी सरकार ही देती है और हाईस्कूल की अन्तिम परीक्षा भी सरकार के हाथ में है। इस प्रकार से केरल मे शिक्षा पर सरकार का नियत्रण अन्य प्रदेशो के मुकाबिले कही अधिक है और वहाँ पर समूची उच्च शिक्षा करीब सभी सरकार के हाथ में ही है। आम शिक्षण पद्धति को अपनाने का मतलब ही है कि तालीम का राष्ट्रीयकरण हो। सेक्यूलर स्टेट मे तालीम की व्यवस्था सरकार के ही हाथ में रहनी चाहिये यह भी कह सकते

है। यदि शिक्षा अलग अलग समुदायों के हाथ में रहेगी तो फिर वह सार्वभौम तो नही ही हो सकेगी अपितु साथ ही वह बहुत भिन्न भी होगी। इस विचार के मानने-वाले बहुत लोग हैं।

समाजवादी देशों में तो यह प्रक्रिया बहुत ही व्यवस्थित ढग से चलती है और वे तो शिक्षा को अपने राजनैतिक दृष्टिकोण से ही चलाते हैं और यह सिद्धान्त के नाम पर सभी समाजवादी मानते है। इसलिये शिक्षको की नियुक्ति भी वे स्क्रीन करके ही करते है। शिक्षा के राष्ट्रीयकरण में विश्वास करने वाले लोगों को केरल सरकार के इतने राष्ट्रीयकरण से भी सन्तोष नही है क्योंकि वहाँ पर अब भी अपने शिक्षकों की भर्ती और उनका नियमन तथा छात्रों की भर्ती आदि पर निजी विद्यालयों का ही हाथ है। अभी सरकार ने यह काम अपने हाथ मे नही लिया है। विद्यालय इसके लिये आजादी चाहते हैं। कुछ तो किन्ही खास विषयों को भी अपने कब्जे में ही रखना चाहते है। किन्तु सेक्युलर स्टेट में यह नही हो सकता यह भी कहा जाता है। समाजवादी और साम्यवादी दोनों ही कहते हैं कि यदि निहित स्वार्थों को प्रोत्साहन हो तो फिर इस तरह के निजी स्कूल चलाये जा सकते हैं अन्यथा नही। फिर सरकार इन स्कूलों को कोई सहायता न दे और वे स्वयं ही अपने छात्रों से फीस वसूल कर या अन्य तरह से अपना खर्च निकाले।

सरकारी बनाम गैर सरकारी विद्यालय :

शिक्षा पूर्णत सरकार के हाथ में हो यह विचार सबसे अधिक केरल में व्याप्त है और यह वही सबसे अधिक अमल में भी है। किन्तु यदि हम सरकारी और निजी विद्यालयों को निकट से देखें तो पता चलेगा कि सरकारी स्कूलों के बजाय निजी स्कूलो के छात्रो का एक तो उत्तीर्णमान काफी आगे रहता है और उनके शिक्षकों में सेवावृत्ति और छात्र के प्रति लगाव भी अधिक रहता है। वे छात्र पर अधिक निजी ध्यान देते हैं। सरकारी स्कूलों के शिक्षक पढाई पर कम ध्यान देते हैं और इसलिये सरकारी स्कूलों का शैक्षिक स्तर निजी स्कूलों के मुकाबिले बहुत गिरा हुआ है। फिर निजी व्यवस्था वाले स्कूलों में शिक्षकों की बदली का सवाल नही रहता इससे शिक्षक विद्यालय में अधिक रुचि लेते हैं और उन्हे अपने व्यावसायिक स्तर को उन्नत करने के अपेक्षाकृत अधिक अवसर प्राप्त है। यह भी देखा गया है कि उनका सामान्य शैक्षिक स्तर सरकारी स्कूलों के शिक्षको से अच्छा रहता है क्योंकि वे स्वाध्याय में अधिक तन्मयता दिखाते हैं।

एक और उदाहरण :

भारत से बाहर भी शिक्षा सरकार के हाथ में हो यह बात अनेक जगहों पर होती है। यूगोस्लाविया ऐसा ही एक देश है। किन्तु उसकी शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्रीयकरण के नाम से की जाने वाली अन्य व्यवस्थाओं में बुनियादी अन्तर है।

वहाँ पर सारी तालीम की व्यवस्था स्वयं शिक्षकों, सरकार और अभिभावकों की मिली जुली समितियाँ करती है। सरकार केवल उन्हें हर तरह की मदद करती है और बाकी शिक्षा पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। वहाँ पर इस बात पर पूरा ध्यान दिया जाता है कि तालीम का काम करने वाले लोगों को तालीम की बारीकतम जानकारी होनी आवश्यक है इसलिये शिक्षकों को ही नहीं अभिभावकों को भी वहाँ पर तालीम के बारे में बारीक से बारीक जानकारी देने की व्यवस्था रहती है। यह बहुत ही बुद्धिगम्य बात मालूम होती है। इस प्रकार से यदि शिक्षा उत्तम शिक्षकों और अभिभावकों के हाथ में रहे तो एक तो तालीम का नित्य नया रूप बना रहेगा क्योंकि अभिभावक तो समाज में रहने के कारण समाज की नित की आवश्यकताओं से परिचित रहते हैं और शिक्षकों को उस हिसाब से विचार करना होता है। इस तरह से प्रयोगों के लिये हमेशा ही गुंजाइश रहती है। किन्तु यदि शिक्षा को सरकार के हाथ में ही छोड़ दें तो सरकार जिस प्रकार से जड़ होती है वैसे ही शिक्षा को भी बना डालती है और फिर वह जीवन्त समाजकी शिक्षा नहीं रह पाती।

पुनः केरल का उदाहरण

अब फिर केरल का ही उदाहरण लें तो मालूम होगा कि चूंकि वह भारत का सबसे अधिक शिक्षित प्रदेश है इसलिये शिक्षा पर सरकार के पूर्ण नियंत्रण की दृष्टि से विचार करने पर हम सब कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं। केरल में साक्षरता ६१ प्रतिशत है। यह प्रतिशत पिछले १० साल में १३ प्रतिशत बढ़ा है। केरल में १९७१ की गजनगणना के हिसाब से कुल शिक्षितों की संख्या १२८०२८०० है जिसमें ३३ प्रतिशत बहनें हैं। अलेप्पी जिले में शिक्षितों का मान सबसे अधिक है। वहाँ यह मान ७० २५ प्रतिशत है। इसमें ७५ ७ प्रतिशत बहनें हैं। केरल में बहनों की दृष्टि से सबसे पिछड़ा जिला पालघाट माना जाता है जहाँ पर बहनों की शिक्षा का प्रतिशत ३९ प्रतिशत है। कर्नाटक से लगे कासगोड के तालुके में सबसे कम ३० प्रतिशत बहनें शिक्षित हैं। अब इस तरह से देखें तो पता चलेगा कि केरल में शिक्षा का इतना भारी विस्तार होने पर भी वहाँ पर सबसे अधिक बेकार लोग भी हैं क्योंकि एक तो शिक्षा का जीवन की अनुभूत आवश्यकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं है और फिर सरकार सबको नौकरी दे भी नहीं पाती है। किन्तु लोग मानते हैं कि सरकार की ही यह जिम्मेदारी है कि वह सबको चूंकि शिक्षा देती है अतः काम भी दे। यह एक अजीब स्थिति है। न तो समाज ही इसके लिये अपने को जिम्मेदार मानता है न शिक्षक ही अपने को इसके लिये जिम्मेदार मानते हैं। वे केवल वेतन बढ़ाने के लिये संघर्ष मात्र करते रहते हैं। चूंकि शिक्षा में शिक्षकों का भाग नहीं है अतः वे उसे अपनी जिम्मेदारी नहीं मानते।

शिक्षाविद् जवाब दें :

अब इससे एक बात सिद्ध होती है कि शिक्षा का विस्तार करना कोई शैक्षिक लक्ष्य नही हो सकता है। शिक्षा सरकार के हाथ मे दी जाय तो वह उसका विस्तार अवश्य कर सकती है, किन्तु वह उसकी गुणवत्ता नही बढा सकती है। सरकार का काम केवल मददगार का हो सकता है। शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये जहा शिक्षा में आमूल परिवर्तन आवश्यक होगा वही उसको गहन भी करने की आवश्यकता है। अभी हम भारत मे शिक्षा के विस्तार की बात तो सोचते है किन्तु उसको गहन करने के बारे में कोई नही सोचता है। शिक्षा को गहन करने का अर्थ है कि उसे जीवन के साथ जोडा जाय याने काम के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था हो। जब काम ही शिक्षा बन जाता है तो सहज ही यह सिद्धान्त निकलता है कि काम करने वाले ही शिक्षक है और शिक्षक ही श्रमिक भी है। क्या शिक्षा पर विचार करने वाले लोग, और खासकर जो लोग शिक्षा के राष्ट्रीयकरण के हामी है उनके पास इस बात का कोई जवाब है कि सरकार के हाथ में शिक्षा देने से यह तो ठीक है कि शिक्षकों के वतन आदि की कुछ समस्यायें तो हल हो जायेंगी किन्तु इसे शिक्षा की गुणवत्ता बढाने का काम कैसे कहा जा सकता है। आज जो हमारे शिक्षालय बेकारों को पैदा करने के कारखाने जैसे बन गए है शिक्षा के राष्ट्रीकरण वालो के पास इसका क्या इलाज है।

शिक्षक अपना रोल स्पष्ट करें :

इसलिये शिक्षकों को यह सोचना होगा कि वे भी क्या केवल श्रमिकों के रूप मे सरकारी नौकरी के लिये ही है या फिर उनके पास भारत की नयी पीढ़ी का भी दायित्व है। यदि एक बार वे अपना रोल स्पष्ट कर दें तो फिर हम अभिभावकों का भी उनके बारे में सोचना होगा कि उनकी हमे आवश्यकता है या नही। अभिभावकों को भी शिक्षको को यह कह देना होगा कि उनकी कीमत हमारे लिये भावी पीढ़ी के निर्माता के रूपमे ही है किन्तु यदि वे इस रोल के योग्य न हो तो फिर सरकारी नौकर मात्र से हमारा कोई लगाव नही हो सकता। इसलिये शिक्षक यह न मानें कि अभिभावक उनके हर कदम का साथ देंगे ही। सरकार के हाथ में शिक्षा देने के पीछे उनका लक्ष्य केवल अपनी नौकरी पक्की करना है, जो होनी ही चाहिये इसमे कोई दो राय नही, किन्तु इसमे शिक्षा की गुणवत्ता कैसे बढ़ेगी और शिक्षको की नौकरी से अधिक हमारे लिये यह अधिक मूल्यवान प्रश्न है इसका उन्हे जवाब देना होगा।

प्रो. रामचरित्र सिंह

बिहार विश्वविद्यालय सुधार समिति का प्रतिवेदन : सरकारीकरण की ओर

[प्रो रामचरित्र सिंहजी ने इस लेखमें जो मुद्दे उठाए हैं वे विचारणीय हैं। यदि सरकार की शिक्षा सहित जन-जीवन के हर क्षेत्र पर कब्जा करने की वर्तमान प्रवृत्ति रोकी नहीं गई तो इस देश में लोकतंत्र बच नहीं सकेगा। सरकार को उसकी सीमा में रखना होगा।]

देश में विश्व विद्यालयों को सरकारी हाथों में लेने की प्रवृत्ति इधर काफी बढ़ी है और कई राज्यों ने तो उस दिशा में विधेयक विधान सभाओं में रखे हैं और कुछ ने विधेयक के बिना ही सीधे राज्यपालों के आध्यादेशो से यह काम पूरा कर लिया है। बिहार में भी लगभग यही हुआ। वहाँ पर सन् १९७२ की अप्रैल में राज्यपाल ने एक आध्यादेश निकाल कर विश्व विद्यालयों में सीनेट, सिण्डिकेट, ऐकेडेमिक काउन्सिल, वित्त समिति और कुलपतियों की अवधि समाप्त कर दी और नये कुलपति नियुक्त करने के लिये सरकार को पूरी तरह से अधिकृत कर दिया। बाद को फिर सरकार ने बिहार विश्व विद्यालय, मुजफ्फरपुर, की अध्यक्षता में एक विश्व विद्यालय सुधार समिति का गठन किया जिसने मई ७३ में अपना प्रतिवेदन सरकार को दे दिया। अब बिहार के नये शिक्षा मंत्री श्री विद्याकर कवि जी ने यह प्रतिवेदन सभी विधायकों, महा विद्यालयों और शिक्षा विदों तथा शिक्षा में रुचि लेने वाले कुछ अन्य प्रमुख नागरिकों की राय जानने के लिये भेजा है। यह अपने-आप मे एक अच्छा कदम है।

प्रतिवेदन का प्रारूप: प्रस्तावना :

समिति के सदस्यों ने वर्तमान सन्दर्भ में शिक्षा के बढ़ते महत्व को स्वीकार करते हुए माना है कि शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

छात्रा का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो और युग की चुनौतियों का सामना कर सके। समिति ने शिक्षा और शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में व्याप्त वर्तमान भारी असमानता को समाप्त करने की सिफारिश की है और शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। समिति का यह भी कहना है कि शिक्षा में पूर्व-प्राथमिक से लेकर विश्व विद्यालय स्तर तक एकरूपता होनी चाहिये। राजकीय आदेश स ६६५, दि १७-५-७२ के द्वारा इस विश्व विद्यालय सुधार समिति की स्थापना इस उद्देश्य से की गई कि बिहार के विश्व विद्यालयों की वर्तमान सरचना का अध्ययन किया जाय और उनकी कार्यप्रणाली एव वर्तमान परिस्थितियों में समुचित सुधार किया जाये।

समय समय पर विभिन्न जाँच आयोगों और विश्व विद्यालयों में व्याप्त भयानक भ्रष्टाचार और शैक्षिक स्तर में गिरावट आदि को ध्यान में रखकर ही इस सुधार समिति का गठन किया गया है और १ अप्रैल १९७२ को राज्यपाल ने एक अध्यादेश जारी करके विश्व विद्यालय में सीनेट, सिन्डिकेट, एकेडेमिक कान्सिल और तत्कालीन कुलपतियों की बाकी अवधि तत्काल समाप्त करने का आदेश देकर नये कुलपतियों की नियुक्ति करने के लिये सरकार का अधिकार प्रदान किये जिसके अनुसार फिर सरकार ने सभी सस्थाओं का अवक्रमण करने का कदम उठाया। इन सभी सस्थाओं की सारी शक्तियाँ अब सरकार के हाथ में आईं। समिति की मुख्य मुख्य अनुशसायें इस प्रकार रखी जा सकती हैं —

(१) विश्व विद्यालयों म शिक्षकों और छात्रों के लिये उचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करके उन्हें ज्ञानार्जन का केन्द्र बनना आवश्यक है। उनका प्रयास केवल उच्चतर शिक्षण की दिशा में ही होना चाहिये और वे केवल स्नातकोत्तर और उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम की ही व्यवस्था करें। बाकी सभी अनुस्नातक पाठ्यक्रम महा विद्यालयों के अन्तर्गत ही रखे जाय। इनका नियन्त्रण भी फिर विश्व विद्यालय की विभिन्न परिषदों के अधीन होना चाहिये। इन परिषदों के अध्यक्ष रेक्टर हों।

(२) यह भी सुझाया गया है कि विश्व विद्यालयों के अंगीभूत महा-विद्यालयों का नियन्त्रण सीधे सरकार अपने हाथ में ले ले और उनका सचालन करने के लिये एक स्वायत्त निकाय का गठन करे। इसमें उच्च शिक्षा के अभिलाषी किन्तु नियमित छात्र के रूप में दाखिल होने के इच्छुक असमर्थ छात्रों के लिये विशेष व्यवस्था की जानी चाहिये।

(३) उपकुलपतियों के चयन पर विशेष सावधानी बरती जानी चाहिये।

(४) विश्व विद्यालयीन निकायों में एक रूपता होनी चाहिये और उनकी सदस्यता सम्बद्ध तथा उनके मामलों में रुचि रखने वालों तक ही सीमित की जानी चाहिये। ताकि वे वस्तुपरक और समय पर सही निर्णय करने में सक्षम हो सकें।

यह भी कहा गया है कि विश्व विद्यालयों के इन निकायों और पदाधिकारियों के द्वारा की गई गलतियों का परिमार्जन करके उन्हें गुटबाजी से मुक्त रखने के लिये कुलपतियों को विशेष अधिकार दिये जांय।

(५) विश्व-विद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों का चयन सम्य॰ करें और शिक्षकों की सुरक्षा और शैक्षिक स्वतंत्रता उपलब्ध कराने तथा उनकी नियुक्ति और अनुशासन आदि के मामलों में विश्व विद्यालय की कार्य परिषद तथा महाविद्यालय की प्रबन्ध व्यवस्था ऐसे निकायों के नियंत्रण में रहे जो इस उद्देश्य के लिये बनाये जाय।

(६) छात्रों और विश्व विद्यालय के अधिकारियों के बीच तथा छात्र और शिक्षक के बीच भी निकट सम्पर्क और नियमित विचार विमर्श कायम करने के लिये विश्वविद्यालय और महाविद्यालय में छात्र-परिषदें तथा शिक्षक-छात्र-समितियाँ गठित की जाय तथा विश्व विद्यालय की सीनेट मे छात्रों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाय। 'शिक्षक-छात्र-समूह' समितियाँ उनके आपसी मामलों को निबटाने का काम करें।

(७) कोर्ट या सीनेट एक विचारक निकाय के रूप में काम करे और विश्व विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर पर दोनों ही स्थानों पर अलग अलग विषयों के लिये अलग अलग निकाय हों ।

(८) अभी जो महा विद्यालय शासकी निकायों के अधीन हैं उनमें दैनंदिन की समस्याओं के लिये एक प्रबन्धकारिणी समिति हो और जिला स्तर पर ऐसे सभी महाविद्यालयों को एक समूह मे रखकर एक समूह समिति' हो जो कि शिक्षकों की नियुक्ति, अनुशासन और आय-व्यय आदि की देखरेख करे।

(९) यह भी सुझाया गया है कि कुलपति के अलावा एक और रेक्टर की नियुक्ति की जाय। वैसे ही एक कुल सचिव के पद पर एक कुशल प्रशासक की नियुक्ति का सुझाव दिया गया है। यह भी कहा गया है कि अभी कोर्ट और सीनेट में एक प्रकार का बेमेलपन है क्योंकि वे आवश्यकता से अधिक विस्तृत हैं। इसको दूर करके कुलपति को कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की नियुक्ति के लिये पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं। वित्तीय प्रबन्ध पर भी कुलपति का नियंत्रण और बढ़ा दिया गया है।

दूरदर्शिता की कमी :

ऊपर जिन मोटी अनुशंसाओं का जिक्र किया गया है वे सामान्यतः तो अच्छी ही लगती हैं किन्तु गहराई से देखें तो फिर यह साफ पता चलेगा कि उनमें दूरदर्शिता की भारी कमी है। इनसे कुलपतियों को इस तरह के अधिकार दिये गये हैं

कि वे लगभग तानाशाह की तरह से काम करेंगे और विश्व विद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण और भी मजबूत हो जायेगा। उदाहरण के लिये हम दो तीन बातों को ले सकते हैं।

रेक्टर की नियुक्ति का प्रस्ताव—समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि कुलपति का काम काफी कठिन होता है और उनकी सहायता के लिये कई अन्य अधिकारी चाहिये। अब प्रत्येक कार्य के लिये अलग अलग पदाधिकारी तो विश्व विद्यालय में पहले से ही रहते हैं और वे सभी कुलपति की ही सहायता के लिए होते हैं। अब यह जो एक रेक्टर की नियुक्ति का प्रस्ताव है उससे तो लगता है कि कुलपति की परेशानी ही बढ़ेगी क्योंकि रेक्टर को इतने अधिकार मिले हैं कि उनमें और कुलपति में संघर्ष हो जाएगा और फिर यह कोई आवश्यक नहीं कि वह हमेशा ही कुलपति का विश्वास का आदमी हो। अब इसमें विश्व विद्यालय का आर्थिक बोझ तो बढ़ेगा ही किन्तु साथ ही उच्च स्तर पर इस तरह के संघर्ष से वातावरण और भी खराब हो सकता है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि रेक्टर की नियुक्ति से विश्व विद्यालय के तथाकथित नौकरशाहिक ढांचे में कोई प्रगति ही होगी। इसके बजाय तो यह उचित होता कि विश्वविद्यालय में अनुशासन और शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं के संदर्भ में एक और व्यक्ति को कुलपति के समकक्ष जैसा नियुक्त करके विश्व विद्यालय के वरिष्ठ आचार्यों और प्राध्यापकों का ही एक सलाहकार संगठन बना दी जाय जो कि स्वभावतः ही कुलपति के निर्देशन में काम करेगा और उनमें परस्पर संघर्ष की संभावना का भी सवाल नहीं होगा।

कुल सचिव की आवधिक नियुक्ति—इसी प्रकार से कुल सचिव का पद भी मुख्यतः प्रशासनिक होता है। किन्तु असल में उनका अधिक काम तो शैक्षणिक ही है क्योंकि कुल सचिव का सम्बन्ध तो हमेशा शिक्षा की समस्याओं से जुड़ा होता है। उनका काम असल में शासन करने का नहीं सलाह देने और सलाह लेने का है। बिहार में अभी कुल ६ विश्व विद्यालय हैं। बिहार सेवा आयोग के द्वारा उनकी नियुक्ति के साथ ही उनके पदों का स्थानान्तरण होना चाहिये और एक विश्व विद्यालय में वे अधिक तम पांच साल तक ही रह सकें यह व्यवस्था की जाय तो सही होगा। यह बात तो और भी गलत होगा यदि हम इस पद पर बजाय योग्य शिक्षकों के किसी मात्र प्रशासक को ही नियुक्त करें क्योंकि एक तो प्रशासन सेवा के अधिकारी में और शिक्षक में मौलिक अन्तर होता है, उनका सारा प्रशिक्षण एक बिल्कुल ही भिन्न उद्देश्य के लिये और भिन्न परिप्रेक्ष में होता है और वे फिर शिक्षा को भी मात्र प्रशासन का विषय मानकर काम करते हैं। अब तक का अनुभव तो यही बताता है कि वे विश्व विद्यालय के काम में सहायक होने के बजाय बाधक ही सिद्ध हो रहे हैं और वे हमेशा ही ऐसे होंगे।

कोर्ट सीनेट का पुनर्गठन —यह सवाल भी महत्व का है। इस बारे में समिति का विचार भी ध्यान देने योग्य है। समिति कहती है कि दुर्भाग्य से अपने सदस्यों के बेमेलपन और आकार की विशालता के कारण सीनेट को अपने कार्य सचालन में अनेक प्रकार की खीचातानी और दबाव का सामना करना पड रहा है जो विश्व विद्यालय के हित मे नही है। (प्रतिवेदन, पृ १३, अध्याय ६)। अब इस बेमेलपन को दूर करना हो तो फिर सीनेट में शिक्षको, छात्रो के प्रतिनिधियो को भी विश्व विद्यालय और कालेजों के प्रतिनिधियो के साथ स्थान दिया जाए तो यह बेमेलपन स्वत दूर हो जायगा। चूंकि कुलपति और कुल सचिव अब सरकार के ही प्रतिनिधि होते हैं अत फिर अलग से किसी सरकारी अधिकारी को इसके लिये नियुक्त करने की आवश्यकता नही है। जहां तक विशालता का प्रश्न है वह तो अब स्वत ही कम हो रहा है क्योंकि सभी विश्वविद्यालयो मे अब मात्र ३५ से ४० तक ही कालेज बच रहे हैं और निकट भविष्य में यह सख्या और विश्व विद्यालय खुलते जाने से और भी कम होने की सभावना है। लगता है कि सीनेट के बेमेलपन की जो बात समिति ने कही है उस समय उसके मन मे असल में सदस्यो के विचार रहे हैं। वे निश्चय ही बेमेल हैं। किन्तु फिर क्या समिति यह चाहती है कि सदस्यों में सबके एक ही विचार हो। यह हुआ तो फिर बेमेलपन के साथ और भी कोई शब्द ढूंढना होगा।

इस सन्दर्भ में एक और बात पर भी विचार कर लेना ठीक होगा। अभी सीनेट में एक आवजीवन सदस्यता भी होती है जो धन के आधारपर दी जाती है। अब धन यदि शिक्षा का पर्याय हो तो बात अलग है, वरना धन के कारण से विश्व विद्यालय की व्यवस्था मे कुछ खास लोगो को वर्चस्व प्रदान करना शैक्षणिक और लोकतान्त्रिक दानो ही परम्पराओ के विरुद्ध है। अक्सर इससे शिक्षा के उन्नयन में कोई मदद नही मिलती है। धन से कोई गुण नही मिलता। अत सीनेट के ढांचे के परिवर्तन की जो बात है उसे अधिक उलझाने के बजाय जिनका कि शिक्षा और विश्व विद्यालय से सीधा सम्बन्ध है उनको ही सीनेट में स्थान दिया जाय तो फिर आकार स्वत तकसम्मत हो जायगा।

शिक्षा में लोकतंत्र कहाँ रहा

समिति ने काय परिषद के लिये जो कुछ कहा है उसे यदि ठीक समझा जाय तो इससे फिर काय परिषद कुलपति के हाथ का खिलौना मात्र रह जाती है। उसके सारे सदस्यों की नियुक्ति करने का अधिकार कुलपति को सौंपने का और कोई अर्थ नही हो सकता है। इससे तो सत्ता एक ही व्यक्ति कुलपति मे सीमित होती है। अत सीनेट के हाथ से काय परिषद बनाने का अधिकार वापस लेना गलत होगा। सख्या कम करने की जो बात कही गई है कि अभी उसमे बहुत सदस्य होते हैं तो फिर

अभी समिति ने जो पाँच शिक्षकेतर सदस्यों की नियुक्ति का सुझाव दिया है उसे वापस ले लेना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विश्वविद्यालय के सभी कार्यक्षेत्रों में शिक्षकों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक है। उसमें खास तौर पर ८० सम्बद्ध कालेजों से और २० प्रतिशत अंगीभूत कालेजों से होने चाहिये। यही बात फिर वित्त व्यवस्था के बारे में भी है। कहा गया है कि विश्व विद्यालय के वित्तीय प्रबन्ध के लिये कार्य परिषद, विद्वत् परिषद, अनुस्नातक पाठ्यक्रम बोर्ड, इन तीनों में से कुलाधिपति कुलपति की सलाह से एक एक प्रतिनिधि लेकर एक व्यवस्था रखें। यह सिफारिश भी कुलपति को असीम अधिकार प्रदान करने वाली है।

इस प्रकार से ऐसा लगता है कि कुलपति में विश्व विद्यालय की सारी शक्ति और सत्ता तथा अर्थ प्रबन्ध को केन्द्रित कर देना ही मात्र समिति का उद्देश्य रहा है। वस्तुतः कुलपति के अधिकारों को ध्यान में रखकर नहीं अपितु विभिन्न विभागों और सम्बद्ध कालेजों से प्रतिनिधि चुनकर ही विश्व विद्यालय का प्रबन्ध होना श्रेयस्कर है। हम चुनाव के दुर्गुणों को दूर करने के नाम पर चुनाव को ही समाप्त करके एक व्यक्ति को ही सर्वे सर्वा बना दें यह कोई सही प्रस्ताव नहीं है।

हाँ! अब मैं बदल गया हूँ— नेहरू—

"आज संसार एक नये आयाम, एक नये सन्तुलन की खोज में है। नये युग की चुनौतियाँ केवल वही आदमी झेल सकेगा जो अपनी नैतिक शक्ति और आध्यात्मिक गहनता से पूर्णतया सम्पृहित है। आध्यात्मिक सन्तुलन के बिना भौतिक प्रगति विनाशकारी सिद्ध हो सकती है।"

करंजिया — "आपने जो कुछ कहा है यह क्या अब जीवन के सन्ध्याकाल में नेहरू की ईश्वर की खोज है।"

नेहरू — "हाँ! मैं अब बदल गया हूँ। मेरा नैतिक और आध्यात्मिक समाधानों पर यह जोर अवचेतन का काम नहीं है। यह सुविचारित है, एकदम सुविचारित है।"

(श्री करंजिया की 'दि माइन्ड आफ नेहरू' से श्री विल्फ्रेड वेलाक की 'ऑफ दि विटिन ट्रैक', में पृ. २०७ पर उद्धृत।)

छात्रों की बात :

कु. आशा रावत :

लोकतांत्रिक शिक्षा की ओर :

[इस अंक से हम "छात्रों की बात" स्थाई स्तम्भ आरम्भ कर रहे हैं। इसमें हमारा प्रयास शिक्षा से संबंधित विभिन्न प्रश्नों पर छात्रों के दृष्टिकोणको सामने लाना है। हमारा विश्वास है कि शिक्षा की कोई भी समस्या बिना छात्रों को साथ और विश्वास में लिये हल नहीं की जा सकती है। इस अंक में हम लखनऊ की बी एड की छात्रा कु आशा रावत और वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा के विद्यार्थी मंडल के अध्यक्ष श्री कुमारे के विचार दे रहे हैं। आशा है छात्र बंधु इसमें रुचि लगे और और नयी तालीम के माध्यम से अपने विचार समाज के सामने रखने के इस अवसर का लाभ उठायेंगे। हम इस स्तम्भ के लिये छात्रों से लेख आमंत्रित करते हैं।]

समाज व्यवस्था और शिक्षा म अनिवाय घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। आज हमारा लोक जावन लोकतत्रात्मक है ता शिक्षा की भी उसके अनुरूप होना चाहिए। जैस किसी अशिक्षित देश म लोकतत्र नही चल सकता है वैसे ही लोकतत्र के अनुकूल शिक्षा न हो तो भी लोकतत्र नही चल सकता है। शिक्षा और समाज तथा राज्य व्यवस्था का हमेशा ही शिक्षा स सम्पर्क आता है यद्यपि यह सम्पर्क शिक्षा क लिए लाभदायी बहुत ही कम समय में रहा है। अक्सर तो राज्य ने शिक्षा को अपने अनुकूल करने का ही प्रयास किया है प्राचीन काल में जब निरकुश राज्य थ तो शिक्षा भी वैसी ही बनी और शिक्षक छात्र को अपने अधीन एक दास जैसा मानते थे जो ज्ञान के लिए उन पर निभर है। वे नही मानते थे कि बालक का अपना भी कुछ अस्तित्व हो सकता है जिसका शिक्षा की दृष्टि से कुछ मूल्य है। किन्तु आज यह मूल्य चल नही सकता है इसलिये ही आज शिक्षा में बालक की रुचि और उसके ज्ञान स्तर की प्राथमिकता दी जाती है। यह अच्छी बात है किन्तु शिक्षा का ढाचा यदि उसके नये मूल्यो को ही नकारने वाला होगा तो फिर वह और भी दुखदायी हो जायगी।

लोकतंत्र और शिक्षा परस्पराश्रित हैं :

असल में शिक्षा मे भी लोकतंत्र होना चाहिये यह बात अभी हाल मे ही हमारे ध्यान में आई है। भारत में पहले पहल यह बात शायद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने और फिर गांधी जी ने कही और पश्चिम में शायद रूसो के बाद जानडुई ने यह बात कही। जानडुई ने एक बार कहा था कि लोकतांत्रिक समाज में इस तरह से शिक्षा दी जाय ताकि वह हर व्यक्ति को सामाजिक कामों में भागीदार बनने में सहायक हो सके। आज हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप शिक्षा हमें अवसर और साधन प्रदान नहीं कर पा रही है और इस प्रकार से लोकतंत्र और शिक्षा एक दूसरे के विरुद्ध काम कर रहे हैं। सरकार ने शिक्षा को महज एक 'प्रचार' मान लिया है और उसका विचार यह मालूम देता है कि शिक्षा को उसकी स्थिति मजबूत बनानी चाहिये। इस दृष्टिकोण से निश्चय ही बालक और शिक्षा पीछे पड जाती है और सरकार आगे आ जाती है। किन्तु असल में तो शिक्षा का आज का काम यह नहीं है कि सरकार को प्रतिष्ठा मिले अपितु यह है कि नागरिकता की प्रतिष्ठा हो और हम सभ्य नागरिक जीवन के योग्य बन सकें। इसके लिये आवश्यक है कि हम शिक्षा के हर तरह के संचालन प्रशासन और निदेशन से लेकर उसके पाठ्यक्रम बनाने और विद्यालय प्रबन्ध तक में सर्वत्र लोकतन्त्र की स्थापना करें।

लोकतंत्र असल में जनता का दायित्व है

किन्तु आज हमारी जनता अपने कर्तव्य को पहचान नहीं पा रही है। स्वयं शिक्षक भी अपने मूल्य से बेखबर है और वे सरकार की नौकरी मात्र करने में ही अपना कर्तव्य मानकर चुप हो जाते हैं। क्या लोकतन्त्र केवल सरकारी काम है या उसमें हर नागरिक का भी भाग होना चाहिये यह विचार करने की बात है। यदि हम चाहते हो कि हमारा लोकतन्त्र जनता का लोकतन्त्र बने तो फिर यह आवश्यक है कि हमें जनता को शिक्षा के क्षेत्र में जागरूक तो बनना ही होगा साथ ही उसे सही अर्थ में शिक्षित भी करना होगा। इसके लिये व्यापक लोकशिक्षण के आन्दोलन की आवश्यकता है। लोकतन्त्र सरकार का नहीं जनता का दायित्व है। यह बात शिक्षक और छात्र दोनों को समझनी चाहिये। आज तो शिक्षक और छात्र दोनों ही केवल अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति ही शिक्षा और शिक्षालयों का काम मानते हैं और इसलिये वे आये दिन हड़तालों आदि में लगे रहते हैं किन्तु इन अनियंत्रित हड़तालों का यदि कोई तटस्थ अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि इन हड़तालों का शिक्षा से कोई दूर का भी रिश्ता नहीं रहता है और ये हड़तालें केवल तथाकथित छात्र नेताओं और शिक्षकों की आपसी और राजनीतिक गुटबाजी के कारण और उसी के लिये की जाती हैं। कई बार तो यह साफ दीखता है कि सरकार या सरकारी तथा विरोधी दल भी इन बातों को खूब प्रोत्साहन देते हैं।

शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन हो

हमारे संविधान में हमने कहा था कि हम दस वर्ष में हर बालक बालिका के लिये शीघ्र ही पूर्ण शिक्षा का इन्तजाम करेंगे किन्तु आजादी के २६ साल बाद भी हम यह नहीं कर सके हैं। इसमें कुछ तो हमारे पास साधनों का अभाव भी रहा है जो यदि हमने देश की गरीबी को ध्यान में रखकर अपनी योजनायें बनाई होतीं तो कुछ कम किया जा सकता था। किन्तु आज इस पर भी हम आज तक जो खर्च शिक्षा पर करते रहे हैं वह उसके प्रसार में तो मददगार हुई है किन्तु उससे उसकी गुणवत्ता नहीं बढ़ी है। अतः हम निरक्षरता के साथ साथ गुणात्मकता पर भी ध्यान देना होगा। गांधी जी ने जो बेसिक शिक्षा का विचार दिया था वह हमने माना नहीं। अभी पिछले दिनों कानपुर विश्वविद्यालय ने एक बहुत अच्छी शिक्षा योजना चलाई थी 'पढ़ो और कमाओ' योजना। अब इसका सम्यक् अध्ययन और मूल्यांकन किया जाकर इस सारे देश में लागू किया जाय तो कितना लाभ हो। फिर शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक है कि शिक्षक लोग केवल पढ़ाने की पुरानी तकनीक से आगे बढ़ें और विषय के तथ्यों पर नहीं अपितु 'तथ्यों के सम्बन्धों' पर ध्यान दें। केवल तथ्यात्मक जानकारी तब तक हमारे किसी काम की नहीं जब तक हम यह नहीं जानें कि वे तथ्य हमारे सामाजिक जीवन में किस काम आने वाले हैं।

महज राष्ट्रीयता अपने में कोई मूल्य नहीं

आजकल अक्सर कहा जाता है कि शिक्षा में राष्ट्रीयता का तत्व दाखिल करना चाहिये किन्तु राष्ट्रीयता कोई महज राजनीतिक विचार नहीं है। राष्ट्रीयता का अर्थ तो मानवीय सम्बन्धों की पारस्परिकता है और इस दृष्टि से शिक्षा को अभी बहुत कुछ करना है। अक्सर हम कहते हैं कि शिक्षा को हमारे लिये भावी नागरिक पैदा करना है किन्तु वे किस प्रकार के नागरिक होंगे। यह विचार भी तो करना होगा। मैं एक छात्रा के रूप में जो कुछ देख पाती हूँ उससे मुझे लगता है कि जिस प्रकार से हम केवल यही नहीं देखते कि महज अच्छी ईंट से ही अच्छा मकान बन जायेगा अपितु यह भी देखते हैं कि उन ईंटों का सम्यक् ढंग से चयन और फिर परस्पर संग्रथन हो ताकि हम कलापूर्ण मकान बना सकें वैसे ही शिक्षा की बात भी है। केवल शिक्षितों से अच्छा राष्ट्र नहीं बनता बल्कि मानवता का ध्यान रखनेवाले ही अच्छे समाज का निर्माण कर सकते हैं।

घनराज लक्ष्मणराव कुंभारे

हम कैसी शिक्षा चाहते हैं ?

विद्यार्थी में बहुत शक्ति होती है। वह सामर्थ्यवान होता है। किन्तु आज की बेकार तरुणता देश को डराने वाली सब से बड़ी समस्या बन गया है। इस समस्या ने अब जो रूप धारण कर लिया है उसने राष्ट्रपति से लेकर सामान्य व्यक्ति तक सभी को भयाक्रान्त कर दिया है।

मई सन् १९७३ में राष्ट्रपति ने "लाखों लोगों का रोजगार" नामक एक अत्यन्त ही अभ्यासपूर्ण ग्रन्थ लिखा था और बेकारी जैसी राष्ट्रीय समस्या पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उसमें राष्ट्रपति ने यह कहा था कि 'शिक्षा का अवास्तविक प्रसार बेकारी का मूल कारण नहीं है अपितु व्यवसायनिष्ठ शिक्षा-प्रणाली का अभाव ही इस समस्या का मूल कारण है।' यह बात सही है। भारत में इंजीनियरिंग और तकनालाजी आदि का जो कुछ व्यवसायनिष्ठ शिक्षा क्रम देश में आज चालू है, उससे उपाधि प्राप्त तरुणों की संख्या दूसरे देशों की तुलना में कम है। अतः शिक्षा-प्रणाली का परम्परागत स्वरूप बदल कर उसके स्थान पर बदलती परिस्थितियों के अनुकूल व्यवसायनिष्ठ शिक्षा-पद्धति चालू करना ही इस समस्या का एकमात्र हल है।

आज का छात्र जब विद्यामन्दिर में प्रवेश करता है, तब उसके मन पर एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। आज छात्रों में साधारणतः यही विचार रहते हैं कि शिक्षा प्राप्ति के बाद उसे नौकरी मिलनी चाहिए। किन्तु सभी विद्यार्थियों को तो नौकरी मिल ही नहीं सकती है, क्योंकि इतने छात्रों को नौकरी देना एकदम असंभव बात है। इसलिए व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित एकनिष्ठ शिक्षा-पद्धति का चलन आज अत्यावश्यक हो गया है। आज भी अधिकांश छात्र देहात से ही आते हैं और हरएक के पास खेती होती है, किन्तु शिक्षा पूरी करने के बाद उसका झुकाव खेती की ओर नहीं रह पाता। किन्तु होना तो यह चाहिये कि जिन छात्रों के पास खेती हो, उन्हें अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उनको खेती में भेज देना चाहिए और सरकारी, गैर-सरकारी कार्यालयों में काम, याने नौकरी, के लिए केवल ऐसे ही छात्रों का चयन करना चाहिए, जिनके पास अपनी आर्थिक मदद के अन्य और कोई साधन नहीं हैं। इसी प्रकार से व्यापार आदि में भी उन्हीं छात्रों को भेजना चाहिये, जो घर में भी वही काम करते हों या जो उसमें निष्णात हो गये हों। इसके लिए विद्या-

सयीन शिक्षा समाप्त होने के बाद उनकी इच्छा व काम के अनुसार उस विषय की परीक्षा लेकर व उसमें उत्तीर्ण हो, तो हो उन्हें उस काम में भेजना चाहिए।* इस प्रकार से खेतवाले को खेती का और व्यापार वाले को व्यापार का शिक्षण देना होगा। किन्तु हर किसान का बेटा एक सुशिक्षित और शुद्ध किसान बन सके, इसके लिए आज का तदर्थ शिक्षा-पद्धति में भी सुधार की आवश्यकता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस क्षेत्र में जितनी जगह खाली हो, उतने ही विद्यार्थियों का चयन उसके लिए किया जाना चाहिए। यह चयन स्पर्धात्मक परीक्षण के माध्यम से होना चाहिए। फिर इसके साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी जब तक विद्याजन कर रहा है, तब तक उस एक खास प्रकार के अनुशासन में आबद्ध रहना चाहिए। उस पर 'पोशाक-बन्धन' रहना चाहिए। अनुशासन की शिक्षा उस शालाओं और महाविद्यालयों में मिलनी चाहिए। जिससे छात्र अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद जब समाज में वापस जाय तो वह एक अनुशासित जिम्मेदार नागरिक बन सके। उसे आज की तरह शिक्षा समाप्त करके बेकार बनकर समाज पर बोझ नहीं बनना चाहिए। शिक्षा का क्रम इस तरह हो कि आज की तरह तरुण को अपने आशा और तारुण्य के काल में वैफल्य का आभास न हो और उसके लिए उस समय ही न मिले। इस प्रकार की शासनशुद्ध शिक्षा-पद्धति होगी, तो ही समाज की सेवा भी हो सकेगी और ऐसी शिक्षा की ही आज अतीव आवश्यकता है।

---

* डिग्री का नौकरी से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाय, इस सुझाव का भी यही अर्थ है। —सम्पादक।

> पश्चिम के लोगों ने प्रतिस्पर्धा की बुनियाद पर अपने अर्थशास्त्र की रचना की। उस अर्थशास्त्र में से साम्राज्यवाद को पोषण देनेवाला समाजवाद पैदा हुआ। ऐसे अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में से जो जीवनक्रम निकला, उसमें पुरुषार्थ चाहे जितना हो, ज्ञानोपासना चाहे जितनी उत्कट हो और कौशल्य का विकास चाहे जितना होता हो, मानवता का तो उसमें ह्रास ही होता है। बंधुता और विश्व कुटुम्ब का आदर्श स्थापित करना हो, तो सिर्फ विचार ही नहीं, जीवनक्रम भी बदलना होगा। और अगर जीवन का क्रम बदलना हो तो नई पीढ़ी की तालीम भी आमूलाग्र बदलनी होगी
>
> —काका कालेलकर

डॉ० लक्ष्मीनारायण भारतीय :

छात्रों की विधायक शक्ति के स्रोत के रूप में आचार्य-कुल का महत्त्व

उस रोज मैं जब २-३ छात्रों से, जो कालेज के पहले-दूसरे वर्ष में पढ़ते हैं, बात कर रहा था, तो मैंने उनसे कहा, "तुम लोगों की तो शक्ति तेजी से प्रकट हो रही है?" उन्होंने कहा, "हाँ, हम अब रुकने वाले नहीं हैं।' यह कहते समय जो चमक एवं तेज मैं उनकी चर्चाओं में देख रहा था, उसका दर्शन बहुत बरसों के बाद हुआ था। उन बच्चों में, जो मामूली उम्र के थे, एक लड़की भी थी। ऐसा आत्म-विश्वास वास्तव में एक प्रशंसनीय वस्तु मानी जायेगी, क्योंकि अन्याय एवं अनुचित दबाव सहन न करने की प्रेरणा ही उनमें प्रकट हो रही थी।

छात्र-असंतोष का मूल :

यही आत्म-विश्वास आज जगह जगह छात्रों में दिखाई दे रहा है एवं हिम्मत के साथ आगे बढ़ने की क्षमता भी। भले ही कहीं वह हिंसा का रूप ले लेता हो, उसका कारण है कि उनका नेतृत्व गलत हाथों में गया है। विनोबा ने एक बार छात्रों से कहा था, "क्या शेरों को भी किसीने संगठन करते देखा है?" वही शेरकी सा निर्भय वृत्ति का दर्शन आज उनमें होने लगा है। अब यह कहना कि छात्रों को सिवा पढ़ाई के इन अन्य बातों से कोई वास्ता नहीं, तो यह कोई माने नहीं रखता, क्यों कि राजनीति के द्वारा बहुतसी बातें उनके घरों में घुस आई है एवं

उन्हे बरबाद कर रही है। तब वे उनसे अलग कैसे रह सकते हैं। दर असल वे राजनीति नही जीवन-नीति अपना रहे हैं। जब राजनीति जीवन के हर अंग में प्रवेश करके उसे कलुषित बना रही होती है, तब उससे अछूत रहने के मानी हैं जीवन से ही अलग रहना। दरअसल राजनीति को तोड़ने के लिए ही कुछ तीव्र उपाय करने पडते हैं। छात्रों की बेचैनी का अहसास उन लोगों के अंदर पैठने से सहज हो जाता है इतने वे आज परेशान हैं। केवल उनकी अपनी समस्याओं से ही नही बाहरी जगत के अन्याय से भी। इस प्रवाह को रोकने की बात करना अब उनके अंतर को न समझना ही है। बात यही खतम नही होगी। इस प्रवाह को रोकने से वे और भी विद्रोही बन जाएँगे। अतः हम यह समझना चाहिए कि वे राजनीति नही लोकनीति ही अपना रहे है। आवश्यकता केवल उनकी शक्तिके विधायक उपयोग की है उनके संताप एवं उत्साह को सिर्फ योग्य दिशा में मोड़ने की जरूरत है। उनका यह ख्याल बन गया है कि देशमें परिस्थितियाँ इतनी उग्रतर होती जा रही हैं कि अब बडे आपरेशन की ही जरूरत है। दुर्भाग्य से वे उसका रास्ता हिंसा को मानते हैं अहिंसा को नही क्योंकि अहिंसा स्थिति-स्थापकता (स्टेटस्‌को) के साथ है ऐसा वे मानते हैं। यानी एक तरफ अन्याय के खिलाफ यह लाचारी भी है कि सीधे ढंग से काम होनेवाला नही हैं, अतः अन्य किसी भी ढंग से काम करालें। हिंसा के प्रति या भी श्रद्धा बढ़ रही है। इसका कारण भी हैं; राजनीति के दाव पेंच, गुट बंदी, निजी स्वार्थ आदि सब आज एक साथ मिल गये हैं एवं न उनका अपना अपितु समाज का भी जीवन वे पूर्ण हिंसक बना रहे हैं। अतः इतनी बडी हिंसा का सामना वे हिंसा से ही करना चाहते हैं, बस, यही उनके भीतर की प्रतिक्रिया का अर्थ हैं। विद्यार्थी वर्ग से परिचय प्राप्त करें और उनकी बात समझ लें तो यही उनका अंतर दर्शन सर्वत्र होगा। अतः उपाय की जरूरत है, तो यही है, उन्हे जीवन से अलग रखने में नही।

आचार्य-कुल की आवश्यकता :

छिपी हिंसा का मुकाबला कैसा हो ? यही पर आचार्य-कुलकी आवश्यकता एवं औचित्य प्रकट हो जाता है। इन उत्साही एवं बहादुर बच्चों को सिर्फ मार्ग-दर्शन की, सही राह बताने वाले नेतृत्व की जरूरत है एवं यह मार्गदर्शन उनके साथी रूप शिक्षक ही कर सकते है। माता पिता, भाई-बहन उनके लिए सुरक्षित गढ में रहकर दुनिया की प्रगति को न पहचान सकने वाले वे तत्व हैं, जिनसे प्यार एवं सहारा तो लिया जा सकता है, पर मार्गदर्शन नही। पर आचार्य एवं शिक्षक भिन्न हैं। वे सहयोग के संबधों से बंधे हैं। परस्पर का सतत सम्पर्क भी है। माता-पिता के सामने बच्चे अकेले-दुकेले है, पर यहाँ कई छात्र साथ हैं एवं शिक्षक भी समूह-गत हैं। यही समानता, निकटता, समूहवृत्ति आदि बच्चों को शिक्षक आचार्य के निकट

ला बैठाती है। फिर यदि शिक्षक या आचार्य अपने विषय का विद्वान है, स्वार्थ एवं राजनीति से पर है एवं स्वयं किसी गुट-बंदी का शिकार नहीं है, तो छात्रो-शिक्षकों का मेल सहज ही हो जाता है, क्योंकि शिक्षक के प्रति आदर की भावना अब भी है। पर यह छात्रों के अन्दर छिपी है। शिक्षक अच्छा हो, तो वह प्रकट हो जाती है एवं शिक्षक बुरा हो, तो वही भावना विद्रोह का रूप ले लेती है, क्योंकि छात्र उनका पतन नहीं देखना चाहता। इस प्रकार यह विद्रोह अपनेपन में से उपजता है।

इस मनोवैज्ञानिक भूमिका से यदि आचार्य-कुल परिचित हो जाय, तो जिस मार्गदर्शन की निहायत जरूरत आज छात्रों को है, वह उससे तुरत उपलब्ध हो जायेगा एवं उसका महत्त्व भी सिद्ध हो जायेगा। इस तरह के मार्गदर्शन के बिना इतने ज्यादा उत्साह एवं आत्म-विश्वास की लहर को ठीक राह पर नहीं लाया जा सकता। यह मार्गदर्शन आज राजनीति वाले नहीं, शिक्षक वर्ग यानी आचार्य-कुल ही दे सकता है, क्योंकि राजनीति से प्रेरित दल एवं नेता का मार्गदर्शन स्वार्थ प्रेरित होता है, संकुचित दायरे वाला होता है, उनके अपने ही क्षेत्र का होता है एवं केवल लाचारी से ही छात्र उनके कब्जे में जाता है। आज एक तरफ वह पालकों को बाहरी दुनिया से अलग पाता है, तो दूसरी तरफ शिक्षकों को भी वह समस्याओं से अलिप्त पाता है। सहज ही वह तीसरी शक्ति यानी राजनीति के हाथों में पड़कर हिंसा का मुकाबला प्रतिहिंसा से करना चाहता है, जिसका सामान राजनीतिज्ञ सहज जुटा भी देते हैं।

छात्र-शिक्षक का रचनात्मक सहयोग हो :

आचार्य-कुल शिक्षकों के लिए है, पर राष्ट्र के लिए भी है एवं छात्र राष्ट्र के उदीयमान नक्षत्र हैं। आचार्य-कुल से यदि यह अपेक्षा है कि वह छात्रेतर जगत पर नैतिक प्रभाव डाल कर अपना तटस्थ मत प्रकट करे तब दूसरी तरफ उसे यह भी जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी कि उनके मार्गदर्शन के लिए आतुर उनके ही अंग को भी वह संभाले। आचार्य-कुल एक नैतिक संगठन है। उसके पीछे सामर्थ्य तटस्थता व विद्वत्ता का है। उस सामर्थ्य को मूर्त रूप तभी दिया जा सकता है, जब उनके पीछे कोई "संगठन" मौजूद हो। आज दरअसल सज्जनों की कमी नहीं है। वे अपनी राय दे ही देते हैं, मार्गदर्शन भी कर देते हैं। पर सब प्रभाव हीन रहता है। अतः आचार्य-कुल को सार्वजनिक विषयों पर तटस्थ राय प्रकट करना एवं नैतिक मार्गदर्शन करना एक बात है एवं उस राय एवं मार्गदर्शन के पीछे शक्ति खड़ी करके उस राय आदि को प्रभावकारी बनाना दूसरी बात है। यह शक्ति जैसे उनकी अपनी सज्जनता को होगी, वैसे ही वह उनके अपने अंगरूप छात्रों की भी

होगी। वस्तुत छात्रों की शक्ति उनकी ही शक्ति बन सकती है, यदि दोनों उस एकता को मूर्त कर सकें, जो कि उन दोनों को समान रूपसे बाँधे हुए है। राष्ट्र पुरुष के ही दोनों अभिन्न अंग है।

राजनीति से त्राहिमाम्:

आज स्थितियाँ तेजी स बदल रही है। राजनीति ने सारे जीवन पर इतना अधिक आक्रमण कर दिया है कि सब "त्राहिमाम्" करने लगे है। जनता असहाय है। वह चाहती है, उन्हे कोई दूसरा ही उबार दे। परन्तु छात्र दूसरा का यह उपकार नहीं चाहते। अपने बल से आगे बढ़ना चाहते हैं, क्योकि उनको अपनी सामर्थ्य प्रकट जो हो रही है। अत उनके साथ आचार्य कुल भी यदि खडा रहे, तो यह संयोग इतना विधायक-क्रान्तिकारी हो सकता है कि उनका बराबरी आज और कोई शक्ति नहीं कर सकती। आचार्य-कुल अपना नियोजित काम करता रहे, परन्तु उनके अगरूप शक्तियों को भी यह अपनाए। वह इस ओर यदि विशिष्ट सम्भावनाओं की दृष्टि स देखे एव आगे कदम बढ़ाए तो उससे अधिक अच्छी देन समाज के लिए और कोई नही हो सकती। श्री जयप्रकाशजी ने छात्रों को गुजरात में एक साल के लिए शान्तिपथ पर आने की सलाह दी, उनकी बडी आलोचना हुई कि "छात्रो का तो नुकसान करेंगे ही, छात्रो को विध्वसात्मक शक्ति को सम्भालना भी फिर मुश्किल हो जाएगा।" पर यह आलोचना इस वस्तुस्थिति को देख नही पा रही है कि छात्र शक्ति तो जाग गई है। वह अब सुप्त नही रह सकती। अत उसको विधायक दिशामें कैसे मोडे, यही तो केवल देखना है। आचाय कुल की जिम्मेदारी इसी दृष्टि स बहुत बढ़ जाती है। छात्रवृद अपनी पढाई में मग्न रहे, बाह्य जगत से सक्रिय सबध न रखे आदि बाते कहना तो सरल है, परन्तु आज छात्र वैसा नही रह सकता, क्योंकि वह स्वय आसपास की परिस्थितियों से क्षुब्ध है एव जब वह देखता है कि उसके माता-पिता, अडौसी-पडौसी आदि भी हर तरह से परेशान है, तो वह और क्षुब्ध हो जाता है एव तब उसके अदर की शक्ति बाहर आने के लिए तडपती है। उसी का लाभ धूर्त उठात है एव अपने स्वार्थ के लिए उस शक्ति का उपयोग करने लग जाते है। शिक्षक एव छात्र स्वय भी उनके ही हाथोंका हथियार बन जाते हैं। अब प्रश्न यह है कि उन्हें हथियार बनने देना है एव हिंसा की ओर प्रवृत्त होने देना है या सक्रिय मार्गदर्शन देकर उनकी शक्ति को रचनात्मक बनाना है? हम चुनाव इसी म से करना है। स्पष्ट है कि जब राजनेता नैतिक रूपसे मार्गदर्शन करने में असमर्थ सिद्ध हो गए है, अन्य नेता या समाज-सेवक भी कथनी-करनी के अन्तर को नहीं पाट पा रहे हो, तो छात्र आखिर करें क्या? उन्हे कुछ तो करना ही है। वे केवल पढाई तक सीमित रह नहीं सकते क्योंकि

बाहर की शक्तियां प्रवृत्तियाँ उन्हें उभाड रही हैं। अत उनकी पढ़ाई एव शक्ति प्रदान में सन्तुलन साध कर उनका जीवन समृद्ध हो, वे अपने मुख्य ध्येय में जीवन निर्माण में लगे रहे, उनका विद्यार्थी जीवन भी बरबाद न हो ऐसे ही उपाय करने होंगे। इन सबका एक मात्र रास्ता यही है कि-आचार्य-कुल जैसा उनसे नित्यसम्बन्धित सगठन उन्हे मार्गदर्शन करे। उनका सही नेतृत्व करे।

छात्र-शक्ति का उदय आशाप्रद घटना है :

अर्थात् नेतृत्व या मार्गदर्शन करने वाले पर एक बडी जिम्मेदारी आ जाता है कि वह स्वय अपनी भी सूरत आइने म सतत देखते रहे। जहाँ छात्र शक्ति यह पायेगी कि अरे, यहाँ भी वही "हिपोक्रेसी" है, ता वह और भी क्षुब्ध हो उठेगी और अब उस सम्भालने वाला कोई नहीं रह पाएगा। छात्र को चिढ है, इसी दागलेपन की, हिपोक्रेसी वाली मनोवृत्ति की। अत इस चीज से नेता को मार्गदर्शन को बचाना ही होगा। छात्र-शक्ति का उदय बडी आशादायक घटना है पर वह वस्तु बडी जिम्मेदारी भी हम पर डाल देती है, जिसे आचार्य-कुल तो सहज उठा सकता है, पर और कोई उतनी अच्छी तरह नहीं।

* *

नागरी लिपि में उर्दू—

मैं भी एक सर्व-सामान्य लिपि (आम लिपि) का बड़ा समर्थक था। कोई भी व्यक्ति अपनी मातृभाषा का उत्साही समर्थक और अभिमानी हो सकता है। पर 'मातृ-लिपि' नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं है। एक बच्चा जब तो तली बोली म बोलता है तब वह मातृभाषा होती है, मातृलिपि नहीं। एक सर्व-सामान्य लिपि स्वीकार करने से भारत की विभिन्न भाषाओं में जो ज्ञान का भडार भरा है उसे प्राप्त करने का एक साधारण व्यक्ति को सहज ही अवसर प्राप्त होगा। हमारे लिये यदि कोई सर्व-सामान्य लिपि स्वीकार करना सम्भव है तो वह 'देवनागरी' है। यही उस संस्कृत की लिपि है जो भारत की अधिकांश भाषाओं की जननी है। यह लिपि अत्यधिक वैज्ञानिक है और इसमें भाषा के सभी स्वरों और ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता है।

—एम सी छागला

* *

वी. वी. जॉन :

स्वायत्त कालेज : अमरीकी अनुभव :

[अमेरिका में एक युवा शिक्षक-दम्पत्ति शिक्षा के क्षेत्र में एक अनूठे और साहसिक प्रयोग में लगे हैं। अमेरिका के शिक्षाशास्त्री कई सालों से इसकी आवश्यकता अनुभव करते थे किन्तु उनमें से अभी तक कोई ठोस कदम नहीं उठा सका था। शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रयोग वरमोन्ट राज्य में बेनिंगटन कालेज का प्रयोग है जहाँ पर लड़के लड़कियाँ साथ साथ पढ़ती हैं। इस संस्था की अध्यक्ष पत्नी है और पति उनके सहायक के रूप में काम करते हैं। भारत में भी हम स्वायत्त कालेजों की बात करने लगे है और वास्तव में हमारी पाँचवीं योजना में हमने इसके लिये कुछ ठोस प्रस्ताव भी किये हैं। यद्यपि अमरीका और भारत की परिस्थितियाँ नितान्त ही भिन्न हैं और अमरीका की कोई भी प्रणाली भारत में लागू नहीं की जा सकती किन्तु फिर भी उनके अनुभवों से हम काफी सीख सकते हैं। इस दृष्टि से ही हम श्री जान का यह लेख नयी तालीम के पाठकों की जानकारी के लिये दे रहे हैं।]

भारत की उच्च शिक्षा-प्रणाली में स्वायत्त कालेजों की स्थापना करने का विचार काफी समय से विचाराधीन रहा है और अब तो यह लगता है कि यह विचार शीघ्र ही कार्य में भी परिणित होगा। इस स्थिति में अमरिका में स्वायत्त कालेजों के संचालन आदि में जो अनुभव वहाँ के शिक्षाविज्ञों को प्राप्त हुये हैं वे शायद भारत के लिये भी कुछ उपयोगी हो सकें।

अमरिका की शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक छोटे या बड़े कालेज को अपना पाठ्यक्रम, शिक्षा विधियों, मूल्यांकन पद्धति और नीतियों को निर्धारित करने की पूरी पूरी स्वतन्त्रता है। किन्तु इनमें से कुछ अन्य शिक्षण संस्थाओं की तुलना में नये नये और साहसिक प्रयोग करने के लिये विख्यात हैं। इस तरह की संस्थाओं में एक है वरमान्ट राज्य में स्थित बनिंगटन कालेज। इस कालेज की अध्यक्ष श्रीमती गेल पार्कर और उपाध्यक्ष श्री डा गेल पार्कर हैं जो कुछ समय पूर्व भारत की यात्रा पर आये थे। बेनिंगटन एक छोटा सा कालेज है जिसमें छात्र-छात्रायें लगभग ६०० हैं। आज से कोई ४० साल पहले एक स्वशासी कालेज के रूप में ही इसका स्थापना हुई थी। तब इसका आरम्भ एक प्रयोग के ही रूप में किया गया था। अमेरिका के शिक्षा शास्त्री इस प्रकार के प्रयोग आरम्भ करके शिक्षण सम्बन्धी अपनी नयी मान्यताओं और विचारों को मूतरूप देना चाहते थे और इस विचार से कोई बड़ा

विश्वविद्यालय स्थापित करने के बजाय इस तरह का छोटा कालेज स्थापित करना अधिक उपयुक्त माना गया। इसके अलावा एक और अच्छी बात यह भी थी कि यह कालेज एक महिला कालेज था और पुरुष कालेजों की तुलना में महिला कालेजों में शैक्षणिक अनुरूपता कायम रखने पर कम ध्यान दिया जाता है।

मूल्यवान अनुभव :

कालेज के संस्थापक यद्यपि सह-शिक्षा के पक्ष में थे किन्तु उनका यह भी विश्वास था कि अमेरिकी माता पिता अपने पुत्रों के बजाय अपनी पुत्रियों की शिक्षा के बारे में कोई नया प्रयोग करने के लिये अधिक आसानी से राजी हो जायेंगे। उदाहरण के लिये यदि लडकियों को कानून की शिक्षा नही दी जाती तो इसमें वे कोई हानि नही मानते थे। काल्पनिक पेशों के लिये प्रशिक्षित करने के बजाय उन्हे अधिक गहन शिक्षा प्रदान करना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। इस शैक्षणिक प्रयोग में यह व्यवस्था की गई है कि हर साल शीतकालीन सत्र में छात्रायें स्कूल के बाहर जाकर एक निर्धारित कार्यक्रम पूरा करें। सन् १९३०–४० तक शिक्षाशास्त्री यह अनुभव करते थे कि स्कूल के अन्दर मिलनेवाली शिक्षा को स्कूल के बाहर होने वाले काम से अलग कर देने का बहुत हानि कारक प्रभाव हो रहा है। मध्यम वर्ग के परिवारों की लडकियों पर तो इसका असर इतना बुरा हुआ कि अविलम्ब ही कुछ करने की आवश्यकता थी। चालीस साल पूर्व कालेजों में पढने वाली लडकियाँ छुट्टियों मे अथवा परीक्षा हो जाने के बाद बहुधा कोई काम नही करती थी। उनमें से अधिकांश तो विवाह करके घर बसा लेती थी और फिर नौकरियों में आने का कोशिश नही करती थी। इसलिये बेनिंगटन कालेज के अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि लक्ष्यहीन और निरुद्देश्य शिक्षा प्राप्त करने के बजाय छात्र-छात्राओं के लिये यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वह अपने तीन शिक्षा सत्रों में से एक सत्र स्कूलों में, एक सत्र व्यावसायिक संस्थाओं में और एक सत्र स्टूडियो तथा अन्य अपनी पसन्द के कामों में व्यतीत करें। और इस प्रकार से वे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उद्यत हों।

यह प्रयोग सफल नही हुआ। कुछ छात्र छात्राएँ इस तरह के कामों में भी अपना समय बिताते हैं जो शैक्षणिक दृष्टि से उपयोगी नहीं कहे जा सकते हैं। कुछ छात्र-छात्रायें अपनी इच्छा से एक या दो साल के लिए कालेज से बाहर भी चले जाते हैं और आमतौर पर यह पाया गया कि फिर इस तरह के छात्रों को संसार में उतरने के लिये बाध्य करने की आवश्यकता ही नही होती। किन्तु अधिकांश छात्रों के लिये शीतकालीन सत्र बहुत ज्ञानवर्धक सिद्ध होता है, क्योंकि इस अवधि में उन्हें यह पता लग जाता है कि स्कूल के बाहर की दुनिया में क्या कुछ हो रहा है। उन्हें न केवल कामकाजी दुनिया की जानकारी ही मिलती है अपितु प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा वे यह भी निश्चय करने में समर्थ हो जाते हैं कि शिक्षा समाप्त करने के बाद कौन-सा पेशा उनके लिये सर्वाधिक उपयुक्त रहेगा।

व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने की इस योजना के अलावा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात कालेज का वह पाठ्यक्रम है जिसके माध्यम से क्षणिक मान्यता के साथ साथ कलात्मक रुचि जाग्रत करने पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। इसके लिये सगीत रचयिताओ, सगीतकारो, उपन्यासकारो, साहित्यकारो, विद्वानों, नर्तकों और इतिहासकारो को कालेज में समय समय पर आमन्त्रित किया जाता है। इस क्रम में प्रसिद्ध अमरिकी उपन्यासकार बरनार्ड मालामुड पूरे १५ साल तक कालेज के प्राध्यापक मडल में रहे है।

कालेज के शैक्षणिक कार्यक्रम का निर्धारण कालेजके अधिकारी, विभिन्न विषयो के तज्ञ और छात्र मिलकर करते है। कालेज में इस तरह के छात्रो की सख्या बराबर बढ रही है जो यथार्थ दुनिया के बारे में अधिक से अधिक प्रत्यक्ष जानकारी रखते है और इससे शिक्षक बहुत आसानी से यह निश्चय कर सकते है कि छात्रों को क्या पढाना चाहिये। श्रीमती पाकर के अनुसार यदि अमेरिका शिक्षा शास्त्री जीवन के अनिवार्य अग के रूप में शिक्षा की नवीन परिभाषा प्रस्तुत नही कर सके तो फिर अमेरिकी समाज में उसकी उपयोगिता समाप्त हो जावेगी।

बेनिंगटन कालेज के इस प्रयोग ने शिक्षा प्रशासकों के लिये कुछ नयी समस्यायें भी खडी कर दी है। शिक्षा का कार्य तथा क्षेत्र दोनो ही बढ गये है और अब शिक्षा का विद्यालय में ही वकीलों, बीमा एजेन्टो और अकाउन्टेन्टो से भी वास्ता पडने लगा है। किन्तु इन समस्याओ के बावजूद बेनिंगटन कालेज का सचालन प्राध्यापक मडल के द्वारा ही होता है और उस भी कालेज के अध्यक्ष का चुनाव प्राध्यापको में से ही होता है और उसे भी अन्य शिक्षकों की ही तरह से साप्ताहिक कक्षाओ में पढाना होता है। नीति सम्बन्धी प्रमुख समस्याओ पर छात्र-शिक्षक समितियो में विचार किया जाता है और इनके परामर्श की उपेक्षा करने वाला कोई भी प्रशासक अधिक समय तक कालेज में टिक नही सकता है। कालेज की प्रशासन व्यवस्था की एक और विशेषता यह भी है कि शिक्षकों के भर्ती सम्बन्धी निर्णयो में छात्रो और प्राध्यापको की राय मालूम करने का एक प्रणाली विकसित की गई है। इस प्रणाली से पता लगा है कि प्राध्यापको की ही तरह से छात्र भी इसमें शैक्षणिक मानदण्ड का पूरा पूरा ध्यान रखते है। कोई भी शिक्षक स्थाई रूप से नही रखा जाता और उन्हे केवल पाँच साल की अवधि के लिये ही नियुक्त किया जाता है।

पाकर दम्पत्ति का कहना है कि इस प्रकार की व्यवस्था में अव्यवस्था और कभी कभी असमजस की भी स्थिति पैदा हो जाती है। किन्तु इसके साथ ही इसमें सयम और स्थिति की गभीरता का अनुभव भी होता है। फिर इस बात की अनुभूति भी रहती है कि उग्र नीति अपनाने, तानाशाही ढग से आचरण करने, आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप करने आदि के कितने भयानक परिणाम हो सकते हैं।

Education in the states :

EDUCATION IN THE STATE OF HARYANA

The State of Haryana came into existence with the handicap of a low level of educational development. Having been alive to this grim situation and giving due thought to the present day thinking that education not only precedes development but it can also forge into a powerful instrument for the achievement of socio-economic goals, the popular Govt and the people comprising the State have devoted their full energies to this great task The result is now obvious in the shape of spectacular development of education, both quantitatively and qualitatively

The last five years in Haryana have been years o hectic educational activities in the State at all levels. During this short period 800 new primary schools were opened in the State. While doing so, preference has been given to the need of those areas which are far flung and where educational facilities were not available Again 365 primary schools and 348 middle schools were upgraded to the middle and high/higher secondary levels respectively with a view to meet the needs of people for High School Education The State Govt. have also decided to open more primary schools in all such areas where these facilities do not exist

Again during this short span of five years the number of colleges has almost doubled both in the private and the public sectors. The comparative facilities of this expansion and the growth of institutions in Haryana has been projected as under :—

Type of Institution	No. as on 31-3-68 Govt	N Govt	Total	July, 1973 Govt	N Govt.	Total
Primary Schools	4241	105	4346	4713	87	4800
Middle Schools	720	27	747	759	32	781
High/Hr Sec Schools	546	167	713	900	192	1092
Colleges	10	38	48	15	84	99

The above figures show that there is a steep expansion in the number of colleges It is also significant to know that in the case of High and Higher Secondary Schools the number has grown by 53% i e from 747 to 1092 and that of colleges be 106%

SCHOLARSHIPS :

The Total enrolment in all types of Educational Institutions has increased from 12 7 Lakhs in 1967-68 to 15 98 lakhs in 1972-73 This constitutes about 16% of the total population of the State The percentage of enrolment of children receiving primary Education to the total population of the corresponding age group i e 6-11 has also incressed from 58% to 65% Similarly percentage of enrolment of children in the age groups 11-14 and 14-17 has substantially increased i e from 41% to 46 3% and 17 5% to 26 2% respectively These percentages can be compared very favourably with the all India average of 34 1% and 20 4% respectively The figures projected below show the tremendous increase in the year 1972-73 over the level of year 1967-68 —

No of Scholars (in lakhs)

	as on 31-3-68 Boys	Girls	Total	During 1972-73 Boys	Girls	Total
Class I-V	5 92	2 29	8,21	6 76	3 03	9 79
Class VI-VIII	2 92	0 60	2 82	2 77	0 86	3 63
Class IX-XI	0 86	0 21	1 07	1 40	0 40	1 80
Colleges	0 20	0 08	0 37	0 62	0 17	0 79

Under the Minimum Needs Programme the Govt have chalked out a phased scheme and it is envisaged that by the end of Fifth Five Year Plan i e in 1978–79, 100 percent children in the age group 6–11 will be given primary Education and 60% children of the corresponding age group of 11–14 will be enrolled for Middle Schools Education

GIRL'S EDUCATION

Haryana has been and even today is much backward in Girls Education as compared to the general level of Girls Education in the country The State Govt have been giving special attention to bridge the gap between boys and girls' education As a result thereof the enrolment of girls at every level of education is well on the increase The female literacy figure has also increased from 9 2% in 1961 to 14 68% in 1971 The State Govt has taken a number of steps to boost the pace of women education

Significant of these are —

(i) Appointment of more and more lady teachers in Co-Educational Institutions

(ii) Provision of composite hostels for girls and lady teachers in far flung and rural areas

(iii) Provision of subjects like music, home science and fine arts for girls in schools

(iv) Provision of larger number of scholarships at the middle and higher secondary stages for poor and deserving girl students

(v) Supply of free books to girl students in Primary classes

(vi) Provision of free uniform to Harijan Girl students in Primary classes

HIGHER EDUCATION

These few years have witnessed steep expansion in Higher education The number of Govt Colleges have increased from 10 to 15 and that of non Govt colleges from 38 to 84 The

State Govt. have also made available the facilities of Post-Graduate education in some of the subjects such as Political Science, Hindi, Music, Economics etc. in Govt Colleges at Hisar, Gurgaon, Jind, Rohtak etc. The State Govt have given a liberal grant to the tune of Rs 3 crores to Kurukshetra University during the last few years for its development programme and for the expansion/and strengthening of facilities of higher education and research

STREAMLINING OF ADMINISTRATIVE MACHINERY

The State Govt have also streamlined the administrative and inspection machinery for ensuring proper educational standards and for this a number of steps have been taken by the Govt

(i) Trained graduates with atleast five years teaching experience are posted as heads of middle schools

(ii) Dstt Administration has been decentralised and sub-division has been made as the unit of administration under the charge of a gazetted educational officer

(iii) A phased programme has been chalked out to appoint trained graduates as head of Primary Schools and so far 1000 posts of JBT teachers have been upgraded to B Ed level

(iv) The state has embarked upon the much needed programme for the in service training of teachers in phased manner 3000 JBT teachers have under gone one months in service training programme at different training centres during the summer vacation

NATIONAL INTEGRATION .

As a step towards national integration among its younger generation, the state Govt has introduced the teaching of Telugu as a Third Language in the Seventh and Eighth classes At present this facility is available in 32 Govt Schools and 1000 students are learning this Language, stipends are also awarded for this purpose

With the view that curriculum reform is a continuous process by which new values and interpretations have to be accepted and out-moded materials discarded, a special unit in ca laboration with State Institute of Education is busy in effecting reforms in curriculum and to bring out books which are directly related with the life experiences of little children. More over books for classes I to 8th have been nationalised and are being made available to children at comparatively cheaper rates

Teacher pupil ratio has been reduced from 1 50 to 1 35 in primary classes in order to bring a close liasion between learning and teaching processes Play-way material, charts Models and childrens literature have been provided liberally in primary schools in order to make the learning in primary schools more interesting and attractive, and so that the child may learn things with his environmental experience

An Institute of Science Education has been set up at Karnal for bringing improvement in the teaching of science in schools by organising in service training courses for teachers and holding science fairs and science exhibitions Again the programme of improvement of science education has been launched in 80 schools and is being further extended

Realising the significance of library service and to inculcate the habit of self study in our students, the Govt have extended these facilities in all schools and colleges Public Libraries have also been opened in some Distt Headquarter and the remaining Distt will be covered in the Fifth Five Year Plan

An extensive and massive construction programme for college buildings of Hissar, Bhiwani and Kalka have been planned Construction work in case of college buildings at Hissar and Bhiwani is in progress Land for construction of a College at Kalka is being acquired

The Govt takes over the exclusive responsibility of providing buildings for colleges and science rooms, So fas as

primary secondary schools are concerned, it is left to the community resources It is heartening to note that the community has responded in a big way and their share has come to about R 3 crores for the provision of physical facilities

SOCIO-ECONOMIC UPLIFT

For Providing equality of opportunities in the field of education the State has made a significant start in this matter In Govt schools no tuition fee is being chargd in classes I to 8th and liberal fee concessions are allowed to students at the secondary school stage, so that the poverty of parents is in no way a hindrance for the brilliant students in the matter of getting education Larger number of scholarships are provided to brilliant students on merit-cum means basis besides the availability of stipends and scholarships to the members of the scheduled castes and backward classes

EXPENDITURE AND TEACHING PERSONNEL

There is appreciable increase in the number of teaching personnel to cope with the additional enrolment at various levels Likewise aparte from the phenomenal increase in the number of teacher s institutions, there has been appreciable upward trend in expenditure on education both in the private and public sectors The Govt expenditure on education has increased by 101 9% over the year 1967-68

(From—Deptt of Education Haryana)

हरियाणा राज्य में पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ है। प्राथमिक स लकर कालज शिक्षा तक छात्रो और विद्यालयो की सख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। निर्धन तथा पिछड वर्गों क लिये छात्रवृत्तियो की विशप व्यवस्था करके उनक लिय भी शैक्षिक अवसरो में वृद्धि की गई है।

श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री :

भारतीय साहित्य और कलायें तथा अन्य ग्रंथ

१ देवयानी, २ मठाश्रम, ३ कुरुक्षेत्र जागता है, ४ हार की जीत और ५ भारतीय साहित्य और कलायें। लेखक —श्री डा चन्द्रशेखरन् नायर। प्रकाशक — नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान, दिल्ली—३। २, ३, ४ और ५ के लिये श्री निकेतन प्रकाशन, त्रिवेन्द्रम, ४ केरल।

दक्षिण के प्रान्तों में जिन अहिन्दी भाषा भाषियों ने अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी में खासकर साहित्य जगत में ख्याति प्राप्त की है, श्री डा चन्द्रशेखरन् नायर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, केरल ने उनमें अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। अब तक उनकी कई कहानी संग्रह, एकांकी नाटक और निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हमारे सामने प्रस्तुत आलोच्य पुस्तका में प्रथम तीन नाटक एकांकी हैं, चौथा कहानी संग्रह है और पाँचवाँ उनके निबन्धों का संग्रह है। पाँचवी रचना को छोड़कर उनकी बाकी सभी चारों पुस्तकें पुनर्मुद्रित हैं। इससे डा चन्द्रशेखरन् की लोकप्रियता का परिचय होता है।

देवयानी में महाभारत तथा पुराण में वर्णित सुप्रसिद्ध कच और देवयानी के आख्यान को लेकर त्याग और प्रेम, भोग और योग, राग और विराग तथा स्वार्थ और परमार्थ आदि की परस्पर की विरोधी वृत्तियों को युगधर्मानुकुल कथावस्तु के माध्यम से नाटक के रूप में उपस्थित किया गया है।

कुरुक्षेत्र जागता है में तीन एकांकी संग्रहीत हैं त्रिवेणी, बदला और कुरुक्षेत्र जागता है। त्रिवेणी में ऋषि विनोबा के द्वारा प्रतिपादित विज्ञान और आध्यात्मके समन्वय का विचार बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से रखा गया है जो पाठक को विषय की गम्भीरता का परिचय तो देता है किन्तु जिसमें इस तरह के विषयों की दुरुहता कहीं नहीं है। जब तक विज्ञान तथा आध्यात्म में बुद्धि और हृदय में समन्वय नहीं है तब तक शांति की आकांक्षा रखना मृगतृष्णा ही है। विज्ञान ने आज अनेक अद्भुत और भयानक रूप से विनाशकारी शस्त्रास्त्रों का आविष्कार तो किया है किन्तु उसके साथ यदि मानव केन्द्रित दृष्टि या आध्यात्मिक दृष्टि का पुट नहीं होगा तो संसार फिर सदैव संहारात्मक भय से मुक्त नहीं हो सकता है। बदला में भी एकांकी नाटक के माध्यम से गांधी-विनोबा के विचारों को आधार मानकर लेखक ने यह दिखाने का

प्रयास किया है कि अखिल प्राणी सृष्टि में केवल मानव ही एक ऐसा चेतन प्राणी है जो अपने प्राण घातक शत्रु के साथ भी दयाभाव से वर्ताव कर सकता है और यही बात है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से विशिष्टता भी प्रदान करती है। इसलिये मनुष्य को अपनी यह विशेषता हमेशा ही ध्यान में रखने की आवश्यकता है। फिर इस संग्रह की तीसरी कड़ी और जिसके नाम से संग्रह का नाम भी रखा गया है, कुरुक्षेत्र जागता है' में लेखक सर्वोदय के सिद्धान्तों में आस्था व्यक्त करते हुए भारत के स्वतन्त्र होने के बाद अपने को चिरकाल तक राजसत्ता के अधिकारी मानने वाले राजाओं के द्वारा किस प्रकार से आखिर इतिहास के सामने हार कर अपनी राजसत्ताओं का उन्हें त्याग करना पड़ा है इसका बहुत ही सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है।

'सेवाश्रम' भी नाटक ही है और कुछ परिवर्तन के साथ एक प्रकार से 'कुरुक्षेत्र जागता है' का ही यह पुनर्मुद्रण है। उसमें 'कुरुक्षेत्र जागता है' की ही थीम को कुछ विशद करके रखा गया है।

'हार की जीत' में डा. नायर की सात कहानियों का संग्रह है। लेखक की यह कृति भी हिन्दी भाषा पर उनके अधिकार के साथ ही भाषा की स्वच्छता, सुघड़ता और भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अभिनन्दनीय कृति है। नवोदित अम्मे, हार की जीत, चमार की बेटी आदि कहानियों में पाठक के हृदय को स्थाई रूप से छूने वाली प्रभावकारी विधाओं के साथ घटनायें रखी गई हैं और कहानी के माध्यम से मानव मन की गहराइयों को दर्शाने वाली मनोवैज्ञानिक विधि से मानव भावों का मिश्रण किया गया है। इसमें लेखक पूर्ण सफल हुआ है।

'भारतीय संस्कृति और कलायें' नामक पुस्तक में भी लेखक के सात निबन्धों का संग्रह है। उनमें तीन तो परिचयात्मक हैं और बाकी आलोचनात्मक हैं। तीन निबन्धों में मलयालम कथा साहित्य और काव्य साहित्य में होने वाले नवीन प्रयोगों का विशद रूप से आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। इस संग्रह का सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला प्रबंध है भारतीय महाकवि जी शंकर कुरूप, जो स्वयं केरल निवासी ही हैं और जिन्हें अभी हाल ही में ज्ञानपीठ का साहित्य पुरस्कार भी मिला है। हिन्दी के 'सिम्बालिक कवि' इस कृति द्वारा लेखक की उत्तम आलोचक और चित्रकार के रूप में भी मन पर छाप पड़ती है।

भाषा की दृष्टि से भी नायर जी की कृतियाँ परिमार्जित, प्रवाहमय और स्वाभाविक हैं। ये रचनायें राष्ट्रभाषा के रूप को निखारने वाली हैं। इन कृतियों के लिये लेखक का साधुवाद देते हैं।

नयी तालीम : अप्रैल, '७४
पहिले से डाक-व्यय दिए बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

अब मैं पचासी साल का हो गया हूं। युवा पीढ़ी के लिए मेरी क्या सलाह हो सकती है?

पहली बात तो यह है कि आप मरते दम तक यौवन का उत्साह बनाए रखें। अब आपकी पीढ़ी एक अत्यन्त विशिष्ट परिस्थिति में आ पहुंची है। मानव जाति के इतिहास के एक मोड़ पर पहुंचकर आप जी रहे हैं। आपके लिए बड़ा अवसर है। पर आप यदि आजीवन यौवन का उत्साह यानी हृदय की विशालता का, परिवर्तन की तत्परता का, आदर्शों एवं निःस्पृहता का आवेग टिकाए रखने में सफल नहीं हुए तो इस अवसर का उपयोग करने की शक्ति आपमें नहीं आएगी। गांधीजी के अनुयायियों में कभी अंग्रेजों के प्रति तीव्र द्वेषभाव भड़क उठता था तो वे उनसे कहते थे कि "जब तक आप इस तीव्र द्वेषभाव पर विजय नहीं पा लेंगे तब तक के लिए आप ठहर जाएं। जब तक वह न सध जाए तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। जब आपके मन से अंग्रेजों के प्रति द्वेष मिट जाएगा तभी उनका प्रतिरोध करना हमें सधेगा।' आप भी इसी प्रकार सतत कटु और उग्र भावों को शान्त रखें। अन्त में भारतीयों ने ब्रिटिश शासन को इस तरीके से समाप्त किया जिसके परिणाम स्वरूप उनके और अंग्रेजों के बीच किसी प्रकार का वैमनस्य या विद्वेष न रह सका। इसके लिए दुनिया 'गांधी-भावना' का आभार मानेगी।

—आर्नाल्ड टायन्बी

मुद्रक सदाशिवराव बोंडे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

इस्तेमाल किया है। इग्लंण्ड और यूरोप में भी हाल में शिक्षा सम्बन्धी जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें भी इस शब्द का प्रयोग रूढ़ बनता जा रहा है। वैसे तो कोठारी शिक्षा आयोग ने भी यह स्वीकार किया था कि बुनियादी तालीम के सिद्धान्त केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए ही नहीं, लेकिन कालेज और युनिवर्सिटी शिक्षा के लिए भी स्वीकार किए जाने चाहिए। लेकिन उन्होंने बड़ी कुशलता से इस शब्दका प्रयोग एक प्रकार से वर्जित कर दिया और वही सिलसिला अभी भी जारी है।

फिर भी हमें सतोष है कि प्रो नूरुल हसन ने भारतीय ससद में एक बार फिर 'बेसिक एजुकेशन' नाम का उच्चारण किया और उसकी नीति को दोहराया। हम सभी जानते हैं कि बुनियादी तालीम का बुनियादी सिद्धान्त है समाज-उपयोगी और उत्पादक-श्रम द्वारा विद्यार्थियों का प्रशिक्षण करना। यदि इस उसूल को अब भी ईमानदारी से स्वीकार कर लिया जाय और प्राथमिक से उच्चतम शिक्षण सस्थाओं तक में उसे व्यवस्थित ढग से लागू किया जाय तो देश के लिए सब दृष्टि से बहुत हितकर सिद्ध होगा।

शिक्षित बेकारों की समस्या :

अप्रैल २५ को राज्य सभा में केन्द्रीय आयोजन राज्य मत्री श्री मोहन धारिया ने घोषित किया कि पिछले वर्ष देश भर में लगभग तीन लाख शिक्षित बेकारों को विभिन्न प्रकार का रोजगार दिया गया और इस प्रकार की सभी योजनायें भविष्य में भी चालू रखी जायेंगी। भारत सरकार द्वारा पढ़े लिखे बेकारों को जो काम दिया जा रहा है वह अच्छा ही है। लेकिन हमें यह याद रखना होगा कि ये सब योजनायें मल्लम-पट्टी करने जैसी ही हैं, वे इस समस्या का कोई स्थायी हल नहीं हैं। सरकार की तरफ से कुछ लाख बेरोजगार शिक्षितों को काम दिया जाता है और दूसरी तरफ उससे कई गुणा अधिक सख्या में नये बेकार नोजवान पक्ति में आकर खडे हो जाते हैं। यह सिलसिला तब तक निश्चित रूप से जारी रहेगा जब तक वर्तमान शिक्षा के ढाँचों को बुनियादी ढग से परिवर्तित नहीं किया जाता। यह जाहिर है कि इस समय की शिक्षण सस्थाएँ एक प्रकार से बेरोजगारी की फैक्टरियाँ हैं। जो नवयुवक घर में या खेतों में अपने माता-पिता की मदद करने के लिए कुछ काम करते भी हैं, वे स्कूलों और कालेजोंमें पढ़कर 'बाबू' बन जाते हैं और फिर किसी काम के नहीं रहते। आज तो शिक्षा का अर्थ हो गया है श्रम के प्रति अनादर और घृणा। ऐसी अवस्था में बेकारी की समस्या को हल करने की कोशिश करना एक तरह का गोरख धन्धा ही है।

हम आशा करते हैं कि श्री मोहन धारिया भविष्य में मौजूदा शिक्षा-प्रणाली को सुधरवाने की ओर अधिक ध्यान देंगे और सिर्फ शिक्षित बेकारों को कुछ काम दिलाने में ही सतोष न मान लगे।

बिहार में छात्र-आन्दोलन :

गुजरात के बाद अब बिहार में भी विद्यार्थियों ने ठान लिया है कि वर्तमान मंत्रिमंडल और राज्य विधान सभा को बरखास्त कराकर ही वे दम लेंगे। पहले तो श्री जयप्रकाश नारायणजी ने घोषित किया था कि वे चाहते हैं कि बिहार के विद्यार्थी शिक्षा-सुधार और भ्रष्टाचार के लक्ष्यों की ओर विशेष ध्यान दें, क्योंकि किसी मुख्य मंत्री को बरखास्त करा लेने से कोई खास मकसद हासिल नहीं होता। विधानसभाओं को भी भंग करा लेने से यदि हमारे बुनियादी मसले हल हो जायें तो भी कुछ सफलता मिली, ऐसा समझा जाएगा। लेकिन क्या गुजरात के मंत्रिमंडल और विधानसभा के भंग होने के बाद वहाँ की महगाई कम हुई और भ्रष्टाचार दूर हो गया ? यदि ऐसा नहीं हुआ है तो फिर बिहार में इसी प्रकार का कार्यक्रम हाथ में उठाने से क्या सिद्ध होगा ?

हमारी दृष्टि से देश के नवयुवकों को केवल नकारात्मक कार्यक्रम उठाने में अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करना चाहियें ; उन्हें तो अब हिम्मत से यह तय करना चाहिये कि नये भारत का उन्हें ही निर्माण करना है और उसके शासन की भी जिम्मेवारी उन्हीं को हिम्मत और दृढ़ता से उठानी है। किसी मंत्रिमंडल को गिराने या विधान सभा को बरखास्त करा लेने से यह कार्य सिद्ध न हो सकेगा। यदि स्वतन्त्र भारत में जन्मे नवयुवकों ने भविष्य में देश को सचालित करने की जिम्मेवारी उठाने का निश्चय नहीं किया तो फिर राज्य सभाओं के दोबारा चुनावों के समय वे पुराने राजनीतिक-दल ही मैदान में आ खड़े होंगे और वही पुरानी कथा फिर दोहराई जायेगी। हम इसमें न नवयुवकों का और न देश का कोई फायदा देखते हैं।

हमारा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत के तरुण नागरिक सब दृष्टि से योग्य और होनहार हैं और यदि उन्हें ठीक तौर से मार्गदर्शन दिया जाय तो देश उनके हाथमें अवश्य सुरक्षित रहेगा। हाँ, बुजुर्ग नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे नवयुवकों को अपना अनुभव उपलब्ध करें, लेकिन उन पर उसे लादें नहीं। पिछली पीढ़ी ने देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में हिस्सा लिया और भारत को आजाद कराया। अब उन्हें चाहिये कि देश की बागडोर नवयुवकों के हाथ में सौंप दें और इन नव-नागरिकों को नि:स्वार्थ भाव से प्रोत्साहन देते रहें। यदि ऐसा न किया गया तो हमें डर है कि देश में अराजकता तेजी से फैलती चली जायेगी और ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जायेगी कि किसी दिन फौज को ही शासन की जिम्मेवारी उठा लेनी पड़ेगी। हम स्पष्ट शब्दों में कहना चाहते हैं कि यह परिणाम भारत के लिये कल्याणकारी नहीं होगा। ऐसी अवस्था एशिया और अफ्रीका के काफी देशों में पैदा हो चुकी है और वहाँ का अनुभव यही सिखाता है कि फौजी शासन का कुछ समय के लिए तो स्वागत किया जाता है, लेकिन बाद में वह जहर जैसा ही साबित होता है।

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : १०

शिक्षा मंत्रालय और बुनियादी तालीम :

अपने मंत्रालय की वार्षिक वित्तीय मांगों को संसद में पेश करते समय केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री प्रो नुरुल हसन ने अप्रैल के मध्य में कहा कि "भारत सरकार अब भी बुनियादी शिक्षा का सिद्धान्त मान्य करती है" और स्कूलों में उद्योगों की शिक्षा देने का आवश्यक प्रयत्न किया जा रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान परीक्षा-पद्धति में आमूलाग्र परिवर्तन करने का विचार किया जा रहा है, ताकि मौजूदा बुराइयाँ दूर की जा सकें।

हमें यह जानकर खुशी हुई कि शिक्षा मंत्रालय इस समय भी 'बेसिक एजुकेशन' का नाम लेने में संकोच का अनुभव नहीं करता है। बहुत शुक्रिया। लेकिन हम यह जानते हैं कि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के लिए शिक्षा का प्रारुप तैयार करते समय कहीं भी बुनियादी शिक्षा का जिक्र नहीं किया गया था पाँचवीं योजना का जो ड्राफ्ट पार्लियामेंट में पेश किया गया था, उसमें भी कहीं 'बुनियादी शिक्षा' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है, यद्यपि उसमें कई बार शिक्षा और उत्पादक-श्रम और रोजगार का अटूट सम्बन्ध निर्देशित किया गया है। हमें किसी नाम का कोई विशेष आग्रह नहीं है। लेकिन हम नहीं समझते कि भारत सरकार और राज्य सरकारें 'बेसिक' शब्द से इतनी क्यों घबराती हैं? इस नाम का प्रयोग राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने व्यापक रूप से किया था और अब यह शब्द अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य रूप से प्रयुक्त किया जा रहा है। पिछले वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तरराष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए 'बेसिक' शब्द को सभी जगह बिना किसी हिचक के

इस्तेमाल किया है। इग्लैण्ड और यूरोप में भी हाल में शिक्षा सम्बन्धी जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें भी इस शब्द का प्रयोग रूढ़ बनता जा रहा है। वैसे तो कोठारी शिक्षा आयोग ने भी यह स्वीकार किया था कि बुनियादी तालीम के सिद्धान्त केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए ही नहीं, लेकिन कालेज और युनिवर्सिटी शिक्षा के लिए भी स्वीकार किए जाने चाहिए। लेकिन उन्होंने बड़ी कुशलता से इस शब्दका प्रयोग एक प्रकार से वर्जित कर दिया और वही सिलसिला अभी भी जारी है।

फिर भी हमें सतोष है कि प्रो. नूरुल हसन ने भारतीय संसद में एक बार फिर 'बेसिक एजुकेशन' नाम का उच्चारण किया और उसकी नीति को दोहराया। हम सभी जानते हैं कि बुनियादी तालीम का बुनियादी सिद्धान्त है समाज-उपयोगी और उत्पादक-श्रम द्वारा विद्यार्थियों का प्रशिक्षण करना। यदि इस उसूल को अब भी ईमानदारी से स्वीकार कर लिया जाय और प्राथमिक से उच्चतम शिक्षण संस्थाओं तक में उसे व्यवस्थित ढंग से लागू किया जाय तो देश के लिए सब दृष्टि से बहुत हितकर सिद्ध होगा।

शिक्षित बेकारों की समस्या:

अप्रैल २५ को राज्य सभा में केन्द्रीय आयोजन राज्य मंत्री श्री मोहन धारिया ने घोषित किया कि पिछले वर्ष देश भर में लगभग तीन लाख शिक्षित बेकारों को विभिन्न प्रकार का रोजगार दिया गया और इस प्रकार की सभी योजनायें भविष्य में भी चालू रखी जायेंगी। भारत सरकार द्वारा पढ़े-लिखे बेकारों को जो काम दिया जा रहा है वह अच्छा ही है। लेकिन हमें यह याद रखना होगा कि ये सब योजनायें मल्लम-पट्टी करने जैसी ही है, वे इस समस्या का कोई स्थायी हल नहीं है। सरकार की तरफ से कुछ लाख बेरोजगार शिक्षितों को काम दिया जाता है और दूसरी तरफ उससे कई गुणा अधिक सख्या में नये बेकार नौजवान पंक्ति में आकर खड़े हो जाते हैं। यह सिलसिला तब तक निश्चित रूप से जारी रहेगा जब तक वर्तमान शिक्षा के ढांचों को बुनियादी ढंग से परिवर्तित नहीं किया जाता। यह जाहिर है कि इस समय की शिक्षण संस्थाएं एक प्रकार से बेरोजगारी की फैक्टरियां हैं। जो नवयुवक घर में या खेतो में अपने माता-पिता की मदद करने के लिए कुछ काम करते भी हैं, वे स्कूलों और कालेजोंमें पढ़कर 'बाबू' बन जाते हैं और फिर किसी काम के नहीं रहते। आज तो शिक्षा का अर्थ हो गया है श्रम के प्रति अनादर और घृणा। ऐसी अवस्था में बेकारों की समस्या को हल करने की कोशिश करना एक तरह का गोरख-धन्धा ही है।

हम आशा करते है कि श्री मोहन धारिया भविष्य में मौजूदा शिक्षा-प्रणाली को सुधरवाने की ओर अधिक ध्यान देंगे और सिर्फ शिक्षित बेकारों को कुछ काम दिलाने में ही संतोष न मान लेंगे।

बिहार में छात्र-आन्दोलन :

गुजरात के बाद अब बिहार में भी विद्यार्थियों ने ठान लिया है कि वर्तमान मंत्रिमंडल और राज्य विधान सभा को बरखास्त कराकर ही वे दम लेंगे। पहले तो श्री जयप्रकाश नारायणजी ने घोषित किया था कि वे चाहते हैं कि बिहार के विद्यार्थी शिक्षा-सुधार और भ्रष्टाचार के लक्ष्यों की ओर विशेष ध्यान दें, क्योंकि किसी मुख्य मंत्री को बरखास्त करा लेने से कोई खास मकसद हासिल नहीं होता। विधानसभाओं को भी भंग करा लेने से यदि हमारे बुनियादी मसले हल हो जायें तो भी कुछ सफलता मिली, ऐसा समझा जाएगा। लेकिन क्या गुजरात के मंत्रिमंडल और विधानसभा के भंग होने के बाद वहाँ की महंगाई कम हुई और भ्रष्टाचार दूर हो गया? यदि ऐसा नहीं हुआ है तो फिर बिहार में इसी प्रकार का कार्यक्रम हाथ में उठाने से क्या सिद्ध होगा?

हमारी दृष्टि से देश के नवयुवकों को केवल नकारात्मक कार्यक्रम उठाने में अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करना चाहिये, उन्हें तो अब हिम्मत से यह तय करना चाहिये कि नये भारत का उन्हें ही निर्माण करना है और उसके शासन की भी जिम्मेवारी उन्हीं को हिम्मत और दृढ़ता से उठानी है। किसी मंत्रिमंडल को गिराने या विधान सभा को बरखास्त करा लेने से यह कार्य सिद्ध न हो सकेगा। यदि स्वतन्त्र भारत में जन्मे नवयुवकों ने भविष्य में देश को संचालित करने की जिम्मेवारी उठाने का निश्चय नहीं किया तो फिर राज्य सभाओं के दोबारा चुनावों के समय वे पुराने राजनीतिक-दल ही मैदान में आ खड़े होंगे और वही पुरानी कथा फिर दोहराई जायेगी। हम इसमें न नवयुवकों का और न देश का कोई फायदा देखते हैं।

हमारा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत के तरुण नागरिक सब दृष्टि से योग्य और होनहार हैं और यदि उन्हें ठीक तौर से मार्गदर्शन दिया जाय तो देश उनके हाथमें अवश्य सुरक्षित रहेगा। हाँ, बुजुर्ग नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे नवयुवकों को अपना अनुभव उपलब्ध करें, लेकिन उन पर उसे लादें नहीं। पिछली पीढ़ी ने देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में हिस्सा लिया और भारत को आजाद कराया। अब उन्हें चाहिये कि देश की बागडोर नवयुवकों के हाथ में सौंप दें और इन नव-नागरिकों को निःस्वार्थ भाव से प्रोत्साहन देते रहें। यदि ऐसा न किया गया तो हमें डर है कि देश में अराजकता तेजी से फैलती चली जायेगी और ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जायेगी कि किसी दिन फौज को ही शासन की जिम्मेवारी उठा लेनी पड़ेगी। हम स्पष्ट शब्दों में कहना चाहते हैं कि यह परिणाम भारत के लिये कल्याणकारी नहीं होगा। ऐसी अवस्था एशिया और अफ्रीका के काफी देशों में पैदा हो चुकी है और वहाँ का अनुभव यही सिखाता है कि फौजी शासन का कुछ समय के लिए तो स्वागत किया जाता है, लेकिन बाद में वह जहर जैसा ही साबित होता है।

गन्दे सिनेमा और अशोभनीय पोस्टर :

केन्द्रीय राज्य मंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल ने हाल ही में पार्लियमेंट में घोषणा की कि फिल्म निर्माताओं को उन्होंने हिदायत दी है कि वे 'हिंसा', 'सेक्स' से भरी फिल्मों का निर्माण न करें, क्योंकि उनसे देश के नवयुवकों का चरित्र गिरता है और देश में हिंसा व विद्वेष का वातावरण फैलता है। हम आशा करते हैं कि श्री गुजराल इस मामले का गम्भीरता से पीछा करेंगे और संसद में सिर्फ एक घोषणा करने में संतोष नहीं मान लेंगे। हम सभी जानते हैं कि इस समय गन्दी फिल्मों की वजह से विद्यार्थियों में अनीति और हिंसा की प्रवृत्तियाँ व्यापक ढंग से बढ़ती जा रही हैं। हम शिक्षण संस्थाओं में कितनी ही नैतिक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करें, किन्तु यदि सिनेमा-घरों में उल्टी ही गंगा बहती रहेगी तो आने वाले वर्षों में देश को भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ेगा।

समाचार-पत्रों में यह भी पढ़कर हमें अच्छा लगा कि पश्चिम बंगाल शासन ने हाल ही में एक कानून पास किया है कि फिल्मों के अशोभनीय पोस्टरों के प्रदर्शन के प्रति सख्त कार्रवाई की जाएगी और यह जरूरी होगा कि इस प्रकार के पोस्टरों को अनिवार्य रूप से पहले से ही सेंसर करा लिया जाय। पाठकों को याद होगा कि कई वर्ष पहले आचार्य विनोबाजी ने सिनेमा के अशोभनीय पोस्टरों के खिलाफ इन्दौर व दूसरे शहरों में एक आन्दोलन शुरू किया था। उस समय सरकार ने यह वायदा भी किया था कि वह इस प्रकार के पोस्टरों के प्रदर्शन पर पाबन्दी लगायेगी। किन्तु अभी तक इस प्रकार के कोई खास कदम नहीं उठाए गए हैं। अब हम आशा करते हैं कि पश्चिम बंगाल की तरह दूसरे राज्यों में भी गन्दे पोस्टरों के विरुद्ध कड़े कदम उठाए जायेंगे और इस प्रकार के अशोभनीय प्रदर्शनों से जनता को और विशेषकर नवयुवकों को बचाया जायेगा।

—श्रीमन्नारायण

एक सराहनीय प्रयोग :

१५ अप्रैल १९७४ के 'हिन्दू' (मद्रास का अंग्रेजी दैनिक) के अनुसार केरल विश्व विद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग ने त्रिवेन्द्रम स्थित सेंट जोजेफ हाइस्कूल के ८ वीं और ९ वीं के दस छात्रों को लेकर मलायलम के माध्यम से दक्षिण की अन्य तीन भाषाओं तमिल, कन्नड, और तेलुगु को सिखाने का एक नया प्रयोग आरम्भ किया है। एक चार सप्ताह का ऐसा कोर्स तैयार किया गया है जिसके अध्ययन के बाद हर छात्र समाचार पत्रों के स्तर पर चारों भाषाओं को आसानी से पढ़ और समझ सकेगा। इसके बाद वह फिर उस भाषा को अपनी लिपि में भी उस भाषा को आसानी से सीख सकता है।

यह सही है कि यदि लिपि की कठिनाई आरम्भ में ही हमारा मार्ग न रोक ले तो फिर अपनी ही लिपि में हम कोई भी भाषा आसानी से और शीघ्रता से सीख सकते है। विश्व विद्यालय को इसकी प्रेरणा असल में 'फंवट' नामक एक व्यापारिक कम्पनी से मिली जिसने अपने १२ विक्री अधिकारियों के लिये पहले इस तरह का एक सफल प्रयोग किया है। अब उसके वे १२ अधिकारी इन छात्रों के साथ कन्नड के पाठों में साथ रहेंगे। कन्नड और तेलुगु में इसके लिए पाठ्यसामग्री तैयार करने का काम नई दिल्ली में 'शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद' (एन सी ई आर टी) की श्रीमती यमुना अनन्तरमन् तथा कु दोनम्मा ने परिषद की १ लाख और 'फंवट' सस्था से ३५ हजार की एक दो साला ग्रान्ट की मदद से किया है।

अपनी लिपि के माध्यम से अन्य भाषाएँ सिखाने का यह प्रयोग सराहनीय है। असल में तो लिपि भेद के कारण ही, हम जितनी भाषायें आसानी से सीख सकते है, नहीं सीख पाते। खासकर दक्षिण की भाषाओं के साथ तो यह कठिनाई सबसे अधिक है जो यद्यपि आपस में बोली और समझी जाती है किन्तु लिखी न जासकने के कारण इन दो समानताओं से भी लोगों को कोई लाभ नहीं होता और वे इतनी समान होने पर भी परस्पर अपरिचित हो बनी हुई है। यही बात अन्य भारतीय भाषाओं के बारे में भी सही है। यदि देश की सभी भाषाओं की कोई एक ऐसी लिपि होती जो सबको सुलभ होती तो फिर हम देश की किसी भी भाषा को आसानी से सीख सकते थे। आज के 'पहले लिपि फिर भाषा' के इस क्रम ने सारी कठिनाई खडी की है। अन्तत हमें सारे भारत के लिए कोई एक सर्वसमान्य लिपि भी कभी न कभी मान्य करनी ही होगी तभी हम सही अर्थों में राष्ट्रीय एकता का निर्माण कर सकेंगे।

ऋषि विनोबा ने इसके लिये देवनागरी का सुझाव दिया है क्योंकि एक तो यह सबसे सरल और वैज्ञानिक है और लगभग सभी भाषाओं के निकट भी है। यह मान्य हो जाय तो फिर उसके माध्यम से पहले प्रादेशिक भाषायें और फिर उनकी लिपियों का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। केरल विश्व विद्यालय को अपना यह प्रयोग राष्ट्रव्यापी करना होगा और इसके लिये देवनागरी सबसे अधिक मददगार हो सकती है। आशा है अन्य विश्व विद्यालय भी केरल से उदाहरण लेकर देश की भाषाओं के क्षेत्र में एक करने की दिशा में काम आरम्भ करेंगे। विश्व विद्यालय यह काम उठा ले तो फिर काम बहुत आसान तो होगा ही साथ ही सर्व मान्य भी शीघ्र हो सकेगा।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

गाधीजी

यह स्वराज्य मेरे किस काम का

यह नयी तालीम का काम मेरे जीवन का आखरी काम है। इस भगवान ने अगर पूरा करने दिया तो इसस हिन्दुस्तान का नक्शा ही बदल जायेगा। आज की तालीम तो इतनी निकम्मी है कि जो लडके स्कूल कालेजो में शिक्षा पाते हैं उनको अक्षर ज्ञान भले हो जाता हो किन्तु जीवन के लिए अक्षर ज्ञान के सिवाय और भी कुछ चाहिये। अगर यह अक्षर ज्ञान हमारे दूसरे अगो को निकम्मा बना द तो मैं कहूंगा कि मुझे तुम्हारा यह ज्ञान नही चाहिये। फिर जो ज्ञान मुट्ठीभर लोगो के पास ही हो वह भी मेरे काम का नही है। अब सवाल यह है कि सबको यह ज्ञान कैसे मिले। इस विचार में स नयी तालीम का जन्म हुआ है। मैं जो कहता हूँ कि नयी तालीम सात साल के बच्चे से नही माँ के गर्भ से आरम्भ होनी चाहिये इसका रहस्य समझ लेना चाहिये। अगर माँ परिश्रमी होगी, विचारवान् होगी, व्यवस्थित होगी, सयमी होगी तो बच्चे पर इसका सस्कार माँ के गर्भ स ही होगा।

मेरा स्वराज्य नयी तालीम में छिपा है

मेरी स्वराज्य की कल्पना भी तो नयी तालीम में ही छिपी है। सिर्फ अँग्रेज यहाँ स चले जाय और हम जैसे हैं वैसे ही रह तो वह स्वराज्य मेरे किस काम का। मेरी नयी तालीम की व्याख्या यह है कि जिसको नयी तालीम मिली है उसे अगर गादी पर बिठायेंगे तो वह फूलेगा नही और झाडू देंगे तो शरमायेगा नही। उसके लिये तो दोनो काम एक ही कीमत के होंगे। उसके जीवन में फिजूल के मौज शौक का तो स्थान ही नही हो सकता है। उसकी एक भी क्रिया अनुपयोगी और अनुत्पादक नही होगी। नयी तालीम का विद्यार्थी बुद्धू तो नही हो हो सकता। क्योंकि उसके प्रत्येक अग को काम मिलेगा। उसकी बुद्धि और हाथ साथ साथ चलेंगे। अब लोग हाथ स काम करेंगे तो फिर बेकारी और भुखमरी का सवाल हो नही रहेगा। मेरी नयी तालीम और ग्रामोद्योग एक ही सिक्के के दो बाजू है। अगर ये दोनो सफल होंगे तो ही सच्चा स्वराज्य आयेगा।

(श्री बलवतसिंह जी द्वारा लिखित 'बापू की छाया' में से साभार)

विनोबा

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

(हमने अपने देश में लोकतन्त्र का जो रूप अपनाया है वह पश्चिमी ढग का है किन्तु गाधीजी का कहना था कि भारत को अपनी प्रकृति के अनुकूल लोकतन्त्र का विकास करना होगा। आज का लोकतन्त्र लोक याने जनता का नहीं दलों या पार्टियों का है जिसने फिर अनेक भाषाओं, धर्मों, जातियों और फिरकों में बटे भारत को और भी गहराई से बाट दिया है। इससे आज लोकतन्त्र के बजाय मध्ययुगीन सामतवाद ही मजबूत और गहरा हुआ है। गाधी जी इस खतरे से परिचित थे इसलिए उन्होंने सही लोकतन्त्र के विकास पर जोर दिया था। अभी पिछले दिनों गाधी शांति प्रतिष्ठान के कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए विनोबा जी ने भी यही कहा। विनोबाजी के विचारों का सारांश हम यहाँ दे रहे है। जिन्हें इस विषय में अधिक जानने की रुचि है वे विनोबा जी की पुस्तक "स्वराज्यशास्त्र" और गाधी जी की पुस्तक "हिन्द स्वराज्य" का अध्ययन अवश्य करें। — सम्पादक)

डमोक्रसी के बारे में बाबा के क्या विचार हैं यह समझ लेना चाहिये। बाबा ने एक पुस्तक लिखा है 'स्वराज्यशास्त्र'। गाधीजी ने भी एक पुस्तक लिखी थी 'हिन्दी स्वराज्य"। बाबा ने 'स्वराज्यशास्त्र' में राज्य पद्धतियों के बारे में कहा है, उनमें एक पद्धति है एकायतन। इसमें एक राजा राज्य करता है। फिर दूसरी है अल्पायतन। इसमें एक राजा होता है और दो चार उसके मंत्री जो शक्ति वाले होते होंगे समाज में व, आदि राज्य में उसकी मदद के लिये होते हैं। फिर उसके बाद की पद्धति है बहुसख्यायतन। हम आज जिस लोकतन्त्र कहते हैं वह बहुसख्यायतन है। यह डमाक्रेसी बहुसख्यायतन की पद्धति है। पर हमारी याने सर्वोदय की जो पद्धति है वह है सर्वायतन की। सर्वोदय डमाक्रेसी याने लोकतन्त्र में मानता नहीं है।

एकायतन से लेकर बहुसख्यायतन सब एक ही हैं

अब चाहे एकायतन हो, चाहे अल्पायतन हो, चाहे बहुसख्यायतन हो, इन तीनों का आधार समान है। ये तीनों ही दो बातों पर टिके हैं। इनमें एक है 'देइज्म' याने 'दे विल डू, वी कैन नॉट डू एनीथिंग फार दस' 'वह' (यानी सरकार) ही हमारे

लिये सब कुछ करेगो, हम (यानो प्रजा) अपने लिये स्वय कुछ नही कर सकते हैं। और दूसरी बात है कि ये सभी पद्धतियाँ अपने अन्तिम सैंक्सन के लिये मिलिट्री (सेना) पर आधार रखत है। इस प्रकार से 'देइज्म' और 'सेना' ये दो इन सबके आधार है। ये दो इनमें कामन फैक्टर है। चाहे वेलफेयरिस्ट हो, चाहे कोई फासिस्ट हो, चाह कम्युनिस्ट हो या कोई भी इष्ट या अनिष्ट हो इन सबके लिये ये दो चीजें कायम हैं। यह बात अच्छो तरह स समझ लो जाना चाहिये।

मुक्त हो। यह सब किये बिना शांति की स्थापना भी नहीं हो सकेगी। जनता को वह दर्शन ही नहीं होगा।

शांति का सवाल मूलत: आध्यात्मिक है

यह शांति का जो सवाल है वह मूलत आध्यात्मिक सवाल है। किसी भी अवस्था में चित्त में क्षोभ नहीं होना चाहिये। मैंने कई बार कहा है कि आज के युग में तो अब चित्त का क्षोभ भी आउट आव डेट हो गया है। आपको मान लो बैलेस्टिक मिशाइल फेंकना है तो उसके लिये ठीक ताकना होगा, फिर सही ऐंगल देना होगा, उसे सही गति देनी होगी तब वह सही काम करेगा। अब आप उस समय उस मनुष्य का चित्र ले तो देखेंगे कि उसका चित्त शांत और तटस्थ है। पर आप मारकाट करने-वालो का चित्र देखेंगे तो उनका चेहरा क्रोध से भरा हुआ दीखेगा। इसीलिये आज हिंसा के क्षेत्र में भी क्रोध आउट आव डेट हो गया है। तो फिर अहिंसा के क्षेत्र में तो है ही। इस तरह से अक्षुब्ध चित्त कैसे बने यह सारा ही आध्यात्मिक सवाल है, और हमारे राष्ट्र में यह आध्यात्मिक भावना तो प्राचीन काल से हा रही है वह लोगों के सामने लानी चाहिये।

वानप्रस्थाश्रम आवश्यक

दूसरी बात यह है कि आगे तीस साल के भीतर भारत की आबादी दुगुनी होगी। आज वह पचपन करोड़ है तो वह सौ करोड होने वाली है। तो जमीन का रकबा कम होगा। इससे फिर मारामारी होगी। जवान लोग मार काट करेंगे, वे बूढ़ों को मारेंगे। यह सब होगा तो फिर यह ब्रह्मचर्य का सवाल है। सयम की भावना रखना, लोगों को वह सिखाना यह भी आध्यात्मिक सवाल है। चित्त में क्षोभ न हो और सयम पूर्वक रहना विधि पूर्वक यह सब करना होगा। तभी यह सवाल हल हो सकेगा। इसके लिये वानप्रस्थआश्रम की फिर से स्थापना करनी चाहिये।

चुनावोंमें ग्राम प्रतिनिधि खड़े हों या फिर चुनाव का बहिष्कार हो

मुझसे कभी कभी लोग पोलिटिक्स के बारे में पूछते हैं। बाबा तो अब विश्व पोलिटिक्स का ही चिंतन करता है। बाबा एक बाजू बोलता है 'जय जगत्' और दूसरी बाजू बोलता है 'जय ग्रामदान'। तो फिर इसमें जय भारत, जय गुजरात, जय हिन्द आदि सब आ जाते हैं। तो हम इस छोटी पोलिटिक्स में क्यों पड़े कि कौन चुनाव में आवे, कौन जीते आदि। बाबा ने तो कहा था कि यदि आपमें कोई ताकत है तो फिर हर गाँव में ग्रामसभा बनाओ, वह ग्रामदान मूलक हो तो अति उत्तम, न भी हो तो भी सर्व सम्मतिवाली ग्राम सभा बनाओ और उसके माध्यम से सर्व सम्मति से अपना मुखिया खड़ा करो। चुनाव के लिये ग्रामसभा का एक सर्व सम्मत प्रतिनिधि हो। मान ले कि एक कान्स्टीट्युयेन्सी में पच्चीस गाँव हैं तो इन पच्चीस ही गाँवों

के आदमी इकट्ठे हो और सर्व सम्मति से या सर्वानुमति से अपना आदमी खडा करें। तो इस प्रकार से जो आदमी खडा होगा उसके खिलाफ फिर कौन होगा। यह करने की यदि आपमें ताकत हो तो आजमा करके देखो। होना तो यह चाहिये कम से कम एक प्रान्त में। पर ताकत कम है इसलिये एक जिले को लो और उसमें ताकत आजमाओ। एक जिले में यह होगा तो फिर दूसरे जिले के लिये भी यह मिसाल बनेगा। इसको ही धीरेनदा ने बहुत सुन्दर शब्द दिया है मार्ग खोजन का। तो मार्ग खोजो। यह भी आप न कर सके तो फिर इलेक्सन बूथ पर जाकर लोगों को यह कहना कि व गलत वोट न दें, आदि सब बेकार का काम है। हाँ जिसके लिये कोई काम नही उसके लिये यह अच्छा काम है। पर आप यदि गाँव का प्रतिनिधि खडा नही कर सके तो फिर मैंने दूसरा सुझाव दिया है कि चुनाव का बहिष्कार किया जाय। यह काम हजारों नही लाखों को करना होगा तो ही इसका असर भारत पर होगा। यह आप कर सके तो फिर लोग इलेक्सन बूथ पर ही नही जायेंगे। तब यदि कोई दस बास वोट से चुनकर जाता भी है तो भी कोई हर्ज नही क्योंकि उस हालत में उसमें कोई ताकत नही रहेगी। *लोग कह कि हमारी मांगे पूरी नही होती तो हम वोट ही नहीं* देंगे तो इसका असर तुरन्त होगा। यह काम आप करें तो इससे आपकी भी ताकत बढ़ेगी और हिन्दुस्तान की भी।

सच्चा स्वराज्य थोडे लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नही, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त कर के हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कबजा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है। स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिये लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि स्वराज्य हो जाने पर लोग अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिये सरकार का मुँह ताकना शुरू कर दें, तो वह स्वराज्य सरकार किसी काम की नही होती।

—गांधीजी

दादा धर्माधिकारी

छात्र आन्दोलन की दिशायें :

[आज देश में आये दिन हो रहे छात्र और युवक आन्दोलनों के सन्दर्भ में यहाँ पूज्य दादा धर्माधिकारी के विचार जानना समीचीन होगा। वे सर्वोदय जगत के मान्य चिंतक और दार्शनिक हैं। क्रान्तिशास्त्र के वे आचार्य हैं। आशा है पूज्य दादा के विचार छात्रों और शिक्षकों तथा शिक्षा तज्ञों के लिये प्रेरणाप्रद होंगे।

— सम्पादक]

मैं कहना चाहता हूँ कि हमें किसी का क्रान्ति नहीं चाहिये। आज की समस्यायें हमारी हैं जीवन हमारा है तो फिर उसकी समस्याओं का मुकाबिला भी हमें ही करना होगा। हर एक का जीवन का आकांक्षा है और यही बात महत्वपूर्ण है। यूरोप, अमरीका रशिया और चीन इन सभी देशों के तरुणों में आज एक बेहतरीन जीवन की अपेक्षा है किन्तु इसकी परिस्थिति वहाँ नहीं है। वे जीवन को भूल गये हैं याने उनकी तलाश जीवन की आवश्यकताओं की नहीं प्रत्यक्ष जीवन की है। जो जीवन की जरूरतों की तलाश करते हैं वे जीवन को ही खो बैठते हैं। आज की अवस्था में मनुष्य बेहोश है नींद में है या नशे में है। उसे सावधान करना, जागृत करना आज की क्रान्ति का इष्ट है। सुधार के फेर में वह जीवन के प्रयोजन से ही विमुख हो गया है किन्तु उसकी खोज करना ही क्रान्ति का सब्ब होना चाहिये।

क्रान्ति का संकल्प गांधी की तलाश

यह सम्भव है कि आज के युवक में जीवन की आकांक्षा का मार्ग कुछ गलत हो किन्तु यह आकांक्षा अपने आप में गलत नहीं है। इसलिये उस पर क्रोध करना या उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है। उसकी आकांक्षा समाज को समझनी होगी। आज समाज का जीवन तो अत्यन्त ही चंचल और फरेबी है। किन्तु तरुण को तो नेक और,सच्चे जीवन की आकांक्षा है। इसलिये ही वह हमारे वर्तमान जीवन का विरोध कर रहा है, और उसके विरुद्ध प्रचंड विप्लव करने पर आमादा है। उसे यह आभास होने लगा है कि अब परम्परागत मार्गों से जीवन साध्य नहीं हो सकेगा। विद्रोही तरुणों ने साफ कहा है कि समाज परिवर्तन के साथ ही परिवर्तन के तंत्र में भी परिवर्तन होना चाहिये। क्रान्ति की प्रक्रिया में भी परिवर्तन होना चाहिये।

अमरीका, फ्रान्स, रूस और चीन इन चार देशों में अपने अपने ढंग से चार क्रान्तियाँ हुई हैं। किन्तु आज तो क्रान्ति के लिये इन चारों में से कोई भी तरीका कारगर नहीं रह गया है। यह बात क्रान्तिकारियों ने भी समझ और मान ली है। किन्तु उनका क्रान्तिकारक मन अभी साधनों के बारे में अपने पुराने संस्कारों से जकड़ा हुआ है। अब तरुण-तरुणियों की प्रतिज्ञा है कि हम ऐसे विश्व का निर्माण करना चाहते हैं जो सबका हो, सबके लिये हो। अब उन्हें विशिष्टता की दुनिया नहीं चाहिये। इसी प्रकार से प्रक्रिया सम्बन्धी भी उनका निर्णय है कि हमें तो अभी तुरन्त और 'सभी के लिये' नहीं, 'सभी के साथ' क्रान्ति करनी होगी। (एक्ट इमीडियेटली नाट बोनली फार आल बट विथ आल)। यह उनके शब्द हैं। यह क्रान्ति का संकल्प है। उस संकल्प के अनुरूप लोक सुलभ और लोक व्यापक एक प्रक्रिया गांधी ने तलाश की थी। उस प्रक्रिया का सद्य परिस्थिति में प्रयोजन है।

लेनिन की मजबूरी गांधी का हल

मार्क्स ने कहा था कि हमें अब संसार को समझने और खोजने की नहीं इसे बदलने की आवश्यकता है। आज मनुष्य के सम्बन्ध परोक्ष हैं किन्तु वे प्रत्यक्ष हों यही क्रान्ति का इष्ट है। जीवन का ऐक्य ही मानवीय सम्बन्धों का तत्व है। मानवीय सम्बन्धों में इस ऐक्य की सतत अभिव्यक्ति होनी चाहिये। और यहीं पर गांधी-कार्य का अनन्य महत्व है। यानें क्रान्ति की प्रक्रिया भी क्रान्ति के उद्देश्य के अनुरूप होनी चाहिये। गांधी ने क्रान्ति की इस प्रक्रिया को दो नये आयाम प्रदान किये। एक का नाम दिया हृदय-परिवर्तन और दूसरे का नाम दिया आचार-परिवर्तन। रूस की क्रान्ति के बाद हमारे ध्यान में यह बात सबसे अधिक उजागर हो गई कि केवल सन्दर्भ परिवर्तन ही पूरा परिवर्तन नहीं होता। वहाँ पर भी जिन कामगारों ने क्रान्ति में सक्रिय भाग लिया था वे भी बाद को स्वेच्छा से काम करने के लिये तैयार नहीं थे। फिर उन पर तब शक्ति का प्रयोग उन्हें करना पड़ा। इस पर ही तब लेनिन को कहना पड़ा था कि मजदूरवर्ग अपने स्वार्थ के कारण क्रान्ति में शामिल हुआ था वह कोई समाजवादी नहीं था। इसीलिये गांधी का कहना है कि सन्दर्भ परिवर्तन के साथ साथ ही हृदय परिवर्तन भी होना आवश्यक है, तभी नये मूल्यों के आधारपर क्रान्ति करना सम्भव होगा। अतः जो लोग दूसरों के जीवन में क्रान्ति करना चाहते हैं पहले उनके स्वयं के जीवन में भी क्रान्ति होना आवश्यक है। यह गांधी का दिया हुआ क्रान्ति का अपूर्व वैज्ञानिक आयाम है। यदि यह नहीं हो सका कि क्रान्तिकारी के जीवन और मूल्यों में मेल हो तो फिर इससे ही साध्य-साधन की बेमेलता पैदा होती है और फिर हम जिस प्रकार से आज के छदमी और नकली जीवन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं फिर से वही जीवन कायम हो जायेगा। इसलिये अब किसी भी क्रान्ति के

लिये गाधी के द्वारा बताई प्रक्रिया के बिना कोई दूसरा विकल्प भी नही है। यही एकमात्र वैज्ञानिक प्रक्रिया है और इसीलिये व्यावहारिक भी है।

समग्र क्रान्ति की आवश्यकता :

आधुनिक तरुण क्रान्तिकारियों के मन्त्रद्रष्टा हेनरी मिलर ने एक पते की बात कही है कि अब क्रान्तिकारी को समग्रता में सोचना होगा। वह कहता है कि 'ए वर्ल्ड रिवोल्यूशन फॉर दॅार टु बॉटम इन ऑल रेल्स आव ह्यूमन कान्सिसनेस' की आवश्यकता है। इस आवश्यकता के ही अनुरूप गाधी की हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया है। आज दुनिया के राष्ट्रों में जो एक तरह का सास्कृतिक क्रान्ति का बात कहा जाता है उससे भी इसका सबूत मिलता है कि किसान व मजदूर की क्रान्ति ही सम्पूर्ण क्रान्ति नही है। आज तो रूस या चीन में भी काम के घटे कम हो गये हैं, वेतन बढ़ गया है और मजदूर को कुछ सुविधाओं में वृद्धि हो गई है इसलिये अब मजदूर को क्रान्ति की आवश्यकता नही है। किन्तु समाज में फिर भी क्रान्ति की आकाक्षा बनी हुई है और आज भी स्वाधीनता की आकाक्षा बनी हुई है। यानें मन और बुद्धि की स्वाधीनता को। जिसके बिना फिर मनुष्य मनुष्य ही नही है।

सत्ताधारियों का निरन्तर भय :

आज दुनियां के सभी प्रकार के सत्ताधिकारी, शासक और तानाशाह स्वतन्त्रता के विचार मात्र से भय खाते हैं। उनको शस्त्रों का नही विचार का डर है। इसलिये वे अपनी भरसक विचारों की अभिव्यक्ति पर हर सम्भव रोक लगाते हैं। राजमान्य विरोधी तो उनकी व्यवस्था में हो ही नही सकता। आज तो राजसत्ता का एकमात्र आकाक्षा यही है कि समाज के हर व्यक्ति के मस्तिष्क में अपनी विशिष्ट विचार पद्धति हर सम्भव मार्ग से भर दी जाय। इसे ही 'इन्डाक्ट्रिनेसन' कहा जाता है। यह क्रान्ति के लिये सबसे बडा खतरा है।

साम्यवादी क्रान्ति कालबाह्य हो गयी है :

अब तरुणों को भी यह लगने लग गया है कि साम्यवादी क्रान्ति कालबाह्य हो गई है। उसमें मानव-निष्ठा का तत्त्व से ही अभाव रहा है। अब जिस क्रान्ति में मानव-निष्ठा सामिल होगा वही क्रान्ति सही होगी। अपने देश में दो मनीषी ऐसे थे जिन्होंने समाजवादी चिंतन में मानव-निष्ठा को शामिल करने के लिये सबसे प्रामाणिक प्रयास किये। ये दो थे मानवेन्द्रनाथ राय और डा. राम मनोहर लोहिया। इनमें से डा. लोहिया के प्रेरणास्रोत तो गाधी ही थे। राय जी ने स्वयं के चिंतन से क्रान्तिकारी 'नव-मानववाद' का सृजन किया। हमें याद रखना चाहिये कि हमें तत्वज्ञान नही मानवनिष्ठा चाहिये। जहाँ जीवन का तत्त्वज्ञान ही मूल्य बना कि फिर मनुष्य 'दृष्टिसे ओझल हो जाता है। यह गाधी की ही सिफत थी कि उसने राष्ट्रीय आन्दोलन

का भी मानव निष्ठा के आधारपर चलाया। उन्होंने स्वदेशी की परिभाषा ही पडोसी से प्रेम की थी। यह थी उनकी प्रतिभा। आज स्वदेशी के इस व्रत की सबसे बडी आवश्यकता है। इसका अर्थ इतना ही नही था कि हम अपने पडोसी से प्रेम करें बल्कि यह भी था कि हम अपने उन पडोसी से भी प्रेम का बर्ताव करें जो कि हमारा विरोधी है। यह बात व्यक्ति के संदर्भ में तो ठीक है पर राष्ट्र के संदर्भ में जरा कठिन है किन्तु यदि मानव निष्ठा के आधारपर भारत में राष्ट्र की रचना करना हो तो फिर गांधी द्वारा इंगित स्वदेशी से यही अभिप्रेत है। स्वदेशी का यह सिद्धान्त हमारे अर्थ-व्यवहार में भी उतरना चाहिये। गांधी के विकेन्द्रीकरण का भी यही अर्थ था। आज तो ग्रमोद्योग या ग्रामोद्योग एक प्रकार के सम्प्रदाय बन रहे है। पर उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में भी मानव निष्ठा का अधिष्ठान करना ही गांधी को स्वदेशी का अर्थ है। इसमें से जो समाज बनेगा वह सहज होगा। इसका अर्थ यह है कि आज के तरुणों को अभिनव समाज क्रान्ति के लिये गांधी प्रणीत पद्धति की ओर आना होगा तभी वे कुछ कर सकेंगे।

सामाजिक मूल्यों का परस्पर विरोध

समाज में प्रचलित प्रतिष्ठा विद्यमान सामाजिक मूल्यों की निर्दशिका होती है। आज सत्ता, संपत्ति और शस्त्र यह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक वस्तुएँ है। शस्त्र का प्रयोजन जीवन का संहार है जब कि उत्पादन के उपकरणों का प्रयोजन जीवन का पोषण है। इस प्रकार से हमारे उपकरण तो है जीवननिष्ठ किन्तु शस्त्र अस्त्र है जीवन के संहारक। अब क्रान्ति के लिये हम कौन सा आज का बल देना होगा जीवन की पोषक वृत्ति को या संहारक वृत्ति को यह विचार होना चाहिये। फिर यह भी विचारना होगा कि यदि उत्पादकों के उपकरण शस्त्रास्त्रों को शरण में गये तो भी क्या क्रान्ति को बल मिलेगा ? भविष्य के क्रान्तिकारी शस्त्रास्त्रों पर आधारित क्रान्ति-कारिता का सहन नही करेंगे। यह सम्भव हो नही कि हम शस्त्र को मूठ पकडे रहें और जीवन को भी पोषण देते रहें। गांधी ने यह साफ कर दिया है। यहाँ पर सवाल अहिंसा हिंसा का नही है बल्कि क्रान्ति की प्रक्रिया का है। मानव निष्ठा के विनियोग का है। गांधीजी के सत्याग्रह का यही मर्म है।

सच्चे विद्रोह की पहचान

हमारे आज के विद्यापीठों की शिक्षण पद्धति प्रचलित मूल्यों की परिपोषक है। इसलिये आज का विद्यार्थी इस शिक्षण से ऊब गया है। इसके ही कारण वह तब बेकाबू होकर उन्मुक्त होकर विध्वंस कर बैठता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि वह स्वयं विध्वंसक है। उसका सच्चा विरोध तो आज की प्रचलित मूल्यनिष्ठा से है। किन्तु यह भी सही है कि यदि उसका यह विरोध सच्चा है तो फिर उसमें आज के मान सम्मान और उद्योग आदि से मान्यता मिलने की याचना करना छोड़नी होगी।

उसे यह याचना करने के बजाय समाज बदलने के काम में लगना चाहिये। उसे कहना होगा कि इस समाज को हम बदलना चाहते हैं तो उस समाज की बुनियाद को मजबूत करने वाला शिक्षण हमें नहीं चाहिये।

इस तारुण्य में क्रान्तिकारिता नहीं

किन्तु आज कभी कभी यह दीख रहा है कि सभ्य नागरिक स्त्री और अन्य कमजोरों को तरुण से भय होता है। जिस तारुण्य से समाज भय खाये उसमें क्रान्तिकारिता नहीं है यह समझ लेना चाहिये। वह तारुण्य तो ढोंग और बनावटी है। क्रान्तिकारक तरुण उसको धिक्कारते हैं। आतंकवाद, दहशतखोरी आदि क्रान्ति नहीं हैं। क्या डरी हुई जनता ने कभी कहीं क्रान्ति की है? विवेकशून्यता भी क्रान्ति नहीं होती। इससे तो उल्टे प्रचलित सत्ता की प्रतिष्ठा हो और मजबूत होती है। इससे पैसे के स्थान पर डंडे की ही सत्ता स्थापित होती है। यह बात यदि क्रान्तिकारी भाव वाले तरुणों को समय पर समझ में आ जाय तो ही कुछ आशा की जा सकती है। इसलिये क्रान्ति के शिक्षण के लिये भी तरुणों को तैयार रहना होगा और इसका माध्यम भी गांधी का हृदय-परिवर्तन ही होगा।

यह सही है कि हम जिस प्रकार की मानवीय क्रान्ति चाहते हैं उसके लिये शिक्षा में भी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। आज तो मालिक-मजदूर, व्यापारी-ग्राहक, उत्पादक-उपभोक्ता, ब्राह्मण मेहतर, इस तरह के हमारे सम्बन्ध हैं। इन सम्बन्धों के कारण मानवीय सम्बन्ध समाप्त हुये हैं। सच्चा मानव इससे तो नष्ट ही हुआ है। और यही कारण है आज का यह नकली मानव ही तथाकथित ज्ञान से अकड़ रहा है। इससे ही ऊब कर आज का तरुण क्रान्ति की ओर गया है। आज के अधिकांश तरुण इसी कारण से नास्तिक है और अनास्था के भी शिकार हैं। वे केवल निषेधवादी हैं। किन्तु इस प्रकार का निषेध मात्र मानव विमुख पलायनवाद है। 'हम किसी के कुछ भी नहीं लगते हमारा कोई भी कुछ नहीं हैं। यह उनकी मन स्थिति है और आज वे मन स्वास्थ्य की तलाश में हैं। इस तलाश के कारण ही वे मादक पदार्थों की पकड़ में भी जा फसे हैं। हमारे देश में तो मन शांति के लिये हजारों साल से लोग मादक पदार्थों का सेवन करते आये हैं। किन्तु यह सब पलायनवाद है। इससे कोई क्रान्ति नहीं हो सकती है।

वाद नहीं क्रान्ति :

कुछ तरुण ऐसे भी है जो केवल वर्तमान परिस्थिति में अपने लिये उचित स्थान न मिलने से परेशान है और उस परेशानी को ही कभी कभी क्रान्ति का नाम दे देते हैं। किन्तु वे असल में यथास्थितिवादी हैं। उनके उद्दिष्ट क्रान्तिकारी हो सकते हैं किन्तु वे पुराने तन्त्रज्ञानिक मुंह में जा फसे हैं। उनकी प्रतिभा परम्परागत से अलग नहीं जा सकती। उन्हें तो बस मार्क्स, शुद्ध मार्क्सवाद चाहिये। अब आज तो शुद्ध

मार्कसवादी मार्क्स से हटे हुए 'रिविजिनिस्ट' इस तरह का बवला मचा हुआ है। किन्तु समझना होगा कि हमें तो कोई मार्क्सवादी या गांधीवादी नहीं क्रान्तिकारी चाहिये। क्योंकि गांधी या मार्क्स कभी गांधीवादी या फिर मार्क्सवादी नहीं रहे। वे तो क्रान्तिकारी थे। हमें भी क्रान्ति चाहिये कोई वाद नहीं।

शुभ लक्षण

आज धीरे धीरे तरुणों का दल या पक्ष पर से विश्वास छूट रहा है यह शुभ लक्षण है। तरुण राजनीति में पड़े या नहीं यह मुख्य बात नहीं है। राजनीति तो आज के जीवन का अनिवार्य भाग बन गई है। यदि तरुण उसमें नहीं आवेंगे तो वह निर्जीव बन जायेगी। किन्तु तरुणों को जो बात समझनी आवश्यक है वह यह है कि यदि वे राजनीति को उज्ज्वल करना चाहें तो फिर उन्हें राजनीतिज्ञों से दूर रहना होगा। देवता और भक्त के बीच में पुरोहित अंतराल पैदा करते हैं। उसी प्रकार से राजनीतिज्ञ जनता और राजनीति के बीच अंतराल पैदा करते हैं। और क्रान्तिकारी का पहला काम यह है कि वह मनुष्य-मनुष्य के बीच के अन्तर को कम करे। धर्म व्यापार और नागरिक जीवन इन तीनों में ही अब हमें किसी तीसरे दलाल (मिडिलमैन) की आवश्यकता नहीं है। यह आज की क्रान्ति का अमर काम है। क्रान्ति किसी दलाल के माध्यम से नहीं सीधी स्वयं ही करनी होगी। यह तरुण विचार करें तो फिर उन्हें राजनीतिज्ञों से दूर रहकर स्वयं ही क्रान्ति की बागडोर अपने हाथ में लेनी होगी। आज तो अभी ऐसा नहीं है। किन्तु यह हुए बिना क्रान्ति सम्भव नहीं है।

क्रान्ति की निष्ठा असल में आध्यात्मिक है

आज के तरुणों की आकांक्षा असल में आध्यात्मिक आकांक्षा है। मानवता के अधिष्ठान की आकांक्षा याने भगवान के अधिष्ठान की ही आकांक्षा है। विज्ञान के इस युग में अब तो आध्यात्मिक निष्कर्ष और आध्यात्मिक शोध ही अभिनव पद्धति है। विज्ञान के युग में अब तो सामान्य मनुष्य स्थिरप्रज्ञ बनेगा तभी वह टिकेगा यह विनोबा जो कहते हैं वे सही कहते हैं। विनोबा के इस कथन में तरुणों की आकांक्षा का मर्म छिपा है। हमारा कहना है कि किसान-मजदूर की क्रान्ति पूरी नहीं हुई। वह मूल्य परिवर्तन और हृदय-परिवर्तनके सांस्कृतिक जोड़ मिले बिना कभी पूरी हो भी नहीं सकता है। इस प्रकार की नवीन सांस्कृतिक क्रान्ति के लिये विशिष्ट तत्वज्ञान विचार या वाद और सम्प्रदाय से मुक्त मन की आवश्यकता है। यह मुक्त मन ज्ञान यात मन खुला मन हो तो ही उसमें जिज्ञासा हो सकती है। इस प्रकार का चित्त तटस्थ विनययुक्त होगा और तरुणों को इस तरह के चित्त से ही क्रान्ति की आशा करनी चाहिये। वे इसके बिना कोई अभिनव रचना नहीं कर सकेंगे यह निर्विवाद है।

धीरेन्द्र मजुमदार :

जयप्रकाशजी द्वारा तीसरी शक्ति का आवाहन :

[हाल ही में श्री जयप्रकाश नारायण जी ने सत्ता के दुरुपयोग के प्रतिकार के लिये नागरिक शक्ति के जागरण का आन्दोलन आरम्भ किया है। गांधी जी ने तो जनता की इस तरह की शक्ति को ही सच्चे स्वराज्य की पहचान बताया था। यहाँ हम इस पर प्रख्यात् सर्वोदय तत्वज्ञ और नयी तालीम के भू पू सम्पादक श्री धीरेन्द्र मजूमदार जी के विचार दे रहे हैं।
— सम्पादक]

जयप्रकाश बाबू ने देश के छात्रों का जो आवाहन कर दिया है उस आधार पर चल रहे आन्दोलन और देश में आमतौर पर चलने वाले छात्र आन्दोलनों में बुनियादी फर्क है। आम आन्दोलन जो चला करते हैं उनमें राजनैतिक उथल पुथल का कार्यक्रम होता है यानी वह एक राजनैतिक कार्यक्रम होता है। जयप्रकाश बाबू ने जो काल दी है उसके जरिये वे राजनीति को बदल कर लोकनीति की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं। इस फर्क को नहीं समझने के कारण ही प्रधानमंत्री से लेकर ग्राम स्वराज्य आन्दोलन में लगे साथियों के एक हिस्से के मन में भी कुछ यह भ्रम हो गया है कि जयप्रकाश बाबू ने अपने सकल्पित स्वधर्म को छोड़कर राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया है।

जे पी का मुख्य दृष्टिकोण :

आज जो परिस्थिति है उससे आम जनता में असन्तोष और क्रोध का उभाड़ अनिवार्य है। प्रश्न यह है कि इस उभाड़ की अभिव्यक्ति किस दिशा में हो और किस रूप में हो। जय प्रकाश बाबू का स्टैण्ड यह है कि वर्तमान परिस्थिति आज की दूषित सामाजिक और राजनीतिक पद्धति का अनिवार्य फलित है। समय का तकाजा है कि इस पद्धति के स्थान पर विश्व परिस्थिति के अनुरूप नयी पद्धति का विकल्प प्रस्तुत किया जाय। यह विकल्प है राजनीति के स्थान पर लोकनीति का अधिष्ठान। जो लोग राजनीति को ही मानते हैं उनकी माँग होती है कि मंत्रीमंडल में और सरकार में जो भ्रष्ट हैं उन्हें हटाकर नये लोगों को लाया जाय और आवश्यक हो तो आज के ढाँचे में ही लोकतांत्रिक अवस्था को और अच्छा बनाने के लिये चुनाव कुछ शुद्ध और निष्पक्ष हो। अब एक शुद्ध व्यक्ति और नागरिक के नाते श्री जयप्रकाश बाबू को यह माँग तो है ही किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यह तभी सम्भव है कि जब हम चुनाव में दलों के बजाय प्रत्यक्ष जनता के ही उम्मीदवार खड़ा करें और भावी लोकतन्त्र लोकनीति के आधार पर हो। वस्तुत जे पी का यही मुख्य स्टैंड है। बाकी बात तो गौण है। आनुषंगिक है।

राजनीति वालों की पुरानी पद्धति :

जब राजनीति वालों की यह माग होती है कि वर्तमान भ्रष्ट मत्रीमडल बदला जाय, विधान सभा, आवश्यक हो तो, भग की जाय, नये चुनाव कराये जायें आदि आदि। किन्तु वे यह सब करने के लिये कोई पद्धति बदलने का बात नही करते। वे यह सब पुरानी हा पद्धति में और वर्तमान राजनीतिक ढाचे के अन्दर ही करना चाहते हैं। यही मुख्य फर्क है लोकनीति और राजनीति में। राजनीति वाले जरा इसे समझे। जे. पी का कहना है कि इन बातों से कुछ नही होगा, इसलिये इनके लिये कोई कोशिश करना बेकार है। वे मानते है कि वर्तमान विषय समस्याओं का समाधान सिर्फ विधान सभाओ, लोकसभा आदि के चुनाव नये सिरे से कराने या नये मत्रीमडल बनाने, चाहे व जितने भी वाछनीय क्यो न हो, आदि से कुछ भी परिवर्तन सम्भव नही है। इसके बजाय तो हमें प्रत्यक्ष जनशक्ति सगठित करके उसे समस्याओ की रोकथाम अपने हाथ में लेने का प्रशिक्षण देना होगा। यह समझने की बात है।

गाधीजी ने कहा था .

यहाँ पर गाधी जी का कथन याद करना उचित होगा। वे मानते थे कि सहा ढग के लोकतन्त्र का विकास करना भारत का काम होना चाहिये। उन्होने कहा था कि "सच्चा स्वराज्य कुछ व्यक्तियों के सत्ता हथियाने से ही स्थापित नही हो जायेगा। स्वराज्य तो तब होगा जब सत्ता के दुरुपयोग का प्रतिकार करने की शक्ति जन जन में पैदा होगी। दूसरे शब्दो में स्वराज्य आम लोगों को शिक्षित करके ही प्राप्त होता है जिससे जन जन को सत्ता के नियत्रण और नियमन की अपनी क्षमता का भान हो जाता है।" जे पी भी आज यही कहते और करते हैं। वे इसी दृष्टि से आम नागरिक-शक्ति और विशेषकर विद्यार्थी-शक्ति और युवाशक्ति का आवाहन कर रहे है। अत यह समझना चाहिये कि जे पी. राजनीति में प्रवेश नही कर रहे हैं बल्कि राजनीति को लोकनीति में बदलने का काम कर रहे हैं। आखिर किसी चीज को उठाना हो तो फिर उससे अलग रहते हुये भी पूरे तौर पर अछूता रहा नही रहा जा सकता है। किन्तु मुख्य लक्ष्य और कार्यक्रम साफ है।

राजनीतिज्ञों का मार्ग भिन्न है :

जनशक्ति की बात और उसको सगठित करने का प्रयास तो राजनीति वाले भी करते हैं। उसके लिये उनके कार्यक्रम भी होते हैं किन्तु उनका सारा प्रयास ही भिन्न प्रकार का है। उनका प्रयास अपनी जमात शक्ति यानी पार्टी शक्ति को मजबूत करने का होता है और अपनी 'पार्टी को ही जनता' मान लेते है। इस तरह से जनता कई पार्टियों में विभक्त होती है और फिर भी वे उसे जनशक्ति कहते हैं। यह बात समझने की है कि हर पार्टी शासन से अलग अपने को शासक-जमात के विकल्प के रूप में पेश करती है याने हर पार्टी जनशक्ति के बजाय दडशक्ति पर ही विश्वास

करती है और हर पार्टी उसका ही एक अनिवार्य अंग है। वह हिंसा शक्ति का विरोधी नहीं होती। कोई भी पार्टी सिद्धान्त के तौर पर अहिंसा को मानती भी नहीं। उनमें से किसी का भी कार्यक्रम अहिंसक नहीं होता। वे सिर्फ शांतिमय उपायों का ही अधिक से अधिक बात करती हैं और यह तो वर्तमान परिस्थिति की मात्र अनिवार्यता है। किन्तु अगर शांतिमय प्रतिरोध के बीच कहां शांति भंग होता है तो उन्हें इस पर कोई एतराज नहीं। वे उसे नजरअन्दाज करने के पक्ष में हैं उसका निषेध करने के पक्ष में नहीं। अब जब छात्र और नागरिकों के शांतिमय आन्दोलन के दरम्यान हिंसा का उभाड होता है तो उसमें जे. पी. के द्वारा किये गये निषेध से राजनैतिक दल असन्तुष्ट होते हैं।

हिंसाशक्ति की विरोधी और दंडशक्ति से भिन्न तीसरी शक्ति की आवश्यकता

राजनीतिक दलों के उपरोक्त कार्यक्रम से भिन्न जयप्रकाश बाबू का कार्यक्रम दण्डशक्ति से भिन्न और अहिंसाशक्तिकी विरोधी स्वतंत्र लोकशक्ति खडी करने का है। ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन का भी यही लक्ष्य और प्रयास है कि प्रत्यक्ष लोकशक्ति के आधार पर समाज चले और वह सरकार निरपेक्ष हो। अतः जे. पी. जो कुछ कर रहे हैं उसमें कुछ को यद्यपि राजनीति का पुट दिखाई देता है किन्तु वह मूलतः ग्राम स्वराज्य आन्दोलन का ही दूसरा पहलू है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जो लोग ग्राम-स्वराज्य के प्रत्यक्ष काम में लगे उसे छोडकर इस हलचल में शामिल हो जाय। उन्हें तो उसी तरह से अपने काम में एक चित्तता से लगे रहना चाहिये जिस तरह से गांधी हिन्द-स्वराज्य के आन्दोलन के दिनों में भी रचनात्मक विंग को आग्रहपूर्वक आन्दोलन के काम से अलग रखते थे।

अहिंसक आन्दोलन की प्रक्रिया

अहिंसक आन्दोलन की प्रक्रिया हिंसक आन्दोलनों से भिन्न होता है। अहिंसक आन्दोलन में हमेशा ही दो विंग होंगे। एक आन्दोलनात्मक और दूसरा रचनात्मक। क्योंकि अहिंसक आन्दोलन में कान्क्वेस्ट (विजय) और कासोलिडेसन (पुष्टि) का काम साथ साथ होता है जब कि हिंसक आन्दोलनों में कन्सोलिडेसन का काम हमेशा ही कान्क्वेस्ट के बाद होता है। इसके कारण ही फिर उसमें जिन दिनों क्रान्तिकारी कान्क्वेस्ट में लगे रहते हैं उन्हीं दिनों फिर स्वभावतः प्रति क्रान्ति की शक्तियाँ अपनी बुलन्द आवाज में समाज के जीवन पर दृढ़ता से छा जाती हैं और अपने को मजबूत कर लेती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि फिर इस तरह की हर हिंसक क्रान्ति के बाद प्रतिक्रान्ति का उदय होता ही है। ग्राम-स्वराज्य के प्रत्यक्ष काम में लगे कार्यकर्ता इस बात को समझ और आन्दोलनात्मक काम को सम्पूर्ण रूप से अपना काम मानते हुये भी उस के आन्दोलनात्मक विंग पर छोड कर अपने काम में निष्ठा से लगे रहें। यही पहले आवश्यक था यही अभी आवश्यक है और यही आगे भी आवश्यक रहेगा। यह बात समझने की है।

ई. डब्ल्यू. आर्यनायकम् :

जब शिक्षक अपने ध्येय को भूल जाते हैं :

[श्री आर्यनायकम् जी गांधी जी के द्वारा अपने बुनियादी शिक्षा के प्रयोग को चलाने के लिये चुने गये व्यक्तियों में से थे। अपनी लगन और योग्यता से उन्होंने यह काम जीवनभर निभाया और हम यह कह सकते हैं कि श्री आर्यनायकम् के कारण भी बुनियादी शिक्षा का देश में कुछ प्रसार सम्भव हुआ। श्री आर्यनायकम् जी ने न केवल गांधीजी के शिक्षा विचार ही आगे बढ़ाया अपितु उसे नया आयाम भी प्रदान किया। आज आर्यनायकम् जी और आशादेवी (उनकी धर्मपत्नी) का नाम तो बुनियादी शिक्षा का पर्याय जैसा ही बन गया है। इस माह की ५ वीं तारीख को स्व. श्री आर्यनायकम् जी की ८१ वीं जयंती है। इस अवसर पर हम नयी तालीम परिवार की ओर से उनको अपनी नम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

— सम्पादक]

हमारे मन में नयी तालीम की आखिरी मंजिल के बारे में कोई संशय नहीं रहना चाहिये। हम नयी तालीम का नाम लें या न लें किन्तु सच्ची शिक्षा का ध्येय क्या है इसे साफ साफ समझ लिया जाना आवश्यक है। सच्ची शिक्षा का ध्येय, हम उसे चाहे जिस नाम से पुकारें, तो मानवता का पूरा और सच्चा विकास ही हो सकता है। और यह विकास एक ऐसे ही वातावरण में हो सकता है जहाँ किसी भी प्रकार का शोषण, अन्याय या असत्य न हो, जहाँ प्रत्येक मनुष्य के मुक्त विकास के लिये समान सुयोग हो, मानव मानव के बीच जहाँ परस्पर प्रेम और विश्वास हो और जहाँ समाज का जीवन सहयोग पर आधारित हो। विश्व और भारत के भी इतिहास ने हमें यही सिखाया है कि जब जब शिक्षक शिक्षा के इस सच्चे ध्येय को भूल जाते हैं तब तब समाज पथभ्रष्ट हुआ है और समाज में नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का स्तर नीचे गिरा है।

भारतीय इतिहास की सीख :

जब हमारा राष्ट्र एक जीता जागता राष्ट्र था और जब भारतीय संस्कृति का प्रभाव सारे पूर्वी एशिया और विश्व के अन्य सुदूरतम भागों तक में फैल रहा था तब उस समय भारतीय समाज के शिक्षक कौन थे। शिक्षक थे। जिन्हें उस समय

ब्राह्मण और पारिव्राजक कहते थे और शिक्षा जिनके जीवन की एक साधना था। वह उनके लिये सत्य की शोध का एक स्वाभाविक अंग थी। आज तो हमारी गिनती संसार के गरीब देशों में की जाती है। और यह बात सच है कि हम गरीब है किन्तु, हमारी यह गरीबी इसमें नही है कि हमारे पास भौतिक साधन कम हैं। हमारी गरीबी तो असल में इसमें है कि हमारे पास आज ऐसे शिक्षको या गुरुओं की कमी है जो मानव समाज के साथ साथ शिक्षा के ध्येय को पहचानें और फिर उस ध्येय को प्राप्ति के लिये निरन्तर निष्काम साधना करें। फिर भी हमारे देश के इस अति दारुण काल में भी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, तिलक, गोखले, और महात्मा गांधी जैसे गुरु पैदा हुए जो सच्चे अर्थों में शिक्षक थे और जिनकी शिक्षा किसी स्कूल, कालेज या विश्व विद्यालय की चाहर दीवारी में बंधी नही थी बल्कि जहाँ जहाँ समाज में अज्ञान था, अन्याय था, असत्य था और जहाँ मानवता का अपमान होता था वहाँ वहाँ इन शिक्षको ने शिक्षा का काम करने के लिये याने इस अज्ञान, अन्याय और असत्य से संग्राम लेने के लिये आगे बढकर काम किये। गांधीजी को शिक्षा का काम तो ठेठ दक्षिण अफ्रीका से ही आरम्भ हो गया था जहाँ उन्होने मानवता का अपमान सहन न कर मानव को सम्मान दिलाने का संघर्ष आरम्भ किया था। फिर भारत में आकर चम्पारण के सत्याग्रह से उन्होंने अपनी शिक्षा का काम आरम्भ किया जहाँ से वे भारत जैसे विशाल राष्ट्र की समग्र जनता को अहिंसा पर आधारित समाज रचना की ओर ले जाना चाहते थे। इससे कम उनका कोई ध्येय नही था।

दो नैतिक शक्तियों का जागरण आवश्यक :

नयी तालीम का भी यही व्रत है। इस व्रत को पूरा करने के लिये राष्ट्र की दो नैतिक शक्तियो के जागरण और सहयोग की आवश्यकता है। पहला शक्ति तो है नयी तालीम में विश्वास रखने वाली एकनिष्ठ साधक और तपस्वी शिक्षक शक्ति और दूसरी है जनशक्ति। इन दो शक्तियो का जागरण और संगठन ही हमारा काम होना चाहिये। हमको मानना होगा कि जब तक इन दो शक्तियों का सम्पूर्ण विकास हम नही कर पाये तब तक नयी तालीम का ध्येय पूरा नही हो सकता है।

सबसे पहले हम शिक्षक शक्ति के बारे में विचार करें। नयी तालीम को कार्यकारी बनाने के लिये इस शक्ति के विकास और संगठन की अतीव आवश्यकता है। अभी तक यह नही हो सका है। हम जो आज तालीम के क्षेत्र में हैं क्या हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि आज जितने भी शिक्षक तालीम के क्षेत्र में हैं वे तालीम के इस ध्येय में पूरा विश्वास रखते हैं। इसलिये हमारा पहला काम यह होना चाहिये कि हमारे काम चाहे कितने ही छोटे या कम क्यों न हो किन्तु हम इसमें पूरी निष्ठा के साथ काम करें। हमें जितने भी शिक्षक इस तरह की सच्ची निष्ठा के मिलेंगे हम तालीम के काम में उतने ही सफल होंगे। मेरा तो यह मानना है कि हम स्कूलों या

कालेजों से शिक्षकों का संग्रह न करके गांवों और शहरों से कुशल जानकार किसानों और कारीगरों में से ही शिक्षकों का चयन करें तो ये लोग जिनके हाथों में कला है, कारीगरी है, श्रमशीलता और नम्रता है, यदि इन्हें जरा सा नयी तालीम का दर्शन बता दिया जाय तो इनमें से ही हमें अच्छे से अच्छे शिक्षक मिलेंगे यह मेरा पक्का विश्वास है।

नयी तालीम के लिये जनशक्ति का संगठन :

नयी तालीम की सफलता के लिये दूसरी शक्ति की अपेक्षा है जनशक्ति की। हमें मानना होगा कि हम अभी तक यह भी नहीं कर पाये हैं। अभी तो हमारे देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था श्रेणियों में बँटी हुई है। इसलिये यह तो साफ ही है कि जो शिक्षा इस समाज को जड़मूल से बदलने और एक नये समाज की रचना करने का दावा करती हो उसका वर्तमान समाज में सुख और सुविधा भोगने वाला वर्ग कभी स्वागत करेगा यह आशा हम न करें। इसलिये जब तक हम समाज में ही कोई आमूल परिवर्तन न कर लें तब तक इस वर्ग से सहयोग के भरोसे रहना उचित नहीं होगा। इसलिये यदि नयी तालीम को जनता की सम्मत्ति की शक्ति प्राप्त करना हो तो हम कार्यकर्ताओं को उस नयी क्रान्ति का सन्देश लेकर जनता के पास पहुँचना होगा और अपने जीवन और वाणी से नयी तालीम में अंतर्निहित सामाजिक और नैतिक मूल्यों को उनके सामने रखना होगा। उनका सहयोग प्राप्त करने का अन्य और कोई मार्ग नहीं है।

विनोबा का योगदान

विनोबा जी ने जो भूदान ग्रामदान का आन्दोलन आरम्भ किया है वह तो नयी तालीम का चलता फिरता विश्वविद्यालय ही है। उनके इस विश्व विद्यालय में मैं भी ग्यारह माह तक विद्यार्थी रहा हूँ और इस अवधि में मुझे नयी तालीम का नया ही दर्शन हुआ है। भारत जितना ही विनोबा जी की बात सुनेगा उतना ही वह *नयी तालीम की ओर बढ़ेगा।*

शिक्षा और सरकार

एक और महत्व का सवाल है जिस पर भी विचार करना होगा। वह यह कि शिक्षा के साथ सरकार का क्या सम्बन्ध हो। आज तो यह एक जटिल सवाल है क्योंकि लगभग सभी देशों में शिक्षा के ऊपर सरकार का अधिकार और प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। औद्योगीकरण और केन्द्रीकरण पर आधारित समाज व्यवस्था का यह *स्वाभाविक परिणाम है। किन्तु मानव संस्कृति की यह परम्परा नहीं रही है।* परम्परा तो यह रही है कि शिक्षा और संस्कृति की जिम्मेवारी भिक्षुओं, सन्यासियों, ब्राह्मणों और आचार्य-वर्ग पर ही रही है और इन सबका स्थान हमेशा राज्य और शासन-

कर्ताओं से ऊपर हो रहा है। प्राचीन भारत में भी ऐसा ही था। आज हमारे देश में भी शिक्षा का काम अधिकतर तो सरकारी विभागों के द्वारा ही होता है या सरकार की सहायता और मान्यता के बल पर ही चल रहा है। किन्तु मुझे लगता है कि अब समय आ गया है जब कि हमें इस पद्धति पर फिर से विचार करना चाहिये। हमें इस सवाल पर समाज कल्याण की भावना से विचार करना होगा। इस सवाल पर भी कई बार विनोबा जी अपना विचार प्रकट कर चुके हैं और हम अगर विश्व के इतिहास का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि आज तक सभी विचारकों और तत्त्वज्ञानियों ने तथा शिक्षाविदों की भी यही राय रही है कि शिक्षा शासनाधीन न हो बल्कि देश की नैतिक शक्ति के द्वारा हो वह संचालित हो।

एक और गम्भीर प्रश्न :

एक और भी गम्भीर सवाल है जिस पर नयी तालीम को विचार करना होगा। वह है कि शिक्षा के साथ अहिंसा का क्या सम्बन्ध हो। नयी तालीम का आरम्भ से ही यह दावा रहा है कि नयी तालीम शिक्षा में शान्ति है और अहिंसक समाज रचना का काम है। असल में यह केवल नयी तालीम का ही दावा नहीं है अपितु समस्त शिक्षा का ही दावा है। शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले भी सभी मानते हैं कि सच्ची शिक्षा वही है जो मानव समाज में द्वेष भेदभाव की बुद्धि और संघर्ष के स्थान पर प्रेम, मैत्री और सहकार की भावना का विकास करे। संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा विज्ञान और संस्कृति संगठन (युनेस्को) के विधान में भी यह बात कही गई है कि मनुष्य के हृदय में आज हिंसा का बीज बोया जा रहा है इसलिये विश्व में शांति की स्थापना भी मनुष्य के हृदय में शिक्षा के माध्यम से की जा सकती है। सन् १९३७ में भी गांधीजी ने वर्धा शिक्षा परिषद में अपने भाषण में कहा था कि अगर हम कौमी और फिर अन्तरराष्ट्रीय संघर्ष को बन्द करना चाहते हों तो हमारे लिये जरूरी है कि जिस शिक्षा का मैंने दिग्दर्शन कराया है उसमें अपने बालकों को शिक्षित करके शुद्ध और सुदृढ़ आधार पर उसका आरम्भ करें। मेरी इस योजना में तह में ही अहिंसा भरी हुई है। विश्व की वर्तमान परिस्थिति में नयी तालीम के इस उद्देश्य का स्मरण करने की आवश्यकता है, क्योंकि इस समय देश और विश्व में सर्वत्र हिंसा और अशांति के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। यह नई तालीम के लिये आगे का काम है और नयी तालीम के कार्यकर्ताओं के सामने बहुत बड़ा प्रश्न है जिसका उन्हें उत्तर देना है।

टेलीविजन और शिक्षा :

(इस अंक से हम "विज्ञान की दिशायें" एक और स्तम्भ आरम्भ कर रहे हैं। हमारे अत्यन्त भावुक और गलत उपयोग के कारण आज विज्ञान '*मानव मुक्ति*' के बजाय '*मानव-दासता*' का पोषक बन रहा है इस ओर अब हमारा ध्यान जाना चाहिये। नयी तालीम के जनक महात्मा गांधी जी ने तो आरम्भ से ही हमें इस खतरे के प्रति आगाह कर दिया था। आशा है पाठकों को यह स्तम्भ भी लाभदायी होगा।

— सम्पादक)

आपका बालक अब अपने कमरे में आराम कुर्सी पर बैठे बैठे सारी दुनियाँ का दृश्य देख सकता है। इससे उसका सामान्य ज्ञान अवश्य बढ़ सकता है किन्तु (आपको यह जानकर सम्भवतः आश्चर्य भी होगा) इससे उसकी सृजनात्मकता समाप्त होती है। अमरीका में यू० एस० एम० में स्कूल आव एज्युकेशन के प्रो० स्टनली स्टर्न (Stanely Starn) ने दो सौ पचास बुद्धिमान बालकों पर टेलीविजन देखने की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया और उन्हें सात सात समूहों में बांटकर प्रत्येक समूह को एक विशेष प्रकार का काम करने को दिया। पहले छः समूहों को व्यंगचित्र बनाने, विद्यालयी शैक्षणिक टेलीविजन, खेलकूद, प्रहसन, नाटक और अन्य दूसरे काम और उनके बारे में निर्देश दिये गये थे। सातवें समूह को इस प्रकार का कोई निश्चित काम अथवा निर्देश नहीं दिया गया था। यह अध्ययन पूरे तीन सप्ताह तक चला।

बालकों पर किये गये इस प्रयोग से पूर्व और पश्चात किये गये सृजनात्मक परीक्षणों (Creativity Test) से पता चला कि केवल सातवें समूह ने कुछ प्रगति की थी बाकी शैक्षणिक समूह सहित सभी समूहों ने विशेष मौखिक योग्यता (Verbal Ability) के और सब प्रकार की ह्रासात्मकता दिखाई। व्यंगचित्र वाले समूह ने तो सबसे खराब प्रदर्शन किया इसका अर्थ यह है कि जब बालकों की सामाजिक क्रियाओं का स्थान टेलीविजन जैसी चीजें ले लेती हैं तब सृजनात्मकता का ह्रास होता है। प्रो० स्टर्न का कहना है कि बौद्धिक विकास और उसकी वृद्धि के लिये वास्तविक लोगों के साथ घुलना मिलना आवश्यक है।

यही बात फिर केलीफोर्निया विश्व विद्यालय के फिलिस डालिनो (Phyllis Dolhinow) ने भी कही है कि सम्यक् विकास के लिये क्रियात्मक खेल अत्यावश्यक है। अनक्षर अथवा आदिम समाजो (Tribal) के बालक (और यह बात तो सभी बालको पर लागू होती है— स) खेल में भावी प्रौढ़ जीवन के रोल अपनाते हैं किन्तु आज एक सामान्य अमरीकी बालक टेलीविजन के सामने चुपचाप बैठा रहता है और उस पर के दृश्यो में उसका कोई भाग नही होता। इससे उसमें निष्क्रियता अथवा 'वश्यता' (Possivity) विकसित होती है। डालिनो, जो स्वय एक मानव वैज्ञानिक है, अपने गैर मानव शिशुओ के विशाल अध्ययन पर से कहती है कि खेल अत्यन्त ही क्रियात्मक प्रक्रिया है ,कोई व्यर्थ की क्रिया नही। यह एक ऐसी मूल्यवान् क्रिया है जिसके सही सही प्रतिफल बाद को प्रौढ जीवन में ही मिल सकते है।

नयी तालीम के पाठकों और ग्राहकों से

नयी तालीम का वार्षिक शुल्क माह अप्रैल ७४ से महगाई के कारण १२ रु. हो गया है। यह सूचना हमने पिछले मार्च अक में ही दे दी थी। फिर भी कुछ लोग ८ रु. या ६ रु. ही शुल्क भज रहे हैं। कृपया अधूरा शुल्क न भेजें। छमाही ग्राहक भी नहीं बनाये जाते। सालभर का शुल्क, १२ रु. अग्रिम भेजने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं। शिक्षकों, छात्रों और प्रशिक्षण विद्यालयोंके छात्राध्यापकों से यदि वे कम से कम छात्र ५ और अन्य १० ग्राहक बनाते हैं तो एक रुपया प्रति ग्राहक छूट दी जाती है। विज्ञापन और ग्राहक बनाने वाले एजेन्टों को भी कम से कम २० ग्राहक बनाने या साल में कम से कम १००० रु. के विज्ञापन दिलाने पर २० प्रतिशत कमीशन भी दिया जाता है। -

अ. भा. नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा :

(७ मार्च १९७४ की बैठक की कार्यवाही)

अखिल भारतीय नयी तालीम समिति की १० वी बैठक सेवाग्राम में साय. ४ बजे श्री श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षतामें हुई जिसमें निम्न सदस्य उपस्थित थे —

सदस्य	आमंत्रित सदस्य
(१) श्री श्रीमन्नारायणजी अध्यक्ष	(१) श्री वी आर मेहता
(२) श्री ग उ पाटणकर सदस्य	(२) श्री द्वारको सुन्दरानी
(३) श्री के मुनियाडी सदस्य	(३) श्री प्रभाकरजी
(४) श्री रामलालजी पारीख सदस्य	(४) श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा
(५) श्री के एस आचार्लू मंत्री	(५) श्री सत्यव्रतजी सर्व सेवा संघ

उचित सख्यामें सदस्यों की अनुपस्थिति के कारण कोरम के अभाव में बैठक आधे घंटे के लिये विसर्जित होकर पुन आधे घंटे बाद प्रारम्भ की गई।

पिछला बैठक की कार्यवाही, जो पहले हो परिपत्रित की गयी थी, बिना किसी संशोधन के स्वीकृत की गई।

श्री आचालूजो ने गुजरात विद्यापीठ के कुलपति श्री रामलालजी पारीख के समिति के नये सदस्य के तौर पर बैठक में उपस्थित होने के लिये उनका स्वागत किया और आशा व्यक्त की कि उनके सुदीर्घ अनुभवों का लाभ समिति को उपलब्ध होता रहेगा।

पिछली बैठक स उठनेवाले मुद्दो पर की गयी कारवाई की जानकारी मंत्रीने सदस्यो को दी। उन्होने बताया कि प्रान्तीय मडलो को अखिल भारत नयी तालीम समिति के साथ सम्बद्ध किये जाने का सभी ने स्वागत किया है।

प्रान्तीय समितियो अथवा मडलो को अखिल भारतीय नयी तालीम समिति के साथ सबद्ध किये जाने के बारे में विस्तार स चर्चा होने के बाद तय किया गया कि सबद्धता का शुल्क प्रत्येक प्रान्त स प्रति वर्ष रु १०१) लिया जाय। उनकी ओर स प्रति वर्ष काम-काज और हिसाब की रिपोर्ट भी आनी चाहिए। मडलो के विधान और नियमावली आदि की प्रति भी मगायी जानी चाहिये ताकि अखिल भारतीय नयी तालीम समिति के विधान के प्रतिकूल कोई मुद्दा यदि हो तो उसकी जानकारी हो सके और उस ओर प्रान्तीय मडल का ध्यान आकर्षित किया जा सके।

नयी तालीम में रुचि रखनेवाली सभी सस्थाओं को लिखा जाय कि वे अपने-अपने राज्य में प्रान्तीय स्तर की एक समिति का गठन इस काम को वेग देने के लिए यथाशीघ्र करें और फिर उस समिति को अखिल भारतीय नयी तालीम समिति के साथ सबद्ध किया जाय।

श्री वजूभाई से निवेदन किया गया कि वे महाराष्ट्र प्रान्त में इस प्रकार की समिति के गठन के बारे में सक्रिय रूप से रुचि लें और ऐसी प्रान्तीय समिति का यथाशीघ्र गठन करने का प्रयास करें।

सबद्ध को गयी प्रत्येक समिति के अध्यक्षों को अखिल भारतीय नयी तालीम समिति की बैठकों में विशेष निमन्त्रित के तौर पर आमन्त्रित किया जाय। इसके लिए आवश्यक हो तो अपने सविधान में सशोधन किया जाय।

आगामी अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम में आयोजित करने के बारे में चर्चा हुई और तय हुआ कि फिलहाल इसका तारीखें १, २ और ३ नवम्बर १९७४ रखी जाय। इस सम्मेलन में सभी प्रान्तों के करीब ५०० लोगों को आमन्त्रित किया जाय जो रचनात्मक काम में और बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय रूप से काम कर रहे हों। साथ ही सर्व सेवा सघ, गाधी स्मारक निधि, गाधी शाति प्रतिष्ठान, कस्तूरबा ट्रस्ट, खादी ग्रामोद्योग आयोग, आचार्यकुल, हरिजन सेवक सघ आदि के प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया जाय। सभी राज्यों के शिक्षा सचिवों तथा बुनियादी शिक्षा से सम्बन्द्ध उच्च अधिकारियों एव डायरेक्टर आफ इन्स्ट्रक्शस को भी आमन्त्रित किया जाय। विभिन्न प्रान्तों से ऐसे लोगों की नामावली तैयार करने तथा इस सम्मेलन से पूर्व प्रान्त में शिक्षा सम्मेलन आयोजित करने का काम निम्न लोगों को सौंपने का सोचा गया —

महाराष्ट्र —श्री वजूभाई पटेल, आंध्र —श्री प्रभाकरजी, मैसूर —श्री आचार्लुजी, उत्तर प्रदेश —श्री करणभाई, बिहार —श्री द्वारिकासिंह, उडीसा —श्री मनमोहन चौधरी, असम —श्री द्वारिका बरुआ, बगाल —श्री क्षितीशराय चौधरी, हरियाना —श्री ओमप्रकाशजी त्रिखा, पजाब —श्री यशपाल मित्तल, हिमाचल प्रदेश —श्री गौरा बहन, काश्मीर —श्री सुरेन्द्र बजाज, त्रिपुरा मणिपुर और नागालैण्ड —डा' आरम, गोवा —श्रीमती शशिकला काकोडकर, दिल्ली —श्री सी ए मेनन, केरल —श्री राधाकृष्ण मेनन, तमिलनाडु—श्री के मुनियाण्डी, अदमान निकोबार —श्री जियोगो हरि।

सभी प्रान्तीय समितियों के अध्यक्षों को भी इस सम्मेलन के बारे में जानकारी दी जाय और उनसे निवेदन किया जाय कि उनके राज्य में जो सस्थाएँ बुनियादी शिक्षा का काम कर रही हैं उसकी रिपोर्ट सम्मेलन में प्रस्तुत करें जिसे बाद में प्रकाशित किया जाय।

ग्रामदानी क्षेत्रों में जो बुनियादी शिक्षा का सराहनीय काम हुआ है उसका एक नोट श्री द्वारको सुन्दरानी और आचार्य राममूर्ति जी से तैयार करने का निवेदन किया गया। सरकार के साथ और सस्थागत शिक्षा की क्या समस्याएँ हैं इस विषय में एक नोट श्री रामलालजी पारीख, श्री द्वारिका बाबू एवं श्री वजूभाई पटेल तैयार करें। ये सभी नोट्स तैयार होकर अगस्त के अंत तक सेवाग्राम आ जाय ताकि सितम्बर में उन्हें प्रकाशित करने के बाद सभी प्रान्तों में उन्हें भेजा जा सके जिससे कि सम्मेलन

में भाग लेनेवाले प्रतिनिधिगण अपने-अपने क्षेत्र में चर्चा करके तैयारी के साथ वहाँ आयें।

सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रत्येक प्रतिनिधि से शुल्क के तौर पर रु १५) लिये जाय जिसमें उनके भोजन और आवास की व्यवस्था की जायेगी। सम्मेलन के लिए रेलवे कन्सेशन प्राप्त करने का प्रयास किया जाय। सम्मेलन के खर्च के लिए रु- १०,००० का पूरक अनुमानित खर्च का बजट मंजूर किया गया।

३ श्री के मुनियाण्डी ने तामिलनाडु में हुए राज्य शिक्षा सम्मेलन की रिपोर्ट सदस्यों को दी।

गुजरात कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति और सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की कार्यान्वयन समिति के संयोजक श्री वी आर मेहताजी ने पिछली बैठक के बाद फालो-अप कमिटी की ओर से की गई कार्रवाई की जानकारी दी।

अखिल भारतीय नयी तालीम समिति का आगामी १९७४-७५ का बजट समिति के मंत्री श्री आचार्लुजी ने प्रस्तुत किया। बजट में समिति की मीटिंग के समय सभी सदस्यों को प्रवास-खर्च के लिये जो रकम दी जाती है उसपर अध्यक्षजीने कहा कि समिति की बैठकों में आने-जाने के खर्च की पूर्ति सदस्यों को अन्य स्रोतों से करनी चाहिए क्योंकि समिति के पास पैसों की काफी कमी है। फिर भी कुछ सदस्या को, जो उसकी पूर्ति नहीं कर सकेंगे, उनके लिए रु १,५०० का प्रावधान रखा गया। अन्य मदों पर अनुमानित खर्च मिलाकर कुल रु १३ ५०० और आमद रु ६,००० होती है। इस प्रकार से रु ७५०० की आपूर्ति अन्य साधनों से करने का तय किया गया।

इसके बाद समिति के कार्य मंत्री और नयी तालीम के प्रबंध संपादक श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा ने "नयी तालीम" पत्रिका का बजट प्रस्तुत किया और पत्रिका की स्थिति से सदस्यों को अवगत किया। पत्रिका की सदस्य संख्या के बारे में अध्यक्षजी ने कहा कि इसे १०,००० तक बढ़ाया जाना चाहिये। राज्य सरकारों और पुस्तकालयों में इसकी अधिकाधिक प्रतियाँ जाय इसका प्रयास किया जाय। विज्ञापन भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। श्री रामलालजी पारीख और श्री वी आर. मेहताजी ने इस दिशा में क्या क्या प्रयास किये जा सकते हैं, इसकी जानकारी दी और सदस्य संख्या बढ़ाने में मदद का आश्वासन दिया।

- कागज का मूल्य इन दिनों पहले की अपेक्षा काफी बढ़ जाने के कारण नयी तालीम पत्रिका का सदस्यता-शुल्क माह अप्रैल १९७४ से रु ८ से बढ़कर प्रति वर्ष रु १२ करने का तय किया गया।

श्री बहुगुणाजी ने पत्रिका का १९७४-७५ का रु २५७९८ अनुमानित बजट प्रस्तुत किया जो कुछ संशोधनों के बाद स्वीकार कर लिया गया।

अखिल भारत बुनियादी शिक्षा सम्मेलन :

अखिल भारतीय नयी तालीम समिति, सेवाग्राम की ७ मार्च ७० को बैठक में निश्चय किया गया है कि आगामी नवम्बर की पहली, दूसरी और तीसरी तारीखों में सेवाग्राम म देश में बुनियादी शिक्षा में रुचि लेने वाले और उसके कार्य में लगे लोगों और संस्थाओं का एक अखिल भारतीय सम्मेलन किया जाय। इसका उद्देश्य देश में बुनियादी शिक्षा को अब तक को प्रगति के साथ साथ उसकी समस्याओं पर भी विचार करना है।

इसके लिये आवश्यक जन शिक्षण भी नहीं किया गया है। अब समय आ गया है जब कि हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। ग्राम-स्वराज्य के काम ने इसके लिये बहुत मौलिक अवसर उपस्थित कर दिये हैं जिनका हमें लाभ लेना होगा। ग्राम-स्वराज्य क्षेत्रों में हम क्या कर सकते हैं इस पर विचार किया जायेगा।

सम्मेलन में नयी तालीम के काम में लगे लोगों और संस्थाओं के अलावा गांधी स्मारक निधि, गांधी शांति प्रतिष्ठान, कस्तूरबा स्मारक निधि, हरिजन सेवक संघ, आचार्य कुल और शिक्षण संगठनों को भी आमंत्रित किया जायेगा। इनके अलावा भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के शिक्षा प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया जायेगा। सम्मेलन के लिये रेलवे कनसेसन भी प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। आशा है यह सम्मेलन बुनियादी शिक्षा के काम को काफी गति तो देगा ही साथ ही देश को इसके लिये दिशा प्रदान भी करेगा।

सम्मेलन के विचारार्थ विभिन्न मुद्दों पर गुजरात विद्यापीठ के उपकुलपति श्री रामलालजी परीख, बुनियादी शिक्षा के तज्ञ और नयी तालीम के सम्पादक श्री आचार्य राममूर्ति, प्रसिद्ध सर्वोदय कार्यकर्ता श्री द्वारको सुन्दरानी, बम्बई के शिक्षाविज्ञ श्री वजुभाई पटेल, बिहार के शिक्षातज्ञ श्री द्वारिकासिंह तथा गुजरात कृषि विश्व विद्यालय के उपकुलपति श्री बी आर मेहता से नोट्स तैयार करने को कहा गया है जो प्रतिनिधियों को पहले से भेज दिये जायेंगे। यह भी प्रयास किया जा रहा है कि इससे पहले राज्यों में राज्य स्तरीय नयी तालीम समितियाँ कायम की जाय और उनके माध्यम से सेवाग्राम राष्ट्रीयशिक्षा सम्मेलन, १९७२ के 'फालोअप' के रूपमें राज्य स्तरीय सम्मेलन कर लिये जाय।

सम्मेलन को पूज्य विनोबा जी भी सम्बोधित करेंगे उसके लिये सम्मेलन का एक सत्र उनके सानिध्य में ही पवनार में ही किया जाएगा।

वे. ज हातेकर, सहमंत्री,
अखिल भारत नयी तालीम समिति सेवाग्राम।

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा
कार्यमंत्री, अखिल भारत
नयी तालीम समिति सेवाग्राम,

श्री शिवाभाई पटेल :

सर्वोदय योजना की बुनियादी शाला कठोल :

[बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में गुजरात में कुछ अच्छा कार्य हो रहा है। वहाँ पर सरकार की ओर से जिला स्तर पर सर्वोदय योजनायें चलाई जाती हैं। जो ग्राम पंचायत अपने गाँव की प्राथमिक शाला की जिम्मेवारी स्वय लेने के लिये जिला शिक्षण समिति को निवेदन करती है उनके गाँव की शाला उन्हें सौंप दी जाती है। इस प्रकार की सर्वोदय योजनाओं की देखरेख का भार फिर सरकारी अफसरों के अलावा कुछ निष्ठावान् रचनात्मक (शिक्षण) कार्यकर्ताओं पर भी दिया जाता है। खेडा जिले में यह दायित्व गुजरात के एक अच्छे बुनियादी शिक्षा कार्यकर्ता श्री शिवाभाई गो पटेल के ऊपर है। यहाँ पर उन्होंने बोरसद तालुके में कठोल गाँव की बुनियादी शाला का विवरण 'नयी तालीम' के लिये भेजा है। हमें आशा है कि नयी तालीम के पाठकों के लिये यह प्रेरणा दायी होगा।

— सम्पादक]

यह शाला ग्राम पचायत ने सर्वोदय योजना को देने का प्रस्ताव किया तो उसके बाद फिर शाला में बालकों की सख्या में काफी वृद्धि हुई। अभी हमारे पास कुल ३०० छात्रोंमें से १२५ छात्रायें हैं। शाला में अभी सात कक्षायें पहली से सातवीं तक और कुल आठ शिक्षक हैं। इनमें से पाँच भाई और तीन बहनें हैं। अभी हाल ही में वहाँ पर एक पलो (पालकों का) सम्मेलन हुआ जिसमें कई पलो भाई बहनें उपस्थित थे।

शाला छात्रों की जिम्मेदारी :

शाला में छात्र पचायत काम करती है, जिसके फिर सफाई, उद्योग व्यवस्था, भोजन, उत्सव, चर्चा, मेहमान और डाक विभाग हैं। इन सभी विभागों का दायित्व छात्रों पर ही है। शाला को सफाई आदर्श है। भोजन के लिये 'केयर' नामक अतर-राष्ट्रीय सस्था की ओर से गेहू का दलिया और सोयाबीन का तेल शाला को मिलता है जिसमें फिर कुछ थोडे से मसाले और शाला की खेती से उत्पन्न साग सब्जी आदि मिलाकर भोजन तैयार किया जाता है और भोजनमें विविधता काफी रहती है। यह काम बालक खूब शौक और कुशलता के साथ कर लेते हैं। आर्थिक स्थिति के

कमजोर बालको को इस प्रकार से अच्छा पौष्टिक आहार मिल जाता है। इससे पालको को भी काफी राहत होती है।

खेती द्वारा शिक्षण

शाला का एक प्रमुख उद्योग खेती है। शाला के पास जमीन तो बहुत कम है। केवल २० गुंठे जमीन ही है। किन्तु वह गांव के पास ही है और चारो ओर से तार से घिरी है। गाव में साग भाजी की चोरी की कोई घटना नही होती यह मालूम हुआ है। यह पालका की सांस्कृतिक स्थिति को दर्शाता है और इसका असर बालको पर पडना स्वाभाविक है इस खेती में माह जून से नवम्बर तक के ६ माह के उत्पादन का अहवाल इस प्रकार से है —

सब्जी	बुआई विस्तार	उत्पादन	आहारमें खर्च	बिक्री	कीमत
भिंडी	१८० मीटर	१४५ किलो	१२२ किलो	२३ कि	१३–००
ग्वारफली	१०० मीटर	१९ ७५० कि	६ ७५० कि	१३ कि	११–४०
लाभिया	५६ मीटर	८ ७५० कि	४ ७५० कि	४ कि	३–२०
बैंगन	४०० मीटर	२६७ कि	१६८ कि	९९ कि	९०–००
घिया	५६ मीटर	३५ कि	३० कि	५ कि	५–००
सेन	१६६ मीटर	४६ कि	१५ कि.	३१ कि	४६–५०
टमाटर	२६० मीटर	६५ ६०० कि.	६० ६०० कि	५ कि.	५–००
मिर्चं	५० मीटर	७०० ग्राम	७०० ग्राम	—	—
योग —	१२१३ मीटर	५८७ ८००कि	४०७ ८००कि	१८० कि.	१८४–१०

इसमें खर्च इस प्रकार से है। खाद में खर्च २५८ रु का हुआ है। भोजन में जो खर्च हो गया उसका कीमत कुल रु ४०० होती है। इस प्रकार से कुल आय ५८४ रु १० पैसे की हुई। और अभी सागभाजी का निकलना जारा ही है।

बाल बैंक

बालको को घर से माता पिता जो भी थोडा बहुत खर्च के लिये पैसे देते है वे उसे या ही खर्च न करके शाला द्वारा चलाये जाने वाले बाल बैंक में जमा करा देते है। यह काम पिछली जून से आरम्भ हुआ है और इन ६ माहा में बालको के कुल ८५ ऋणपत्रो के माध्यम से रु ५११–५७ जमा हुआ है। उसमें से उन्होंने अपनी कापी-पेन्सिल आदि पर कुल ४२५–८४ उठा लिये। इस प्रकार से अभी उनके पास ८५–७३ पैसे जमा है। इस प्रकार से बालक न केवल हिसाब किताब रखना ही सीख रहे हैं अपितु वे अपनी जिम्मेदारी से अपना खर्च कैसे चलायें यह भी सीख रहे है। इससे उन्हें माता-पिता और समाज की दशा का भी सहज ज्ञान हो जाता है, जो आज की शिक्षा के द्वारा तो सम्भव ही नही है।

वस्तु भंडार :

बालकों ने यह भी अनुभव किया कि उन्हे जो रोजमर्रा की चीजें आवश्यक होती हैं उनके लिये बार बार बाजार जाने और बाजार की अस्थिर हालतों से पिसने के बजाय वे स्वयं का ही एक भंडार क्यों न चलायें तो फिर इस तरह के भण्डार का भी आरम्भ हो गया। इसके माध्यम से अब उन्हें अपनी कापी, पेन्सिल आदि की आवश्यकताओं के लिये कहीं बाहर बाजार जाने की आवश्यकता नही है। पिछली जून से नवम्बर तक इस भंडार का हिसाब इस प्रकार से है :—

कुल वस्तुयें खरीदी गई :—	१२२२–०२ रु
कुल बिकी की गई —	१३३६–०५ रु
कुल मुनाफा हुआ :—	१०९–०३ रु.

इस प्रकार से छात्रों को न केवल उचित कीमत पर सामान ही मिल जाता है, अपितु वे यह भी समझ जाते हैं कि उन्हे केवल अत्यावश्यक होने पर ही वस्तुयें लेनी चाहिये। इस भंडार की सारी व्यवस्था भी स्वय छात्र ही चलाते हैं। इस प्रकार से भंडार भी शाला में शिक्षण की एक कक्षा जैसी ही है।

राम दुकान :

अब वस्तु-भंडार का विकास एक और रूप में हो गया है। वस्तु-भंडार को चलाने के लिये तो फिर भी कोई एक व्यवस्थापक चाहिये और उसे फिर सब काम छोड़कर वहाँ रहना होता है। फिर कई बार वह सबके मन की चीजें नही रख पाता तो उससे कुछ असन्तोष भी होता ही है, । इस पर से बालको ने सोचा कि एक 'राम की दूकान' हो जिस पर कोई ताला न हो और जहाँ पर केवल वस्तु के भाव की सूची टगी रहे और जिसे जो वस्तु चाहिये वह वहाँ से आकर स्वय ले जाय और उसकी कीमत वहाँ पर रखी एक निश्चित जगह पर रख कर चला जाय। यह दूकान छात्रों के नैतिक शिक्षण का एक अद्भुत माध्यम है और अभी तक यह सफलता पूर्वक चल रही है। अब तक इस दूकान में वे कुल ८७–२५ रु का सामान लाये और ९९–७५ रु. की बिकी हुई है। इस प्रकार से राम भरोसे की दूकान में भी उन्होने १२–५० रु का मुनाफा कमाया है। इससे कोई भी कह सकता है, कि शाला में छात्रो का नैतिक शिक्षण अति उत्तम ढग से हो रहा है। यह काम सभी शालायें कर सकती है और इस प्रकार से बालको पर व्यर्थ का सन्देह और फिर निगरानी करने के बजाय उन पर विश्वास करके उन्हे भी विश्वास करने वाला बनाया जा सकता है। बुनियादी शिक्षा का यही अर्थ है। क्या इसे हम अपने राष्ट्र की आदर्श शिक्षा पद्धति नही कह सकते?

आगामी २८ मई से १ जून तक कलकत्ता में होने वाले सर्वोदय सम्मेलन के कारण नयी तालीम का कार्यालय कलकत्ता रहेगा। अतः जून और जुलाई का अंक अब संयुक्तांक होगा। पाठक ग्राहक कृपया नोट कर लें।

माधव गोडसे :

नयी तालीम प्रौढ़ विद्यालय, सेवाग्राम का छमाही विवरण :

[गत अक्टूबर से सेवाग्राम में एक नया प्रयोग आरम्भ किया गया था 'काम को शिक्षा बनाने' का। उसे अब ५ माह हो रहे हैं। काम को शिक्षा बनाना जितना आसान कहा जाता है उतना आसान वह है नहीं। सबसे पहले तो काम की उस तरह की देशव्यापी व्यवस्था करनी होगी। इसका अर्थ साफ है कि देश की सारी अर्थ और उद्योग प्रणाली आमूल बदलनी होगी। आज की प्रचलित केन्द्रित पद्धति में कभी भी 'सार्थक शिक्षा' नहीं चलाई जा सकती चाहे हम कितना भी 'कार्यानुभव' का उद्घोष करते रहें। आज जो कुछ है उसके साथ आर्यानुभव चन्द समय में गुलामी और जैसा ब्राजील के प्रख्यात शिक्षातज्ञ पौलो फ्रेरे कहते हैं, "चुप रहो (अन्याय सहनें) की संस्कृति" (Culture of Silence) का प्रशिक्षण बन जाएगा यह निश्चय है। सेवाग्राम के इस निष्कर्ष पर शिक्षाशास्त्री ध्यान देंगे यह आशा है। —सम्पादक]

गत २ अक्टूबर को सेवाग्राम में पूज्य विनोबा जी की प्रेरणा और सलाह से उन ग्रामीण और शहरी युवकों के लिये एक शिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किया गया था जो कि अपने घर या उद्योग में कुछ मदद की दृष्टि से खेती, गोपालन और कुछ अन्य छोटे उद्योगों का प्रशिक्षण लेकर पुनः अपने घर या उद्योग पर वापस जाकर काम करना चाहते हैं। यह शिक्षा का नया ही रूप है जिसका उद्देश्य नौकरी के लिये नहीं अपितु जीवन की तैयारी के लिये युवकों को प्रशिक्षण देना है। इसके लिये आने-वाले युवकों से न तो कोई शुल्क ही लिया जाता है और न उन्हें कोई प्रमाणपत्र ही दिया जाता है। यदि वे चाहें तो उन्हें यहाँ रहने और जो सीखा उसके लिये उतना लिखकर देते हैं किन्तु उसे कोई सरकार या अन्य मान्य करे इसके लिये हमारा कोई प्रयास नहीं है। कम से कम ८ वीं कक्षा तक की योग्यता वाले युवक यहाँ आते हैं और स्वयं खेती, गोपालन या वर्कशाप में काम करते हुये अपनी पढ़ाई का पूरा व्यय उठाते हैं। उन्हें अपने जेब खर्च के लिये १० रु. मासिक मात्र देना होता है। इस प्रकार के अब तक हमारे पास सात छात्र आये हैं जो हिन्दी माध्यम से शिक्षा पाते हैं। इन में से दो महाराष्ट्र से बाहर के, एक गुजरात का और एक प. बंगाल का है।

पाठ्यक्रम के अनुसार पहले के छ माहो में सभी छात्रा ने खेती में ही अधिक काम किया। रोजाना चार घंटे का श्रम और दो घंटे का बौद्धिक वर्ग का क्रम रखा है। इस प्रकार स सप्ताह में छ दिन काम के और इतवार को निजी सफाई आदि के लिये अवकाश का माना गया है। अब तक रोजाना चार घंटे के काम पर स छात्रो ने पढ़ाई के साथ कमाई करते हुये प्रति छात्र प्रति माह ३४-०४ रु की आय प्राप्त की है।

माह फरवरी में सभी छात्र बागवानी की विशेष ट्रेनिंग के लिये ग्रीन गार्डेन्स, हैदराबाद में भेजे गये थे। वहाँ उन्होंने रोजाना ६ घंटे काम किया और वहाँ का उत्पादन भी बढ़ाया। यह प्रशिक्षण छात्रो के लिये काफी लाभदायी रहा। उसके बाद यहाँ भी उन्होंने अब नर्सरी के लिए एक अलग प्लाट मागा है, जो उन्हे दिया गया है। छात्रों का हर माह का भोजन खर्च लगभग ५५ रु आता है। इस प्रकार से हम स्वावलम्बन स अभी काफी दूर हैं। इसका कारण यह है कि एक तो उन्हे खेती विभाग स कभी कभी पूरे चार घंटे का काम नहीं मिल सका है और इसका असर उनकी कमाई पर होना स्वाभाविक है। दूसरे कुछ वस्तुयें भी महगी हो गई है। फिर भी हमें आशा है कि हम कम स कम भोजन म स्वावलम्बन प्राप्त कर सकेंगे।

दैनिक कार्यक्रम .

विद्यालय का दिन प्रात ५ बजे के जागरण स आरम्भ होता है और प्रात-साय की प्रार्थना तथा रोज एक घंटे के खेलकूद के साथ रात्रि को ७ बजे भोजन और फिर दो घंटे के निजी अध्ययन के बाद १० बजे समाप्त होता है। प्रात काल को प्रार्थना के बाद कल के काम की रिपोर्ट सुनाई जाती है और कोई समस्या आती हो तो उसकी भी चर्चा होती है जिसका हल छात्र और शिक्षक मिलकर करते हैं। दिन के चार घंटे के शरीरश्रम और दो घंटे के वर्ग के अलावा हर छात्र को रोज एक घंटा वाचनालय में बिताना होता है जहा वह हर तरह के समाचार पत्र और पुस्तिकायें पढ़ता है, उनसे नोट लेता है। उसके लिये गये इन्ही नोटो के आधार पर फिर शिक्षक उनका दैनिक पाठ्यक्रम बनाते है। जिस दिन जो समस्या या बात उन्होंने उठाई उसी के सम्बन्ध में फिर वर्ग में चर्चा होती है। वर्ग में सर्वोदय विचार, देश के हर प्रदेश का विशिष्ट ज्ञान.कारी, भारतीय विचार और आचार, आरोग्य तथा सफाई तथा पुस्तकों का चयन और अध्ययन आदि विषयों पर चर्चा होती है। भोजनशाला, प्रार्थना और सफाई आदि में सामुदायिक काम करने का अवसर रहने स छात्रा में समूह-भावना का सम्यक् विकास हो इसका भी ध्यान रखा जाता है। प्रात साय की सामूहिक प्रार्थनाओं में सुबह गीताई, (पूज्य विनोबा जी द्वारा लिखी मराठी गीता) का नित्य पाठ किया जाता है और अब छात्रों ने इसको पढ़ने का अच्छा ढग विकसित कर लिया है। उनकी पढ़ाई का स्तर कम होने पर भी अब वे इस पढ़ने और समझने में कुछ योग्यता हासिल करते जा रहे हैं।

चूंकि यह नितान्त नया शैक्षिक प्रयोग है इसलिये स्वभावतः ही अभी तक हम शिक्षक भी, जो कि पुरानी पद्धति से ही पढ़े लिखे हैं, इसकी गहराई पूरी तरह से नही समझ सके हैं। इस तरह से यह हमारे लिये भी सीखने का अच्छा साधन बन गया है। अभी तक हम एक बने बनाये पाठ्यक्रम के, जिसके बनाने में हम अक्सर कोई भाग कभी कहीं नही लेते, आधार पर पुस्तक पढा देते हैं। किन्तु यहाँ तो रोज छात्रों के साथ चर्चा में जो बातें उठती हैं, उनके काम में से जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं उनके आधार पर ही हमें उनकी पढाई का प्रबन्ध करना होता है। यह हमारे लिये नितान्त नया ही काम है। फिर हमारे लिये सबसे कठिन जो काम मालूम हो रहा है वह है इन युवकों का गुण और वृत्ति के आधार पर विकास की दिशा समझना। ये सभी लगभग १६ साल से ऊपर के हैं, इन की पढाई का स्तर भी कम ही है, ये कुछ सीखना चाहते हैं किन्तु जिसका अभी रूप ही नही निखरा है, उसे युवकों को कैसे पढ़ाया जाय। इसके लिये शैक्षणिक कार्यक्रम इस तरह के होने चाहिये, इतना अब तक हम समझ गये हैं, कि जिसमें उनके नेतृत्व, स्वतन्त्र वृत्ति, स्वाभिमान और कुछ कर गुजरने की वृत्तियों का प्रशिक्षण और विकास सहज ढंग से हो सके। इस तरह का विचार जब सतत मन में जागृत रहता है तब सचमुच छात्रों को पढ़ाना कठिन काम है। इसके लिये तो उनके साथ व्यवहार करने में अत्यन्त ही सावधानी की आवश्यकता होती है। इसके लिये हम शिक्षकों को बराबर सचेत और अध्ययनशील रहना होगा। हम यह प्रयास करते हैं कि हर छात्र के निकट रह कर उसका अध्ययन करें, उसकी हर प्रवृत्ति का नोट लें और फिर उस पर से उसके लिये उचित शिक्षण का विकास करें। यह तो रोज कुआ खोदकर प्यास बुझाने जैसी बात है। किन्तु यही तो शिक्षक के पुरुषार्थ की भी कसौटी है। हम यही मानकर हिम्मत करते हैं। इस हिम्मत के कुछ उदाहरण यहाँ पेश हैं।

छात्रों के अंतर की खोज :

हमारे सात छात्रों में से दो हमारे लिये समस्या छात्र रहे हैं। उनमें से एक तो ऐसा था जो न स्वयं काम करता था न दूसरों को करने देता था। अब इसके साथ क्या किया जाय। अन्त में विचार करके उसे खेती की अलग से जिम्मेवारी देकर अलग काम करने का मौका दिया गया। फिर वह कभी भी नियमित नहीं रहता था। तो उसे ही समाज का नायक बना दिया गया। शिक्षक कुछ दिन तक उसके साथ जाते रहे। इस प्रयोग का नतीजा अच्छा निकला और आज वह युवक हमारा सुन्दर छात्र है। अब वह न तो काम से भागता है न दूसरों को ही भगाता है। अपनी जिम्मेदारी मिलने से अब उसमें प्रतिष्ठा की भावना भी जागृत हो गई है और अब वह स्वयं ही नियमित हो गया है।

एक दूसरा रोग कुछ छात्रों में यह था कि वे बीडी पीते थे और हमारे पास जो शाला के अन्य छोटे बालक थे उन पर उसका बहुत बुरा असर हो रहा था। अब इस कैसे रोका जाय। ऐसे छात्रों को कहा गया कि वे बीडी पियें हो तो फिर आश्रम क्षेत्र में न पियें और सबके सामने न पियें तो अच्छा हो। इससे वे बराबर सतर्क रहने लगे और एक यह भावना भी जागृत हुई कि जो काम सबके सामने न किया जा सके वह फिर क्यों किया जाय। वे इसमें अपनी अप्रतिष्ठा समझने लगे और अब उनकी यह आदत भी बहुत ही कम हो गई है और अब तो वे स्वयं ही कहते हैं कि हम इसे छोडने के लिये प्रयत्नशील हैं। यह मानसिक बदल बहुत ही उत्साहप्रद है।

एक तीसरा छात्र अपने गाव में बहुत ही उपद्रवी था। यहाँ भी उसकी यह हवा कुछ समय तक चली किन्तु शीघ्र ही वह भी सुधर गया। यद्यपि अभी उसमें काफी सुधार होना बाकी है। तो इस प्रकार से यह हम शिक्षको के लिये भी सीखने का अवसर होता है और हम यह शिक्षण रूप में हम का अनुभव कर रहे हैं।

ये सभी युवक जब आये थे तो कोई भी खादीधारी नहीं था। अब यहा तो खादी ही पहनी जानी चाहिये यह जब उनसे कहा गया तो फिर वे पहले तो कुछ सकोच में पड़े किन्तु अब उन्हें चर्खा दे दिया गया तो जल्दी ही वे कताई सीख गये और आज वे सभी खादीधारी हैं। कभी कभी चर्खे कम होने से जब उनके चर्खेपर कोई और कुछ भिन्न तरह का सूत कात लेता है तो इससे उन्हें जरा निराशा अवश्य होती है किन्तु इससे चर्खे के लिए उनका उत्साह कम नहीं हुआ अपितु अब वे अपने लिये स्वय का चर्खा प्राप्त करने की बात करने लगे है। यह उत्साहप्रद बात है। भिन्न वातावरण में से कैसे क्या सीखना यह इसका निदर्शन है।

चर्खे पर व दो घंटे रोज कातते थे और अब तक उन्होंने ८ से १० मीटर कपडा भी अपने लिये तैयार कर लिया है। यदि उन्हें हर एक को अलग से अपना अम्बर दे दिया जाय तो वे इसमें आसानी से अपने परिवार तक के लिये कपडे में स्वावलम्बन हासिल कर सकते हैं। यह विश्वास उनमें पैदा हो गया है। जब शाला का सालाना जलसा हुआ तो उनका बनाया हुआ यह कपडा सुश्री मदालसा नारायण जी के हाथों उन्हें दे दिया गया है।

कुछ सामान्य निष्कर्ष :

हमने इस प्रक्रिया के बीच कई निष्कर्ष प्राप्त किये हैं जो हम मानते हैं कि औरों के लिये भी लाभप्रद हो सकते हैं। उसमें पहला निष्कर्ष तो यह है कि यदि हम शिक्षा को उत्पादक और समाजोपयोगी बनाना चाहते हों, तो फिर हमें हर युवक के काम पाने के अधिकार की मान्यता देनी होगी। इसका अर्थ है कि हमें हर युवक के लिये कम से कम चार घंटा रोज के काम की व्यवस्था करनी ही होगी। हमारा यह विश्वास बना है कि इससे हर छात्र शरीरश्रम करके अपने भोजन व्यय की पूर्ति कर सकेगा। उनके काम की दर प्रचलित दर से नापें तो यह असम्भव नहीं है।

दूसरी बात यह है कि छात्र और मजदूर में अन्तर होना चाहिये। नही तो फिर गुलामी और शिक्षण में क्या अन्तर रहेगा। अत इतवार के दिन का छात्र को अवकाश रहेगा ही तो उस दिन के भोजन-व्यय की दैनिक दर से रकम उसे बोनस के रूप में मिलनी चाहिये।

तीसरा निष्कर्ष यह है कि खेती को शिक्षण और व्यापार दोनों ही तरह से चलाया तो जा सकता है किन्तु उसे यदि शिक्षण की तौर पर चलाना हो तो फिर खेती से व्यापार नहीं किया जा सकता है। व्यापार और शिक्षण एक नही है यह बात समझ ली जानी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि जिस जमीन पर छात्र और शिक्षक का याने विद्यालय का स्वत्व नही है और उसका प्रबन्ध दूसरे लोग अपने शिक्षकेतर उद्देश्य के लिये करते है और वहाँ वे छात्रो को अपनी सुविधानुसार चार घटे काम का अवसर प्रदान कर देते है फिर भी उस को हम शिक्षण नहीं कह सकते। विद्यालय की खेती शिक्षा का विषय हो व्यापार का नही।

चौथा निष्कर्ष यह है कि शिक्षा को सृजनशील होना हो तो फिर काम को भी सृजनशील बनाना होगा। याने काम में से मोनोटोनी, उसका सामान्यत. एक रूपपन मिट जाना चाहिये। काम का भी विकास होते रहना चाहिये। नही तो छात्र एक ही ढग का काम रोज करते करते ऊब जाते है। काम को ही शिक्षा बनाने के लिये इस विषय पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है।

पाँचवा निष्कर्ष यह है कि सामान्य जीवन व्यवहार और शिक्षा ऐसे कोई दो विभाग नही है। हमारा सारा जीवनकर्म ही शिक्षा है यह मानकर हम काम करें तो फिर शिक्षण ले रहे है यह भान ही नही हो। किसी भी प्रतिष्ठान के सभी विभागो को, केवल शिक्षा विभाग को ही नही, शिक्षा का माध्यम मानना चाहिये तभी काम को शिक्षा बनाया जा सकेगा।

हम आशा करते है कि अगले सत्र में हम कम से कम २० छात्रो को प्रवेश दे सकेगे। इसके लिये तैयारी आरम्भ हो गई है।

आगामी २८ मई से पहली जून तक कलकत्ता के निकट रहरा ग्राम में २२ वाँ अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन होगा। सम्मेलन में देशभर के सर्वोदय और लोक सेवकों के अलावा जर्मनी, अमरीका, बंगलादेश, श्रीलंका और नेपाल के सर्वोदय प्रेमी भाग भी लेंगे। उसी समय वहाँ पर अखिल भारत शांति सेना मंडल द्वारा आयोजित एक विशाल रैली भी होगी जिसमें शांति सैनिक, ग्राम शांति सैनिक, तरुण शांति सेना तथा शांति सेवक भाग लेंगे। इन सबके सेवक कृपया शांति सेना का गणवेश केशरी रंग का खादी का स्कार्फ और बाँह में बांधने के लिये पट्टी अपने साथ लेकर आवें।

Experiments in basic education

Dwarko Sundarani

SAMANWAYA VIDYAPITH OR THE SCHOOL OF HARMONY

[Here is a report from Sri Dwarkobhai, a young bachelor from Sindh (now in Pakistan) devoted to Sarvodaya and now the Director of the Samanwaya Ashram', founded by Vinobaji, an experimental centre for Basic Education. Though the work of this splendid institution can not be rightly understood without seeing it for oneself, yet we hope that this brief sketch of the school at Bagha will certainly inspire thinkers in the educational field]

Ever since independence everyone from the primary school teacher to the President of India has been condemning our educational system. I have been working in the field of rural development for the last 20 years and have come to the conclusion that unless we involve the masses in this task we can not go much further, But for the involvement of the masses so many old habits, customs and traditions are the main hinderances Hence the need of teaching the children the art of living from a very early age.

THE NEED FOR A TWO-EDGED EDUCATION

The main problem of our country is poverty and ignorance produced by each other One can not be solved without solving the other. That was why Gandhiji had suggested Basic Education through craft The basic craft of India is agriculture and will remain so for centuries to come,and so any appropriate educational activity has to be started with this basic craft The father of the nation was well aware of the fact that the tradition from the British period do not allow the educated youth to live in the villages and this has hampered greatly the development of rural India, therefore he had asked for at least one worker for every village This should be the aim of' our National Educational policy We have started this school with this view and we take the children from the villages and train them in agriculture, dairy work and some elementry mechanics The girls are to be trained

n nursing, sewing and house-work including childcare After an initial training they are to be rehablitated as organisers who will earn their livelihood on their own farms and also organise the village development Thus a new education working on two edges at the same time, i, e, educating the people not only in alphabet but also in self reliance and self sufficiency Hence our motto 'earn while you learn' This will enable the boys and the girls not only to earn their livelihood but also mould the mental attitude of their parents who because being backward and poor are badly a prey of drunkeness and other vices We keep the children for 8 years with us They are given full scholarships for the earlier 5 years after which they have to earn their tuition fees and their other educational expenses

FREE FROM BRAIN-WASHING

We are of the opinion that education should not be in the hands of the State because they always try to influence the pupil and try to make them subservient to their wills And thus education becomes the tool not of human liberty, as the old dictum says, i, e, 'Sa Vidyaya ya Vimuktya' (education is that which liberates man), but of human slavery and hence human misery Like all the olden Kings and Monarchs all present govts, also are always anxious to keep education and the educateds within their control and thus foster their own ends This makes education to be completely self sufficient in order to be free of any govt control a necessity

Therefore we took a piece of land of 70 acres on which we grow for our needs assisted by a well-developed dairy with about 80 heads of cattle From the very beginning we encouraged the parents to visit the school and see their children doing this type of work there and this has created not only a sense of awakening in their outlook but actually has helped them in the development of their own agriculture also They come and discuss their agricultural and other problems with us and return with possible solutions to their satisfaction Thus a new dimension in the educational field is opened This indirectly developed also a social responsiblity of keeping the discipline in the school as well, because the parents feel that as smoothly the work in school will advance, it will benifit their children also

We have no class gradations, no examinations, no certificates or diplomas and no routine of syllabus in the sense understood today The teachers and the students are completely free of any external control except of the regularities they themselves collectively have designed The students as they gradually pass their childhood develop through discussions with their teachers, who live and eat with them, and then they execute the decisions thus taken Thus the students are directly involved in decision making and executing them and excluding some too young boys and girls, for whom the responsiblity in agriculture or dairy is too heavy, many other outstanding students who are persevarent enough do well in their managerial duties showing remarkable maturity for their age The school continues to give the children as much responsiblity as they can take and this is considered to be a very important part of their education.

THE QUESTION OF GIRL S EDUCATION

Considerable time and thought has been given in the last few months to this question The path of the boys is straight forward–they will be trained as agriculturists and social workers for their villages but the girls position was not very clear to us For the first few years both the boys and the girls were put together but after some time when the girls grew to 13 or 14 years of age it seemed that something more is needed We were clear that the girls were to be trained for the upliftment of the rural womanfolk but how to train them was the real problem with us Because for any training they should first be economically independent and therefore at present they are being trained in sewing and cloth making not only for themselves but for the village and the school also. This skill they can use in their homes also when they return There is also a concentrated attempt to give them responsiblity and training in the kitchen-work, specially to the older girls who relieve other girls working in kitchen and the dairy Now a new programme has also been planned for elementary hospital training which the doctor from 'Brothers to All Men' supervises This includes hygiene, disease-prevention and later on child care.

Now we have decided to launch a new venture at Lodhway about 20 miles away from Bagha, our present place A group of 24 of the oldest boys, of the Bagha school left for Lodhway to begin a new school there which is due time, we hope, will be accomodating our Bagha students for further studies At Lodhway the students will spend half their time in agricultural studies aud half in developmental work in the nearby villages The idea is to bridge the gap between the relatively isolated and protected environment of the school and the reality of their eventual work in the villages The size af the new school will be restricted and the boys will lead a real Ashram life There will be no private ownership.

Everything will be communally shared and students, teachers and the workers alike will take equal responsiblities. We hope our grownup students will be doing well there through their new design of, what sometime is called 'the Paired-Learning, i,e, by making partnership with other students for their learning purposes We hope these new 'Pupil-Teachers' with the help of their adult teachers will be of great benifit to this new experiment

GETTING MORE OF WORLD INTO THE SCHOOL

Sometime back The Vidyapith started an another experiment in what we call the'Ruralisation of Education 'A vast number of rural youth goes without any sort of education today Again there is a great number of those drop-outs in the villages who are compelled by circumatances to giveup their studies before completing even the 5th grade or who, if anyhow have succeded to reach upto 8th or 10th grade, have failed to find any gainful employment and are sitting idly in the homes, doing no good either to their parents or to themselves Any good system of education can not neglect this problem too Therefore we have tried to pickup some of such drop-outs from the neighbourhood for giving them a course of theoritical and practical learning as useful producers and also part-time village workers and leaders They come and live with us for times suitable to them and are in constant touch with us when they go back to their homes. They have shown much interest in our activities in agriculture and

dairy. We are still trying to find out a pattern for such an experiment related to our total educational thinking

PRABHAVATI THE PIONEER

One day Prabhavati (15) visited the house of one of the children in the school. She came back with the news that the children in the home were crying because they had not eaten anything all the day. When we asked her how she felt about it she said that she was sad.

"But what can we do about it?" we asked.

She did not know what to do. So a meeting of all the students was called for discussing the matter. For some time they all were perturbed as what they can do about it. One of the boys said "what can we do? This is just only one of the houses that are hungry. The house owner spends all his earnings in drinking. He should not do it." After some time there came a proposal that why should we all not take no meals one day in a week and thus a great quantity of grains can be saved and this can be distributed to the villagers. The students at once agreed to the proposal and Sunday was fixed for it. On the first Sunday, half of the school including some of the very youngest little girls stayed behind after the eveving prayers, they sang songs and discussed how to distribute the grains of about 9kg of wheat they had saved that day. They chose four villages near the school and decided to take it in turn to walk round them to find out who is in most need.

This is, we feel, some thing more than a mere touching philanthropic gesture and it seems essential that such contacts are kept alive with the villages. Living in our small islands of relative plenty, where in it is almost possible to forget the other world of village life whose very support and development is nevertheless the ultimate concern of the school.

PARENT'S EDUCATION

This approach to education, we are trying to foster here, have naturally penetrated to some depths into the hearts of the community at large and the parents have grown conscious of the education their kids are getting here. We at once took the situation into account and began to invite them for a general

meeting with their children in the school They readily responded and now we have such periodical meetings twice a year We have children from the 47 nearby villages and in the last meeting the parents from 34 villages attended They were told and shown the work done and the knowledge gained by the kids They were also introduced to new agricultural experiments being conducted in the school and to new varieties of seeds grown The children presented reports on various activities The parents seemed interested in the idea of the children running the school themselves and wondered why the experiment has not been made a sole pattern as yet One boy informed that he has given up the re pon s blity for the kitchen as he had to satisfy the pressures of h s mates asking for special favours and this he is unable to do and feels that it should not be done either After the discussions are over the children played a drama depicting the story of a group of Gandhian workers who set out to break the barriers of caste in their villages and to coax highway robbers to join them in their path of non violent constructive action

WORK IS EDUCATION

Our kitchen, agriculture and dairy all are educational projects In the kitchen there has been a series of experiments from the removal of small stones from the rice or wheat to the serving of food at meal times The technique of food preparations also have been going on through experiments as attempting to systematise the baking of breads, using a potato water yeast that should yoghurtwise renew itself This experiment has not succeeded so far The time saving devices on rolling more than 500 chapaties or meals etc also is going on under this experiment.

In agricultural field also we still lag behind our requirements. We have, though, 70 acres of wasteland but only 30 acres have been tamed so far There were not sufficient rains in the past and we have to face two consecutive rain failures So the harvest has not been so encouraging The required six irrigations had to be reduced to three, two or some time even one only The result is that we could get only 16383 kgs from 13 acres and 12383 kgs from 16 acres The rice yields during the summer was an average of 43 quintals per hectare and total of 11216 kgs on 7 acres Now a new seed IR24 is being tried on a

large scale during both the summer and the rainy season which on experiments on a small scale has produce 113 quintals per hectare

In the dairy we have in all 86 animals (12 cows giving milk out of 20, 27 heifers 28 calves, 20 oxes 2 bulls and 7 new born calves) We are getting 80 litres of milk a day from these 12 cows of which 55 litres are sold and the rest is used by the school

In mechanics 6 boys have learnt fully repairs of deiseleng ne pumps, they can do this work independetly 6 more are learning 8boys are learning Homeopathy

We have a small hospital also with a free eye clinic for cataract operations An eye specialist from France performed 13 operat ons Thus also provides quite an educational experience for the students who both see and serve the oprateds A doctor couple from the Brothers to All Men visit school weekly treating 160 patients each time The need for medical treatment in this area is enormous but the need for education for health is still the greater and we hope that we shall be able to provide this too in the near future

Thus a small but fundamentally new educational effort is being tried in this remote part of the country

हिंदी सारांश

यह सर्वोदय जगत के ख्यात् कार्यकर्ता श्री द्वारकोभाई द्वारा सचालित समन्वय विद्यापीठ का सक्षिप्त विवरण है। सुदूर जगलों में स्थित यह विद्यापीठ ग्रामीण भारत के लिये योग्य स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता तैयार करने का नम्र प्रयास कर रहा है। विद्यापीठ म खेती, पशु पालन, गृह विज्ञान, स्वास्थ्य तथा कुछ यत्र-विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता है। विद्यापीठ लगभग स्वावलबी है। किसी बँध-बँधाये पाठ्य-क्रम, नियत्रित पढाई तथा परीक्षा आदि स नितान्त मुक्त शिक्षा का यह नवीन तथा क्रान्तिकारी प्रयोग है।

अखिल भारत नयी तालीम समिति के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण जी ने पहली अप्रल ७४ से पीपरी वर्धा ग्रामीण महाविद्यालय के प्राचार्य श्री दे ज हातेकर जी को नयी तालीम समिति का सहमत्री नियुक्त किया है। वे समिति के मत्री श्री के एस आचालू जी की सहायता करेंगे। श्री हातेकर जी अनुभवी शिक्षक और बुनियादी शिक्षा के जानकार है।

जयवर्धन

लेखक —जैनेन्द्र कुमार, प्रकाशक —पूर्वोदय प्रकाशन ७।८ दरियागज, दिल्ली, पृष्ठ सख्या —४१४, मूल्य पुस्तकालय सस्करण —१५) रु, सक्षिप्त छात्र सस्करण —५)

जैनेन्द्रजी हिन्दी साहित्य जगतके प्रतिभाशाली देदीप्यमान नक्षत्र है। वे प्रौढ़ साहित्यिक है, यही नही वे प्रौढ़ चिन्तक भी है। उन्होने अपना जीवन-दर्शन पाया है। गाधी, विनोबाके जीवन-आदर्श तथा तत्वो का उन्हे परिचय प्राप्त है। वे साहित्य क्षेत्र में प्रगतिशील और सक्रिय सेवाएं देत आए है। उसके साथ-साथ भारत की वर्तमान राजनीति तथा स्थिति का भी वे पूरा अध्ययन तथा अनुशीलन करते रहे है। भारत आज जिस स्थिति में है उसमें कोई भी भारत के वर्तमान आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेशके प्रति उदासीन नही रह सकता है। श्री जैनेन्द्रजी भी उदासीन नही रह सकते थ, वरन उनको अन्तरमें उसकी पीड़ाका भी अनुभव होता हुआ दिखाई देता है। वे स्वभाव स तत्वचिन्तक है इसलिये उनका साहित्यिक प्रतिभाने उनके अपने जीवन-दर्शन, तत्व-सिद्धान्त तथा राजनीतिक तत्वोके बीच जो उनके अन्तर में मथन पैदा किया उसका उन्होने अपने उपन्यास 'जयवर्धन' में रेखाकित करने का सफल तथा मनोरम प्रयत्न किया है।

श्री जैनेन्द्रजीकी विशेषता यह भी है कि उपन्यासके क्षेत्रमे वे नये प्रयोग करते है। प्रेमचन्दजीके बाद यह जैनेन्द्रजीकी प्रतिभाका ही चमत्कार था कि उन्होने 'सुखदा' लिखकर उपन्यास साहित्यमें प्रथम नया प्रयोग किया। आज भी इस प्रौढ़ साहित्यकारने उपन्यासके इस क्षेत्रमे जयवर्धन लिखकर एक नया प्रयोग किया है।

कवि, ऋषि आगेकी बात सोचते है, देखते है और उसको अपने अन्तर में अनुभव करते है और उस अनुभूतिको वाणी देते है। पहले कई कवियोने अपनी रचनाएं पद्य में करके सहृदयाको आकर्षित किया और उनमें विभिन्न प्रकार की आह्लाददायक भावनाओंको जगाया। परन्तु जबसे गद्य में लिखना आरम्भ हुआ है तबसे उपन्यास भी साहित्यका एक रूप बन गया है और उपन्यासकार को उसमें अपनी प्रतिभा को सब प्रकार स अभिव्यक्ति देनेकी सुविधा प्राप्त हुई है। श्री जैनेन्द्रजीकी दृष्टि जयवर्धन लिखते समय वर्तमान समय तक ही सीमित नही हुई है। उन्होने आज स ५० साल आगेके समयकी कल्पना भी की है और उस समय के जन-जीवन, राजनीतिक परिस्थिति तथा उससे सम्बन्धित आन्दोलन, एक विश्वका आदर्श तथा उनके अपने जीवनादर्श तथा अध्यात्म चिन्तन के स्तर पर अपनी प्रतिभा का प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। यह प्रयोग नया है परन्तु बहुत ही स्वागतार्ह है।

हिन्दीमें आजकल जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है वह उथला ही नहीं कभी कभी मनमें वितृष्णा पैदा करनेवाला भी होता है। उस व्यक्तिगत अनुभूति

को बाधा देने की बात बडे जोरशोर से कही जाती है, परन्तु अनुभूति के नाम पर वह इन्द्रीयजन्य सस्ती वासना का एक मोहक रूप मात्र होता है। उसमें गहरे चिन्तन, अध्ययनका अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।ऐसे समयमें गहरे चिन्तन, मनन,अध्ययनसे परिष्कृत विचारों तथा चिन्तन भावित तथ्यों को अभिव्यक्ति देनेवाला यह उपन्यास हिंदी साहित्य में एक बहुत बडी उपलब्धि ही माना जायगा। उपन्यास में स्थान-स्थान पर सिद्धान्तों तथा तत्व प्रकाशन के लिए सरल भाषा में अनेक वाक्य तथा कडिकायें पढ़ने को मिलती है। नायक जयवर्धन के भाषण कुछ लम्बे अवश्य दिखाई देते हैं। फिर भी वे हमें गाधी विनोबा के भाषणा की याद दिलाते हैं। यह सब होने पर भी पुस्तक उपन्याम के रूपमें पढ़ने में रस की क्षति होती अनुभव नही की जा सकती है।

उपन्यास के पात्र भी कुछ इनेगिने ही हैं।

एक विदेशी सवाददाता पत्रकार सत्य खोजने के उद्देश्य से भारत आता है और भारत के सर्वसत्ता सम्पन्न नायक का वह मेहमान बनता है और उसी प्रवासी पत्रकार की नित्य प्रति लिखी जानेवाली दैनंदिनी डायरीके रूपमें सारा उपन्यास लिखा गया है और उसके भारत छोडने पर उपन्यास का उपसहार भी हो जाता है। परन्तु २१ फरवरी से १५ अप्रैल तक की पौने दो महीने में उसके भारत निवास के दरम्यान भारत शासन तन्त्र में बडा क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है और उसीकी भूमिका पर इस दैनदिनीसे प्रकाश पडता है।

जयवर्धन उपन्यास का नायक है। वह सब सत्ताधीश शासन तंत्र का प्रधान है। उसकी कार्यक्षमता, बुद्धि की तीक्ष्णता, अलग मनोवृत्ति चकित कर देनेवाली उसकी कार्यशक्ति तथा बातो का सब पर बडा प्रभाव है। फिर भी कुछ लोग असन्तुष्ट हैं और उसके तंत्र के विरुद्ध आन्दोलन चलाते है। उनमें मुख्यत दो दल है। एक दल है चिदानन्द स्वामी का दूसरा दल है श्री नाथ का। नाथ के दल में भी श्री नाथ तथा नाथ पत्नी श्रीमती एलीजाबेथ अपने अपने व्यक्तित्व के कारण एक साथ रहते हुए भी कई बातों में मतभेद रखते है। एलीजाबेथ भारत की नही विदेशी है, परन्तु श्री नाथके साथ विवाह कर उसने भारत को अपनाया है। वह शक्तिशाली स्त्री है, इसलिए उसने भारत का राजनीति में अपना स्थान बना लिया है। नाथ के साथ उसका मतभेद होता है, परन्तु फिर भी नाथ की नकेल उसके हाथ में रहती है। नाथ को वह जैसा चाहे वैसा मोड लेती है और नाथ अन्दर से चाहे कितना भी कुढ़ता हो वह अपनी पत्नी को नाराज करने की हिम्मत नही कर सकता है। जय के प्रति लिजा (एलाजाबेथ) के मन में कुछ कोमल भाव जागृत होता है और उस से भी नाथ के मन में कुछ ईर्ष्या का भाव भी छिपा रहता है। इला जय की नित्य की साथी है। वह जय के आसपास पूरा घेरा डालकर रहती है। उसकी रक्षा करती है और उसके सब कामों को व्यवस्थित रूप देने में सहायक होती है। दोनों के अन्तर में एक-दूसरे के प्रति प्रेम है परन्तु उन्हे विवाह कर लेने की अनुमति नही है। वह आचार्य की पुत्री है जो स्वेच्छा से जेल काट रहे हैं। पुत्री को जय से विवाह करने की वे अनुमति

नहीं देते क्योंकि वे उसे उनके योग्य नहीं समझते, परन्तु सारी पुस्तक पढ़ जाने पर भी यह समझ में नहीं आता कि आचार्य का अपने शिष्य जय से मतभेद कहाँ था और उसे वे अपनी पुत्री के योग्य क्यों नहीं समझते थे। शायद उसका राजपद पर होना ही उसकी अयोग्यता थी। क्योंकि राज की खटपटों से जब वह ऊब जाता है, अनुभव करता है कि राजपद पर रहकर वह लोगों का कुछ भी भला नहीं कर सकता, कम से कम जो उद्देश्य उसे सिद्ध करना है वह तो कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता और इसलिए जब वह राजपद त्यागपत्र देता है, तब आचार्य अपनी पुत्री को विवाह की अनुमति देते हैं, दम्पति को उनका आशीर्वाद मिलता है और जय का मानना है कि अब वह अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए अच्छा कार्य कर सकेगा। उद्देश्य है आध्यात्मिक—अपनी आत्मा को पाना और समाजमें राज्य की संस्था की आवश्यकता को कम करना।

स्वामी जय के विरोधी हैं, क्योंकि उन्होंने एक भ्रम को सच मान लिया है कि इला तथा जय का सतत साथ रहना उनकी भ्रष्टताका प्रमाण है। परन्तु जय को निरीह, तटस्थ तथा अनासक्त जैसा चित्रित किया गया है और फिर भी वह राजपद पर क्यों रहा है, इसके उत्तर में वह स्वीकार करता है कि उसका वह मोह था। इला को उनके पिताने ही तपस्विनी कह कर उसकी पवित्रता सिद्ध कर दी है।

चिदानन्द स्वामी राजकीय आन्दोलन को इतना तीव्र बना सके हैं कि प्रगति दल के लोगों से भी अधिक उनके विरोध को महत्व दिया जाता है। इक्कीसवीं सदी में भी लेखक ने ऐसे अनुदार धार्मिक व्यक्ति को इतना महत्व क्यों दिया है और उनकी भारतीयता की पुरानी भावना को लोग इतना प्राधान्य उस जमाने में देते रहेंगे, यह कल्पना हमें बहुत विचित्र लगती है। लेखक के स्वामीके चरित्र चित्रण में यह इशारा भी मिलता है कि चिदानन्द स्वामी के मन में इला के प्रति कुछ कोमल भाव भी शायद रहे हों और उसी कारण उनके विरोध की इतनी उत्कटता भी हो सकती है।

बस एक और पात्र रह जाता है वह है इन्द्रमोहन। इन्द्रमोहन धूमकेतुकी तरह आता है और उसी तरह चला जाता है। धूमकेतुकी तरह ही अनिष्ट करने की उसकी शक्ति होती है। इन्द्रमोहन सस्कारी है, विद्वान है विद्या-सेवी है। जय के आरम्भिक जीवन में उसको सहायता उसे प्राप्त हुई है। इसलिए जय अपने को उसका ऋणी समझता है परन्तु इन्द्रमोहन जय को नबर एक अपना दुश्मन मानता है। फिर भी जय जब राजपद छोडना चाहता है तो वह चाहता है कि वह राजपद पर बना रहे और उसके बाद वह उसका प्रिय बन जाता है आखिर को वह जय को, जब वह राजपद त्याग कर सर्वदलीय मन्त्रीमंडल बनाने के लिए एक सम्मेलन बुलाता है और जब वह देखता है कि जय का निश्चय है कि वह राजपद तो छोड ही देगा, तब सब विरोधी पक्ष के लोग जय को छोड़ना नहीं चाहते तो भी वह जय को उठा ले जाता है और उसे बचा लेता है। परन्तु इस पात्र को क्यों लाया गया है, यह समझना मुश्किल है। शायद लेखक चाहता है कि अभिजात वर्गके विद्वान, विद्या व्यसनी एक धुन में ही रहते होंगे, यहाँ तक कि उन्हें विक्षिप्त भी मान लिया जाय। इस मानसिक विक्षिप्ततामें

भी उनकी कार्यशक्ति तथा क्षमता कम नहीं होगी। उनके अगाध ज्ञान में वे जो निर्णय करेंगे जो भविष्य मार्ग में व सद देखने भर को तो सही होगा परन्तु विधि की गति की विचित्रता यह होगा कि उनका रूप कुछ अलग हो जाएगा। भूमिति के अवलंकी बात लेखक ने अपनी पुस्तक में शायद दो स्थान पर की है। हमें गांधीजी का यह वाक्य याद आ रहा है कि संसार भूमिति के रेखांकन की तरह सरल नहीं है वह तो ईश्वर की एक ऐसी कलामयकृति है जो हमें समझनी चाहिए। जय भी अपने दीर्घकाल के पश्चानुभवों में अनुभव करता है कि वह जो कुछ भी करता है वह उसका अपना कर्तृत्व नहीं है वह तो निमित्त मात्र है। बहुत बार तो वह चाहता कुछ है और हो कुछ और ही जाता है। परन्तु जय की सब बातें—ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धिक धरातल पर हैं। पुस्तक में भी बौद्धिक विश्लेषण तथा तर्क की भरमार नजर आती है। पर बुद्धि कितनी ही तीक्ष्ण और क्षमतावान क्यों न हो, एक स्तर पर पहुँच कर वह थक जाती है। जय के पक्ष में यह बात हुई है कि वह अन्त में राज्य पद से ऊब गया और उसे छोड़ने में ही उसे अपना हित दिखाई दिया।

जय ने अपने भाषण में रामराज्य की बात भी कही है। गांधीजी तो भारत में रामराज्य स्थापित करना चाहते थे। दर असल जय ने रामराज्य की कल्पना को समझा होता तो उसे राज्यपद से जो ऊब हुई वह न होती और राज्यपद छोड़ने की कोई आवश्यकता न होती। राम स्वयं करुणायतन थे। वनवास स्वीकार कर राक्षसों का, दुष्टों का दमन करना करुणा का ही काम था और वनवास से लौट कर राज्य स्वीकार करने में भी उनकी करुणा ही मुख्य कारण था— इस करुणा को छूत उनकी प्रजा को भी लगी थी और वे भी एक-दूसरे के प्रति करुणा रखते थे। यही कारण था कि इसके कारण वे एक-दूसरे का ख्याल रखते थे, एक-दूसरे के दुःख सुख में भागी होते थे और सब अपने अपने स्थान पर रहकर अपना-अपना कर्तव्य पूरा करते थे और एक-दूसरे की सहायता करते थे। राज्य को कुछ भी करना न पड़ता था। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है कि रामराज्य में दंड तो संन्यासियों के ही पास था।

जय में इसी करुणा का अभाव दिखाई देता है। इसी से उसकी सब बातें बौद्धिक होती हैं। अन्तर से निकली हुई स्वाभाविक नहीं दिखाई देती। सब गुण आरोपित प्रतीत होते हैं और इसी का यह परिणाम था कि वह राजपद से ऊब गया और निराश होकर उसे छोड़ दिया। शायद आगे जाकर वह अपने आध्यात्मिक जीवन में करुणा की साधना करे और उसका आरम्भ अपनी विवाहित प्रेमिका इला से भी हो सकता है।

भारतीय साहित्य का उद्देश्य करुणा से ही माना गया है। लेखक ने भी यदि पुस्तक में करुणा को अपने पात्रों के अन्तर में पाया होता तो उनके पात्र अधिक सजीव बनते और पुस्तक को स्वाभाविकता प्राप्त होती और उपन्यास अधिक रोचक बनता। पुस्तक के प्रूफ देखने में भी कुछ शिथिलता आ गई है जो नये संस्करण में सुधार की जा सकती है। पुस्तक पठनीय है, संग्रहणीय है और साहित्य के क्षेत्र में नई दिशा का दान करनेवाला है। हम लेखक का अभिनंदन करते हैं।

नहीं देते क्योंकि वे उसे उनके योग्य नहीं समझते, परन्तु सारी पुस्तक पढ़ जाने पर भी यह समझ में नहीं आता कि आचार्य या अपने शिष्य जय से मतभेद कहाँ था और उसे वे अपनी पुत्री के योग्य क्यों नहीं समझते थे। शायद उसका राजपद पर होना ही उसकी अयोग्यता थी। क्योंकि राज की खटपटा से जब वह ऊब जाता है, अनुभव करता है कि राजपद पर रहकर वह लोगों का कुछ भी भला नहीं कर सकता, कम से कम जो उद्देश्य उसे सिद्ध करना है वह तो कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता और इसलिए जब वह राजपद त्यागकर देता है, तब आचार्य अपनी पुत्री को विवाह की अनुमति देते हैं, दम्पति को उनका आशीर्वाद मिलता है और जय का मानना है कि अब वह अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए अच्छा कार्य कर सकेगा। उद्देश्य है आध्यात्मिक—अपनी आत्मा को पाना और समाजमें राज्य की सस्था की आवश्यकता को कम करना।

स्वामी जय के विरोधी हैं, क्योंकि उन्होंने एक भ्रम को सच मान लिया है कि इला तथा जय का सतत साथ रहना उनकी भ्रष्टताका प्रमाण है। परन्तु जय को निरीह, तटस्थ तथा अनासक्त जैसा चित्रित किया गया है और फिर भी वह राजपद पर क्यों रहा है, इसके उत्तर में वह स्वीकार करता है कि उसका वह मोह था। इला को उनके पिताने ही तपस्विनी कह कर उसकी पवित्रता सिद्ध कर दी है।

चिदानन्द स्वामी राजकीय आन्दोलन को इतना तीव्र बना सके हैं कि प्रगति दल के लोगों से भी अधिक उनके विरोध को महत्त्व दिया जाता है। इक्कीसवीं सदी में भी लेखक ने ऐसे अनुदार धार्मिक व्यक्ति को इतना महत्त्व क्यों दिया है और उनकी भारतीयता की पुरानी भावना को लोग इतना प्रश्रय उस जमाने में देते रहेंगे, यह कल्पना हमें बहुत विचित्र लगती है। लेखक के स्वामीके चरित्र चित्रण में यह इशारा भी मिलता है कि चिदानन्द स्वामी के मन में इला के प्रति कुछ कोमल भाव भी शायद रहे हों और उसी कारण उनके विरोध की इतनी उत्कटता भी हो सकती है।

बस एक और पात्र रह जाता है वह है इन्द्रमोहन। इन्द्रमोहन धूमकेतुकी तरह आता है और उसी तरह चला जाता है। धूमकेतुकी तरह ही अनिष्ट करने की उसकी शक्ति होती है। इन्द्रमोहन सस्कारी है, विद्वान है विद्या-सेवी है। जय के आरम्भिक जीवन में उसकी सहायता उसे प्राप्त हुई है। इसलिए जय अपने को उसका ऋणी समझता है परन्तु इन्द्रमोहन जय को नबर एक अपना दुश्मन मानता है। फिर भी जय जब राजपद छोड़ना चाहता है तो वह चाहता है कि वह राजपद पर बना रहे और उसके बाद वह उसका प्रिय बन जाता है आखिर को वह जय को, जब वह राजपद त्याग कर सर्वदलीय मत्रीमडल बनाने के लिए एक सम्मेलन बुलाता है और जब वह देखता है कि जय का निश्चय है कि वह राजपद तो छोड़ ही देगा, तब सब विरोधी पक्ष के लोग जय को छोड़ना नहीं चाहते तो भी वह जय को उठा ले जाता है और उसे बचा लेता है। परन्तु इस पात्र को क्यों लाया गया है, यह समझना मुश्किल है। शायद लेखक चाहता है कि अभिजात वर्गके विद्वान, विद्या व्यसनी एक धुन में ही रहते होंगे, यहाँ तक कि उन्हें विक्षिप्त भी मान लिया जाय। इस मानसिक विक्षिप्ततामें

वर्ष : २२
अंक : ११-१२
जून-जुलाई, १९७४

विश्वराज्य विज्ञान की आवश्यकता

★

क्या दलीय लोकतंत्र से आगे कोई रास्ता नहीं है ?

★

लोकतन्त्र के लिए लोक शिक्षण आवश्यक

★

गांधीजी का व्यवहार-दर्शन

नयी तालीम : मई, '७४

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

ऐसा समाज कभी नहीं पनप सकता :

'हमारा लक्ष्य अपने गांवों को इतना शिक्षित बनाना होना चाहिये कि वे अपनी जरूरतों को स्वयं पूरा कर सकें। हमें बहुत से गांवों को मिलाकर एक क्षेत्रीय इकाई बनानी चाहिये। इन इकाइयों में अपने स्कूल, कारखाने, गोदाम, सहकारी स्टोर और बैंक होने चाहिये। ये सब बनाने और इनको चलाने का कार्य इन्हें सिखाया चाहिये। सामुदायिक इकाई में एक ऐसा स्थान होना चाहिये जहां सब लोग मिलकर काम करने के साथ-साथ मनोरंजन भी कर सकें, वहां इकाई द्वारा नियुक्त प्रमुख गांवों के छोटे-छोटे झगड़ों की सुनवाई करके उनका निबटारा कर सकें।

यूरोपमें बहुत सी ऐसी मशीनें बन गई हैं जिनमें श्रम कम करना पड़ता है। लेकिन हमारे खेतों के छोटा होने और साधनोंकी कमी के कारण ये हमारे लिये बेकार हैं। हम सब जानते हैं कि गांव से नगरोंमें जाकर पूंजीपतियों के द्वारा चलाये जाने वाले कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का कितना पतन होने का भय रहता है। यह भय हमारे जैसे देश में तो और भी अधिक है जहाँ समाज का मूल आधार घरेलू वातावरण है। यदि भारतमें बड़े बड़े कारखाने खोले गये और मकड़ी की भांति ये कारखाने गरीब गांववालोंको अपने चक्र में फंसाते रहे और इसी प्रकार बहुत संख्या में विस्थापित लोगों को मशीनोंके आनन्द विहीन कार्य में लगाते रहे तो हम अच्छी तरह कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी स्त्रियों और पुरुषों का कितना पतन होगा। यह समाज कभी भी नहीं पनप सकता जिसमें मशीनों के प्रयोग के द्वारा उत्पादन बढ़ाने के चक्कर में मानवीय मूल्यों का अपव्यय किया जाय। हमारे हितमें तो यह बात होगी कि गांववाले मिलकर अपने क्षेत्रमें ऐसी मशीनें लायें जिनका वे स्थानीय रूपसे उपयोग कर सकें। ऐसा करनेसे आर्थिक लाभ तो होगा ही लोगोंको मिलकर काम करने के मूल्य का भी पता लगेगा।'

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर

(१९०८ में पबना (बंगला देश) में प्रान्तीय सम्मेलन में दिया गया भाषण।)

मुद्रक। पंढरराव कोंडे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २२
अंक : ११–१२

भारतीय अणु-विस्फोट :

अठारह मई को राजस्थान के रेगिस्तान में जो अणु-विस्फोट हुआ उसकी प्रतिक्रिया दुनिया भर में बडी तीव्रता से हुई । भारत में तो सामान्यत हमारे वैज्ञानिको की कुशलता व अणुशास्त्र के विशिष्ट ज्ञान का स्वागत हुआ और केन्द्रीय सरकार की इस घोषणा की सराहना की गयी कि हमारे देश में अणु-शक्ति का उपयोग केवल शातिपूर्ण कार्यों के लिये किया जायगा । किन्तु विदेशो में, विशेषकर अमरीका, कनडा और जापान में, इस विस्फोट के प्रति गहरा रोष प्रगट किया गया । यह कहा गया कि भारत जैसे गरीब देश को इस प्रकार के महँगे वैज्ञानिक प्रयोग करने का कोई अधिकार नही है । हमारे कुछ पडोसी देशो ने भारतीय वैज्ञानिको की प्रशसा की और कुछ ने अपना शक-सुबहा जाहिर किया । चीन का ख्याल रहा कि यह अणु-विस्फोट सोवियत रूस की सहायता से किया गया है । पाकिस्तान ने तो यहाँ तक कह डाला कि भारत ने पाकिस्तान की सीमा के नजदीक ही यह विस्फोट आयोजित करके उस देश को सीधी धमकी दी है और एक प्रकार से युद्ध की तैयारी शुरू कर दी है । फ्रान्स और युगोस्लाविया ने भारत के अणु-विज्ञान की तारीफ की और आशा की कि

सम्पादक मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति
श्री कामेश्वरप्रसाद बहुगुणा – प्रबन्ध सम्पादक

वर्ष . २२
अंक · ११–१२
मूल्य १ रु प्रति

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण ५२९
विश्वराज्य विज्ञान की आवश्यकता ५३७ विनोबा
क्या दलीय लोकतंत्र से आगे कोई रास्ता नहीं है ? ५४३ जयप्रकाश नारायण
लोकतंत्र के लिए लोक शिक्षण आवश्यक ५४७ धीरेन्द्र मजूमदार
महाजनो येन गत स पंथा ५५० आशादेवी आर्यनायकम्
गाधीजी का व्यवहार-दर्शन ५५४ चिमनलाल शाह
संस्था-परिचय
वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान ५५६
विज्ञान की दिशायें
जहरीली सडकें ५५९
शिक्षा में नये प्रयोग
प्रश्नों के उत्तर देने की नयी प्रणाली ५६०
छात्रों की बातें
आज की शिक्षा का विकल्प ५६२ वंशीधर श्रीवास्तव
शिक्षक गुलाम न बनें ५७१ एस वी गोविन्दन्
परस्पर विश्वास से ही समस्याएँ हल होंगी ५७५ विनोबा

जून–जुलाई, '७४

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये हैं और एक अंक का मूल्य १ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

यह भी जरूरी है कि देश में इस प्रकार का जनमत तैयार किया जाय कि भविष्य में कोई भी भारतीय सरकार अणु-शक्ति का प्रयोग युद्ध के लिये न कर सके। हम बीच-बीच में कुछ आवाजें सुनते रहते हैं कि हिन्दुस्तान को भी अणु-बम्ब बनाने चाहिये। किन्तु यह बिल्कुल गलत ख्याल है और उसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिये। अणु-बम्ब बनाना बहुत महँगा तो है ही, किन्तु वह अमानवीय भी है। इस विज्ञान का उपयोग युद्ध और नर-संहार के लिये करना महात्मा गाधी के शब्दों में 'शैतानी' है। हम आशा करते हैं कि कम-से-कम भारत में इस प्रकार का पागलपन कभी भी साकार नहीं होगा।

बिहार का छात्र आन्दोलन:

गुजरात के बाद पिछले २-३ महीनों से बिहार में छात्रों का आन्दोलन श्रद्धेय जयप्रकाश नारायणजी के मार्गदर्शन में चल रहा है। इस आन्दोलन के सम्बन्ध में देश में काफी चर्चा हो रही है। कुछ लोगों का ख्याल है कि इस प्रकार का आन्दोलन लोकशाही के विकास के लिए हानिकारक है। अन्य लोगों की धारणा है कि इसकी वजह से बिहार में प्रजातंत्र को अधिक मजबूत बनाया जा सकेगा।

जो हो, यह तो स्पष्ट है कि श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व के कारण अब तक यह आन्दोलन शांतिमय बना रहा है और हमें आशा है कि भविष्य में भी वह शांतिपूर्ण ढंग से ही चलता रहेगा। यह तो हम सभी को मानना होगा कि यदि इस काम में जयप्रकाश बाबू दिलचस्पी न लेते तो बिहार में काफी खून-खराबी का वातावरण बन जाता और जन तथा सम्पत्ति का बहुत नुकसान होता। हम उम्मीद करते हैं कि बिहार के विद्यार्थी इस बात को अच्छी तरह से समझ लेंगे कि हिंसा से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता और अन्त में हिंसात्मक कार्यों के परिणाम हानिकर ही होते हैं।

यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि बिहार की विधान सभा को विसर्जित करने से महँगाई और भ्रष्टाचार किस प्रकार कम हो सकेगा? गुजरात में विधान सभा का विघटन हुआ, किन्तु वहाँ न

यह शक्ति शांति के लिये ही प्रयोग में लाई जायगी। अर्जेन्टीना ने तो भारत से संधि भी की है जिसमें दोनों देश अणु-शक्ति के शांतिमय प्रयोग करने में एक दूसरे का सहकार्य करेंगे। हमारे देश में भी कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं ने अणु-विस्फोट का दिल से स्वागत नहीं किया, किन्तु यह सन्देह दर्शाया है कि भविष्य में कहीं यह शक्ति अणु-बम्ब बनाने में प्रयुक्त न की जाय। लेकिन हमारे विचार से इस प्रकार का सन्देह करना हमारे लिये उचित नहीं है। प्रारम्भ से ही भारत सरकार ने कई बार यह स्पष्ट शब्दों में जाहिर किया है कि यह देश कभी भी अणु-शक्ति का प्रयोग एटमबम्ब बनाने में नहीं करेगा। हमारी भारतीय परम्परा भी ऐसी ही रही है। इसलिये यह उचित नहीं होगा कि हम भारत सरकार की मनशा पर शक करें।

हाँ, भारत शासन को दो-तीन बातों की ओर विशेष ध्यान देना होगा। पहले तो हमें अणु-शक्ति का प्रयोग शांतिमय कार्यों के लिये और भी तेजी से करने की योजना बनानी चाहिये। अभी तक देश में २-३ अणु-शक्ति-केन्द्र स्थापित किये गये हैं जिनका उपयोग खेती और उद्योग के उत्पादन के लिये किया जा रहा है। आईसोटोप्स का इस्तेमाल कई तरह की विशेष दवाइयों को बनाने में भी किया जा रहा है। अब यह भी आशा लगाई जा रही है कि अणु-शक्ति जमीन के नीचे पानी, गैस और खनिज तेल को खोजने और निकालने में भी सहायक होगी। यह सभी काम अधिक गति से करना जरूरी है, ताकि दुनिया को यह विश्वास हो जाय कि हम अणु-शक्ति का उपयोग सचमुच उत्पादक और विकास-कार्यों के लिये कर रहे हैं।

दूसरे, हमें यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि भारत शांतिपूर्ण अणु-शक्ति के प्रयोगों का अनुभव अपने पडोसी देशों को बतलाने के लिये तैयार है और हमारे इस काम में किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं है। भारत सरकार ने पाकिस्तान को तो अपना ज्ञान बताने का आश्वासन दे ही दिया है। और भी जो विकासशील देश है, चाहे तो वे भारत के अणु-शक्ति विज्ञान का अपने विकास के लिये फायदा उठा सकते है।

हम आशा करते हैं कि यह महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य अब राजस्थान में उत्साहपूर्वक संचालित किया जायगा, ताकि वहाँ की प्राथमिक और उच्चस्तरीय शिक्षा उद्योग-प्रधान बनाई जा सके। तभी शिक्षित नवयुवकों की बेकारी का प्रश्न हल हो सकेगा और शिक्षा का उपयोग राष्ट्र के उत्पादन को बढ़ाने में किया जा सकेगा।

--श्रीमन्नारायण

प्रारंभिक शिक्षा के साथ फिर दगा

अभी पाचवी पंचवर्षीय योजना का जो ड्राफ्ट प्लान तीसरी बार संशोधित (रिवाइज्ड) किया जा रहा है उसमें माध्यमिक शिक्षा के खर्च में कमी कर दी गयी है और इस कारण हाईस्कूल स्तर पर विद्यार्थियों की भर्ती फ्रीज करनी पड़ेगी।

पाचवी पंचवर्षीय योजना में यह प्रावधान था कि योजना-अवधि के अन्त तक ११ से १४ वर्ष की आयु के ७५ प्रतिशत बच्चों की भर्ती कर ली जायगी। इस संशोधित ड्राफ्ट प्लान म इसे कम करके ३६ प्रतिशत कर दिया गया है जबकि कालेज और उच्च शिक्षा की भर्ती मे किसी प्रकार की कमी नही की गयी है। इतना ही नहीं, राज्यो को नये विश्वविद्यालय खोलने की भी छूट दी गयी है और प्रारंभिक शिक्षा की वृद्धि में रोक लगी है। पहले ड्राफ्ट प्लान में *योजना-अवधि में ६ से ११ वर्ष की आयु के शत प्रतिशत बच्चो के* इनरोलमेन्ट का प्राविधान था। दूसरे ड्राफ्ट में उसे कम करके ९७ प्रतिशत किया गया था और इस तीसरे ड्राफ्ट में उसे ९० प्रतिशत कर दिया गया है। ऐसा करते समय यह कहा गया है कि *यथार्थ लक्ष्य यही है।*

"*यथार्थ*" तो इस देश में यही रह गया है कि कुछ सुविधा सम्पन्न लोगो को अधिकाधिक सुविधा दी जाय और जो असम्पन्न है उन्हें अकिंचन बना दिया जाय। इस रास्ते क्या कभी समाजवादी समाज बनेगा ?

शिक्षा मंत्रालय के कुछ विशेषज्ञ भी माध्यमिक स्तर की शिक्षा की इस अवहेलना को एक निश्चित षड्यंत्र का परिणाम मानते हैं, क्योंकि यही वह स्थान है, राजनीतिक बारूद का जखीरा है

महँगाई घटी और न जनता के दूसरे ही दुख दूर हुए। इसलिए विहार के विद्यार्थियो को भी गहराई स सोचना चाहिए कि उनका अन्दोलन किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है। विधान सभा को भग कराने में अपनी शक्ति लगाने के बजाय यदि व कुछ दूसरे रचनात्मक कार्यक्रमो को उठा लें तो उनके प्रदेश के लिये कई प्रकार के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये विद्यार्थियो द्वारा शहर और गाँवो म अन ज के वितरण की व्यवस्था आयोजित की जा सकती है ताकि जनता को समय पर और शुद्ध वस्तुएँ उपलब्ध हो सकें। विद्यार्थी शर ब की दूकानो के विरुद्ध भी अपनी आवाज उठायें और जरूरत हो तो उनका पिकेटिंग भी करें। इसी तरह हरिजनो के कल्याण के लिये भी हमारे नवयुवक कई प्रकार के ठोस काम कर सकते हैं। जो व्यापारी अनाज व अन्य उपयोगी वस्तुओ की जमाखोरी करते है उनके खिलाफ भी छात्र शातिपूर्ण किन्तु प्रभावशाली कार्रवाई कर सकते हैं। शिक्षा के कई सुधार के कार्यक्रमो में भी विद्यार्थियो का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

राजस्थान शिक्षा सम्मेलन •

गत २३-२४ जून को आबू पहाड पर राजस्थान शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उसमें हमें भी शामिल होने का अवसर मिला। इस सम्मेलन में राजस्थान के शिक्षा मत्री श्री खेतसिह के अलावा वहाँ के मुख्य मत्री श्री हरिदेव जोशी भी काफी समय तक उपस्थित रहे। राजस्थान शिक्षा विभाग के सभी उच्च अधिकारी भी शामिल हुए। राजस्थान की गैर-सरकारी शिक्षण-सस्थाओं के लगभग ५० प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शरीक थे।

दो दिन तक विस्तृत और गम्भीर चर्चाओ के बाद यह तय किया गया कि सेवाग्राम शिक्षा सम्मेलन के वक्तव्य के अनुसार राजस्थान में भी शिक्षा सुधार शीघ्रता से लागू किये जायँ। इस काम को गतिशील बनाने के लिये शिक्षा-मत्री की अध्यक्षता में ४५ सदस्यो की एक 'राजस्थान शिक्षा परिषद' भी घोषित की गई जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षा शास्त्री सयुक्त ढग से शिक्षा में सुधार का कार्य करेंगे।

हम आशा करते हैं कि यह महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य अब राजस्थान में उत्साहपूर्वक संचालित किया जायगा, ताकि वहाँ की प्राथमिक और उच्चस्तरीय शिक्षा उद्योग-प्रधान बनाई जा सके। तभी शिक्षित नवयुवकों की बेकारी का प्रश्न हल हो सकेगा और शिक्षा का उपयोग राष्ट्र के उत्पादन को बढ़ाने में किया जा सकेगा।

——श्रीमन्नारायण

प्रारंभिक शिक्षा के साथ फिर दगा

अभी पांचवी पंचवर्षीय योजना का जो ड्राफ्ट प्लान तीसरी बार संशोधित (रिवाइज्ड) किया जा रहा है उसमें माध्यमिक शिक्षा के खर्च में कमी कर दी गयी है और इस कारण हाईस्कूल स्तर पर विद्यार्थियों की भर्ती फ्रीज करनी पड़ेगी।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में यह प्रावधान था कि योजना-अवधि के अन्त तक ११ से १४ वर्ष की आयु के ७५ प्रतिशत बच्चों की भर्ती कर ली जायगी। इस संशोधित ड्राफ्ट प्लान में इसे कम करके ३६ प्रतिशत कर दिया गया है जबकि कालेज और उच्च शिक्षा की भर्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं की गयी है। इतना ही नहीं, राज्यों को नये विश्वविद्यालय खोलने की भी छूट दी गयी है और प्रारंभिक शिक्षा की वृद्धि में रोक लगी है। पहले ड्राफ्ट प्लान में योजना-अवधि में ६ से ११ वर्ष की आयु के शत प्रतिशत बच्चों के इनरोलमेन्ट का प्राविधान था। दूसरे ड्राफ्ट में उसे कम करके ९७ प्रतिशत किया गया था और इस तीसरे ड्राफ्ट में उसे ९० प्रतिशत कर दिया गया है। ऐसा करते समय यह कहा गया है कि यथार्थ लक्ष्य यही है।

"*यथार्थ*" तो इस देश में यही रह गया है कि कुछ सुविधा सम्पन्न लोगों को अधिकाधिक सुविधा दी जाय और जो असम्पन्न हैं उन्हें अकिंचन बना दिया जाय। *इस रास्ते क्या कभी समाजवादी* समाज बनेगा?

शिक्षा मंत्रालय के कुछ विशेषज्ञ भी माध्यमिक स्तर की शिक्षा की इस अवहेलना को एक निश्चित षड्यंत्र का परिणाम मानते हैं, क्योंकि यही वह स्थान है, राजनीतिक बारूद का जखीरा है

जहाँ चिनगारी लगी तो प्रतिष्ठान के यथास्थितिवाद भस्म हो जायेगा। यह इसलिए कि हाईस्कूल स्तर की शिक्षित बेरोजगारी ही सब से अधिक है। १९७३ के रोजगार दफ्तरों के रजिस्टरों में हाईस्कूल स्तर के ३५ लाख बेरोजगार दर्ज थे जबकि ग्रेजुएट स्तर के कुल ६५ लाख। यही कारण है कि योजना आयोग ने सरकार को आगाह किया है कि हाईस्कूल स्तर पर शिक्षा का प्रसार क्रान्तिकारी परिस्थिति का कारण बन जायगा, क्योंकि पंचवर्षीय योजना में रोजगार देने की जो गुंजाइश है वह अपर्याप्त है। इतना ही नहीं, इस स्तर के विद्यार्थियों के लिए "सेल्फ एम्पलायमेन्ट" की किसी सार्थक योजना की बात भी नहीं सोची जा सकती।

हमारा कहना यह है कि अगर किसी आर्थिक कारण से यह कटौती करनी ही पड़ी है तो विश्व विद्यालय स्तर पर शिक्षा प्रसार के मोह को क्यों नहीं छोड़ दिया गया है। बावजूद इसके कि कोठारी कमीशन ने स्पष्ट सुझाव दिया है कि नये विश्वविद्यालय न खोले जायें और जो विश्वविद्यालय हैं उनमें भी केवल प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की ही भर्ती की जाय। इसलिए ड्राफ्ट के इस संशोधन में लोगों को षड्यंत्र की गंध आय तो कोई आश्चर्य नहीं है। कितने खेद की बात है कि जिन राज्यों में हाईस्कूल स्तर की बेरोजगारी सबसे अधिक है उनमें ही सबसे अधिक विश्वविद्यालय और डिग्री कालेज खुल रहे हैं।

सुविधा सम्पन्न लोगों के इस षड्यंत्र का परिणाम यह होगा कि इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते होते भारत वर्ष में निरक्षर और अर्द्ध साक्षरों की संख्या का प्रतिशत आज से भी बहुत अधिक हो जायगा। ज्ञान के इस युग में हम अपनी सन्तान को अज्ञान रूपी अंधकार के गर्त में क्यों ढकेल रहे हैं ?

इस भूल का अथवा सुविधा सम्पन्न समाज के रक्षित स्वार्थ का परिणाम क्या लोकतंत्र का, शिक्षित जनता जिसकी रही है, सम्पूर्ण विनाश नहीं होगा ? हमें अब अत्यन्त गंभीरतापूर्वक शिक्षा को प्लानिंग के चंगुल से बचाने की बात सोचनी चाहिए।

—बंशीधर श्रीवास्तव

छात्रों की रचनात्मक भूमिका

गत ४ जून के 'हिन्दू' दैनिक में उसके भोपाल स्थित संवाददाता ने निम्न-लिखित एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। हम उसे अविकल रूप में यहाँ दे रहे हैं :—

"गत एक माह से राष्ट्रीयकृत राज्य परिवहन निगम के कर्मचारियों के द्वारा की गयी हड़ताल के बीच में छात्रों द्वारा किये गये रचनात्मक काम से एक आशा की किरण प्रकट हुई है। गत ९ मई को जब राजकीय बस डिपो में आग लगा दी गयी तो जो छात्र अनेक तरह से अधिकारियों के लिये एक सिरदर्द ही साबित हो रहे थे तथा बस ड्राइवरों में आये दिन झगड़े चलते थे वे ही छात्र अपनी रचनात्मक भूमिका अदा करने के लिये आगे आये। अधिकारीगण यह निश्चय पूर्वक जानते थे कि यह तोड़फोड़ की कार्यवाही का नतीजा था; क्योंकि उसी समय यह भी खबर मिली थी कि कॉरपोरेशन के रायपुर डिपो में भी इसी तरह की आगजनी की गयी है। ऐसे समय पर भोपाल के मौलाना आजाद टेक्नालॉजी कॉलेज तथा कुछ अन्य कॉलेजों के छात्र स्वतः प्रेरणा से आगे आये और उन्होंने अपनी जान पर भी खेलकर अनेक बसों को जलने से बचा लिया। उनके इस काम की सभी अधि-कारियों ने भरपूर सराहना की।

राष्ट्र की सम्पत्ति को विनाश से इस प्रकार बचाने के बाद लगभग १५० छात्र अधिकारियों के पास गये और उन्होंने अधिकारियों को बस चलाने, सम्पत्ति की तथा वफादार कर्मचारियों की असामाजिक तत्वों से रक्षा करने के लिये अपनी सेवायें अर्पित कीं। उनकी सेवायें स्वीकार ली गईं और शहर के दंगाग्रस्त भागों में आठ-आठ के दस्तों में विशेष पुलिस दस्ते के तौर पर उनको तैनात कर दिया गया। इसी प्रकार से बसों पर भी पाँच-पाँच छात्रों का एक दल तैनात कर दिया गया। १० मई को कर्मचारियों की हड़ताल बिना शर्त वापस ले ली गई तो छात्रों की सेवायें पुनः वापस कर ली गईं। छात्रों का इस प्रकार का रचनात्मक सहयोग न केवल भोपाल में ही मिला अपितु ग्वालियर, जबलपुर, सीहोर और रायपुर में भी प्राप्त हुआ। रायपुर में तो छात्रों ने एक बहुत ही शानदार काम किया। ज्यों ही रायपुर बस डिपो में आग लगी छात्रों ने पुलिस के घेरे को तोड़कर बसों को आग से बचाने के लिये बाहर खींचना आरम्भ कर दिया और इस काम में कई छात्रों को बेहोशी भी हो गई। खासकर आयुर्वेदि० कालेज के छात्र श्री छरवानी और विज्ञान कालेज के धाडविक को कलेक्टर ने विशेष प्रशंसा पदक भी प्रदान किये। इस काम में लगे सभी छात्रों को २०० रु का पुरस्कार भी प्रदान किया गया। रायपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री जे. सी. दीक्षित ने इस काम में लगे सभी ३०० छात्रों को भी प्रशंसा पदक प्रदान किये।

इस सबमें भी सबसे अधिक प्रशंसा की बात तो यह थी कि यह सब स्वानुभूत ही था। खासकर आज जबकि छात्रों की महिमा संकट उत्पन्न करनेवालों के ही रूप में मानी जाती है तब उनकी इस भूमिका की सारी जनता ने भरपूर सराहना की है। सबने यह अनुभव किया कि अधिकारियों को कोई इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये ताकि छात्रों को शान्तिपूर्ण समाज के निर्माण में अपनी इस प्रकार की रचनात्मक भूमिका अदा करने का अवसर मिल सके। छात्रों ने इस प्रकार से भोपाल में करीब १० लाख की और रायपुर में करीब १८ लाख की सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट होने से बचाया है।

आग में जितना ही घी डालो वह उतनी ही तेज होती जाती है। उसी प्रकार से म. प्र. के बस कर्मचारी हमेशा ही अधिक वेतन की माँग करते रहे हैं और अधिकारी भी उनकी हर माँग को स्वीकार करते रहे हैं। किन्तु जब एक विशेष स्थिति आ पहुँची तो फिर क्रम भी उलट गया और फिर सरकार ने समर्पण करने के बजाय दृढ़ता से स्थिति से निबटने का निर्णय ले लिया तो फिर हड़ताल भी बिना शर्त शीघ्र ही वापस भी ले ली गयी।

म. प्र. राज्य परिवहन निगम के पास लगभग २१४६ बसों का एक बेड़ा है जो रोज करीब ३७७८०३ किलोमीटर के मार्गों पर अपने १२००० कर्मचारियों की मदद से करीब ३ लाख नागरिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। निगम भ्रष्टाचार, अक्षमता और चोरी का पर्याय ही बन गया था। सरकार ने हाल ही में निगम का पुनर्गठन भी किया है और श्री सीताराम जाजू तथा श्री मोतीलाल वोरा को जन-प्रतिनिधि के तौर पर उसमें क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष नियुक्त किया है। यह प्रयास किया जा रहा है कि निगम में हुए अनेक प्रकार के छिद्रों, चोरी तथा बिना टिकट की यात्रा आदि की रोकथाम के लिए प्रभावी कदम उठाये जायें। आज निगम यदि घाटे में चल रहा है तो उसके कर्मचारियों का दायित्व इसमें कम नहीं है और न वे सेवाओं में अक्षमता के लिए ही अपनी जिम्मेदारी से इनकार कर सकते हैं। आज तो निगम आवश्यकता तथा योग्यता के अतिरिक्त कारणों से भर्ती किये गये कर्मचारियों के कारण एक वोमोला दैत्य-सा बन गया है।"

छात्रों की इस भूमिका पर कोई टिप्पणी आवश्यक नहीं है, किन्तु इतना कहना उचित होगा कि यदि हम देश में, खासकर शासन तथा समाज के उच्च क्षेत्रों में, इस प्रकार की राष्ट्रीयता और देशसेवा का वातावरण बना सकते तो आज देश का युवक वर्ग इतना भटका हुआ न होता जितना वह आज है। फिर भी उसकी सहज रचनात्मक प्रतिभा समय पर प्रकट हो रही है, यह अभिनन्दनीय है।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

विनोबा

विश्वराज्य : विज्ञान की आवश्यकता :

["नागपुर टाइम्स" (अंग्रेजी दैनिक) के श्री जी एम देशपाण्डे ने पवनार-आश्रम में पूज्य विनोबाजी से मुलाकात की और उनसे कुछ प्रश्न पूछे। अभी-अभी भारत द्वारा किये गये अणु विस्फोट के सदर्भ में उनके प्रश्न तथा बाबा द्वारा दिये गये उत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं।

— सम्पादक]

प्रश्न —अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय हो, ऐसा आप कहते हैं। भारत की अध्यात्मिक परम्परा का गुणगान आज तक हमने किया पर विज्ञान के विषय में हमारा कोई अधिकार न होने से हमारी आध्यात्मिक परम्परा का कोई खास असर नहीं हो पाया। अब अणुशक्ति पर हमारा अधिकार हो गया है। अत अब अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का समय आया है।

(१) समन्वय यानी क्या ?

(२) इस समन्वय के कारण समाज कैसा होगा ?

(३) आज का समाज और समन्वित समाज को शृंखलाबद्ध जोडने के लिए हमें क्या करना होगा ?

(४) स्थित्यंतर (Transition) की अवस्था में इसे कौन करेगा ?

विनोबा —विज्ञान की खोज प्राचीन काल में भारत में हुई थी। भारतीय विज्ञान में ही अग्नि की खोज हुई। अति प्राचीन काल में इसी खोज के कारण आपके चूल्हे आदि बने। उसके पहले अन्न पकाने की विधि ज्ञात न थी। अग्नि की खोज के पश्चात् ही अन्न पकाना प्रारम्भ हुआ। अग्निमीडे पुरोहितम् ऐसी ऋग्वेद में अग्नि की प्रार्थना है। इससे स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल में विज्ञान था। बीच के कालखंड में उसमें कमी आयी। अब फिर से विज्ञान का उदय हुआ है, यह खुशी की बात है। हमारी सरकार ने यह स्पष्ट घोषित कर ही दिया है कि इस अणु-शक्ति का उपयोग शान्ति के लिए किया जाएगा। उससे शस्त्र निर्माण नहीं होगा, यह अच्छी बात है। इसलिए अब शका के लिए गुंजाइश नहीं, किसी को भयभीत होने का कोई कारण नहीं।

आज की छपी किताबें क्या पहले थीं ? वेद पूर्ण रूप से कठाग्र किया जाता था। लिखा नहीं जाता था। उसके रक्षण के लिए निर्णय लिया गया कि उसे ब्राह्मण ही सम्भालें। अन्य लोगों की वाणी में उसके अशुद्ध होने की सभावना थी। फिर उसका

ठीक अर्थ नहीं हो पाता। केवल वेद संरक्षण के लिए यह सावधानी बरती गई। किताबें लिखने की प्रथा होती तो कोई भी लिखे या कोई भी पढ़े, हर्ज न होता।

बाबा अभी आपसे चर्चा कर रहा है। लोग पटापट लिख ले रहे हैं। यह सब छापा जाएगा। बाबा ने आज तक जितने व्याख्यान दिये उन्हें ग्रंथरूप में छापा जायेगा तो कितना बड़ा ग्रंथ-संग्रह होगा ? शंकराचार्य के कितने व्याख्यान छापे गये ? उनके क्या ग्रंथ बनाये गये ? अब तो किताबों का भार हो चला है। इसलिए किताबों को आग लगा रहे हैं। पहले कोई वेदाभ्यासी विद्वान, ज्ञानी, ब्राह्मण सन्यासी हो तो "वेदानपि सन्यसति" यानी वेद का भी सन्यास करता था। कोई वेद की रक्षा करनेवाला उत्तम शिष्य हो तो उसे वेद सौप दिये जाते थे, वरना उन्हे गंगार्पण किया जाता था। इस प्रकार हम समन्वय करते ही आये हैं।

प्रश्न —यह समन्वय कैसा किया जाय ?

विनोबा —समन्वय पहले जैसा ही किया जाय। छोडते, जलाते, नदी मे डुबोते हुए चले। भूदान यात्रा मे लोगो ने मुझे अनेक मानपत्र दिये। मैं उन्हे कहता था कि दरअसल मानपत्र तो मैं आपको दूँ, क्योकि आपने दानपत्र भरे है। मैंने तो केवल विचार रखा। इसलिए मुझे जो करना चाहिये वह आप कर रहे हैं, यह उलटा है। एक बार मार्ग मे जब गोदावरी का पुल आया तो मैंने सारे मानपत्र नदी मे छोड दिये।

अणु ऊर्जा (Atomic Energy) हाथ मे आने पर ये सारी छोटी-छोटी बातें हैं उन्हें तजना चाहिये। लोग अणु विस्फोट वार्ता कहने आये तब मैंने कहा, "जब आप "मंगल" ग्रह पर पहुँचेंगे तब मै अभिनन्दन करूँगा। तब तक राह देखूँगा। मंगल को संस्कृत में भौम कहते हैं। भौम यानी भूमिपुत्र। उसका अर्थ ऐसा कि पूर्वजो की कल्पना के अनुसार मंगल का वातावरण भूमि के जैसा ही होगा। यदि वहाँ पानी होगा तो प्राणी भी होगे। उनकी आपसे पहचान होगी। वहाँ हो आनेपर आपका ज्ञान प्रकट होगा। तब बाबा आपका अभिनन्दन करेगा।"

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। अग्नि का उपयोग रसोई के लिए था, आग लगाने के लिए किया जा सकता है। तब उसका उपयोग रसोई के लिए ही हो, आग लगाने में न हो, यह समन्वय है आत्मज्ञान-विज्ञान का। अब भी वैसा ही समन्वय करें। मोटर मे, रेल में नही बैठेंगे। हाँ, हवाई जहाज रहेगा। बाकी सारी जमीन खेती-बाडी में लगायी जावेगी। उत्तम ब्रह्मचर्य पालन हो जिससे संतति कम हो। लोक-संख्या नियंत्रित रखने में संयम की दृष्टि विज्ञान के साथ जोड़े। आज कल विज्ञान के कारण छोटे बच्चे मरते नही। पहले क्या होता था ? बालक ने जन्म लिया कि चौथे-पाँचवे दिन मर जायगा, यह संभावना। न मरा तो पाँचवी-छठी का कार्यक्रम। बारह दिन जिन्दा रहता तो नामकरण।

उसके पहन रखन स क्या लाभ ? क्योकि तब तब मर जान की ही आशका। विज्ञान के कारण बालमृत्यु कम हुं। इसलिए सख्या बढ रही हैं। विज्ञान के कारण ही वृद्ध लाग अधिक दिन तक जीत हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक हो गया है। उस समय ब्रह्मचय का आध्यात्मिक मूल्य (Spiritual Value) था। क्योकि उस समय जनसख्या कम थी। उस समय ब्रह्मचय का सामाजिक मूल्य (Social Value) न था। अब ब्रह्मचय का आध्यात्मिक मूल्य के साथ सामाजिक मूल्य भी हैं। इसलिए विज्ञान युग में ब्रह्मचय की विशप आवश्यकता हैं। विज्ञान युग में खेती बढान की ज्यादा जरूरत हैं। इसलिए जमीन का उपयोग अ यन किया जाता है उस कम करना हागा। समझो एसी शक्यता ह कि मकान के छत पर खेती की जा सकेगी। सब्जी उगायी जा सकगी तो वैसा करना चाहिए। तब बड-बड शहर खत्म करन होग अपनी सभ्यता पुरदर सस्कृति है। वेद म इन्द्र को पुरदर कहा है। इन्द्र न सौ नगरो का नाश किया इसलिए उस पुरदर कहा गया।

तब आपका नागपुर नगर खत्म हागा। आपको देहात में जाना हागा। आपका अखबार बद हो जाय तो हर्ज नही। क्योंकि छापन क लिए कागज का उपयाग आज के जैसा न होगा। वृत्तपत्र न रह तो भी ज्ञान ता मिलता ही जायगा। साइन्स के कारण आकाश स ज्ञान मिलगा। यहा आप हम बात कर रह हैं। इस समय यह अमरिका में दिखाई-सुनाई दगा। दुनिया के चाह जिस स्थान पर जान के लिए रेलगाडी आवश्यक न हागी। विज्ञान युग में यह भी सम्भव है कि सीधे नाक द्वारा हवा स पोषण मिलेगा। (दीर्घश्वास न करते हुए बाबा न यह कहा) भोजन की आवश्यकता न रहगी। वृक्ष एसा करत ही हैं। वे आकाश स पोषण लेते हैं। हम भी वैसा ही करें। हम भी आकाश स पोषण लें। नाक को नली लगायी और प्राणायाम किया कि पोषण प्राप्त हुआ। भोजन की जरूरत न हागी। इस प्रकार के शोध भी होंग।

प्रश्न—समन्वय यानी क्या ? उस कैसा किया जाय ?

विनोबा —समन्वय यानी दो का मेल। पहले स ही एसा चला आ रहा हैं। मैं कहता हूँ वैसा आज कर। नागपुर स आन की आवश्यकता नही। वहीं बैठे-बठे बाबा स बातचीत की जाय। यह हुआ समन्वय। आज आपको नाहक यहाँ आना पडा। यहाँ पुडलीकजी (कातगडे) बैठे हैं। उनकी हमारी बातचीत ५०० मील दूरी पर एक कमरे में बैठकर हुई। उन्होन वहाँ स प्रश्न पूछे। मैंने यहाँ स जवाब दिया। विज्ञान के युग की यह बात है। मानसिक सदेश भी भजे जा सकग।

प्रश्न —यह कुछ विज्ञान की बात नहीं हैं।

विनोबा —ठीक है। अध्यात्म स भी सदेश लेते-देत बनगा। आज गुरू उपदेश देते हैं। लम्ब-लम्ब व्याख्यान देते हैं। उपनिषदो में क्या है ? गुरू के पास

शिष्य आये। देव, दानव और मानव। गुरु ने उन्हें उपदेश दिया "द" यह एक अक्षर ही बताया। द द द एक अक्षर मे ही वे बोल गये। कितने पुरोगामी (Advanced) थे वे। आज हमें फालतू अधिक बोलना पडता है। विज्ञान के विकास के कारण हमें अधिक न बोलना होगा। थोडा कहकर काम चल जायगा।

प्रश्न —स्थित्यंतर (Transition) की अवस्था मे यह कौन करेगा ?

विनोबा —ट्रेंझीशन की अवस्था सतत् चल ही रही है। प्राचीन काल मे आज तक चालू है। प्रिंटिंग प्रेस (छापखाना) नही था, वह आया। मोटर, रेल, हवाई जहाज आये। ट्रेंझीशन चल ही रहा है। उसमे नवीनता खास है नही। जवान का वृद्ध बना। क्या एक दिन मे बना ? प्रत्येक सेंकड (क्षण) वृद्धावस्था आती ही रहती है। यह क्रिया सतत् चलती ही है।

प्रश्न —भौतिक सम्पन्नता के शिखर पर पहुँचने पर दिशाहीन बने पश्चिमी राष्ट्र अध्यात्म के लिए भारत की ओर देख रहे है। अब भारत ने अणु-विस्फोट किया। इसलिए कुछ राष्ट्रों की भारत पर की श्रद्धा डगमगाने लगी है। उन्हे स्थिर करने के लिए भारत क्या करे ?

विनोबा —श्रद्धा डिगने का कोई कारण नहीं। भौतिक सपदा की सीमा तक अमेरिका भी नही पहुँच पाया है। अमेरिका मे आज भी लाखों लोग बेकार, भूखे है। आपका वह रशिया (रूस) उस आहार के लिए गेहूँ की पूर्ति बाहर से करनी पडती है।

अब तक दुनिया के मानव समाजो में हार्दिक एकात्मता नही है। शकाकुल वातावरण है। सदा-सर्वदा शकित ही रहते हैं। आगे विश्व राज्य होगा तो भारत उसका एक प्रान्त होगा। चीन, रूस, अमेरिका ये सारे उस विश्व राज्य के एक-एक प्रान्त होंगे। विश्व राज्य का न्यायकोर्ट होगा। विश्वराज्य की सेना रहेगी। यह सब आगे चलकर होनेवाला है ही। अभी जैसा तय हुआ है कि भारत के किसी प्रांत से दूसरे किसी प्रान्त में अनाज जा सकता है। उसी तरह दुनिया निर्णय लेगी कि पृथ्वी पर विश्वराज्य के किसी प्रान्त से (आज के देश राष्ट्र से) अनाज अन्यत्र जा सकेगा। और वैसा भेजा भी जावे। साइन्स के कारण अनाज आसानी से कही भी भेजा जा सकेगा। साइन्स अब छोटे-देश बरदाश्त न करेगा। देश प्रान्त की दृष्टि से स्वीकार किये जावेंगे।

आज ही कर्नाटक के पुंडलीकजी को मैंने महाराष्ट्र-कर्नाटक सीमा प्रश्न पर एक उपाय सुझाया। कर्नाटक और महाराष्ट्र को मिला दें। स्कूलों में मराठी और कन्नड दोनों भाषा सिखायी जावे। दोनों राज्य भाषाएँ रहेंगी। प्रत्येक पत्रक दोनों भाषाओं में निकाला जावेगा। आठ करोड आबादी का बडा मजबूत प्रदेश

इसकी कल्पना न होगी। वह कल्पना अब है। अणुशक्ति हाथ में आने पर छोटी-छोटी शक्ति को छोड देना चाहिए। इजीनियरिंग में नयी कल्पना रूढ होने पर पुरानी छोड दी जाती है। नदी को मोड देना है। नहरें निकलनी है, उसके लिए अणुशक्ति का उपयोग हो तो पुरानी पद्धति से काम करने की आवश्यकता नही। इसी तरह नयी चीज हाथ में आने पर पुरानी छोड दे।

प्रश्न —विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की दृष्टि से भारत की प्लानिंग मे क्या मूलभूत फर्क करने होगे?

विनोबा —भारत की प्लानिंग मे मुख्य बात यह होगी— अति प्राचीन समय से भारत में अध्यात्म विद्या चली आयी है। अध्यात्म मे जो अति प्राचीन हो, वही प्रमाण माना जाता है। साइन्स मे जो अद्यतन (लेटेस्ट) हो वही प्रमाण होगा। अध्यात्म विद्या के अनेक ग्रथ यहाँ है। ज्ञानेश्वरी लीजिए या आधुनिक समय का अध्यात्म विद्या का ग्रथ ले। लोग किसे पढेगे? आधुनिक ग्रथ नही पढेगे। ज्ञानेश्वरी ही पढेंगे। क्योकि वह सात सौ वर्ष पुरानी है। इसलिए अत्यन्त प्राचीन अध्यात्म विद्या अति अर्वाचीन विज्ञान की जोडी बनानी होगी। विज्ञान मे पीछे जाना नही, अद्यतन, अर्वाचीन (सिद्धान्त) लेना होगा और अध्यात्म मे जितना पीछे जा सकेंगे उतना जाना होगा।

प्रश्न —अणु-विस्फोट भारत के जीवन का एक नया अध्याय है। ऐसी स्थिति में भारत सर्वप्रथम क्या करे?

विनोबा —भारत सारी दुनिया को शाति का आश्वासन दे। उसने ऐसा आश्वासन दे भी दिया है। लोक एकदम विश्वास न करे। वे क्यो करे— दस-पाँच वर्ष देखेंगे। परीक्षा लेंगे। फिर दुनिया अनुभव करेगी कि भारत अणुशक्ति का उपयोग शाति तथा वैज्ञानिक खोज के लिए ही कर रहा है। तब सारी दुनिया में भारत के लिए आदर बढ़ेगा। आज जो थोडा अविश्वास है वह दूर होगा।

प्रश्न —कुछ बड़े राष्ट्र भारत पर नाराज है। उनसे नजदीक आने के लिए भारत को क्या करना होगा?

विनोबा —बड़े राष्ट्र नाराज है, उसके लिए एक बात करनी है। भारत में अनेक जाति-पथ है। पन्द्रह विकसित भाषाएं है। दुनिया में जितने भी धर्म है वे भारत में है। इसलिए सारे धर्मों की, सारी भाषाओं की, पथो की एकता साध कर दिखाना होगा। यह एक सध जाये तो और कुछ करना न होगा। इसीसे सब सध जायगा।

जयप्रकाश नारायण

क्या दलीय लोकतंत्र से आगे कोई रास्ता नहीं है ?

(क्या देश और दुनिया में स्थापित दलीय लोकतंत्र ही सर्वोत्तम लोकतन्त्र है ? उसके आगे का कोई मार्ग नहीं ? अनुभव यह आया है कि दलीय लोकतंत्र मात्र दलतत्र बन जाता है। दल भी गुटों में विभजित होते है। अत लोकतंत्र के स्थान पर गुटतत्र ही चलता है। उस पर नौकरशाही हावी हो जाती है। फिर वह जनता के नाम पर अपनी हुकूमत चलाती है। आज के लोकतत्र में असली 'लोक" का तो कहीं अतापता नहीं है। इसलिए दुनिया भर के विचारकों में दलगत लोकतत्र के विषय में विचार-मथन चल रहा है।

क्या वतमान दलीय लोकतंत्र का कोई विकल्प हो सकता है ? इस सिलसिले में यहाँ प्रस्तुत है— देश के मूधन्य नेता श्री जयप्रकाश नारायण का यह विचारपूण लेख। आशा है, नयी तालीम के प्रबुद्ध पाठकगण अपनी-अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करेंगे।

— सम्पादक)

राजनीति का जो विकास पिछली सदियो म हुआ उसन मानव समाज को जिस स्थान पर लाकर पहुँचा दिया वहाँ हम मानन लग है कि अब उसस आग कोई रास्ता हो नही ह। किन्तु मै यह मानता हूँ कि आज की मौजूदा शासन-व्यवस्था और उसके दावा के सम्बन्ध मे हम गभीरता स सोचना चाहिय तथा उन दोषो को दूर करन के उपाय ढूढन चाहिए। दलबदी के झगड सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण के बदले स्वाथ की खीचातानी सिद्धान्तो को किनारे रखकर व्यक्तिगत या निहित स्वाथ के लिए होनवाल दल-बदल दलों की अदरूनी अनुशासहीनता, अवसरवादी गठबधन, दलो, प्रतिनिधियो और प्रधानो का स्वेच्छाचार पसो का बहिसाब खच घूसखोरी, यह सब तो सहज ही हमारी नजरो के सामन आता रहता ह। हम अधिक गहराई में जाना च हिय।

केवल वोट (मत) ही काफी नहीं

ससदीय लोकतत्र के कई रूप ह जिनमें स एक इस देश में चल रहा है। यह लोकतान्त्रिक ढांचा चुनाव प्रथा तथा मताधिकार पर आधारित है। मताधिकार का विचार एक जमान में बडा क्रान्तिकारी विचार था। लकिन हम देख रह है कि

उसके द्वारा समाज कोई बहुत आगे नही बढ़ पाया। फिर भी वह कोई निकम्मी चीज है, ऐसी बात नही है। लेकिन जब हम आगे जाने की सोचते हैं, तब हमें जरूर देखना और समझना चाहिए कि वोट ही काफी नहीं है।

अपने देश में मतदाता सब कुछ सोच-समझ कर मतदान करता हो, ऐसी स्थिति न तो यहाँ है और न दुनिया में ही। फिर भी हम मानते हैं कि हमारे वोट पर खड़ा ससदीय लोकतत्र बहुत अच्छी तरह चल रहा है। राज चलानेवाले मानते हैं कि वयस्कों को वोट का अधिकार दे दिया तो आदर्श राज्य-व्यवस्था हो गयी।

तथाकथित बहुमत की माया :

हम आज जिसे बहुमत का राज कहते हैं, अगर सचमुच देखा जाय तो वह भी क्या बहुमत का राज होता है ? ससद मे किसी पार्टी को ज्यादा स्थान मिल जाते हैं, लेकिन फिर भी देश के कुल मतदाताओं का बहुमत उनके पीछे नही होता है। वोट एक पक्ष को ज्यादा और सीट दूसरे पक्षको ज्यादा, ऐसा कई जगह, कई बार देखने को मिलता है। इस तरह देखा जाये तो अगर किसी एक पार्टी को ३५ प्रतिशत ही मत मिले, परन्तु ससद में सीटें ज्यादा मिली, तो सरकार उसी पार्टी की बनेगी। जितने मतदाता होते हैं, वे सब-के-सब मत देने तो कभी नही आते हैं। औसतन ५०–६० प्रतिशत में से भी वास्तव मे २०–२५ प्रतिशत लोगो ने ही उस पार्टी को वोट दिया है, फिर भी आज के जनतत्र में इसी पार्टी का राज होगा। तब भी माना यह जाता है कि यह जनतत्र यानी बहुमत का राज है, यद्यपि व्यवहार में अल्पमत का ही राज चलता है।*

चुनाव को हमने लोकतत्र का मुख्य साधन तो बनाया, लेकिन किसी गरीब के लिये यह असम्भव हो गया है कि वह चुनाव मे स्वय खडा हो सके, या गरीब लोग मिलकर ही उसे खडा कर सकें। ऊपर से खडे किये गये उम्मीदवारो मे से जो जीतते हैं, वे ही जनता के प्रतिनिधि माने जाते हैं।

मौजूदा लोकतत्र के ऐसे कई बडे और महत्त्वपूर्ण दोष हैं। वास्तव मे जरा बारीकी से देखें तो आज न जनता का राज है, न ही बहुमत का राज है। वस्तुत. अत में चद लोगो के हाथ मे ही सत्ता का केन्द्रीकरण हो जाता है और फिर वह अफसरो का ही राज बन जाता है।

---

* फिर 'कोरम' व्हिप आदि विधियो के सन्दर्भ मे देखें और ये विधियाँ तो आज के ससदीय लोकतत्र की रीढ हैं, तो पता लगेगा कि किसी भी सरकार या दल मे मात्र एक शक्तिशाली व्यक्ति या गुट ही निर्णय लेता है जिसे विधियो के उक्त बल पर अन्य लोगो पर थोपा जाता है। राजतत्र मे भी यही होता था। तब फर्क क्या रहा ?

—सपादक

इस तरह अभी सही मानें में जनता का राज तो दूर कोसों है। आज तक जिस रास्ते चलते आये हैं उसी रास्ते आंख मूदकर चलते रहो यह सोचने का कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं है। इससे तो जनता का राज कभी आनेवाला नहीं है।

नीचे से स्वराज्य ही विकल्प

जनता का राज लाना हो तो नीचे से ही स्वराज्य का विकास करना होगा। छोटे-छोटे समुदायों को भीतर से ही अधिक-से अधिक अधिकार और शक्ति प्राप्त हो और कम-से कम अधिकार उपरवालों के पास रहे उतने ही जितने अनिवार्य हों। जीवन के मुख्य सवालों का हल इन छोटे समुदायों के बीच ही उनके अपने ढंग से हो। जनता जैसे जैसे अपना काम सम्भालती जायगी वैसे-वैसे जनता का राज आयगा। लोकतांत्रिक दृष्टि से विचार करने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि तंत्र जितना हल्का और सरल होगा उतनी ही लोकशाही सरल और सफल सिद्ध होगी— यदि तंत्र बोझिल और जटिल होगा तो लोकशाही भी उतने अंशों में निष्फल सिद्ध होगी। जहाँ केंद्रित संचालन आया, वहाँ जनता का संचालन मर गया समझिये। जनता के द्वारा संचालन करना हो तो वह विकेन्द्रित तरीके से ही संभव होगा, और मैं ऐसा मानता हूँ कि लोकशाही का बचाव भी इसी में है। यदि हमें आज के औपचारिक लोकतंत्र से संतोष न हो, यदि इस पार्टीसिपेटिव डेमोक्रेसी— जिसमें खुद जनता भाग लेती है ऐसा लोकतंत्र चाहते हो तो गांधीजी के ग्रामराज की बात की तरफ ध्यान देना ही पड़ेगा। हमारा लोकतंत्र बहुत संकुचित आधार पर टिका हुआ है। हमें लोकतंत्र की नयी बुनियाद, नयी आधारशिला रखनी है।

सक्रिय सामुदायिक प्रक्रिया

उदाहरण के तौर पर विधान सभा के चुनाव के लिए एक निर्वाचन क्षेत्र है। उसमें १०० गांव हैं उनका लोक शिक्षण करना पड़ेगा लोगों को समझाना पड़ेगा कि चुनाव में आप स्वयं अपना उम्मीदवार खड़ा करें गाँवों में कुछ सक्रियता आये शक्ति आये जागृति आये और फिर मिलजुलकर काम करने का कुछ अभ्यास हो तो यह हो सकेगा।

इसकी पद्धति के बारे में थोड़ा-बहुत विचार किया जा सकता है। पहले तो हर एक गाँव निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या के अनुसार अपने एक-दो या तीन चार आदमी पसन्द करेगा। यदि गाँव छोटी छोटी इकाइयों में जिन्हें हम ग्रामसभा कह सकते हैं विकेंद्रित रूप से यह करे तो उचित होगा। यदि ग्रामसभा छोटी है तो वह एक आदमी को पसन्द करेगी और यदि कोई बड़ा गाँव होगा तो वह चार पाँच लोगों को पसन्द करेगा। इस तरह १०० गावों में से औसत तीन के हिसाब से लगभग ३०० लोगों को गाववालों ने पसन्द किया। तो ये लोग किसी दल के नहीं बल्कि ग्राम सभाओं द्वारा पसन्द किये गये प्रतिनिधि होंगे।

इन सभी प्रतिनिधियों का एक "ग्रामसभा-प्रतिनिधि मण्डल" बनेगा। वे सब मिलकर अपने में से एक व्यक्ति को उस मतदान क्षेत्र के लिए उम्मीदवार के रूप में पसन्द करेंगे। पसदगी की पद्धति भी उन्हें समझायेंगे। वहेंगे सर्वसम्मति से किसी एक को ही पसन्द करें और यदि सभव न हो तो "एलिमिनेशन" की प्रक्रिया से पसद करें। उदाहरण के तौर पर ४-५ लोग उम्मीदवार के रूप मे खडे हो, तीन-चार बार मतदान कराकर जिसे सबसे कम मत मिले उसे एक-के-बाद एक निकालते जायें, अत मे जो एक रहे उसे ही उम्मीदवार के रूप में पसद हुआ समझें। इस तरह जो उम्मीदवार खडा होगा, वह वस्तुतः जनता का उम्मीदवार होगा। यदि ग्रामसभाएँ जागृत होगी तो स्पष्ट है कि मत उनके द्वारा खडे किये गये उम्मीदवार को ही मिलेंगे और वही चुना जायेगा। इसमें उम्मीदवार दल का हो या जनता का हो, मात्र इतना ही भेद नही है, बल्कि मूल बात यह है कि आज तो जनता मिलकर, साथ बैठकर विचार ही नही करती। अगर समुदाय, कम्युनिटी सक्रिय होती है तो वह जहाँ तक सभव होगा, सर्वानुमति से काम करेगी।

दलमुक्त लोकतंत्र।

इस तरह जो ग्रामसभाओ द्वारा किये गये उम्मीदवारो में से चुनकर आये होगे, वे किसी दल के नही, बल्कि सीधे जनता के प्रतिनिधि बनकर आये होंगे। इन दलमुक्त सदस्यो द्वारा दलमुक्त लोकतत्र की शुरूआत होगी। फिर से सब मिलकर एक नेता चुनेंगे, जो योग्य व्यक्तियों का एक मत्रिमण्डल बनायेगा। उसमें फिर एक सत्ताधारी पक्ष और दूसरा विरोधी पक्ष, ऐसा नही होगा। विधान सभा के सब सदस्य साथ मिलकर शासन चलायेंगे। प्रशासन-व्यवस्था भी अलग-अलग विभागो के अनुसार की जा सकती है। विधान सभा के सभी सदस्यो को अलग-अलग समितियो में बाँट दिया जाय और हर एक समिति को एक एक विभाग सौपा जाये। इन समितियों के माध्यम से शासन चलेगा। तब फिर आज जैसी दलीय खीचतान नही होगी और न विधान सभा के सदस्य एक दूसरे पक्ष को नीचे गिराने की कोशिश में ही लगे रहेंगे। जनता का हित साधना है। जो भूलें होंगी उनको सुधारना है, यह दृष्टि होगी। इस तरह एक नयी प्रकार की लोक सत्ता का उदय होगा।

आज की लोकतात्रिक व्यवस्था मे ऐसा कोई क्रातिकारी कदम उठाया जाये, सारी दुनिया ऐसा चाहती है। आज की प्रातिनिधिक लोकतत्र से किसी को सतोष नही। दुनिया भर के प्रगतिशील विचारक आज प्रत्यक्ष और सहभागी लोकशाही का समर्थन करते है। यह काम कोई पुरानी लीक पीटने का काम नही है बल्कि दुनिया की जो सबसे आगे बढनेवाली धारा है, उसके साथ-साथ यह विचार है।

धीरेन्द्र मजूमदार •

लोकतंत्र के लिए लोक-शिक्षण आवश्यक :

[आज हमारा देश एक घातक तथा व्यापक संकट से गुजर रहा है किन्तु यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। भारत की सरकार तथा उसके नेताओं के नेतृत्व में पिछले २६ सालों से जो लोक-विमुख काम होते गये उनका यह अनिवार्य फल है। इनमें लोक की इस नीति की बजाय दल सरकार तथा नौकरशाही प्रधान बनी है। आमूलाग्र त्याग तथा महात्मा गांधी की ओर मुड़े बिना अन्य कोई विकल्प नहीं है।

सर्वोदय के प्रख्यात विचारक तथा नयी तालीम के भू. पू. संपादक श्री धीरेन्द्र मजूमदार के इस लेख से आशा है हमारे पाठक इस ओर चिंतन करेंगे।]

आज देश की परिस्थिति ऐसी संकटपूर्ण बन गयी है कि मैं भी लोकभावना वाले सभी पार्टी के मित्र तथा हम खुद बहुत परेशान हैं। देश में भुखमरी, गरीबी, बेकारी, महंगाई, नौकरशाही का आतंक, संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों की अवहेलना, व्यापक भ्रष्टाचार आदि बातों से हम चिंतित रहते हैं। लेकिन जरा गहराई से सोचना पड़ेगा कि आखिर यह संकट पैदा क्यों हुआ? हमें यह समझना होगा कि आज के समाज की जो उत्कट समस्याएं हैं चाहे वह अनाज की समस्या हो या तानाशाही

की समस्या हो, कोई आकस्मिक दैवी दुर्घटना नहीं है। वह पचीस साल से लगातार लोकतंत्र के 'लोक' की उपेक्षा का परिणाम है।

लोकतंत्र है कहाँ ?

आज कई लोग लोकतंत्र को बचाने के लिए चिंतित हैं। वे कह रहे हैं कि आज देश में लोकतंत्र खत्म हो रहा है। लेकिन मैं पूछता हूँ कि लोकतंत्र का जन्म ही कब हुआ है ? जिस तंत्र का निर्माण, लोक अभिक्रम निरपेक्ष तंत्र की स्थापना से हुआ, उस लोकतंत्र कैसे कहा जायगा ? अब कुछ लोग कहते हैं कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए विरोधी दल के रूप में उसी प्रकार की मजबूत जमातें खड़ी हों, तो लोकतंत्र की रक्षा होगी। कुछ लोग कहते हैं कि न्यायपालिका मजबूत हो, तो लोकतंत्र की रक्षा होगी। कुछ लोग कहते हैं कि अगर राष्ट्रपति और राज्यपाल मजबूत रहें, तो वे लोकतंत्र की रक्षा कर सकते हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि सर्वोदय वाले ही लोकतंत्र बचा सकेंगे।

देश लोक-विरोधी शक्तियों के कब्जे में है :

लेकिन वे सब यह भूल जाते हैं कि तंत्र के किसी पदाधिकारी या कब्जदार जमात या सर्वोदय क्रांति करनेवाले कुछ थोड़े से लोग कभी भी लोकतंत्र की रक्षा नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, बल्कि देश के तमाम पक्षों के नेताओं की सम्मिलित शक्ति भी अगर साथ मिल जाय और सब मिलकर ऊपर-ऊपर से सवैधानिक और तंत्र आधारित क्रिया से लोकतंत्र बचाने का प्रयास करें, तब भी वे सफल नहीं होंगे, यह बात निश्चित रूप से समझनी चाहिए। क्योंकि आज देश के संपूर्ण जीवन पर सैनिक शक्ति, नौकरशाही की शक्ति पूँजीपति की शक्ति तथा देहाती सामंतवादी शक्तियों ने मिलकर इस कदर कब्जा कर रखा है कि देश के सभी नेता मिलकर भी अपनी ही ताकत से उनका मुकाबला नहीं कर सकते हैं। वे मुकाबला तभी कर सकते हैं, जब वे जनता को साथ लेकर उनके द्वारा समाज के भिन्न भिन्न कार्यों को करवा कर उपर्युक्त गठबंधन तोड़ सकेंगे।

स्वतंत्रता-संग्राम की प्रेरणा लोकतंत्र की नहीं थी :

हमारे देश में जो स्वतंत्रता का आंदोलन चला उसकी प्रेरणा लोकतंत्र की नहीं, गुलामी मुक्ति की थी। देश गुलाम था और उस गुलामी में से मुक्त होना था, तो यह स्वाभाविक था कि देश के नेता राष्ट्र के सामने गुलामी हटाने यानी स्वतंत्रता-प्राप्ति का ही नारा देते। लोकतंत्र के विचार को समझाने का अवसर उस समय नहीं था। इसलिए तब गुलामी-मुक्ति की प्रेरणा से और उसी नारे के साथ देश ने आंदोलन किया, जनता ने त्याग और तप किया और उसकी साधना की।

बाद मे देश के आजाद होने पर नताओ के विचार के अनुसार इस देश मे लोकतंत्र की स्थापना तो हो गयी, लेकिन लोकतांत्रिक विचार के शिक्षण के अभाव में लोकतंत्र का लोक अपने को पुरानी प्रजा की हैसियत से ही देखता रहा। हमारे नताओ ने माना कि लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी आजादी के लिए की गई साधना काम आ जायगी। उन्होंने माना कि उसके लिए नयी साधना की आवश्यकता नही है। सरस्वती-पूजा के लिए प्रतिमा का निर्माण कर पूजा समाप्ति के बाद उसी प्रतिमा से दुर्गा-पूजा का समाधान हो जायगा ऐसा सोचना जिस तरह मद बुद्धि का परिचायक है, उसी प्रकार आजादी प्राप्ति की प्रतिमा के सहारे लोकतंत्र का भी अधिष्ठान हो जायगा ऐसा सोचना अत्यन्त भ्रामक है। खरीदने के लिए पैसा-पैसा बटोर कर एक हजार रुपया खर्च करके घोडा खरीदा तो उसी एक हजार रुपये में गाडी भी हो जायगी, यह सोचना कितना गलत है। यह तो स्पष्ट है।

गांधीजी की सलाह की उपेक्षा

अगर हम लोकतंत्र कायम करना था तो हमें उसके लिए नयी कीमत चुकानी थी और नयी साधना में लगना था। यही कारण है कि गांधीजी स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों म ही हमेशा कहा करते थे कि अंग्रेजी राज्य का हटना स्वराज्य का पहला कदम होगा और आजादी के बाद स्वराज्य हासिल करने का काम शुरु होगा। दुर्भाग्य से देश के नेता और जनता ने गांधीजी की इस सलाह को नही माना।

लोकतंत्र का मूल तत्व 'लोक' है। तंत्र तो लोक द्वारा संस्थापित उसके हाथ का औजार है। लोकतंत्र की रक्षा एकमात्र लोक ही कर सकता है। इसलिए, यदि लोकतंत्र की रक्षा करनी है तो लोक के बीच बैठकर तथा घूमकर लोक शिक्षण द्वारा लोकतंत्र के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना होगा।

स्व. श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् :

महाजनो येन गतः स पन्थः

[आज हमारे देश में जो छात्र-असन्तोष और हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं वे तो हमारी आजादी के मिलने के तुरन्त बाद ही आरम्भ हो गयी थीं। सन् १९५३ में इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालयों में भयंकर छात्र-असन्तोष उभड़ा था और हिंसा तथा तोड़-फोड़ की घटनाएँ हुई थीं। उस पर स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू ने गहरा दुख व्यक्त करते हुए देश को चेतावनी दी थी कि यदि समय रहते हमने अपनी शिक्षा-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन नहीं किया तो देश को और भी हानि उठानी पड़ सकती है। उस पर नयी तालीम की तत्कालीन सम्पादिका और बुनियादी शिक्षा की आचार्या स्व. आशादेवी ने स्व. पं. जी के नाम एक अपील प्रकाशित की थी। उसका महत्त्व आज भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है; क्योंकि परिस्थितियों में बजाय कोई सुधार होने के और भी बिगाड़ हुआ है। माह जून की २६ तथा ३० तारीखों में स्वर्गीय. आर्यनायकम्‌जी व स्व. आशादेवीजी की पुण्य तिथियाँ सारे देश में मनायी गयीं। इस अवसर पर हम स्व. आशादेवी की पं. जी के नाम वह अपील पुनः नये शीर्षक से प्रकाशित कर रहे हैं। —सं.]

हर एक देश की शिक्षा-व्यवस्था उस देश की सामाजिक और नैतिक आदर्शों का प्रतिबिम्ब होती है। देश में जिस तरह के व्यक्ति और समाज का सर्वोच्च मान होता है, उस देश की शिक्षा-व्यवस्था उसी तरह के व्यक्ति और समाज-निर्माण करने का प्रयास करती है। हम देशवासी थोड़ा शान्त होकर सोचें कि हम आज किसे अधिक मान देते हैं। हम आज उच्च कोटि की नैतिकता को, विशुद्ध ज्ञान साधना को, त्याग और आध्यात्मिकता को या कि उच्च पद और वेतन को अधिक मान देते हैं। आज इस देश के माता-पिता अपने लड़कों और दामादों को क्या होता हुआ देखना चाहते हैं? वे उनके लिये क्या स्वप्न देखते हैं? वे गांधी-विनोबा जैसे संत और त्यागी तथा ज्ञानी बनें या कि फिर वे मोटे वेतनवाले सरकारी अफसर या राजनैतिक नेता बनें, जो कि ठाठ-बाट से ऊँचे बंगलों में रहें और जो हमेशा ही कई नौकर चाकरों से घिरे रहें, जो कीमती मोटरों में सफर करें और दूसरों की सेवा करने के बजाय दूसरों पर अपना रौब, अपनी हुकूमत कायम करें। आज देहात का गरीब भी अपने बालकों के लिए क्या स्वप्न देखता है! वह भी उसकी ही तरह गरीब किसान रहे जो कि अपनी मेहनत की कमाई पर सन्तोष करे या कि फिर वह अंग्रेजी सीख कर जज या मजिस्ट्रेट बने? इसलिये आज के संकट के लिये हमारे विश्वविद्यालयों या

हमारी शिक्षा-पद्धति को दोष देने से कोई लाभ नही है। वे तो समाज के विश्वस्त सेवक हैं और वे वही कर रहे हैं जो समाज उनसे चाहता है। वे जानते हैं कि आज के भारत में अब बडे वेतन और बडे पद के लिये नैतिक शुद्धता या शुद्ध ज्ञान-साधना की कोई भी आवश्यकता नही है, बल्कि नैतिकता और त्याग तो इस मार्ग मे अकसर बाधक ही होते हैं। इसलिये नैतिकता या त्यागमय जीवन के लिये किसी भी प्रकार का कोई अभ्यासक्रम हमारे विश्वविद्यालयों या हाईस्कूलो के पाठ्यक्रमो मे यत्नपूर्वक रखे ही नही गये है। पद के लिये वेतन के लिये समाज मे सम्मान पाने के लिये आज आवश्यकता है मात्र डिग्री की। इसलिये साधु या कि असाधु किसी भी उपाय से डिग्री प्राप्त करना ही हाईस्कूलो और विश्वविद्यालयों की शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य रखा गया है। कभी कभी बीच मे रिसर्च (शोध) और बौद्धिक स्तर बढाने की चर्चा अवश्य कर दी जाती है। किन्तु उसका अर्थ मात्र इतना ही होता है कि उच्च पद और वेतन की वृद्धि के लिये इन विद्याओं का उपयोग कैसे किया जाय। इसलिये नही कि इनसे त्याग या ज्ञान का स्तर कैसे उठाया जाय। त्याग और ज्ञान से तो छात्रो की हानि होने का डर जो होता है। आज तो विश्वविद्यालय या कालेज आदि आये दिन इस बात की सगर्व घोषणाऐं करते है कि उनके यहाँ से निकले छात्र किन किन उच्च पदो पर है या कि कितना वेतन पानेवाले पद पर है।

मूलाधार ही अनैतिक है तो

हम देखते है कि आज संसार मे आगे बढने के लिये सर्वश्रेष्ठ पद्धति प्रतियोगिता की ही मानी जाती है। इसलिये सारी शिक्षा-व्यवस्था में प्रतियोगिता के लिये बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखा गया है। विद्यार्थियो को भी इस पद्धति का अभ्यास बहुत ही यत्नपूर्वक कराया जाता है। साधारणत यह माना जाता है कि दूसरो को पीछे हटाकर ही या गिराकर ही मनुष्य आगे बढ सकता है। किन्तु संसार के सारे शिक्षा शास्त्री और समाज शास्त्री भी यह मानेंगे कि प्रतियोगिता का यह सिलसिला मूलत अनैतिक है। इसके मूल मे उच्च पद का लोभ तो है ही। तो जिस शिक्षा-पद्धति का मूलाधार ही अनैतिक हो उसका वातावरण कहाँ तक नैतिक हो सकता है और उससे निकलने वाले विद्यार्थी अपने जीवन मे कहा तक नैतिकता के पुजारी हो सकेंगे ?

चिंतन का द्वैधपन

इसलिये स्वयं नैतिकता के पुजारी होने के कारण पूज्य जी को हमारे विश्व विद्यालयो का यह अनैतिक वातावरण अत्यन्त ही पीडा पहुँचा रहा है। उनके सामने यह परिस्थिति एक राष्ट्रीय संकट के रूप मे आयी है। किन्तु देश के सामान्य राजनैतिक नेताओ को या अच्छी नौकरियों के लिये अपने लडके लडकियों को विश्वविद्यालयो मे

भेजनेवाले माता-पिताओं को भी क्या यह परिस्थिति प. जी को ही तरह से किसी संकट की तरह लगती है ? क्या वे भी प. जी की ही तरह से इस परिस्थिति को बदलने के लिये आतुर हैं ? जब तक उनकी सन्तानों को इस शिक्षा से मिलनेवाली डिग्रियों के कारण अच्छी नौकरियाँ मिलती रहेगी ? वे इससे सन्तुष्ट रहेंगे ? इसके विपरीत यदि किसी ऐसी शिक्षा-व्यवस्था की बात की जाय जिसका लक्ष्य ऊँचा वेतन या ऊँचा पद न हो बल्कि जिसमें त्याग और नैतिकता की भावना के विकास का प्रयास किया जाय तो देश के सब माता-पिता उसका विरोध करने के लिये सचेष्ट हो जायेंगे। इसलिये यह मानना होगा कि समाज में जिस भी वस्तु या परिस्थिति का सम्मान होगा शिक्षा-व्यवस्था में भी स्वभावतः उसका ही ऊँचा मान होगा।

इतिहास की गवाही :

हम सब जानते हैं कि एक समय था जब इस देश में ब्राह्मण का सर्वोच्च मान था। ब्राह्मण का यानी जो कि ज्ञान-साधना करता हो, ज्ञान-दान करता हो, अपरिग्रही हो और जिसका जीवन सादा हो। तो उस समय के विश्वविद्यालय शहरों से, विलास से दूर होते थे और विद्यार्थी भी ब्रह्मविद्या के अभ्यास के साथ-साथ नीवार, (धान) की खेती भी करते थे, वन से ईंधन लाते थे और गायें चराते थे। हमारा प्राचीन साहित्य इस बात का प्रमाण है कि राजा-महाराजा भी इन विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिये अपने आभूषण, रथ, सेवक आदि सब राजकीय चिन्ह उतारकर और नम्र बनकर ही प्रवेश पा सकते थे।

आज का भारत :

आज तो समाज का आदर्श बदल गया है। इसलिये हमारे ये विश्वविद्यालय और गुरु भी बदल गये हैं। आज समाज के आदर्श के अनुकूल इस तरह की शिक्षा दी जाती है कि विद्यार्थी आइ. ए. एस. के उच्च अधिकारी, किसी सरकारी विभाग के सचिव या निदेशक या फिर परराष्ट्र विभाग के कोई उच्च अधिकारी बन सके। पब्लिक स्कूलों, शुद्ध अँग्रेजी उच्चारण सिखानेवाले और उच्च पदस्थ कर्मचारी के योग्य जीवन सिखानेवाले कालेजों या स्कूलों का ही आज अधिक मान है। हर एक माता-पिता की यह आकांक्षा है कि वे अपने बेटे-बेटियों को ऐसे ही उच्च कालेजों और स्कूलों में भेजकर उन्हें ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त करायें। तो जब तक हमारा सामाजिक आदर्श नहीं बदलता, हम तब तक शिक्षकों, शिक्षा और शिक्षालयों में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। और यह किये बिना फिर 'नव-जागृति' का तो सपना ही रहनेवाला है।

पंडितजी से दुखपूर्ण अपील.

हमारा प. जी से दुख के साथ यह निवेदन है कि स्वतन्त्रता मिलने के बाद देश में देश-सेवा, त्याग और राष्ट्र की पुनः रचना में भाग लेने की भावना का विकास

नहीं हुआ है। उल्टे समाज में वुद्धिस्वार्थ एवं भोग की वृत्ति बढ़ रही है और सोभ का प्रसार हो रहा है। इस सबके साथ तब नैतिक जडता का बढ़ना अनिवार्य है। हमारी शिक्षा-संस्थाओं का वातावरण इसी नैतिक परिस्थिति का प्रतिबिम्ब है।

असन्तोष स्वागत योग्य है :

विद्यार्थियों में जो हलचलें होती है हमे उनसे दुखी नही होना चाहिये। उसीमें जीवन का थोडा आभास मिलता है, उसीमें आशा के कुछ लक्षण है। अगर इन विद्यार्थियो का भी लक्ष्य मात्र एक डिग्री लेकर नौकरी में लग जाना होता तो वे शायद शान्त रहते। किन्तु आज वैसा नही है। वे अभी सजीव है। वे यह नही जानते कि वे चाहते क्या हैं। किन्तु वे इतना तो अवश्य ही जानते है कि आज उनके स्कूलों और कालेजो तथा विश्वविद्यालयों में उन्हें वह चीज नही मिल रही है जो उनकी भावना को प्रेरित कर सके। इस कारण से वे अशान्त हैं, क्षुब्ध है, चचल है और उनकी यह *क्षुब्धता फिर किसी भी बहाने से जरा से उत्तेजन पर बाहर फूट पडती है। यह प्रस्फुटन* कभी कभी अशोभन, अमर्यादित और अनुशासनहीन अवश्य होता है, किन्तु मानसशास्त्र हमें बताता है कि मानसिक व्याधि जब बाहर फूटकर निकलती है तो उसका फूटना हमेशा ही सुन्दर होता है।

सामाजिक आदर्श में क्रान्ति ही विकल्प :

इसलिये आज केवल शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन की बात बेअर्थ होगी। हम चाहे जितने कमीशन बैठाये, कितनी ही कमेटियाँ कायम करे, इनसे परिस्थिति में कोई भी सुधार नही हो सकेगा, क्योकि इन कमीशनो और कमेटिया के सदस्यों के सामने तो कोई नवीन आदर्श नही होता। वे तो प्रचलित आदर्श के ही ढाँचे में विचार कर सकते है। इसलिये परिस्थिति मे तो सुधार तभी होगा जबकि हम अपने सामाजिक आदर्श में आमूल क्रान्ति करे। प जी ने जो चेतावनी हमें दी उसकी हमें बहुत आवश्यकता है। यदि हम अब भी सचेत होकर अपनी शिक्षा-व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्तन नही करते तो राष्ट्र निश्चय ही गहरे सकट मे फँस जायेगा। हमारी तरह की और विशाल योजनाएँ भी किसी काम नहीं आयेगी यदि हमारे पास सस्कारवान् और वैसी लगन के कार्यकर्ता नही होगे।

महाजनो येन गतः स पन्था

अत हम एकान्त दृढता और विश्वास के साथ अपील करते हैं कि सामाजिक आदर्श में आमूल परिवर्तन के बिना कोई भी परिवर्तन सम्भव नहीं है। साथ ही हम यह भी अपील करते है कि परिवर्तन की यह क्रान्ति दिल्ली से ही आरम्भ होगी तो ही वह देश में फैलेगी, क्योकि आज लोग हर बात के लिये दिल्ली की ओर देखते है। मात्र शिक्षाशास्त्री या जनता यह नही कर सकती।

चिमनलाल शाह

गांधीजी का व्यवहार-दर्शन :

गांधीजी सत्य के पुजारी थे, एक महान् कर्मयोगी थे। इसी सत्यमय कर्मयोग के बल पर वे महान्तम बनते गये। अपने अनुभव के बलपर वे अपने सहयोगियों और सम्पर्क में आनेवाले सभी छोटे-मोटे असख्य मानवो के शिक्षक भी बन गये। उन्होने उन सबको सत्याचरण सिखाते सिखाते सबको सेवाधर्म भी सिखा दिया।

दक्षिण अफ्रीका मे उन्होने देशी-विदेशी अनेक सेवक तैयार किये, हजारों और शायद लाखो भारतवासियों को जगाकर वहाँ की सरकार का भी उन्होंने हृदय-परिवर्तन किया। भारत मे आने के बाद उन्होंने साबरमती आश्रम की स्थापना की जो मानो उनके कार्यकर्ताओ के लिए एक पाठशाला ही थी। वहाँ से उन्होंने अनेकों को तालीम देकर सारे भारत में रचनात्मक कार्य मे लगा दिया, उसके माध्यम से उन्होंने स्वतत्रता के अनेक सैनिक भी तैयार किये।

मानव प्रकृति के अद्भुत पारखी

उनके सम्पर्क मे आनेवाले लोग तरह तरह की प्रकृति के होते थे और कई बार तो उनकी प्रकृति परस्पर अत्यन्त प्रतिकूल भी होती थी। फिर भी सबको अपनी शिस्त में लेकर उनसे काम लेने की उनकी शक्ति तो अद्भुत थी। वे सब छोटे-बडे को उनके दोष जानते हुए भी, किन्तु उन पर ध्यान न देकर उनके गुणो के विकास के लिये सतत प्रयत्नशील रहते थे और इसी प्रकार से उन्होंने अनेक छोटे-बडे भाई-बहनो को पुरुस्कारी भी बनाया। वे हर व्यक्ति से अलग से ही सम्पर्क रखते थे और कितने लोगो के साथ निजी सम्पर्क रखना उनके भारी सार्वजनिक व्यस्त जीवन में कभी भी बाधक नही बना। यहाँ भी सेवाग्राम आश्रम में हम चित्र विचित्र तरह के लोग उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये थे। कभी कभी लोग इसे पागलखाना भी कहते थे तो कोई इसे बीमारखाना भी कहते थे। सचमुच यहाँ पर विचित्र स्वभाव वाले और बीमार भी रहते थे। किन्तु बापू सबके साथ अतीव धैर्य और मातृप्रेम के साथ अच्छे सम्बन्ध पैदा कर लेते थे। यह आश्रम भी बापू की एक प्रकार की प्रयोग शाला (लेबोरेटरी) ही थी। इसी प्रयोगशाला के बलपर वे अपने सिद्ध अनुभव के माध्यम से विशाल जन समुदाय को ही अपने बस मे कर लेते थे।

अब यहाँ पर कस्तूरबा, महादेवभाई देसाई, जमनालाल बजाज, विनोबा, सरदार, जवाहरलाल, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृतकौर, किशोरलाल मश्रुवाला, मीराबहन सरला देवी आदि अनेक भाई-बहनो के वे आचार्य रहे हैं।

व सबकी विभिन्न रुचियों से परिचित रहते थे और हमेशा ही इस बात का ध्यान रखते थे कि उनको उनकी रुचि के अनुसार ही काम और यहाँ तक कि खाना भी मिले। उनका धैर्य तो आश्चर्यजनक था और वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय या फिर अन्तरराष्ट्रीय बात के बीच भी आश्रमवासियों या आये हुए अतिथियों की रुचि का भी बहुत ख्याल रखते और अक्सर कार्यकर्ताओं को अनेक बातों की याद वे ही दिलाते। लोगों की निजी समस्याओं को वे बहुत ध्यान से और गम्भीरता से सुनते और फिर उसके स्वभाव, परिस्थिति और साधन आदि को ध्यान में रखकर उसका हल सुझाते। अपनी इस कला से ही उन्होंने नगर को शान्त बनाया। डरपोक को निर्भय बनाया। बहनों में गजब की ताकत भर दी, उनसे गजब का त्याग करवाया। नेहरू जेल-यात्राएँ करायीं और जेल यात्रा फिर तो उनके लिये अत्यन्त ही सरल ही बन गयीं। भारत छोड़ो आन्दोलन में फिर बापू के इस करिश्मे का चमत्कार दिखाई पड़ा था।

संगठन की नयी पद्धति

बापू कहते थे कि संगठन ही हमारी अहिंसा की कसौटी है। वे सचमुच इस कसौटी में खरे उतरे। आजकल संगठन अत्यधिक बड़े और केन्द्रित होते जा रहे हैं और उनके विशालपन के कारण फिर उनके कार्य परसे उनके संगठनकर्त्ताओं का ध्यान स्वभावतः ही हट जाता है और वे यह संगठन कैसे चलें इसी उधेड़बुन में पड़े रहते हैं। भारत जैसे विशाल देश में तो जहाँ हमारी जनता विशाल भूभाग में यत्र तत्र फैली हुई है इस तरह के बड़े संगठन जरा भी नहीं चल सकते। संगठन को अपने कार्य में सफल होना हो और उसे सदस्यों के हित के साथ समरस होना हो जो उनका उद्देश्य होता है तो फिर यह आवश्यक है कि संगठन का स्वरूप इस तरह का हो कि हर सदस्य का एक दूसरे से जीवित सम्पर्क रह सके। बापू यह करते थे। वे हमेशा ही प्रत्यक्ष सम्पर्क की प्रणाली पर जोर देते थे। यह प्रत्यक्ष सम्पर्क केवल तभी सम्भव है जबकि संगठन का दायरा मानव स्वभाव की सीमा में हो यानी ऐसा हो कि हर आदमी उसे प्रभावित कर सके। बापू ने इसी कौशल के बल पर देश के भिन्न भिन्न प्रकृति के लोगों को एकत्र किया था, उनमें जान फूंक कर स्वराज्य का माध्यम बनाया। अपने इसी कौशल के बल पर उन्होंने सुदूर इंगलण्ड में भी विभीषण प्राप्त किये और अपने सत्य अहिंसामय रामबाण से दुनियाभर की सहानुभूति प्राप्त की।

उनके एकादश व्रत एक तरह से उनके लिए संगठन की कार्य प्रणाली के ही अंग थे। उसका ही यह सुफल है —

> सियाराम प्रेम पियूष पूरण होत न जनम भरत को।
> मुनिमन अगम यम नियम शमदम विषम व्रत आचरत को।
> दुख दोष दारिद दंभ दूषण सुयशमीश अपहरत को,
> कलिकाल तुलसी से शठनिहठि, राम सन्मुख करत को।

वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान :

[शिक्षा, खासकर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में वनस्थली विद्यापीठ का स्थान देश की अत्यन्त सम्मानित शिक्षण सस्थाओं में गिना जाता है। एक अत्यन्त मार्मिक घटना से इसकी प्रेरणा हुई किन्तु आज वह सारे देश के हृदय को स्पर्श कर रही है। शिक्षा में स्वायत्तता के सवाल पर भी यह सस्था सतत जागरूक रहती है और अभी हाल ही में विद्यापीठ के प्राचार्य डा लक्ष्मीलाल ओड के नेतृत्व में सस्था ने राजस्थान सरकार के उस आदेश को निरस्त कराने में सफलता पायी है जिसके मातहत राजस्थान विश्वविद्यालय ने अपने क्षेत्र के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रवेश सम्बन्धी नियमों को अपने हाथ में ले लिया था। यहाँ हम विद्यापीठ का सक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

—सपादक]

देहात के आर्थिक-सामाजिक जीवन मे स्वावलबन के आधार पर एक प्रकार का क्रान्तिकारी परिवतन लाने की दृष्टि से वनस्थली नाम के छोटे से गाँव में गाधीजी के मान्य उद्देश्यों के आधार पर ग्राम मे रचनात्मक काम करने और अपने भावी कायक्रम की दृष्टि से साथियो के शिक्षण को ध्यान में रख कर जीवन कुटीर-वनस्थली की स्थापना लगभग ४५ वष पूव अक्षय तृतीया, सवत १९८६ म हुई थी। जीवन कुटीर की राज्य से तत्काल झगडा न करते हुए उसकी यथाशक्य उपेक्षा करने की नीति थी। बाद मे समय आने पर जीवन कुटीर के इन कायकर्ताओ ने जयपुर राज्य प्रजामडल के सगठन में प्रमुख भाग लिया। प्रजामडल के काम से भी सीताराम जी का अटूट हार्दिक सम्बन्ध रहा।

पडित हीरालाल शास्त्री और श्रीमती रतन शास्त्री अपनी ६॥ साल की पुत्री शान्ता और २॥ साल के पुत्र सुधाकर के साथ १९२९ में वनस्थली पहुँचे थे। वही पर ६ साल के बाद १२॥ साल की उम्र में शान्ता का अचानक देहान्त हो गया। उक्त हृदय विदारक घटना में से अक्टूबर १९३५ में वनस्थली विद्यापीठ का जन्म हो गया।

पिछले ३८ सालो म वनस्थली विद्यापीठ का कल्पनातीत विकास हो गया है। जहाँ एक इच जमीन नही थी, एक झोपडी भी नही थी, एक पैसा पास में नहीं

था, स्त्री शिक्षा के काम के योग्य एक भी कार्यकर्ता नहीं था और शिक्षा के विषय में कोई निश्चित विचार या कल्पना तक नहीं थी— वहीं आज ८७५ एकड़ भूमि पर एक करोड़ से ज्यादा लागत की मकानों आदि की संपत्ति वनस्थली के पास है। विद्यापीठ में ३०० से अधिक शिक्षक-शिक्षिका व अन्य कार्यकर्ता तथा २०० से ऊपर दूसरे कर्मचारी काम करते हैं, देश के कोने-कोने से आयी हुई १७०० लड़कियाँ इस सार्वभौम शिक्षण-संस्था में शिक्षा पा रही हैं। वनस्थली में ४ करोड़ रुपया बिखर चुका है और कम-से-कम १५ हजार रुपये रोजाना का खर्चा है। विद्यापीठ के विद्यालयों—महाविद्यालयों में प्रख्यात पंचमुखी शिक्षा का कार्यक्रम चल रहा है और बी० ए०, एम० ए०, बी० एस सी०, एम० एस सी०, बी० एड०, एम० एड०, पी० एच० डी० आदि डिग्रियों के लिए शिक्षा दी जाने की व्यवस्था है। आगे चलकर वनस्थली में होम साइंस के बी० एस सी० एम० एस सी० शारीरिक शिक्षा के बी० एड० और अनेक गृहाधारित शिल्पों के डिप्लोमा चालू करने का विचार है।

वनस्थली विद्यापीठ की खास बात यह है कि वह आज की विषम परिस्थितियों में भी युग की चुनौतियों के सम्मुख सर्वथा निरुत्तर नहीं है। क्योंकि वह युग-युगों के प्रति उतना ही सजग है जितनी अपने प्रति सचेतन। अपनी प्रगति और विकास के गत ३८ वर्षों में वह जहाँ अभावों में आनन्द का और संघर्षों में विजय-विश्वास का अनुभव करता आया है वहाँ अपनी यात्रा के प्रत्येक चरण पर आत्म-विश्लेषण भी। इस आत्म-विश्लेषण के कारण ही वह सत्य के आलोक में आत्म-दर्शन कर सका है। अपनी प्रगति की यात्रा में यह आत्मदर्शन ही उसका मार्गदर्शक और सतत प्रयोगशीलता ही उसका पाथेय रही है। यही कारण है कि विद्यापीठ के पास न केवल अपनी शिक्षा दृष्टि ही है वरन् अपना ऐसा शैक्षिक व्यक्तित्व भी है जो शिक्षण संस्थाओं की भीड़ में खो नहीं जा सकता और जिसका पंचमुखी रूप अलग से पहचाना जा सकता है।

विद्यापीठ की शिक्षा-पद्धति मूलतः मूल्याधारित है पर वे मूल्य एकांगी नहीं हैं, उनका निर्माण पूर्व और पश्चिम की आध्यात्मिक विरासत तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों के समन्वय से हुआ है। समन्वय के इस आदर्श को सम्मुख रखते हुए विद्यापीठ छात्राओं के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की पंचमुखी शिक्षा देने का प्रयत्न करता है। ड्रिल, खेलकूद, यौगिक आसन, तैरना, नाव चलाना, मोटर चलाना, घुड़सवारी, पोलो, हवाई जहाज चलाना, एन सी सी, बन्दूक चलाना आदि के द्वारा शारीरिक शिक्षा का, गृह कार्य एवं उद्यान आदि के द्वारा व्यवहारिक शिक्षा का, कंठ संगीत, वाद्य संगीत, नृत्य (कत्थक), मणिपुरी, भरतनाट्यम, लोकनृत्य, नाटक एवं चित्रकला के द्वारा कला विषयक शिक्षा का, सामूहिक प्रार्थना, प्रार्थनोत्तर वार्ताओं तथा उद्बोधन मंदिर में प्रसारित होनेवाले शास्त्र वचनों और संत वाणी आदि के द्वारा नैतिक शिक्षा

का एव पुस्तकीय शिक्षा और ससद व अनेक परिषदो मे होनेवाले वाद-विवादो के द्वारा वह बौद्धिक शिक्षा का समायोजन करता है।

पर अपने पचमुखी शिक्षा कार्यक्रम एव अपनी अन्य विशेष प्रवृत्तियो की समष्टि मे, वनस्थली विद्यापीठ की कुछ ऐसी विशेषताएँ भी है जो उसे निजी विशिष्ट व्यक्तित्व एव अस्मिता प्रदान करती है। विद्यापीठ एक सर्वांगीण प्रगतिशील शिक्षण-सस्था है, जिसमें प्रथमत भारतीय सस्कृति और आचार-विचार पर विशेष बल है, जो कि उसकी शक्ति और न्यास है। दूसरे वह छात्राओ में व्यक्तिगत स्वतत्रता, सामाजिक उत्तरदायित्व और मर्यादापालन का सतुलन बनाये रहता है, तीसरे वह सादा जीवन व्यतीत करना सिखाता है, जिसका आदतन खादी पहनना भी एक अग है, चौथे वह अपने निजी तथा घरेलू कार्य स्वय करने पर आग्रह रखता है और पांचवें, वह छात्रावासो मे बिना किसी भेदभाव के सामूहिक जीवन बिताने का अवसर प्रदान करता है। पर इन विशेषताओ और विशेष प्रवृत्तियो से युक्त अपने शिक्षा-कार्यक्रम के लिए विद्यापीठ मे आद्यान्त कोई शिक्षा शुल्क नहीं लिया जाता है, क्योकि विद्यापीठ के कार्यकर्ताओ की आरम्भ से ही यह मान्यता रही है कि शिक्षा देने की वस्तु है, बेचने की नही। और फिर उन बच्चियो के कैसा शिक्षा शुल्क, 'जो जीवन कुटीर' की लाडली और होनहार बेटी "शाश्वत शान्ता" के भौतिक स्थान की पूरक बनकर विद्यापीठ में पहुँचती है ?

इस प्रकार विद्यापीठ की स्थापना न तो किसी पूर्व योजना का परिणाम है और न किसी दानवीर की थैली का वरदान, वह तो प्यार और करुणा से उद्भूत रिक्तता की एक स्वयसम्पूर्ण पूर्ति है। विद्यापीठ की यह करुणा मिश्रित प्यार ही शैक्षणिक दृष्टि, उसके समस्त विचार व कार्य स्रोत है, उसकी शक्ति है। यही कारण है कि यहाँ शिक्षण-शुल्क न होने के साथ साथ न पुरस्कार है, न दड। एक बार महात्मा गाधी ने लिखा था कि "वनस्थली मेरे दिल में बसी है।" वास्तव में शून्य में से पैदा होकर वनस्थली विद्यापीठ विशाल राष्ट्रीय शिक्षण-सस्थान बन गया है जिसके कार्य को राष्ट्रीय महत्व का बताते हुए पडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "वनस्थली विद्यापीठ भारत मे एक अद्वितीय सस्था है।" आपने राष्ट्रीय महत्त्व के आधार पर ही वनस्थली के पास न केवल राजस्थान सरकार से बल्कि भारत सरकार तथा देश के प्रत्येक राज्य से और प्रत्यक केन्द्र प्रशासित प्रदेश से आर्थिक सहायता पहुँचती है। और देश का कोई भाग ऐसा नही है जहाँ की जनता से वनस्थली को आर्थिक सहयोग न मिला हो। राजस्थानी जनता का सहयोग तो वनस्थली की नीव भरने के साथ-साथ उसके आज तक के विकास का मुख्य आधार रहा है।

(विद्यापीठ के जन-सम्पर्क विभाग द्वारा प्रेषित)

जहरीली सड़कें :

पेट्रोल अथवा डीजल से चलनेवाली गाडियाँ हवा में नशीली गैसें छोडती है। इस तरह छोडी गयी गैस का कुछ भाग जमीन की मिट्टी में भी मिल जाता है। इस गैस में कुछ उन धातुओं का भाग भी होता है, जिनका उपयोग गाडियों में किया जाता है। इस प्रकार से तेल और पेट्रोल के साथ की गैस के कारण से फिर कुछ धात्विक अवशेष जैसे शीशा, जो कि पट्रोल के साथ उपयोग मे लाया जाता है, जस्ता जिसका उपयोग तेल में होता है और रांगा जिसका कि उपयोग पेट्रोल और तेल दोनों में होता है तथा कैडमियम जिसका उपयोग पहियों में किया जाता है आदि चीजे मिट्टी मे मिल जाती है। इन नशीली चीजों का मिट्टी पर क्या असर होता है इसका अध्ययन करने के लिये सडक के किनारे की मिट्टी में जो कीडे पाये जाते है उन पर से किया जाता है। अमरीका के जीव वैज्ञानिक चार्ल्स गिश ने वाशिंग्टन बाल्टिमोर बागपथ और राजपथ न १ पर सडक के तीन, छ, बारह पचीस और पचास मीटर से दूर से मिट्टी के कीडो का अध्ययन किया। इस अध्ययन से पता लगा कि सडक से तीन मीटर तक की भूमि में कीडो पर यह जहर इतना अधिक प्रभाव कर गया था कि उन कीडों को खानेवाली सभी चिडियाँ मर गयी। बतखों को मारने के लिए शीशे की २२० प प. म मात्रा काफी होती है किन्तु इन कीडों मे यह मात्रा ३३० प प म. तक पायी गयी। ५० मीटर दूर तक की भूमि के कीडों म भी जस्ते की खतरनाक मात्रा पायी गयी। कैडमियम से होनेवाला प्रदूषण अभी यद्यपि खतरे से कुछ दूर है और रांगे के लिये खतरे की क्या सीमा होती है इसका तो अभी तक निर्धारण हो नही हो सका है।

(साइनस टुडे, जनवरी १९७३, पृष्ठ ५-६ से साभार)

शिक्षा में नया प्रयोग :

प्रश्नों के उत्तर देने की नयी प्रणाली :

कक्षा में कुछ पढाने के बाद प्राय. प्रश्न पूछे जाते है और विद्यार्थियो के उत्तर जाने जाते है। मौखिक प्रश्नोत्तर-विधि पूरी कक्षा को मिली जानकारी के बारे में जानने के लिए उपयोगी नही है। दूसरी विधि है छोटे-छोटे लिखित वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्टिव) प्रश्नो के जरिये उत्तर प्राप्त करना। परन्तु इस विधि में प्रमुख दोष यह है कि छात्रो के आदर्श की जानकारी उत्तर-पत्रो की जाँच और परिणाम निकाल लेने के बाद ही हो सकती है। शिक्षण प्रभावशाली हो, इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक जब चाहे उत्तर प्राप्त कर सके। हम इसका निश्चय कैसे कर सकते है कि छात्र सीख रहे हैं ? शिक्षण के परिणामस्वरूप छात्र प्रभावशाली ढग से सीख पाये है या नही, यह किस प्रकार जाना जा सकता है ? हम छात्रो को कैसे बता सकते हैं कि वे वास्तव में सीख रहे हैं ?

इन समस्याओं के समाधान के बारे मे तकनीकी शिक्षण-प्रशिक्षण-सस्थान, अडयार, मद्रास के श्री पञ्चाल शेशाना काफी समय से विचार कर रहे थे। उनके निरतर प्रयास के परिणामस्वरूप एक नयी प्रणाली का विकास हुआ जिसके लिए भारतीय राष्ट्रीय विकास निगम ने उन्हे इस स्वाधीनता दिवस पर एक प्रशस्ति-पत्र दिया है। श्री शेशना ३३ वर्ष के हैं। वे बटामधणला, जिला कुरनूल, आन्ध्र प्रदेश के रहनेवाले हैं। उन्होने इजीनियरी की डिग्री वेकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति से और एम टक्नि० की डिग्री भारतीय औद्योगिकी सस्थान, बम्बई से प्राप्त की है।

इस नयी प्रणाली से शिक्षक यह ज्यादा अच्छी तरह जान सकता है कि उन्हें जो कुछ पढाया गया है, छात्र उस समझ सके है या नही। इस प्रणाली से शिक्षक को पढ़ाते समय अपनी शिक्षण विधियों में सुधार करने में सहायता मिलती है।

शिक्षक किसी विशेष शिक्षण-विधि की प्रभावकारिता का मूल्यांकन कर सकता है और यदि आवश्यक हो तो उसमें सुधार कर सकता है।

इस प्रणाली का विकास तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण-संस्थान, अडयार, मद्रास में किया गया है। इस प्रणाली में शिक्षक के पास एक उपकरण रहता है, जिसे 'कन्सोल' कहते हैं। उत्तर के लिए एक उपकरण प्रत्येक छात्र के पास होता है। इसके अलावा, जोड़ने के लिए तारें होती हैं। इस पूरे यंत्र का मूल्य १२०० रु होता है। इस मशीन को १५ छात्रों की कक्षा में प्रयोग किया जा सकता है। भारत में अपनी किस्म की यह पहली मशीन है। 'कन्सोल' में प्रत्येक छात्र के लिए अलग-अलग रंगों के प्रत्येक पंक्ति में चार लैम्प 'ए', 'बी', 'सी', 'डी', होते हैं। आमतौर पर 'कन्सोल' शिक्षक के सामने मेज पर लगा होता है। छात्र के उपकरण पर संख्या लिखी होती है, जिसे शिक्षक देख सकता है। इस उपकरण में चार बटन 'ए' 'बी' 'सी' 'डी' और एक संकेत लैम्प होता है। सभी छात्रों के उपकरण तारों के जरिये 'कन्सोल' से जुड़े होते हैं।

पढ़ाने के बाद शिक्षक प्रोजेक्टर के जरिये या फिर चाक से बोर्ड पर लिख कर प्रश्न पूछता है। छात्र अधिकतम चार उत्तरों में से एक उत्तर चुन सकता है। अपने चुनाव के अनुसार छात्र 'ए' 'बी' 'सी' 'डी' में से कोई एक बटन दबाता है। ज्यों ही छात्र अपना चुनाव कर लेते हैं, शिक्षक के कन्सोल में सम्बद्ध लैम्प जल उठते हैं। इससे शिक्षक को उत्तर मिल जाते हैं। शिक्षक एकदम जान जाता है कि उसके छात्रों ने बात समझ ली है या नहीं। यदि लैम्प अलग अलग पंक्तियों में जलते हैं तो इससे शिक्षण की असफलता का स्पष्ट संकेत मिलता है और यदि सही पंक्ति में सारे १५ लैम्प जल उठते हैं तो उसका मतलब है कि वह विशिष्ट शिक्षण-नीति सफल रही।

सभी छात्रों के उत्तर प्राप्त हो जाने के बाद शिक्षक सही उत्तर के लिए बड़ा नियंत्रण स्विच दबाता है। जिन छात्रों के उत्तर सही होते हैं उनके उपकरणों के लैम्पों में हरी बत्ती जल उठती है। इससे छात्र को पता लग जाता है कि उसका उत्तर सही है या नहीं।

इस प्रणाली से किसी विशिष्ट शिक्षण-नीति की सफलता या असफलता का तुरन्त पता लग जाता है। जो छात्र समझ नहीं पा रहे होते, इसका पता पढ़ाने के साथ साथ ही लग जाता है और सुधार के लिए प्रभावशाली उपाय किया जा सकता है। निष्क्रिय छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। अन्त में कहा जा सकता है कि इससे छात्र स्वयं अपनी जानकारी का मूल्यांकन भी कर सकेंगे।

(पत्र सूचना कार्यालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त)

वंशीधर श्रीवास्तव

आज की शिक्षा का विकल्प*

[आज की शिक्षा निकम्मी है और इसमें आमूल परिवर्तन होना ही चाहिये, इसमें दो मत नहीं है। इस लेख में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आज की शिक्षा का विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लेख में केवल रूपरेखा (आउट लाईन) मात्र दी गयी है। इसे आधार मानकर यदि अनुकूल पाठ्यक्रम विकसित किये जायें तो आपकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा का विकल्प प्रस्तुत हो सकेगा।

अत आपसे प्रार्थना है कि आप प्रत्येक स्तर के लिये पाठ्यक्रम सुझाएँ। आपके सुझाव यदि १० अगस्त, ७४ तक प्राप्त हो सकें तो सुविधा रहेगी। –सम्पादक]

"मैं जवाहरलाल की हैसियत से कहता हूँ कि मेरे दिमाग में कोई शक नहीं है कि बुनियादी तालीम के रास्ते पर ही हमें चलना है– सात वर्ष की बुनियादी तालीम, इसके पहले पूर्व बुनियादी और इसके बाद भी।"

बुनियादी तालीम का यह रास्ता है किसी समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग के माध्यम द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व का सस्कार और विकास–एक ऐसे व्यक्तित्व का विकास, जो समाजवादी समाज के लिए, जिसमें कोई दूसरे के शोषण पर न पले, आवश्यक है। लोकतंत्रीय समाजवाद का यह तकाजा है कि समाज का प्रत्येक नागरिक समाज की उत्पादक इकाई हो। और यह तभी सम्भव है जब विद्यार्थी शिक्षा काल के प्रारम्भ से ही कोई समाजोपयोगी उत्पादक काम सीखे जैसा बेसिक शिक्षा में है। "सब लडके हाथ से काम करें– सब लडके पढ़ें– आधे वक्त काम करें, आधे वक्त पढें– सब लडको की समान शिक्षा हो, चाहे लडका अमीर का हो या गरीब का, ऐसी बेसिक शिक्षा की मान्यता है। समाजवादी समाज बनाना है तो सामान्य शिक्षा सबके लिए समान होनी चाहिए।"

सामान्य शिक्षा की यह अवधि हाईस्कूल स्तर की मानो २½, ३ वर्ष से लेकर १५–१६ वर्ष तक की होनी चाहिए।

---

* इस लेख में वर्तमान शिक्षा के दोषो की चर्चा नहीं है। केवल विकल्प प्रस्तुत किया गया है।

सामान्य शिक्षा की इस अवधि में शिक्षा की कोई दूसरी समान्तर प्रणाली नहीं चलेगी, जैसी आज नर्सरी शिक्षा, कान्वेन्ट शिक्षा अथवा पब्लिक स्कूल शिक्षा के रूप में देश में चल रही है, और जहाँ पाठ्यक्रम भिन्न है, शिक्षा का माध्यम भिन्न है, और शुल्क का ढाँचा भिन्न है। कोठारी कमीशन के इस सुझाव को दृढ़तापूर्वक तत्काल मान्य करना चाहिए कि देश में लोक शिक्षा की एक समान प्रणाली चलनी चाहिए। इसके लिए यदि संविधान में सुधार करना हो तो करना चाहिए, आवश्यक हो तो आन्दोलन भी चलाना चाहिए।

मेरी राय है कि लोक-शिक्षा की यह सामान्य प्रणाली 'बेसिक शिक्षा" ही हो सकती है जिसका प्रवर्तन गांधीजी ने शोषण-मुक्त, वर्ग-विहीन समाज की रचना के लिए किया था। प्रारम्भिक शिक्षा से उच्च स्तर तक के लिए बेसिक शिक्षा ही आज की वर्तमान शिक्षा का विकल्प है। आज की नर्सरी शिक्षा का विकल्प है पूर्व बुनियादी, आज की प्रारम्भिक शिक्षा का विकल्प है बेसिक शिक्षा, आज की माध्यमिक शिक्षा का विकल्प है पोस्ट बेसिक (उत्तर बुनियादी) और आज की उच्च शिक्षा का विकल्प होना चाहिए उत्तर बुनियादी का एक्सटेन्शन (प्रसार)।

ऐसा इसलिए कि बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त अर्थात (१) समाजोपयोगी उत्पादक कार्य कलाप, (२) पाठ्य विषयों का उत्पादक कार्यकलापों और प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण से सह-सम्बन्ध और (३) विद्यालय का स्थानीय समुदाय से निकट का सम्पर्क, शिक्षा के ऐसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जो समाजवादी शिक्षा-नीति के शाश्वत सत्य हैं और जिनसे राष्ट्र की सभी स्तरों की शिक्षा-प्रणाली का मार्गदर्शन होना चाहिए।×

परन्तु बेसिक शिक्षा का कार्यान्वयन करते समय नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना होगा –

(१) पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा (पूर्व बुनियादी स्तर) :

हमारे संविधान में शिक्षा सरकार का उत्तरदायित्व नहीं है। परन्तु इस स्तर की शिक्षा (२½+ ५ वर्ष तक) का अत्यन्त महत्त्व है। अतः जहाँ भी सम्भव हो बेसिक शिक्षा की पूर्व तैयारी के रूप में दो तीन घंटे की बालवाड़ियाँ चलाई जायें। इन बालवाड़ियों में शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से बच्चों की मातृभाषा हो और पाठ्यक्रम स्थानीय समुदाय के जीवन से सम्बन्धित हो। गुजरात के नई तालीम संघ ने बालवाड़ी की एक बहुत ही अच्छी प्रणाली का विकास किया है जो अपनी संस्कृति और बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों के अनुरूप है। इसका

× कोठारी कमीशन, अध्याय ८, अनुच्छेद १०५ से १०९ तक।

उपयोग करना चाहिए। पूर्व प्रारम्भिक स्तर पर आज देश में जो नर्सरी या मान्टेसरी स्कूल चल रहे हैं वे वास्तव में देश में चलने वाले कान्वेन्ट और पब्लिक स्कूलो के फीडर मात्र है। इनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, और इनके पाठ्यक्रम भी प्राय विदेशी हैं, जिससे ये स्कूल प्रारम्भ से ही अलगाव की प्रवृत्ति को जन्म देते हैं। इनका बहिष्कार होना चाहिए और गुजरात के ढग की बालवाडियाँ चलनी चाहिए। यह लोकतन्त्रीय समाजवाद के हित में मे होगा।

२ प्रारम्भिक शिक्षा (बेसिक शिक्षा)

(क) बेसिक शिक्षा बहुमुखी हो

व० केवल खेती-बागवानी, कताई, बुनाई, गत्ते का काम, सिलाई-बुनाई आदि कुछ परम्परागत दस्तकारियो तक ही सीमित न रहे। इन उद्योगो के अतिरिक्त सडक और बाँध बनाने के काम, गृह विज्ञान, प्राथमिक वैद्युती, सामान्य रेडियो यान्त्रिका, आदि-आदि जो आज सामान्य जीवन के अग होते जा रहे है, बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल किये जाएँ जिससे शिक्षा का यथार्थ जीवन से सम्बन्ध बना रहे।

(ख) शिक्षा विद्यालय की चहारदीवारी से बाहर निकले

बेसिक शिक्षा में उत्पादक उद्योग शिक्षा का माध्यम है। अत अगर समाज के सभी विद्यार्थियो को किसी समाजोपयोगी उत्पादक हुनर की शिक्षा देनी है तो बेसिक स्कूलो को पर्याप्त साधन (कच्चा माल और उपस्कर) देने होगे जो किसी भी सरकार के लिए सम्भव नहीं है। अत यह अनिवार्य हो जाता है कि उद्योग शिक्षण के लिए हम छात्रो को समुदाय के खेतों–खलिहानों, कृषि-फार्मों, दूकानो-कारखानो पर ले जायँ। दुनिया में शिक्षा का नया विचार अब यह नही मानता, कि शिक्षा विद्यालय में बँधकर आज के युग के सार्वजनिक शिक्षण के लक्ष्य को पूरा कर सकती है। इसीलिए यूनस्को का अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग खुले विश्वविद्यालयो की सस्तुति करता है। और अविद्यालयीकरण आज की शैक्षिक विचार धारा का अग हो रहा है।

अत अगर बेसिक शिक्षा को सार्वजनिक बनाना है तो शिक्षा को सस्था की चहारदीवारी से बाहर निकाल कर उसका नियोजन उन स्थानो पर करना होगा जो समुदाय के उत्पादक केन्द्र हैं अथवा जहाँ समुदाय के लिए विकास का काम हो रहा है।

(ग) कर्म और ज्ञान का अनुबंध हो:

यदि सामान्य विषयो के शिक्षण का पूरा शैक्षिक मूल्य प्राप्त करना है तो बौद्धिक शिक्षा और हाथ के काम की शिक्षा का समन्वय होना चाहिए और अध्ययन

और काम की निरन्तर अनुबंधित करने की चेष्टा होनी चाहिए। यह संस्तुति यूनेस्को के शिक्षा आयोग की है, मात्र गांधीजी की नहीं।

(घ) शिक्षा छात्र के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास करे :

सामुदायिक जीवन की सामान्य प्रवृत्तियां जैसे खेल-कूद, नाच-गाने, मेले-ठेले, पर्व-त्यौहार आदि बेसिक शिक्षा के अभिन्न अंग हों जिससे छात्र में इस भावना का विकास हो कि वह समाज का अंग है और उसका समाज के प्रति रचनात्मक उत्तरदायित्व है। **पाठ्यक्रम के इस अंग की प्रयोगशाला भी समाज होगा। संस्था की चहारदीवारी में बंद विद्यालय नहीं।**

(ङ) पाठ्य-क्रम अपने में पूर्ण इकाई हो

इस स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश मात्र की तैयारी न होकर जीवन की तैयारी हो। इस दृष्टि से यह पाठ्यक्रम अपने में पूर्ण हो और इससे उन छात्रों का जो तात्कालिक परिस्थितियों के कारण आगे नहीं बढ सकते हैं इतना बौद्धिक विकास भी हो जाय कि अवसर मिलने पर वे उच्च स्तर की माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने योग्य बन जायें।

३– शिक्षा का माध्यमिक स्तर (उत्तर बुनियादी शिक्षा)

शिक्षा का माध्यमिक स्तर सही मानें में पोस्ट-बेसिक (उत्तर बुनियादी) शिक्षा होनी चाहिए। अर्थात माध्यमिक शिक्षा को नीचे की बुनियादी शिक्षा का प्रसार (एक्सटेन्शन) होना चाहिए। सही माने में माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण, जो आज का तकाजा है, तभी होगा। आज की माध्यमिक स्तर की शिक्षा में एक औद्योगिक अथवा व्यावसायिक वर्ग जोडने मात्र से और उस वर्ग की शिक्षा को सबके लिए अनिवार्य बना देने से भी माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण नहीं हो जायेगा। आज का माध्यमिक शिक्षा बहुवर्गीय है (मल्टीलेटरल) है जिसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक, कृषि, टेकनिकल, वाणिज्य आदि वर्ग हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन वर्गों के भेद को मिटाकर सामान्य शिक्षा की संकल्पना को ही इतना व्यापक बना दिया जाय कि उसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक, टेकनिकल, व्यावसायिक आदि शिक्षा भी आ जाय। पोस्ट बेसिक शिक्षा इस प्रकार की शिक्षा है। अतः माध्यमिक स्तर पर उसको अपनाना चाहिए। **किन्तु कार्यान्वयन के समय नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए—**

(क) विद्यालय का प्रांगण छोटा पडेगा :

बेसिक शिक्षा की भांति जब हम उत्तर बुनियादी शिक्षा को सर्वसाधारण को उपलब्ध कराने की कोशिश करेंगे तो विद्यालय का प्रांगण बहुत छोटा साबित होगा और हमको समुदाय में स्थित कृषि फार्मों और औद्योगिक कारखानों का

व्यापक नैतिक उपयोग करना होगा। चूंकि किसी व्यवसाय की ट्रेनिंग इस स्तर की शिक्षा का अनिवार्य अंग होगी अत व्यावसायिक और टेकनिकल ट्रेनिंग का उत्तरदायित्व केवल विद्यालयी प्रणाली का नहीं होना चाहिए। विद्यालय के शिक्षकों, उद्योगों के मालिकों या प्रबन्धकों, श्रमिकों और सरकार के सहयोग के बिना और उत्पादन तथा वितरण से संबंधित राज्य के विभिन्न विभागों में समन्वय (कोआर्डिनेशन) स्थापित किये बिना, बुनियादी शिक्षा का ठीक कार्यान्वयन यानी माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण नहीं हो सकता।

(ख) उत्तर बुनियादी शिक्षा के बाद एक वर्ष तक फील्ड वर्क:

उत्तर बुनियादी शिक्षा के बाद प्रत्येक विद्यार्थी को कम से कम एक वर्ष के लिए अपनी रुचि और व्यवसाय के अनुसार समुदाय के उत्पादन केन्द्रों में काम करना चाहिए। इस काम के लिए सरकार को छात्रवृत्ति देनी चाहिए। चूंकि ये छात्र किसी न किसी समाजोपयोगी उत्पादक धन्धे में समुदाय की सहायता कर रहे होंगे। अत यह खर्च राष्ट्र के लिए महँगा नहीं पडेगा। इस काम का दोहरा लाभ होगा— (१) समुदाय में काम करने से सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होगा, जो समाजवादी समाज का प्रमुख लक्ष्य है और (२) श्रम-प्रतिष्ठा की भावना मजबूत होगी।

(ग) माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा:

पोस्ट बेसिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा होगी।

(घ) शिक्षा विभाग और योजना विभाग का संबंध

पोस्ट बेसिक स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण तभी सफल होगा जब शिक्षा विभाग और प्लानिंग विभाग का घनिष्ठ समन्वय (कोआर्डिनेशन) हो। ऐसा होगा तभी समुदाय की उत्पादक प्रक्रिया में व्यवसाय सीखे हुए विद्यार्थियों को खपाया जा सकेगा और शिक्षित बेरोजगारी कम होगी।

(ङ) माध्यमिक शिक्षा क्रियाशील जीवन की तैयारी:

इस स्तर की शिक्षा का लक्ष्य विश्वविद्यालयों में प्रवेश उतना नहीं होना चाहिए जितना कि क्रियाशील जीवन की तैयारी। फिर भी पाठ्यक्रम इस तरह का हो जिससे छात्रों में ऐसी क्षमता का विकास हो कि वे अवसर मिलने पर उच्च शिक्षा अथवा उच्चतर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हो सकें।

(४) उच्च शिक्षा (शिक्षा का विश्वविद्यालयी स्तर)

उच्च शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति और समुदाय की अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो। इसलिए उच्च शिक्षा के स्तर पर भी व्यावसायिक और

तकनीकी शिक्षा को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि आज के परम्परागत डिग्री कालेजों के स्थान पर, जो किसी हुनर की शिक्षा न देने के कारण बेरोजगारी के कारखाने बन रहे हैं छोटे छोटे व्यवसायिक कालेजों और तकनीकी संस्थानों की स्थापना की जाय और इस प्रकार जीवन-केन्द्रित व्यवसाय-मूलक उत्तर बुनियादी शिक्षा को आगे बढ़ाया जाय। भारत गाँवों में बसा है। अतः इन कालेजों और संस्थानों के अध्ययन का क्षेत्र इतना व्यापक हो जितना व्यापक उन्नत ग्राम-जीवन और औद्योगिक विकासशील भारत की आवश्यकताएँ हों। देश में उन्नत कृषि-विधियों और आधुनिक लघुउद्योगों के संचालन के लिए, सिंचाई योजनाओं के प्रबंध के लिए नलकूपों के चलाने के लिए, बिजली की मरम्मत के लिए, यातायात क्रय विक्रय प्रशासन आदि विविध सेवा के क्रियाकलापों के लिए और इनके अतिरिक्त राष्ट्र के विकास के लिए जो अनेक व्यवसाय चलेंगे, ये कालेज उन व्यवसायों की प्रायोगिक शिक्षा के केन्द्र होंगे और इनमें जो शिक्षा दी जायगी उसका जीवन की और बाजार की आवश्यकताओं से मेल होगा। शिक्षा के क्षेत्र में ये कालेज बुनियादी और उत्तर बुनियादी स्तर की संस्थाओं के लिए शिक्षक और व्यवस्थापक तैयार करेंगे और उद्योगों के क्षेत्र में ये उत्पादन और वितरण की पद्धतियों में सुधार के लिए अध्ययन और अन्वेषण करेंगे।

विश्वविद्यालय स्तर पर बेसिक शिक्षा का रूप क्या हो, अभ्यास क्रम क्या हो, इसका भरापूरा चित्र डाक्टर आर्थर ई० मार्गन (१९४८) ने जो राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग के एक सदस्य थे, 'हायर एजुकेशन इन रिलेशन टू रूरल इंडिया," नाम की पुस्तिका में, जिसे सर्वग्राम से प्रकाशित किया गया है, दिया है। इस पुस्तिका में दिये गये सुझावों को आधार मानकर उच्च शिक्षा का नया ढाँचा तैयार करना चाहिए। वर्तमान ढाँ०र विश्वविद्यालयों में सुधार से काम नहीं चलेगा। आज जब देश का व्यावसायिक और आर्थिक ढाँचा बदल रहा है तो उच्च शिक्षा को बदलना होगा, जिससे उच्च शिक्षा युग की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके—उन्हीं विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं जो किसी कारखाने, कार्यालय या आधुनिक फार्मों पर काम करेंगे वरन् उनकी भी जो किसी कारखाने या फार्म पर काम नहीं करेंगे परन्तु जिन्हें आज के औद्योगिक समाज में पग-पग पर टेक्निकल ज्ञान की आवश्यकता पड़ेगी।

इस परिवर्तन की रूपरेखा कुछ इस प्रकार होनी चाहिए—

(क) उच्च शिक्षा की इन संस्थाओं में प्रवेश पाने की कसौटी अनौपचारिक और उदार हो और यह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनकी क्षमता, अभिरुचि और ज्ञान पर निर्भर करे और कालेज में प्राप्त

डिग्रियो और डिप्लोमाओ का परिणाम न हो। उच्च शिक्षा की सस्थाओं में प्रवेश के लिए यह सिफारिश यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की भी है।

(ख) शिक्षा की इन सस्थाओ में ऐसे साधनो का आयोजन हो जो व्यक्ति को स्वय सीखने में सहायता दे, जैसे नाना प्रकार की प्रयोगशालाएँ (भाषा, समाज विज्ञान, सामान्य विज्ञान और तकनीकी आदि की), पुस्तकालय, सूचना केन्द्र, शब्द दृश्य उपकरण, प्रोग्राम्ड शिक्षण के साधन आदि।

(ग) समुदाय को उच्च शिक्षा के इन सस्थानो की प्रयोगशाला होनी चाहिए। सस्था के भीतर प्राप्त ज्ञान, तकनीकी ज्ञान को तब तक पर्याप्त और लाभप्रद नही माना जा सकता जब तक कि समुदाय में उनका ऐप्लिकेशन न हो जाय। जो लोग सस्था के बाहर उत्पादन का और समाज के विकास को क्रियाओं में लगे हैं उनके साथ काम किये बिना उत्पादन और विकास की प्रक्रियाओ के रहस्यो को समझा नही जा सकता। अत. इन सस्थाओ का टाइमटेबुल इस प्रकार बनाया जाय कि विद्यार्थियो को समुदाय के उत्पादन और विकास-केन्द्रो पर काम और प्रयोग करने का मौका मिले। इसके बिना पढ़ाई अधूरी मानी जाय।

(घ) यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उच्च शिक्षा भी विश्व-विद्यालय की चहारदीवारी में बध कर सार्वजनिक शिक्षा का लक्ष्य पूरा नही कर सकती। अत यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने जहाँ एक ओर खुले विश्व-विद्यालयो की सिफारिश की है वही दूसरी ओर सस्थागत शिक्षा को अपर्याप्त मान कर यह भी सस्तुति की है कि उच्च शिक्षा को कालेज की चहारदीवारी से निकाल कर उसका नियोजन उन स्थानो पर किया जाय जहाँ समुदाय के उत्पादन केन्द्र है अथवा जहाँ समुदाय के लिए विकास के काम हो रहे हो। इतना ही नही, जहाँ विकास के लिए उपयुक्त विधान मौजूद हो वहाँ विकास और उत्पादन के लिए शिक्षा-सस्थाएँ पहल करें। इससे उच्च शिक्षा लोक-जीवन के साथ एक हो सकेगी।

(ङ) विनोबा कहते हैं कि नौकरियो की दृष्टि से कालेज की डिग्रियो को अनावश्यक करार दे दिया जाय। नौकरियो के लिए नौकरी देनेवाले विभाग अपनी-अपनी परीक्षाएँ ले लें। डिग्री का नौकरी से सम्बन्ध विच्छेद हो। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग सिफारिश करता है—'विद्यार्थी पारम्परिक अनिवार्य शिक्षा को पूर्ण किये बिना ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र हो और उन्हें शिक्षा की एक शाखा से दूसरी शाखा में जाने की पूरी स्वतन्त्रता हो'। अत हमारा सुझाव है कि डिग्रियों और प्रमाण पत्रों को किसी अध्ययन के कोर्सों को पूरा करने के लिए अथवा नौकरी पाने के लिए आवश्यक न माना जाय। यह शिक्षा का अद्यतन विचार है।

(च) ऐसा मानना ठीक नहीं होगा कि उच्च शिक्षा के इन नये संस्थानों में तुलसी-सूर या शेक्सपीयर-मिल्टन नहो पढाये जायेंगे। अथवा सूक्ष्म गणित और विज्ञान के सिद्धान्तो का अध्ययन नही होगा अथवा शकराचार्य और कान्ट के दर्शन नहो पढ़ाये जायेंगे। ये मानव सस्कृति की महान उपलब्धियाँ हैं। इनसे वचित होकर मानव सभ्यता पगु और सकीर्ण हो जायेगी। अत. इन सस्थानों में छात्र अपनी श्रेष्ठतम मानव विरासत का पूरा अध्ययन और मनन करेंगे।

(५) शैक्षिक प्रशासन

(क) शिक्षा सरकार के हाथ में न रहे

शैक्षिक प्रशासन स्वायत्त शैक्षिक निगमों (अनानमस एजुकेशन बोर्ड) के हाथ में हो। शिक्षा सस्थाओं पर सरकार का नियत्रण नही हो। धन सरकार दे परन्तु पाठ्यक्रम क्या हो, परीक्षा पद्धति क्या हो, इनका सचालन कैसे हो, इस विषय में सरकार दखल न दे। विगत कुछ वर्षों से निजी प्रबन्ध प्रणाली के भ्रष्टाचारो से ऊब कर स्वय शिक्षा जगत से ही शिक्षा सरकारीकरण की स्वायत्तता छीनने के साथ समाज की स्थाई दासता का कारण होगी। शिक्षा सरकार के हाथ में गई तो वह लोक-मानस को अपने अनुकूल एक ढाँचे में ढालने की कोशिश करेगी जिसका परिणाम लोकतत्र के लिए घातक होगा।

(ख) शैक्षिक प्रशासन का दूसरा निर्देशक सिद्धान्त होगा—विकेन्द्रीकरण। स्कूल स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक शैक्षिक नियमो की प्रशासन नीतियाँ इसी सिद्धान्त से निर्देशित होंगी।

(६) वयस्क शिक्षण

शिक्षित वयस्क लोकतत्र की रीढ़ हैं। अत लोकतत्र को सफल बनाने के लिए वयस्क शिक्षण को प्राथमिकता देनी चाहिए। साक्षरता वयस्क शिक्षण का एक अनिवार्य किन्तु बहुत छोटा अश है। अतः वयस्क शिक्षण का लक्ष्य व्यवहारिक साक्षरता (फ यनल लिट्रेसी) हो होनी चाहिए। गाधीजी ने वयस्क शिक्षण के लिए भी बेसिक शिक्षा को हितकर बताया था। उनका कहना था कि माता-पिता के व्यक्तित्व का सस्कार जब बेसिक शिक्षा से होगा तभी उनकी सन्तान भी बेसिक शिक्षा का निष्ठावान छात्र बन सकेगी।

(ख) प्रतिवर्ष ग्रीष्म और शरद अवकाश में महीने डेढ़ महीने के लिए कालेज के विद्यार्थी गाँवो में वयस्क शिक्षण का काम करें। यह कोरी साक्षरता न होकर व्यावहारिक साक्षरता हो। बेसिक शिक्षा के छात्रों के लिए यह काम आसान होगा।

(ग) जहाँ भी बेसिक स्कूल हो वहाँ शाम को एक डेढ घटे के लिए वयस्क शिक्षा का प्रबन्ध हो। इस काम को बेसिक अथवा उत्तर बुनियादी स्कूल के अध्यपकों की सेवा का एक अग बना दिया जाय। और उसके लिए उन्हें हानरेरियम दिया जाय।

(७) परीक्षा-पद्धति

आज की शिक्षा परीक्षा पूरक (एक्सामिनेशन ओरियेन्टेड) है। शिक्षा की एक शाखा से दूसरी शाखा में जाने के लिए अथवा नौकरियों के लिए अगर डिग्री और प्रमाण-पत्र अनावश्यक हो जाय तो परीक्षा का महत्व घट जायेगा और आज की शिक्षा में जो भ्रष्टाचार है, वह बहुत अश तक समाप्त हो जायेगा। वैसे बेसिक शिक्षा में छात्र के व्यक्तित्व का दिन प्रतिदिन मूल्याकन होना चाहिए, नही तो उसके साथ न्याय नही होगा। आन्तरिक मूल्याकन अधिक-से-अधिक और बाह्य परीक्षा कम से-कम और वह भी आज के ढग की नहीं एकदम अद्यतन, यह आज की परीक्षा पद्धति का विकल्प होगा। प्रमाण पत्र केवल वर्णनात्मक होगा, उसमें पास फेल या डिवीजन नहीं लिखा जायेगा।

एस. वी. गोविन्दन्

शिक्षक गुलाम न बनें :

भारतीय शिक्षा-नीति पर सम्यक् विचार करने के लिए स्वतंत्रता से पहले की भारतीय शिक्षा के इतिहास पर विचार करना आवश्यक है। हमारी स्वराज्य की लडाई, केवल गाधीजी के एक अपवाद को छोडकर, बाकी सब नेताओ ने अंग्रेजियत की मानसिक भूमिका पर से लडी। वे सभी अंग्रेजी पढे-लिखे और उनमे से अनेक तो विदेशो में शिक्षित लोग थे। इसलिये उनके मन पर विदेशी और खासकर अंग्रेजी तौर-तरीको का भारी असर था। अत स्वभावत ही वे देश के हित में जो कुछ भी सोचते थे वह विदेशी ढग पर होता था और इस कारण से ही गाधी जी की बात उनकी समझ में कभी नही आयी। यह अलग बात थी कि उनमें से कोई भी इतने प्रतिभावान और साहसी नही थे जो कि गाधीजी के नेतृत्व को भी इनकार कर सकते। इसलिये वह तो उन्हे लाचारी से करना पड़ा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सिवाय तिलक और गाधीजी के अन्य किसी स्वराज्य के नेता ने शिक्षण के सवाल पर स्वराज्य की भूमिका स विचार लगभग नहीं किया। इन दो नेताओ को छोडकर और बहुत कम को यह सूझा कि स्वराज्य-प्राप्ति एक गुणात्मक कार्यक्रम है और बिना कोई आमूल गुणात्मक परिवर्तन के, जो कि केवल किसी सार्थक शिक्षा-नीति से ही आ सकता है, स्वराज्य भी किसी काम का नही होगा। गाधीजी के द्वारा बुनियादी शिक्षा का विचार इस प्रकार के आमूल गुणात्मक परिवर्तन के लिए राष्ट्रीय परिस्थिति-निर्माण का पहला और व्यापक प्रयास था।

नयी तालीम या बुनियादी शिक्षा के विचार को राष्ट्र ने मान्य तो किया पर शिक्षा के ढांचे में कोई परिवर्तन नही आया। इसका सबसे बडा कारण तो यह रहा कि जैसे पहले कहा गया है, गाधीजी के अलावा और कोई भी नेता विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण का नही था। सब ही विदेशी तौर-तरीको के कायल थे। इसलिये वे मानते थे कि भारत को भी हम उन तौर-तरीको पर चलाकर अपने राष्ट्रीय उद्देश्य हासिल कर सकते हैं। यह असम्भव और कभी न हो सकने वाला काम था। पर फिर भी वे इस महज विश्वास पर कायम रहे। इसलिये बुनियादी शिक्षा के लिये मन में आदर भाव होते हुए भी उन्हे मौजूदा शिक्षा-पद्धति में कोई खास परिवर्तन करने की आवश्यकता मालूम नही हुई। बस वे अधिक से अधिक विद्यालयो की सख्या बढाने, उनमें चटाई के स्थान पर मेज-कुर्सियाँ लगाने या कच्चे मकान के स्थान पर पक्के सीमेंट के आलीशान भवन उपलब्ध करने को ही शिक्षा का सुधार मानते रहे हैं और आज भी यही दृष्टिकोण व्याप्त है। किन्तु इस दृष्टिकोण को यह नही मालूम है कि ये बातें शिक्षा नही हैं, शिक्षा के लिये महज कुछ बाहरी उपकरण मात्र है। नतीजा यह है कि स्वराज्य के २६ साल बाद भी आज भारत यह नही तय कर पाया है कि उसे किस प्रकार का समाज चाहिये और वह समाज बनेगा कैसे? बस सब कुछ किसी तरह से चल रहा है, कोई चला नही रहा है।

अब राष्ट्र के प्रौढ मतदाता ही इस राष्ट्र के निर्माता है। तो शिक्षा के सवाल पर भी उनको विचार करना होगा। जन साधारण को इस सवाल पर शिक्षित किये बिना अब कोई चारा नही। हमारे सविधान ने हमें १४ साल तक के बालक-बालिकाओ के लिये अनिवार्य शिक्षा की तुरन्त ही व्यवस्था करने का आदेश भी दिया था, पर उस पर अब कभी भी अमल होना सम्भव नही रह गया है। क्योंकि सरकारो ने परिस्थिति इतनी निकम्मी बना डाली है और इसमें भी सबसे बड़ा दोष तो उन मत- दाताओ का ही है जो यह मानकर चुप रह जाते है कि बस मतदान करने के बाद उनका काम समाप्त हो जाता है। देश की अव्यवस्था के प्रति यह मरणान्तक उदासीनता अब यहाँ तक आ गयी है कि यदि हमारा मत हम न भी दें और कोई भी दे देता है तो भी क्या हर्ज है। तब इस तरह का देश क्या कभी आज के समय में जीवित रह सकता है? यह सवाल विचार करने योग्य है।

असंतोष या चिह्न :

अब पिछले कुछ समय से कुछ लोग खासकर शिक्षक और छात्र कभी-कभी शिक्षा में परिवर्तन की बात करने लगे हैं। किन्तु उनके इस नारे को जरा गहराई से विचारें तो पता लगेगा कि वे असल मे जानते भी नही है? वे क्या माँग कर रहे है? छात्रों को पूछो तो वे कहते है कि उन्हे रोजगार चाहिये। शिक्षकों को अधिक और अच्छा वेतन चाहिये। यदि ये दो बातें इन दोनों को मिल जायें तो फिर ये लोग सतुष्ट

हैं। तो किसी को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि शिक्षा में परिवर्तन की यह मांग वास्तव में किसी गुणात्मक परिवर्तन के लिये है। यह तो महज स्थित समाज में अपने लिये स्थान न मिलने से पैदा हुई चिढ़न मात्र है। अन्यथा आज के शिक्षक या छात्र को, कुछ अपवाद हो सकते हैं, वर्तमान से कोई असन्तोष नहीं है। तो यह समझना चाहिये कि चिढ़न से कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। उनके लिये वर्तमान से पूर्ण असन्तोष होना चाहिये। यह असन्तोष पैदा करना ही आज असल में शिक्षकों का पहला फर्ज होना चाहिये। आमूल गुणात्मक परिवर्तन को ही क्रान्ति कहते हैं, महज किसी भी प्रकार की उथल-पुथल को नहीं। तो शिक्षा में क्रान्ति का सवाल आज भी अविचारित पड़ा है। क्या हमारे शिक्षक इस सवाल को पूरा कर सकते हैं?

शिक्षक मार्गदर्शक है, सरकार का गुलाम नहीं

किन्तु शिक्षक इस सवाल पर तभी सही और प्रभावकारी ढंग से विचार कर सकते हैं जब वे सरकार के ऊपर हों, उनके गुलाम नहीं। अध्यापक आज तो नौकर की श्रेणी में आ गये हैं और वे अपनी इस स्थिति से सन्तुष्ट भी मालूम होते हैं। किन्तु वे सरकार के नौकर के बजाय यदि सरकार और समाज दोनों के ही आचार्य होते तो *आज समाज की यह हालत नहीं होती। आचार्य न तो सत्ता चाहते थे न वे पैसे पर* ही बिकते थे। इसलिये समाज पर उनका असर होता था। पर हमने बिहार में देखा कि वहाँ तो हालत और भी विचित्र है। एक तरफ स्कूलें बिना दीवार की, बिना चटाई या फर्श की हैं तो वे बिना अध्यापक की भी हैं। सरकारी दफ्तर के हिसाब से उस स्कूल में दो या अधिक अध्यापक हो सकते हैं पर वे कभी स्कूल आते ही नहीं। कभी छुट्टी छमाही आयें भी तो देर से आते हैं और तुरन्त ही चले जाते हैं। शिक्षण विभाग भी यह सब जानता है। आवागमन की अत्यन्त ही खराब हालत होने से स्कूलों का चार साल में कभी एक बार निरीक्षण हो गया तो बहुत है। फिर भी अध्यापकों में *वहीं तीव्र असन्तोष है। खासकर हाईस्कूल में है जहाँ पर सरकारी और गैर-सरकारी* अध्यापकों के वेतन आदि में बहुत भारी अन्तर है। यद्यपि अन्य अध्यापकों और समाज के अन्य अल्प वेतनवाले वर्ग से इनकी भी तुलना करें तो उनकी स्थिति बहुत अच्छी मानी जा सकती है। पर वे तो हमेशा ही ऊपर देखते हैं इसलिये असन्तुष्ट हैं। अपने से नीचे देखने की उनमें न वृत्ति है, न फुरसत। इसलिये समाज में भी उनका कोई आदर नहीं। अगर गाँव की हालत को ध्यान में रखकर वे गाँव की हालत को सुधारने का कुछ भी प्रयास करें तो वे समाज में आदर पा सकते हैं पर इस तरफ उनका आज कोई ध्यान नहीं है।

शिक्षक रैफरी बनें

शिक्षकों की इस वृत्ति से समाज का नुकसान तो हो ही रहा है पर साथ ही स्वयं उनका भी नुकसान हो रहा है। उनमें शिष्टता का अभाव पनपता जा रहा है।

विद्या की गरिमा का तो अब सवाल ही नही रह गया है। उसका तो शिक्षको से अब कोई सम्बन्ध ही नही रह गया है, यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु शिक्षको की इस अशिष्टता से छात्र भी बिगडते जा रह हैं। पर शिक्षको को तो छात्रो के लिये रैफरी के जैसे रहना चाहिये। रैफरी यानी जो स्वय नही खेलता मर खेल मे कही गलती हुई तो उसे तुरन्त ही रोक देता है। उसके आचरण को देखकर ही तब फिर खेल दुरुस्त किया जाता है। उसी तरह से शिक्षकों के आचरण से ही छात्रो को शिक्षा मिलनी चाहिये।

विद्यालयो में अक्सर ही लिखा मिलता है, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यानी वह विद्यालय अज्ञान रूपी अन्धकार मिटाने वाला सूर्य है। तो आचार्य को तो सूर्य के समान होना है। यदि वैसे आचार्य न मिले तो क्या करना? तो गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक कविता गायी है जिसमे एक मामूली-सा चिराग भी सूर्य को उत्तर देता है कि सूर्य का काम तो सूर्य ही कर सकता है पर फिर इतना तो मै भी कर सकता हूँ कि जब तक वह फिर से न आवे तब तक मै इस कोने पर जिसमें मैं जल रहा हूँ अँधेरा न होने दूंगा। यह कितना बडा आश्वासन है। यदि हमारे शिक्षक गण भी इस तरह के असख्य जुगनू ही सही, बन सके तो समाज को कितना प्रकाश मिलेगा। हमारी तो कामना है कि हमारे आचार्य हमारे लिये सूर्य का काम करे पर आज की हालत में वे जुगनू भी बन सकें तो समाज उनका इसके लिये भी आभारी रहेगा।

विनोबा

परस्पर विश्वास से ही समस्याएँ हल होंगी

[दिनांक ९ से १२ जुलाई '७४ तक महिला आश्रम, वर्धा में सर्व सेवा संघ का छ माही अधिवेशन चला। अधिवेशन की दो बैठकें पूज्य विनोबा के सान्निध्य में पवनार आश्रम में हुई। अधिवेशन में देश भर के करीब ६०० सौ लोकसेवक तथा प्रतिनिधि भाग लिये। चर्चा का मुख्य विषय था–बिहार में आदरणीय जयप्रकाशजी द्वारा चलाये जा रहे जन-आन्दोलन। अधिवेशन में आये साथियो को सम्बोधित करते हुए पूज्य विनोबा ने १० जुलाई ७४ को तीसरे पहर जो विचार व्यक्त किये उसका संक्षिप्तांश 'नयी तालीम' के पाठकों की जानकारी हेतु प्रस्तुत है।

—सम्पादक]

यह महावीर स्वामी का २५ सौवी शताब्दी है। उनके वचनो की तरफ मेरा ध्यान ज्यादा रहता है। २५ सौ साल के बाद भी वह पुरुष बिलकुल खडा है। भारत को उत्तम मार्गदर्शन देनेवालो में दो-चार जो नाम लिये जायेंगे, उनमें महावीर का नाम आयेगा। तो मै इन लोगो से प्रार्थना की, जैन लोगो से कि भाई इसमें हिंदू धर्म का सवमान्य सार मिलता है। कुरान का सार मैंने निकाल लिया, कुरानसार नाम से। मैं नही मानता कि उससे बेहतर कुरानसार निकल सकता है। उस प्रकार के सार जैनो का हो, जैसे बौद्धो ने अपना सार निकाल करके रख दिया—धम्मपदम्। वैसे जैन धर्म का सवमान्य सार निकले ४ सौ, ५ सौ, ६ सौ श्लोको में। तो उसके लिये विद्वानो की समिति बनायी। उस पर चर्चा काफी होगी। आखिर में सभी की राय से जो ग्रथ होगा, वह जैनो का सर्वमान्य ग्रथ होगा। ऐसा काम आज तक जैनो ने किया नही। जैनो के कई ग्रथ हैं। आपको ख्याल नही होगा, संस्कृत भाषा में इनके १० हजार से कम ग्रंथ नही हैं। दूसरी भाषाओ में जो है, सो तो हैं ही। कुछ पाली भाषा में भी है। एक जमाने में जैन ही गुरू थे और हिन्दू सारे विद्यार्थी थे। उत्तम से उत्तम ज्ञानी कौन थे, तो जैन। और जैनो की खूबी यह है कि आपको प्रथम मान्यता देना। शिष्यो को प्रथम स्थान दिया। हिंदुओ को सिखाने के लिये जैन गुरु शुरू करते थे—श्रीगणेशायनमः। क्यो प्रथम श्रीगणेशायनम ? क्योंकि प्रथम हिंदू हैं तो उनको प्रथम स्थान और फिर अपना

पीछे रख दिया—ओम नम सिद्धम्। यह जैनो का है ओम् नम सिद्धम्। तो यह जो आज चलता है सारे शिक्षण में ओ,नणेशायनम अ, आ, इ, ई, क, का, कि, की इत्यादि। और वह जो सारा है वह जैनो का गुरुत्व हिंदुस्तान में था, उसके कारण है। अगर जैनो की यह बात मान्य होगी तो बहुत बडी सेवा भारत की होगी। सब लोगो को थोडे से शब्दो में जैनो की शिक्षा परिपूर्ण पढ़ने को मिलेगी, यही चीज मैं कर रहा हूँ, करवा रहा हूँ।

मै कहने जा रहा था कि हमारे और आपके जो कुछ काम चलते है, लोग भूल जायेंगे। परन्तु हमने सारे भारत में एक लिपि की स्थापना की, देवनागरी लिपि तो वह हजारो साल तक याद रहेगा लोगो को। देवनागरी लिपि में अगर आधा उर्दू भाषा हो ता उर्दू के हजारो लब्ज हमारी बोल चाल की भाषा में आ जायेंगे, नही तो उर्दू भाषा टूट जायेगी, उसको कोई पढेगा नही। इस वास्ते उर्दू भी नागरी में आनी चाहिए। भारत का सभी लिपियाँ नागरी में आनी चाहिए। उनकी अपनी लिपियाँ जरूर रहे लेकिन अगर नागरी लिपि होती है तो सारा दक्षिण भारत एक हो जाएगा, नम्बर एक। उत्तर भारत एक होगा, नम्बर दो। दक्षिण भारत और उत्तर भारत एक होगा, नम्बर तीन। भारत और एशिया एक होगा, नम्बर चार। और बाकी की दुनिया के साथ सम्बन्ध जोडने के लिए एक बाजू विश्वनागरी और दूसरी बाजू विश्व रोमन चलती रहेगी। उसमें से टिकने वाली होगी वह टिकेगी या दोनो टिकेंगी। उसमें मेरा कोई विरोध नही है। तो आजकल मैं बहुत सी बातें उसी विषय में करता हूँ। मैं मानता हूँ कि इसमें अगर हमें सफलता मिली तो हजारो साल के लिये इसका उपकार होगा।

हमारे हिंदुस्तान में अपने जयप्रकाशजी है उधम मचानेवाले। इधर गुजरात में उधम मचाया, उधर बिहार में एक हजार मील जाकर उधम मचाया। यूरोप में कर सकते है ऐसा? यूरोप में तो छोटे छोटे राष्ट्र बने हुए है। आप बिना पासपोर्ट तथा बिना इजाजत जा नही सकते। एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में जाना हो तो पासपोर्ट चाहिए। तो जे० पी० इटली से रशिया जाना चाहते है। पासपोर्ट नही मिलेगा तो बैठ रहो। लेकिन जहाँ पासपोर्ट की जरूरत नहीं है यह किसने किया? यह ऋषियो ने किया है। काशी का पानी लेना कावर लेना, कापडी का कंधे पर रखकर उठाना, उस में गंगा का पानी रखना दो बाजू। पैदल चलकर रामेश्वर जाना और रामेश्वर को अभिषेक करना पानी का। और रामेश्वर में समुद्र है, समुद्र का पानी फिर भर लेना और वह काशी में आकर विश्वनाथ के सिर पर अभिषेक करना। इस प्रकार सारे भारत को जोडने का काम पैदल चल करके हमारे पूर्वजो ने किया। और उसी के आधार पर ये लोग उधम मचा सकते है इधर से उधर।

तो तात्पर्य यह है कि यह जो जोड़ने वाली चीज है, आज वह देवनागरी होगी। आज यूरोप में क्या हो रहा है ? कामन मार्केट की जरूरत मालूम होती है उनको। ९ दस इकट्ठा हुए हैं और वे आपस में कोशिश कर रहे हैं कि बिना पासपोर्ट वगैरह के व्यापार चले इत्यादि। सब राष्ट्रों में अभी बात ही चल रही है। कुछ परिणाम आया नहीं है। अभी चर्चा ही चल रही है।

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि यह हुआ तो भारत टूटने की तैयारी हो सकती है। यह हम को समझने की जरूरत है। इस वास्ते सारे भारत को एक रखने के लिए हिन्दी भाषा वगैरह अभी काम नहीं कर सकेगी। वह भाषा नागरी लिपि ही कर सकती।

गीता के ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूप दर्शन है। उसमें हजारों हाथ हजारों पाँव हजारों सिर इत्यादि है। लेकिन मेरे ध्यान में आया और उस में खास खोज मानता हूँ। फिर किसी भाष्यकार ने उसे लिखा नहीं है। विश्वरूप में हृदय एक है। विश्वरूप में अनेक हृदय नहीं हैं। इसलिए आप जो भी चर्चा करेंगे उसमें बहुत सारे मतभेद होंगे, चर्चायें होंगी लेकिन आपका हृदय एक रहे। वह हृदय की एकता पक्की और मजबूत बने फिर चर्चा करो। उस चर्चा में परस्पर विरोधी बात भी आयेंगी लेकिन हृदय एक रख करके आप करेंगे तो वह बिलकुल सुरक्षित है। अपना समाज सर्वोदय समाज जिसकी आशा सारे भारत को लगी हुई है कि यही एक समाज है भारत का जो भारतीय चित्र इसका है वह ला सकता है। वह आशा सफल हो सकती है चाहे जितनी चर्चायें करें। परस्पर विरोध भी करें पर हृदय एक हो। एक यह बात मुझे कहनी थी।

दूसरी बात जो मुझे कहनी थी। उसे भी बार-बार कहता रहता हूँ। विश्वास। मेरा विश्वास जयप्रकाशजी में है। मेरा विश्वास इंदिराजी में है। मेरा विश्वास हेमवतीनंदन बहुगुणा में है। मेरा विश्वास एस एम जोशी पर है। एस एम जोशी जिस पक्ष के हैं उससे भिन्न पक्ष के हैं नाईक जो चीफ मिनिस्टर है। उनपर भी मेरा विश्वास है। अब मेरी क्या गति होगी ?

तो यह जो मेरा गुण कहिये दोष कहिये वह है मेरा विश्वास। आपको भी जो आपके विरोधी होंगे उन पर विश्वास रखना चाहिये। और वे जितना आप पर अविश्वास रखेंगे आप उन पर ज्यादा विश्वास रखें। मान लीजिये कि वे आपके सामने ज्यादा हिंसक बनते हैं। तो आप क्या करेंगे ? आप भी ज्यादा अहिंसक बनेंगे। जितनी उनकी हिंसा बढ़ेगी उतनी-उतनी आपकी अहिंसा बढ़ेगी। जितने वे लोग ज्यादा-से ज्यादा अविश्वास करेंगे बाबा पर, उतना ही ज्यादा बाबा विश्वास रखेगा उन पर और विश्वास से ही अविश्वास जीता जायगा। तीन शक्तियाँ हैं जिनसे दुनिया में शांति मिलेगी। एक सबका हृदय एक रहे। दो आप जितनी भी चर्चा करो परन्तु सामरस्य कम नहीं होना चाहिये। प्रेमपूर्वक चर्चा करनी चाहिये। और तीसरी बात आपसे कहनी है कि आपको दुश्मनों पर भी विश्वास रखना चाहिये। और सबको आपस में तो रखना ही चाहिये।

नयी तालीम : जून-जुलाई, '७४

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० WDA/1 रजि० सं० एल० १७२३

'कर्मामृत'

'यदि अच्छा और परिश्रमपूर्ण काम है, तो वह एक ऊपर उठाने वाली, उल्हास और शक्ति देने वाली चीज है। आपको कितना परिश्रम करना पड़ता है, इसकी परवाह नहीं। लोग आकर मुझसे कहते हैं कि इतनी मेहनत न करो, तुम काफी सोते नहीं हो। इसकी क्या चिन्ता है?

कठिन परिश्रम करने से कोई मरा नहीं है, बशर्ते कि वह अच्छे उद्देश्य के लिये काम कर रहा हो और जी लगाकर काम कर रहा हो! इसके विपरीत लोग मानसिक थकावट और दूसरे कारणों से मर जाते हैं।'

—जवाहरलाल नेहरू

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा